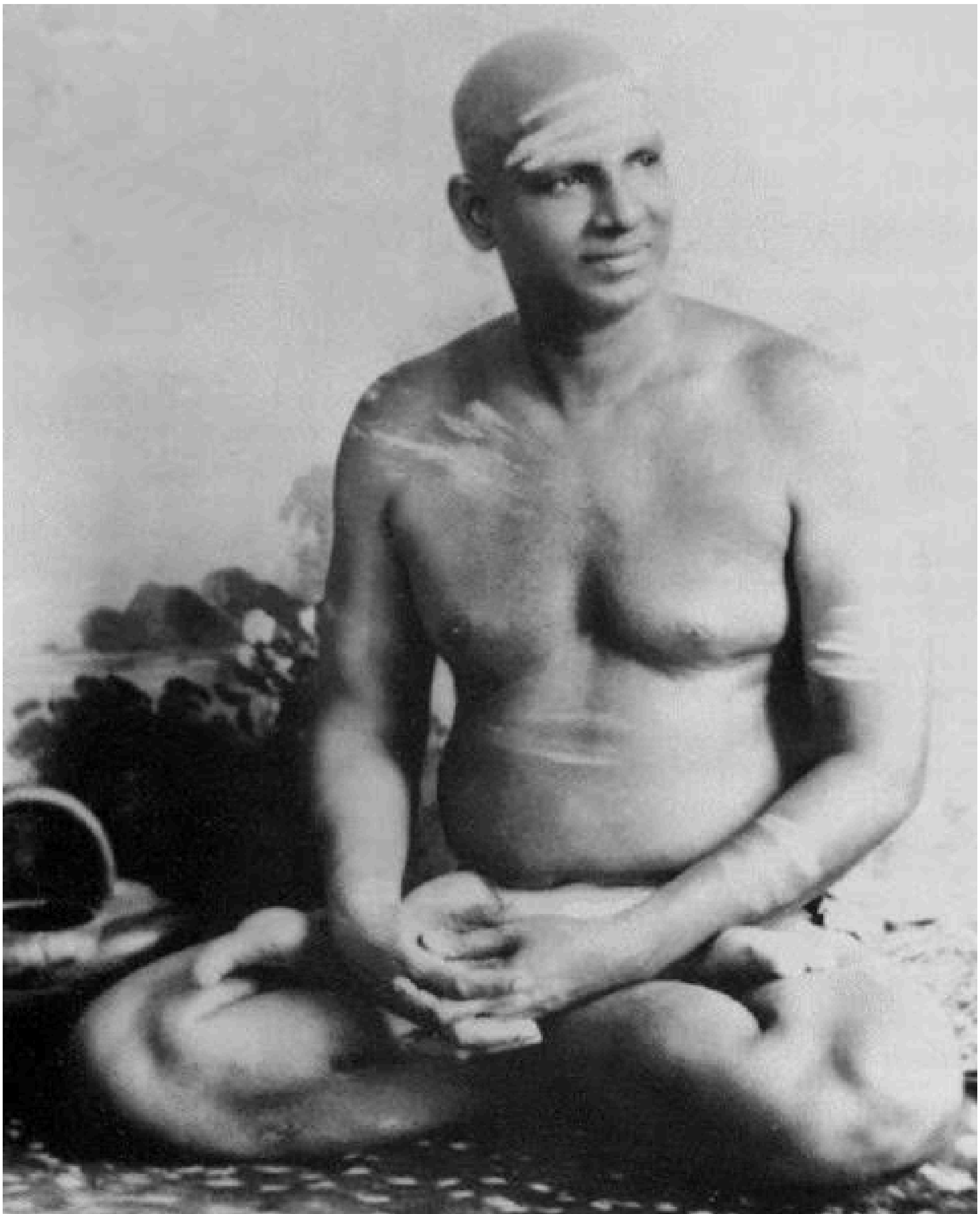
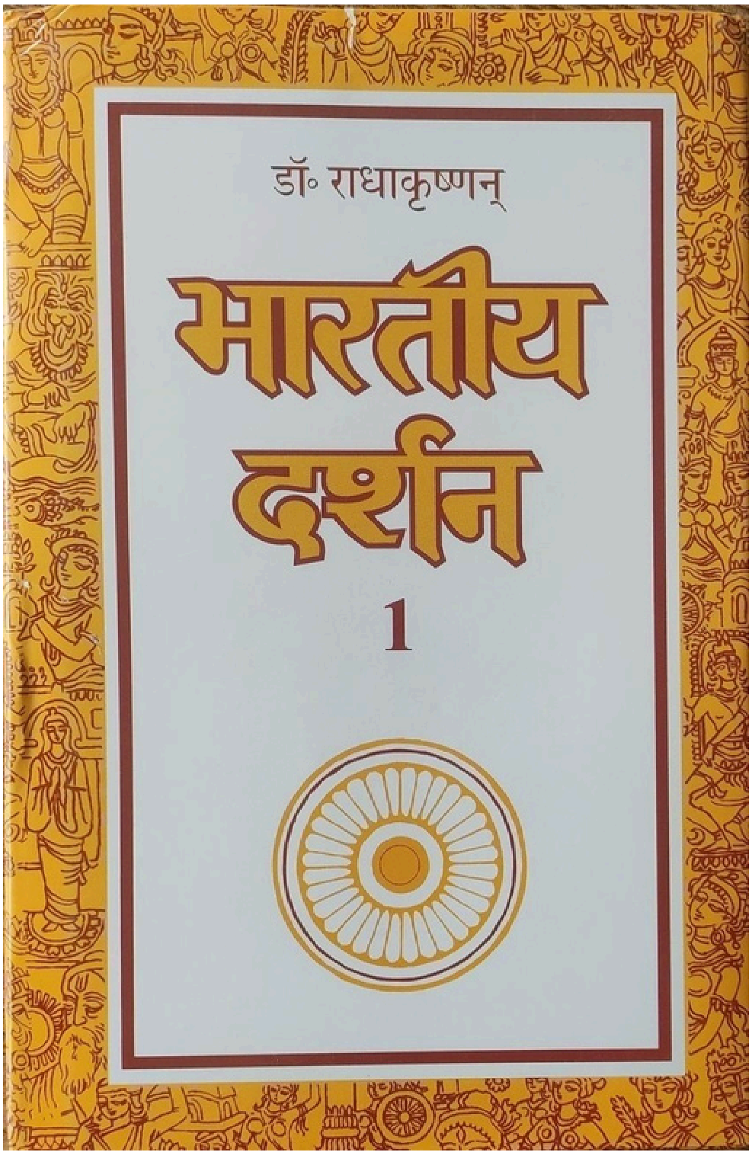



डॉ॰ राधाकृष्णन्
भारतीय
दर्शन
1

भारतीय दर्नश -1

(प्रथम खण्ड़)

अनुवाद
नन्दकिशोरगोभिल

₹650

ISBN: 9788170281870

संस्करण :2023

हिन्दी अनुवाद राजपाल एण्ड सन्
BHARATIYA DARSHAN(Part-1)byDr.S.Radhakrishnan

मुद्रक : जी.एस. ऑफसेट, हदल्ली

राजपाल एण्ड सन्

1590, मदरसा रोड क़श्मीरी गेट हद्ल्ली -110006

फोन : 011-23869812,23865483,23867791
website: www.rajpalpublishing.com
e-mail: sales@rajpalpublishing.com
www.facebook.com/rajpalandsons

भारतीय दर्नश -1

वैह दक युग से बौद्ध काल तक

(Indian Philosophy काहिन्दीअनुवाद)

डॉ. राधाकृष्णन

राजपाल

प्रस्तावना

यद्यपप संसार के बाह्य भौततक स्वरूप में, संचार-साधनों, वैज्ञातनक आपवष्कारों आहद की उन्नतत से बुित अधधक पररवतनश िुआ िै, ककन्तु इसके आन्तररक आध्यात्ममक पक्ष में... कोई बा परिवतनश निीं ंिुआ। क्षुधा एवं ंअनुराग की पुरातन त्तियां और हृदयगत तनदोष उल्लास एवंभय इमयाहद मानव-प्रकृतत के सनातन गुण िैं। मानव-जातत के वास्तपवक हितों, धम शके प्रतत गम्भीर आवेगों और दार्तशनक ज्ञान की मुख्य-मुख्य समस्याओं आहद ने वैसी उन्नतत निीं ंकी जैसीकक भौततक पदाथों ने की िै। मानव-मत्स्तष्क के इततिास में भारतीय पवचारधारा अपना एक अमयन्त त्तिर्ाली और भाव-पूण शस्थान रखती िै। मिान पवचारकों के भाव

कभी भुलाए जासकते निीं ंिोते। प्रमयुत वि उस उन्नतत को जो उर्न्िें ममटाती-सी प्रतीत िोती िै, सजीव प्रेरणा देते िैं। कभी-कभी अमयन्त प्राचीन भावनामयी कल्पनाएं िमें अपनेअद्भुत आधुतनक रूप के कारण अचम्भे में डाल देती िैं तयोंकक 'अन्तर्दत्शष्ट' आधुतनकता के ऊपर तनभरश निीं ंकरती।

भारतीय पवचारधारा के प्रततपाद्य पवषय के सम्बन्ध में अमयधधक अज्ञान िै। आधुतनक पवचारकों की र्दत्ष्ट में भारतीय दर्नश का अथ शिै माया-अथात्श ्संसार एक मायाजाल, कम शअथात्श ्भाग्य का भरोसा और मयाग अथात्श ्तपस्या की अमभलाषा इस पाधथवश रीर को मयाग देनेकी इच्छा आहद दो-तीन 'मूखतशापूण'श धारणाएं मात्र, कोई गम्भीर पवचार निीं ंऔर यि किा जाता िै कक ये साधारण धारणाएं भी जंगली लोगों की र्ब्दावली में व्यतत की गई िैं, और अव्यवत्स्थत तनरथकश कल्पनाओंएवं वातप्रपंच रूपी कुिासे से आच्छाहदत िैं, त्जर्न्िें इस देर् के तनवासी बुद्धध का चममकार मानतेिैं। कलकत्ता से कन्याकुमारी तक छि मास भ्रमण करने ्के पश्चात् ् मिारा आधुतनक सौन्दय-शप्रेमी, भारत की समस्त संस्कृतत एवं ंदर्नश-ज्ञान को 'सवेश्वरवाद' तनरथकश 'पात्ण्डमयामभ-मान', 'र्ब्दों का आडम्बर मात्र' और ककसी भी िालत में प्लेटो और अरस्तू ्यिां ंतक कक प्लाहटनस और बेकन के दार्तशनक ज्ञान के ततल-भर भी समान न िोने ्के कारण िीन बताकर छो़ देता िै। ककन्तु एक बुद्धधमान पवद्याथी जो दर्नश-ज्ञान की प्रात्प्त की अमभलाषा रखता िै, भारतीय पवचारधारा के अन्दर एक ऐसे अद्पवतीय सामग्री-समूि को ढूंढ़ तनकालता िै त्जसका सानी सूक्ष्म पववरण एवं ंपवधता दोनों की र्दत्ष्ट से िी संसार के ककसी भी भाग में निीं ंममल सकता। संसार-भर में सम्भवतः आध्यात्ममक अन्तर्दत्शष्ट अथवा बौद्धधक दर्नश की ऐसी कोई भी ऊंचाई निीं ंिै कक त्जसका सममूल्य पुरातन वैहदक ऋपषयों और अवाचशीन नैयातयकों के मध्यवती पवस्तृत ऐततिामसक काल में न पाया जाता िो। प्रोफेसर धगलबटश मरे के एक अन्य प्रकरण में प्रयुतत ककए गए र्ब्दों में "प्राचीन भारत मूल में दुःखद िोने ्पर भी पवजयी और एक पवमर्ष्ट उज्ज्ज्वल प्रारम्भ िै जो चािे ककतनी िी संकटपूण शत्स्थतत में तयों न िो, संघष शकरते-करते उच्च मर्खर तक पिुंचा िै।" वैहदक कपवयों की तनश्छल सूत्ततयां, उपतनषदों की अद्भुत सांकेततकता, बौद्धों का पवलक्षण मनोवैज्ञातनक पवश्लेषण, और र्ंकर का पवस्मय-पवमुग्धकारी दर्नश, ये सब सांस्कृततक र्दत्ष्टकोण से ऐसे िी अमयन्त 'रोचक एवं ंमर्क्षाप्रद िैं जैसेकक प्लेटो और अरस्तू ्अथवा कांट और िीगल के दर्नशर्ास्त्र िैं, यहद िम उतत भारतीय दर्नश-ग्रन्थों का अध्ययन एक तनष्पक्ष और वैज्ञातनक भाव से करें और इर्न्िें पुराना एवं पवदेर्ी समझकर अपमान की र्दत्ष्ट से न देखें, इर्न्िें

येि समझकर इससे घृणाा न करें। भारतीय दर्नश की पवमर्ष्ट पररभाषाएं त्जनका सिी-सिी अनुवाद भी आसानी सेभाषान्तरमें निीं ंिो सकता, स्वयंइस बात की साक्षी िैं कक इस देर् का बौद्धधक पवचार ककतना अद्भुत थो। यहद बाह्य कहिनाइयों को दूरू करके उनके ऊपर उिा जाए तो िम अनुभव करेंगे कक मानवीय हृदय की धड़कन में मानवता के नाते कोई भेद निीं,ं अथात्श ्वि न भारतीय िै और न यूरोपीय। यहद मान भी लें कक सांस्कृततक र्दत्ष्टकोण से भारतीय पवचारधारा का कोई मित्त्व निींिै तो भी वि ध्यान देनेयोग्य तो िै िी, यहद और ककसी र्दत्ष्टकोण से निींतो कम से कम इसी पवचार से कक एमर्या की समस्त पवचारधाराओंसे भी यि मभन्न िै और सब पर इसका प्रभाव भी स्पष्ट रूप से लक्षक्षत िोता िै।

िीककि–ीक क्रमबद्ध इततिास के अभाव में ककसी भी वृतूत को इततिास का नाम दे देना अनुधचत िै और इततिास र्ब्द का दुरुपयोग िै। प्राचीन भारतीय दर्नशों का िीककि–ीक समय तनणयश करने ेकी समस्या मनोरंजक भी िै एवं उसका समाधान भी असम्भव िै और इस क्षेत्र में नाना प्रकार की कल्पनाएं की गई िैं, अद्भुत रचनाओं ं और सिासपूण शअततर्योत्क्ततयों को भी जन्म हदया गया िै। खण्ड-खण्ड रूप में पृथक् पृथक् पड़ी सामग्री में से इततिास का तनमाणश एक और बड़ी बाधा िै। ऐसी पररत्स्थतत में मुझे ेइस रचना को 'भारतीय दर्नश का इततिास' की संज्ञा देनेमें हिचककचािट मालूम िोती िै।

पवर्ेष-पवर्ेष दर्नशों की व्याख्या करने ेमें मनैं ेलेखबद्ध प्रमाणों के तनकट सम्पकश में रिने ेका प्रयमन ककया िै, जिांकिीं ंसम्भव िो सका िै उन अवस्थाओं का भी मनैंप्रारत्म्भक सवेक्षण ककया िै त्जनके अन्दर रिकर इन दर्नशों का आपवभावश िुआ और यि कक ककस िद तक ये भूतकाल के ऋणी िैं एवं पवचार की प्रगतत में इनकी देन तया और ककस रूप में िै। मनैं ेकेवल उतत दर्नशों के सारभूत मूल तत्त्वों पर िी बल हदया िै त्जससे कक ब्यौरे में जाने पर भी सम्पूण शदर्नश का जो मुख्य आर्य िै वि र्दत्ष्ट से ओझल न िो जाए, और साथ िी साथ ककसी मसद्धान्त-पवर्ेष को लेकर चलनेसे मनैं ेअपनेको बचानेका प्रयमन ककया िै। तो भी मुझे ेभय िै कक मेरे आर्य के पवषय में ककसी को भ्रम न िो। इततिासलेखक का काय,श पवर्ेष करके दर्नश के पवषय में, बड़ा कहिन िै। वि चािे ककतना िी केवल ऐततिामसक घटनाओंको लेखबद्ध करने ेतक िी सीमा में रिने ेका प्रयमन करे, त्जससे कक इततिास को स्वयं ंअपनेअन्तर को खोलकर अपना आर्य तनरन्तरता, भूलों की समीक्षा एवं आंमर्क अन्तर्दत्ष्ट को प्रकट करने ेका अवसर प्राप्त िो सके, तो भी लेखक का अपना तनणयश एवं सिानुभूतत देर तक तछपी निींरि सकती। इसके अततररतत भी भारतीय दर्नश के पवषय में एक अन्य कहिनाई उपत्स्थत िोती िै। िमें ऐसी टीकाएं ममलती िैं जो पुरानी िोने ेपर भी काल की र्दत्ष्ट से मूल ग्रन्थ के अधधक तनकट िैं। इस- मलए अनुमान ककया जाता िै कक वे ग्रन्थ के सन्दभ शपर अधधक प्रकार् डाल सकती िैं। ककन्तुजब टीकाकार परस्पर पवरोधी मत रखतेिैं तब लेखक पवरोधी व्याख्याओंके पवषय में अपना तनणयश हदए बबना चुप भी निीं ंबैि सकता। इस प्रकार की तनजी सम्मततयों को प्रकट ककए बबना, जो भले िी कुछ िातनकर िों, रिा भी निीं ंजा सकता। सफल व्याख्या से तामपय शसमीक्षा और मूल्यांकन से िै और म ैंसमझता िंूं कक एक न्याय, युत्ततयुतत एवं तनष्पक्ष वततव्य दे सकनेके मलए समीक्षा से बचना आवश्यक भी निीं ंिै। म ैंएकमात्र यि आर्ा करता िंूं कक इस पवषय पर र्ान्त और तनष्पक्ष भाव से पवचार ककया जायेगा, और इस पुस्तक में और चािे जो भी त्रुहटयां ंरि गई िों, तथ्यों को पूव-शतनधारशरत सम्मतत के अनुकूल बनानेके मलए तोड़-मरोड़ा निीं ंगया िै। मेरा लक्ष्य

भारतीय मतों को बतलाने का उतना र्निीं ंिै त्जतना कक उनकी इस प्रकार से व्याख्या करने ेका िै त्जससे वे े पत्श्चमी पवचार-परम्परा एवं ंपद्धतत के साथ सामंजस्य में आ सकें। भारतीय और पत्श्चमी दो पवमभन्न पवचारधाराओं में त्जन दृष्टान्तों और समानताओं को प्रस्तुत ककया गया िै उनपर अधधक बल देना िीक र्निीं ंिै, तयोंकक भारतीय दार्तशनक कल्पनाओंकी उमपपत्त र्तात्ब्दयों पूव र्िुई िै, त्जस समय उनकी पृष्िभूमम में आधुतनक पवज्ञान की उज्जज्जवल उपलत्ब्धयांर्निीं ंथीं।

भारतवष,श एवं यूरोप और अमरीका में अनेक मेधावी पवद्वानों ने भारतीय दर्नश के पवर्ेष-पवर्ेष भागों का बिुत सावधानी एवं ंसम्पूणतशा के साथ अध्ययन ककया िै। दार्तशनक साहिमय के कुछ पवभागों की भी समीक्षाममक दृत्ष्ट से परीक्षा की गई िै ककन्तुभारतीय पवचार के इततिास को अपवभतत एवं ंसम्पूणू शइकाई के रूप में प्रततपाहदत करने ेका कोई प्रयमन र्निींिुआ और न िी उसके सतत पवकास का प्रततपादन ककया गया त्जसके बबना पवमभन्न पवचारकों व उनके मतों को पूणरूशप से र्निीं ंसमझा जा सकता। भारतीय दर्नश के पवकास के इततिास को उसके प्रारत्म्भक अस्पष्ट इततिास से लेकर पवर्द रूप में लाना एक अमयधधक कहिन काय र्िै और अकेले इस काय शको कर सकना ककसी अमयन्त पररश्रमी व बिुश्रुत पवद्वान की भी पिुंच के बािर की बात िै। इस प्रकार के सवमशान्य भारतीय दर्नश के पवश्वकोष का तनमाणश करनेमें न केवल पवर्ेष रुधच और पूरी लगन की अपपतु व्यापक संस्कृतत और प्रततभासम्पन्न पवद्वानों के परस्पर सियोग की भी आवश्यकता िै। इस पुस्तक का दावा इससे अधधक और कुछ र्निीं िैकक यि भारतीय पवचार का एक साधारण सवेक्षणमात्र िै एवं इसे एक पवस्तारपूण शपवषय की रूपरेखा मात्र िी किना अधधक उपयुतत िोगा। लेककन यि काय शभी बबलकुल सरल र्निीं िै। आवश्यक पवचार-पवमर् शसे इततिासलेखक के ऊपर एक ब्र ेउत्तरदातयमव का भार आ पड़ता िै जो इस दृत्ष्ट से और भी मित्त्वपूण र्िै कक कोई एक व्यत्तत अध्ययन के इन सब पवपवध क्षेत्रों में पवषय में अधधकारपूवकश र्निीं ंकि सकता और इसमलए लेखक को बाध्य िोकर ऐसे प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर िी अपना तनणयश देने के मलए बाध्य िोना पड़ता िै त्जनके मूल्य का वि स्वयंसावधानी के साथ तनणयश र्निीं ंकर सकता। काल-तनणयश के पवषय में मनैं ेयोग्य पवद्वानों के अनुसन्धानों के पररणामों पर िी लगभग पूणतशः तनभरश ककया िै। मुझेइस बात का पूरा ज्ञान िै कक इस पवस्तृत क्षेत्र का सवेक्षण करने ेमें बिुत कुछ आवश्यक पवषय अछूता िी रि गया िै और त्जसका प्रततपादन िुआ िै वि भी साधारण रूप में िी आ सका िै। यि पुस्तक ककसी भी अथ शमें पूण शिोने ेका दावा र्निीं ंकर सकती। इस पुस्तक में केवल मुख्य- मुख्य पररणामों का साधारण हदग्दर्नशमात्र ककया गया िै त्जससे कक ऐसे व्यत्ततयों को जो इस पवषय में सवथशा अनमभज्ञ िैं, कुछ ज्ञान प्राप्त िो सके और जिां तक सम्भव िो कुछ िद तक उनके अन्दर इसके प्रतत रुधच जागृत िो सके, त्जस काय शके मलए यि सवथशा उपयुतत िै। यहद इस पवषय में यि असफल भी रिे तो भी अन्य प्रयासों को इससे सियता एवं ंप्रोमसािन तो प्राप्त िो िी सकेगा। प्रारम्भ में मेरी योजना दोनों खंडों को एकसाथ प्रकामर्त करने ेकी थी ककन्तु प्रोफेसर जे. एस. मैकें

ी जैसे मेरे

कृपालु ुममत्रों ने मुझे ेसुझाव हदया कक प्रथम खंड तुरन्त प्रकामर्त कर देना चाहिए। चूंकक दूसरे खंड को तैयार करने ेमें कुछ समय लगेगा और पिला खंड अपने-आपमें पूण र्िै, इसमलए इसे म ैंस्वतन्त्र रूप से प्रकामर्त कर रिा िंूं। इस खंड में त्जन मन्तव्यों को पववेचन ककया गया िै, उनकी पवर्ेषता यि िै कक भौततक अत्स्तमव की

समस्याओं की ताककशक भावनाओं द्वारा व्याख्या करने ेकी अपेक्षा इस पवषय पर अधधक ध्यान हदया गया ि ै कक जीवन में उनकी कक्रयाममक आवश्यकता का समथनश ककया जाये। ऐसे पवषयों पर त्जनका रूप पिाकों की र्दत्ष्ट में दार्तशनक की अपेक्षा धाममकश अधधक ि ै, पवचार करने ेसे निीं ंबचा जा सकता था, तयोंकक प्राचीन भारतीय कल्पनाओं में धम शऔर दर्नश का बिुत तनकट सम्बन्ध रिा ि ै। परन्तु दूसूरे खंड में अधधकतर पवर्ुद्ध दार्तशनक पवषय पर ि ी पवचार ककया जायगा, तयोंकक दर्नशर्ास्त्रों में सैद्धात्न्तक र्दत्ष्ट का स्थान मुख्यतः सदा ि ी ऊपर रिता ि ै, यद्यपप ज्ञान और जीवन के परस्पर घतनष् सम्बन्ध को भी भुलाया निीं ंजा सकता।

यिां ंपर मुझे ेउन कततपय प्राच्यपवद्या-पवर्ारदों के प्रतत कृतज्ञता प्रकट करते िुए ि ष शिोता ि ै त्जनके ग्रन्थों से मुझे ेअपनेअध्ययन में बिुत सिायता ममली ि ै। उन सबके नामों का उल्लेख सम्भव निीं ंि ै जो स्थान-स्थान पर इस पुस्तक में आएंगे। ककन्तु तनश्चय ि ी मैतसमूलर, डयूसन, कीथ, जैकोबी, गाबें, ततलक, भण्डारकर, रीज़ डेपेवड्स एवंश्रीमती रीज़

डेपेवड्स, ओल्डेनेबग,श पूसीं, सुजुकी और सोजेन के नाम का उल्लेख आवश्यक ि ै। ककतने ि ी अन्य अमूल्य ग्रन्थ जो िाल में प्रकामर्त िुए ि ैं यथा प्रोफेसर दासगुप्त का 'भारतीय दर्नश का इततिास' और सर चाल्स श इमलयट का 'हिन्दूइज़्म ऐंड बुद्धधज़्म' मुझे ेबिुत पवलम्ब से प्राप्त िुए, जबकक इस पुस्तक की पाण्डुमलपप पूण श करके प्रकार्कों के पास हदसम्बर, 1921 में भेजी जा चुकी थी। प्रमयेक अध्याय के अन्त में दी गई ग्रन्थसूची

अपने-आपमें पूण शनिीं ंि ै। यि केवल अंग्रेज़ी जाननेवाले पिाकों के तनदेर्न के मलए ि ै। मुझे ेप्रोफेसर जे० एस० मैकेंज़ी और श्री सुब्रह्मण्य अय्यर को धन्यवाद देना ि ै त्जन्िोंनेकृपा करके पुस्तक की पाण्डुमलपप के अधधकतर भाग को पढ़ा और प्रूफ-संर्ोधन भी ककया। इनके मैत्रीपूण शसमपरामर्ों से इस पुस्तक को बिुत लाभ पिुंचा। म ैंप्रोफेसर ए० बैरीडेले कीथ का अमयन्त कृतज्ञ िंूं त्जन्िोंने प्रूफ संर्ोधन ककया और कई बिुमूल्य सुझाव भी हदए। म ैं'लाइब्रेरी आफ कफलासफी' के सम्पादक प्रोफेसर जे० एच० म्योरिेड का उनकी उस बिुमूल्य और उदारतापूण शसिायता के मलए अमयन्त कृतज्ञ िंूं जो उन्िोंनेइस पुस्तक की प्रेस कापी तैयार करने ेमें तथा उससे पूव शभी प्रदान की ि ै। उन्िोंनेपुस्तक की पाण्डुमलपप पढ़नेका कष्ट ककया और उनके सुझाव तथा आलोचनाएं मेरे मलए अमयन्त सिायक मसद्ध िुई ि ैं। म ैं(स्वगीय) सर आर्ुतोष मुकजी नाइट् सी० एस० आई० का भी अमयन्त कृतज्ञ िंूं, तयोंकक उन्िोंने मुझे ेइस काय शके मलए तनरन्तर प्रोमसाहित ककया और कलकत्ता पवश्वपवद्यालय के स्नातकोत्तर पवभाग में उच्चतर काय शके मलए सब प्रकार की सुपवधाएं प्रदान कीं।

नवम्बर, 1922 **- राधिाकृष्णन**

ववषय-सूची

प्रथम भाग : वैहदक काल

पिला अध्याय

ववषय-प्रवेश

भारत की प्राकृततक त्स्थतत-भारतीय पवचारधारा की सामान्य पवर्ेषेताएं-भारतीय दर्नश के पवरुद्ध कुछ आरोप-भारतीय दर्नश के अध्ययन का मित्त्व भारतीय पवचारधारा के पवमभन्न काल।

1. भारत की प्राकृततक त्स्थतत

धचन्तनर्ील व्यत्ततयों के पवचारों के प्रस्फुहटत ि‍ो सकने तथा पवमभन्न कलाओंऔर पवज्ञानों के समृद्ध ि‍ो सकनेके मलए एक सुव्यवत्स्थत समाज का ि‍ोना अमयावश्यक ि‍ै जो पयाप्शत सुरक्षा और अवकार् प्रदान कर सके। घुमतक्ों के समुदाय में, जिां ‍ंलोगों को जीपवत रिनेके मलए संघष शकरना और अभाव से पीड़त रिना पड़ता ि‍ै, ककसी समृद्ध संस्कृतत का पनप सकना असम्भव ि‍ै। भाग्य से भारत ऐसे स्थान पर त्स्थत ि‍ै जिां ‍ंप्रकृतत अपनेदान में मुतुतिस्त रिी ि‍ै और जिां ‍ंके प्राकृततक दृश्य मनोरम ि‍ैं। एक ओर हिमालय अपनी सघन पवतशमाला और उत्तुंगता के कारण तथा दूसूरे पाश्वों में लिराता ि‍ुआ सागर एक लम्बे समय तक भारत को बािरी आक्रमणों से सुरक्षक्षत रखनेमें सियक मसद्ध ि‍ुए। उदार प्रकृतत ने प्रचुर मात्रा में खाद्य-सामग्री प्रदान की और इस प्रकार यिां ‍ंके तनवासी किोर पररश्रम और जीपवत रिनेके संघष शसे मुतत रिे। भारतीयों ने कभी यि अनुभव निींककया कक संसार एक युद्ध-क्षेत्र ि‍ै जिांलोग र्त्तत, सम्पपत्त और प्रभुमव की प्रात्प्त के मलए संघष श करते ि‍ैं। जब ि‍में पाधथवश जीवन की समस्याओं को ि‍ल करने, ‍े प्रकृतत से अधधकाधधक लाभसाधन करने ‍ेतथा संसार की र्त्ततयों को तनयत्न्त्रत करने ‍ेमें अपनी र्त्तत को व्यथ शनिीं ‍ंगंवाना पड़ता तो ि‍म उच्चतर जीवन के पवषय में, इस पवषय में कक आममर्त्तत में ककस प्रकार और अधधक पूणतशा के साथ रिा जा सकता ि‍ै, सोचना-पवचारना आरम्भ करते ि‍ैं। संभवतः यिां ‍ंके दुबुलश बनानेवाले जलवायुने भारतीयों को पवश्राम और कमपशवरतत की ओर प्रवृत्त ककया। पवस्तृत पत्रसंकुल वृक्षावली से पूण शपवर्ाल वनों ने धमतशनष्ि व्यत्ततयों को र्ांततपूवकश पवचरनेकी तथा अद्भुत कल्पनाओं और हदव्य आनन्द के गान में रत रिने ‍ेकी अमयधधक सुपवधा प्रदान की। संसार से तलांत व्यत्तत इन प्राकृततक दृश्यों के अवलोकनाथ शतीथयशात्रा पर तनकलतेिैं, आन्तररक र्ात्न्त प्राप्त करते ि‍ैं, मन्द-मन्द पवन तथा तनझरशों का संगीत सुनते ि‍ैं, एवं पक्षक्षयों और वनलता-पल्लवों के ममरशगान से प्रमुहदत ि‍ोकर स्वस्थ हृदय और प्रफुल्ल मन वापस लौटते ि‍ैं। आश्रमों, तपोवनों और वानप्रस्थों की अरण्य-

कुहटयों में िी भारत के तत्त्वधचन्तकों ने ध्यानमग्न िोकर जीवनसत्ता की गम्भीर समस्याओं पर पवचार ककया। सुरक्षक्षत जीवन, प्राकृततक साधनों की सम्पन्नता, अततधचन्ता से मुतुतत, जीवन की त्जम्मेदाररयों से पवरत्तत और कूरूर व्यापिारिक स्वाथ शके अभाव ने िी भारत के उच्चतर जीवन को प्रोमसािन प्रदान ककया त्जसके पररणामस्वरूप िमें इततिास के आरम्भकाल से िी भारतीय मन में आममज्ञान के मलए एक प्रकार की पवकलता, पवद्या के प्रतत प्रेम और मत्स्तष्क की अधधक स्वस्थ और युत्ततयुतत प्रवृपृत्तयों के प्रतत लालसा हदखाई देती िै।

प्राकृततक त्स्थततयों के अनुकूल िोने ेतथा पदाथों के गूढ़ाथ शपर पवचार करने ेयोग्य बौद्धधक क्षेत्र उपलब्ध िोने ेके कारण भारतीय उस सवनशार् से बचा रिा त्जसे प्लेटो ने सबसे बुरा बताया िै, अथात्श ्पववेक से घृणा। उसने अपने'फीडो' नामक ग्रन्थ में मलखा िै कक "आओ, िम सबसे अधधक इस बात का ध्यान रखें कक इस पवपपत्त से िम ग्रस्त न िों, कक िम पववेकद्वेषी न बनें, जैसे कुछ लोग मानवद्वेषी िो जाते िैं; तयोंकक मनुष्यों के मलए इससे बा दुभाग्शय और कोई निीं ंिो सकता कक वे ेपववेक के त्रु ुबन जाएं।" ज्ञान का आनन्द मनुष्य को उपलब्ध एक पपवत्रतम आनन्द िै और भारतीय मत्स्तष्क में इसके मलए प्रबल लालसा की ज्जयाला पवद्यमान िै।

संसार के अन्य ककतने िी देर्ों में जीवनसत्ता सम्बन्धी मीमांसा को एक प्रकार के पवलास के समान माना जाता िै। जीवनकाल के गंभीर क्षणों का उपयोग कम शकरनेके मलए ककया जाता िै और दार्तशनक अमभतनवेर् को प्रासंधगक एवं ंअवान्तर पवषय माना जाता िै। प्राचीन भारत में दर्नश का पवषय ककसी अन्य पवज्ञान अथवा कला के साथ जुा िुआ न िोकर सदा िी अपने-आप में एक प्रमुख और स्वतन्त्र स्थान रखता था। ककन्तु ुपत्श्चमी देर्ों में अपने ेपवकास के पूण शयौवनकाल में भी, जैसे प्लेटो और अरस्तु ुके समय में, इसे राजनीतत अथवा नीततर्ास्त्र जैसे ककसी अन्य पवषय का सिारा लेना पा िै। मध्यकाल में इसे परमाथ शपवद्या के नाम से जाना जाता था, बेकन और न्यूटन के मलए यि प्राकृततक पवज्ञान था और उन्नीसवीं र्ताब्दी के पवचारकों के मलए इसका गिबन्धन इततिास, राजनीतत एवं समाजर्ास्त्र के साथ रिा। भारत में दर्नशर्ास्त्र आममतनभरश और स्वतन्त्र रिा िै तथा अन्य सभी पवषय प्रेरणा और समथनश के मलए इसका आश्रय ढूंढ़ते िैं। भारत में यि प्रमुख पवज्ञान िै जो अन्य पवज्ञानों के मलए मागदर्शकश िै, तयोंकक बबना तकशज्ञान के आश्रय के वे ेसब खोखले और

मूखतशापूण शसमझे ेजाते िैं। मुण्डकोपपतनषद् में 'ब्रह्मपवद्या' (तनमय-पवषयक ज्ञान) को अन्य सब पवज्ञानों का आधार, सव-शपवद्या-प्रततष्ठा किा गया िै। कौहटल्य का कथन िै, "दर्नशर्ास्त्र (आन्वीक्षक्षकी-दर्नश) अन्य सब पवषयों के मलए प्रदीप का काय शकरता िै, यि समस्त कार्यों का साधन और समस्त कतव्शयकर्मों का मागदर्शकश िै।"[1]

चूंकक दर्नशर्ास्त्र पवश्व की समस्या को समझनेका एक मानवीय प्रयास िै इसमलए इस पर जातत और संस्कृतत के प्रभावों का पन्ना तनत्श्चत िै। प्रमयेक राष्ट्र की अपनी पवमर्ष्ट मनोवृपृत्त िोती िै और उसका बौद्धधक झुकाव भी अपना पवर्ेष िोता िै। इततिास की र्ताब्दियों के प्रवाि और उन समस्त पररवतनशों के बीच त्जनसे भारत गुजरा िै, एक पवर्ेष एकरूपता पररलक्षक्षत िोती िै। इसनेकुछ मानमसक पवर्ेषताओं को दृढ़ता से पका

[1] देखें. 'इंडडयन ऍहटतवेरी', 1918, पृष्ठ 102। और भी देखें, 'भगवद्गीता 10:32।

 रखा ि, जो इसकी पवमर्ष्ट परम्परा के अमभन्न अंग िैं, और ये पवरे्षेताएं भारतीय जनों के पवमर्ष्ट लक्षणों के
रूप में तब तक पवद्यमान रिंगी जब तक भारतीयों को अपनेस्वतन्त्र अत्स्तमव को अक्षुण्ण बनाये रखनेका सौभाग्य प्राप्त रिेगा। व्यत्ततमव का अथ शि पवकास की स्वाधीनता। आवश्यक निीं कक इसका अथ शअसमानता िो। तनतान्त असमानता सम्भव निीं, ं तयोंकक समस्त संसार में मनुष्य समान िैं; पवरे्षेत: जिां ंतक आममा की प्रतीतत का सम्बन्ध ि, मानव सवत्रश समान ि। काल, इततिास और स्वभाव के भेद से अवश्य मभन्नता लक्षक्षत िोती ि। ये भेद पवश्व-संस्कृतत की सम्पन्नता को बढ़ातिैं, तयोंकक दार्तशनक पवकास का इससे अधधक सुगम माग शऔर कोई निीं ंि। इससे पूव शकक िम भारतीय पवचारधारा के पवमर्ष्ट स्वरूपों पर दृत्ष्टपात करें, कुछ र्ब्द भारतीय पवचारधारा पर पररश्रम के प्रभाव के सम्बन्ध में भी आवश्यक िैं।

प्राय: यि प्रश्न उिाया जाता ि कक तया भारतीय पवचारधारा ने पवदेर्ी सूत्रों से, यथा यूनान से, अपने े पवचार उधार मलए िैं और ककस सीमा तक मलए िैं। भारतीय तत्त्वधचन्तकों के कुछ पवचार प्राचीन यूनान में प्रततपाहदत कुछ मसद्धान्तों से इतने ेममलतिैं कक यहद कोई चािे तो इनमें से ककसी भी पवचारधारा को सरलता से िीन मसद्ध कर सकता ि।'[2] पवचारों के सम्बन्धन का प्रश्न उिाना एक तनरथकश पवषय के पीछे पड़ना ि। तनष्पक्ष दृत्ष्ट वाले ककसी व्यत्तत के मलए संतापों का िोना ऐततिामसक समानान्तरता का िी एक प्रमाण ि। समान अनुभव मनुष्यों के मन में समान पवचारों को जन्म देते िैं। ऐसा कोई भौततक प्रमाण उपलब्ध निीं ं त्जससे कम से कम यि मसद्ध िो सके कक भारत ने अपनेदार्तशनक पवचार सीधे-सीधेपत्श्चम से उधार मलए। भारतीय पवचारधारा के िमारे इस वृत्तान्त से यि स्पष्ट िोगा कक यि मानवीय मत्स्तष्क का एक तनतान्त स्वतन्त्र उपक्रम ि। दार्तशनक समस्याओं पर यिां ंबबना ककसी पत्श्चमी प्रभाव अथवा सम्बन्ध के पवचार-पवमर् श ककया गया ि। पत्श्चम के साथ प्रासंधगक संसग शिोने ेपर भी भारत अपनेआदर् शजीवन, दर्नश एवं धम शको पवकमसत करनेके मलए स्वतन्त्र रिा। इस प्रायद्वीप में आकर बसनेवाले आयों के आहदस्थान के बारे में चािे जो भी मत िीक िो, उनका पत्श्चम अथवा उत्तर के अपनेसजाततयों के साथ र्ीघ्र िी सम्बन्ध टूट गया और उन्िोंने एक तनजी तथा सवथशा स्वतन्त्र पद्धतत पर अपना पवकास ककया। यि समय ि कक भारत पर उत्तर-पत्श्चम के दरों की ओर से आनेवाली सेनाओं ने बार- बार आक्रमण ककया ककन्तु उनमें से मसकन्दर के आक्रमण के मसवाय और ककसी ने दो पवश्वों के मध्य आध्यात्ममक संसग शको प्रोमसािन निींहदया। केवल उसके पश्चात् ंके काल में िी, जब से समुद्र का माग शखुला ि, अधधक घतनष् िसंसग शको बढ़ावा ममल सका ि त्जसके पररणामों के पवषय में अभी िम कुछ निीं ंकि सकते, तयोंकक वे अभी तनमाणश की अवस्था में िी िैं। इसमलए सब प्रकार के व्याविाररक

---

[2] सर पवमलयम जोन्स ने मलखा ि "दर्नश की र्ाखाओंके सम्बन्ध में यिां पर इतना तनरूपण पयाप्शत िोगा कक प्रथम न्याय अरस्तू के दर्नश के समान ि; द्पवतीय न्याय, त्जसे कभी-कभी वैरे्पषक किा जाता ि, आयतनक दर्नश (यूनान) के सदृर् ि; दोनों मीमांसादर्नश, त्जनमें से दूसरे को प्राय: वेदान्त के नाम से जाना जाता ि, प्लेटो के दर्नश-सदृर् ि; प्रथम सांख्य प्राचीन इतालवी दर्नश के सदृर् और द्पवतीय, पतंजमल का, स्टोइक दर्नश के सदृर् ि; यिां तक कक गौतम अरस्तू के अनुकूल ि, कणाद थेलीज के जैममनी सुकरात के, व्यास प्लेटो के, कपपल पपथागोरस के और पतंजमल जेनों जेनों के के अनुकूल ि।" (ग्रन्थावली, 1/360 - 1 और भी देखें, कोलब्रुक कृत 'ममसलेतनयस एसे' 1:4361) यि मत तो प्राय: प्रकट ककया जाता ि कक यूनानी पवचारधारा पर भारतीय दर्नश का प्रभाव पड़ा, ककन्तुयि प्राय: निीं किा जाता ि कक यूनानी पवचारधारा का ऋणी ि। (देखें, गाब कृत 'कफलासफी आफ एत्न्र्यंट इंडडया', अध्याय 2)

प्रयोजन के मलए िम भारतीय पवचारधारा को एक पररपूण शदार्तशनक पद्धतत अथवा पवचारों के एक स्वायत्त पवकास के रूप में मान सकर्तिैं।

2. भारतीय पवचारधारा की सामान्य पवर्ेषेताएं

भारत में दर्नशर्ास्त्र मूलभूत रूप से आध्यात्ममक िै। भारत की प्रगाढ़ आध्यात्ममकता ने िी, न कक उसके द्वारा पवकमसत ककसी ब्र ेराजनीततक ढांचे या सामात्जक संगिन ने, इसे काल के पवध्वंसकारी प्रभावों और इततिास की दुघुटशनाओं ंको सिन कर सकनेकी सामथ्य शप्रदान की। भारत के इततिास में कई बार बाह्य आक्रमणों और आन्तररक फूट ने इसकी सभ्यता और संस्कृतत को नष्टप्राय करने ेका प्रयास ककया। यूनातनयों और सीधथयनों ने, फारसवामसयों और मुगलों ने, फ्ांसीमसयों और अंग्रेर्ों ने क्रमर्: इस सभ्यता को दबानेका प्रयमन ककया, और कफर भी इसनेअपना मस्तक ऊंचा रखा िै। भारत पूरे तौर से कभी परात्जत निीं ंिुआ और इसकी आममा की वि पुरातन लौ आज भी प्रकार्मान िै। अपनेअब तक के सम्पूण शजीवन में भारत का एक िी उद्देश्य रिा िै, वि िै समय का संस्थापन और असमय का प्रततकार। इसनेत्रुहुट भले िी की िो ककन्तु इसनेविी ककया त्जसके योग्य इसनेअपने-आपको समझा और त्जसकी इससे आर्ा की गई। भारतीय पवचारधारा के इततिास में मत्स्तष्क के अन्तिीन गवेषणा के र्दष्टान्त ममलेंगे, जो पुरातन िोने ेपर भी सदा नवीन िैं।

भारतीय जीवन में आध्यात्ममक प्रयोजन का स्थान सदा िी सवोपरर रिता िै। भारतीय दर्नश की रुधच मानव-समुदाय में िै, ककसी काल्पतनक एकान्त में निीं। इसका उद्भव जीवन में से िोता िै और पवमभन्न र्ाखाओं और सम्प्रदायों में से िोकर यि पुनः जीवन में िी प्रवेर् करता िै। भारतीय दर्नश की मिान रचनाओं का वि आधधकाररक या प्रामाणणक स्वरूप निीं िै जो परवती समीक्षाओं और टीकाओं की एक प्रमुख पवर्ेषेता िै। गीता और उपतनषदें जनसाधारण के धाममकश पवश्वास की पिुंच के बािर निीं ंिैं। ये ग्रन्थ इस देर् के मिान् ् साहिमय के अंग िैं और साथ िी बड़े-बड़े दार्तशनक पवचार-धाराओं के माध्यम भी िैं। पुराणों में कथाओंऔर कल्पनाओं के रूप में समय तछपा िुआ िै त्जससे कक न्यूनबोध जनता के ब्र ेवग शका भी उपकार िो सके। बिुसंख्यक जनता की रुधच को तत्त्वमीमांसा की ओर प्रवृत्त करने ेका जो दुष्कर काय शिै उसमें भारत ने सफलता प्राप्त की िै।

दर्नशर्ास्त्र के संस्थापकों ने देर् के सामात्जक-आध्यात्ममक सुधार का प्रयास ककया िै। जब भारतीय सभ्यता को ब्राह्मण-सभ्यता किा जाता िै तो इसका तामपय शकेवल यि िै कक इसका मुख्य स्वरूप एवं ंइसके प्रधान लक्ष्यों का तनरूपण दार्तशनक पवचारकों और धाममकश आचायों के द्वारा िुआ िै, यद्यपप इनमें से सभी का जन्म ब्राह्मण-कुल में निीं ंिुआ। प्लेटो के इस पवचार को कक दार्तशनकों को समाज का र्ासक और तनदेर्क िोना चाहिए, भारत में िी कक्रयाममक रूप हदया गया िै। यिांयि माना गया िै कक परम समय आध्यात्ममक समय िी िै और उन्िींके प्रकार् में जीवन का संस्कार ककया जाना चाहिए।

भारत में धम-शसम्बन्धी ििधममतशा निीं ंिै। यिां ंधम शएक युत्ततयुतत संश्लेषण िै जो दर्नश की प्रगतत के साथ-साथ अपनेअन्दर नये-नये पवचारों का संग्रि करता रिता िै। अपने-आप में इसकी प्रकृतत परीक्षणाममक और अनन्तम िै, और यि वैचैाररक प्रगतत के साथ कदम ममलाकर चलने ेका प्रयास करता िै। यि सामान्य आलोचना कक भारतीय पवचार बुद्धध पर बल देनेके कारण दर्नशर्ास्त्र को धम शका स्थान देता िै, भारत में धम श के युत्ततयुतत स्वरूप का समथनश करती िै। इस देर् में कोई भी धाममकश आन्दोलन ऐसा निीं ंिुआ त्जसने अपने समथनश में दार्तशनक पवषय का पवकास भी साथ-साथ न ककया िो। िैवल का किना िै : "भारत में धम शको रूहढ़ या धिममतशा का स्वरूप प्राप्त निीं ंिै, वरन् ्यि मानवीय व्यविार की ऐसी कक्रयाममक पररकल्पना िै जो आध्यात्ममक पवकास की पवमभन्न त्स्थततयों में और जीवन की पवमभन्न अवस्थाओं में अपने-आपको अनुकूल बना लेती िै।"[3] जब भी धम शने एक ज़ मतवाद का रूप धारण करनेकी प्रवृपृत्त हदखाई तो अनेक आध्यात्ममक पुनरुमथान और दार्तशनक प्रततकक्रयाएं उमपन्न िुई और उपलब्ध पवश्वास कसौटी पर कसे गए, असमय का खण्डन कर समय की संस्थापना की गई। िम बराबर देखेंगे कक जब- जब परम्परागत पवश्वास, काल-पररवतनश के कारण, अपयाप्शत िी निीं ंझ्रि मसद्ध िोतेिं और युग उनसे ऊब जाता िै तो बुद्ध या मिावीर, व्यास या र्ंकर जैसे युगपुरुष की चेतना आध्यात्ममक जीवन की गिराइयों में िलचल उमपन्न करती िुई जन-मानस पर छा जाती िै। भारतीय पवचारधारा के इततिास में तनस्संदेि ये ब्र ेमित्त्वपूण शक्षण रिे िैं, आन्तररक कसौटी और अन्तर्दत्शष्ट के क्षण, जबकक आममा की पुकार पर मनुष्य का मन एक नये युग में पग रखता िै और एक नए सािसक काय शपर चल पता िै। दर्नश के समय और जनसाधारण के दैतनक जीवन का घतनष्ठ सम्बन्ध िी धम श को सदा सजीव और वास्तपवक बनाता िै।

धमपशवषयक समस्याओंसे दार्तशनक भावना को उते्तेजना ममलती िै। भारतीय मत्स्तष्क प्राचीन परम्परा से िी सवोपरर परब्रह्म, जीवन के उद्देश्य और मनुष्य का पवश्वाममा के साथ सम्बन्ध आहद प्रश्नों के समाधान में पररश्रमपूवकश लगा रिा िै। भारत में यद्यपप दर्नशर्ास्त्र ने साधारणतया अपनेको धाममकश पररकल्पना के आकषणश से अछूता निीं ंरखा तो भी दार्तशनक पवचार-पवमर् शकी प्रगतत में धाममकश रीततयों एवं ंकक्रयाकलाप ने कोई बाधा निीं ंडाली। दोनों का परस्पर संपवलयन कभी निीं ंिुआ। आगम और व्यविार के बीच, मसद्धान्त और वास्तपवक जीवन के बीच, घतनष्ठ सम्बन्ध िोने ेके कारण कोई दर्नश जो जीवन की कसौटी पर खरा न उतर सकता, उपयोधगतावाद की र्दत्ष्ट से निीं,ं वरन् ्अपनेपवस्तृत अथों में, कभी भी जीपवत निीं ंरि सकता था। उन लोगों के मलए जो जीवन और आगम के मध्यंवास्तपवक नाते का मित्त्व पिचानते िैं, दर्नश जीवन की एक पद्धतत या उसका अंग, आमम-साक्षामकार का एक साधन, बन जाता िै। यिां ंकोई भी दार्तशनक मर्ाश ऐसी निीं ं थी, यिां ंतक कक सांख्य की भी निीं,ं जो केवल एक मौणखक र्ब्द या सम्प्रदायगत रूहढ़-मात्र रि गई िो। प्रमयेक मसद्धान्त को एक ऐसी ओजस्वी श्रद्धा के रूप में जीवन में पररवततशत कर हदया गया त्जसने ेमनुष्य के हृदय को उद्वेमलत ककया और उसे चैतन्य से पररपूण शकर हदया।

---

[3] 'आयनशरूलइनइंडडया',पृष्ठ 170।देखें, 'द िाटश आफ हिन्दूइज्जम' नामक लेख हिबटश जनलश', अततूबर् 1922

यि किना असमय िै कक भारत में दर्नशज्ञान कभी भी प्रबुद्ध और आममचेतन अथवा पववेचनाममक निीं ंरिा। यिां ंतक कक प्रारत्म्भक अवस्थाओं में भी ताककशक धचंतंन की प्रवृपृत्त धाममकश पवश्वास में सुधुार की ओर रिी िै। धम शके उस पवकास को देणखए त्जसका संकेत वेदमन्त्रों से लेकर उपतनषदों तक िुई प्रगतत में ममलता िै। जब िम बौद्धधम शके समीप पिुंचते िैं तो ज्ञात िोता िै कक दार्तशनक भावना ने पिले से िी एक पवश्वासपूण श मानमसक वृपृत्त का रूप धारण कर मलया िै, जो बुद्धध से सम्बन्ध रखनेवाले पवषयों में ककसी बाह्य प्रमाण के आगे निींझुकती और जो अपनेउद्यम की ककसी सीमा को भी तब तक स्वीकार निीं ंकरती जब तक कक यि तकशसम्मत न जंचे, तयोंकक तकश िर वस्तु के अन्तस्तल में प्रवेर् करता िै, िर चीज की परख करता िै और जिां तक युत्तत एवंप्रमाण माग शहदखा सकतेिैं, तनभयशता- पूवकश आगे बढ़ता िै। जब िम पवमभन्न दर्नशों अथवा पवचार की पवमभन्न पद्धततयों तक पिुंचते िैं तो िमें क्रमबद्ध पवचार के प्रतत पवर्ाल और आग्रिपूण शप्रयमनों का प्रमाण ममलता िै। यि दर्नश ककस प्रकार परम्परागत धाममकश पवश्वासों और पक्षपातों से सवथशा मुतत िैं, यि इससे स्पष्ट िो जाता िै कक सांख्य दर्नश ईश्वर की सत्ता के पवषय में मौन िै, िालांकक उसकी सैद्धात्न्तक प्रमाणातीतता के पवषय में वि आश्वस्त िै। वैर्ेपषक और योग दर्नश एक परब्रह्म की सत्ता को तो स्वीकार करते े िैं, ककन्तुउसे पवश्व का कताश निीं ंमानतेऔर जैममनी ईश्वर का उल्लेख तो करते िैं, ककन्तु उसे पवधाता एवं ं संसार का नैततक र्ासक माननेसे इनकार करने ेके मलए िी। प्रारत्म्भक बौद्ध दर्नशों को ईश्वर के प्रतत उदासीन माना जाता िै और िमारे यिां ंभौततकवादी चावाकश भी ममलते िैं जो ईश्वर के अत्स्तमव का तनषेध करते िैं, पुरोहितों का उपिास करते िैं, वेदों की भमसनशा करते िैं तथा सांसाररक सुखु में िी मुत्तत की खोज करते िैं।

जीवन में धम शऔर सामात्जक परम्परा की श्रेष्िता दार्तशनक ज्ञान के मुतत अनुसरण में बाधक निीं ं िोती। यि एक अद्भुत पवरोधाभास िै, ककन्तुकफर भी एक प्रकट समय िै, तयोंकक जिां एक ओर ककसी व्यत्तत का सामात्जक जीवन जन्मगत जातत की कहिन रूहढ़ से जकड़ा िुआ िै विांउसे अपना मत त्स्थर करनेमें पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त िै। प्रमयेक व्यत्तत, चािे वि ककसी भी सम्प्रदाय में जन्मा िो, तकश द्वारा उस सम्प्रदाय की समीक्षा कर सकता िै। यिी कारण िै कक भारतभूमम में पवधमी या धम-शभ्रष्ट, संर्यवादी, नात्स्तक, िेतुवादी एवं स्वतन्शत्र पवचारक, भौततकवादी एवं आनन्दवादी- सभी फलते-फूलतेरिे िैं। मिाभारत में किा िै: "ऐसा कोई मुतन निींजो अपनी मभन्न सम्मतत न रखता िो।"

यि सब भारतीय मत्स्तष्क की प्रबल बौद्धधकता का प्रमाण िै जो मानवीय काय-श कलाप के समस्त पक्षों के आभ्यन्तर समय एवं ंतनयम को जानने ेके मलए प्रयमनर्ील िै। यि बौद्धधक प्रेरणा केवल दर्नशर्ास्त्र और ब्रह्मपवद्या तक िी सीममत निीं ंिै, बत्ल्क तकश-र्ास्त्र और व्याकरणर्ास्त्र में, अंलकारर्ास्त्र और भाषापवज्ञान में, आयुपवज्ञशान और ज्जयोततषर्ास्त्र में-वस्तुतः स्थापमयकला से लेकर प्राणणपवज्ञान तक समस्त लमलत कलाओं और पवज्ञानों में व्याप्त िै। इस देर् में प्रमयेक वस्तु जो जीवन के मलए उपयोगी िै अथवा मत्स्तष्क के मलए रुधचकर िै, जांच-पड़ताल एवं समीक्षा का पवषय बन जाती िै। यिांका बौद्धधक जीवन ककतना व्यापक और पूण शरिा िै इसका आभास इस तथ्य से ममल सकता िै कक यिां ंअश्वपालन-पवद्या एवं ंिाधथयों को प्रमर्क्षक्षत करनेकी पवद्या जैसे छोटे-छोटे पवषयों तक के अपने-अपने र्ास्त्र और साहिमय रिे िैं।

वास्तपवक सत्ता के स्वरूप-तनणयश के दार्तशनक प्रयास का समारम्भ या तो पवचारक (प्रमाता) आममा से या पवचार के पवषय (प्रमेय) पदाथों से िो सकता िै। भारत में दर्नश की रुधच मनुष्य की आममा में िै। जब दृत्ष्ट बिार की ओर िोती िै तो तनरन्तर बदलती िुई घटनाओं का प्रवाि ध्यान आकृष्ट कर लेता िै। इसके पवपरीत भारत में 'आममानंपवद्धध', अथात्श ्अपनी आममा को पिचानो, इस एक मसद्धान्त में समस्त धाममकश आदेर् और युगपुरुषों की मर्क्षाएं समापवष्ट िैं। मनुष्य के अपने अन्दर वि आममा िै जो प्रमयेक वस्तु का केन्द्र िै। मनोपवज्ञान और नीततर्ास्त्र आधारभूत पवज्ञान िैं। भौततक मन के जीवन का धचत्रण उसकी समस्त गततर्ील पवपवधताओं तथा उज्जज्जवलता और कामलमा के सूक्ष्म संयोजन के साथ िुआ िै। भारतीय मनोपवज्ञान ने एकाग्रता के मित्त्व को समझा िै और उसे समय के प्रमयक्ष ज्ञान के साधन के रूप में माना िै। उसका पवश्वास रिा िै कक जीवन या मन का ऐसा कोई क्षेत्र निीं ंिै जिां इच्छा-र्त्त एवं ज्ञान के पवधधवत् ्प्रमर्क्षण द्वारा निीं ंपिुंचा जा सकता। उसने मन और र्रीर के घतनष्ठ सम्बन्ध को पिचाना था। आत्ममक या मानमसक अनुभव, यथा मन:पययश और अतीन्न्द्रय दृत्ष्ट आहद, न तो असामान्य और न िी चममकारक समझे जाते िैं। यि पवकृत मन अथवा दैवीय प्रेरणा से उमपन्न र्त्तयां निीं, ं बत्ल्क ऐसी र्त्तयां िैं त्जन्िें मानवीय मानस सावधानीपूवकश अमभतनत्श्चत पररत्स्थततयों में प्रकट कर सकता िै। मनुष्य के मन के तीन रूप िैं-अवचेतन, चेतन व अततचेतन; और 'असामान्य' मानमसक चममकार-त्जन्िें भावोन्माद (परमानन्द या समाधध), प्रततभा, ईश्वरीय प्रेरणा, पवक्षक्षप्तावस्था आहद मभन्न-मभन्न नामों से जाना जाता िै-अततचेतन मन की कक्रयाओं ंके अततररतत और कुछ निीं ंिै। योगदर्नश पवर्ेषकर ऐसे िी अनुभवों से सम्बत्न्धत िै, यद्यपप अन्य दर्नश-प्रणामलयां भी उनका उल्लेख करती िैं और अपनेप्रयोजन के मलए उनका उपयोग भी करती िैं।

मानसपवज्ञान द्वारा प्रस्तुत आधार-सामग्री िी अध्याममपवद्याओं का आधार िै। इस आलोचना को सारिीन निीं ंकिा जा सकता कक पाश्चामय अध्याममपवद्या एक-पक्षीय िै, तयोंकक इसका ध्यान केवल जागररतावस्था तक िी सीममत िै। चेतना की अन्य अवस्थाएं भी िैं त्जन पर जागररतावस्था की भांतत िी पवचार करना आवश्यक िै। भारतीय पवचारधारा जागररतावस्था, स्वप्नावस्था और सुषुत्प्त (स्वप्नरहित तनद्रा) पर ध्यान देती िै। यहद िम केवल जागररतावस्था को िी सब कुछ मान लें तो िमें अध्याममपवद्या की यथाथवशादी, द्वैतपरक तथा बिुमववादी संकल्पनाएं िी प्राप्त िोती िैं। जब िम केवल स्वप्नचेतना का पृथक् रूप से अध्ययन करते िैं तो िमें आममवादी या पवषतयपवज्ञानवादी मसद्धान्तों की िी प्रात्प्त िोती िै। सुषुत्प्त या स्वप्नरहित प्रगाढ़ तनद्रा की अवस्था िमें अमूत शऔर रिस्यपूण शमसद्धान्तों की ओर उन्मुख करती िै। सम्पूण शसमय की प्रात्प्त के मलए चेतना की समस्त अवस्थाओं को ध्यान में रखना आवश्यक िै।

आममपरकता के पवषय में पवर्ेष रुधच रखनेका तामपय शयि निीं ंिै कक भौततक पवज्ञानों के पवषय में भारत ने कुछ निीं ंककया। यहद िम भौततक पवज्ञान के क्षेत्र में प्राप्त की गई सफलताओं की ओर दृत्ष्टपात करें तो िमें मालूम िोगा कक त्स्थतत इससे ठीक पवपरीत िै। प्राचीन भारतीयों ने गणणतपवद्या एवं यन्त्रपवद्या की नींव डाली थी। उन्िोंने ेभूमम का माप ककया, वष शके पवभाग ककए, आकार् के नतर्े ेतैयार ककए, सूय शएवं ंअन्यान्य

ग्रिों के, रामर्- मण्डलीय पररधध के अन्दर घूमने ेके माग शका परररीलन ककया, प्रकृतत की रचना का पवश्लेषण ककया एवं प्राकृततक पक्षक्षयों, पर्ुओं, पे-पौधों और बीजों आहद तक का अध्ययन ककया।4' "ज्जयोततषर्ास्त्र-सम्बन्धी उन पवचारों का, जो संसार में प्रचमलत िैं, आहदस्रोत तया था, इस पवषय में िम चािे जो भी पररणाम तनकालें, यि सवथशा सम्भव िै कक बीजगणणत का आपवष्कार हिन्दुओं ने ककया और उसका प्रयोग ज्जयोततष र्ास्त्र एवं ज्जयाममतत में भी िुआ। अरबवामसयों ने भी बीजगणणतं के पवश्लेषक पवचारों को और उन अमूल्य अंक-सम्बन्धी धचह्नों और दर्मलव के पवचारों को, त्जनका आज यूरोप में सवत्रश प्रचलन िै और त्जनके कारण गणणतपवद्या ने अद्भुत उन्नतत की िै, भारतवामसयों से ग्रिण ककया।"[5] "चांद और सूरज की गततयों का भी हिन्दुओंनेबिुत सूक्ष्म अध्ययन ककया था और यिां ंतक इस पवषय में उन्नतत की थी कक उनके द्वारा तनधारशरत चन्द्रमा की ग्रिों अथवा तारों के समुच्चय-सचेत परररक्रमा का अंकन यूनातनयों द्वारा तनधारशरत गतत से किीं ं अधधक पूण शऔर सिी था। उन्िोंने ेक्रात्न्तवृत्त को 27 एवं ं28 भागों में पवभतत ककया था, त्जसका सुझाव उन्िें चन्द्रमा की दैतनक अवधध से और प्रतीत िोता िै कक स्वयंउनकी अपनी आकृततयों से भी ममला था। भारतीय ज्जयोततषी मुख्य ग्रिों में से जो सबसे अधधक उज्जज्जवल ग्रि िैं उनसे भी पवर्ेषरूप से अमभज्ञ थे। बृिस्पतत का परररक्रमणकाल सूय शएवं ंचन्द्रमा के परररक्रमणकाल के साथ-साथ उनके वष शमें तनयममत िोकर 60 वष शके कालचक्र में उनके और बेबबलन के भपवष्यवतता ज्जयोततपषयों में एक समान िै।"[6] यि अब सवसशम्मत पवषय िै

था कक हिन्दुओं ने बिुत प्राचीन समय में दोनों पवद्याओं ं अथवा पवकास ककया।7 पवल्सन मलखता िै: "धचककमसा पवज्ञान में भी ज्जयोततष और अध्याममपवद्या की भांतत िी एक समय हिन्दू ूलोग संसार के सबसे अधधक प्रबुद्ध राष्रों के साथ-साथ चलते ेथे। और उन्िोंने ेआयुवेद और र्ल्य-धचककमसा में इसी प्रकार पूण शदक्षता प्राप्त की थी जैसी कक उन अन्य देर्ों ने की थी त्जनकी खोज के पररणाम आज िमारे सामने िैं, और वि इससे बिुत पूव शके समय में व्यविार में भी आती थी जबकक आधुतनक खोज करनेवालों ने र्रीर-पवज्ञान का पररचय िमें हदया।'[8] यि समय िै कक उन्िोंनेधचककमसा-सम्बन्धी ब़-ेब़ ेयन्त्रों का आपवष्कार निीं ंककया, इसका कारण यि िै कक दयालु ईश्वर नेइस देर् के तनवामसयों को ब़ी-ब़ी नहदयां और भोजन के मलए प्रचुर मात्रा में अनाज दे रखा था। िमें यि भी स्मरण रखना चाहिए कक ये यांबत्रक आपवष्कार अन्ततः उस सोलिवींर्ताब्दी एवं ंउसके बाद की उपज िैं त्जस समय तक भारत अपनी स्वाधीनता खोकर पराश्रयी बन चुका था। त्जस हदन से इसनेअपनी स्वतन्त्रता खोई और पराये देर्ों से झूिा प्रेम का नाता बांधना

---

4 िम एक ऐसे अंर् का उद्धरण देतेिैं जो कोपतनतशस से कम से कम 2000 वष शपूव शऐतरेय ब्राह्मण में मलखा गया था, "सूय श न तो कभी अस्त िोता िै और न कभी उदय। जब लोग सोचते िैं कक सूय शअस्त िो रिा िै तब वि केवल एक पररवतनश में आता िै; हदन के अन्त में नीचे के हिस्सेमें रात िो जाती िै और दूसूरी ओर हदन िो जाता िै। कफर जब लोग सोचते िैं कक सूय श उहदत िो रिा िै तब वि केवल राबत्र के अन्त में पिुंचकर कफर एक पररवतनश में आ रिा िोता िै, और नीचे के हिस्से में हदन और दूसूरे हिस्से में रात कर देता िै। वस्तुतः वि कभी अस्त निीं िोता।"- िौग कृत संस्करण, 3: 44; छान्दोग्य उप० 3-2 1-3; यहद यि जनश्रुतत िी िै तो भी रोचक िै।

5 मोतनयर पवमलयम्स 'इंडडयन पवज्जडम', 1841

6 कोलब्रुक कृत अनुवाद "भास्कस शवकश आफ ऐल्बेरा', पृ० 22।

7 देणखए, मैतसमूलर - 'संस्कृत मलटरेचर'।

8 'वतस'श, खण्ड 3, पृष्ठ 269।

 प्रारंभ ककया, इसे एक प्रकार के र्ाप ने ग्रस मलया और यि कक्ंकतव्शयपवमूढ़ िो गया। उससे पूव शतक इसमें
गणणतपवद्या, ज्जयोततष, रसायनर्ास्त्र, धचककमसा पवज्ञान, र्ल्यधचककमसा और अन्यान्य भौततक पवज्ञान के उन पवभागों के अलावा जो प्राचीन समय में उपयोग में आते ेथे, कलाओं, दस्तकारी और उद्योगों के मामले में भी अपनापन रखनेकी क्षमता थी। इस देर् के वासी पमथरों को तरार्ना, तस्वीरें बनाना, सोनेपर पामलर् करके उसे चमकाना, और कीमती कप़ ेबुनना जानते थे। उन्िोंने उन सब प्रकार की कलाओं, लमलत एवं औद्योधगक कलाओंका पवकास ककया, त्जनसे सभ्य जीवन की पररत्स्थततयांप्राप्त िोती िैं। उनके जिा़ समुद्र पार करते थे और उनकी धन-सम्पदा अपनेदेर् से बािर भी जूडडया, ममस्र और रोम तक अपना वैभव हदखाती थी। उनके पवचार मनुष्य और समाज, सदाचार एवं ंधम शके पवषय में उस युग के मलए अद्पवतीय मानेजाते थे। यि किना अयुत्ततयुतत िोगा कक भारतीय अपनी कपवताओं और पौराणणक कल्पनाओं में िी मस्त रितेथे ेऔर उन्िोंने पवज्ञान एवं दर्नश को मयाज्जय समझा, यद्यपप यि समय िै कक उनका झुकाव अधधकतर वस्तुओंके एकमव की ओर रिा और वे चालाकी, धूतूतशा अथवा पवघटन पर ोर निीं ंदेते थे।

यहद इस प्रकार का भेद करना अनुधचत न समझा जाय तो िम किंगे कक कल्प- नाममक मत्स्तष्क अधधकतर संश्लेषणपप्रय िोता िै जबकक वैज्ञातनक मत्स्तष्क अधधकतर पवश्लेषणाममक पाया जाता िै। पिले प्रकार के मत्स्तष्क का झुकाव ब्रह्मांड-सम्बन्धी दर्नश की रचना की ओर िोता िै, जो एक व्यापक र्दत्ष्टकोण से सब वस्तुओं के तनकास, युगों के इततिास एवं जगत् ्के पवघटन एवंपवनार् की व्याख्या करता िै। दूसूरे प्रकार का मत्स्तष्क संसार के ज़ एवं ंअंर्व्यापी भागों पर िी केत्न्द्रत रिता िै और इस प्रकार एकमव एवंपूणतशा के पवचार से वंधचत रिता िै। भारतीय पवचारक अत्स्तमव के सम्बन्ध में पवस्तृत और अभौततक पवचारों पर बल देते िैं और इसमलए आलोचक आसानी से भारतीय पवचारकों पर अधधकतर आदर्वशादी, ध्यानमग्न, स्वप्नदर्ी, कल्पनापविारी और संसार में अजनबी िोने ेका दोषारोपण कर सकता िै, जबकक पत्श्चमी पवचारक अधधकतर पवमर्ष्टतावादी एवं ंउपयोधगतावादी िैं। पत्श्चमी पवचारक, त्जन्िें िम इत्न्द्रय कितेिैं उन पर तनभरश करता िै जबकक भारतीय कल्पना के क्षेत्र में आममज्ञान के ऊपर बल देता िै। यिां ंपर एक बार कफर िमें यिी किना िोता िै कक ये भारत की अनुकूल प्राकृततक त्स्थततयां िी िैं त्जनके कारण भारतीयों की प्रवृपृत्त कल्पनापरक रिी, तयोंकक उनके पास संसार की सुन्दर वस्तुओंका आनन्द लेनेके मलए और अपनी आत्ममक संपपत्त को कपवता, किानी, संगीत, नृमृय, कमकशाण्ड और धम शके रूप में प्रकट करने ेके मलए पयाप्शत अवकार् था, तयोंकक बाह्य जगत् ्के प्रलोभन उनका ध्यान बंटानेको निीं ंथे। 'पवचारमग्न पूव'श का नाम जो प्रायः उपिास के रूप में िमारे देर् को हदया जाता िै वि बबलकुल तनराधार निीं ंिै।

यि भारत का संश्लेषणाममक र्दत्ष्टकोण िी िै त्जससे यिांके दार्तशनक ज्ञान के अन्तगतश अनेक पवज्ञान समवेत िैं जोकक आधुतनक समय में अलग-अलग रूप में आ गए िैं। पत्श्चम में पपछले लगभग सौ वष शके समय में ज्ञान की अनेक र्ाखाएं िो गई, जोकक उससे पूव शदर्नशर्ास्त्र, अथर्शास्त्र, राजनीततर्ास्त्र, नीततर्ास्त्र, मनोपवज्ञान एवं ंमर्क्षा-र्ास्त्र आहद एक-एक करके इनसे कट-कटकर पृथृक् िोती चली गईं। प्लेटो के समय में दर्नशर्ास्त्र के अन्दर ये सब पवज्ञान सत्म्ममलत थे ेजो मानव-प्रकृतत से सम्बद्ध िैं और जो मानव-हितों के

अन्तस्तल का तनमाणश करते िैं। इसी प्रकार प्राचीन धमर्शास्त्रों में िमें दार्तशनक क्षेत्र का पूरा सार सत्न्नपवष्ट ममलता िै। उसके पश्चात् ्आधुतनक काल में पत्श्चमी देर्ों में दर्नशर्ास्त्र एक प्रकार से अध्याममपवद्या, अथात्श ् ज्ञान-सम्बन्धी गूढ़ पववादों, सत्ता और उसके मूल्यांकन का पयायशवाची िो गया और यि आपपत्त की जाती िै कक अध्याममपवद्या बबलकुल कल्पनाममक िो गई िै, त्जसका सम्बन्ध मनुष्य-प्रकृतत के कल्पनाममक एवं ं कक्रयाममक दोनों पक्षों से सवथशा पृथक िो गया िै।

यहद िम भारतीय मत्स्तष्क की आममतनष्ठ्रुधच को इसके संश्लेषणाममक र्दत्ष्टकोण के साथ रखकर पवचार करें तो िम इस पररणाम तक पिुंचते िैं कक अद्वैतपरक बाह्य रू्नूयवाद िी वास्तपवक तथ्य िै। वैहदक पवचार का सम्पूण शपवकास इसी की ओर तनदेर् करता िै। इसी पर बौद्ध एवं ब्राह्मण धम शआधश्रत िैं। यि वि परम समय िै त्जसका आपवष्कार भारत में िुआ। यिांतक कक वे दर्नश-पद्धततयां भी, जो अपनेको द्वैतवादी अथवा अनेकवादी घोपषत करती िैं, प्रबल रूप में अद्वैत स्वरूप से आच्छाहदत प्रतीत िोती िैं। यहद िम मभन्न-मभन्न मतों का सारत्तत्त्व तनकालकर सूक्ष्म र्दत्ष्ट से देखें तो प्रतीत िोगा कक सामान्य रूप में भारतीय पवचारधारा की स्वाभापवक प्रवृपृत्त जीवन एवं प्रकृतत की अद्वैतपरक बाह्य रू्न्यवादी व्याख्या की ओर िी िै। यद्यपप यि झुकाव इतना लचीला, सजीव और मभन्न प्रकार का िै कक इसके कई पवपवध रूप िो गए िैं और यिांतक कक यि परस्पर पवरोधी उपदेर्ों के रूप में पररणत िो गया िै। िम यिां ंपर संक्षेप में उन मुख्य मुख्य स्वरूपों की ओर िी तनदेर् करेंगे जो भारतीय पवचारधारा में अद्वैत-सम्बन्धी बाह्य रू्न्यवाद ने अंगीकार ककए, और उनके ब्यौरेवार पवकास एवं समीक्षाममक मूल्यांकन को छो् देंगे। इससे िम भारत में दर्नशर्ास्त्र से तया तामपय शमलया जाता िै इसे एवं इसके स्वरूप और कक्रया को ठीकठीक ग्रिण कर सकेंगे। अपनी कायमशसद्धध के मलए अद्वैतपरक बाह्य रू्नूयवाद के चार पवभाग करना िी पयाप्शत िै; यथा (1) अद्वैतवाद (अथात्् ्मसवाय ब्रह्म के दूसूरी सत्ता नि़ीं)ं, (2) पवर्ुद्धाद्वैत, (3) पवमर्ष्टाद्वैत और (4) अव्यतत (उपलक्षक्षत) अद्वैतवाद ।

दर्नशर्ास्त्र साक्षात् ्अनुभव-सम्बन्धी घटनाओं को लेकर चलता िै। ताककशक आलोचना यि तनश्चय करने ेके मलए आवश्यक िै कक एक पवर्ेषे व्यत्तत द्वारा जानी गई घटनाएं सब व्यत्ततयों को स्वीकार िैं या नि़ीं,ं अथवा केवल अपनेस्वरूप में िी आमम-तनष्ठ िैं। मसद्धान्तों को उसी अवस्था में स्वीकार ककया जा सकता िै जिब वे घटनाओंकी सन्तोषजनक व्याख्या कर सकें। िम पिले कि चुके िैं कक मानमसक एवं चेतना-सम्बन्धी घटनाओंका अध्ययन भारतीय पवचारकों ने उतनी िी सावधानी और एकाग्रता के साथ ककया िै त्जतना कक आधुतनक वैज्ञातनक बाह्य जगत की घटनाओंका अध्ययन करते िैं। अद्वैतपरक बाह्य रू्नूयवाद के पररणाम भी मनोवैज्ञातनक सूक्ष्म अन्वेक्षणों के आधार पर त्स्थत िैं।

आममा की चेष्टाएं तीन अवस्थाओं में, यया जागृतृत, स्वप्न, और सुषुत्प्त में घहटत िोती िैं। स्वप्नावस्थाओं में एक वास्तपवक ठोस जगत् ्िमारे आगे प्रस्तुत ककया जाता िै, िम उसे वास्तपवक जगत् ् इसमलए नि़ींमानते, तयोंकक जागनेपर िमें प्रतीत िोता िै कक स्वप्नावस्था का जगत् ्जागररतावस्था के जगत् ् के अनुकूल नि़ीं, तो भी अपेक्षया स्वप्नावस्था के पवचार से स्वप्न-जगत् ्वास्तपवक िै। यि पवमभन्नता िमारे

जागररत जीवन के मान्य मानदण्ड के कारण ि◌ै न कक एक समय के पवकल्परू्न्य ज्ञान के अपनेकारण, जो ि◌में यि बतलाती ि◌ै कक स्वप्नावस्थाएं जागररतावस्थाओं से कम वास्तपवक ि◌ैं। वस्तुतः जागररत अवस्था की यथाथसशत्ता भी तो स्वयंअपेक्षाकृत ि◌ी ि◌ै। इसकी कोई त्स्थर सत्ता निीं, ◌ं तयोंकक केवल जागररत अवस्था से ि◌ी इनका सम्बन्ध ि◌ै। स्वप्नावस्था में और तनहद्रतावस्था में यि पवलुप्त ि◌ो जाती ि◌ै। जागररत चेतना एवं जागररत अवस्था के जगत् ◌्का वैसा ि◌ी पारस्पररक सम्बन्ध ि◌ै जैसा कक स्वप्नचेतना का और स्वप्न में प्रकट ि◌ुए जगत् ◌् का। ये दोनों परम समय निीं, तयोंकक रं्कर के र्ब्दों में जबकक "स्वप्नावस्था के जगत का प्रततहदन प्रमयाख्यान ि◌ो जाता ि◌ै, जागररतावस्था के जगत् ◌्का भी प्रमयाख्यान पवर्ेष-पवर्ेष पररत्स्थततयों में ि◌ो जाता ि◌ै।" स्वप्नरहित प्रगाढ़ तनद्रा (सुषुत्प्त) में ऐत्न्द्रय चेतना का एकदम अभाव ि◌ो जाता ि◌ै। कई भारतीय पवचारकों का मत ि◌ै कक इस अवस्था में एक प्रकार की उद्देश्य-रहित चेतना रिती ि◌ै। ि◌र ि◌ालत में इतना तो स्पष्ट ि◌ै कक स्वप्न-रहित प्रगाढ़ तनद्रा एकदम अभावाममक निीं ◌ंि◌ै, तयोंकक ऐसी कल्पना का पवरोध स्वयंतनद्रा की सुखमय पवश्राल्न्तपरक भावना-सम्बन्धी परवत्री स्मृतृ से ि◌ो जाता ि◌ै। इस बात को बबना स्वीकार ककए ि◌म निीं ◌ंरि सकतेकक आममा तनरन्तर पवद्यमान रिती ि◌ै, यद्यपप सब प्रकार के अनुभवजन्य ज्ञान से यि उस अवस्था में पवरहित ि◌ोती ि◌ै। जब तनद्रा प्रगाढ़ रिती ि◌ै तब ककसी पदाथ शका बोध निीं ◌ंि◌ोता और न ि◌ो ि◌ी सकता ि◌ै। उस अवस्था में पवर्ुद्ध आममा पवचारों के उन अवमर्ष एवं प्रक्षक्षप्त अंर्ों से सवथशा अछूती ि◌ोती ि◌ै, जो पवर्ेष-पवर्ेष मनोवृपृत्तयों के साथ उदय ि◌ोतेएवं ◌ंपवनष्ट ि◌ोतेरिते◌ैं। "मभन्न एवं ◌ंपररवततशत ि◌ोने ◌ेवाले पदार्थों के बीच जो न मभन्न ि◌ोता ि◌ै, न ि◌ी पररवततशत ि◌ोता ि◌ै, यि अवश्य उन पदार्थों से पृथक् ि◌ै।"[9] आममा, जो तनरन्तर अपररणामी रूप में पवद्यमान रिती ि◌ै और समस्त पररवतनशों के बीच एक समान ि◌ै, उन सबसे पृथक् ि◌ै। अवस्थाएं बदलती ि◌ैं, आममा में पररवतनश निीं ◌ंि◌ोता। "समस्त अन्तरहित मासों, वर्षों और छोटे एवं ब्र ◌ेयुगों में, भूतकाल एवं भपवष्य में यि स्वतः ज्जयोततष्मान चेतना ि◌ी एक सत्ता ि◌ै जो न कभी उदय ि◌ोती ि◌ै और न ि◌ी अस्त ि◌ोती ि◌ै।"[10] जिां ◌ंदेर् और काल अपनेसमस्त पवषयों के साथ पवलुप्त ि◌ो जाते ि◌ैं विांएक प्रततबन्धरहित यथाथ श सत्ता ि◌ी वास्तपवक भामसत ि◌ोती ि◌ै। यि आममा ि◌ी ि◌ै जो स्वयंतनमलप्शत रिकर जागृतृत, स्वप्न और सुषुत्प्त की अवस्थाओं की पररवतनशर्ील मनोवृपृत्तयों से प्रभापवत पवचारों के नाटक की एकमात्र साक्षी एवं दर्कश के रूप में बराबर पवद्यमान रिती ि◌ै। ि◌में पवश्वास ि◌ै कक ि◌मारे अन्दर ऐसी एक सत्ता ि◌ै जो सुख-दुःख, गुण-अवगुण और पुण्य-पाप से परे ि◌ै। "आममा न कभी मरती ि◌ै न जन्म लेती ि◌ै-अजन्मा, तनमय, र्ाश्वत और पुरातन यि र्रीर के नार् के साथ कभी नष्ट निीं ि◌ोती। यहद मारनेवाला समझता ि◌ै कक वि इस आममा को मार सकता ि◌ै अथवा मृतृ मनुष्य यि समझता ि◌ै कक वि मारा गया तो वे ◌ेदोनों समय से अनमभज्ञ ि◌ैं, तयोंकक यि न तो मारती ि◌ै न मर सकती ि◌ै।"[11]

सदा एकरस रिने ◌ेवाली आममा के अततररतत ि◌मारे आगे इत्न्द्रयानुभूतत के पवपवध पदाथ शि◌ैं। जीवाममा तनमय एवं स्थायी ि◌ै, अपवभाज्जय एवं ◌ंअच्छेद्य ि◌ै जबकक बाह्य पदाथ शअतनमय और सदा पररवतनशर्ील ि◌ैं।

---

9 येषुव्यावतमशानेषुयदनुवततेश तद्भेतेभ्यो मभन्नम्" ◌् (भामती)।

10 पंचदर्ी, 1: 7 1

11 कठोपतनषद्, 2/18 - 19 भगवद्गीता, 2/19 - 20I

 जीवाममा परम समय िै , तयोंकक सब पदाथों से स्वतन्त्र एवं पृथक् िै ककन्तुपदाथ शमनोवृपृत्तयों के साथ पररवतततश
िोतेरिते िैं।

मि संसार की व्याख्या कैसे करें? पवपवध प्रकार के इत्न्द्रयानुभव देर्, काल और कारण से बद्ध िमारे सामने िैं। यहद आममा एक िै, व्यापक िै, अटल तनपवकशार एवं तनपवकशल्प िै, तो िमें जगत् ्में परस्पर पवरोधी स्वरूपों का पवस्तृत समूि भी ममलता िै। िम इसे केवल अनामम और प्रमाता के अततररतत प्रमेय पदाथों का समूि िी कि सकतेिैं। ककसी भी अवस्था में यि यथाथ शनिीं ंिै। जगत् ्की मुख्य मुख्य श्रेणणयां-काल, देर्, और कारण सब आममपवरोधी िैं। ये अपनेतनमाशणकत्ताश अवयवों के ऊपर आधश्रत अन्योन्याधश्रत पररभाषाएं िैं। इनकी यथाथ शसत्ता निीं ंिै। ककन्तु ये असत् ्भी निीं ंिैं। जगत् ्पवद्यमान िै, िम इसके अन्दर और इसके द्वारा सब काम करते िैं। िम इस जगत् ्के अत्स्तमव के कारण और प्रयोजन, अथाथ्श ्'कैसे' और 'तयों', को निीं ंजान सकते। 'माया' र्ब्द से तामपय शजगत् ्की इस अज्ञेयता से िी िै। यि प्रश्न कक परम-आममा का इत्न्द्रयानुभूतत के तनरन्तर प्रवाि के साथ तया सम्बन्ध िै और यि तयों और कैसे िोता िै, तथा यि प्रश्न कक दो वस्तुएं सत् ्िैं, इन सबका तामपय श्िै कक िम यि धारणा कर लेते िैं कक िर पवषय में तयों और कैसे का प्रश्न उिता िै। इस मत के आधार पर यि किना कक अनन्त ने सान्त का रूप धारण कर मलया िै अथवा अनन्त ब्रह्म अपने को मूतरूशप में प्रकट करता ि,ै सवथशा बेकार की बात िै। अनन्त की अमभव्यत्तत कभी सास्त द्वारा निीं ंिो सकती, तयोंकक त्जस क्षण भी अनन्त सान्त के द्वारा अमभव्यत्तत प्रवृतूत िोगा, स्वयंउसकी अनन्तता नष्ट िो जाएगी और वि सान्त िो जाएगा। यि किना कक इत्न्द्रयातीत परम सत्ता में िास और पतन िोनेके कारण वि इत्न्द्रयानुभूतत का पवषय िो जाती िै, अपने आपमें उसके परममव का पवरोधी िो जाएगा। पूण शसत्ता में िास निीं ंिो सकता। पूण शप्रकार् के अन्दर अन्धकार का तनवास निीं ंिो सकता। िम यि स्वीकार निीं ंकर सकतेकक परब्रह्म, जो पररवतनश से परे िै, पररवतततश िोकर सान्त (मूतरूशप) िो सकता िै। पररवतनश का तामपय श्िै अमभलाषा अथवा ककसी वस्तु का अभाव अनुभव करना और यि पूणतशा के अभाव का द्योतक िै। परब्रह्म कभी इत्न्द्रयज्ञान का पवषय निीं िो सकता, तयोंकक जो जाना जाता िै वि सान्त और सापेक्ष िोता िै। िमारा सान्त मन काल, देर् और कारण की पररधध से परे निीं ंजा सकता और न िम इनकी व्याख्या िी कर सकतेिैं, तयोंकक व्याख्या करने के प्रयमन का िी तामपय श िोगा कक िम इन्िेंअंगीकार कर लेते िैं। पवचार के द्वारा, जोकक स्वयं सापेक्ष जगत् ्का एक भाग िै, िम परम ब्रह्म को निीं ंजान सकते। िमारा सापेक्ष ज्ञान जागररत अवस्था का एक प्रकार का स्वप्न-मात्र िै। पवज्ञान और तकश इसके अंर् भी िैं और इनके काय शभी। अध्याममपवद्या की सफलता के ऊपर न तो खेद प्रकट करना चाहिए और न िी उसका उपिास करना चाहिए, न प्रर्ंसा िी करनी चाहिए और न दोष िी देना चाहिए; बत्ल्क उस पर गम्भीरतापूवकश पवचार करना चाहिए। बौद्धधक क्षमता से उमपन्न स्वाभापवक नम्रता के साथ प्लेटो अथवा नागाजुनश, कांट अथवा र्ंकर घोषणा करते िैं कक िमारी बुद्धध केवल सापेक्ष का पवचार करती िै और तनरपेक्ष परब्रह्म इसकी पिुंच से बािर िै।

यद्यपप परम सत्ता का ज्ञान तकशर्ास्त्र की पवधध से निीं ंिो सकता तो भी वे सब जो समय को जानने ्के मलए प्रयमनर्ील िैं, उस सत्ता का अनुभव करके जान जाते िैं कक उसी सत्ता के अन्दर िम सब जीवन बबताते िैं व

समस्त कम शकरते िैं और उसी सत्ता से िम संत्ता धारण ककए िुए िैं। केवल इसके द्वारा अन्य सब कुछ जाना जा सकता िै। यि समस्त ज्ञान का तनमय साक्षी स्वरूप िै। अद्वैतवादी तकश करता िै कक उसका मसद्धान्त समय घटनाओंके तकश पर आधश्रत िै। आममा अमयन्त आभ्यन्तर और गिनतम सत्ता िै त्जसे सब अनुभव करते िैं, तयोंकक यि ज्ञान एवं ंअज्ञात पदाथों की भी आममा िै और उसे जाननेवाला उसके स्वयं के अततररतत और कोई निीं ंिै। यि समय िै और तनमय िै और इसके अततररतत और कुछ निीं ंिै। इत्न्द्रयानुभूततजन्य ज्ञान के श्रे्रेणी-पवभाजन के पवषय में अद्वैतवादी का किना िै कक वे वि िैं ककन्तु विी उनका अन्त भी िै। िम तयों का जवाब जानते भी निीं ंऔर जान सकतेभी निीं। यि सब एक प्रकार की प्रततकूलता िै, ककन्तुि वास्तपवक। अद्वैतवाद की उतत दार्तशनक त्स्थतत गौप़ाद और र्ंकर ने अंगीकार की िै।

ऐसे भी वेदान्ती िैं. जो इस मत से सन्तुष्ट निीं ंिै और अनुभव करते िैं कक अपनी उलझन को माया के नाम से ढकना उधचत निीं ंिै। वे उस पूण शसत्ता के जो सब प्रकार के तनषेधाममक अभाव से रहित िै, स्वयं तनपवकशार एवंयथाथ शिै, और त्जसका अनुभव ज्ञान की गिराइयों में िोता िै-तथा इस पररवतनशर्ील, एवं सृजूजयमान जगत् ्के बीच के सम्बन्ध की अधधक तनश्चयाममक व्याख्या करते िैं। उस एकमात्र सत्ता की पूणतशा की रक्षा के मलए िमें बाध्य िोकर किना प़ता िै कक यि सृतूष्ट बिार से ककसी अवयव के जुने़ से तनममतश निीं ुइिै, तयोंकक इसके बिार अथवा इसके अततररतत कोई वस्तु िै िी निीं। यि केवल एक िास के कारण िी सम्भव िै। इस सृतूष्ट-रूपी पररवतनश के मलए प्लेटो के असत् ्अथवा अरस्तू ूकी प्रकृतत जैसे ककसी अभावाममक तत्त्व की कल्पना कर ली जाती िै। इस अभावाममक तत्त्व की कक्रया के द्वारा कक्रयार्ील अनेक के मध्य में तनपवकशार सत्ता का पवस्तार िो गया आभामसत िोता िै, जैसे सूय शके अन्दर ककरणें आती िैं ककन्तुसूय शउन्र्ें धारण

निीं ंकरता। माया नाम उसी अभावाममक तत्त्व का िै जो सवव्शयापक सत्ता को उच्छृंखल कर देता िै, त्जससे अनन्त उते्तेजना और तनरन्तर रिनेवाली अर्ात्न्त का जन्म िोता िै। पवश्व का प्रवाि उसी तनपवकशार की प्रतीयमान अवनतत के कारण सम्भव िोता िै। सृतूष्ट में जो कुछ भावनाममक गुण िै वि सब उसी यथाथ शसत्ता के कारण िै। जगत् ्के पदाथ शअपनी वास्तपवक सत्ता को पुनः प्राप्त करने, अपनेअन्दर के अभाव को पूरा करने ेएवं अपनेअपतमव को उतार फेंकने ेके मलए सवदशा सचेष्ट शकरते िैं, ककन्तुउनके इस प्रयमन में उनका आन्तररक जो वि ैं और जो उन्र्ें िोना चाहिए। यहद िम माया से छुटकारा पा सकें, द्वैत की प्रवृपृत्त को दबा सकें, उस अन्दर को नष्ट कर सकें, उस न्यूनता को भर सकें और बाधाओं को मर्धथल कर सकें, तो देर्, काल और पररवतनश पवर्ुद्ुध सत्ता में वापस पिुंच जाते िैं। जब तक मूलभूत माया की कमी पवद्यमान रिती िै, पदाथ शभी एक दूषूण के रूप में देर्, काल एवं कारणरूप जगत् ्में वतमशान रिेंगे। माया को मानव ने निीं ंबनाया। यि िमारी बुद्धध से पूव श पवद्यमान थी और उससे स्वतन्त्र भी िै। यथाथ शमें यि वस्तुओंकी, एवं ंबुद्धधयों की भी, उमपादक िै एवं ंसारे संसार में अमयधधक क्षमता रखती िै। इसे कभी-कभी प्रकृतत भी किा जाता िै। उमपपत्त और पवनार् का बारी-बारी से िोना और तनरन्तर दुिराए जानेवाले पवश्व के पवकासचतन इस मौमलक न्यूनता को दर्ातेशिैं त्जसके कारण संसार का अत्स्तमव िै। सृतूष्ट की रचना सत्ता का अवरोध-मात्र िै। माया यथाथ शसत्ता की प्रततच्छाया-मात्र िै। संसार की गतत तनपवकशार सत्ता का रूपान्तर न िोकर एक प्रकार से उसका पवपयासश िै। तो भी मायामय जगत् ्

पवरुदु्ध सत्ता से पृथक् पवद्यमान निीं ◌ंरि सकता। अगर तनपवकशाररता न िो तो कोई गतत भी निीं ◌ंिो सकती, तयोंकक गतत तनपवकशार की केवल एक प्रकार की अवनतत िी िै। अचल सत्ता िी व्यापक गतत का समय िै।

त्जस प्रकार सृतूष्ट सत्ता के िास का नाम िै, इसी प्रकार अपवद्या अथवा अज्ञान पवद्या अथवा ज्ञान की अवनतत का नाम िै। समयज्ञान के मलए एवंयथाथतशा का साक्षामकार करने ◌ेके मलए िमें अपवद्या एवं उससे उमपन्न आवरणों से भी छुटकारा पाना िोगा, और जैसे िी िम उनके अन्दर यथाथतशा को बलपूवकश प्रपवष्ट करेंगे, सभी स्वतः िी तछन्न-मभन्न िोकर टूट जाएंगे। पवचार की मन्दता के मलए यि कोई बिाना निीं ◌ंिै। इस मत के अनुसार दर्नशर्ास्त्र तकश के रूप में िमें प्ेरेरणा प्रदान करता िै कक िम बौद्धधक धारणाओं का उपयोग करना छो् दें, तयोंकक वे िमारी कक्रयाममक आवश्यकताओंकी सापेक्ष िैं और इस भौततक सृतूष्ट से सम्बद्ध िैं। दर्नशर्ास्त्र मिें बतलाता िै कक जब तक िम बुद्धध के अधीन रिेंगे और इस अनेकमवपूण शजगत् ्में खोए रिेंगे, तब तक उस पवरुदु्ध सत्ता के समीप वापस पिुंचने ◌ेके मलए िमारी सारी खोज असफल रिेगी। यहद िम कारण का पता लगाने के मलए पूछें कक यि अपवद्या अथवा माया तयों िै, जो िमें पवद्या (ज्ञान) एवं ◌ंपवरुदु्ध सत्ता से दूरू घसीटती िै, तो इस प्रश्न का उत्तर निीं ◌ंममल सकता। इस स्थान पर दर्नशर्ास्त्र के पास तकश के रूप में यि तनषेधाममक काय शरि जाता िै कक वि बौद्धधक वग शकी अपयाप्शतता को प्रकट में स्वीकार करके तनदेर् करे कक ककस प्रकार संसार के पदाथ शमन की वृपृत्त के ऊपर तनभरश करते िैं जो उनका पवचार करता िै, ककन्तु त्जसकी स्वतन्त्र सत्ता निीं ◌ंिै। यि मिें उस तनपवकशार सत्ता के. पवषय में कुछ तनत्श्चत ज्ञान निीं ◌ंदे सकता त्जसके पवषय में किा जाता िै कक उसकी पृथक् सत्ता िै। जो कुछ संसार में िो रिा िै उसके माध्यम से वि न तो उस माया के पवषय में िी कुछ तनत्श्चत ज्ञान दे सकता िै त्जसके कारण संसार की उमपपत्त िुई। यि प्रमयक्ष रूप से उस पवरुदु्ध यथाथ शसत्ता की प्राप्त में मिें सिायता निीं ◌ंदे सकता। इसके पवपरीत यि िमें बतलाता िै कक यथाथ शसत्ता का सिी-सिी माप करने ◌ेके मलए मिें ममथ्या कथन करना पगे़ा। सम्भवतः एक बार तनत्श्चत ज्ञान प्राप्त िो जानेसे समय के हित में इसका उपयोग िो सकेगा। िम इस पर पवचार कर सकतिें, तकश द्वारा इसकी रक्षा भी कर सकतिें और इसका प्रचार करने ◌ेमें सिायक भी बन सकते िैं। पवरुदु्धाद्वैत के समथकश अमूत शबुद्धध से भी ऊंची एक त्तत को मानतिें, त्जससे िम यथाथतशा की प्ेरेरणा को अनुभव करने ◌ेके योग्य िोतिें। िमें व्यापक चेतना में अपने-आपको पवलीन करना िोगा और उसी के समान व्यापक िोने के योग्य बनना िोगा। उस समय िमें उस सत्ता के पवषय में सोचने की अपेक्षा अपनेको उसके समान बनानेका प्रयमन करना िै, उसके ज्ञान के भाव की अपेक्षा वैसा बन जाना िै। इस प्रकार का तनतान्त अद्वैतवाद तकश, अन्तर्दत्शष्ट, यथाथ शसत्ता और व्यवत्स्थत जगत् ्के भेद के साथ िमें कततपय उपतनषदों में, नागाजुनश और र्ंकर के अततदार्तशनक मनोभावों में, श्रीिष शऔर अन्यान्य अद्वैत वेदात्न्तयों में ममलता िै और इसकी प्रततध्वतन परमेतनड्स और प्लेटो, त्स्पनोा़ एवंप्लॉहटनस, ब्ेरेडले और वगसशांमें भी सुनाई पती् िै-पत्श्चम के रिस्यवाहदयों में तो ममलती िी िै।'[12]

---

12 सांख्यदर्नश में िमें लगभग िीक इसी प्रकार की आनुभपवक जगत् ्की व्याख्या ममलती िै, त्जससे ◌ेकेवल तनगुणश साक्षी ब्रह्म में ककसी प्रकार का दोष निीं आता। केवल अनेकाममवाद का पक्षपात, त्जसका आधार तकशसंगत निीं िै, अपने-आपको बलपूवकश उपत्स्थत करता िै; और िमारे आगे जीवाममाओंकी अनेकता एक समस्या के रूप में िै। जब अनेकाममपक्ष सवथशा

अन्तर्दत्शष्ट के पवचार में यथाथ शसत्ता पवरुद्ुध एवं सिज अथवा जैसी भी िो, बुद्धध के पवचार में तो यि एक न्यूनाधधक परम अमूतरूशप सत्ता िै। त्जस समय प्रमयेक घटना व आकृतत का पवलोप िो जाता िै, तब भी इसका तनरन्तर अत्स्तमव अक्षुण्ण रिता िै। जबकक समस्त जगत् ्अमूतरूशप में पररणत िो जाता िै तब भी यि सत्ता अवमर्ष्ट रिती िै। यहद मनुष्य समुद्र, पृथ्वी, सूय शऔर नक्षत्रों, देर् और काल, मनुष्य एवं ंईश्वर आहद के पवषय में पवचार करना बन्द कर दे तो यि मानमसक पवचार के ऊपर एक जबरदस्त प्रततबन्ध िोगा, ककन्तु जब समस्त पवश्व के अभाव के धचन्तन का प्रयमन ककया जाता िै और सब प्रकार की सत्ता को भी ममथ्या समझ मलया जाता िै तब मनुष्य के पास और तया कुछ बाकी बचता िै? पवचार के मलए, जो सीममत और सापेक्ष िै, यि एक अमयन्त तनरार्ा का पवषय िै कक जब प्रमयेक सत्तावान पदाथ शका लोप िो जाता िै तब उसके मलए कोई पवषय र्ेष निीं ंरि जाता। धारणामक मन के मलए अन्तर्दत्शष्ट द्वारा मुख्य साध्य पवषय 'केवल ब्रह्म िी सत् ्िै' का तामपय श स्पष्ट िै, अथाशत् ्उनके अततररतत अन्य कुछ भी निीं ंिै। पवचार, जैसा कक िेगल ने किा िै, केवल सपवकन्य सत्ताओं एवं िोस पदाथों के सम्बन्ध में िी काय शकर सकता िै। इसके मलए प्रमयेक स्वीकृतत से तनषेध का संकेत ममलता िै और प्रमयेक तनषेध से स्वीकृतत का। िर एक िोस वस्तु रधचत िै त्जसमें सत् ्और असत्,् वास्तपवक और अभावामक एक साथ जु िुए िैं। इस प्रकार वे पवचारक त्जन्िें अन्तर्दत्शष्ट द्वारा मसद्ध सत्ता से सन्तोष निीं ममलता और जो ऐसे संश्लेषण की अमभलाषा रखते िैं त्जसकी उपलत्ब्ध पवचार द्वारा िो सके-तयोंकक इसकी स्वाभापवक प्रेरणा िोस पदाथ शके प्रतत िोती िै-पवषयाधश्रत प्रमययवाद की ओर आकृष्ट िोते िैं। ऐसे अखंड प्रमययवादी पवचारक पवरुद्ुध सत्ता एवं ंप्रतीयमान सृत्ष्ट के दोनों प्रमययों को एक साथ जोड़कर ईश्वर के अत्स्तमव-रूपी एकत्र संक्षेपण को उपत्स्थत करते िैं। घोर अद्वैतवादी भी यि स्वीकार करते िैं कक सृत्ष्ट-रचना एक पवरुद्ुध यथाथ शसत्ता के ऊपर तनभरश करती िै, यद्यपप इसके पवपरीत कक सृत्ष्ट के कारण उसके कताश-रूपी

यथाथ शसत्ता की मसद्धध िोती िै। अब िमारे सामने एक प्रकार का पवश्लेपषत परम ब्रह्म िै-अथाशत्,् ऐसा ईश्वर त्जसके अपने अन्दर सम्भापवत सृत्ष्ट की रूपरेखा िै और जो अपने स्वरूप में कुल सत्ता के सारतत्त्व एवं सृत्ष्ट के भी तत्त्व को संयुतत रूप में, एवं एकता और अनेकता को अनन्तता और सान्तता को भी सत्म्ममलत रूप में संजोए िुए िै। पवरुद्ुध सत्ता अब प्रमाता का रूप धारण कर लेती िै, उसी समय अपनेको पवषय-रूप में भी पररणत करती िुई पवषय को अपनेअन्दर धारण कर लेती िै। प्रमेय, पवपक्षता और संकलन, िेगल की पररभाषा के अनुसार तनरन्तर चक्रगतत से चलते रिते िैं। िेगल ने ठीक िी किा िै कक िोस जगत् ्की अवस्थाएं प्रमाता भी िैं और प्रमेय भी िैं। ये दोनों प्रततपक्ष प्रमयेक िोस में एकत्र और सत्म्मधश्रत िैं। मिान ईश्वर स्वयंअपनेअन्दर दो परस्पर पवपरीत स्वरूपों को धारण करता िै जिां ंकक एक दूसूरे के द्वारा निीं,ं ककन्तु वस्तुतः दूसूरा (पवमभन्न) िी िै। जब इस प्रकार का सकक्रय ईश्वर सदा के मलए पररवतनशरील चक्र में बंधा िुआ वणणतश ककया जाता िै तब सत्ता की सब श्रेणणयां देवी पूणतशा से लेकर तनकृष्ट धूमलपयन्शत स्वतः िी सामने आ जाती िैं। ईश्वर की स्वीकृतत के साथ-साथ सत्ता और अभाव के मध्य की सब श्रेणणयां भी स्वतः स्वीकृतत में आ जाती िैं। िमारे सामने अब एक पवचारमय पवश्व िै, त्जसकी रचना पवचारत्तत से िुई, जो पवचारश्रृंखला के अनुकूल िै और

धगरजाता िै त्जसकातकशके प्रारम्भमें िी धगर जानाअवश्यम्भावीतबसांख्यकेमसद्धान्तकीपवरुद्धवेदांतके मसद्धान्त के साथ एकरूपता स्वयं ंप्रकट िो जाती िै।

 पवचारर्त्त द्वारा िी त्स्थत िै, त्जसकी अवस्थाएं ज्ञाता और ज्ञेय िैं। देर्, काल और कारण

प्रमातृतृनष्

आकृततयांनिीं िैं अपपतु पवचार-बुद्धध के व्यापक तत्त्व िैं। यहद पवरुद्ध अद्वैत के आधार पर िम अभेद और भेद के परस्पर सम्बन्ध को निींसमझ सकते तो यिां ंिम उससे उत्तम आधार पर िैं। एक िी तादामम्यरूप संसार मभन्न-मभन्न टुकों में बंटा िुआ हदखाई पड़ता िै। इनमें से कोई भी दूसूरे से जुदा निीं ंिै। ईश्वर आन्तररक मभपत्त ैं, जो तादामम्य का आधार िै। जगत् ्उसकी बाह्य अमभव्यत्तत िै, त्जसे आममचेतना का बाह्यीकरण नाम हदया जा सकता िै।

पवरुद्ध अद्वैत के मत में इस प्रकार का ईश्वर परम ब्रह्म का िासरूप िै, इसे केवल सूक्ष्मतम भेद से उस परम ब्रह्म से पृथृक् समझा जाता िै। यि भेद अपवद्याकृत िै जो पवद्या से अमयन्त सूक्ष्म, धचन्तन-योग्य दूरूी के कारण पृथृक् िै। दूसूरे र्ब्दों में, 'यि ईश्वर िमारी उच्चतम बुद्धध का उच्चतम प्रस्तुत पदाथ शिै।' दु:ख का पवषय यि िै कक अन्ततोगमवा यि िै एक पदाथ शिै और िमारी बुद्धध भी, चािे त्जतना िी पवद्या के समीप पिुंचती िो, पवद्या- (ज्ञान) रूप निीं ंिै। यि ईश्वर अपने में अधधक से अधधक सद्भाव और कम से कम त्रुहट धारण ककए िुए िै, जो िै त्रुहट (न्यूनता) िी। माया का पिला िी सम्पकश, जो न्यून से न्यून परमाथसशत्ता का िासि िै,
इसे देर् और काल के बन्धन में डालनेके मलए पयाप्शत िै; यद्यपप यि देर् और यि काल सम्भव रूप में अधधक से अधधक पवस्ताराभाव एवं ंतनमयता के समीप िोगा। परमाथसशत्ता सृतूष्टकता शईश्वर के रूप में पररवततश िो गई,
जो ककसी देर् में अवत्स्थत िै, अपनेस्थान के बबना हिले-डुले अन्दर िी अन्दर सब पदाथों को गतत दे रिा िै। परमाथसशत्ता िी पदाथ शके रूप में ईश्वर िै, किीं ंकुछ िै, एक आममा िै जो सब पदाथों में अत्स्तमव को धकेलती िै।
वि सत्–्असत् ्िै, ब्रह्म-माया िै, प्रमाता-प्रमेय और तनमयर्त्त िै, अरस्तु के र्ब्दों में स्वयंअचल ककन्तु सबको गतत देनेवाला, िेगल का परम ब्रह्म, रामानुज का परम (ककन्तुसापेक्ष) पवमर्ष्ट अद्वैत िै-वि सवर्शत्ततमान एवं ंपवश्व का अत्न्तम कारण िै। सृतूष्ट का आहद निीं ंएवं ंअन्त भी निीं ंिै, तयोंकक ईश्वर के र्ततसम्पन्न िोने ेका कभी आरम्भ या कभी अन्त निीं ंिो सकता। सदा कमर्शील िोना इसका अननवायर् स्वरूप ैं।
इसमें सन्दे ि निीं ेकक यि ऊंचेसे ऊंचा पवचार िै, त्जसे बुद्धध सोच सकती िै। यहद िम अपनी बुद्धध की प्राकृततक गतत का, जो सांसाररक पदाथों में एकमव स्थापपत करनेका प्रयमन करती िै और परस्पर पवरोधी र्ततयों में भी संश्लेषण उमपन्न करती िै, अन्त तक अनुसरण करें तो िमें एक ऐसा व्याख्या-मसद्धान्त ममलता िै, जो न तो पवरुद्ध सत् ्िै न पवरुद्ध असत् ्िी, ककन्तु एक ऐसा पदाथ शिै जो दोनों को जोड़ता िै। सब वस्तुओंको एक सम्पूण शमें संकमलत करने ेके द्वारा उतत पवचार का तनमाणश िुआ िै। इस र्दत्ष्टकोण से दर्नशर्ास्त्र का स्वरूप रचनाममक प्रतीत िोता िै, और इसमलए वि स्वभाव से तनश्चयाममक और अपनेकाय शमें संश्लेषणाममक िै। यिां ंपर ताककशक पवचार, त्जनका कायक्षेशत्र अमूत शभावों में िी िै, िमें िोस से परे रखते िैं जबकक अमूत शउन्िीं ंिोस पदाथों में तनवास करते िैं, गतत करते िैं और अपना अत्स्तमव रखते िैं। पवचार-बुद्धध युत्तत के रूप में ताककशक पवचार की कहिनाइयों से ऊपर उि जाती िै। संसार के इत्न्द्रयानुभवों से चलकर िम ऊपर परम तत्त्व ब्रह्म तक पिुंच जाते िैं और इस प्रकार प्राप्त िुए पूण शके पवचार से िम नीचेब्यौरे तक उत्तरकर

मभन्न-मभन्न अवयवों का ज्ञान करते िैं। समस्त तकशर्ास्त्र-सम्बन्धी रूहढ़वाद, त्जसे पवचार की र्त्तत के ऊपर भरोसा िै, जगत् ्के इस प्रमयय के साथ समाप्त िो जाता िै। कहिनाई तब उमपन्न िोती िै जब िम पवचार-बुद्धध
की परमता में सन्दिे प्रकट करते िैं। तया िमारा ज्ञान मानमसक आवश्यकताओंकी अपेक्षा निीं ंरखता, जो संयुतत भी करता िै और भेद भी करता िै? सम्भवतः एक मभन्न आकृतत के मन के मलए ज्ञान भी जो प्रतीत िोता िै उससे मभन्न प्रकार का िो। िमारा वतमशान ज्ञान िमें यि सोचनेके मलए बाध्य करता िै कक समस्त ज्ञान इसी प्रकार का िोगा, परन्तु जब ऐसे समीक्षक िैं जो ऐसे कथन का पवरोध करते िैं तब त्स्थतत की रक्षा करना कहिन िोता िै। यि स्वीकार करते िुए कक यथाथ शसत्ता की धारणामयी योजना जो पवचार में आई िै वि समय िै तो भी कई बार इस बात पर बल हदया जाता िै कक पवचार यथाथ शसत्ता के साथ तादामम्य निींरखता। समस्त प्रमययों को एकत्र करके एक बना देनेपर भी िम प्रमययों के आगे निीं ंबढ़ने पाते। सम्बन्ध मन का एक अंर् िै जो सम्बन्ध स्थापपत करता िै। अनन्तरूपी परम मन भी एक मन िी िै और उसी ढांचे का िै, त्जस ढांचे का मानवीय मन िै। पवमर्ष्टाद्वैत का मसद्धान्त कुछ उपतनषदों और भगवद्गीता ने तथा बौद्धमत एवं रामानुज मत के कुछ अनुयातययों ने स्वीकार ककया िै ककन्तु बादरायण ने निीं ंककया। पत्श्चम में अरस्तू और िेगल इसके समथकशों में माने ेजा सकतेिैं।

प्रथम मत के अनुसार पूण शसत्ता िी यथाथ शिै। अयथाथ शसृत्ष्ट वास्तपवक िै यद्यपप िम निीं ंजानते कक तयों िै। दूसूरे मत के अनुसार दृश्यमान सृत्ष्ट, देर् और काल के सम्बन्ध से त्जसका कारण पवरुद्ुध आममा का मायाजन्म िास िै, आभास-मात्र िै। और तीसरे मत के अनुसार उच्चतम पदाथ शजो िमारे सामने िै, पवरुद्ुध सत्ता और असत् ्का ईश्वर के अन्दर संश्लेषण िै। िमें तुरन्त एक ताककशक आवश्यकता के कारण यथाथ शसत्ता की तनपवकशल्प ज्ञान की सब श्रेणणयों को अंगीकार करना पड़ता िै। जिांतक कक ज्ञान-पवषयक जगत् ्का सम्बन्ध िै, यहद पवरुद्ुध सत्ता के प्रमयय को तनरथकश किकर अस्वीकार कर हदया जाए और िम एक कताश के रूप में ईश्वर के पवचार को भी अतकश-संगत किकर मयाग दें, तब जो र्ेष रि जाता िै वि इससे अधधक और कुछ निींकक सृत्ष्ट का यि प्रवाि ऐसा िै जो सवथशा अपनेसे मभन्न कुछ बननेके मलए उच्च अमभलाषा रखता रिता िै। पररणाम में बौद्धमत का िी मुख्य मसद्धान्त आ जाता िै। पवद्यमान जगत् ्में पवमर्ष्टाद्वैत की कल्पना के आधार पर तनपवकशल्प सत्ता की श्रेणणयों के पवर्ेष स्वरूपों का माप उनको अखण्ड सत्ता से पृथक् करने ेवाले अन्तरों से िी ककया जा सकता िै। उन सबमें सामान्य व्यापक स्वरूप िैं देर् और काल-सम्बन्धी सत्ताएं। अधधक गम्भीरता से ध्यान देने पर िमें पवर्ेष गुणों का स्वरूप स्पष्ट िो सकता िै। धचन्तनर्ील यथाथ शसत्ताओं और ज़ पदाथों में भेद स्वीकार कर लेनेपर िम माध्वाचाय शके द्वैतदर्नश पर पिुंच जाते िैं। यहद िम समपदाथों को ईश्वर के अधीन परतन्त्र मानतें िैं, तयोंकक ईश्वर िी एकमात्र स्वतन्त्र िै, तो मौमलक रूप में यि भी एक अद्वैत िी िै। यहद पवचारर्ील प्राणणयों पर बल दें तो िमारे सामने ेसांख्य का अनेकाममवाद आ जाता िै, केवल ईश्वर की सत्ता का प्रश्न न उिाएं त्जसकी सांख्य के अपने र्ब्दों में मसद्धध निींिो सकती । इसके साथ सांसाररक पदाथों के बिुमव को जोड़ हदया जाए तो िमारे सामने अनेकमवयुतत यथाथ शसत्ता आ जाती िै जिांकक ईश्वर भी एक सत्ता के रूप में प्रकट िोता िै, भले िी वि अन्य पदाथों के मध्य में ककतना िी मिान और र्त्ततर्ाली तयों न िो। यथाथ शसत्ता की तनपवकशल्प श्रेणणयों के सम्बन्ध में पववाद उपत्स्थत िोने ेपर व्यत्ततमव की इकाई का आधार दार्तशनक की भावना

भारतीय दर्नश -1 31 के ऊपर तनभरश करता प्रतीत िोता िै। और कोई दर्नश-पद्धतत नात्स्तकता अथवा आत्स्तकता का रूप धारण

करती िै यि इसके ऊपर तनभरश िै कक वि परम सत्ता के ऊपर ककतना ध्यान देती िै, त्जस परम सत्ता के आश्रय में िी इस समस्त पवश्व का नाटक खेला जाता िै। यि कभी-कभी तो ज्जवलन्त रूप में अपनेप्रकार् को ईश्वर के अन्दर केत्न्द्रत करके प्रकामर्त िो जाता िै और अन्य समयों में धीमा प़ जाता िै। ये मभन्न-मभन्न माग िैं त्जनमें मानव-मत्स्तष्क अपनी पवमर्ष्ट गुणयुतत रचनाओं ंके कारण संसार की समस्याओं ंकी प्रततकक्रया में उलझा रिता िै।

भारतीय पवचारधारा में जिां ंिमें मानव और ईश्वर के बीच तनष्कपट संगतत ममलती िै, विांदूसूरी ओर पत्श्चम में दोनों में परस्पर पवरोध स्पष्ट रूप में लक्षक्षत िोता िै। पत्श्चमी देर्ों की पौराणणक आख्यातयकाएं भी इसी प्रकार का तनदेर् करती िैं। आदर्भूशत पुरुष प्रोममधथयस का पौराणणक उपाख्यान, जो मनुष्य-जातत की सिायता करने का प्रयमन करता िै और मनुष्य- जातत-मात्र को नष्ट करनेवाले जीयस से रक्षा करता िै एवं ंनई प्रकार की उत्तम उपजाततयााँप्रदान करता िै; िरकुली़ के घोर पररश्रम की किानी, जो संसार को दुःख से मुतत करानेका प्रयमन करता िै; ईसा को मनुष्य का बेटा मानने ंका पवचार;- ये सब इस बात की ओर तनदेर् करते िैं कक पत्श्चमी देर्ों में मनुष्य के ऊपर िी अधधक ध्यान हदया गया िै। यि समय िै कक ईसा को ईश्वर का बेटा भी बतलाया गया िै, सबसे ब़ा बेटा, त्जसके बमलदान का पवधान न्यायकारी ईश्वर का क्रोध र्ान्त करनेके मलए बतलाया गया िै। िमारा लक्ष्य यिां ंयि िै कक पत्श्चमी संस्कृतत की मुख्य प्रवृपृत्त मनुष्य और ईश्वर के मध्य पवरोध की ओर अधधक िै। उस संस्कृतत में मनुष्य ईश्वर की र्तत का मुकाबला करता िै, मनुष्यु-जातत के हितों के मलए उसके पास से आग चुराता िै। भारत में मनुष्य ईश्वर द्वारा तनममतश वस्तु िै। समस्त पवश्व ईश्वर के तप के कारण िै। पुरुषसूतत में एक ऐसे तनरन्तर कक्रयमाण यज्ञ का वणनश िै जो मनुष्य एवंजगत् ्को धारण करता िै।[13] इसी के अन्दर समस्त पवश्व धचबत्रत िै, जो एकमात्र अतुलनीय पवस्तार और मिानता से युतत िै, त्जसमें एक विी सत्ता जीवन फूंकती िै और जो अपनेअन्दर जीवन की सब अवस्थाओं के सारतत्त्व को धारण ककए िुए िै।

भारतीय पवचारधारा का सवोपरर स्वरूप, त्जसने ेइसकी समग्र संस्कृतत को ओतप्रोत कर रखा िै और त्जसने ेइसके संब धचन्तकों को एक पवर्ेष प्रकार का ढांचा प्रदान ककया िै, इसकी आध्यात्ममक प्रवृपृत्त िै। आध्यात्ममक अनुभव भारत के सम्पन्न सांस्कृततक इततिास की आधारमभपत्त िै। 'यि रिस्यवाद िै; इन अथों में निीं ंकक इसमें कोई अलौकककक र्तत वतमशान िै ककन्तुकेवल मनुष्य-प्रकृतत के तनयन्त्रणपरक के रूप में त्जससे आध्यात्ममक ज्ञान का साक्षामकार िोता िै। जिां ंयिूहदयों और ईसाइयों के पपवत्र ग्रन्थ अधधकतर धाममकश और नीततपरक िैं, विांहिन्दुओंके ग्रन्थ अधधकतर आध्यात्ममक और ध्यानपरक िैं। भारत में जीवन का एक मात्र ध्येय ब्रह्म के तनमय सत्ता-स्वरूप को जानना िै।

---

13 ऋग्वेद , 10: 90; और भी देखें ऋग्वेद ,10 81, 3; श्वेताश्वतर उप० 3-3; भगवद्गीता 11।

समस्त दर्नशर्ास्त्र की परम धारणा ि कक कोई भी पदाथ,श जो यथाथ शसत् ्ि, स्वतः पवरोधी निीं ्िो सकता। पवचारधारा के इततिास में इस धारणा के मित्त्व को समझनेऔर ज्ञानपूवकश उसका उपयोग करने ्के मलए कुछ समय अवश्य चाहिए। ऋग्वेद में साधारण ज्ञान की प्रामाणणकता की आकत्स्मत स्वीकृतत पाई जाती ी। जब िम उपतनषदों की पवकासावधध पर पिुंचते िैं, ताककशक समस्याएं प्रादुभ्ूतश िोकर ज्ञान के माग शमें कहिनाइयां उपत्स्थत कर देती िैं। उन कहिनाइयों के अन्दर ज्ञान की मयादशाएं तनहदशष्ट करके अन्तर्दत्शष्ट के मलए उधचत स्थान की व्यवस्था कर दी गई िै। ककन्तुयि सब अधदशार्तशनक पवधध के रूप में िै। जब तकश की र्त्त में पवश्वास उिनेलगा तब संर्यवाद ने मसर उिाया और भौततकवादी लोकायत एवं रू्न्ूयवादी दार्तशनक क्षेत्र में उतर आए। उपतनषदों की व्यवस्था को स्वीकार करते िुए कक अर्दश्यमान सत्ता को ताककशक बुद्धध द्वारा निीं ्जाना जा सकता, बौद्धमत ने जगत् ्की अवास्तपवकता पर ्ोर हदया। इस मसद्धान्त के प्रतत वस्तुओंके स्वभाव का पवरोध ि और अनुभूत जगत् ्में पवरोधी तत्त्वों के परस्पर णखंचाव के अततररतत और कुछ ि भी निीं। वस्तुसत्ता के अततररतत और कुछ ि, इसे िम निीं ्जान सकते। और चूंकक यि स्वतः-पवरोधी ि इसमलए यि यथाथ शनिींिो सकता। बौद्धमत के पवकास का अन्त इसी पररणाम के साथ िोता ि। नागाजुनश के मसद्धान्त में उपतनषदों की मुख्य व्यवस्था का दार्तशनक र्दत्ष्ट से समथनश ककया गया ि। वास्तपवक सत्ता का अत्स्तमव ि, यद्यपप िम उसे निीं ्जान सकतेऔर जो कुछ िम जानते िैं वास्तपवक निीं ्ि, तयोंकक जगत् ्की बुद्धधगम्य पद्धतत के रूप में की गई प्रमयेक व्याख्या भंग िो जाती ि। इस सबने तकश की आममचेतन समीक्षा के मलए माग श तैयार ककया। पवचार अपनेआप में परस्पर पवरोधी एवं ्अपयाप्शत ि। मतभेद उमपन्न िोतें, जबकक प्रश्न ककया जाता ि कक िीकि–ीक यथाथतशा को ग्रिण करने ्की र्दत्ष्ट के यि अयोग्य तयों ि। तया इसमलए कक यि मभन्न-मभन्न भागों का प्रततपादन करता ि, पूण शरूप को निीं ्लेता, अथवा तया इसमलए ि कक इसकी रचना िी ऐसी ि कक यि अक्षम ि अथवा यि अन्ततनहशित स्वतः-पवरोधधता के कारण ि? जैसाकक िम देख चुके िैं, ऐसे व्यत्तत भी ैं त्जनके मत में वास्तपवक सत्ता तकशगम्य ि, ककन्तु वास्तपवक सत्ता िी स्वयंमात्र बुद्धध निीं ्ि। इस प्रकार से पवचार सम्पूण शसत्ता का ज्ञान करानेमें असमथ शि। ब्रैडले के र्ब्दों में 'वि' 'तया' से ऊपर ि। पवचार िमें वास्तपवक सत्ता का ज्ञान कराता ि ककन्तु वि केवल ज्ञान-मात्र ि, स्वयंवस्तुसत्ता निीं ्ि। दूसूरी ओर ऐसे भी व्यत्तत िैं, त्जनका पवश्वास ि कक वास्तपवक सत्ता स्वतःसंगत ि और जो कुछ पवचार ि स्वतः असंगत ि। पवचार ज्ञाता और ज्ञेय पदाथ शके पवरोध के साथ काम करता ि और परम वास्तपवक सत्ता ऐसी ि त्जसमें ये प्रततकूल तत्त्व नष्ट िो जाते िैं। अमयन्त िोस पवचार, जिां ्तक यि अनेकों को एक में संयुतत करने ्का प्रयमन करता ि, कफर भी अमूत श ै, तयोंकक यि स्वतःपवरोधी ि और यहद िम वास्तपवक सत्ता को ग्रिण करना चािते िैं तो िमें पवचार को मयाग देना िोगा। प्रथम कल्पना के ऊपर पवचार जो कुछ प्रकामर्त करता ि वि वस्तु-सत्ता के पवरोध में निीं ्जाता ककन्तु ्ुकेवल एक भाग का िी प्रकार् करता ि। अवयव-पवर्ेष से सम्बन्ध रखनेवाले पवचार परस्पर पवरोधी इसीमलए िोतें कक वे आंमर्क िैं। जिां ्तक उनकी पिुंच ि विांतक िी वे समय िैं, ककन्तुपूण शसमय निीं। दूसूरी कल्पना िमें बताती ि कक वास्तपवक सत्ता का ज्ञान एक प्रकार की पवर्ेष भावना अथवा अन्तर्दत्शष्ट द्वारा प्राप्त िो सकता ि।14' पिले मत वाले भी, यहद यथाथ शसत्ता का पूणू शरूप में जानना अमभष्ट ि तो, भावना द्वारा पवचार

14

तुलनाकीत्जएब्रैड़लेजोकितिौकक िम वास्तपवक सत्ता को एक प्रकार की भावना द्वारा प्राप्त कर सकते िैं, और

का स्थान ग्रिण करने ेका आग्रि करते िैं। पवचार के अततररतत भी िमें एक अन्य तत्त्व की आवश्यकता िै और वि िै 'दर्नश', त्जस ब्द का प्रयोग दार्तशनक पद्धतत, मसद्धान्त अथवा र्ास्त्र के मलए िोता िै।

'दर्नश' ब्द की उमपपत्त 'दृर्' ् धातु ुसे िुई िै, त्जसका अथ शिै 'देखना'। यि दर्नश या तो इत्न्द्रयजन्य तनरीक्षण िो सकता िै, या प्रमययी ज्ञान अथवा अन्तर्दशत्ष्ट द्वारा अनुभूत िो सकता िै। यि घटनाओं के सूक्ष्म तनरीक्षण, ताककशक परीक्षण अथवा आममा के अन्ततनरशीक्षण द्वारा भी प्राप्त िो सकता िै। साधारणतः दर्नशों से तामपय शआलोचनाममक व्याख्याओं(भाष्य), ताककशक सवेक्षणों अथवा दार्तशनक पद्धततयों से िोता िै। दार्तशनक पवचार की प्रारत्म्भक अवस्थाओं में दर्नश ब्द का प्रयोग इन अथों में िमें निीं ममलता, तयोंकक उस समय दार्तशनक ज्ञान अधधकतर आभ्यन्तर र्दत्ष्टपरक था। यि दर्ातशा िै कक 'दर्नश' अन्तर्दत्ष्ट निीं ंिै, भले िी यि उससे ककतना िी सम्बद्ध तयों न िो। सम्भवतः इस ब्द का प्रयोग बिुत सोच-पवचार के बाद उस पवचार पद्धतत के मलए ककया गया िै त्जसकी प्रात्प्त तो अन्तर्दत्शष्टजन्य अनुभव से िोती िै पर त्जसकी पुत्ष्ट ताककशक प्रमाणों द्वारा। परम अद्वैतवाद की दर्नश-पद्धततयों में दार्तशनक ज्ञान पवचार की त्तिीनता का भाव िमारे समक्ष रखकर आन्तररक अनुभव का माग शतैयार करता िै। उदार अद्वैतपद्धततयों में, जिां ंवास्तपवक सत्ता को एक पूण शिोस रूप में माना गया िै, दर्नशर्ास्त्र अधधक से अधधक यथाथ शसत्ता की आदर् शपुनरशचना का पवचार िमें देता िै। ककन्तु वि यथाथ शिमारी तनरानन्द श्रेणणयों से किीं ंऊपर और इनके चारों ओर और इनसे अतीत िै। परम अद्वैत में यि आन्तररक अनुभव िै जो िमारे सामने वास्तपवक यथाथ शसत्ता को उसके पूण शरूप में प्रकट करता ि। िोस अद्वैतवाद में, जिां ंज्ञान का सम्पकश भावना एवंमानमसक अनुराग के साथ िोता िै, यि आभ्यन्तर र्दत्ष्ट िै। काल्पतनक रचनाओंमें अनुभवमसद्ध समयों जैसी तनत्श्चतता निीं ंरिती। कफर कोई भी मत अथवा ताककशक पवचार उसी अवस्था में समय समझा जा सकता िै जब यि जीवन की कसौटी पर िीक उतर सके।

दर्नश एक ऐसा ब्द िै जो सुपवधाजनक रूप में स्वयंमें संहदग्ध िै, तयोंकक परम अद्वैत की ताककशक पद्धतत से रक्षा करने ेके मलए और अन्तर्दत्ष्ट-सम्बन्धी समय के बचाव के मलए भी, त्जसके ऊपर यि आधश्रत िै, यि प्रयोग में आ सकता िै। दार्तशनक पवधध में दर्नश से तामपय शअन्तज्ञानश का प्रमाण मांगना िै और उसका ताककशक रूप में प्रचार करना िै। दूसरी पद्धततयों में भी समय की ताककशक व्याख्या के मलए इसका उपयोग िोता ि, जो अनुप्राणणत करने ेवाली अन्तःपे्रेरणा की सिायता से अथवा उसके बबना भी प्राप्त की जा सकती िै। दर्नश का प्रयोग इस प्रकार मानव-मन द्वारा गृिीत यथाथ शसत्ता के सब मतों में िोता िै और यहद यथाथ शसत्ता एक िै तो उसे प्रकामर्त करने ेवाले सब मतों का परस्पर एक-दूसरे के साथ सिमत िोना आवश्यक िै। उन मतों में आकत्स्मक अथवा नैमममपत्तक घटनाओंका कोई स्थान निींि, बत्ल्क उन्िें यथाथ शसत्ता के पवषय में प्राप्त मभन्न-मभन्न र्दत्ष्टकोणों को प्रततबबत्म्बत करना चाहिए। उन अनेक मतों पर बिुत तनकट से पवचार करने ेपर, जो िमें मभन्न-मभन्न र्दत्ष्ट से यथाथ शसत्ता का धचत्र लेनेपर प्राप्त िों, िम यथाथ शसत्ता के पूण शरूप को ताककशक पररभाषाओं में जान सकतिैं। जब िमें अनुभव िोता िै कक वास्तपवक सत्ता की धारणाममक व्याख्या पयाप्शत निीं ं िै तब िम अन्तज्ञानश द्वारा यथाथ शसत्ता को पकड़ने ेका प्रयमन करते िैं और विांसब बौद्धधक पवचार समाप्त िो

मैटै गाटश जोपे्रेम भत्तत कोपरमसत्ताकास्वरूपमानतिै।

, ( )

 जाते िैं। उस समय िमें परम अद्वैतवाद की पवरुद्ध सत्ता का ज्ञान िोता िै त्जसके द्वारा िम
कफर ताककशक
पवचार द्वारा प्राप्त यथाथ शसत्ता की ओर वापस आते िैं, त्जसकी िम मभन्न-मभन्न पद्धततयों में अक्षरर्: व्याख्या पातेिैं। इस अत्न्तम पवधध के मलए उपयुतत दर्नश ब्दद का तामपय िै-यथाथ शसत्ता की वैज्ञातनक व्याख्या। यि एक ब्दद िै जो अपनी सुन्दर अस्पष्टता के कारण दर्नशर्ास्त्र की समस्त जहटल प्रेरणा की व्याख्या के मलए उपयुतत िो सकता।

दर्नश एक ऐसा आध्यात्ममक ज्ञान िै, जो आममा-रूपी इत्न्द्रय के समक्ष सम्पूण शरूप में प्रकट िोता िै। यि आममदर्तष्ट, जो विीं सम्भव िै जिां ंदर्नशर्ास्त्र का अत्स्तमव िै, एक सच्चेदार्तशनक की स्पष्ट पिचान िै। इस प्रकार दर्नशर्ास्त्र के पवषय में उच्चतम पवजय उन्िीं व्यत्ततयों को प्राप्त िो सकती िै, त्जन्िोंने अपने अन्दर आममा की पपवत्रता को प्राप्त कर मलया िै। इस पपवत्रता का आधार िै अनुभन की प्रगाढ़ स्वीकृतत, जो केवल उसी अवस्था में साक्षात् ्िो सकती िै जब मनुष्य को अन्ततनहशित उस र्त्तत की उपलत्ब्ध िो, त्जसके द्वारा वि न केवल जीवन का तनरीक्षण िी अपपतु पूणतशया ज्ञान प्राप्त कर सके। इस अन्तस्तम तनकास से िी दार्तशनक िमारे सामने जीवन के समय को प्रकट करता िै-उस समय को जो केवल बुद्धध द्वारा प्रकार् में निीं ंआ सकता। इस प्रकार की दर्नशर्त्तत लगभग ठीक उसी प्रकार स्वाभापवक रूप में उमपन्न िो जाती िै जैसे फूल से फल की उमपपत्त िोती िै, और इसका उमपपत्तस्थान वि रिस्यमय केन्द्र िै; जिांसब प्रकार के अनुभव का सामञ्जस्य िोता िै।

समय के अन्वेषक को अन्वेषण प्रारम्भ करने ेसे पूव शकततपय अतनवाय शसाधनों की पूतत शकरना आवश्यक िै। र्ंकर वेदान्तसूत्रों के अपनेभाष्य में पिले िी सूत्र के भाष्य में किते िैं कक दर्नशर्ास्त्र के प्रमयेक पवद्याथी के मलए चार साधन आवश्यक िैं। प्रथम साधन िै तनमय एवं अतनमय के मध्य भेद का ज्ञान। इसका अथ शयि निीं किक उसे इसका पूण शज्ञान िोना चाहिए तयोंकक वि तो अन्त में िी प्राप्त िो सकता िै, ककन्तुकेवल आध्यात्ममक प्रवृपृत्त, जोकक दृश्यमान वस्तुओंको वास्तपवक रूप में स्वीकार निीं ंकरती अथात्श ्अन्वेषक के अन्दर प्रश्नाममक त्जज्ञासुभाव का िोना आवश्यक िै। उसके अन्दर प्रमयेक पवजय के भीतर प्रवेर् करने ेकी त्जज्ञासा-वृपृत्त िोनी चाहिए, एक ऐसी चेतन कल्पनार्त्तत, जो प्रकटरूप में असम्बद्ध सामग्री-समूि के अन्दर से समय को ढूंढ़कर तनकाल सके, तथा ध्यान लगानेकी आदत का िोना भी आवश्यक िै, त्जससे कक वि अपने मन को पवचमलत न िोने ेदे। दूसूरा साधन िै कमफशल की प्रात्प्त की इच्छा का दमन, चािे वि फल इस जन्म में अथवा भपवष्यजन्म में ममले। इस प्रततबन्ध का आग्रि िै कक सब प्रकार की छोटी-छोटी इच्छाओंएवं तनजी प्रयोजन अथवा कक्रयाममक स्वाथ शका सवथशा मयाग िोना चाहिए। धचन्तनर्ील मन के मलए कल्पना अथवा अन्वेषण स्वयं अपने-आप में लक्ष्य िैं। बुद्धध का ठीक हदर्ा में उपयोग िै वस्तुओंको, चािे वे अच्छी िों या बुरी, ठीकिी-ठीक समझना। दार्तशनक एक प्रकार से प्रकृततततत्त्वज्ञ िै, त्जसे अपनेमानमसक पक्षपात को दूरू रखकर पदाथों का, अच्छी या बुरी दोनों प्रकार की हदर्ाओं ंमें अनुसरण करते िुए, स्वाभापवक प्रकार से अनुगमन करना चाहिए। वि न अच्छे को बिुत बढ़ाकर और न बुरे की अमयन्त तनन्दा करते िुए व्याख्या करे। उसे जीवन से बािर त्स्थत िोकर तनलेपभाव से सबका तनरीक्षण करना चाहिए। इसमलए यि किा गया िै कक उसे वतमशान अथवा

भपवष्य के साथ कोई अनुराग निीं ंिोना चाहिए। केवल उसी अवस्था में वि अपना सब कुछ पवर्ुद्ध धचन्तन और न्याय परामर् शके मलए तनछावर कर सकता िै और समय के प्रतत एक व्यत्ततमव भावरहित सावभशौम भाव का पवकास कर सकता िै। इस प्रकार की मनःत्स्थतत को प्राप्त करनेके मलए उसे हृदय-पररवतनश कर अवसर देना चाहिए, त्जस पर तीसरे साधन में बल हदया गया िै, जिां ंदर्नशर्ास्त्र के पवद्याथी के मलए आदेर् िै कक उसे र्ात्न्त, आममसंयम, मयाग, धैय,श मन की र्ात्न्त और श्रद्धा का संचय करना चाहिए। केवल प्रमर्क्षक्षत मन िी, जो पूणरूशप से र्रीर पर तनयन्त्रण रख सकता िै, जीवन- पयन्शत तनरन्तर खोज एवं ंध्यान में मग्न रि सकता िै- क्षणमात्र के मलए भी पदाथ शको दृत्ष्ट से ओझल ककंए बबना और ककसी सांसाररक प्रलोभन से पवचमलत िुए बबना। समय के अन्वेषक को इतना सािस अवश्य िोना चाहिए कक वि अपने उच्चतम लक्ष्य की प्रात्प्त के मलए सब कुछ खोनेके मलए उद्यत रिे। इसमलए उसे कहिन तनयन्त्रण में से गुजरनेकी, सुख को परे फेंकने ेएवं दुःख और घृणा को सिने की भी आवश्यकता िै। एक प्रकार का आत्ममक तनयन्त्रण, त्जसमें दयारहित आममपरीक्षण भी सत्म्ममलत िै, समयान्वेषी को मुत्तत के लक्ष्य तक पिुंचने ेके योग्य बनाएगा। चौथा साधन िै मुमुक्षा। आध्यात्ममक प्रवृपृत्त के मनुष्य के मलए, त्जसने अपनी सब इच्छाओं का मयाग करके अपनेमन को प्रमर्क्षण हदया िै, मात्र एक िी सवोपरर इच्छा रि जाती िै, अथात्श ्लक्ष्य की प्रात्प्त और तनमय के समीप पिुंचने ेकी इच्छा। भारतवासी इन दार्तशनकों के प्रतत अमयन्त प्रततष्िा एवं ंश्रद्धा का भाव रखते िैं जो ज्ञान की र्त्तत और बुद्धध के बल का गव शकरते िैं और उसकी पूजा करते िैं। ऐसे व्यत्तत त्जन्िें दैवीय प्ेरेरणा िोती िै, जो समय के प्रतत उदार एवं उमकृष्ट प्ेरेरणा से पवश्व ब्रह्माण्ड के रिस्य को जाननेके मलए कहिन पररश्रम करते िैं और उसका वाणी द्वारा प्रकार् करते िैं और कहिन पररश्रम करते िुए इसी समयान्वेषण के मलए हदन-रात एक कर देते िैं, वे िी वास्तपवक अथों में दार्तशनक िैं। वे ेमनुष्य-मात्र के हित के मलए ज्ञान-सम्पादन करते िैं और इसमलए मनुष्य-जातत सदा के मलए उनके प्रतत कृतज्ञ रिती िै।

भूतकाल के प्रतत श्रद्धा िमारी एक अन्य राष्रीय पवर्ेषता िै। परम्परा का तनरन्तर अनुसरण करते रिना िमारी एक पवमर्ष्ट मनोवृपृत्त िै अथात्श ्युगों तक बराबर प्रचमलत प्रथाओंके अन्दर एक प्रकार की आग्रिपूण शभत्तत। जब-जब नई संस्कृततयों से सामना िुआ अथवा नवीन ज्ञान आगे आया, भारतीयों ने सामधधक प्रलोभन की अधीनता स्वीकार ककए बबना अपनेपरम्परागत पवश्वास को दृढ़तापूवकश पकड़ र त्स्थर रखा, ककन्तु जिांतक सम्भव िुआ नवीन से उतना अंर् लेकर पुरानेके अन्दर ममला भी मलया। यि सनातन ममधश्रत उदारता िी भारतीय संस्कृतत व सभ्यता की सफलता का प्रधान रिस्य िै। संसार की उन बड़ी-बड़ी समस्याओं में से, जो कालक्रम से बिुत पुरानी और वृद्ध िैं, यिी एक जीपवत बची * 1 ममस्र की सभ्यता की मित्ता का पता पुरातमव वेत्ताओं ंकी लेखबद्ध सूचनाओं ंएवंधचत्र-लेखों के अध्ययन द्वारा िी पाया जा सकता िै, बेबबलोतनयन साम्राज्जय अपनी आश्चयजशनक वैज्ञातनक उपलत्ब्धयों, मसंचाई व इंजीतनयरी कला के साथ आज खण्डिरों के अततररतत और कुछ निीं ंरि गया िै। मिान रोमन संस्कृतत अपनी राजनीततक संस्थाओं और कानून व समानता के मसद्धान्तों के साथ अधधकांर् में आज भूतकाल का िी एक पवषय रि गई िै। भारतीय सभ्यता, जो अमयन्त न्यूनांकन के अनुसार भी 4000 वष शपुरानी तो िै िी, अपनी समस्त पवर्ेषताओं को अक्षुण्ण रखते िुए जीपवत बची िै। इस देर् की सभ्यता वेदों के काल तक पीछे जानेपर एक साथ िी पुरानी भी िै और नई

भी। जब-जब इततिास की मांग िुई, इसनेसमय-समय पर अपने को नये मसरे से युवा बना मलया। जब-जब पररवतनश िोता िै उसका ज्ञान नवीन पररवतनश के रूप में निीं ंभामसत िोता। उसे अपना मलया जाता िै और िर समय यि प्राचीन पवचार-पद्धतत को हदए गए नवीन रूप में स्वीकृत प्रतीत िोता िै। ऋग्वेद में िम देखेंगे कक ककस प्रकार से आय-शपवजेताओंकी धाममकश चेतना ने इस भूमम के आहदवामसयों के अन्धपवश्वासों का भी साथ-साथ ध्यान रखा। अथववेशद में िमें पता लगता िै कक संहदग्ध जागततक देवी- देवताओं को आकार्, सूय,श अत्ग्न एवं वायु आहद देवताओं के साथ-त्जसकी पूजा आय शलोगों में गंगा से लेकर िेलेस्पॉट तक िोती थी-जो़ हदया गया िै। उपतनषदों के पवषय में किा जाता िै कक वैहदक सूततों में जो कुछ पिले से पाया जाता था, ये उसी की पुनरावृपृत्त अथवा साक्षामकार-मात्र िैं। भगवद्गीता का दावा िै कक उसमें उपतनषदों की मर्क्षा का सारत्त्व तनहित ै। मिाकाव्यों में िमें उच्चतम आर्य वाली धाममकश भावनाओं का प्राचीन प्रकृततपूजा hat Phi साथ संगम िुआ उपलब्ध िोता िै। मनुष्य के अन्दर प्राचीनता के प्रतत आदर एवं ंश्रद्धा की भावना के कारण िी उसे नवीन की सफलता प्राप्त िो सकती िै।'[15] पुराने ेभावों की रक्षा की जाती िै, यद्यपप पुरानी आकृततयों की निीं। भारत की इस रक्षणाममक प्रवृपृत्त के कारण िी भारत के पवषय में औपचाररक कथन ककया जाता िै कक वि अचल िै। मनुष्य का मन कभी तनश्चल निीं ंबैिता, यद्यपप वि भूतकाल के साथ एकदम सम्बन्ध तोऩा भी स्वीकार निीं ंकर सकता।

भूतकाल के प्रतत इस प्रकार की तनष्ठा ने भारतीय पवचार में एक प्रकार के तनयममत नैरन्तय शकी उमपन्न ककया िै, जिां ंकक प्रमयेक युग एक-दूसूरे के साथ स्वाभापवक पपवत्रता के बन्धन से जुा िुआ िै। हिन्दू संस्कृतत युगों की देन िै, त्जसमें सैकों़ पीहढ़यों द्वारा ककए गए पररवतनश समवेत िैं। इन पररवतनशों में कुछ बिुत दीघ,श पवकृत और दुखुमय िैं, जबकक अन्य अल्पकालीन, र्ीघ्रगामी एवं सुखकर िैं, त्जनमें प्रमयेक ने इस प्राचीन सम्पन्न परम्पराओं में जो आज भी जीपवत िै, यद्यपप यि अपने अन्दर मृतृप्राय भूतूकाल के धचह्नों को भी अभी तक संजोए िुए िै-कुछ न कुछ उत्तम गुणयुतत सामग्री जो़ दी िै। भारतीय दर्नश की जीवन- यात्रा की तुलना एक ऐसी जलधारा के प्रवाि के साथ की जाती िै जो अपने आहद उद्गम से तनकलकर उत्तरी पवतशों की चोहटयों से आनन्दपूवकश लुढ़कती िुई छायादार घाहटयों और मैदानों में से वेग के साथ आगे बढ़ती िुई, अन्य छोटी-छोटी धाराओं को अपनी तनरंकुर् धारा में समेटती िुई अन्त में एक मिान रूप और गम्भीर र्तत धारण कर उन मैदानों व मानव- समूिों के अन्दर प्रवाहित िोती िै त्जनके भाग्यों का वि तनणयश करती िै एवं िारों जिाज़ों का भार अपनी छाती पर विन करती िै। कौन जानता िै कक तया और कब यि र्ततर्ाली मिान जलधारा, जो इस समय तनरन्तर तुमुल कोलिाल एवं प्रसन्नता के साथ प्रवाहित िो रिी िै, समुद्र में जा धगरेगी

---

[15] तुलना कीत्जए, "ककसी भी नए मत के मलए अपने को प्राचीन किकर पेर् करने की एक साधारण प्रवृपृत्त िै। सुधार के प्रचार नेबाइबबल के प्रतत लौटने का दावा ककया, इंग्लडैं में इवेंजमलकल आन्दोलन ने ईसा मसीि द्वारा उपहदष्ट मसद्धान्त तिने का और िाई चच शआन्दोलन ने प्राचीन चच शके प्रतत वापसी का दावा ककया। फ्ांस की राज्जय क्रात्न्त में भी एक बिुत ब़े भाग ने अपने आदर् शके मलए रोमन लोकतन्त्राममक सदाचार अथवा प्राकृततक मानव की सादगी के प्रतत वापसी का िी दावा ककया, यद्यपप उतत राज्जय क्रात्न्त प्राचीनता के प्रतत सबसे बा़ पवद्रोि था।" (धगलबटश मरे: 'फोर स्टेजेज आफ ग्रीक ररमलजन', पृष्ि 58)।

 जो समस्त नहदयों का जनक ि? भारतीय पवचारकों का अभाव निीं जो समस्त भारतीय दर्नश को

तनरन्तर

दैवी

ऐसे पे्ररणा की एक िी पद्धतत के रूप में मानते िैं। उनका पवश्वास िै कक प्रमयेक सभ्यता ककसी दैवी पवचार का सम्पादन करती िै, जो उसके मलए स्वाभापवक िै।'[16] प्रमयेक मानवीय जातत में उसके अन्ततनहशित एक ऐसी कम-शमीमांसा रिती िै जो उसके जीवन का तनमाणश करती िै और उसे पूण शपवकास तक ले जाती िै। भारत में समय-समय पर त्जन मभन्न मतों का प्रचार िुआ वे सब उसी एक मुख्य वृकूष की र्ाखाएं मात्र िैं। समय की खोज के मुख्य माग शके साथ छोटी- छोटी पगडंडयों और अंधी गमलयों का भी सामंजस्य ककया जा सकता िै। एक सुपररधचत पवधध, त्जसमें छः पुराने दर्नशर्ास्त्रों का समन्वय िुआ िै, इस प्रकार प्रकट की जा सकती िै कक जैसे एक मांअपने बच्चेको चांदं की ओर संकेंत करती िुई बतलाती िै कक वि देखो वृकूष के ऊपर एक चमकीला गोलाकार चतकर िै, और यि बच्चेको बबलकुल आसानी से समझ में आ सकता िै-पृथ्वी और चन्द्रमा के बीच की दूरी का वणनश ककए बबना, त्जससे बच्चा चकरा सकता था; इसी प्रकार मभन्न-मभन्न मत मानवीय पवचार-र्त्तत की पवमभन्न दुबुलशताओंके कारण प्रकट िुए िैं। 'प्रबोधचन्द्रोदय' नामक एक दार्तशनक नाटक किता िै कक हिन्दू पवचारधारा के छः प्रमुखु दर्नश परस्पर एक-दूसूरे से अलग निीं, किकन्तु पवपवध प्रकार के र्दत्ष्टकोणों से एक िी स्वयंभूईश्वर की स्थापना करते िैं। वे सब ममलकर तततर- बबतर िुई ककरणों का केन्द्र-स्थल बनातेिैं, त्जससे मभन्न-मभन्न पिलुओंवाली मनुष्य-जातत प्रकार् के पुंज सूय शसे प्रकार्-रूपी ज्ञान प्राप्त करती िै। माध्वाचाय-शतनममतश सवदशर्नश-संग्रि (सन् 1380) ने सोलि पवपवध दार्तशनक पद्धततयों का वणनश ककया िै, त्जनसे क्रमानुसार आगे बढ़ते िुए अद्वैतवेदान्त तक पिुंचा जा सकता िै। िेगल की तरि भारतीय दर्नश को यि एक उन्नततर्ाली प्रयमन के रूप में देखता िै, जो िमें एक पूण शसंधधबद्ध संसार का पवचार देता िै। उत्तरोत्तर इन पद्धततयों में धीरे-धीरे आंमर्क रूप में समय प्रकट िोता जाता िै और दार्तशनक श्रेर्णयों का जब अन्त िो जाता िै तो समय प्रकार् में आ जाता िै। अद्वैत वेदान्त में बिुत-से प्रकार् एक केन्द्र-बबन्दु पर आकर एकत्र िो गए िैं। सोलिवींर्ताब्दी के अध्याममवादी एवं पवचारक पवज्ञानमभक्षु का मत िै कक सब दर्नश प्रामाणणक िैं।17 और उनके समन्वय की व्याख्या करते िुए वे किते िैं कक कक्रयाममक और आध्यात्ममक तथ्य में भेद िै, और इस प्रकार वे सांख्य को परम समय की व्याख्या करने वाला बतातेिैं। मधुसूदन सरस्वती अपने'प्रस्थानभेद' में मलखतेिैं कक "सब मुतनयों का अत्न्तम लक्ष्य, जो इन मभन्न-मभन्न दर्नशों के कताश िैं, माया के मसद्धान्त का समथनश करना िै और उनके दर्नश का मूल आधार एकमात्र सवोपरर परम ब्रह्म की सत्ता की स्थापना करना िै,

[illegible]

ककया कक मनुष्य, जो बाह्य पदाथों की ज्ञानप्रात्प्त के आहद िैं, एकसाथ िी उच्चतम समय के अन्दर प्रवेर् करके उसे ग्रिण निीं कर सकते, इसमलए उन्िोंने मनुष्यों के हित के मलए नाना प्रकार के मसद्धान्तों की कल्पना की त्जससे कक वेनात्स्तकता के गढ़े में न धगर सकें। इस प्रकार से मुतनयों के उद्देश्य को, जो उनके मन में था,

---

16 ग्रीक पवद्वान इस पवर्ेष गुण को प्रमयेक जातत की 'प्रकृतत' किते िैं जबकक भारतीय पवद्वान इसी को उतत जातत के 'धम'श का नाम देतेिैं।

17 सवागशमप्रामाण्य।

 38 गलत रूप में समझकर और यिां ंतक मानने ेपर उतारू िोकर कक मुतनयों ने वेद-पवरुद्ध मतों का भी प्रचार

ककया, इन मभन्न-मभन्न सम्प्रदायों के पवर्रेषे-पवर्रेषे मसद्धान्तों को मनुष्यों ने एक-दूसूरे से उत्तम बताकर नाना पद्धततयों का पक्ष ग्रिण कर मलया।"[18] अनेक दार्तशनक पद्धततयों के इस प्रकार के समन्वय का प्रयमन19 प्रायः सभी समीक्षकों एवं ंटीकाकारों ने ककया िै। भेद केवल इतना िी िै कक वे ककसे समय समझते िैं। न्याय के समथकश

उदयन की तरि न्याय को और ईश्वरवादी रामानुज की तरि ईश्वरवाद को िी समय मानतीं। यि सोचना भारतीय संस्कृतत की भावना के अनुकूल िी िोगा कक पवचार की अनेक और मभन्न-मभन्न धाराएं, जो इस भूमम में बिती िैं, अपना जल एक िी सामान्य नदी में डालेंगी, त्जसका बिाव अन्यत्र किीं न िोकर ईश्वर के नगर की ओर िी िोगा।

प्रारम्भ से िी भारतीयों ने यि अनुभव ककया था कक समय अनेक पक्षीय िै और पवपवध मत समय के मभन्न-मभन्न पिलू को देखकर प्रकट िुए िैं, तयोंकक पवरुुद्ध समय का प्रततपादन कोई एक मत निीं कर सकता। इसीमलए उन्िें अन्य मतों के प्रतत सिनर्ील िोकर उन्िें भी स्वीकार करना पड़ा। उन्िोंने तनभयशता के साथ ऐसे े पवषम मसद्धान्तों को भी उस सीमा तक स्वीकृतत प्रदान की, जिां ंतक उन मसद्धान्तों को तकश का समथनश प्राप्त िो सकता था। जिां ंतक सम्भव िो सका, उन्िोंने ेलेर्मात्र भी प्राचीन परम्पराओं के र्ीषकशों को नष्ट निीं ंिोने े हदया और उन सबको उधचत स्थान व मित्त्व प्रदान ककया। इस प्रकार की उदारता के अनेकों उदािरण आगे िम अपनेइस अध्ययन में पाएंगे। तनःसन्देि इस प्रकार की मत-सम्बन्धी उदारता में कई प्रकार के संकटों का समावेर् रिता िै। प्रायः इस उदारता के कारण भारतीय पवचारकों को अतनत्श्चतता, मर्धथलताजन्य स्वीकृतत और सस्ते सारसंग्रिवाद का मर्कार िोना पड़ा िै।

3. भारतीय दर्नश के पवरुद्ध कुछ आरोप

भारतीय दर्नश के पवरुद्ध लगाए जानेवाले मुख्य आरोप ये िैं कक यि तनरार्ावादी िै, रूहढ़वादी िै, नीततर्ास्त्र के प्रतत उदासीन िै और प्रगततर्ील निीं ंिै।

भारतीय दर्नश एवं संस्कृतत के प्रायः प्रमयेक समीक्षक ने इसे एक स्वर से तनरार्ावादपरक बताया िै।'[20] ककन्तु िुमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कक ककस प्रकार एक ऐसा मानव-मत्स्तष्क स्वतन्त्रता के साथ ककसी कल्पना में प्रवृत्त िो सकता िै और जीवन का पुनतनमशाणश कर सकता िै, जबकक वि तलात्न्त से भरा और तनरार् के भाव से आक्रान्त िो। वस्तुतः भारतीय पवचारधारा के क्षेत्र और स्वातन्त्र्य की संगतत अत्न्तम रूप में

---

18 देखें, म्योर, 'ओररत्जनल संस्कृत टेतस्ट्स', 4:1 और 21

19 सवदर्शनर्शसामरस्य ।

20 चैल ने अपनी पुस्तक 'एड्ममतनस्रेहटव प्राब्लम्स' (पृ० 67) में मलखा िै कक भारतीय दर्नश 'आलस्य और र्ाश्वत पवश्राम की कामना से' उमपन्न िुआ िै।

तनरार्ावाद िै। यहद तनरार्ावाद से तामपय,श जो कुछ िै और त्जसकी सत्ता िमारे सामने िै-उसके प्रररत असन्तोष से िै, तो भले िी इसे केवल इन अथों में तनरार्ावादी किा जाए। और, इन अथों में तो सम्पूण शदर्नशर्ास्त्र तनरार्ावादी किला सकता िै। इस जगत् ्में पवद्यमान दुुःख िी दर्नशर्ास्त्र एवं धम शकी समस्या को प्ेरेरणा देता ै। धमर्शास्त्र दुुःख से तनवृपृत्त के ऊपर बल देते िैं-त्जस प्रकार का जीवन िम इस पृथ्ूवी पर व्यतीत करते िैं उससे बच तनकलनेकी खोज करते िैं। ककन्तु यथाथ शसत्ता अपनेतत्त्वरूप में पाप निीं ंिै। भारतीय दर्नश में विी एक िी ब्द 'सत्'् यथाथ शसत्ता और पररपूणतशा दोनों का संकेत करता िै। समय और साधुता, और अधधक सिी अथों में किा जाए तो यथाथ शसत्ता और पूणतशा, साथ-साथ रिती िंूंू। यथाथ शसत्ता अमयन्त मूल्यवान भी िै और यिी समस्त आर्ावाद का आधार िै। प्रोफेसर बोसन्तवेट मलखते िैं, "म ैंआर्ावाद में पवश्वास करता िंूंू ककन्तु म ैंयि भी किता िंूंू कक वि आर्ावाद ककसी काम का निीं ंिै जो बराबर नैराश्यवाद के साथ चलकर अन्त में उससे दूरू पिुंच जाता िै। मुझे ेतनश्चय िै कक यिी जीवन का समयभाव िै। और यहद इसे कोई अनथकशारी समझता िै और समझता िै कक यि एक प्रकार से दुष्ुकम शको अनुधचत स्वीकृतत देना िै तो मेरा उत्तर यि िै कक वि समस्त समय, त्जसमें पूणतशा का थोा़-सा भी पुट िै, कक्रयाममक रूप में अनथकशारी िै।"[21] भारतीय पवचारक तनरार्ावादी इन अथों में िैं कक ते ेइस जगत् ्की व्यवस्था को बुराई व ममथ्यारूप में देखते िैं। ककन्तु आर्ावादी वे इन अथों में िैं कक वे अनुभव करते िैं कक वे इस जगत् ्से छुटकारा पाकर समय के राज्जय में, त्जसका दूसूरा नाम साधुता्ु भी िै, पिुंच सकते िैं।

यि किा जाता िै कक यहद भारतीय दर्नश में रूहढ़वाद न रिे तो यि कुछ निीं ंिै, और रूहढ़ के स्वीकार करने ेपर वास्तपवक दर्नश की कोई सत्ता निीं ंरिती। अगले पृष्ठिों में हदए गए भारतीय पवचारधारा के समस्त अध्ययनक्रम में इस आरोप का उत्तर ममल जाएगा। दर्नशर्ास्त्र की अनेक पद्धततयां ज्ञान, उसका उद्गमस्थान, एवं यथाथतशा की समस्या के समाधान को अन्य सब समस्याओं के समाधान से पूव शपववेचना के मलए प्रमुखु स्थान देती िैं। यि समय िै कक वेद अथवा श्रुतत को साधारणतया ज्ञान का एक प्रामाणणक उद्गमस्थान माना

शया। िै दयककन्तु सहद की प्रामाण्य कक उक्ततयों को एकमात्र सवोपरर, अथात्
और तकशसंगत तनष्कषों के प्रामाण्य से उत्तम स्वीकार ककया जाए तो दर्नशर्ास्त्र अवश्य रूहढ़-मात्र बन जाएगा। वैहदक व्याख्यान आप्तवचन अथात्श ्बुद्धधमानों की उत्ततयां िैं, त्जर्न्िें स्वीकार करने ेका िमें आदेर् हदया गया ै, यहद िमें यि तनश्चय िो कक उन बुद्धधमान आप्त पुरुषों को समस्याओं के समाधान के मलए िमारी अपेक्षा अधधक उत्तम साधन उपलब्ध थे। साधारणतः ये वैहदक सचाइयांऋपषयों के अनुभवों का वणनश करती िैं त्जर्न्िें यथाथ शसत्ता की िेतुवादपरक व्याख्या करने ेवाले र्दत्ष्ट से ओझल निींकर सकते। आभ्यन्तर ज्ञान-सम्बन्धी ये अनुभव प्रमयेक मनुष्य के मलए प्राप्य की कोहट में िैं, यहद वि इसे प्राप्त करने ेकी प्रबल इच्छा रखता िो।'[22] वेदों

---

21 'सोर्ल एण्ड इंटरनेर्नल आइडडया़', पृ० 43। तुलना कीत्जए, र्ोपनिावर "आर्ावाद-यहद यि केवल पवचारिीन कथन-मात्र िी निीं िै त्जसमें मसवा ब्दों के और कुछ सारवस्तु निीं िै-केवल पववेकर्ून्य और तनरथकश िी निीं बत्ल्क पवचार का अमयन्त गहितश प्रकार िै और अनेक प्रकार के दुुःखों को भोगते िुए मनुष्य-समाज की र्दत्ष्ट में एक प्रकार का कटुतापूण श उपिास-मात्र िै।"

22 देणखए, र्ांकरभाष्य वेदान्तसूत्ूर, 3/2 / 241

के प्रतत अपील करने ेका तामपय शककसी दर्नशर्ास्त्रातीत मानदण्ड को उद्धतृ करने से निीं ंिै। एक साधारण व्यत्तत के मलए जो मत रूहढ़ िै, विी पपवत्र हृदय वाले व्यत्तत के मलए अनुभव िै। यि समय िै कक जब िम अवाचशीन भाष्यों पर आते िैं तो िमारे आगे एक प्रकार की दार्तशनक सनातनता का भाव आता िै जबकक कल्पना का उपयोग मानी िुई रूहढ़यों के बचाव के मलए ककया जाता िै। प्रारत्म्भक दर्नशर्ास्त्र भी अपनेको भाष्य-रूप

प्रकट करते िैं और प्राचीन सन्दभों की वे ेकेवल टीकामात्र िैं, ककन्तुउन्िोंनेकभी अतत सूक्ष्म र्ास्त्रीय रूप धारण करने ेकी प्रवृपृत्त निीं ंहदखाई, तयोंकक उपतनषदें त्जनकी ओर वे प्ेरेरणा के मलए मुख फेरते िैं, अनेक पवषयी िैं।23

आिवीं र्ताब्दी के पश्चात् ्दार्तशनक मतभेद ने परम्परा का रूप धारण कर मलया और वि र्ास्त्रीय रूप में पररणणत िो गया। और इस प्रकार वि पवचार-स्वातन्त्र्य, जो प्राचीनकाल में पाया जाता था, इनमें निीं ंरि गया। इन सम्प्रदायों के संस्थापक धाममकश सन्तों की सूची में आ गए और इस प्रकार उनके मतों पर ककसी प्रकार की आर्ंका उिाना धम-शमयादशा के अततक्रम जैसा िी अपपवत्र कम शसमझा जानेलगा। मौमलक व्यवस्थाएं सदा के मलए बना दी गईं और मर्क्षक का काय शकेवल अपनेसम्प्रदाय की मान्यताओंको ऐसे पररवतनशों के साथ, जो उसके मत्स्तष्क में समा सकतीं अथवा समय की मांग को पूरा करते िैं, दूसूरों तक प्रसाररत करना- भर रि गया। पिले से तनत्श्चत तनणयशों की मसद्धध के मलए केवल नये प्रमाण िमारे सामने आतीं, नई कहिनाइयों के समाधान के मलए नए-नए अभ्युपाय एवं ंपुराने िी मतों के पुनःस्थापन कुछ नए पररवततशत क्षेत्र के साथ या भाषा के िेर-फेर से ममलतीं। जीवन की गम्भीर समस्याओं पर बिुत कम मनन और कृबत्रम समस्याओं पर अधधक वाद-पववाद ममलता िै। परम्परा-रूपी उत्तम कोष अपनी िी बोणझल धन-सम्पपत्त द्वारा िमारे माग शमें बाधक मसद्ध िोता िै और दर्नशर्ास्त्र की गतत अवरुद्ध िोकर कभी-कभी बबलकुल िी तनश्चेष्ट िो जाती िै। समस्त भारतीय दर्नश के ऊपर अनुपयोधगता के आरोप में तभी कुछ सार िो सकता िै जबकक िम टीकाकारों के र्ाल्ब्दक पववेचन की ओर तनगाि करते िैं, त्जनके अन्दर जीवन की उस दैवी प्ेरेरणा एवं ंउस सौन्दय शका लेर्मात्र निीं पाया जाता, जैसाकक प्राचीन पीढ़ी के दार्तशनकों में था। ये तो केवल पेर्ेवर ताककशक िैं, त्जन्िें मनुष्य जातत के प्रतत अपने उद्देश्य का ज्ञान-मात्र िै और कुछ निीं। तो भी ऊपर जम गई कालजततनत पपी की सति के नीचे आममा यौवनपूण शिडऔर यदा-कदा फूटकर ऊपर िरी व कोमल कोंपल के रूप में तनकलती िै, और र्ंकर या माधवाचाय शके समान व्यत्तत उहदत िोतीं, जो अपनेको बतलाते तो केवल भाष्यकार िी िैं, कफर भी ऐसे े आध्यात्ममक तत्त्व का साक्षामकार करते िैं जो समस्त पवश्व की गतत का तनयन्त्रण करता िै।

भारतीय दर्नशर्ास्त्र के पवरुद्ध कभी-कभी यि किा जाता िै कक यि स्वरूप से नीततिीन िै। "हिन्दू ू पवचारधारा की पररधध के अन्दर कोई भी नीततर्ास्त्रे ेनिींि।"24 इस आरोप को प्रमाणणत निीं ंककया जा सकता। समस्त जीवन को आत्ममक र्त्तत से पूण शकरने ेके प्रयमन तो यिांसवमशान्य और साधारण बात िै। भारतीय पवचारधारा में यथाथ शसत्ता की श्ेरेणी में अगली श्ेरेणी में धम शकी भावना का िी अमयन्त मित्त्व िै। जिां ंतक वास्तपवक नीतत-सम्बन्धी पवषय का सम्बन्ध िै, बौद्ध मत, जैन मत, हिन्दू ूधम शदूसूरों से कम निीं ंिैं। दैवीय ज्ञान की प्रात्प्त के मलए आचार-र्ुद्धुध पिला पग िै।

---

23 पवश्वतोमुखाः ।

24 फतयूिशर, 'हिबटश जनलश', अततूबर 1921, पृष्ि 24।

कि जाता ि ै कक भारत में दर्नशर्ास्त्र समत्स्थत या प्रगततरू्नूय ि ै और केवल पुरानी सामग्री के ऊिापोि में ि ी मग्न देखा जाता ि ै। 'अपररवतनशर्ील पूव'श से तामपय ि ै कक भारत में काल की गतत अवरुद्ध ि ो गई ि ै और यि सदा के मलए एकरस ि ै। यहद इसका अथ शयि ि ै कक प्रमयेक काल में समस्याएं एक समान रिी ि ैं तब इस प्रकार की प्रगततर्ीलता का अभाव सभी दार्तशनक पवकासों में एक समान ि ै। ईश्वर, मुत्तत और अमरमव के सम्बन्ध में विी पुरानी समस्याएं और विी पुराने ेअसन्तोषजनक समाधान बराबर र्ताब्दियों तक दोिराए जाते रिे ि ैं, जबकक समस्याओं की आकृततयां ंविी रिीं, सारतत्त्व में पररवतनश ि ो गया ि ै। वैहदक सूततों के सोमरस पान करने ेवाले ईश्वर में और र्ंकर के परम ब्रह्म में बिुत अन्तर ि ो गया। वे पररत्स्थततयां, त्जनका असर दार्तशनक ज्ञान के ऊपर ि ोता ि ै, ि रएक पीढ़ी में नये मसरे से बदल जाती ि ैं और उनके प्रतत व्यविार करने ेके प्रयमनों में भी उसी के अनुसार पुनरावतनश ि ो जाना आवश्यक ि ै। यहद इस आपेक्ष का तामपय शयि ि ो कक भारत में प्राचीन धमर्शास्त्रों में हदए गए समाधानों एवं ंप्लेटो के ग्रन्थों अथवा ईसाई ग्रन्थों में हदए गए समाधानों में कुछ अधधक मौमलक भेद निीं ंि ै तो इसका अथ शयिी ि ै कक विी एक प्रेमस्वरूप व्यापक आममा अपनेसन्देर् का व्याख्यान दे रिी ि ै और समय-समय पर अपनी कल्याणमयी वाणी मनुष्य-मात्र को इन मिापुरुषों के माध्यम से सुना रिी ि ै। पपवत्र सन्देर् पवपवध प्रकार से संकमलत ि ोकर युग-युग में ि म तक पिुंचते ि ैं त्जन पर जातत एवं परम्परा का रंग-भर चढ़ जाता ि ै। यहद इसका अथ शयि समझा जाए कक भूतकाल के प्रतत भारतीय पवचारकों के मन में एक पवर्ेष प्रततष्िा का भाव पवद्यमान ि ै, त्जसके कारण ि ी 'पुरानी बोतल में नई महदरा' की लोकोत्तत के अनुसार इस देर् के पवचारक पुराने ेपवचारकों में नए पवचारों का केवल पुट देते रिे ि ैं तो ि म पिले ि ी कि चुके ि ैं कक भारतीय मत्स्तष्क का यि एक पवमर्ष्ट स्वरूप ि ै। इस देर् में प्रगतत का अथ शिै, पुरातनकाल के सब अच्छे अंर्ों को साथ लेकर उनमें कुछ और नई सामग्री जोड़ देना; अथात्श, ् पूवपुशरुषों के पवश्वास को उत्तराधधकार के रूप में पाकर वतमशान समय की भावना के अनुकूल उसमें पररवतनश कर लेना। यहद भारतीय दर्नश को इन अथों में तन:सार एवं तनरथकश कि जाए कक वि पवज्ञान की उन्नतत को अपने अन्दर धारण निीं करता तो इस प्रकार की तन:सारता नई पीढ़ी के लोगों की र्दत्ष्ट में सभी पुराने ेपवषयों में पाई जाती ि ै। उतत समीक्षा ने त्जस प्रकार की धारणा बना रखी ि ै, वैज्ञातनक पवकास उस प्रकार का कोई पवर्ेष पररवतनश अभी तक दार्तशनक ज्ञान के तत्त्व में निीं ंला सका ि ै। अपनेवैज्ञातनक स्वरूप में जो मसद्धान्त अधधक क्रात्न्तकारी प्रतीत ि ोतेिैं- जैसेकक जीवर्ास्त्र-सम्बन्धी पवकासवाद का मसद्धान्त एवं ंभौततक जगत् ्में सापेक्षतावाद का मसद्धान्त उन्िोंने सवसशम्मत दार्तशनक मसद्धान्तों का प्रमयाख्यान करने के स्थान पर नवीन क्षेत्र में उनका समथनश ि ी ककया ि ै।

प्रगततर्ीलता के अभाव अथवा त्स्थरता का आरोप तब आता ि ै जब ि म पिले मिान भाष्यकारों के बाद के समय पर पिुंचते ि ैं। भूतकाल के प्रभाव के अधधक बोणझल ि ोनेसे आगे के उपक्रम में बाधा उपत्स्थत ि ो गई और मध्यकाल के सम्प्रदायवाहदयों के समान पंडडताऊ ढंग का बौद्धधक ऊिापोि, और प्रामाण्य एवं ंपरम्परा के मलए विी सम्मान, और उसी प्रकार के आध्यात्ममक पक्षपात की अनधधकार चेष्टा इमयाहद की सृत्ष्ट ि ो गई। भारतीय दार्तशनक यहद अधधक स्वतन्त्रता के साथ काय शकर सकता तो पररणाम किीं ंअधधक उत्तम ि ो सकता था। दर्नशर्ास्त्र के सजीव पवकास के तारतम्य के मलए सृजनाममक र्तत की धारा को तनरन्तर प्रवाहित ि ोते

 देनेके मलए संसार के सजीव आन्दोलनों के साथ सम्पकश आवश्यक ि◌ै, त्जससे पवचार-स्वातन्त्र्य को प्रोमसिान
प्राप्त ि◌ो सके। संभव ि◌ै कक भारतीय दर्नश, त्जसने ◌ेअपनी क्षमता एवं ◌ंर्त्तत अपनी राजनीततक स्वतन्त्रता के साथ-साथ खो दी थी, इस नए युग में, जो ि◌मारे सामने आ रिा ि◌ै, एक नई प्रेरणा और नई स्फूतत शप्राप्त कर सके। यहद भारतीय पवचारक, प्राचीनता के प्रतत जो उनका स्वाभापवक मिो ि◌ै उसके साथ-साथ, समय की पपपासा को भी धारण कर सकें तो भारतीय दर्नश का भपवष्य उसके उज्जज्जवल भूतकाल के सामने ि◌ी अब भी उज्जज्जवल ि◌ो सकता ि◌ै।

4. भारतीय दर्नश के अध्ययन का मित्त्व

केवल पुरातत्त्व-सम्बन्धी अनुसंधान के एक अंर् के रूप में ि◌ी भारतीय पवचारधारा के अध्ययन का औधचमय पूरा निीं ◌ंि◌ो सकता। पवर्ेषे-पवर्ेषे पवचारकों की कल्पनाएं अथवा भूतकाल के पवचार अपना पवर्ेषे मित्त्व रखते ि◌ैं। ऐसा पवषय, त्जसने ◌ेककसी समय पुरुषों एवं ◌ंत्स्त्रयों की रुधच प्राप्त की ि◌ै, ि◌मेर्ा के मलए और पूणतशया अपने ओज को निीं ◌ंखो सकता। वैहदक आयों के पवचार-र्ास्त्र में ि◌म ब्र–े ब्र ◌ेर्त्ततर्ाली मत्स्तष्कों को उन उच्चतम समस्याओं के साथ, जो मनुष्य को पवचार करने ◌ेकी प्रेरणा प्रदान करती ि◌ैं, जूझते ि◌ुए पाते ि◌ैं। ि◌ेगल के र्ब्दों में, "दर्नशर्ास्त्र का इततिास अपनेसिी अथों में भूतकाल-मात्र का ि◌ी प्रततपादन निीं ◌ंकरता ककन्तु तनमय, र्ाश्वत और वास्तपवक वतमशान काल के साथ भी सम्बन्ध रखता ि◌ै और अपने पररणामरूप में मानव-बुद्धध के नैततक ि◌ास का एक अजायबघर न ि◌ोकर उस देवालय के समान ि◌ै त्जसमें समस्त मानव-बुद्धध के अन्ततनहशित तकश की, मभन्न-मभन्न त्स्थततयों के प्रततततनधधस्वरूप देवताओं के समान, आकृततयां ◌ंसुरक्षक्षत रखी ि◌ुई ि◌ैं।"[25] भारतीय पवचार का इततिास वि निीं ि◌ै जैसाकक पिले ि◌ी साक्षामकार में प्रतीत ि◌ोता ि◌ै-अथाशत् ◌्केवल, पारमाधथकश पवचारों का अनुक्रम, त्जसमें एक के बाद दूसरा पवचार आता चला गया ि◌ै।

दर्नशर्ास्त्र को मिाबिलाव का साधन बनाना बिुत आसान ि◌ै, तयोंकक उन लोगों के मलए जो ऐत्न्द्रय पवषयों में ि◌ी मलप्त रिते ि◌ैं और एक अव्यवत्स्थत रूप में पवचार करते ि◌ैं, दार्तशनक समस्याएं अवास्तपवक प्रतीत िोती ि◌ैं और उन्ि◌ें इस पवषय में तनस्सारता की गन्ध आती ि◌ै। पवरोधी समालोचक दार्तशनक वाद-पववाद को व्यथ श समय नष्ट करनेवाली ताककशक काट-छांट एवं ऐसा बौद्धधक इन्द्रजाल समझता ि◌ै, जो पिले मुगी या पिले अंडा'[26] इस प्रकार की पिेमलयों से ि◌ी भरा ि◌ै। भारतीय दर्नश में पववाद-पवषयक समस्याएं अनाहदकाल से उलझन में डालती आई ि◌ैं और कभी भी उनका समाधान सबके मलए संतोषजनक रूप में निीं ि◌ो सका। ऐसा प्रतीत ि◌ोता ि◌ै कक आममा एवं परमाममा को जानने ◌ेकी उमकट इच्छा मनुष्य- जातत की अतनवाय शआवश्यकताओं का पवषय रिी ि◌ै। प्रमयेक बुद्धधमान व्यत्तत जब इस पवषय पर पवचार करता ि◌ै कक वि बबना किीं ◌ंबीच में ि◌िरनेके जन्म और मृमयु के बीच जीवन-रूपी बाढ़ में बिता ि◌ै-त्जस तनरन्तर बिती ि◌ुई धारा की बाढ़ में वि कभी ऊपर की ओर

25 'लॉत्जक' पृष्ि 137, वैलेस कृत अनुवाद।

26 अन्ततोगमवा यि प्रश्न इतना मामूली अथवा दोषरहित निीं ि◌ै जैसाकक प्रतीत ि◌ोता ि◌ै। देखें, सैमैुएल : 'लक ऑक कतनंगं' ।

और कभी नीचे की ओर उछाल हदया जाता ि, तब वि यि प्रश्न करनेके मलए पववर् िो जाता ि कक माग शकी कुछ छोटी-छोटी ध्यान बंटानेवाली घटनाओंको छोक़र, अन्ततोगमवा इस सब गतत का प्रयोजन अथवा अत्न्तम लक्ष्य तया ि। दर्नशर्ास्त्र भारत की जातीय स्वभावगत पवलक्षणता निीं, बत्ल्क मानवीय हितों का पवषय ि।

यादे िम पेर्वेर दर्नश को एक ओर रख दें, जो अवश्य एक तनरथकश वस्तु िो सकता ि, तो भारत में िमें पवचार-र्ास्त्र-सम्बन्धी एक सवोत्तम पवकास र्दत्ष्टगोचर िोता ि। भारतीय पवचारकों के पररश्रम के पररणाम मानव-ज्ञान की उन्नतत के मलए इतने ित्त्व के िैं कक उनमें प्रकट भूलों के रिते िुए भी उनके ग्रन्थों को अध्ययन के योग्य समझतीं। यहद ममथ्या तकश, त्जसने भूतकाल में दार्तशनक पद्धततयों का पवनार् ककया, दर्नशर्ास्त्र को एकदम मयाग देनेका कारण िो सकता ि, तब केवल भारतीय दर्नश को िी तयों, समस्त प्रकार के दर्नशर्ास्त्र को िी मयाग देना चाहिए। अन्ततोगमवा अपवचल समय का अवमर्शर्- त्जसे मानवीय पवचारधारा की मित्त्वपूण शदेन के रूप में स्वीकार ककया जाना चाहिए, यिां तक कक पत्श्चम के प्लेटो और अरस्तू सरीखे प्रमसद्ध पवचारकों को भी इसका अंर् ममला-कोई बुित बड़ी वस्तु निीं ि। प्लेटो की अमयधधक जोर्ीली कपवताओं, अथवा डेकाटश के तनजीव रूहढ़वाद का, ह्यूम के रुक्ष अनुभूततवाद एवं िीगल के भ्रामक िमवाभासों का उपिास करना सरल ि ककन्तु तब भी इसमें सन्देि निीं कक इस सबके िोते िुए भी िमें उनके अध्ययन से लाभ िी िोता ि। यिांतक कक यद्यपप भारतीय पवचारकों द्वारा आपवष्कृत थो़े से िी मित्त्वपूण शतथ्यों ने मानवीय पवचाररर्ास्त्र के इततिास की रचना की ि तो भी बादरायण अथवा र्ंकर प्रभृतत द्वारा प्रकट ककए गए संश्लेषणाममक और क्रमबद्ध पवचार मानवीय पवचाररर्ास्त्र में युगान्तरकारी घटनाओंके रूप में और मानवीय प्रततभा के स्मारक के रूप से पवद्यमान रिेंगे।'[27]

भारतीय पवद्याथी के मलए केवल भारतीय दर्नशर्ास्त्र का अध्ययन िी अपने-आप में भारत के र्ानदार भूतकाल का सिी-सिी धचत्र उपत्स्थत कर सकता ि। आज भी एक औसत दजे का हिन्दू अपनेपुराने दर्नशर्ास्त्रों, बौद्धदर्नशों, अद्वैतदर्नश, एवं द्वैतवाद सबको एक समान योग्य और युत्ततयुतत मानता ि। इन र्ास्त्रों के रचतयताओं की भगवान की तरि पूजा िोती ि। भारतीय दर्नश का अध्ययन िमारे सामने त्स्थतत को

---

27 पत्श्चम के अनेक पवद्वान भारतीय दर्नश के मित्त्व को स्वीकार करते िैं। दूसूरी ओर जब िम ध्यान देकर पूवदेशर्ों के कपवतामय एवं दार्तशनक आन्दोलनों का अध्ययन करतीं और उन सबसे भी ऊपर भारतीय पवचारधाराओं का अध्ययन करतीं, त्जनका अब यूरोप में प्रसार बढ़ रिा ि, िमें उनके अन्दर समय एवं इतने गम्भीर समय हदखाई देते िैं कक त्जनकी प्रततद्वन्द्पवता में यूरोप के ब़े-ब़े मेधावी पवद्वानों के पवचार तुच्छ रि गए िैं और िमें िठात् पूव शके सामने घुटने टेक देने पड़ते िैं। इस मनुष्य-जातत की आहदम र्ैर्वावस्था के इस आश्रय-स्थान में सबसे उच्च श्रेणी के दार्तशनक ज्ञान का लाभ प्राप्त करते िैं। (पवतटर कत्न) "यहद मुझे अपने अन्दर यि त्जज्ञासा उमपन्न िो कक िमें जो, यूरोप में जो केवल ग्रीक रोमन सैमेहटक यिूदी जातत के पवचारों पर िी पले िैं, ककस साहिमय से सिी-सिी प्रेरणा ममल सकती ि त्जसकी कक अमयन्त आवश्यकता ि और त्जससे िमारा आभ्यन्तर जीवन अधधक पूणतशा को प्राप्त कर सके, अधधक व्यापक एवं तनमय बन सके, एक ऐसा जीवन जो केवल इसी वतमशान जीवन के मलए निीं अपपतुभपवष्य के मलए भी उदात्त िो-तो म कफर से भारत की ओर िी संकेत करूंगा।" (मेतसमूलर)। "उन राष्ट्रों में त्जनके पास अपना दर्नश एवं अपनी अध्याममपवद्या ि और इन पवषयों के प्रतत जन्मजात रुधच व आकांक्षा ि, जैसी कक आज के जमनशी की पवर्ेषता ि और पुराने ज़माने में यूनान की पवर्ेषता थी, काल की र्दत्ष्ट से भारत का स्थान सवप्रशथम ि।" (वीर)

स्पष्ट कर सकता िै और अधधक सन्तुमलत रूप में र्दत्ष्टकोण को एवंमन को इस तनरंकुर् भाव से, कक प्राचीन जो कुछ िै अपने-आप में पूण शि, दूरू करके स्वतन्त्र पवचार करनेके योग्य बना सकता िै। प्रामाण्य की दासता से मन की इस प्रकार की मुत्तत एक आदर् शि, त्जसके मलए प्रयमन िोना चाहिए। तयोंकक जब दासता के बन्धन से बुद्धध स्वतन्त्र िो जाएगी तब मौमलक पवचार और रचनाममक प्रयमन भी सम्भव िो सकेंगे। आज के भारतीय के मलए अपने देर् के प्राचीन इततिास का ब्यौरेवार ज्ञान िोना एक पवषादाममक सन्तोष भी िो सकता िै। वृद्ध पुरुष अपनी युवावस्था के ककस्सों से सन्तोष प्राप्त करते िैं, और इसी प्रकार दूपूषत वतमशान को भूलने ेका भी एक ीि माग शि कक िम सुन्दर भूतकाल का अध्ययन करें।

5. भारतीय पवचारधारा के पवमभन्न काल

जब िम केवल हिन्दुओंके दर्नश-सम्बन्धी पवषय का प्रततपादन कर रिे िैं, जोकक उन अन्यान्य जाततयों की दर्नश-पद्धततयों से मभन्न िै त्जनका भारत में अपना स्थान िै, तब इस पवषय को 'भारतीय दर्नश' का र्ीषकश तयों हदया जाए, इसकी युत्ततयुतता दर्ानशा िमारे मलए आवश्यक िो जाता िै। इसका सबसे अधधक स्पष्ट और सुगम कारण इस पररभाषा का सामान्य प्रयोग में आना िै। आज भी भारत मुख्यांर् में हिन्दू िैू। और यिां ंिमारा प्रततपाद्य पवषय भी भारतीय पवचार के 1000 ईस्वी अथवा कुछ उपरान्त तक के काल का इततिास ैि। इस समय के पश्चात् ्िी हिन्दू ूजातत का भाग्य अन्यान्य अहिन्दू ूजाततयों के साथ अधधकाधधकजुड़ता गया।

भारतीय पवचार के तनरन्तर पवकास को पवमभन्न लोगों नेपवमभन्न समयों में अपनी-अपनी भेंट अपपतश की िै, कफर भी उन सब पर भारतीय आममा के बल की छाप स्पष्ट हदखाई देती िै। इस पवकास की िीकनीक क्रमबद्धता के पवषय में यद्यपप िम तनत्श्चत रूप से कुछ निीं ंकि सकते, कफर भी िम भारतीय पवचार को ऐततिामसक र्दत्ष्ट से देखने का प्रयमन करेंगे। पवर्ेषे सम्प्रदायों के मसद्धांत अपनी-अपनी पररत्स्थततयों की अपेक्षा रखते िैं और इसमलए उनका तनरीक्षण उनके साथ िी करना उधचत िोगा, अन्यथा िमारे मलए उनके अन्दर ककसी प्रकार का जीपवत आर्य खोजना कहिन िोगा और वि एक प्रकार की मृतप्राय परम्परा मात्र िी मसद्ध िोगी। दर्नशर्ास्त्र की प्रमयेक पद्धतत अपनेसमय के मित्त्वपूण शप्रश्न का एक तनश्चयाममक उत्तर िै और इसमलए जब उस पर उसी र्दत्ष्टकोण से पवचार ककया जाएगा, तभी प्रतीत िोगा कक उसमें समय की कुछ मात्रा अवश्य िै। दार्तशनक तत्त्व तनश्चयाममक अथवा भ्रमाममक स्थापनाओं के पुंजमात्र निीं ंिैं, अपपतु एक पवचारधारा की अमभव्यत्तत एवं पवकास के रूप में िैं, त्जसके साथ और त्जसके बीच िमें अवश्य तादामम्य प्राप्त करना चाहिए, यहद िम जानना चािते िैं कक उतत पद्धततयों ने अमुक रूप ककस प्रकार और तयों धारण ककया। दर्नशर्ास्त्र का इततिास के साथ एवं ंबौद्धधक जीवन का सामात्जक अवस्थाओं के साथ जो पारम्पररक संबंध िै, उसका ज्ञान िमें अवश्य िोना चाहिए।'[28] ऐततिामसक पवधान के अनुसार सम्प्रदायों के परस्पर पवरोध में ककसी एक का पक्ष लेना अनुधचत िै, बत्ल्क तनतान्त तनष्पक्ष भाव से पवकास का अनुसरण करना चाहिए।

[28] वाल्टर पीटर की भांतत "जैसे अद्भुत रूप से मुा िुआ एक ची़ का वृकूष, जोकक ककसी इंगमलर् मैदैान में मात्र प्रकृतत की लीला िी िोगा, िमें देखने को ममले और िम अपने पवचार में उसकी जगि आल्प्स पवतश की प्रचण्ड जलधारा के संघषमशय

ऐेततामसक र्दत्ष्ट से उतत पवधध के परम आवश्यकता का मित्त्व समझतेुिए भी िमें दुुःख से किना पता ि कक प्राचीन लेखों में काल और ततधथयों का सवथशा अभाव रिनेके कारण िम उतत पद्धततयों के तनमाणश का ीकिीक काल-तनणयश करने मेें अपनेको असमथ शपाते िैं। प्राचीन भारतीयों का स्वभाव इतना अनैततामसक अथवा संभवतः इतना दार्तशनकज्ञानातीत था कक िम दार्तशनकों की अपेक्षा दर्नश-पद्धततयों के पवषय में अधधक जानते िैं। बुद्ध के जन्म के समय से भारतीय कालक्रम-पवज्ञान अधधक अच्छी त्स्थतत में आ गया। बौद्धमत के अभ्युदय के काल में िी फारस (ईरान) की र्तत का पवस्तार एककमेतनडी राजवंर् के र्ासन के अन्तगतश बढ़ते-बढ़ते मसन्धु ुनदी तक पिुंच गया था। किा जाता ि कक पत्श्चम में भारत-पवषयक ज्ञान इसी समय िेकाहटययस और िेरोडोटस द्वारा पिुंचाया गया।

भारतीय दर्नशर्ास्त्र के मुख्य पवभाग तनम्नमलणखत िैं :

(1) वैददि िाल (1500 ई० पूव शसे 600 ई० पूव शिि): वि समय ि जबकक भारत में आय शलोगों ने अपने आवासस्थानों का तनमाणश ककया और उसके साथ-साथ इस देर् में आय शसंस्कृतत व सभ्यता का धीरे-धीरे पवस्तार और प्रसार िुआ। यि वि समय ि त्जसमें वनों के पवश्वपवद्यालयों का अभ्युदय िुआ। और इन पवश्वपवद्यालयों से भारत के उच्च आदर्वशाद का प्रादुभुावश िुआ। इस काल में िम पवचार के बदलते िुए स्तर को स्पष्ट भेद के कारण देख सकतिैं, जो मन्त्रों अथवा सूततों एवं ब्राह्मणों और उपतनषदों के रूप में प्रकट िुआ। इस युग के पवचार यथाथ शरूप में दार्तशनक निीं ंि। यि अन्धकार में टटोलने का काल ि, जिां ंममथ्या पवश्वास और पवचार में अब भी परस्पर भेद और द्वन्द्व पवद्यमान था। कफर भी, पवषय को एक व्यवस्था में रखनेऔर उसे मसलमसला देनेके पवचार से यि िमारे मलए आवश्यक िो जाता ि कक िम ऋग्वेद के सूततों के र्दत्ष्टकोण की व्याख्या करते िुए उपतनषदों के मत का भी प्रततपादन करें।

(2) महािाव्यिाल (600 ई० पू० से 200 ई० पश्चाि) ्का पवस्तार उपतनषदों और दर्नशर्ास्त्रों के पवकासकाल तक ि। रामायण और मिाभारत के मिाकाव्य मानव में तनहित एक नवीन वीरमव एवं ंदेवमव के संदेर् को फैलाने े का माध्यम मसद्ध िुए। इस काल में उपतनषदों के पवचारों का प्रजातन्त्रीकरण िोकर बौद्धधम,श एवं ंभगवद् गीता में उनका संक्रममत िोना पाया जाता ि। बौद्धधम,श जैनमत, र्ैवमत एवं वैष्णवमत की पद्धततयांसब इसी काल की िैं। अमूत शपवचारों का पवकास भी जो भारतीय दर्नश के मभन्न मभन्न सम्प्रदायों में पररणत िुआ, इसी काल की देन ि। बिुत से दर्नशों का प्रारम्भकाल बौद्धधम शके अभ्युदयकाल के साथ-साथ ि और वे अनेक र्तात्ब्दयों तक साथ-साथ पवकमसत िोते रि, कफर भी उन सम्प्रदायों के क्रमबद्ध ग्रन्थों का तनमाशण-काल बाद का ि।

बल का ध्यान करें और उसेआवश्यकता की उपज समझ लें त्जसनेउसे यि आकृतत दे दी ि, िीक उसी प्रकार ब्रह्म े अद्भुत पवश्वास भी, जब उनका सम्बन्ध अपने चारों ओर की अवस्थाओं से िो, अपने स्वाभापवक औधचमय में आ जाते िैं, और यथाथ शमें वे एक प्रकार से उनके भाग िी िैं।" ('प्लेटो एण्ड प्लेटोतनज्जम', पृष्ठ 10)।

(3) सूत्रिाल (200 ई.) उसके बाद आता ि◌ै। सामग्री का पुंज बढ़कर इतना अधधक स्थूल ि◌ो गया कक दर्नशों के ज्ञान को सूक्ष्म रूप में उपत्स्थत करने ◌ेकी आवश्यकता अनुभव ि◌ोनेलगी। इस न्यूनीकरण एवं ◌ंसमवातयकरण ने सूत्रों का रूप धारण ककया। ये सूत्र बबना उसकी टीकाओं की सिायता के समझ में निीं ◌ंआ सकते, यिांतक कक टीकाओं का मित्त्य स्वयंसूत्रों से भी अधधक बढ़ गया। यिांमिें दार्तशनक क्षेत्र में समीक्षाममक प्रवृपृत्त पवकमसत िोती हदखाई देती ि◌ै। इसमें सन्दिे निींकक इससे पूववशती कालों में िमें दार्तशनक वाद-पववार ममलतेिैं, जिां ◌ंमन ने जो कुछ उसे ◌ेबताया गया उसे तनतष्क्रयभाव से स्वीकार निीं ◌ंककया बत्ल्क स्वयंभी पवषय पर आक्षेप उिाकर और उनका उत्तर देते ि◌ुए उनका पववेचन ककया। अपनेआत्ममक ज्ञान द्वारा पवचारकों ने कुछ ऐसे सामान्य मसद्धान्त त्स्थर ककए जो उनिी दृत्ष्ट में पवश्व के समस्त रूपों की व्याख्या करते ि◌ुए प्रतीत ि◌ुए। दार्तशनक संश्लेषण चािे ककतने ि◌ी पूण शऔर तीक्ष्ण तयों न ि◌ों, पूवू शपववेचनारहित ि◌ोने ◌ेके कारण, काण्ट की पररभाषा में, बराबर दोषपूण शरिे ि◌ैं। दार्तशनक समस्याओं के समाधान की र्त्तत मनुष्य के अन्दर ककतनी ि◌ै, इस पवषय की पिले से पववेचना ककए बबना मानव ने जगत् ◌्को देखा और पररणामों पर पिुंच गया। प्रारत्म्भक प्रयमन जगत् ◌्को समझने ◌ेऔर उसकी व्याख्या करने ◌ेके पवषय में यथाथ शमें दार्तशनक प्रयमन निीं ◌ंथे, तयोंकक मानव-मत्स्तष्क की योग्यता के पवषय में ककसी ने इस प्रकार की आर्ंका निींकी कक उसके त्जन साधनों का प्रयोग ककया गया, उसमें काय-शक्षमता थी या निीं,◌ं या त्जस मानदण्ड का प्रयोग ककया गया वि भी िीक था या निीं,◌ं इमयाहद। जैसा कक केयड शने मलखा ि◌ै कक मन 'उस समय पदाथ शको ध्यान से देखने में अमयन्त व्यग्र' था।'[29] इसमलए जब िम सूत्रकाल में आते ि◌ैं तो उस समय में केवल रचनाममक कल्पना और धाममकश स्वातन्त्र्य ि◌ी निीं, पवचार एवं ◌ं धचन्तन को भी अधधक स्वयंचेतनरूप में पातेिैं। दर्नशर्ास्त्रों के सम्बन्ध में भी िम तनश्चयपूवकश निीं ◌ंकि सकतेकक इनमें से कौन प्राचीन ि◌ैं और कौन अवाचशीन। इस पवषय में बराबर पवरोधी उद्धरण ममलते ि◌ैं। योगदर्नश सांख्य की सत्ता स्वीकार करता ि◌ै, वैर्ेपषक न्याय और सांख्य दोनों की सत्ता को स्वीकार करता ि◌ै, न्याय में वेदान्त और सांख्य का पववरण पाया जाता ि◌ै, मीमांसा प्रमयक्ष और परोक्ष रूप में अन्य सब दर्कशों के पूव-शअत्स्तमव का पता देती ि◌ै, और इसी प्रकार वेदान्त में भी अन्य सब दर्नशों का ि◌वाला आता ि◌ै। प्रोफेसर गाब श का मत ि◌ै कक सांख्य सबसे पुराना सम्प्रदाय ि◌ै। उसके पश्चात् ◌्योगदर्नश आया, इसके पश्चात् ◌्मीमांसा और वेदान्त और सबसे अन्त में वैर्ेपषक और न्याय। सूत्रकाल और टीकाकारों के पात्ण्डमय-प्रदर्नश काल के बीच कोई पवभाजन रेखा निीं ◌ंखींची जा सकती। ये दोनों काल आज तक पवस्तृत ि◌ैं।

(4) टीिािाल भी ईसा के पश्चात् ◌्दूसूरी र्ताब्दी से आरम्भ ि◌ोता ि◌ै। इस काल और इससे पूव शके काल के बीच में कोई स्पष्ट पवभाजन रेखा निीं ◌ंखींची जा सकती। कफर भी इसी काल में िमें ब़े-ब़े ◌ेपवचारकों यथा कुमाररल, र्ंकर, श्रीधर, रामानुज, माध्व, वाचस्पतत, उदयन, भास्कर, जयन्त, पवज्ञानमभक्षु और रघुनाथ आहद का नाम सुनाई देता ि◌ै। उतत काल का साहिमय र्ीघ्र ि◌ी र्ास्त्राथों और पववादों में ग्रस्त ि◌ो जाता ि◌ै। िमें इस काल में ताककशकों का एक जमथा ममलता ि◌ै, कोलािलपूण शवाद-पववाद में रत, अमयन्त सूक्ष्म मसद्धान्तों में मलप्त और युत्तत व प्रमाणों का सूक्ष्म ताना-बाना बनानेवाले ताककशक, जो सामान्य स्थापनाओं पर परस्पर वातयुद्ध करते

29 'कक्रहटकल कफलासफी आफ कांट ', खण्ड़ पृष्ि 2।

रि। बुित से उन भारतीय पवद्वानों ने अपनेब्र-ेब्र ेग्रंथों को खोलने में संकोच ककया। जो ज्ञान का प्रकार् देने की अपेक्षा अधधकतर िमें असमंजस में डालनेका कारण बनते िैं। उसकी कुर्ाग्रबुद्धध एवं ंउमसिा से कोई इनकार निींकर सकता। ककन्तु ुइन टीकाकारों में पवचारों के स्थान पर केवल र्ब्द ममलतेिैं, दर्नशर्ास्त्र के स्थान में तकशर्ास्त्र की काट-छांट, पवचार की अस्पष्टता, ताककशक जहटलता और मनोवृपत्त की असहिष्णुता पाई जाती िै, जो बुित खेदजनक िै। इनसे उत्तम श्रेणी के भाष्यकार तनःसन्दिे उतने िी मित्त्वपूण शिै त्जतने ेकक प्राचीन पवचारक स्वयंथे। र्ंकर और रामानुज जैसे भाष्यकार प्राचीन मसद्धान्तों को कफर से त्स्थर करते िैं और उनके द्वारा की गई यि पुनःस्थापना आध्यात्ममक खोज के समान िी मित्त्वपूण शिै।

भारतीय दर्नश के कुछ इततिास भारतीय पवचारकों द्वारा मलखे गए ममलते िैं। लगभग सभी अवाचशीन टीकाकार अपने-अपनेर्दत्ष्टकोण से दूसूरों के मसद्धान्तों पर वाद-पववाद करते िैं। इस माग शसे प्रमयेक टीकाकार मिें अन्य मतों का पता दे जाता िै। कभी-कभी तो अन्य ककतनी िी दार्तशनक पद्धततयों पर तनरन्तर रूप से और जान-बूझकर पववाद ककया गया िै। इस प्रकार के कुछ मुख्य ऐततिामसक पववरण यिां ंहदये जाते िैं। िररभद्र द्वारा रधचत30' एक ग्रन्थ िै त्जसका नाम 'षड्दर्नशसमुच्चय' िै, त्जसमें छिों वैहदक दर्नशों का सार-संग्रि ककया गया िै। बताया जाता िै कक सामन्तभद्र नामक एक हदगम्बर जैन ने, जो छिी र्ताब्दी में िुआ, 'आमममीमांसा' नामक ग्रन्थ मलखा िै, त्जसमें नाना प्रकार के दार्तशनक सम्प्रदायों की समालोचना की िै।31 एक माध्यममक बौद्ध, त्जसका नाम भावपववेक िै, 'तकशज्जवाला' नामक ग्रन्थ का तनमातशा िै, त्जसमें उसनेमीमांसा, सांख्य, वैर्ेपेषक और वेदान्त सम्प्रदायों की आलोचना की िै। पवद्यानन्द नामक एक हदगम्बर जैन ने अपने 'अष्टसिस्री' नामक ग्रंथ में, और मेरुतुंग नामक एक अन्य हदगम्बर जैन ने 'षड्दर्नशपवचार' (1300 ई०) नामक ग्रन्थ में, िि जाता िै कक, हिन्दूदूर्नशर्ास्त्रों की समालोचना की िै। प्रमसद्ध वेदान्ती माधवचाय शके 'सवदशर्नशसंग्रि' नामक ग्रन्थ में भारतीय दर्नश का सवाधशधक प्रचमलत पववरण हदया गया िै। माधवाचाय शने 14वीं

---

30 श्री बाथ शकिते िैं: "िररभद्र, त्जसकी ममृयु जनशु्रुतत के अनुसार 529 ई० पू० में िुई ककन्तुएक अधधक पवश्वस्त प्रमाण के आधार पर जो 9वींर्ताब्दी में भी जीपवत था और त्जसके समान नामों वाले अन्य भी कई व्यत्तत थे, एक ब्राह्मण था त्जसने जैनमत स्वीकार कर मलया था। वि 1400 प्रबन्धों का रचतयता था और मालूम िोता िै कक सबसे प्रथम उसने िी श्वेताम्बर जैन-सम्प्रदाय के र्ास्त्रीय साहिमय में संस्कृत भाषा का प्रवेर् कराया। ब्राह्मण लोग षड्दर्नशों से दो मीमांसाओं, सांख्य और योग, न्याय और वैर्ेपेषक को ग्रिण करतेिैं। जबकक दूसूरी ओर इसी र्ीषकश के नीचे ेबुित संक्षेप में 87 श्लोकों के अन्दर, ककन्तु बबलकुल तनष्पक्ष र्दत्ष्ट से िररभद्र ने बौद्धधम,श जैनधम शएवं न्याय, सांख्य, वैर्ेपषक और मीमांसार्ास्त्र के अनुयातययों के मसद्धान्तों की व्याख्या की िै। इस प्रकार उसनेअपना एक पृथक सम्प्रदाय चुना िै, त्जसके साथ जैतनयों का मत अधधक मेल खाता िै और इस सम्प्रदाय को उसनेअपने दोनों घोर पवरोधी बौद्धमत एवं जैममनी के कमकशाण्डपरक सम्प्रदाय के बीच स्थापपत ककया। अन्त में जाकर वि इन दोनों को को भी लोकायत एवं भौततकवादी चावाकश की िी श्रेणी रखता िै, केवल अपने तनजी पवचार से या साम्प्रदातयक भाव से िी निीं, ककन्तु उस समय के ब्राह्मण लोग भी उतत दोनों सम्प्रदायों के पवषय में ऐसा िी मत रखतेथे।" (इंडडयन एहटकरी, पृष्ि 66, 1895)

31 पवद्याभूषूण, 'मेडीवल मसस्टम्स आफ इंडडयन लॉत्जक', पृष्ि 23।

र्ताब्दीमें दक्षक्षण भारत में जन्म मलया था। रं्करस्वामी के 'सवमशसद्धान्त-सारसंग्रि'[32] और मधुसूदन सरस्वतीके 'प्रस्थानभेद'[33] में भी पवमभन्न दार्तशनक मसद्धान्तों का उपयोगी वणनश पाया जाता ि।ै

दूसूरा अध्याय

ऋग्वेद िी ऋचाएं

वेद-वैहदक सूततों के अध्ययन का मित्त्व वेदों की मर्क्षाएं-दार्तशनक प्रवृपृत्तयााँ-परमाथपशवद्या-अद्वैतवादी प्रवृपृत्तयां–एकेश्वरवाद बनाम अद्वैतवाद-सृतूष्ट पवज्ञान-धम-श नीततर्ास्त्र-परलोकर्ास्त्र-उपसंिार

1. वेद

वेद मानव-मत्स्तष्क से प्रादुभूतश ऐसे तनतान्त आहदकालीन प्रमाणणक ग्रन्थ िैं, त्जन्िं िम अपनी तनधध समझर्तैं। पवल्सन मलखता ि,ै "जब ऋग्वेद और यजुवेद की मूलसंहिताएं पूण शिो जाएंगी उस समय िमारे पास इतनी पयाप्शत सामग्री िोगी कक िम उनसे तनकाले जानेवाले तनष्कषों का सिी-सिी मूल्यांकन कर सकेंगे और यि मालूम कर सकेंगे कक राजनीततक एवं धाममकश क्षेत्र में हिन्दुओं की वास्तपवक त्स्थतत एक ऐसे युग में तया रिी िोगी, जो सामात्जक संघिन के अब तक के सबसे पूव शके उल्लेख अथात्श ग्रीक सभ्यता के उदय से भी बिुत पिले का समकालीन था और जो अब तक के ज्ञात इततिास में सबसे प्राचीन असीररयन साम्राज्जय के स्मृतृत-धचह्नों से भी पूव-शसम्भवतः प्राचीन िीब्रूलेखों का समकालीन था और केवल ममस्र के उन राज्जयों का िी परवती था, त्जनके पवषय में मसवा कुछ नामों के अभी तक िम बिुत कम जानते िैं। वेदों से िमें उस सबके पवषय में, जो प्राचीनता के बारे में पवचार करनेपर बिुत रोचक प्रतीत िोता ि,ै बिुत बी़ जानकारी ममलती ि ै।'[34]' वेद चार िैं: ऋक्, यजुः, समा, अथव।श पिले तीन परस्पर एक समान िैं, न केवल अपने नाम, आकृतत व भाषा में ककन्तुअपने

---

32 उतत पुस्तक के साथ रं्करस्वामी का नाम जो़ना गलत प्रतीत िोता ि।ै देखें, क्रीच 'इंडडयन लॉत्जक', पृषृ्ठ 242, पा० हट० ३।

33 देखें, मैतसमूलर 'मसतस मसस्टम्स', पृषृ्ठ 75 से84 तक।

34 'जनलश आफ हद रायल एमर्याहटक सोसायटी', खंडं 13, 1852, पृषृ्ठ 206 ।

 अन्तगतश पवषयों में भी। इनमें ऋग्वेद प्रधान ि ै। इसमें उन हदव्य गीतों का संग्रि ककया गया त्जन्ि

आय शलोग

अपनी प्राचीन मातृभूमम से भारत में साथ लाए थे और जो उनकी अमयन्त मूल्यवान तनधध के रूप में थे। तयोंकक जैसा कक आम मत ि ै, जब अपनेनये देर् में उनका सम्पकश अन्य देवताओं की पूजा करने ेवालों के साथ िुआ तो उन्ि उितत गीतों को संभालकर सुरक्षक्षत रखने की आवश्यकता प्रतीत िुई। ऋग्वेद उन्िीं गीतों का संग्रि ि ै।

सामवेद पवरुद्ध कमकशाण्ड-सम्बन्धी संग्रि ि ै। इसका बिुत-सा भाग ऋग्वेद में पाया जाता ि ै और ये सूतत भी जो पवर्ेषकर इनके अपनें, कोई पवर्ेष नई मर्क्षा निीं ेदेते। उन सबको क्रमबद्ध ककया गया ि ै केवल यज्ञों में गानेके मलए। साम की भांतत यजुवेद की उपयोधगता भी कमकशाण्ड के मलए ि ै। कमकशाण्डपरक धम शकी मांग को पूरा करनेके मलए िी इस वेद का संग्रि ककया गया। पवटनी मलखता ि ै, "प्रारत्म्भक वैहदक काल में यज्ञ अभी तक मुख्यतः बन्धन रहित भत्ततपरक कम शथा, जो ककसी पवर्ेषधधकार प्राप्त पुरोहितवग शके सुपदश निीं ंथा, न उनके छोटे-छोटे ब्योरे के मलए कोई पवर्ेष तनयम बनाए गए थे; यज्ञकताश यजमान की िी स्वतन्त्र भावनाओं के ऊपर आधश्रत िोते थे, े और उनमें ऋग्वेद तथा सामवेद के िी मन्त्रों का उच्चारण रिता था त्जससे कक यजमान का मुख, िाथों से देवताओं के तनममत्त हृदय की भावना से प्रेेररत िोकर आिुतत देते समय, बन्द न रि।... ज्जयोंज्जयों समय बीतता गया, कमकशाण्ड ने भी अधधकाधधक औपचाररक रूप धारण कर मलया और अन्त में एक सवथशा तनहदशष्ट एवं सूक्ष्म रूप में यजमान के क्षण-क्षण के व्यापार को तारतम्य में तनयत्न्त्रत कर हदया गया। केवल इतना िी निींकक धाममकश अनुष्ठानिपवर्ेष के मलए पवर्ेष मन्त्र तनयत कर हदए गए, अपपतु ुउसी प्रकार से प्रमयेक वैयत्ततक व्यापार को प्रकट करने ेवाले मन्त्र भी त्स्थर कर हदए गए जो व्याख्या करने, े क्षमा-प्राथनशा करने ेएवं आर्ीवादश देनेमें संकेतरूप से प्रयुतत ककए जानेलगे ।... इन यज्ञ सम्बन्धी मन्त्रों के संग्रि का नाम िी यजुवेद िुआ, त्जसका 'यज्'् धातु ुसे 'यज्ञ करना' अथ शिोता ि ै।... यजुवेद की रचना इन्िीं ंमन्त्रों से िुई ि ै, जो कुछ भाग में

गद्य और कुछ भाग में पद्य के रूप में ि ैं और त्जन्ि मभन्न-मभन्न यज्ञों में उपयुतत िोने ेयोग्य क्रम में रखा गया ि ै।"[35] साम और यजुवेदों का संग्रि अवश्य ऋग्वेद के संग्रि एवं ब्राह्मणग्रन्थों के मध्यवती काल में िुआ िोगा जबकक कमकशाण्ड की स्थापना पूणतशया िो गई थी। अथववेशद को एक दीघकशाल तक वेद के रूप में मान्यता प्राप्त निीं ंिुई, यद्यपप िमारे मतलब के मलए ऋग्वेद के बाद इसी का मित्त्व ि ै, तयोंकक ऋग्वेद के िी समान यि भी स्वतन्त्र पवषयों का एक ऐतततामसक संकलन ि ै। यि वेद बबलकुल एक मभन्न िी भाव से ओतप्रोत ि ै, जो पररवती युग की पवचारधारा की उपज ि ै। यि उस समझौते के भाव की देन ि ै त्जसे वैहदक आयों ने इस देर् के आहदवामसयों द्वारा पूजेजानेवाले नये देवी-देवताओं के साथ समन्वय करने ेके पवचार से अंगीकार कर मलया था।

प्रमयेक वेद के तीन भाग ि ैं, त्जन्ि मन्त्रसंहिता, ब्राह्मण और उपतनषद् नामों से जाना जाता ि ै। मन्त्र अथवा ऋचाओं या सूततों के संग्रि को संहिता किते ि ैं। ब्राह्मणों में उपदेर् एवं ंधाममकश कत्तव्शयों का पवधान ि ै। उपतनषद् एवंआरण्यक ब्राह्मणों के अत्न्तम भाग ि ैं, त्जनमें दार्तशनक समस्याओं की पववेचना की गई ि ै। उपतनषदों के अन्दर िमें देर् की परवती पवचारधारा की कुल मानमसक पृष्ठभूमम देखने को ममलती ि ै। प्राचीन

---

35 अमेररकनओररएंटलसोसायटीप्रोसीडडंग्स', खण्ड 3, पृष्ठ 304 ।

 50 उपतनषदों में से ऐतरेय और कौर्ीतकक का सम्बन्ध ऋग्वेद से िै, केन और छान्दोग्य का साम से, ईर्, तैपत्तरीय
और बृिदारण्यक का यजुवेद से एवं प्रश्न और मुण्डक का अथववेशद से िै। आरण्यकों का स्थान ब्राह्मणग्रंथों और उपतनषदों के बीच िै और जैसैाकक उनका नाम संकेत करता िै, आरण्यक उन पुरुषों के मनन एवं ंधचन्तन के पवषय थे ेजो वनों में रितेथे। ब्राह्मणग्रन्थों में उन कमकशाण्डों का पववेचन िै त्जनका पवधान गृिस्थ के मलए था। ककन्तु ुवृद्धावस्था में जब वि वनों का आश्रय लेता िै तो कमकशाण्ड के स्थान में ककसी और वस्तु ुकी उसे े आवश्यकता िै, और आरण्यक उसी पवषय की पूतत शकरते िैं। याक्षज्ञक सम्प्रदाय के सांकेततक एवं धाममकश पक्षों पर मनन व धचन्तन ककया गया िै और यि मनन िी यज्ञ की पवधध में पररणत िुआ। आरण्यक एक प्रकार से ब्राह्मणों में पवहित कमकशाण्डों एवं ंउपतनषदों के दार्तशनक ज्ञान के मध्यवती संक्रमणकाल की श्रृंखला के रूप में िैं। जिांवैहदकसूतत कपवयों की कृततयां ंिैं,'[36] विांब्राह्मणग्रंथ पुरोहितों की रचनाएं िैं और उपतनषद् दार्तशनकों के मनन एवं धचन्तन के पररणाम िैं। सूततों के स्वरूप का धम,श एवं ंब्राह्मण ग्रंथों का तनयमबद्ध धम शएवं उपतनषदों का भावनामय धम शउन तीन ब्र ेपवभागों के साथ, जो िेगल का धम-शसम्बन्धी पवकास का भाव िै, अमयन्त तनकट रूप में समानता रखते िैं। यद्यपप आगे चलकर ये तीनों पवभाग साथ-साथ पवद्यमान रिे, कफर भी इसमें सन्दिे निीं ंकक प्रारम्भ में इनका पवकास क्रमर्: एक-दूसूरे के पश्चात् ्मभन्न मभन्न कालों में िुआ। उपतनषद् जिां ंएक ओर वैहदक पूजा की परम्परा में िैं, विांदूसूरी ओर ब्राह्मणों के धम शके पवरोध में िैं।

2. वैहदक सूततों के अध्ययन का मित्त्व

ककसी भी भारतीय पवचारधारा की सिी-सिी व्याख्या के मलए ऋग्वेद के सूततों का अध्ययन अतनवाय श रूप से आवश्यक िै। िम उन्िें चािे जो भी रूप दें-अधूरी पौराणणक कल्पनाएं, असंस्कृत रूपक, अन्धकारावृत पवषम माग शमें की गई चेष्टा का पररणाम, अथवा अपररपतव रचनाएं तो भी भारतीय आयों के परवती काल के धाममकश कृमयों एवं ंदार्तशनक ज्ञान के वे आहदस्रोत तो िैं िी, साथ िी उनका अध्ययन परवती पवचारधारा को ठीक-ठीक समझने ेके मलए भी आवश्यक िै। िम एक प्रकार की ताजगी और सादगी, और वसन्तकाल की बयार के समान एवं प्रातःकाल के णखले िुए फूल की भांतत एक अतनवचशनीय आकषणश मानव-मत्स्तष्क के इन सवप्रशथम प्रयत्नों में देखतेिैं, जो पवश्व के रिस्य को अवगत करके उसकी अमभव्यत्तत करने ेके मलए ककए गए थे। वेद की मूलू संहिताएं, जो आज िमें उपलब्ध िैं, उस समय की बौद्धधक स्फूतत शसे प्राप्त िुई िैं जबकक आय श लोग अपनी वास्तपवक मातृभूूतत को छोड़कर इस देर् में आकर बसे थे।े वे अपनेसाथ कुछ ऐसे पवर्ेष भाव एवं ं पवश्वास लाए त्जनका इस देर् की भूमम में पवकास और प्रचलन िुआ। इन सूततों की रचना एवं संकलन के मध्य

समयिेका।एवैनसिमूलसम्संहितामकरलकेश्दोगुभाग करता िै-छन्दकाल
और मन्त्रों का समय।37 पिले भाग में सूततों की रचना िुई। यि एक रचनाममक काल था, त्जसका पवर्ेष स्वरूप

---

[36] ऋग्वेद, 1 164, 6; 10:129, 41

[37] कभी-कभी धाममकश पवश्वासों एवं ंसामात्जक रीततयों के कारण सूततों को भी पांच पवमभन्न कालों में पवभतत ककया जाता िै। देखें, अनाल्शड 'वैहदक मीटर'।

थे। उस
वास्तपवक काव्य था, जबकक मनुष्यों के मनोभाव गीतों के रूप में स्वाभापवक रूप से बिार फूट पते समय यज्ञों का किीं ंपता नीिंचलता। देवताओं के प्रतत केवल प्राथनशा द्वारा िी भेंट दी जाती थी। दूसूरा काल उनके संकलन का िै, त्जसमें उर्न्ें क्रेमबद्ध वगों में सजाया गया। आज त्जस रूप में सूतत िमारे सामने िैं उनका संग्रि अथवा क्रमबद्ध रूप में संकलन इसी समय में िुआ। इस काल में यज्ञपरक पवचारों का भी पवकास िुआ। सूततों का तनमाणश एवं ंसंकलन िीकिीक ककस काल में िुआ, यि पवषय कल्पनामात्र िै। इतना तो िम तनश्चयपूवकश कि सकतेिैं कक ईसा से पन्द्रि र्ताब्दी पूव शउनका प्रचलन था। बौद्धमत, त्जसका प्रचार भारत में लगभग 500 ई. पू० से िुआ, केवल वैहदक सूततों की िी नीिं ंअपपतु ुसमस्त वैहदक साहिमय की पिले से पवद्यमानता को, त्जसमें ब्राह्मणग्रन्थ और उपतनषदें भी िैं, स्वीकार करता िै। ब्राह्मणग्रन्थों में वणणतश यज्ञपद्धततयों को पूणरूशप से त्स्थर िोने के मलए और उपतनषदों में प्रततपाहदत दार्तशनक पवचारों को भी पूणरूशप में पवकमसत िोनेके मलए एक दीघकशाल की आवश्यकता थी।'[38] पवचार के पवकास के मलए, जो इस पवस्तृत साहिमय में प्रकट िै, कम से कम एक िार वष शतो चाहिए िी। उतत साहिमय में त्जस प्रकार की पवपवधता और उन्नतत हदखाई देती िै, उस पर पवचार करते िुए उतत अवधध भी अधधक नीिं ंिै। कई भारतीय पवद्वानों ने वैहदक सूततों का समय 3000 ई. पू. बताया िै, दूसूरों ने 6000 ई. पू., तनधारशरत ककया िै। स्वगीय ततलक इनका समय लगभग 4500 ई. पू., ब्राह्मण ग्रन्थों का समय 2500 ई. पू. और प्राचीन उपतनषदों का 1600 ई. पू. ू तनधारशरत करते िैं। जैकोबी सूततों के तनमाणशकाल को 4500 ई. पू. रखता िै। िम उसके मलए 1500 ई. पूव शका समय रखते िैं और िमें पवश्वास िै कक इसे आवश्यकता से अधधक पूव शका समय किकर कोई इसका पवरोध नीिं ंकरेगा।

ऋग्वेदसंहिता में 1,017 ऋचाएं या सूतत िैं जो कुल 10,600 स्तवकों में िैं। यि आि अष्टकों में पवभतत िैं।39 प्रमयेक में आि अध्याय िैं त्जनका आगे जाकर कफर वगरूशप में लघु पवभाग ककया गया िै। कभी-कभी ये दस मंडलों (चक्रों) में भी पवभतत ककए गए िैं। यि मंडलों वाला पवभाग िी अधधक प्रचमलत िै। पिले मंडल में 191 सूतत िैं और सरसरी तौर पर 15 मभन्न-मभन्न ऋपष इसके रचतयता बताए जाते िैं, जैसे गौतम, कण्व आहद। सूततों के क्रम में एक तनयम काम करता िै। त्जन सूततों में अत्ग्न को सम्बोधन ककया गया िै वे पिले आते िैं, इन्द्र को सम्बोधधत सूतत दूसूरे नम्बर पर और उसके पश्चात् ्अन्य सब। अगले छः मंडलों की रचना एक पवमर्ष्ट पररवार के ऋपषयों ने की, ऐसा किा जाता िै और उनका क्रम भी एक िी समान िै। आिवें मंडल में कोई पवर्ेष क्रम नीिं। पिले मंडल की भांतत इसके भी मभन्न-मभन्न रचतयता बताए जाते िैं। नवें मंडल में सोम को सम्बोधन करते िुए सूतत िैं। आिवें एवं ंनवें मंडल के बिुत-से सूतत सामवेद में भी पाए जाते िैं। दसवां मंडल पीछे से जोड़ा गया प्रतीत िोता िै। िर िालत में इसके अन्दर से पवचार िैं जो वैहदक सूततों के पवकास के अन्तम काल में प्रचमलत थे। यिां ंप्राचीन कपवता की जो प्राकृततक छपव थी वि दार्तशनक पवचार की रुलुक झलक से पीली पड़ गई प्रतीत िोती िै। सृत्ृष्ट के आरम्भ-सम्बन्धी कुछ काल्पतनक सूतत िी ममलते िैं। इन अमूत शपवचारों के साथ-साथ इनके अन्दर ममथ्या पवश्वासयुतत भूतप्ेरेतों को दूरू करनेवाले पवचार भी, जो अथववेशद के काल के िैं, ममधश्रत िैं। जबकक कल्पनापरक भाग इस पवषय की ओर संकेत करता िै कक वि मत्स्तष्क जो पिले गीतामकम

---

38 उनमें से आधुतनक दर्नश-पद्धततयों के बिुत-से पाररभापषक र्ब्द-जैसे ब्रह्म, आमम‍ा, योग, मीमांसा आहद तनकले िैं।

39 आिवें हिस्से को अष्टक किते िैं।

सूततों में अपनेको प्रकट कर रिा था अब अधधक पूणतशा को प्राप्त कर रिा िै, तब इससे यि भी प्रकट िोता िै कक उस समय तक वैहदक आय शइस देर् के आहदमवामसयों के मसद्धान्तों और कक्रया-कलापों से पूरी तरि पररधचत िो गए थे;े और ये दोनों बातें इसका स्पष्ट संकेत िैं कक दसवां मंडल बिुत पीछे की उपज िै।

3. वेदों की मर्क्षाएं

त्जन योग्य पवद्वानों ने इन प्राचीन धाममकश ग्रन्थों का जीवन-भर अध्ययन ककया िै, उनके वैहदक सूततों के भाव के सम्बन्ध में मभन्न-मभन्न मत िैं। फ्लीडरर ने ऋग्वेद की प्राथनशा का प्रारत्म्भक, बच्चों की सी तनश्छल प्राथनशा के रूप में वणनश ककया िै। पपतटेट का मत िै कक ऋग्वेद के आय शएकेश्वरवादी थे, भले िी यि पवचार अस्पष्ट एवं ंपपछड़ा िुआ तयों न िो, रौथ और आयसशमाज के संस्थापक दयानन्द सरस्वती इसी मत से सिमतत प्रकट करते िैं। राममोिनराय की सम्मतत में वैहदक देवता परमब्रह्म के मभन्न-मभन्न गुणों के आलंकाररक प्रततनधध के रूप में िैं। दूसूरे पवद्वानों के मत में, ब्लूमफील्ड भी उनमें िैं, ऋग्वेद के सूतत उस प्राचीन असंस्कृत जातत के यज्ञ के तनममत्त बनाए गए सूतत िैं जो कमकशाण्ड को पवर्ेष मित्त्व देती थी। बगेन का मत िै कक ये सब आलंकाररक भाषा में मलखे गए िैं। प्रमसद्ध भारतीय भाष्यकार सायण सूततों में वणणतश देवताओं की प्राकृततक व्याख्या को स्वीकार करता िै और इसी का समथनश आधुतनक काल के यूरोपपयन पवद्वानों ने भी ककया िै। सायण ने कभी-कभी इन सूततों की व्याख्या प्राचीन ब्राह्मणग्रन्थों के धम शके भाव को लेकर भी की िै। पवमभन्न प्रकार के ये सब मत एक-दूसूरे के पवरोधी िों यि बात निीं,ं तयोंकक वे सब ऋग्वेद के सूततसंग्रि के पवषय-स्वरूप की ओर तनदेर् करते िैं। ऋग्वेद एक ऐसा ग्रन्थ िै, त्जसमें पीढ़ी दर पीढी के पवचारकों के पवचार अंककत िैं और इसीमलए उसके अन्दर भांतत-भांतत के पवचारों का संचय सत्न्नहित िै। मुख्य रूप से िम कि सकतेिैं कक ऋग्वेद तनश्छल एवं ंसरल धम शका प्रततपादन करता िै। सूततों का बिुत बड़ा समूि सादा और सरल िै, जो एक ऐसी धाममकश चेतना की अमभव्यत्तत करता िै, जो परवती समय के छल-कपट से सवथशा रून्यू था। ऋग्वेद में ऐसे सूतत भी िै जो परवती औपचाररक ब्राह्मणग्रन्थों के काल के िैं। कुछ ऐसे सूतत िैं, पवर्ेषेरूप से अत्न्तम मंडल में, त्जसमें जगत् ्के उद्देश्य और उनके अन्दर मनुष्य का स्थान, इस पवषय पर ककए गए चैतन्य पवचारों के पररपतव पररणाम हदए िुए िैं। ऋग्वेद के कुछ सूततों में वणणतश एकेश्वरवाद उन सूततों की पवर्ेषेता िै। इसमें सन्देि निींकक कभी अनेक प्रकार के देवता व्यापक ब्रह्म के िी मभन्न-मभन्न नाम एवं अमभव्यत्तत के रूप में थे।'[40] ककन्तु ुइस प्रकार का एकेश्वरवाद आज तक आधुतनक जगत् ्कक तीव्र ममस्शपर्ी एकेश्वरवाद के समान निीं ंिै।

मिान भारतीय पवद्वान योगी श्री अरपवन्द घोष की सम्मतत में वेद रिस्यमय मसद्धान्तों एवं गूढ़ दार्तशनक ज्ञान से भरे िुए िैं। उनके मत में सूततों में वणणतश देवता मनोवैज्ञातनक व्यापारों के संकेत िैं। सूय शमेधा को उपलक्षक्षत करता िै, अत्ग्न इच्छा को, और सोम मनोभावों को। अरपवन्द के मत में वेद एक रिस्यपूण शधम शिै,

---

[40] देखें,ऋग्वेद 1: 164-46 और 71।

त्जसकी तुलना प्राचीन ग्रीस के आरकफक और इल्यूमसतनयन सम्प्रदायों के साथ की जा सकती ैि। एक प्रकल्पनाममक मसद्धान्त, जो म ैंप्रस्तुत करता िंूं, यि ैि कक ऋग्वेद स्वयंएक उपयोगी प्रामाणणक ग्रन्थ ैि, जो आज िमें उपलब्ध ैि और जो प्राचीनकाल की उसी मानवीय पवचारधारा का ैि त्जसके प्राचीन ऐततिामसक इल्यूमसतनयन और औरकफक रिस्य पवनष्ट िोतिुए अवर्ेषमात्र रि गए ैिं, जबकक मनुष्य जातत के आध्यात्ममक एवं ंमनोवैज्ञातनक ज्ञान को मित्त्वपूण शआकृततयों एवंसंकेतों में तछपाया गया था; ककन्िीं िंकारणों से त्जनका आज तनणयश करना कहिन ैि, और इस प्रकार धमभ्रशष्ट व्यत्ततयों से बचाकर केवल धम शमें दीक्षक्षतों के प्रतत उनका प्रकार् ककया गया। रिस्यवादी योधगयों का एक मुख्य मसद्धान्त यि था कक आममज्ञान एवं ं देवताओं के पवषय के समयज्ञान को पपवत्र समझकर गुप्त रखा जाए। वे ेसमझते ेथे ेकक यि ज्ञान साधारण मनुष्य के अयोग्य िी निीं ंअपपतु सम्भवतः अनथकशारी भी िो सकता ैि और उसका दुरुपयोग भी िो सकता ैि, और यहद असभ्य, गंवार और अपपवत्राममाओंको प्रकार् प्रदान ककया जाएगा तो उसकी धाममकशता नष्ट िो जाएगी। इसीमलए वे ेवाह्य पूजा को कक्रयाममक रूप में बनाए रखने के पक्ष में थे ेजोकक धमभ्रशष्ट के मलए अपूण श थी और दीक्षक्षत व्यत्तत के मलए आन्तररक तनयन्त्रण का पवधान थी, तथा अपनी भाषा को ऐसे ब्दों एवं ंमूततयशों का रूप देते थे ेजो चुने िुए वररष्ि व्यत्ततयों के मलए उतना िी धाममकश अथ शरखता था और साधारण पूजकों के मलए एक िोस मूतरूशप अथ शरखता था। वैहदक सूततों की भावना एवंरचना इन्िीं ंमसद्धान्तों को लेकर िुई।'[41] जब मि देखते ैिं कक यि मत केवल आधुतनक यूरोपीय पवद्वानों के िी मत के पवरुद्ध निीं ंैि, अपपतु सायण के परम्पराधश्रत भाष्य एवं ंपूवमशीमांसा के मत के भी पवरुद्ध ैि, तयोंकक पूवमशीमांसा को वैहदक व्याख्या के मलए प्रमाण समझा जाता ैि, तो िम श्री अरपवन्द घोष के नेतृमृव का अनुसरण करने ेमें हिचकते ैिं; भले िी उनका मत ककतना िी सुकत्ल्पत तयों न िो। यि सम्भव निीं ंिो सकता कक भारतीय पवचार की समस्त उन्नतत वैहदक सूततों के उच्चतम आध्यात्ममक समयों से उतरकर नैः नैः धगरती चली जाए। मानवीय पवकास के सामान्य तनयम के अनुसार यि स्वीकार करना तो सरल ैि कक परवती धम शऔर दर्नश असंस्कृत संकेतों एवं ंआचार सम्बन्धी मौमलक पवचारों से और प्राचीन मानवीय मत्स्तष्क की उच्च आकांक्षाओं से उहदत िुए, बजाय इसके कक उनके पवषय में ये धारणा की जाए कक प्रारम्भ में प्राप्त पूणतशा से अवनतत के रूप में ये उमपन्न िुए। वैहदक सूततों के भाव की व्याख्या करने ेमें िम ब्राह्मणों एवं उपतनषदों के मत को स्वीकार करना अधधक उधचत समझतेिैं, तयोंकक ये तुरन्त उनके पश्चात् ्आए। ये अवाचशीन ग्रन्थ वैहदक सूततों की परम्परा के अन्दर ैिं और उनका पवकमसत रूप ैिं। िम देखतेिैं कक पिले बाह्य जगत् ्की र्त्ततयों की पूजा करते-करते उपतनषदों का आध्यात्ममक धम शउन्नत िुआ तो यि बात सरलता से समझ में आ सकती ैि, तयोंकक धाममकश उन्नतत का स्वाभापवक तनयम ऐसा िी ैि। इस पृथ्ूवी पर िर जगि मनुष्य बाह्य जगत् ्से चलकर आभ्यान्तर की ओर आता ै।ि उपतनषदें प्राचीन प्रकृतत-पूजा की ओर ध्यान न देकर मात्र वेदों में संकेंत रूप में तनपवष्ट उच्चतम धम शको िी पवकमसत करती ैिं। यि व्याख्या आधुतनक ऐततिामसक पवधध और प्रारत्म्भक मानव-संस्कृतत के मसद्धान्त से बबलकुल संगतत खाती ैि और सायण द्वारा प्रततपाहदत-प्रततत्ष्ित भारतीय मत के भी सवथशा अनुकूल ैि।

41

'आय'श , खण्ड्, पृष्ि 60।

4. दार्तशनक प्रवृपृत्तयां

ऋग्वेद में िमें आहदम, ककन्तु कपवहृदयों के भावोते्तेत्जत उद्‌डगार ममलतिैं, त्जनसे पवहदत िोता िै कक वे इत्न्द्रयों एवं बाह्य जगत् के पवषय में उिने वाली अदम्य आर्ंकाओं से मुत्तत पाने की खोज में थे। ऋग्वेद के सूतत इस अंर् में दार्तशनक िैं कक वे संसार के रिस्य की व्याख्या ककसी अततमानवीय अन्तर्दत्शष्ट अथवा असाधारण दैवी पे्ररणा द्वारा निीं, ककन्तु स्वतन्त्र तकश द्वारा करनेका प्रयमन करते िैं। वैहदक सूततों में बुद्धध का जो प्रकार् ममलता िै वि सवत्रश एक-सा निीं िै। ऐसे भी भावुक व्यत्तत थे त्जन्िोंने केवल आकार् के सौन्दय श पर और पृथ्वी की अद्भुत वस्तुओंपर पवचारकर के वैहदक सूत्रों के तनमाणश द्वारा अपनी आममा के बोझ को ल्िका ककया। भारतीय-ईरानी देवता यथा, द्यौः, वरुण, उषाः, ममत्र आहद उनकी काव्यमय चेतना की उपज िैं। अधधक कक्रयार्ील वृपृत्त वाले अन्य लोगों ने दृश्य जगत् को अपने-अपनेप्रयोजन के अनुकूल बनाने का प्रयमन ककया। जगत् का ज्ञान उन्िें जीवन का माग शप्रदमर्तश करनेमें अधधक उपयोगी मसद्ध िुआ। पवजय और युद्ध के काल में इन्द्र जैसे, उपयोधगतावाद में उपयुतत, देवताओं की कल्पना की गई। मौमलक दार्तशनक पे्ररणा एवं इस जगत् के तनजी स्वरूप को जानने और समझने की आकांक्षा केवल इसी पवप्लव एवं संघंषकशाल के अन्त में प्रगट िुई। यिी काल था जब मनुष्यों ने र्ात्न्त से बैिकर उन देवी-देवताओं के बारे में, त्जन्िें वे अज्ञान के कारण पूजते रिे थे, र्ंका करना और जीवन के रिस्यों पर पवचार करना प्रारम्भ ककया। यिी वि काल था जब ऐसी आर्ंकाएं उिीं त्जनका समाधान मानव-मत्स्तष्क िीकिीक निीं कर सका। वैहदक कपव घोषणा करता िै, "म ैंनिीं जानता कक में तया िूं, मेरा रिस्यमय, आबद्ध मन इधर-उधर भटकता िै।" यद्यपप यथाथ शदर्नशज्ञान के अंकुर आगे चलकर फूटतिैं, कफर भी जीवन का जो स्वरूप वैहदक सूततों के काव्य एवंकमकशाण्ड में प्रततबबत्म्बत िोता िै वि मर्क्षाप्रद िै। त्जस प्रकार काल्पतनक इततिास पुरातत्त्व-पवज्ञान, रसपवद्या-रसायनर्ास्त्र, और फमलत एवं गणणत ज्जयोततष आहद पवज्ञानों से पिले आता िै, इसी प्रकार पुराणपवद्या और कपवता दर्नशर्ास्त्र एवं भौततक-पवज्ञान से पिले आती िैं। दर्नशर्ास्त्र-सम्बन्धी मानमसक पे्ररणा सबसे पिले पुराणपवद्या और धम शके रूप में अमभव्यतत िोती िै। परमसत्ता के पवषय में साधारण जनता के अन्दर फैले िुए पवश्वासों के सम्बन्ध में जो भी प्रश्न उिते िैं, उनका उत्तर इन्िीं पुराणर्ास्त्रों व धमग्रशन्थों में ममलता िै। ये सब कल्पना की उपज िैं, त्जसके आधार पर वास्तपवक जगत् के कारणों की कल्पनाममक व्याख्या स्वीकार कर ली जाती िै। कफर र्नैः र्नैः जैसे तकश कल्पना को दबा देता िै, एक प्रयमन ककया जाता िै त्जससे उस तनमय एवं स्थायी तत्त्व को पिचाना जा सके, त्जससे जगत् के सब पदाथ शउमपन्न िुए िैं। पवश्वपवज्ञान-सम्बन्धी कल्पनाएं पौराणणक धारणाओं का स्थान ले लेती िैं। जगत् के स्थायी अवयवों को देवताओं का रूप दे हदया जाता िै और इस प्रकार पवश्वपवज्ञान और धम शमें परस्पर भ्रमाममक सत्म्मश्रण िोता प्रतीत िोता िै। पवचार की प्रारत्म्भक अवस्थाओं में, जो िमें 'ऋग्वेद' में ममलती िैं, पुराणपवद्या, पवश्वपवज्ञान, और धम शएक-दूसरे के अन्दर ममधश्रत रूप में ममलतिैं। यिां पर संक्षेप में ऋग्वेद के सूततों के अमभमत पवषयों का चार मभन्न र्ीषकशों अथात्श परमाथपशवद्या (ब्रह्मज्ञान), पवश्वपवज्ञान, नीततर्ास्त्र और परलोकपवज्ञान के अन्तगतश वणनश करना उधचत िोगा।

5. परमाथ शपवद्या

अनेक र्ताब्दियों में पवकमसत ि्ुई धाममकश प्रगतत कोई ऐसा सरल और पवर्द सम्प्रदाय र्नीं ंिो सकता कक उसकी पररभाषा एवं ंवगीकरण आसान काम समझा जा सके। वैहदक सूततों का पवस्मयकारी पक्ष उनका बिुदेववादी स्वरूप ि ै। अनेक देवताओं का नाम व उनकी पूजा का पवधान उनमें ममलता ि ै। तो भी कुछ ऐसे सूतत र्में अचम्भे में डाल देते िैं, त्जनमें उच्चकोहट के दार्तशनक भाव पाए जाते िैं और त्जनके असंस्कृत बिुदेवतावाद से एक क्रमबद्ध दर्नश में पररणत िोने ेमें अधधक से अधधक लम्बा समय लगा िोगा। ऋग्वेद के सूततों द्वारा प्रततपाहदत धम शके जो तीन स्तर स्पष्ट रूप से हदखाई देते िैं वे ेइस प्रकार िैं-प्राकृततक बिुदेवतावाद, एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद ।

इस पववेचना में एक मित्त्वपूण शपवषय जो ध्यान में रखनेयोग्य िै, वि यि िै कक देव र्ब्द अपनेस्वरूप में इतना अधधक भ्रात्न्तजनक ि ै और इसका प्रयोग ककतने िी मभन्न-मभन्न पदाथों का संकेत करनेके मलये ककया गया िै।"[42] 'देव' वि ि ै जो मनुष्य को देता िै।43 वि समस्त पवश्व को देता िै। पवद्वान पुरुष भी देव िैं, तयोंकक वि अपनेअन्य साथी मनुष्यों को पवद्या का दान देता िै।"[44] इसी प्रकार सूय,श चन्द्रमा और आकार् भी देव िैं, तयोंकक वे ेसमस्त सृत्ष्ट को प्रकार् देते िैं। पपता, माता और आचाय शभी 'देव' िैं।"[45] अततधथ भी एक देव िै। र्में यिां ंकेवल 'देव' र्ब्द के उस भाव से मतलब ि ै जो ईश्वर के आधुतनक भाव को व्यतत करता िै। इससे तामपय शि,ै हदव्यगुणयुतत अथवा प्रकार्मान ।

मानव-मत्स्तष्करूपी कारखानेमें देवमाला के तनमाणश की पद्धतत ऋग्वेद में जैसी स्पष्ट देखी जाती ि ै वैसी अन्यत्र र्नीं ंममल सकती। िमें इसमें मानवीय मानस की एक प्रातःकालीन स्वाभापवक नवीनता एवं उज्जज्जवलता ममलती ि ै जो अभी तक पुराने ेरीतत-ररवाजों और तनयत पररपाटी से म्लान र्नीं ंि्ुई थी। पवचारधारा के इतिास में प्रारम्भ नामक कोई पवषय र्नीं ंिोता, इसमलए किीं न किीं ंसे तो िमें चलना िी िोता िै। वैहदक देवताओं के, प्राकृततक र्त्ततयों से, साम्य स्थापपत करने के समय से िी िम प्रारम्भ कर सकतेिैं और तनदेर् कर सकते िैं कक ककस प्रकार र्नैः र्नैः उन प्राकृततक र्त्ततयों को िी साधुवृत्त एवं अततमानवसत्ता का रूप दे हदया गया। वैहदक सूततों के प्राचीनतम ऋपष प्राकृततक दृश्यों को देखकर अपने सरल स्वभाव के कारण अनायास िी अमयन्त प्रफुत्ल्लत िो उिते थे। पवर्ेषेकर कपव-स्वभाव के कारण उन्िोंने ेप्राकृततक पदाथों को ऐसे प्रगाढ़ मनोभावों और कल्पना-र्त्तत द्वारा देखा कक उन्िें वे आममा की भावना से पररपूण शप्रतीत िोने ेलगे। वे प्रकृततप्रेम से अमभज्ञ थे ेऔर इसमलए सूयोदय एवं सूयास्तश के अद्भुत दृश्यों में खो गए, तयोंकक ये दोनों िी

---

42 तनरुतत किता िै: देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो वा भवतत (7, 15)।

43 िम इसकी तुलना अंग्रेजीर्ब्द 'लेडी' के साथ कर सकते िैं, त्जसका मूल अथ शथा रोटी बनाने वाली। लाड शर्ब्द का भी पवकास लगभग वैसा िी था, अथातश ्रोटी का संरक्षक।

44 पवद्वांसो हि देवाः।

45 मातृदेवो भव पपतृदेवो भव, आचायदेशवो भव।

रिस्यमयी प्राकृततक घटनाएं िैं, जो आममा को प्रकृतत के साथ जो़ देती िैं। उनके मलए प्रकृतत एक जीपवत सत्ता थी, त्जसके साथ वे प्ेरम सम्बन्ध जो़ सकते थे। प्रकृतत के कुछ उज्जज्जवल स्वरूप एक प्रकार से द्युलोक के ऐसे झरोखे थेत्जनमें से दैवी र्तत नीचेके ईश्वरपविीन जगत् ्को झांकंती-सी प्रतीत िोती थी। चांद और तारे, अगाध समुद्र और अनन्त आकार्, सूयोदय और राबत्र का आगमन इन सबको दैवी घटना समझा जानेलगा।

वैहदक धम शका प्रारत्म्भक रूप

इसी प्रकार की प्रकृतत की पूजा था। र्ीघ्र िी चेष्टापविीन पवचार ने आय शलोगों के जीवन में प्रवेर् ककया।

एक स्वाभापवक

प्रयमन इस हदर्ा में िोने ्लगा कक पदाथों के आभ्यान्तर स्वरूप में प्रवेर् ककया जाए। मानव ने अपनिी समान देवों की सृतृष्ट करना प्रारम्भ ककया। अपवकमसत मानव का धम शसंसार में सवत्रश 'अवतारवाद' (अथात् श ् ईश्वर के मानवीय रूप को मानना) के रूप में िी रिा िै। िम भौततक जगत् ्की अस्तव्यस्तता को मानने ्को तैयार निीं। िम भौततक जगत् ्को ककसी न ककसी प्रकार से समझनेकी कोमर्र् करते िैं और जीवन के पवषय में एक न एक मसद्धान्त भी त्स्थर कर लेते िैं, त्जसे िम तनत्श्चत रूप से यि समझ लेते िैं कक इससे अधधक अच्छा दूसूरा मसद्धान्त निींिो। स्वभावतः िी िम अपनेसंकल्प र्तत रूपी साधन को आगे बढ़ाकर घटनाओंका समाधान उनके आध्यात्ममक कारणों द्वारा करते िैं।[46] िम सब बातों की ब्याख्या अपनिी स्वभाव की उपमा से करते िैं और इसमलए सब भौततक घटनाओं की पृषूिभूमम में भी इच्छार्तत का िोना यथाथ शरूप में मान लेते िैं। इस कल्पनाममक सूत्र को सवजशीववाद के साथ निीं ्ममलाना चाहिए, तयोंकक इस कल्पना में प्रकृतत-मात्र के अन्दर चेतना के मत को स्वीकार निीं ्ककया गया िै। यि एक प्रकार का बिुदेवतावाद िै, त्जसमें पवलक्षण भौततक घटनाओंको, त्जनसे भारत भरा पा़ िै, दैवीय घटनाओंका रूप दे हदया जाता िै। धाममकश अन्तःप्ेरेरणा अपनी अमभव्यत्तत इसी प्रकार करती िै। गिन धाममकश भावना के क्षणों में जब मनुष्य ककसी आसन्न पवपपत्त से छुटकारा पा जाता िै और प्रकृपत्त की मिान र्ततयों के आगे अपनेको तनतान्त असमथ शपाता िै तब वि ईश्वर की उपत्स्थतत की यथाथतशा समझ पाता िै। वि तूफान में परमाममा की आवा़ को सुनता िै और अगाध एवं ्प्रर्ान्त समुद्र में भी उसी के अत्स्तमव का अनुभव करता िै। आधुतनक आममसंयमी सम्प्रदाय के समय तक िमें इसी प्रकार की भावनाएं ममलती िैं। "सूय,श चन्द्रमा और नक्षत्र, ऋत और मनुष्यों तक को देवता बना डाला गया।"[47] यि अच्छी बात िै कक वैहदक आय शएक अर्दश्य लोक की यथाथतशा में पवश्वास रखते

---

46 "जैसा कक टेलर ने मलखा िै "संसार के काय शअन्य आममाओं ्के द्वारा संचामलत िोते ्प्रतीत िोतिैं,िीक उसी तरि त्जस तरि कक मनुष्य र्रीर के पवषय में माना जाता िै कक यि अपने अन्दर त्स्थत मानवीय जीवाममा के कारण जीपवत रिता िै और कम शकरता िै।" ('प्रममहटव कल्चर')। िाम ने 'नेचुरल हिस्री आफ ररमलजंस' में मलखा कक "मनुष्य में एक स्वाभापवक प्रवृपृत्त िै कक वि सब प्राणणयों की कल्पना अपने समान िी कर लेता िै।... मनुष्यों के पवचारो को अपनी ओर बराबर आकृष्ट करने वाले अज्ञात कारण उसी एक रूप में प्रकट िोते िुए सब एक िी वग शके मान मलए जाते िैं। िमें उनके अन्दर पवचार, तकश एवं राग आहद पवषयों का समावेर् कर देनेमें भी पवलम्ब निीं ्िोता और कभी-कभी तो उन्िें मनुष्य की भातत देिधारी रूप की कल्पना का भी जामा पिना हदया जाता िै।"

47 'ककमसपस' देखो, धगलबटश मरे 'फोर स्टेज़े आफ ग्रीक ररमलजन', पृषूि 17।

थे। उन्ें इस पवषय में ततनक भी सन्दिे निीं ंथा। देवता पवद्यमान िैं। ऐसा प्रतीत िोता िै कक प्रकृततवाद और अवतारवाद वैहदक धम शका प्राथममक श्रेणणयां रिी िोंगी।

अब यि इततिास का सवमशान्य पवषय िै कक वैहदक आय शऔर ईरानी लोग एक िी जातत के िैं और इनमें बिुत-सी समानताएं एवं बन्धुमव का नाता हदखाई देता िै। वे ेअपने एक िी आहदतनवासस्थान से भारत में और पारमसयों के ईरान में आए। वे अपनेउस आहदस्थान में तब तक एक िी अमभन्न जातत के रूप मे रितेरिे थे ेजब तक कक जीवन की आवश्यकताओं, जगि की कमी, एवं सािमसकता के भाव ने उन्ें अपनी मातृभूमम को छोड़कर नये क्षेत्रों की खोज में बािर तनकलकर मभन्न-मभन्न हदर्ाओं ंमें घूमनेको बाधधत निीं ंकर हदया।48 यिी कारण िै कक िमें फारस एवं ंभारत के प्राचीन धमों एवंदार्तशनक पवचारों में इतना साम्य और बन्धुमव हदखाई देता िै। डातटर ममल्स का किना िै कक "पारमसयों का धमग्रशन्थ, त़्दावस्ता, वेदों के त्जतना सत्न्नकट िै उतने तनकट इनके अपने संस्कृत के मिाकाव्य भी निीं िैं।" दोनों धमग्रशन्थों में भाषा-सम्बन्धी अन्ततनहशित अपवत्च्छन्नता पाई जाती िै। जब आय-शजातत के लोग पंजाब के माग शसे भारत आए, तो उनका भारत के उन आहदवामसयों से सामना िुआ त्जन्ें उन्िोंनेदस्यु की संज्ञा दी और जो उनके तनवाधश प्रसार का पवरोध करते थे।49' ये दस्यु लोग कृष्ण वण शके थे,े गोमांस खाते ेथे ेऔर भूत-प्रेत आहद की पूजा करते थे। आय शलोग इनके सम्पकश में आकर अपने-आपको इनसे पृथक् रखनेके इच्छुक थे। जाततगत अमभमान के कारण व अपनी संस्कृतत की सवोत्तमत्ता के कारण उमपन्न िुए, अपनेको दस्युओंसे पृथक् रिने ेके भाव ने िी आगे चलकर जात-पांत के भेदभाव का रूप धारण कर मलया। अपने धम शको पपवत्र रखनेऔर उसे भ्रष्टता से बचानेकी धचन्ता ने िी आयों को अपनेपपवत्र धाममकश साहिमय को एकत्र करनेकी ओर अग्रसर ककया। 'संहिता' र्बद से, त्जसका अथ शिै संकलन अथवा संग्रि,

---

48 भारतीय एवं ईरानी उस भारतीय यूरोपीय पवस्तृत पररवार के िी अंग थेत्जनके उपपवभाग थेः ट्यूटतनक, सैल्टक, स्लावोतनक, इटामलक, िैलेतनक एवं आरमीतनयन जाततयां। इन लोगों के धाममकश पवश्वासों और कक्रया-कलापों की तुलना करके पवद्वानों ने यि तनष्कष शतनकाला िै कक एक प्रकार के भारतीय-युरोपीय धम शकी कल्पना की जा सकती िै। सवचेशतनवाद और जाद,ू पपतरों की पूजा और अमरमव में पवश्वास, उस भारतीय-यूरोपीय धम शके मुख्य अवयव थे। रप्ले जैसे आधुतनक नृवंर्वेत्ता पवद्वान जाततयों का एक पवमभन्न वगीकरण स्वीकार करतेप्रतीत िोते िैं। कुछ पवद्वान आयजशातत को ट्यूटतनक, अथवा नारडडक जातत के समान मानतेिैं। ककन्तु िमें यिां इनसे कुछ मतलब निीं ंिै। भारतीय पवचारधारा के इततिास का प्रारम्भ विां से िोता िै जब मध्य एमर्या के तनवासी आयजशातत के लोगों ने अपने को दो पवभागों में पवभतत कर मलया और एक तो अफगातनस्तान के माग शसे भारत में आ वसा और दूसरा ईरान किलानेवाले भू-भाग में फैल गया।

49 इन आय शकिलाने वाले लोगों के इतस्ततः भ्रमण का ब्योरा उस सामग्री के आधार पर जो आज िमें उपलब्ध िै, कुछ तनत्श्चत रूप से निीं हदया जा सकता। वैहदक सूतत सामात्जक जीवन की उस परवती अवस्था को अमभव्यतत करतेिैं जबकक संस्कृत बोलचाल की भाषा थी और आयजशातत अनेक र्ाखाओं में बंटी िुई थी। न िी िम यि स्वीकार करने को उद्यत िैं कक द्रपवड़ लोग भारत के आहदमवामसयों में थे। ऐसा प्रतीत िोता िै कक द्रपवड़ लोग आय शलोगों की अपेक्षा बिुत पिले भारत में आए थे। और उन्िोंने आयों के आगमन से पूव शअपनी सभ्यता को जमा मलया। था। यि समय िै कक द्रपवड़ लोगों ने आयों के रीतत-ररवाजों को अंगीकार कर मलया था, ककन्तुउसके बाद उनका प्रभाव भी आय शसभ्यता पर पड़ा। उन असंख्य वन्य जाततयों के लोग, जो आज भी, दुगुमश पवतशीय प्रदेर्ों में तनवास करते िैं, सम्भवतः भारत के आहदम तनवासी थे।

संकेत ममलता िै कक ऋग्वेद के सूत्र उस समय संग्रि ककए गए जबकक भारत की भूमम पर आयों का अनायों के साथ सम्पकश िुआ। िम वैहदक देवताओं की रूपरेखा उन भारतीय-ईरानी देवताओं के साथ प्रस्तुत करेंगे, जो दोनों बंधु-जाततयों में परस्पर अलग िोने से पिले समान रूप से मान्य समझे जाते थे।

इस संसार की अपूणतशा की भावना, मनुष्य की दुबुलशता, और एक उच्च आममा की आवश्यकता-जो पथप्रदर्कश, सच्चा ममत्र और एक ऐसा आधार बन सके त्जसका आश्रय मनुष्य ले सके और त्जससे वि पवपपत्त में अपील कर सके यि सब व्यधथत हृदय के पक्ष में स्वाभापवक िै। उस प्रारत्म्भक काल में अनन्त के प्रतत इस प्रकार की आकांक्षा को मसवा असीम और जाज्जवल्यमान धुलोक के और कोई कल्पना इतनी अच्छी तरि सन्तुष्ट निींकर सकती थी। सूय,श चन्द्रमा और तारागण स्थान-पररवतनश कर सकतिैं, आंधी-तूफान आ सकते िैं और मेघ भी मंडराकर पवलुप्त िो सकतिैं ककन्तु अनन्त आकार् सदा त्स्थर रिता िै। द्यौः50 केवल भारतीय-ईरानी देवता िी निीं िै, ककन्तु भारतीय-यूरोपीय भी िै। यूनान देर् में यि जीयस के नाम से पवद्यमान िै, इटली में जुपपटर (यौत्स्पना, द्यु लोक का पपता) और ट्यूटतनक वन्य जाततयों में टाइर और ट्याई के रूम में। देव र्ब्द का प्रारत्म्भक अथ शिै उज्जज्जवल, और आगे चलकर यि सभी प्रकार्मान तत्त्वों के मलए, यथा सूय,श आकार् (द्युलोक), नक्षत्रगण, सूयोदय और हदन आहद के मलए, प्रयोग में आने लगा। यि समस्त उज्जज्जवल पदाथों को प्रकट करनेवाली पररभाषा के रूप में पररणत िो गया। पृथ्वी को भी र्ीघ्र िी देवी मान मलया गया। र्ुरू-र्ुरू में संभवतः आकार् एवं पृथ्वी पवस्तृतृता, चौड़ाई और उमपादन-क्षमता आहद अपनेभौततक रूपों को िी अमभव्यतत करते थे।'[51] 'मधु देनेवाली', 'दूधू से पूण'श ऐसे गुण भूमम के किे जाते थे। ककन्तुसबसे पिले यु लोक और पृथ्वीलोक को िी मानवीय गुणों से युतत रूप हदया गया, जैसे 'िास न िोने वाला', 'पपता', 'माता' आहद। उपकाररता, सवज्ञशता, धमामशमापन आहद जैसे आचार-सम्बन्धी गुण भी उसमें जो़ हदए गए ।"[52] यि िो सकता िै कक इस पवषय में धीरे-धीरे प्रगतत िुई अथात्श भौततक अवस्था से चेतनमय, और चेतनतमव से दैवीय रूप तक पिुंचा गया। पृथ्वी और द्यु लोक-त्जनकी सबसे पिले प्राचीन समय में संसार में सवत्रश पूजा िोती थी यद्यपप र्ुरू-र्ुरू में अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखते थे– र्ीघ्र िी एक प्रकार के वैवाहिक बन्धन में बंध गए। पृथ्वी को फलदातयनी माँके समान माना जानेलगा, त्जसमें आकार् या द्युलोक बीज वपन करके उसे गमभतश करता िै। मिरररक छन्दों में भूमम को 'देवताओं की माता' और 'नक्षत्र-मण्डल-मत्ण्डत द्यु लोक की पमनी53 के रूप में सम्बोधधत ककया गया िै। भूमम और द्यु लोक सबके माता-पपता-तुल्य िैं, जो सब प्राणणयों को जीवन देते िैं और उन्िें जीवन-तनविाश के साधन प्रदान करते िैं। ऋग्वेद में उन्िें प्रायः द्पवमव की संज्ञा से सम्बोधधत ककया गया िै,

अथात् श सत्ताएं दो िैं, ककन्तु वे एक िी सामान्य प्रमयय को अमभव्यतत करती िैं। ये सबके मलए एक समान माध्यम िैं- सूय,श सूयोदय, अत्ग्न, वायु और वषाशये सब उनकी सन्तत त िैं। वे मनुष्यों एवं देवताओं दोनों के

---

50 'हदव', चमकना।

51 1:160, 2:1 187,5; 4:56, 3,6: 70, 1-21

52 1: 158, 1:1 160, 1;4:56, 2; 6: 70, 6

53 देखें, मैतसमूलर कृत 'इत्ण्डया; कट कैन इट टीच अस ?' पृष्ठ 156।

माता-पपता िैं।'[54] ज्जयों िी देवों की संख्या बढ़नेलगी, प्रश्न उमपन्न िुआ कक द्यु लोक और पृथूवी का तनमाणश ककसने ेककया? "देवों में वि अवश्य िी सबसे चतुर कारीगर िोगा, त्जसनेउन चममकारी और प्रकार्मान द्युलोक और पृथूवी को उमपन्न ककया जो सब पदाथों में उल्लास पैदा करते िैं; और जो अपनी मेघा के बल से उतत दोनों हदव्य पदाथों को मापता िै और उन्िें तिनमय एवं स्थायी आधारों पर त्स्थर रखता िै।"[55] इस प्रकार की सृजृनर्त्त अत्ग्न,[56] इन्द्र,'[57] अथवा सोम58 में बताई गई। इसी प्रततत्ष्ति वग शमें अन्य देव भी आ जाते िैं।'[59]

वरुण आकार् का देवता िै। यि ब्दं 'वर्' ् धातु से तनकला िै, त्जसका अथ शिै ढक लेना अथवा घेरना (पूण शकर लेना)। यूनान के आरणौस और त्न्दावस्ता के अुिरमज़्दा के साथ इसका तादामम्य िै। उसका भौततक उमपपत्त स्थान प्रमयक्ष िै। वि आच्छादन करनेवाला अथवा लपेटने वाला िै। वि आकार् के तारामंडडत पवस्तृत क्षेत्र को 'मानो एक लम्बे चौगे से समस्त जीव-जन्तुओंएवं उनके तनवासस्थानों सहित आच्छाहदत करता िै।"[60] ममत्र उसका बराबर का साथी िै। वरुण और ममत्र जब एक साथ प्रयुतत ककए जाते िैं तो हदन-रात एवं अन्धकार व प्रकार् का बोध करातेिैं। वरुण के व्यत्ततमव को नैंः नैंः पररवतततश करते- करते आदर् शरूप दे हदया गया। यिां ंतक कक वि वेदों का अमयन्त सदाचारी देवता माना जानेलगा। वि समस्त पवश्व का तनरीक्षण करता िै, पापपयों को दण्ड देता िै और जो उससे क्षमा प्राथनशा करते िैं, उनके पापों को क्षमा कर देता िै। सूय शउसके चक्षुिैं, आकार् उसके बस्त्र िैं, और तूफ़ान उसका तनःश्वास िै।'[61] नहदयां ंउसी की आज्ञा से बिती िैं,'[62] सूय शचमकता िै, नक्षत्र और चन्द्रमा अपनी-अपनी पररधधयों में उसी के भय से त्स्थत रिते िैं।63 उसी के तनयम से द्यु लोक और पृथूवी अलग-अलग वतमशान िैं। विी भौततक एवं नैततक व्यवस्था को संभाले िुए िैं। वि चंचल धचत्त न िोकर घृतृव्रत, अथात्श ्ररद्दढ़ संकल्पवाला िै। अन्यान्य देवता उसकी आज्ञा का पालन करते िैं। वि सवज्ञश िै और इसमलए आकार् में पक्षक्षयों की उ़ान का ज्ञान रखताि,ै समुद्र में जिाज़ों के माग शका और वायु के माग शका भी ज्ञान रखता िै। बबना उसके जानेकोई धचड़या तक निीं ंधगर सकती। विी परम ईश्वर िै, देवों का देव, अपराधधयों के मलए किोर और पश्चात्ताप करने ेवालों के मलए दयालु िै। वि जगत् ्के सदाचार-संबंधी तनमयतनयमों के, त्जनका पवधान उसी ने ककया िै, अनुकूल चलता िै, तो भी अपनेदयालु स्वभाव के कारण उन्िें भी क्षमा करने ेको उद्यत िै जो उसके तनयमों का उल्लंघन करते िैं। "जो पाप करता िै, वि उसके प्रतत भी कृपालु िै।64 वरुण को सम्बोधधत करते िुए त्जतने भी सूतत िैं, सबमें िम पापों के मलए क्षमा की प्राथनशा िी पातेिैं, जो अपराधों की

---

[54] 1:185, 4:1: 159,1-2;1: 106,3;3:3; 11; 4:56, 2, 6:17, 7; 7:53, 1-2; 9 85, 12; 10: 1, 7; 10: 35, 3, 10:64, 14; 1065, 8; 10:11, 91

55 ऋग्वेद, । 160, 4; और भी देखें 4: 56, 31

[56] 1:67,31

[57] 10:89, 41

[58] 9:101, 151

[59] 3:31, 121

[60] 8:41 1

[61] 7:87, 21

[62] 1:24, 8; 2:28, 4; 7: 87,5

[63] 1:24, 10; 1:25, 6; 1:44; 14;2:14;2:28, 8; 3:54, 18; 8:25, 2

[64] 7:87,71 5.

स्वीकृतत और पश्चात्ताप से ओत-प्रोत िै।65 इससे ज्ञात िोता िै कक आय शजातत के कपवगण पाप के बोझ के भाव एवं उससे छुटकारा पाने की प्राथनशा से अमभज्ञ थे। वैष्णवों और भागवतों का आत्स्ततयवाद, त्जसमें भत्तत पर बल हदया गया िै, वैहदक वरुण की पूजा का िी रूप प्रतीत िोता िै त्जसमें पाप सम्बन्धी ज्ञान एवं उसके मलए दैवीय क्षमा पर पवश्वास प्रकट ककया गया िै। प्रोफेसर मैकडानल का किना िै, "वरुण का स्वरूप उच्चतम प्रकार के एकेश्वरवाद में जो दैवीय र्ासक का रूप िै, उससे सार्दश्य रखता िै।"66

वि तनयम, त्जसका वरुण अमभरक्षक िै, ऋत किलाता िै। ऋत का ब्दाथ र्ि, वस्तुओंकी कायपशवधध। ऋत से तामपय शसाधारणतः सब प्रकार के तनयमों से िै और न्याय के सवव्शयापी भाव का भी यि द्योतक िै। इस भाव का सुझाव प्रारम्भ में सूय,श चन्द्र और नक्षत्रगण की तनयममत गततयों एवं हदन और रात के तनयममत पररवतनशों से एवं ंऋतुओंके तनयममत क्रम के कारण िुआ िोगा। ऋत से तामपय शपवश्व की व्याख्या से भी िै। इस

---

65 वरुण को लक्ष्य करके मलखा गया तनम्नमलणखत सूतत, त्जसका म्योर ने पद्य में अनुवाद ककया िै ('ओररएंटल संस्कृत टेतस्ट्स', खंड 5, पृष्ि 64), यद्यपप अथववेशद में से िै(4:16, 1 - 5), कफर भी वैहदक आयों के ईश्वर-सम्बन्धी उच्च पवचारों को िमारे सामने रखता िै:

"ऊपर त्स्थत मिान र्ततर्ाली प्रभुिमारे कमों को मानो बबलकुल पास में िो, इस प्रकार देखता िै; देवता लोग सबके कमों को जानते िैं, भले िी मनुष्य अपने कमों को तछपाएं। जो खड़ा िै, जो चलता िै, अथवा स्थान-स्थान पर चोरी करके तछपता िै, वि चािे कैसे िी गुप्त स्थान में तछपे, देवता लोग उसकी गतत का पता लगा लेतेिैं। जिांकिीं ंदो व्यत्तत ममलकर षड्यन्त्र करतेिैं और वे समझते िैं कक वे अकेले िैं, तीसरा व्यत्तत राजा वरुण विां पवद्यमान िै और उनकी सब योजनाएं प्रकट िो जाती िैं। यि पृथ्वी उस प्रभु की िै, यि पवस्तृत अनन्त आकार् भी उसी का िै, दोनों समुद्र (अणवश) उसी के अन्दर पवश्राम करतेिैं और तब भी वि उस छोटे जलार्य में तनवास करता िै। जो कोई दूरू आकार् में भागकर अपना माग श बनाना चािता िो, वि वरुण राजा की पिुंच से बचकर निीं तनकल सकता। उसके गुप्तचर आकार् से उतरकर इस समस्त जगत् ्के चारों तरफ घूमते िैं, उनकी िजारों आंखें संसार के परले छोर तक को नाप सकती िैं। अन्तररक्षलोक एवं पृथ्वीलोक में जो कुछ भी िै, और जो कुछ अन्तररक्ष से भी परे िै, वरुण राजा को वि सब प्रमयक्ष िै। िरेक मरणधमा शव्यत्तत की पलकों के तनरन्तर झपकों को वि धगनता िै; वि इस व्यापक दृश्य को ऐसे संभालता िै जैसे जुआरी पासा फेंकता िै। िे प्रभु, दुष्टों को फंसानेके मलए जो जाल तुम फेंकते िो उसमें सब असमयवादी फंस जाएं, ककन्तु समयवादी उससे बचे रिें!" कफर, "म ैंकैसे वरुण के समीप पिुंच सकता िंूू? तया यि मेरी स्तुतत को बबना झोच ककये िुए स्वीकार करेगा ? म ैंकब उसे र्ान्त मन से सन्तुष्ट देखूंगा ?"

"म ैंपूछता िंूू, िे वरुण ! यि जानने की इच्छा से कक यि मेरा पाप िै, म ैंपवद्वानों से पूछनेजाता िंूू और मिममाओं ं के पास जाकर पूछता िंूू। सब मुझेएक िी बात किते िैं, र्तनश्चय िी वरुण िै जो तुमसे नाराज िै।"

'िे वरुण ! तया यि पुरानेपाप के कारण िै जो तुम अपने उस ममत्र को, जो सदा तुम्िारी प्रर्ंसा करता िै, नार् करना चािते िो? मुझेबताओ, िे अपवजेय प्रभु, और म ैंपाप से मुतत िोकर र्ीघ्र तुम्िारी प्रर्ंसा करने लग जाऊंगा।"

"िमें अपने पूवजशों के पापों से मुतत करो, और उन पापों से भी दूरू रखो जो िमनेइस र्रीर द्वारा ककए िैं ?"

"िे वरुण ! यि मेरा अपना जानबूझ कर ककया िुआ कम शनिीं ंिै, यि अचानक िो गया; यि नर्ा हदलाने वाला आकषणश था, वासना, एक जुए का पासा जो बबना पवचारे फेंका गया।"

66 'वैहदक माइयोलॉजी', पृष्ि 3

पवश्व में प्रमयेक पदाथ शमें जो व्यवस्था पाई जाती िै वि ऋत के कारण िी िै। यि विी तनयम िै त्जसे प्लेटो व्यापक तनयमों के नाम से पुकारता िै ।"[67] दृश्यमान जगत् ्उसी ऋत की छायामात्र िै जोकक एक त्स्थरसत्ता िै और सब प्रकार की उथल-पुथल एवं ्पररवतनश की पवकक्रयाओंमें अपररवतततश रिती िै। 'व्यापक तनयम' पवमर्ष्ट पदाथ शसे पूव शपवद्यमान रिता िै और इसीमलए वैहदक ऋपष का पवचार िै कक ऋत प्रमयेक घटना के प्रकार् में आने ्से पूव शपवद्यमान रिता िै। संसार के पररवतनशर्ील क्रम तनरन्तर रिने ्वाले ऋत की िी मभन्न-मभन्न अमभव्यत्क्ततयां िैं। और इसीमलए ऋत को सबका जनक किा गया िै। "मरुद्गण ऋत के िी दूरूस्थस्थान से तनकलतें ।"[68] पवष्णु ऋत की अपवकमसत अवस्था का नाम िै।'[69] द्यु लोक और पृथ्वी भी ऋत के कारण द्यु लोक और पृथ्वी किलातें ।"[70] अपररवतनशीय सत्ता के रिस्यपूण शभाव के धचि सबसे पूव शयिीं ्हदखाई देते िैं। यथाथ शसत्ता अपररवतनशीय कानून िै। जो हदखाई देता िै व अस्थाई प्रदर्नश िै, एक अपूण शनकल िै। यथाथ शसत्ता वि िै त्जसमें पवभाग अथवा पररवतनश निीं ्िै जबकक अन्य सब पररवतनशर्ील और नश्वर िैं। र्ीघ्र िी पवश्व की यि व्यवस्था एक परम ईश्वर की त्स्थर इच्छा के रूप में पररणत िो जाती िै, जो सदाचार एवं ्साधुता का भी तनयम िै। देवता भी इसका अततक्रमण निींकर सकते। ऋत (बत्रकालाबाधधत समयरूपी तनयम) के भाव में भौततक से दैवीय पवकास को िम देख सकतें। ऋत का मौमलक तामपय शथा, 'संसार, सूय,श चन्द्रमा, नक्षत्रगण, प्रातःकाल, सायंकाल एवं ्हदन और रात की गतत का तनयममत माग।श' नैः नैः यि एक ऐसे सदाचार के माग,श त्जनका अनुसरण मनुष्य को करना चाहिए, और साध्वाचार के तनयम के अथों में व्यवित िोने ्लगा त्जनका पालन देवताओंके मलए भी आवश्यक िै। "सूयोदय ऋत के माग शका अनुसरण करता िै जो िीक माग शिै, माना वि पिले से िी उन तनयमों को जानता था। वि देर्ों का अततक्रमण कभी निीं ्करता। सूय शभी ऋत के माग शके अनुसरण करता िै।"[71] समस्त पवश्व-ब्राह्माण्ड ऋत पर आधश्रत िै और इसी के अन्दर रिकर गतत करता िै। ऋत के इस भाव से िमें वड्सशवथ शका कतव्शय के प्रतत किा िुआ तनम्नमलणखत'[72] वातय स्मरण िो आता िै:

तू िी तारागण को पवपरीत माग शमें जानेसे बचाता िै।

और अमयन्त प्राचीन द्यु लोक भी तेरे द्वारा िी स्फूततमशान व बलर्ाली िै।

भौततक जगत् ्में त्जसे कानून किा जाता िै सदाचार-जगत् ्में उसे िी धम शकिते िैं। सदाचारी जीवन के सम्बन्ध में जो यूनानी पवद्वानों का पवचार िै कक वि एक व्यवस्थापूण शऔर समतायुतत पवषय िै, उसी भाव की झलक यिांममलती िै। वरुण, जो पिले भौततक जगत् ्का रक्षक समझा जाता था, सदाचार की व्यवस्था का

---

67 िीगल तकशर्ास्त्र की सामान्य प्रस्थापनाओं ्को यि स्वरूप देता िै, "सृत्ष्ट एवं ग्रिों की उमपपत्त से पूव शवतमशान ईश्वर।" म ै इस उद्धरण के मलए प्रोफेसर जे० एस० मैकैजी का कृतज्ञ िूं। चीनी संत लाओ मसू सृत्ष्ट में व्याप्त एक पवर्ेष व्यवस्था (अथात्शताओ)को स्वीकार करता िै, जो उसके नीततर्ास्त्र, दर्नश एवं धम शकी नींव िै।

68 4/21, 3I

69 1:156, 31

70 10/121 ,11

71 I/24,8 िेत्तलटस किता िै , "िेमलयोस (सूय)श अपनी पररधध का अततक्रमण निीं करता।"

72 4/23, 9

संरक्षक- 'ऋतस्य गोपः' और पाप के मलए दण्ड देनेवाला बन गया। ककतनी िी अवस्थाओंमें देवताओं से प्राथनशा की जाती िै कक िमें सन्माग शमें ले जाएं। "िे इन्द्र! िमें ऋत के माग शका तनदेर्न करो जो सब बुराइयों से ऊपर यथाथ शमाग शिै।"[73] जैसे िी ऋत के पवचार को अपनाया गया, देवों के स्वरूप में भी पररवतनश िो गया। अब संसार अस्तव्यस्तता एवं ंउद्देश्यिीन आकत्स्मक अवयवों से पूण शन िोकर एक समता के क्रम में और पवर्ेष प्रयोजन के अनुसार काय शकरता िुआ प्रतीत िोता िै। जब कभी अपवश्वास िमें ललचाकर अन्दर के पवश्वास को टुक़-े टुक़ ेकरनेलगता िै, तब इस प्रकार की भावना िमें सान्मवना एवंर्ात्न्त प्रदान करती िै तथा सुरक्षा का भाव मिारे मन में आता िै। चािे कुछ भी तयों न िो, िम अनुभव करते िैं कक धम-शसम्बन्धी एक कानून सदाचार के क्षेत्र में वतमशान िै, जो प्रकृतत में त्स्थत सुन्दर व्यवस्था के िी अनुकूल िै। जैसे सूय शका अगले हदन उदय िोना तनत्श्चत िै, वैसे िी धम शकी पवजय भी तनत्श्चत िै। ऋत के ऊपर भरोसा ककया जा सकता िै।

ममत्रदेव भी वरुण का सिचारी िै और साधारणतः उसी के साथ इसकी प्राथनशा की जाती िै। वि कभी-कभी सूय शको और कभी प्रकार् को अमभव्यतत करता िै। वि एक सवद्रशष्टा और समयपप्रय देवता भी िै। ममत्र और वरुण दोनों संयुतत रूप में ऋत के संरक्षक िैं और पाप को क्षमा करनेवाले िैं। नैः नैः ममत्र का सम्बन्ध प्रातःकालीन प्रकार् के साथ और वरुण का राबत्र के आकार् के साथ िो गया। वरुण और ममत्र को आहदमय की संज्ञा दी जाती िै, अथात्श ्यि अयमशण और भग के समान अहदतत के पुत्र िैं। सूयदेशव संसार को प्रकार् देने वाला

िै। उसे सम्बोधन करते िुए दस सूतत ममलतेिैं। सूय शकी पूजा मनुष्य के मानस के मलए स्वाभापवक िै। यि यूनानी धम शका एक आवश्यक अंग िै। प्लेटो ने अपने'ररपत्ब्लक' में सूयपूशजा को आदर् शबताया िै। उसके मत में सूय शधम शका प्रतीकस्वरूप िै। फारस देर् में िमें सूयपूशजा का पवधान

ममलता

िै। सूय शजो संसार में प्रकार् एवं ंजीवन का कताश िै, अततप्राकृततक र्त्तत से सम्पन्न िै। वि 'समस्त स्थावर और जंगम जगत्'् का जीवन िै। वि सवद्रशष्टा िै और ऊपर से चुपके-चुपके सारे जगत् ्का पयवेशक्षण करता िै। वि मनुष्यों को अपने-अपनेकमों में प्रवृतृत िोने ेके मलए जगाता िै, अन्धकार को दूरू करता िै और प्रकार् देता िै। "सूय शदोनों लोकों में संचार के मलए मनुष्यों पर तनगिा रखते िुए उदय िोता िै। वि सब स्थावर एवं जंगम जगत् ्का रक्षक और मनुष्यों के अच्छे व बुरे कमों का साक्षी िै।"[74] सूय शजगत् ्का रचतयता और र्ासनकताशभी िै। सम्पूण शसूततों में पवख्यात 'सपवतृ'ृ भी एक सूयदेशवता िै। स्वणाक्षशक्ष, स्वणिशस्त और स्वणत्शजह्वा वाले के रूप में उसका वणनश ककया गया िै। उसे कभी-कभी तो सूय शसे ममन्न बतलाया गया िै, यद्यपप कभी-कभी सूय शके साथ उसका तादाम्म्य भी हदखाया गया िै।75 सपवता केवल देदीप्यमान हदन के उज्जज्जवल सूय शको िी निीं ंअपपतु राबत्र के अदृश्य सूय शको भी दर्ातशा िै। उसका एक उच्च सदाचारी पक्ष िै, त्जसकी प्राथनशा पश्चात्ताप करने ेवाले पापी लोग अपनेपाप के माजनश के मलए करते िैं। "जो भी अपराध िमने स्वग शके देवताओं के प्रतत ककया िो, पवचार की तनबलशता के कारण अथवा र्ारीररक दुबुलशता के कारण अथवा गवंके कारण अथवा मनुष्य-स्वभाव के

[73] 10/133,61

[74] ऋग्वेद , 7:60।

[75] ऋग्वेद ,7: 63 ।

 कारण, ि सपवता, िमसे उस पाप को दूरू करो।"[76] गायत्री मंत्र भी सूय शको सपवता के रूप मानकर सम्बोधन ककया गया िै। "आओ, िम सपवता के उस अचनशीय तेज का ध्यान करें त्जससे कक वि िमारी बुद्धधयां ंको ज्ञान द्वारा प्रकामर्त करे।" यजुवेद का मंत्र, त्जसे प्रायः उद्धृत ककया जाता िै, सपवता को िी सम्बोधन करता िै, "िे ईश्वर, सपवता, सबके सृषूटा, बाधाओं को दूरू करके, िमें जो कुछ कल्याणकारी िै उसकी प्रात्प्त कराओ!"

सूय शिी पवष्णु के रूप में सब लोकों को धारण करता िै।'[77] पवष्णु बत्रपाद देवता िै जो पृथूवी, द्युलोक और अन्यान्य ऊंचेलोकों को, जो मरणधमाश मनुष्यों के इत्न्द्रयगोचर िैं, आच्छाहदत करता िै। उसकी मित्ता को पिुंचना कहिन िै। "िे पवष्णु, िम इस पृथूवी से तेरे दो िी लोकों को जान सकतिैं, ककन्तु तेरा अपना जो सबसे ऊंचा स्थान िै, उसे केवल तू िी जान सकता िै।"[78] ऋग्वेद में पवष्णुको गीण स्थान पर रखा गया िै, यद्यपप उसके आगे मिान भपवष्य िै। वैष्णवधम शका मूल ऋग्वेद में पाया जाता िै, जिां कक पवष्णु को 'बृित-रीरः' करके किा गया िै, अथात्बा ्त्जसका रीर बा िै, अथवा संसार मात्र त्जसका रीर िै, 'प्रमयेमयािवम्' ्, अथात् भततों के बुलाने ेपर आ उपत्स्थत िोता िै।79 उसके मलए किा जाता िै कक पवपद्ग्रस्त मनुष्य के मलए उसने पृथूवी को तीन पगों में नाम मलया।"[80]

पूषन् ्सौर जगत् ्का एक और देवता िै। प्रमयक्ष रूप में वि मनुष्य का ममत्र िै- चरागिा का देवता अथात्श ् परुओंका संरक्षक। वि याबत्रयों और कृषकों का देवता िै। र

त्स्कन किता िै, "एक यथाथ शपवचारक मनुष्य के मलए सूयोदय से बढ़कर कोई और गम्भीर धाममकश अनुष्ठान निीं िै।" असीम प्रभातवेला जो प्रमयेक प्रातःकाल में हदत्दगन्त में प्रकार् एवं जीवन को प्रक्षक्षप्त करती िै, उषादेवी के रूप में प्रकट िोती िै, त्जसे यूनानी साहिमय में इओस किा गया िै, त्जससे प्रातःकाल की उज्जज्ज्वल कन्या के रूप में अत्श्वनी देवता-युगल एवं सूय शदोनों प्ेरेम करते िैं, ककन्तु जो सूय शके सामने ततरोहित िो जाती िै जबकक वि अपनी स्वणणमश ककरणों से उसका आमलंगंन करना चािता िै।

लगभग पचास पूरे मन्त्रों में, और बिुत-से अन्य मन्त्रों में भी अंर्रूप से, अत्श्वनी बन्धुओंकी प्राथनशा की गई िै।'[81] वे ेअपवच्छेद युगल िैं जो उज्जज्ज्वल दीत्प्त के स्वामी, र्त्तत्राली एवं ंद्रुतुगामी और गरूृ के समान वेगवान िैं। वे घु लोक के पुत्र िैं और उपा उनकी बिन िै। यि कल्पना की जाती िै कक संध्याकाल की घटना उनका मुख्य आधार िै। यिी कारण िै कक िमें दो अत्श्वनी बन्धु ुबतलाए गए िैं, जो सूयोदय और सूयास्शत के प्रततरूप िैं। आगे चलकर ये अत्श्वनी बन्धु देवताओं एवं मनुष्यों के वैद्य बन गए अद्भुत कायकशताश, एवं वैवाहिक प्ेरेम और जीवन के रक्षक तथा दमलतवग शको सब प्रकार दुःखों से छुटकारा हदलानेवाले ।

---

76 4:54,31
77 1:21, 1541
78 1:21, 1541
79 1: 155,61.
80 'मानयेबाधधताय', 4:61
81 'अत्श्वन्यी' का र्दाथ शिै घुसवा।

मि पिले िी अहदतत का वणनश कर चुके िैं, त्जससे अनेक देवताओं की, त्जर्न्िें आहदमय नाम से पुकारा जाता िै, उमपपत्त िुई िै। अहदतत का व्र्दाथ शिै, असीम एवं ंबंधन-रहित। ऐसा प्रतीत िोता िै कक यि नाम उस अर्दश्य अनन्त का िै, जो िमारे चारों ओर व्याप्त िै और जी पृथ्वी से भी दूरू अनन्त पवस्तृत क्षेत्र िै, अथात्श ्मेघमाला एवंआकार् भी अहदतत िैं। यि उस सबका, जो यिां ंऔर इससे भी परे िै, अपररममत आधार-स्वरूप िै। "अहदतत आकार् िै, अहदतत मध्यवती देर् भी िै, अहदतत पपता और माता एवं पुत्र िै। अहदतत सब देवता िैं और पञ्चजन भी अहदतत िैं; जो उमपन्न िुआ िै और जो भपवष्य में उमपन्न िोगा वि सब अहदतत िै।"[82] यि िमें एक व्यापक, सबकी इच्छा की पूतत शकरने ेवाली, सवोमपादक, अनन्तर्त्तत्र्ाली प्रकृतत के तनजी रूप की पूवानुशभूतत िोती िै, त्जसे सांख्य में भी प्रकृतत किा गया िै। यि अनात्तसमेंडर की अनंत सत्ता की समानान्तर िै।

प्रकृतत का एक मित्त्वपूण शचममकार, त्जसे बढ़ाकर देवी का पद हदया गया िै, 'अत्न' िै। अत्न'[83] का मित्त्व केवल इन्द्र के नीचेदूसूरे दजे पर िै, त्जसे कम से कम 200 मन्त्रों में सम्बोधधत ककया गया िै। अत्न का पवचार प्रखर दिाक सूय शसे उहदत िुआ, जो अपनी गमी से न जलने योग्य पदाथ शको भी जला देता िै। यि बबजली की भांतत िी बादलों से आई। इसका उदगमस्थान चकमक पमथर भी िै।'[84] यि अरणी नामक लकड़यों से भी तनकलती िै। ऐसा समझा जाता िै कक मातररश्वा प्रोममधधवस की भांतत अत्न को आकार् से पृथ्वी पर वापस लाया और भृगु लोगों85 को इसकी रक्षा का भार सौंपा। अत्नदेवता के भौततक स्वरूप का वणनश इस प्रकार ककया जाता िै कक उसके पपंगल रंग की दाढ़ी िै, ते जब्र िैं और जलतेिुए दांत िैं। लकड़ी और घी उसका भोजन िै। वि सूय शके समान राबत्र के अन्धकार को दूरू करता िुआ चमकता िै। जब वि वनों पर आक्रमण करता िै तो उसका माग शकृष्णवण शिोता िै और उसकी आवा़ घु लोक की बबजली की कड़क के समान िोती िै। वि धूमकेतु िै। "िे अत्न, यि काष्ठ्त्जसे, म ैंतुम्िें अपपतश करता िंू, स्वीकार करो। इसको चमक के साथ जलाजो और अपने पपवत्र धुएं को ऊपर भेजो, अपनी छटा से आकार् के उच्चतम भाग का स्पर् शकरो और सूय शकी ककरणों में ममल जाओ।"[86] इस प्रकार अत्न का तनवास केवल पृथ्वी पर अंगीिी में अथवा वेदी में िी निीं, ककन्तु आकार् में और अन्तररक्ष में भी िै, उसी प्रकार त्जस प्रकार सूय,श और प्रभातवेला, एवंबादलों में बबजली, वतमशान िै। अत्नदेवता र्ीघ्र िी परम देव बन जाता िै, त्जसका पवस्तार यु लोक एवं पृथ्वी दोनों जगिों में िै। ज्जयों-ज्जयों अत्नदेवता का भाव अधधकाधधक अमूतरूशप पकड़ता गया, यि उत्तरोत्तर उमकृष्ट एवं ंअलौककक रूप धारण करता गया। इसने देवताओं और मनुष्यों के बीच मध्यस्थ िोनेका एवं ंसबका सियक िोनेका रूप धारण ककया। "िे अत्न, िमें यिां ंआिुतत के मलए, वरुण को प्राप्त कराओ, इन्द्र को आकार्लोक से और मरुतों को वायुलोक से ले आओ।"[87]

---

82 ऋग्वेद,1/89 1

83 लैहटन भाषा में 'इत्नस्'्।

84 2:12, 31

85 एक जातत-पवर्ेष का नाम।

86 ऋग्वेद, 2/61

87 ऋग्वेद 10: 70, 11।

"म ैंअत्न को अपना पपता करके मानता िंूं। म ैंउसे अपना बन्धुकरके मानता िंूं, अपना भाई और ममत्र भी मानता िंूं ।"[88]

सोम जोकक स्फूतत शका देवता िै, अमर जीवन का दाता िै, त्दावस्ता के िाओमा के सर्दर् िै और यूनान के 'डायोतनसस' के समान िै, महदरा और द्राक्षा का देवता िै। दुखी मनुष्य अपने दुःखों को भूल जानेके पवचार से मत्त िोना चािता िै। जब यि पिले- पिल ककसी मादक द्रव्य का आश्रय लेता िै तो उसे अपूव शआह्लाद का स्पन्दन अनुभव िोता िै। इसमें सन्दिे निीं ंकक वि उन्मत्त िो जाता िै। ककन्तुवि सोचता िै कक यि दैवीय उन्माद िै। त्जन्िें िम आध्यात्ममक र्दत्ष्ट, आकत्स्मक प्रकार्, गम्भीरतम अन्तर्दत्ष्ट, बृित्तर वदान्यता एवं पवस्तृत पवचार किते िैं वे सब आममा की दैवीय प्रेरणायुतत अवस्था के साथ-साथ िी आते िैं। इसमें कुछ आश्चय शकी बात निीं ंिै कक महदरा, जो आममा को ऊंचा उिाती िै, दैवीय त्स्थतत को प्राप्त िो जाती िो। त्विटनी का किना िै, "सरलधचत आय शलोगों ने, त्जनकी समस्त पूजा आश्चयमशय र्त्ततयों की और प्राकृततक घटनाओं की िोती थी, र्ीघ्र िी यि अनुभव ककया कक उतत तरल पदाथ शमें आत्ममक र्त्ततयों को ऊंचा उिाने का सामथ्य श िै और वि एक प्रकार का अस्थायी उन्माद उमपन्न कर देता िै, त्जसके प्रभाव में मनुष्य ऐसे- ऐसे काय शकर डालनेकी ओर प्रवृत्त िो जाता िै और उनके मलए उसमें र्त्तत भी आ जाती िै, जो उसकी नैसधगकश र्त्तत से बािर िोते िैं; और इसीमलए उन्िें इसमें कुछ हदव्यता की भावना प्रतीत िुई। उनके पवचार में यि एक ऐसे देवता-स्वरूप थी जो मद्यपों के अन्दर प्रपवष्ट िोकर उनमें ईश्वरतुल्य र्त्ततयों का समावेर् कर देती िै। और इस र्त्तत को देनेवाला यि सोम का पौधा उनके मलए वनस्पतत का राजा बन गया तथा महदरा तैयार करने की पवधध पपवत्र यज्ञ बन गई। उसके मलए त्जन औज़ारों का प्रयोग ककया गया वे भी पपवत्र मानेजाने लगे। यि सम्प्रदाय अमयन्त प्राचीन िै। इस बात के साक्ष्य उन उद्धरणों से ममलतेिैं जो पारमसयों की अवस्ता में पाए जाते िैं। ककन्तुऐसा प्रतीत िोता िै कक भारत की भूमम पर इसेएक प्रेरणा ममली।"[89] इस भूमम पर सोम का पूणरूशप में मानवीकरण निीं िुआ। वि पौधा और उसका रस कपव के मानस में इतनेस्पष्ट रूप में बैिा िुआ िै कक वि उन्िें आसानी से देवमय प्राप्त निीं ंकरा सकता। सोम को सम्बोधधत मन्त्र उस समय गाए जानेके मलए थे जबकक पौधे से रस तनकाला जाता था। "िे सोम ! तुम, त्जसे इन्द्र के पानपात्र में डाला गया िै, पपवत्रतापूवकश एक अमयन्त मधुर और उल्लासकारी धारा के रूप में प्रवाहित िोओ।"[90] नौवें मंडल के 48,3 सूतत में पूजा करने वाले उच्च स्वर से िष शप्रकट करते िुए किते िैं, "िमनेसोम का पान ककया िै, िम अमर िो गए, िमनेप्रकार् में प्रवेर् पा मलया, िमनेदेवताओं का ज्ञान प्राप्त कर मलया।" इस आध्यात्ममक िषोन्माद का र्ारीररक उन्मतता के साथ ममश्रण केवल वैहदक काल की िी पवर्ेषता निीं ंिै। पवमलयम जेम्स िमें बताता िै कक मंहदरोन्मत्त की चेतना कुछ-कुछ ब्रह्मसाक्षामकारवाहदयों की चेतनावस्था के समान िै। यि समझा जाता िै कक िम हदव्य सत्ता को भौततक उन्माद की अवस्या में आकर प्राप्त कर सकतेिैं। धीरे-धीरे सोम ने रोगनार्क उपयोधगता की र्त्तत भी

---

88 ऋग्वेद, 10: 7, 31

89 'जनलश आफ हद अमेररकन ओररयंटल सोसायटी' , 3: 292।

90 9/1

 प्राप्त कर ली, त्जससे अंघों को देखने और लंगड़ों को चलने की र्त्तत प्राप्त िोती थी।'[91] सोम को सम्बोधधत करके तनममतशत तनम्न सुन्दर सूतत में िमें प्रतीत िोता िै कक इसके प्रतत वैहदक आयों का ककतना अनुराग था :

िे सोम, मुझे उस जगत् में स्थान दो जिां तनमय प्रकार् िो, उस अमर और अपवनश्वर लोक में स्थान दो जिां सूय शका स्थान िै। जिांपववस्वत् का पुत्र राज्जय करता िै, जिां स्वग शका गुप्त स्थान िै, जिां ये र्त्तर्ाली नहदयां िैं, विांमुझे अमरमव प्राप्त कराओ। जिां जीवन बंधनरहित िै, घु लोक के भी तीसरे लोक स्वग शमें जिांजगत् प्रकार्मान िै, उस लोक में मुझेअमर बनाकर स्थान दो। जिां इच्छाएं और आकांक्षाएं वतमशान िैं, जिांचमकीले सोम का पात्र िो, जिांभोजन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध िो, और प्रसन्नता िी प्रसन्नता िो, उस लोक में मुझे अमर करो। जिांसुख और आनन्द िै, जिांषि श और सुख तनवास करते िैं, जिां िमारी इच्छाओंकी भी इच्छा पूण शिो जाती िै, विांमुझे अमरता प्राप्त कराओ।"[92]

ऊपर उद्धृत् ककए गए सोमसूतत में पववस्वत् के पुत्र का उल्लेख िै, जो ऋग्वेद का यम िै और यि त्न्दावस्ता के पववन्ति का पुत्र यीमा के समान िै। यम को सम्बोधधत करते िुए तीन सूतत िैं। वि मृत् पुरुषों का सरदार िै, मृतों का देवता निीं ककन्तु र्ासक के रूप में िै। ममय शमानवों में वि सबसे पिला था त्जसे परलोक के मलए अपना माग शबनाना पड़ा, और विी पिला था जो पपतरों के माग शपर अग्रगामी िुआ।93 उसके पश्चात् अब वि आततथेय के रूप में नवागन्तुकों का स्वागत करता िै। वि उस राज्जय का राजा िै, तयोंकक उसे इसका सबसे अधधक धचरकाल का अनुभव िै। कभी-कभी उसका आह्वान अस्ताचलगामी सूय शके आह्वान के समान ककया जाता िै।'[94] ब्राह्मणग्रन्थों में यम न्यायाधीर् एवं मनुष्यों को दण्ड देनेवाला वन गया िै। ककन्तु ऋग्वेद में वि अभी केवल उनका राजा िी िै। यम उस कथन की समयता का उदािरण उपत्स्थत करता िै जो ल्यूमर्यन ने िेत्त्तलटस के मुख से किलाया िै: "मनुष्य कौन िैं? ममय शदेव िैं। और, देव तया िैं? अमरमव को प्राप्त मनुष्य।"

पजन्शय आयों का आकार् का देवता था। आय शलोगों के भारत में प्रवेर् करने के पश्चात् वि इन्द्र बन गया, तयोंकक इन्द्र आय-शपररवार के अन्य सदस्यों को पवहदत निीं था, ऐसा प्रतीत िोता िै। वेदों के अन्दर पजन्शय आकार् का दूसरा नाम िै। "पृथ्वी माता िै और म ैंपृथ्वी का पुत्र िूं, पजन्शय पपता िै, वि िमारी सिायता करे।"[95] अथववेशद में भूमम को पजन्शय की स्त्री करके किा गया िै।96 पजन्शय मेघ और वषाशका देवता िै।'[97] वि एक देवता

---

91 7:68,2, और 10/25 ,11।

92 'सेकेंड बुतस आफ हद ईस्ट', वैहदकसूतूत, भाग ।। देखें, धगलबटश मरे 'वाची आफ युरीपपडीज' का अनुवाद, पृष्ठ 20।

93 पपतृयान, 1/2, 71

94 10/14 ।

95 अथववेशद, 12/1 ,12।

96 12/1.42।

97 ऋग्वेद, 5/83

 67 के समान समस्त जगत् ्का र्ासन करता िै। वि समस्त स्थावर और जंगम जगत् ्का जीवन-प्राण िै।'[98] ऐसे भी
लेखांर् िैं त्जनमें पजन्शय ब्द मेघ अथवा वषा शके मलए प्रयुतत िुआ िै।99 मैतसमूलर की सम्मतत में पजन्शय मलयूएतनयन के पवद्युत देवता पेरकुनास100' के समान िै।

समस्त प्राकृततक घटनाओंमें, जो श्रद्धायुतत पवस्मय एवंआतंक को उमपन्न करती िैं, वज्र-झंझावात से बढ़कर दूसूरी कोई घटना निीं ंिै। इन्द्र किता िै, "जब म ैंआंधी- तूफान भेजता िूंू या बबजली चमकाता िूंू तब तुम मुझे ेमानतेिो।" इन्द्र को सम्बोधन करके कि गए सूततों को देखकर कि जा सकता िै कक इन्द्र वेदों का सबसे अधधक लोकपप्रय देवता िै। जब आय शलोग भारत में आए तब उन्िोंने ेअनुभव ककया कक उनका धन-वैभव केवल वषाश की संभावना के ऊपर िी तनभरश करता िै, जैसे आज भी िै। स्वभावतः वषाशका देवता भारतीय आयों का राष्ट्रीय देवता बन गया। नीलाभ आकार् की अन्तररक्ष सम्बन्धी घटनाओंका देवता इन्द्र िै। वि भारतीय जीयस िै। उसका प्राकृततक उद्गम स्थान प्रकट िै। उसकी उमपपत्त जल एवं मेघ से िै। वि वज्र धारण करता िै एवं अन्धकार पर पवजय प्राप्त पाता िै। वि िमें प्रकार् एवंजीवन देता िै, र्त्तत और ताजगी देता िै। आकार् उसके आगे मस्तक झुकाता िै और पृथ्वी उसके आने ेपर कांप जाती िै। र्नैः-र्नैः आकार् एवं वज्र-झंझावात के साथ जो इन्द्र का सम्बन्ध था उसे भुला हदया गया। वि दैवीय आममा का रूप धारण कर लेता िै, सारे संसार का एवं प्राणणमात्र र्ासक बन जाता िै, जो सबको देखता एवं ंसब कुछ सुनता िै और मनुष्यों के अन्दर सवोत्तम पवचारों व मनोभावों के मलए अन्तःप्रेरणा उमपन्न करता िै।'[101] झंझावात का देवता तूफान के दैमयों एवं अन्धकार को परास्त करके आयों के इस देर् के आहदवामसयों के साथ जो युद्ध िुए उनमें पवजय प्राप्त कराने वाला देवता बन गया। वि काल अमयन्त कमिशता का काल था और लोग उस काल में पवजय एवं पराजय के सिामसक कायों में जुटे िुए थे।े इस देर् के पवधमी आहदवामसयों से उसे कुछ वास्ता निीं ंथा। "उस वीर देवता ने उमपन्न िोनेके साथ िी अन्य देवताओं का नायकमव अपनेिाथ में मलया, त्जसके आगे दोनों लोक कांपते थे, िे मनुष्यो, वि इन्द्र िै; जो द्रुतुगतत से पृथूवी पर चलकर पिाड़ों को जिए िुए िै, अन्तररक्ष को त्जसने ेनाप मलया और घुलोक को त्जसने ेसंभाल मलया िै, िे मनुष्यो, वि इन्द्र िै; त्जसनेसप शको मारकर सात नहदयों को स्वतन्त्र ककया, गौओं की रक्षा की, जो युद्ध में र्त्रुओंको कुचलने ेवाला िै, िे मनुष्यो, वि इन्द्र िै; वि भयानक देवता, त्जसके पवषय में सन्देि करते िुए तुम पूछते िो कक वि किां ंिै और कितेिो कक उसकी सत्ता निीं ंिै, वि जोकक र्त्रुओंकी सम्पपत्त को छीन लेता िै, उसमें पवश्वास रखी, िे मनुष्यो, वि इन्द्र िै; त्जसकी र्त्तत से िी घोड़ों में और पर्ुओं में और सर्स्त्र सेनाओंमें र्त्तत िै और त्जसे युद्ध में दोनों ओर के योद्धा पुकारते िैं, िे मनुष्यो, वि इन्द्र िै; त्जसकी सिायता के बबना मनुष्य कभी पवजय निीं ंप्राप्त कर सकते, त्जसका बाण पापपयों का नार् करता िै, िे मनुष्यो, विी इन्द्र िै।"[102] यि सवपशवजयी देवता उच्चतम दैवीय गुणों की प्रात्प्त करता िै, आकार् के

98 ऋग्वेद, 7: 101, 61

99 देणखए ऋग्वेद, I: 164, 5, 7:611

100 इंडडया; व्िट कैन इट टीच अस नामक पुस्तक में व्याख्यान 61

101 8:37, 3; 8:18,5।

102 ऋग्वेद, 2: 12

 ऊपर र्ासन करता िै, पृथ्ूवी, नहदयों, समुद्रों और पवतशों पर भी र्ासन करता िै।"[103] और आगे

चलकर वरुण को

उसके वैहदक देवालय में सवोपरर पद से धगरा देता िै। वरुण के समान भव्य, न्यायकारी और सौम्य, अपने े प्रयोजन में एकरस रिने ेवाला देवता संघष शएवं पवजय के काल में, त्जसमें आय शलोगों ने अभी प्रवेर् ककया था, उपयुतत निीं ंरि गया था। इस प्रकार िम वैहदक जगत् ्में कुछ सूततों में एक मिान क्रांतत की पुकार सुनते े िैं।"[104]

इन्द्र को उन अन्य देवताओं के साथ भी युद्ध करना पड़ा, जो भारत में बसी िुई

पवमभन्न वन्य-जाततयों द्वारा पूजेजाते थे। उनमें नहदयों के पूजक थे,े'[105] अश्वमयवृकूष के पूजक थे।'[106] बिुत से दैमय, त्जनसे इन्द्र ने युद्ध ककया था, वन्य जाततयों के देवता थे,े जैसे वृतूर, एवं सप श।'[107] इन्द्र का एक अन्यतम र्त्रु ुऋग्वेद के काल में कृष्ण था, जो कृष्ण नामक वन्य-जाततयों का देवतास्वरूप वीरनायक था। छन्द इस प्रकार िै, "फुतीला कृष्ण अंर्ुमुती (यमुना) के ककनारे अपनी दस सिस्र सेनाओं के साथ रिता था। इन्द्र ने अपनी बुद्धध से ऊंचेस्वर से चीमकार करनेवाले इस सरदार का पता लगाया। उसनेिमारे लाभ के मलए इस लूटमार करनेवाले र्त्रु ुका पवनार् ककया।"[108] सायणाचाय शने इस प्रकार की व्याख्या प्रस्तुत की िै और यि कथा

---

103 10: 89, 10।

104 वरुण किता िै, "म ैंराजा िंूं, मेरी प्रभुता िै, सब देवता मेरे अधीन िैं, मनैं सबको व्यापक तनयम हदए िैं। वरुण के अध्यादेर्ों का अनुसरण करो। मनुष्यों के उच्चतम उपासना-गृि में मेरा र्ासन िै। म ैंराजा वरुण िंूं। िे इन्द्र, म ैंवरुण िंूं और दोनों पवस्तृत, गम्भीर और आनन्ददायक संसार मेरे िी िैं। एक बुद्धधमान स्रष्टा के रूप में मनैं िी सब प्राणणयों को बनाया िै। अन्तररक्षलोक और पृथ्वीलोक मेरे द्वारा िी सुरक्षक्षत िैं। मनैं बितेपानी में ज्वार पैदा ककया। मनैंिी अन्तररक्ष को अपने पपवत्र स्थान में त्स्थर ककया। म ैंिी पपवत्र आहदमय िंूं, जो बत्रपवध जगत् ्(अथात श ्अन्तररक्षलोक, भूलोक और वायुमण्डल) का पवस्तार करता िंूं।"

इन्द्र उत्तर देता िै, "घुड़सवार जब युद्ध में सब तरफ से तघर जाते िैं, तो मेरा िी आह्वान करते िैं। म ैंअमयन्त र्त्ततर्ाली िंूं, म ैंयुद्ध को उभारता िंूं एवं अपनी सवोपरर र्त्तत के द्वारा आंधी-तूफान लाता िंूं। वि सब मेरा िी ककया िुआ िै, और सब देवताओंकी सत्म्ममलत र्त्तत भी मुझेनिीं रोक सकती। म ैंअपरात्जत िंूं। जब में उदकापणश एवं प्राथनशाओंद्वारा अघा जाता िंूं तो दोनों असीम जगत् ्कांपं उिते िैं।"

ऋपष किता िै, "यि सब काम तुम करते िो, सब प्राणी जानते िैं; और अब तुमने, िे र्ासक, वरुण के प्रतत भी इसकी घोषणा की िै। िे इन्द्र, मनुष्य वृतूरासुर के मारने वाले के रूप में तेरी स्तुतत करतेिैं। तुमिीबिद्ध जलों को मुतत करके प्रवाहित करते िो। (4/42)

"अब में पपता असुर को पवदा देता िंूं। म ैंउसके पास से ऐसेमनुष्य के पास जाता िंूं त्जसे यज्ञ की आिुततयां ंन न दी गई िों और उसके पास भी जाता िंूं त्जसके प्रतत मनुष्य यज्ञ करते िैं। इन्द्र को चुनने के मलए म ैंअपने पपता को भी छोड़ देता िूं, यद्यपप अनेकों वष शमें उसके साथ ममत्रतापूण शसम्बन्ध में रिा िंूं। अत्न, वरुण और सोम को अवश्य अधीनता स्वीकार करनी चाहिए तयोंकक र्त्तत अब दूसूरे के िाथ में जाती िै। मनैं इसे आतेदेखा िै।" (10/124)

105 10:9, 1-31

106 ऋग्वेद, । 135, 8।

107 ऋग्वेद 6 / 33, 2; 6/29, 6

108 885, 13-15।

कृष्ण-सम्प्रदाय के सम्बन्ध में अपना कुछ मित्त्व रखती ि ै। परवती समय के पुराणों में इन्द्र और कृष्ण के पवरोध का प्रसंग पाया जाता ि ै। यि िो सकता ि ै कक कृष्ण, जो चरवािों की जातत का देवता ि ै और त्जसे ऋग्वेद काल में इन्द्र ने परास्त ककया था, भले िी भगवद्गीता के काल में उसनेअपनी खोई िुई भूमम को कफर से पवजय करके प्राप्त कर मलया िो और भागवतों के वासुदेव एवं ंवैष्णवों के पवष्णु के रूप में कफर से अमयधधक बल प्राप्त कर मलया िो। इस पवपवध प्रकार के उद्भव एवं इततिास ने उसे 'भगवद्गीता' के रचतयता एवं परब्रह्म के अवतार और यमुना के ककनारे बंसी बजानेवाले ग्वाल का रूप हदया।' [109]

इन्द्र के साथ अनेक छोटे-छोटे देवता अन्तररक्ष-सम्बन्धी अन्य प्रकार के चममकारों का प्रततततनधमव करते िैं, यथा वात (वायु), मरुद्गण, भयंकर तूफान के देवता और रूद्र भयंकर र्ब्द करने ेवाला। वायु के पवषय में कपव किता ि ै, "वि किां ंउमपन्न िुआ और किां ंसे आ धमका, जो देवताओं का जीवन और जगत् ्का अंकुर िै?कि न्दुविाहस्थकाई मिीत करता ि ै, जिां ंकिीं ंवि सुनता ि ै, उसके र्ब्द सुनाई पते़ देता।"[110] वात एक भारतीय ईरानी देवता ि ै। मरुद्गण उन ब़─ब़ ेआंधी-तूफानों के देवता िैं जो भारत में बिुत अधधक आते िैं। "जब वायु धूल और बादलों से काली िो जाती ि ै, जबकक क्षणमात्र में वृक्षों के सारे पते़्ते झ़ जाते िैं, उनकी र्ाखाएं कांपनेलगती िैं, तनेटूट जाते िैं, जबकक पृथ्वी कांपती िुई प्रतीत िोती ि ै और पिा़ हिल जाते िैं और नहदयों में भी उथल पुथल मच जाती ि ै।"[111] मरुद्गण साधारणतः र्त्तपूण शऔर नार्क िोतिैं, ककन्तु कभी-कभी दयालु और परोपकारी भी मसद्ध िोतिैं। वे एक मसरे से दूसूरे मसरे तक संसार पर वेग से प्रिार करते िैं अथवा वायु को रुद्ध करते िैं और वषाशलाते िैं।112 वे ेइन्द्र के सिचर और द्यौः के पुत्र िैं। कभी-कभी इन्द्र को मरुद्गणों में सबसे बा़ किा गया ि ै। अपनेरौद्र स्वभाव के कारण वे ेरुद्र के पुत्र समझे ेजाते िैं- रुद्र युद्ध का देवता ि ै।113 ऋग्वेद में रुद्र की बिुत गौण त्स्थतत ि ै, त्जसकी स्तुतत केवल तीन िी सूततों में पाई जाती ि ै। वि अपनी भुजाओं में वज्र धारण करता ि ै और आकार् से बबजली के बाण छोा़ता ि ै। बाद में विी कल्याणकारी मर्व बन जाता ि ै और उसकी परम्परा का सारा पवकास उसके इदश-धगदश आ जुटता ि ै।114

---

109 आगे चलकर कृष्ण-सम्प्रदाय सप शआहद तनम्न श्रेणणयों की पूजा करने वाला एवं इन्द्र के पूजकों से श्रेष् धगना जाने लगा। भधगनी तनवेहदता मलखती िैं, "कृष्ण कामलय सप शका दमन करता ि ै और अपने पांव का धचह्न उसके मसर पर अंककत कर देता ि ै। यिां ंभी संघष शि ै जो जो िमें नागेश्वर मर्व के व्यत्ततमव में ममलता ि ै, अथाशत्ये भत्ततपरक पवश्वास एवं पुरानी परम्परागत सप शपूजा के मध्य संघषश। कृष्ण ग्वालों को प्रेरणा देता ि ै कक वे इन्द्र की पूजा छो़ दें। यिां यि प्रमयक्ष रूप में उन पुरानेवैहदक देवताओं ंसे ऊपर उिने को किता ि ै जो, आज भी हिमालय के कुछ अंचलों की भांतत, ब्रह्म के मध्यस्थापन का कुछ ज्ञान निीं रखते।"

('फुटफाल्स आफ इंडडयन हिस्री', पृष्ठ 212)

110 10: 168, 34।

111 मैतसमूलर कृत 'इंडडयाः हृट कैन इट टीच अस ? पृष्ठ 180।

112 ऋग्वेद, 137, 11; 1:64, 6; 1:86, 10; 2:34, 12।

113 1:64, 2।

114 ऋग्वेद, 7 46, 3; 1: 114

इसी प्रकार कुछ देपवयों का भी पवकास िुआ। उषस् ्और अहदतत देपवयां िैं। मसन्धु नदी की एक सूतत में देवी के रूप में ख्यातत पाई जाती िै।'[115] और सरस्वती, जो पिले एक नदी का नाम था, र्नैः-र्नैः पवद्या की देवी बन गई।116 वाक् वाणी की देवी िै। अरण्यानी जंगल की देवी िै।117 अवाचशीन र्ातत-सम्प्रदायों ने ऋग्वेद-वणणतश देपवयों का उपयोग ककया। वैहदक आय शज्जयों िी पूजा के योग्य उस दैवीय प्रकार् का, जो सारे कू्-ेकरकट को भस्म करके राख बना डालता िै, ध्यान करने ेलगे तो उन्िोंने ेईश्वर की र्त्तत की िी उपासना प्रारम्भ की। "आओ, िे र्त्तत ! तुम जो िमारी प्राथनशाओंको स्वीकार कर इत्च्छत फल प्रदान करती िो, तुमु िी अनश्वर िो और ब्रिा के तुल्य िो।'[118]

जब पवचारधारा ने प्राकृततक जगत् ्से आध्यात्ममक जगत् ्की ओर एवं ंभौततक से आत्ममक जगत् ्की ओर बढ़ना आरम्भ ककया तो अमूत शदेवी-देवताओं की कल्पना करना सरल िो गया। इस प्रकार के अधधकांर् देवी-देवता ऋग्वेद के अत्न्तम भाग में ममलतेिैं, त्जससे संकेत ममलता िै कक उनकी उमपपत्त अपेक्षाकृत बाद में िुईिै िम मन्यु[119]' श्रद्धा'[120] आहद को पातेिैं। कततपय गुणों को लेकर जो परमाममा के यथाथ शभाव के साथ जुे ुए िैं उन्िें देवता का रूप दे हदया गया िै। मवष्टा, त्जसे कभी-कभी सपवता'[121] के साथ ममला हदया गया िै, सृतूष्ट कताकाथा िै। उसनेइन्द्र का वज्र बनाया, ब्रह्मणस्पतत के परर्ु ुको तेज ककया, ऐसे पात्रों का तनमाणश त्जनमें देवगण सोमपान करते िैं, और अन्य सब जीपवत पदाथों को भी आकृतत प्रदान की। ब्रह्मणस्पतत बिुत िी आधुतनक देवता िै, जो उस काल का िै जबकक यज्ञों का प्राधान्य िो गया था। प्रारम्भ में जो प्राथनशा का उपास्य देव था, र्ीघ्र िी यज्ञ का देवता बन गया। िम उसमें पवर्ुद्ध वैहदक धम शके भाव और अवाचशीन समय के ब्राह्मण-धम शमें िोने ेवाला संक्रमण देखतेिैं।'[122]

6. अद्वैतवादी प्रवृपृत्तयां

जैसा कक िम आगे चलकर अथववेशद की पववेचना में देखेंगे, आय शजगत् ्की सीमाओंसे परे के रिस्यवादी पवचार, जो एक बबलकुल मभन्न पवचारधारा के अंग थे, वैहदक देवमाला में भी प्रवेर् कर गए। देवी-देवताओं की इस भीड़ ने बुद्धध को अमयन्त परेर्ान कर हदया। इसमलए बिुत पिले से एक ऐसी प्रवृपृत्त ने जन्म

---

115 10: 75, 2, 4, 6।

116 6:61।

117 . 10 / 146 ।

118 आयातु वरदा देवी अक्षरं ब्रह्मसत्म्मतम् ्तैपत्तरीय 2. 'रॉय' 10: 83, 41 आरण्यक, 10/34 ,52।

119 'राय' 10:83, 4

120 आस्थडा 10 / 151

121 3/55 19 ।

122 रोथ किता िै, "ऐसे. सब देवताओंको, त्जनके नाम के साथच 'पतत' (अथवा स्वामी) का प्रयोग िोता िै, अमयन्त आधुतनक समझना चाहिए। इन सबकी कल्पना बाद के पवचार का पररणाम िै। ककन्तु इस प्रकार की एक सामान्य धारणा बना लेना अनुधचत िै, जैसेवास्तोष्पतत (यि प्राचीन देवता िै) मुझेइसका पररचय प्रोफेसर कीथ से ममला।

 मलया, त्जसके अनुसार या तो एक देवता को दूसूरे देवता के साथ ममला हदया जाए या सभी देवताओं को एकत्र
कर हदया जाए। वगीकरण के प्रयमन से देवता घटकर तीन क्षेत्रों-पृथूवी, वायु एवं आकार् में रि गए। कभी- कभी देवताओं की संख्या 333 अथवा 3 की संख्या के अन्य ककसी जो़ के रूप में बताई जाती ि ै।123 जब वे एक समान प्रयोजन को मसद्ध करते ि ैं तो जो़ े के रूप में उनकी स्तुतत की जाती ि ै और कभी-कभी उन सबको एक साथ 'पवश्वेदेवा:' या देवमाला के रूप देकर एक मित्तर भाव में एकत्र कर हदया जाता ि ै। क्रमबद्ध करने े की इस प्रवृपृत्त ने अन्त में स्वभावतः अद्वैतवाद को जन्म हदया, जो अधधक सरल और अनेक देवी-देवताओं की परस्पर-पवरोधी भी़भा़ की अराजकता की अपेक्षा अधधक तकशसंगत ि ै।

ईश्वर के ककसी भी यथाथ शपवचार के साथ अद्वैतवाद का भाव आना अतनवाय शरूप से आवश्यक ि ै। परम सत्ता केवल एक ि ी ि ो सकती ि ै। परम एवंअनन्त दो सत्ताएं निंींस्वीकार की जा सकतीं। ि र जगि यि प्रश्न उिता था कक तया ईश्वर भी ककसी अन्य सत्ता द्वारा बनाया गया ि ै। ककन्तु वि सत्ता त्जसे कोई दूसूरा बनाए, ईश्वर निंींि सिकती। ज्जयों- ज्जयों संसार की आन्तररक काय शप्रणाली के अन्दर तनरीक्षण करने े का भाव एवं ं उसके अधधपतत ईश्वर के स्वरूप का तनणयश आगे बढ़ता ि ै, अनेक देवता संकुधचत ि ोकर एक ईश्वर में समा जाते ि ैं। ॠत के भाव के अन्दर जो एकमव के भाव का अनुभव ि ुआ, उससे भी अद्वैतवाद का समथनश ि ोता ि ै। यहद प्रकृतत की नानापवधध और मभन्न-मभन्न घटनाओं के कारण अनेक देवताओं की कल्पना की जाती ि ै तो प्रकृतत के अन्दर जो एकमव लक्षक्षत ि ो रि ा ि ै उसके अनुसार ईश्वर के एकमव को भी स्वीकार ककया जाए वि ी एकमात्र ईश्वर, जो सब पदाथों में व्याप्त ि ै। प्राकृततक तनयम में पवश्वास करना ि ी एक ईश्वर में श्रद्धा को उपजाता ि ै। ज्जयों- ज्जयों ि म इस पवश्वास में आगे बढ़ेंगे, ममथ्या पवश्वास स्वयंतनत्ष्क्रय ि ो जाएंगे। प्रकृतत में जो एक प्रकार की तनयममत व्यवस्था पाई जाती ि ै, उसको देखतेिुए चममकार-सम्बन्धी अनुमानों व कल्पनाओंके मलए कोई स्थान निंींरि जाता, त्जनके कारण ि ी अन्धपवश्वास और भ्रांतत पवषयक पवचारों से बिुदेवतावाद की कल्पना उपजती ि ै। वरुण की उपासना से ि म अद्वैतवाद से बबलकुल तनकट पिुंच जाते ि ैं। सदाचार-सम्बन्धी एवं आध्यात्ममक सब गुण-यथा न्याय, उपकार, साधुता और यिां ंतक कक करुणा भी उसी वरुण में सत्न्नहित बताए गए ि ैं। उच्चतर और अमयधधक आदर्वशाद पर अधधकाधधक बल हदया गया ि ै, और दूसूरी ओर किोर एवं भौततक पक्ष को दबाया गया ि ै और उपेक्षा की र्दत्ष्ट से देखा गया ि ै। वरुण वि देवता ि ै त्जसमें मानव एवं प्रकृतत, इिलोक एवंपरलोक सब ओत-प्रोत ि ैं जो केवल बाह्य चररत्र की ि ी परवाि निंीं ंकरता ककन्तु जीवन की आन्तररक पपवत्रता की ओर भी पूरा-पूरा ध्यानउ रखता ि ै। धाममकश चेतना की एक परब्रह्म के प्रतत उपलक्षक्षत मांग ने अपने को वेदों के एकेश्वरवाद, अथवा एकसत्तावाद के रूप में अमभव्यतत ककया। मैतसमूलर के अनुसार, इसी ने इस पररभाषा को बनाया कक प्रमयेक देवता को क्रमर्: पूज्जय मानकर अन्त में सबसे ब़ े यिांतक कक एकमात्र ईश्वर तक पिुंचा जा सकता ि ै। ककन्तु समस्त त्स्थतत तकश के साथ संगतत निंीं ंखाती, तयोंकक हृदय तो उन्नतत का सिी माग शप्रदमर्तश करता ि ै लेककन पवश्वास उसके पवरोध में जाता ि ै। ि म बिुदेवतावाद को स्वीकार निंीं ंकर सकते तयोंकक धाममकश चेतना इसके पवरोध में ि ै। एकेश्वरवाद से चलकर ि म अन्धकार में टटोलते ि ुए

123

देखें,ॠग्वेद ,3/9

 अद्वैतवाद तक पिुंच जाते िैं। मानव का दुबुलश मानस अभी भी अपने उद्देश्य की खोज में िै।

वैहदक आय शलोगों
ने परम सत्ता के रिस्य को बिुत सूक्ष्म दृष्टि से अनुभव ककया और प्रचमलत पवचारों को उसकी व्याख्या के मलए अपयाप्शत पाया। सभी देवता, त्जनकी परम सत्ता के रूप में पूजा की जाती थी, एक िी श्रेणी में थे,े यद्यपप कुछ समय के मलए उनमें से ककसी एक को सवोच्च स्थान दे हदया जाता था। एक देवता को मानने ेका तामपय शयि निीं ंकक अन्य देवताओं की सत्ता का तनषेध ककया जाता िै। कभी-कभी छोटे से छोटा देवता भी ऊंचेसे ऊंचा पद पा जाता िै। यि तनभरश करता था कपव की भत्तत के ऊपर और इस पर कक उसके सामने उद्देश्य के रूप मे पवमर्ष पदाथ शतया िै। "वरुण िी द्युलोक िै, वरुण पृथ्वीलोक िै, वरुण वायुमण्डल िै, और वरुण िी समस्त पवश्व िै जो
चारों ओर दृष्टिगोचर िोता िै।" कभी अत्ग्न को िी सवदेशवता का स्वरूप माना गया िै। कभी इन्द्र को सब देवों में मिानतम माना गया िै। कुछ समय के मलए प्रमयेक देवता अन्य सब देवताओं की समवेत प्रततकृतत के रूप में प्रकट िोता िै। ककन्तु मानव का ईश्वर के प्रतत आममसमपणश का भाव, जो धाममकश जीवन का समय िै, तभी सम्भव िो सकता िै जब एक िी ईश्वर की सत्ता को स्वीकार ककया जाए। इस प्रकार एकेश्वरवाद धम शसम्बन्धी तकश का स्वाभापवक तनष्कष शिै। ब्लूमफील्ड के अनुसार, "बिुदेवतावाद के कक्रयाममक जीवन में असमथ शिोने ेऔर परस्पर भेदों में अनौधचमय िोने ेके कारण, अद्वैतवाद को मसर उिाने का अवसर ममल गया, त्जसमें प्रमयेक देवता प्रभुता को प्राप्त करता था ककन्तु उसे रख निीं ंपाता था।"[124] लेककन ऐसी बात निीं ंिै।

जब प्रमयेक देवता को सृत्ष्ट के कताश के रूप में माना जानेलगा और प्रमयेक को पवश्वकमाश अथात्श ्संसार के तनमाणशकताश, और प्रजापतत अथात्श ्प्राणणयों के स्वामी के गुणों से पवभूपषत ककया जानेलगा तब उनकी वैयत्ततक पवर्ेषताओं को छुाकर एक ऐसे देव की कल्पना करना, त्जसमें सवसशामान्य कक्रयाएं उपत्स्थत िों, आसान िो गया-पवर्ेषतः जबकक अनेक देवता केवल भ्रमाममक और अस्पष्टभावाममक थे और केवल कल्पना के रूप में रिकर अपनी वास्तपवक सत्ता भी निीं ंरखते थे।

ईश्वर के पवचार के प्रतत क्रमर्ः आदर्वशाद के द्वारा पिुंचना, जैसा कक वरुण सम्प्रदाय में अमभव्यतत िुआ, धाममकश तकश त्जसने ेअनेक देवताओं की एक-दूसूरे के अन्दर समापवष्ट िो जानेकी प्रवृपृत्त को जन्म हदया, एकेश्वरवाद त्जसने ेअपना झुकाव अद्वैतवाद की ओर कर िी मलया था, ऋत के पवचार अथात्श ्प्रकृतत के एकमय के पवचार और मानवीय मानस की क्रमबद्धता के प्रतत स्वाभापवक प्रवृपृत्त इन सबनेएकत्र िोकर बिुदेववाद के अवतारवाद के पवचार को नीचेधगराकर एक धाममकश अद्वैतवाद की स्थापना की। इस काल के वैहदक ऋपषयों का झुकाव पवश्व के एक ऐसे आहदकरण को खोज तनकालने की ओर था जो एकमात्र स्रष्टा िो, जो स्वयंभू िो अथाशत् ् त्जसका बनाने वाला दूसूरा कोई न िो, और जो अपवनार्ी िो। इस प्रकार के एक एकेश्वरवाद की स्थापना के मलए एक िी ताककशक पवधध थी कक समस्त देवताओं को एक उच्चतम सत्ता अथवा सबको तनयन्त्रण में रखने वाली एकमात्र सत्ता के अधीन कर हदया जाए, जो तनम्न श्रेणी के देवताओं की गततपवधध का भी तनयमन कर सके। इस प्रकक्रया नेएकमात्र ईश्वर की सत्ता के प्रतत जो प्रबल अमभलाषा थी उसकी भी पूतत शकर दी और साथ-साथ भूतकाल के तारतम्य को भी पवद्यमान रिनेहदया। भारतीय पवचारक चािे ककतने िी तनभीक एवं ंनेकनीयत

124 'द ररमलजन आफ द वेद', पृष्ठ िि99।

तयों न रि िों, उन्िोंने ेकभी किोरता एवं ंअमर्षता का व्यविार पवपक्षक्षयों के प्रतत निीं ंककया। साधारणतः वे बदनाम िोनेसे बचतेरिे और इसीमलए प्रायः उन्िोंने िर स्थान पर समझौता िी उधचत समझा। ककन्तु तनदेय तकशर्ास्त्र को, जो इतना ईषालुश ुर्ासक िै, बदला ममला त्जसका पररणाम यि िुआ कक आज का हिन्दूधम शअपनी समावेर् की भावना के कारण िी अनेक पवषमाङ्ग दर्नशधाराओं, धम-शसम्प्रदायों ओर पौराणणक आख्यानों एवं चममकारों के एक समिू के रूप में िमारे सामने िै। अनेक देवता एक िी व्यापक सत्ता के मभन्न-मभन्न मूतरूशप मान मलए गए िैं। उन सबको अपने-अपने पवमभन्न क्षेत्रों में, यद्यपप परमब्रह्म के साम्राज्जय की अधीनता के अन्तगतश, र्ासक के रूप में अंगीकार कर मलया गया िै। उन्िें मभन्न-मभन्न अधधकार तो हदए गए ककन्तुउनका प्रभुमव एक राजप्रतततनधध की िैमसयत से िै न कक एक सम्राट की िैमसयत से। अव्यवत्स्थत प्रकृततपूजा के अत्स्थर देवताओं ने पवश्व की र्त्ततयों का स्थान ग्रिण कर मलया, त्जनकी कक्रयाओं को एक सामञ्जस्यपूण श पद्धतत में तनयममत ककया गया िै। यिां ंतक कक इन्द्र और वरुण भी अपने- अपनेपवभागों के देवता बन गए। ऋग्वेद के अत्न्तम भाग में सबसे ऊंचा स्थान पवश्वकमाश को हदया गया िै।125 वि सवद्रशष्टा देवता िै, त्जसकी सब हदर्ाओंमें आंखें िैं, मुख िैं, भुजाएं िैं, पैर िैं, जो यु लोक और पृथ्वीलोक को अपनी पवर्ाल भुजाओंएवं उ़नर्ील पंखों के प्रभाव से उमपन्न करता िै, जो सब लोकों का ज्ञान रखता िै ककन्तुजो ममय शमानवों के ज्ञान से परे का पवषय िै। बृिस्पतत का भी दावा सवोपरर पद की प्रात्प्त के मलए िै।126' अनेक स्थलों पर यिी प्रजापतत

अथाश्त् ्प्राणणमात्र का स्वामी िै।127 हिरण्यगभ शअथाश्त् स्वणमशय देवता परम सत्ता के नाम के अथों में प्रयुतत िोता िै, त्जसे समस्त पवश्व के एकमात्र प्रभु के रूप में बताया गया िै।'[128]

7. एकेश्वरवाद बनाम अद्वैतवाद

यि बात, कक वैहदक सूततों के तनमाणश के हदनों में केवल अव्यवत्स्थत कल्पनाओंएवं भ्रांततयों का िी अत्स्तमव निीं था बत्ल्क गम्भीर पवचार एवंत्जज्ञासा का भाव भी साथ-साथ वतमशान था, इस प्रकार प्रमाणणत िोती िै कक िमें स्थान-स्थान पर प्रश्नाममक प्रवृपृत्त ममलती िै। अनेक देवताओं की कल्पना करने ेकी आवश्यकता इसमलए अनुभव िुई, तयोंकक मानवीय मत्स्तष्क के अन्दर एक स्वाभापवक प्रवृपृत्त ककसी पवषय को स्वयंखोजकर समझने ेकी ओर िोती िै, वि िरेक बात को वैसे िी मान लेनेके मलए उद्यत निीं ंिोना चािता। "रात के समय सूय शकिां ंरिता िै?" "हदन के समय तारे किां गायब िो जाते िैं?" "सूय शनीचेतयोंनिींधगर पड़ता?" "हदन और रात दोनों में कौन पिले और कौन पीछे िै?" "वायु किांसे आती िै एवं किां ंजाती िै?"[129]- ये इस प्रकार के प्रश्न और श्रद्धायुतत पवस्मय तथा अचम्भे की बातें िैं जो समूचे ेदर्नशर्ास्त्र एवं ंभौततक पवज्ञान को

---

125 देखें, 10: 81,821

126 देखें , 10: 72।

127 देखें, 10: 85, 43; 3. 10:1211 10/121 10: 189, 4; 10:184, 4; र्तपथ ब्राह्मण ,6:6, 8, 1 - 14 10: 1, 3, 11

128 10:12 ।

129 ऋग्वेद , 1: 24, 185 ।

जन्म देती ि ैं। िमनेदेख भी मलया िै कक ककस प्रकार मनुष्य के अन्दर अन्धकार को टटोल-टटोलकर ज्ञान प्राप्त करने ेकी सिज प्रेरणा िोती िै, और उसकी पवमभन्न आकृततयों और धारणाओं को भी िम देख चुके िैं। अनेक देवाताओं की स्वीकृतत पर बल हदया गया। ककन्तु मानवीय हृदय की अमभलाषा बिुदेववाद की देवामाला से सन्तुष्ट न िो सकी। आरंका उिी कक कौनसा देव यथाथ शि।ै 'कस्मै देवाय िपवषा पवधेम', ककस पवमर्ष देव के मलए िम अपनेमानमसक यज्ञ में आिुतत दें।130 देवताओं का सीधा-सादा उद्गम स्थान बबलकुल स्पष्ट था। भारत की भूमम पर नये-नये देवताओं की उमपपत्त िोने ेलगी और उनमें से कुछेक यिांके आहदम तनवामसयों से उधार भी मलए गए। 'िमें भत्ततभाव से पूण शकरो ।"[131] इस प्रकार की प्राथनशा दृढ़ पवश्वास के काल में सम्भव निीं ं िो सकती थी। संर्यवाद की गन्ध आने ेलगी थी। इन्द्र की त्स्थतत और उसके मर्मणणमव में रंकाएं उिनेलगी थीं।'[132] तनषेधाममक नात्स्तकता का भाव समस्त पवचार को 'ममथ्या का ताना-बाना बनाकर अग्राह्य घोपषत कर रिा था। अज्ञात देवताओं को सम्बोधधत करके मन्त्र तनमाणश ककए गए। िम 'देवताओं के सन्ध्याकाल' में आ पिुंचते िैं, जिां वे नैः-नैः प्रयाण करते जा रिे िैं। उपतनषदों में पिुंचकर उतत सन्ध्याकाल राबत्र के रूप में पररणत, िो गया और वे देवता ततरोहित िो गए, केवल भूतकाल के स्वप्न देखने वालों के मलए िी उनका अत्स्तमव रि गया। अद्वैतवाद के काल की 'एकमात्र सत्ता' भी आलोचकों से न बच सकी। मानव का मानस ईश्वर के अवतारवाद की कल्पना से सन्तोष निींप्राप्त कर सका। यहद िम किें कक एक िी मिान ईश्वर िै, त्जसके नीचेअन्य सब िैं तो भी आगे प्रश्न उिता िै कक "प्रयम उमपन्न देव को ककसने देखा? उसको ककसने ेदेखा, त्जसने स्वयंअत्स्थीन िोतेिुए भी अत्स्थघाररयों को उमपन्न ककया? जीवन, रतत और पवश्व की आममा किां ंिै? जानने ेबाले पवद्वान के पास कौन पूछने ेके मलए गया?"[133] यि दर्नशर्ास्त्र की मूलभूत समस्या िै। जीवन तया िै अथवा पवश्व का तत्त्व तया िै?- केवल रूहढ़वाद से काम निींचलेगा। िमें आध्यात्ममक यथाथ शसत्ता को अवश्य अनुभव करना िै और उसका ज्ञान प्राप्त करना िै। इसमलए प्रश्न यि िै कक "पूवजशन्मा को ककसने देखा?"[134] त्जज्ञासु अन्वेषक अपनेतनजी आराम के साधनों और सुखु की भी उतनी परवाि निीं ंकरता त्जतना कक वि परम समय के ध्यान के मलए व्यग्र रिता िै। चािे ईश्वर को एक असभ्य मनुष्य की धारणा के अनुसार कुद्ध एवं छेड़े गए व्यत्तत के रूप में माना जाए, अथवा उसे एक सभ्य मनुष्य के पवचार के अनुसार दयातनधान के रूप में माना जाए, जो इस भूलोक के सब प्राणणयों का न्यायकताश, संसार का रचतयता एवं ंउनको वर् में रखनेवाला िै, यि एक दुबुलश पवचार िै जो समीक्षा के आगे निीं ंिििर सकता। ईश्वर के मानवीयकरण का भाव अवश्य लुप्त िो जाना चाहिए। उतत प्रकार के पवचार िमें ईश्वर का प्रतततनधध तो भले िी दे सकें ककन्तु यथाथ शरूप में जीपवत ईश्वर निींप्राप्त करा सकते। िमें एक ऐसे ईश्वर के अन्दर पवश्वास लाना िै जो जीवन का केन्द्र िै, ककन्तुउसकी छायामात्र निीं िै जो मनुष्यों के मनों के अन्दर प्रततबबत्म्बत िोती िै। ईश्वर िमारे चारों तरफ व्याप्त एक प्रकार का अक्षुण्ण भण्डार िै। 'प्राणो पवराट्' अथात्श ्जीवन पवर्ाल और अपररममत िै। इसके अन्दर वस्तुओंका िी निीं,ं

130 131

132

133 10:121

134 10:151 ।

10:86,1 7:100-3:12,5 ।

ऋग्वेद, 1/4 164 ।

"को ददर् शप्रथमा जायमानम् ्?"

भारतीय दर्नश -1 75 पवचारों का भी समावेर् ि◌ो जाता ि◌ै। वि अपनेको पवमभन्न रूपों में अमभव्यतत करता ि◌ै। यि

एक ि◌ै, एक समान

ि◌ै, तनमय ि◌ै, आवश्यक ि◌ै, असीम एवं ◌ंअनन्त ि◌ै और सवर्शत्ततमान ि◌ै। इसी से सब कुछ तनकलता ि◌ै और कफर

इसी में समा जाता ि◌ै। एक दिेधारी ईश्वर का भले ि◌ी मनोभावाममक मित्त्व ि◌ो, ककन्तु समय एक अन्य प्रकार के

मानदण्ड की स्थापना करता ि◌ै और एक पवर्ेष प्रकार के पूजनीय पवषय के मित्त्व को बताता ि◌ै। भले ि◌ी वि

ककतना ि◌ी रूक्ष और दूरूवती, भयानक और अपप्रय ि◌ो, उसके समय ि◌ोने ◌े में कोई न्यूनता निीं ◌ं आती।

एकेश्वरवाद,

त्जसे आज भी मनुष्य-समुदाय का एक बा़ भाग र्दढ़ता के साथ पक़ ि◌ुए ि◌ै, आधुतनक वैहदक पवचारकों को

सन्तोष प्रदान करने ◌ेमें असमथ शरिा ि◌ै।

श ्सत् उत्कृष्ट पवचारकों ने उस केन्द्रीभूत तत्त्व को नपुंसकमलंगं की संज्ञा अथात्

ि◌ीता ि◌ै कक वि मलंगातीत ि◌ै। उन्ि◌ें इस बात' का तनश्चय था कक एक ऐसी यथाथ शसत्ता अवश्य ि◌ै त्जसकी अत्ग्न,

इन्द्र, वरुण आहद केवल मभन्न-मभन्न संज्ञाएं अथवा आकृततयााँ। यि कक ऐसी एक सत्ता अवश्य थी और

एंकाकी ि◌ी थी अनेक निीं,◌ं जो दिेधारी मूतरूशप निीं ि◌ै, 'उस सबका जो स्थावर ि◌ै और भी जो जंगम, अथवा जो

चलता या उड़ता ि◌ै', र्ासक ि◌ै, तयोंकक उसका जन्म अन्य प्रकार का ि◌ी ि◌ै।135 "यथाथ शसत्ता एक ि◌ी ि◌ै, पवद्वान

लोग उसे नाना प्रकार के नामों से पुकारते ि◌ैं, यथा अत्ग्न, यम और मातररश्वा आहद।"[136]

नक्षत्र-मण्डल से मत्ण्डत नभ और यि पवस्तृत भूमण्डल, मिान समुद्र और सवदशा अचल रिने ◌ेवाली पवतशमालाएं "एक ि◌ी मत्स्तष्क के अद्भुत काय िैं, और उसी एक चिेरे के मभन्न- मभन्न पाश्व िैं, एक ि◌ी सामान्य वृक्ष के ऊपर पवकमसत ि◌ुए फूल ि◌ैं, उसी मिान ईश्वरीय ज्ञान के स्वरूप ि◌ैं, उसी तनमय सत्ता के नमूने ◌ेएवं संकेतमात्र ि◌ैं, जो सबसे प्रथम और सबसे अत्न्तम र्ेषेरूप ि◌ै, जो मध्य में भी सत् ◌्ि◌ै, और त्जसका अन्त निीं।"[137] यिी एकमात्र सत्ता पवश्व की आममा ि◌ै, यि वि वृद्धधर्त्तत ि◌ै जो समस्त पवश्व के अन्तहितश और उसमें व्याप्त ि◌ै, समस्त प्रकृतत का आहद-उद्गम ि◌ै और अनाहद-अनन्त र्त्तत का पुंज ि◌ै। यि स्वयंन तो द्युलोक ि◌ै न भूलोक, न सूय शका प्रकार् ि◌ै न तूफान, ककन्तु एक अन्य ि◌ी प्रकार का तत्त्व ि◌ै, सम्भवतः साक्षात् ◌्ऋत ि◌ी मूतरूशप में एवं धाममकश वृपृत्त से पूण शअहदतत ि◌ै, एक ऐसी सत्ता जो तनरन्तर जीपवत रिने ◌ेवाली ि◌ै।138 ि◌म इसे देख निीं ◌ंसकते, ि◌म इसका ि◌ीकर्िीक वणनश निीं ◌ंकर सकते। एक हृदयग्रािी सरलता के साथ कपव अन्त में किता ि◌ै, "ि◌म उसे कभी न देखेंगे त्जसने इन सब पदाथों को जन्म हदया।" "एक अज्ञानी मूख शकी भांतत अपनेमन में बबलकुल अबोध मनैं ◌ेदेवताओंके गुप्तस्थानों को जानना चािा ककन्तुजब उन्ि◌ें नि ढूंढ़ सका तो म ◌ैंबबना जाने ककन्तु ◌ुजाननेकी लालसा से उन सन्तों से पूछूता ि◌ं◌ूू, त्जन्ि◌ोंनेसम्भव ि◌ै उसे खोज मलया ि◌ो।"[139] यि वि सवोपरर परम सत्ता ि◌ै, जो सब पदाथों में जीपवतरूप में पवद्यमान ि◌ै और उन सबका संचालन करती ि◌ै, विी यथाथ शसत्ता

---

135 3:54, 8।

136 "एकं सद्पवपा बिुधा वदत्न्त। अत्ग्नं ◌ंयमं ◌ंमातारश्वानमािुः " (1: 164, 46)।

137 वड्सशवथ,श 'पप्रल्यूड' 6।

138 10: 129, 2।

139 ऋग्वेद, 10: 121; 10: 82, 7; 1: 167, 5-6।

गुलाब के फूल को णखलाती िै, मेघों के अन्दर सौंदय शके रूप में प्रस्फुहटत िोती िै, तूफानों में अपनी र्त्त का प्रदर्नश करती िै और अन्तररक्ष में तारागण को जत़ी िै। यिां ंकफर िमें समयस्वरूप इंश्वर का अन्तज्ञानश ममलता िै, जो सब देवों में एक िी देव मिादेव िै, जो सदा आश्चयमशय िै ककन्तु सबसे अधधक अद्भुत एवं आश्चयमशय इसमलए िै कक पवचारधारा के इतततास के प्रथम प्रातःकाल के ब्राह्म मुिूत शमें इसके समयस्वरूप की झांकी ऋपषयों को ममली थी। इस एक अद्पवतीय सत्ता की उपत्स्थतत में आय शएवं द्रपव़, यिूदी एवं काकफर, हिन्दु ुएवं मुत्स्लम, देवतापूजक एवं ईसाई के बीच का भेद फीका प़ जाता िै। यिां ंपर िमें क्षण-मात्र को एक ऐसे आदर्कशाल की झलक ममलती िै, जिां ंसमस्त पाधथवश धम शछायारूप िोकर केवल एक पूण शसमय की ओर संकेत करते िैं। एक िी अद्पवतीय सत्ता िै, त्जसे मभन्न-मभन्न नामों से पुकारा जाता िै। "पुरोहित और कपव लोग र्ब्दजाल के द्वारा उस प्रच्छन्न सत्ता को, जो केवल एक िी िै, नानामव का रूप दे देते िैं।"[140] मनुष्य इस व्यापक सत्ता के पवषय में अपूण शपवचार रखनेके मलए पववर् िै। उसकी इच्छाओंकी पूतत शअपयाप्शत पवचारों से, 'ऐसी ममध्या धारणाओं से िोती प्रतीत िोती िै त्जनकी िम यिां ंपूजा करते िैं।' कोई दो ममथ्या धारणाएं एक समान निीं ंिो सकतीं, तयोंकक ककन्िीं दो मनुष्यों के पवचार सदा एक-से निीं ंिोते। उन संकेतों को लेकर त्जनसे िम उस यथाथ शसत्ता की अमभव्यत्तत का प्रयमन करते िैं, परस्पर कलि करना तनतान्त मूखतशापूण शिै। परब्रह्म एक और अद्पवतीय िै, त्जसे मभन्न-मभन्न क्षेत्रों में और अन्वेषकों की भी अपनी मभन्न रुधचयों के कारण मभन्न-मभन्न नामों से पुकारा जाता िै। इस पवचार को प्रचमलत धम शके साथ समत्न्वत करने ेको एक संकीण शपवचार-मात्र न समझना चाहिए। यि गम्भीर दार्तशनक समय के रूप में दैवीय प्ेरणा का पररणाम िै। इ्राइल को यिां ंदैवीय प्ेरणा ममली थी, "तेरा प्रभु, तेरा ईश्वर एक िै।" प्लूटाकश किता िै, "सब राष्ट्रों के ऊपर एक िी सूय,श एक िी अन्तररक्ष और मभन्न-मभन्न नामधारी एक िी 'देव' की छाया िै।"

"िे ईश्वर ! अमयन्त यर्स्वी, त्जसे अनेक नामों से पुकारा जाता िै, प्रकृतत के मिान सम्राट्, अनन्त वषों के एकरस, सवर्शत्ततमान, तुम जो अपनी न्यायपूण शआज्ञा से सबको तनयन्त्रण में रखते िो, ऐसे िे ीयस, िम तुम्िारा स्वागत करते िैं। तयोंकक सब देर्ों में तुम्िारे प्राणी तुम्िें िी पुकारते िैं।"[141]

ऋग्वेद के इस एकेश्वरवाद के मसद्धान्त के पवषय में ड्यूसन मलखता िै, "हिन्दू ूलोग एक एकेश्वरवाद के मसद्धान्त पर एक ऐसी पद्धतत द्वारा पिुंचे िैं जो अन्य देर्ों की पद्धततयों से तत्त्वरूप में बबलकुल मभन्न िै। ममस्र देर् में एकेश्वरवाद का माग शएक अन्य िी प्रकार का अपनाया गया था, अथात् श ्नाना प्रकार के स्थानीय देवताओं के यात्न्त्रक तादामम्य की पद्धतत अपनाई गई। पैलस्टाइन में अन्य सब देवताओं को जप्त कर मलया गया और उनकी पूजा करने ेवालों पर अपनेजातीय देवता जिोवा के हित में नाना प्रकार के अमयाचार ककए गए। भारत् में लोगों ने एकेश्वरवाद से भी ऊपर अद्वैतवाद को अपनाया, अधधकतर दार्तशनक माग शसे पिुंचकर अथात् पवपवधता की गिराई में पिुंचकर उसके अन्ततनहशित एकमव को अनुभव ककया।"[142] मैतसमूलर किता िै,

---

140 10: 114; और भीदेखेंयजुवेद,302,4; देखें, यास्क का 'तनरुतत ' 7:5।

141 'द िाइम आफ तलेंथी' ।

142 'आउटलाइन्स आफ इंडडयन कफलासफी, पृष्ठ 13।

 "ऋग्वेदसंहिता के संग्रि िी समात्प्त का चिो जो भी काल रिा िो, उस काल से पिले इस पवचार के पवश्वास की

ज़ जम गई थी कक एक िी अद्पवतीय सत्ता िै, जो न पुरुष िै और न स्त्री, एक ऐसी सत्ता जो दैहिक एवं मानुपषक

प्रकृतत की सब अवस्थाओं और बन्धनों से उमयुतत और बिुत ऊंची श्रेणी की िै ककन्तुतो भी विी सत्ता इन्द्र, अत्न, मातररश्वा, और यिां तक कक प्रजापतत, अथात्श प्राणणमात्र का स्वामी, आहद पवपवध नामों से पुकारी जाती थी। वस्तुतः वैहदक कपव ईश्वर के ऐसे पवचार तक पिुंच चुके थे त्जस तक एक बार कफर मसकंदररया के दार्तशनक भी पिुंचे, ककन्तु जो पवचार आज तक भी ऐसे अनेक पवद्वानों की पिुंच से बिार िै जो अपनेको ईसाई किते िैं।"[143]

ऋग्वेद के कुछेक उन्नत पवचार वाले सूततों में परब्रह्म को उदासीन भाव से पुत्ल्लंग और नपुंसकमलंग में सम्बोधन ककया गया िै। एकेश्वरवाद और अद्वैतवाद के मध्य इस प्रकार की प्रमयक्ष रूप में प्रकट अत्स्थरता ने, जो प्राच्य एवंपाश्चामय दोनों िी दर्नशों का एक पवमर्ष्ट स्वरूप िै, यिांपर सबसे पिले अपनेको पवचारधारा के इततिास में अमभव्यतत ककया। उसी अर्रीरी, व्यत्ततमविीन, पवरुद्ध, वासनारहित दार्तशनक यथाथ शसत्ता की भावुक व्यत्तत अपनेउमकंहित हृदय से एक करुणामय और परोपकारी देवता के रूप में पूजा एवं उपासना करता रिा। यि अतनवाय शिै। धाममकश चेतना साधारणतः एक संवाद का, दो पवमभन्न इच्छार्त्ततयों की एकत्र संगतत अथात् श सान्त एवं अनन्त के सम्बन्ध का, रूप धारण कर लेती िै। ईश्वर को एक अनन्तपुरुष के रूप में त्जसका आधधपमय सान्त मानव के ऊपर िो, मानकर चलनेकी प्रवृपृत्त पाई जाती िै। ककन्तु ईश्वर के पवषय में इस प्रकार का भाव, जो अन्य कई प्रकार के भावों में से एक िै, दर्नशर्ास्त्र का उच्चतम समय निीं िै। कुछ अमयन्त ताककशक स्वभाव वाले व्यत्ततयों को छोड़कर, जो अपनेमसद्धान्तों को अन्त तक खींचकर ले जाना चािते िैं, ककसी भी धाममकश सम्प्रदाय का अत्स्तमव एक व्यत्ततरूप ईश्वर को स्वीकार ककए बबना त्स्थर निींरि सकता। यिां तक कक एक दार्तशनक से भी जब उच्चतम सत्ता की पररभाषा करने को किा जाए तो वि भी उसकी पररभाषा के मलए ऐसे िी र्ब्दों का प्रयोग करता िै जो ईश्वर को तनचले स्तर पर ले आते िैं। मनुष्य अच्छी तरि से जानता िै कक उसकी पररममत र्त्ततयां सवव्शयापक आममा के सवोपरर पवस्तार का िीक–िीक माप निीं कर सकतीं। तो भी वि उस तनमय का वणनश अपनेलघु तरीके से करने के मलए पववर् िै। अपनी सीममत मयादशाओं में बद्ध रिने के कारण वि आवश्यकतावर् उस पवस्तृत, भव्य एवं अधचन्मय उद्गम की, और जो सब पदाथों का र्त्ततप्रदाता िै उसकी अपूण शर्त्ततयों की कल्पना करता िै। वि अपनेसन्तोष के मलए अपनेआराध्यदेव की प्रततमाएं बनाता िै। ईश्वर का अवताररूप सीममत िै ककन्तु तो भी ईश्वर के सगुणरूप की िी पूजा की जाती िै। ईश्वर का मूतरूशप आमम और अनामम में भेद को आनुषंधगक रूप से स्वीकार कर लेता िै। इसमलए उस सत्ता के मलए उपयुतत निीं िोना चाहिए त्जससे यि समस्त दृश्यमान जगत् ओतप्रोत िै। व्यत्ततमवरूप ईश्वर केवल एक उपलक्षण-मात्र िै, यद्यपप िै वि समयरूप ईश्वर की सत्ता का िी उपलक्षण। आकृततपविीन को भी आकृतत दे दी गई, व्यत्ततमविीन को व्यत्ततमव का जामा पिना हदया गया, सवव्शयापक को एक तनयत स्थान दे हदया गया, तनमय सत्ता को भौततक रूप दे हदया गया। जैसे िी िम परमसत्ता को पूजा के एक भौततक पदाथ शके रूप में उच्चता से धगरा देते िैं,

---

143 मैतसमूलर : "मसतसमसस्टम्सआफ इंडडयन कफलासफी,' पृ० 51, 51।

उसकी परमता में न्यूनता का भाव आ जाता िै। सीममत इच्छा वाले के साथ कक्रयाममक सम्बन्ध स्थापपत करने के मलए ईश्वर के मलए परम पद से न्यून िोना आवश्यक िै, परन्तु वि भी यहद परम पद से न्यून िै तब वि ककसी भी प्रभावर्ाली धम शमें पूजा के योग्य पदाथ शनिीं ंरि सकता। यहद ईश्वर पूण शिै तो धाममकश सम्प्रदाय असम्भव िै, यहद ईश्वर अपूण शिै तो धम शप्रभावरू्नूय िै। एक सीममत-पररममत र्त्तत वाले ईश्वर को लेकर िमें र्ात्न्त का आनन्द निींप्राप्त िो सकता, पवजय का आश्वासन निीं ंममल सकता, और न िी पवश्व ब्रह्माण्ड के चरम लक्ष्य तक पिुंचनेका भरोसा ममल सकता िै। समय धम शपरब्रह्म की खोज िै इसमलए प्रचमलत धम शऔर प्रदर्नश दोनों की मांग को पूणू शकरने ेके मलए परम-आममा को बबना भेदभाव के पुल्लंगं और नपुंसक दोनों मलंगों में संबोधन ककया गया िै, अथात्श ्वि अमूत शिै और इसीमलए मलंगं के पवचार सेऊपर उि िुआ िै। उपतनषदों में िीक ऐसा िी िै। भगवद्डगीता एवं ंवेदान्तसूत्रों में भी ऐसा िी िै। इस प्रकार के भाव को ईश्वरभाववाद एवं अद्वैतवाद के तत्त्वों के मध्य एक प्रकार का जानबूझकर ककया िुआ समझौता अथवा पवचारधारा में ककसी प्रकार का कपट मानना उधचत निीं िै। अद्वैतभाव भी पवकमसत िोकर ऊंची से ऊंची धाममकश भावना में पररणत िो सकता िै। केवल ईश्वर के प्रतत प्राथनशा का स्थान उस सवोपरर परब्रह्म का ध्यान ले लेता िै जो संसार का र्ासक िै, जो प्रेेमरूप िै और जो जगत् ्में तनभ्रान्त ककन्तु मुततिस्त िोकर प्रेेरणा उमपन्न करता िै। मानवीय मानस के पूणरूशप ब्रह्म के साथ अंर्भाव से साम्य िोने ेका भाव उच्चतम धाममकश भावना को उमपन्न करता िै। ब्रह्म के प्रतत इस प्रकार के आदर् शप्रेेम से, और उसके सौंदय शएवं ंसौजन्य की पुष्कलता के ध्यान से हृदय पवश्व ब्रह्मांड के सवभशौम भावावेर्ों से आपूररत िो जाता िै। यि समय िै कक इस प्रकार का धम शऐसे मनुष्य को जो उस तक न तो पिुंचा िो और न िी त्जसने ेइसकी र्त्तत का अभी अनुभव ककया िो, अधधकतर रूखा एवं ऊष्मापविीन तथा केवल बौद्धधक प्रतीत िोगा, ककन्तु तो भी अन्य कोई धम शदार्तशनक दृत्ष्ट से अधधक युत्ततयुतत निीं ंििरता।

समस्त धाममकश सम्प्रदायों ने, जो पृथ्वी पर आपवभूतश िुए, मानवीय हृदय की मूलभूत आवश्यकता को स्वीकार ककया िै। मनुष्य अपनेऊपर एक ऐसी र्त्तत की सत्ता को स्वीकार करने ेके मलए त्जसके ऊपर वि तनभरश कर सकता िै, प्रबल अमभलाषा रखता िै, जो उससे किींअधधक मिान िो और त्जसकी वि पूजा कर सके। वैहदक धम शमें मभन्न-मभन्न अवस्थाओं एवंपररत्स्थततयों के अनुसार कल्पना ककए गए देवता मनुष्यों की आवश्यकताओं एवं ंअभावों के पवचार के पररणामस्वरूप, और मनुष्यों के हृदयान्वेषण के पररणामस्वरूप िैं।

कभी-कभी मनुष्य को ऐसे देवताओं की आवश्यकता अनुभव िुई जो उसकी प्राथनशा को सुनें और यज्ञ में दी गई उसकी आिुततयों को ग्रिण करें, और इसीमलए ऐसे ेदेवताओं की कल्पना की गई जो इस आवश्यकता को पूण शकर सकें। िमें भौततक देवता ममलतेिैं, मानवीय आकृतत के देवता ममलते िैं, ककन्तु उनमें से एक भी उच्चतम भावना के अनुकूल निीं ंजंचता-चािे ककतना िी कोई यि किकर कक सब उसी परब्रह्म की अमभव्यत्तत-मात्र िैं, मनुष्य के मन को समझानेका प्रयमन करे। देवताओं की भीड़ में बबखरी िुई ककरणें एकत्र िो जाती िैं उस एक नामरहित ब्रह्म के पवर्ाल तेज में, केवल जो मानव-हृदय की बेचैन अमभलाषा को और संर्यवादी के संर्य को सन्तोष प्रदान कर सकता िै, वैहदक प्रगतत ने तब तक किीं ंबीच में पवराम निीं ंमलया, जब तक कक वि इस चरम यथाथ शसत्ता तक निीं ंपिुंच गई, वैहदक सूततों में वणणतश धाममकश पवचार की प्रगतत को इस प्रकार से

पवमर्ष्ट देवताओं में पवभतत ककया जा सकता ि, यथा (1) द्यौः, जो प्रकृतत-पूजा की पिली श्रेणी का उपलक्षण ि; (2) वरुण, जो आधुतनक काल का उच्चतम सदाचारी देवता ि; (3) इन्द्र, जो पवजय और पराजयकाल का स्वाथमशय देवता ि; (4) प्रजापतत, जो एकेश्वरवाहदयों का अमभमत देवता ि, और (5) ब्रह्म, जो इन चारों तनम्नश्रेणणयों का पूणरूशप ि। यि पवकास क्रममक िोने के साथ-साथ तकशसंगत भी ि। केवल वैहदक सूततों में िी मि उन सबको साथ-साथ एक िी स्थान पर समापवष्ट पातीं, त्जसमें ताककशक प्रबन्ध अथवा क्रममक पूवापशरत का बबलकुल पवचार निीं ककया गया। कभी-कभी एक िी सूतत में उन सबको एक साथ प्रस्तुत ककया गया ि। इससे केवल यिी लक्षक्षत िोता ि कक त्जस समय ऋग्वेद का ग्रन्थ मलखा गया, पवचार के वे सब पाव पिले से पार कर चुके थे और जन-साधारण उनमें से कुछ अथवा सभी देवताओं को, बबना उनके पारस्पररक पवरोध का पवचार मन में लाए, पक़ े थे।

8. सृतृष्ट-पवज्ञान

वैहदक पवचारक जगत् के उद्गम एवं स्वरूप सम्बन्धी दार्तशनक समस्याओं की ओर से उदासीन निीं थे। प्रमयेक पररवतनशरील पदाथ शके आहदम आधार की खोज में उन्िोंने प्राचीन यूनानी पवद्वानों के समान जल, वायु आहद को िी मौमलक तत्त्व के रूप में माना, त्जनके परस्पर एकत्र िोने से इस नानापवध जगत् की उमपतत िुई। किा गया ि कक जल की अवस्था से उन्नत िोकर इस जगत् का पवकास समय, संवमसर अथवा वष,श इच्छा या काम, एवंबुद्धधरूप पुरुष तथा तप की ऊष्मा की र्त्ततयों द्वारा िुआ।'[144] किीं–किीं स्वयंजल की उमपपत्त राबत्र रूपी अन्धकार अथवा अपवश्रृंखलता की अवस्था एवंतमस् अथवा वायु से िुई बताई गई ि।145 ऋग्वेद के मण्डल 10 सूतत 72 में संसार के प्रारत्म्भक आधार का असत् अथवा अपवद्यमान रूप में वणनश ककया गया ि, इसके साथ असद् तत्त्व का, जो असीम ि, तादामय बताया गया ि, अथात् पवश्वर्त्तत उहदत िोती ि यद्यपप कभी-कभी पवश्वर्त्तत का स्वयं असीम उमपपत्त स्थान करके वणनश ककया गया ि।'[146] इस प्रकार की कल्पनाएं र्ीघ्र अभौततक सत्ता के साथ सम्बद्ध िो गई और इस प्रकार की भौततक-पवज्ञान नेधम शके साथ गिवन्धन करके अध्याममपवद्या को जन्म हदया।

बिुदेववाद के काल में मभन्न-मभन्न देवताओं, यथा वरुण, इन्द्र, अत्ग्न, पवश्वकमाश आहद, को पवश्व का रचतयता समझा जाता था।147 सृतृष्ट के तनमाशण की पवधध के पवषय में नाना प्रकार की कल्पनाएं की गई िैं। एक मत ि कक कुछ देवताओं ने सृतृष्ट को इसी प्रकार से बनाया जैसे कक एक बढ़ई ककसी मकान को बनाता ि। प्रश्न उमपन्न िोता ि कक वि वृक्ष या काष्ठ, त्जससे काय-शसम्पादन िो सका, किां से ममला।148 आगे चलकर इसका

144

1/190 ।

145 10/168 ।

146 10/72,3 ।

147 7/86 : 3:32, 80; 10: 81, 2; 10: 72, 2; 10: 121, 1।

148 10/31 7: तुलनाकीत्जए , 10: 81 4,।

उत्तर यि "हदया गया िै कक ब्रह्म िी वि वृकूष और काष्ठ िै त्जससे द्युलोक एवं पृथ्वी का तनमाणश ककया गया।149 स्थान-स्थान पर कभी-कभी अंगों का पवकास भी उपलक्षक्षत ककया गया िै।150' किीं–किींपर देवताओं ने यज्ञ की र्त्तत के द्वारा सृत्ष्ट का तनमाणश ककया, ऐसा भी किा गया िै। इस मत का समावेर् वैहदक पवचारधारा में पीछे चलकर िुआ। जब िम एकेश्वरवाद के स्तर पर पिुंचते िैं तो प्रश्न उिता िै कक तया ईश्वर ने सृत्ष्ट को अपने तनजी स्वभाव से ककसी पूव-श त्स्थत सामग्री के बबना बनाया, अथवा अपनी र्त्तत से पूव-शत्स्थत अनाहद प्रकृतत को साधन के रूप में बरतकर उससे सृत्ष्ट का तनमाणश ककया? इनमें से पिला पक्ष िमें उच्चतर अद्वैतपरक पवचार की ओर ले जाता िै और दूसूरा एकेश्वरवादपरक तनम्नतर स्तर पर रिता िै। वैहदक सूततों में दोनों िी प्रकार के मत पाए जाते िैं। दसवें मण्डल के 121वें सूतत में एक सवर्शत्ततमान ईश्वर के द्वारा पूवत्शस्थत प्रकृततरूपी उपादान कारण सेसृत्ष्ट की रचना का वणनश िै। प्रारम्भ में पवस्तृत जल में से हिरण्यगभ शउहदत िुआ जो पवश्व में व्याप्त िो गया। उसनेएक आकृततपविीन और अस्तव्यस्तत अवस्था में से इस सुन्दर पवश्व का तनमाणश ककया, तयोंकक प्रारम्भ में विी अस्तव्यस्त अवस्था थी।151 ककन्तुप्रश्न उिता िै-उस अस्त-व्यस्त अवस्था में से हिरण्यगभ शकैसे और किां ंसे पैदा िो गया? वि कौन-सी अज्ञात र्त्तत अथवा पवकास का तनयम था त्जसका पररणाम हिरण्यगभ शकी उमपपत्त के रूप में िुआ ? प्रारत्म्भक जलावस्था का रचतयता कौन िै? मनु, रिवंर् एवं पुराणों के अनुसार ईश्वर िी उस अस्तव्यस्त अवस्था का भी स्रष्टा था। उसनेअपनी इच्छार्त्तत से उनकी रचना की और उसमें बीज डाला, जो स्वणणमश अंकुर के रूप में प्रस्फुहटत िुआ, उसमें वि ब्रह्मा अथवा संसार के स्रष्टाईश्वर के रूप में उमपन्न िुआ। "म ैंिी ििरण्यगभ शिूं, स्वयं परमाममा जो हिरण्यगभ शके रूप में अपनेको अमभव्यतत करता िूं।"[152] इस प्रकार ऐसा प्रतीत िोता िै कक अनाहदकाल से सिचारी भाव से दो पदाथ श एक िी चरम आधारभूत सत्ता के पवकमसत रूप िैं। यि एक परवती सूतत में वणणतश मसद्धान्त िै त्जसे नासदीयसूतत किते िैं और त्जसका अनुवाद

मैतसमूलर ने तनम्न प्रकार से ककया िै:

उस समय न तो सत् था और न असत् िी। आकार् भी पवद्यमान निींथा और न िी उससे ऊपर का अन्तररक्ष था। ककसने इसे आवृत कर रखा था ? वि किां था और ककसके आश्रय में रिता था? तया वि आहदमकालीन गिन और गम्भीर जल था (त्जसमें यि सब त्स्थत था)? मृमयुभी निींथी, इसमलए अमरता की भावना भी निीं थी। रात और हदन में भेद करने वाला प्रकार् भी निीं था। वि एक िी उस समय पवना श्वास-प्रश्वास की कक्रया के जीपवत रिने वाला ब्रह्म पवद्यमान था। उसके अततररतत और कुछ निीं था। उस समय अन्धकार था, प्रारम्भ में यि सब एक अणवश समुद्र के रूप में था; प्रकार्-रहित; एक ऐसा अंकुर जो त्मवष (भूसी) से ढका िुआ था; उस एक की उमपपत्त उष्मा (तप) की

149 देणखए, तैपत्तरीयब्राह्मण।

150 10/123 1।

151 तुलना कीत्जए, मनु । : 5, 8; मैत्रेयोपतनषद्5, 21

152 मनु 5:91

र्त्तत से िुई। प्रारम्भ में पे्रम उसे आपवभूतश ककया जो मानस से उमपन्न िुआ बीज था, कपवयों ने अपने हृदय में खोज करने ेके पश्चात् ्बुद्धध द्वारा असत् ्के साथ सत् ्के बन्धन का पता लगाया। उनकी ककरण जो सवत्रश फैली िुई थी, वि ऊपर थी अथवा नीचेथी ? बीज को धारण करने ेवाले थे, र्त्तयां भी थीं, आममर्त्तत नीचेऔर इच्छार्त्तत ऊपर थी। तब कफर ज्ञाता कौन िै, ककसने ेइसकी यिां ंघोषणा की, ककससे यि सृतृष्ट उमपन्न िुई? देव लोग इस सृतृष्ट की उमपपत्त के पीछे आए। तब कफर कौन जानता ैकिक सृतृष्ट किांसे िुई? त्जससे इस सृतृष्ट का प्रादुभुावश िुआ, उसनेइसे बनाया या निीं ंबनाया, ऊंचे ेसे ऊंचेअन्तररक्षलोक में ऊंचेसे ऊंचा देखने वाला, विी यथाथ शरूप से जानता िै अथवा तया वि भी निीं ं जानता ?'[153]

उतत सूतत में सृतृष्ट की उमपपत्त के पवषय का एक अमयन्त उन्नत मसद्धान्त पाया जाता िै। प्रारम्भ में न तो सत् ्था और न िी असत्।् सत् ्भी उस समय अपनेअमभव्यतत रूप में निीं ंथा। केवल इसीमलए िम उसे असत् ्निींकि सकते, तयोंकक वि एक तनत्श्चत सत्ता िै त्जससे सब सं ंपदाथ शआपवभूतश िुए। पिली पंत्तत में मिारे मसद्धान्तों की अपूणतशा प्रदमर्तश की गई िै। परम सत्ता को, जो समस्त पवश्व की पृष्ठ्भूमम में िै, िम सत् ् अथवा असत् ्ककसी भी रूप में िीकि–ीक निींजान सकते। वि ऐसी सत्ता िै जो अपने िी सामथ्य शसे बबना श्वास-प्रश्वास की कक्रया के जीपवत िै।154 उसके अततररतत और कोई वस्तुउसके परे निीं ंथी। इन सबका आहदकारण समस्त पवश्व से प्राचीन िै, जो सूय,श चन्द्रमा, आकार् और नक्षत्रों से युतत िै। यि काल की, देर् की, आयु, मृमयु और अमरता आहद सबकी पिुंच तते ेबिार और उनसे परे िै। िम इसकी िीकि–ीक व्याख्या निींकर सकते, मसवाय इसके कक यि अत्स्तमव रखती िै। उस समस्वरूप के आहदम और अतनवचशनीय रूप की यिी प्रारत्म्भक और मूलभूत भूममका िै। उस परम चेतना के अन्दर सबसे पिले स्वीकृततसूचक अिं का भाव आता िै। यि तकशर्ास्त्र के तादामम्य के मसद्धान्त, अथात्श ्'क' 'क' िै, से मेल खाता िै, त्जसकी प्रामाणणकता पूवकशल्पना कर लेती िै कक आममा की यथाथ शसत्ता िै। िीक उसके साथ िी िमें अनामम की भी कल्पना करना आवश्यक िै, त्जससे साथ-साथ इस अिं का भेद समझा जा सके। आममा की प्रततद्वन्द्पवता में अनामम भी स्वयं आता िै, उसी प्रकार त्जस प्रकार 'क' 'ख' निीं ंिै। अिं तब केवल एक तनरथकश अमूतरूशप उत्तत रि जायगा जबकक अिं से ममन्न कोई ऐसी दूसूरी वस्तु भी न िो त्जसकी चेतना अिं को िोनी चाहिए। यहद ऐसा पंदाथ शआममा से इतर निीं ं ैतो अिं की सत्ता का भी कोई अथ शनिीं। अिं से अिंमभन्न उपलक्षक्षत िोता िै, जोकक अिं की सत्ता के मलए आवश्यक र्त शिै। अिं के पवरोध में अनिं की पवरोधी कल्पना िी प्रारत्म्भक अथान्शतरन्यास िै और परम सत्ता से इस प्रकार के सांकेततक पवकास को िी तपस् ्किा गया िै। तपस् ्का अथ शिै-बिार तनकल पड़ना, तामकामलक बाह्य तनष्कासन, एक अन्य सत्ता को बिार प्रकट करना, र्त्तयुतत पे्ररणा, परम सत्ता का स्वाभापवक अन्तस्थ धाममकश जोर्। इस तपस् ्के द्वारा िी िमारे सामने सत् ्और असत् ्दो पवपवध वस्तुएं आती िैं, अथाशत् ्अिं और अिंमभन्न, सकक्रय पुरुष, और तनत्ष्क्रय प्रकृतत, रचनाममक तत्त्व और अव्यवस्था में त्स्थत भौततक प्रकृतत। र्ेष सार पवकास इन्िींदोनों परस्पर पवरोधी तत्त्वों के एक-दूसूरे के प्रतत आघात प्रमयाघात रूपी कक्रया का पररणाम िै।

---

153 10:129,और भीदेखें, 'मसतसमसस्टम्स आफ इंडडयन कफलासफी' पृ० 65, 65। देखें र्तपय ब्राह्मण , 10: 5, 3, 11

154 तुलना कीत्जए, अरस्तू के 'अपवचल चालक' से।

उतत सूतत के अनुसार इच्छा में िी सृतूष्ट के तनमाणश का रिस्य तछपा िै। इच्छा, अथवा काम, आममचेतना का लक्षण िै, जो मानस का बीज िै- 'मनसो रेतः। समस्त पवकास की यिी आधारमभपत्त िै, उन्नतत के मलए प्रेरणा िै। अनामम की उपत्स्थतत के कारण आमम-चेतनावान अि के अन्दर इच्छाएं पवकास प्राप्त करती िैं। इच्छा पवचार से बढ़कर िै।'[155] यि वौद्धधक प्रेरणा, अभाव के ज्ञान एवं ंसकक्रय प्रयमन की द्योतक िै। यिी वि बन्धन िै त्जससे सत् ्और असत् ्का सम्पकश सम्भव िोता िै। वि अजन्मा तनमयसत्ता आममचेतन रूपी ब्रह्म के रूप में अमभव्यतत िोकर िमारे सामने ेआती िै, त्जसके साथ प्रकृतत, अन्धकार, असत, रूनूय और पवश्रृंखलावस्था िै, जो इसके पवरोधी िैं। इच्छार्त्तत इस स्वयंचेतन पुरुष को अतनवाय शस्वरूप िै। अन्त्तम वातय 'को वेद ? (कौन जानता िै?) सृतूष्ट के रिस्य का प्रकट करता िै, त्जसे परवती काल के पवचारकों ने माया किा िै।

ऐसे सूतत िैं त्जनका अन्त दो तत्त्वों, पुरुष एवं ंप्रकृतत, के साथ िोता िै। दर्म मण्डल के 82, 5-6 सूततों में जो सूतत पवश्वकमाश को सम्बोधन करके मलखा गया िै, उसमें ममलता िै कक समुद्र के जलों ने सबसे प्रथम आद्यकालीन बीज को धारण ककया। यि आहदम बीज संसार के उमपादक अण्डे ेके रूप में अव्यवस्था के आहदकालीन जलों के ऊपर तैरता था और यिी जंगम पवश्व का आहदतत्त्व िै। इसी में से पवश्वकमाश, जो पवश्व में सबसे पूव शउमपन्न िुआ, प्रादुभूतश िुआ। यिांवणणतश जल विी िै त्जसे यूनानी पवद्वानों ने सृतूष्ट के पूव शकी पवश्रृंखलता किा िै और त्जसे बाइबबल के प्रथम अध्याय 'जेनेमसस' में 'आकार-पविीन एवं ंरूनूय' किा गया िै, त्जसके ऊपर असीम की इच्छा का आधधपमय था।156 इच्छा, काम, स्वयंचेतना, मानस, वाक् अथवा र्ब्द, ये सब उस अनन्त बुद्धध के गुणु िैं, जो अवताररूप ईश्वर के रूप में समुदुर पर पवचारमग्न िै, और त्जसे नारायण किा गया िै और जो अनन्तर्य्या पर पवश्राम करता िै। यि जेनेमसस का ईश्वर िै, जो किता िै, "सृतूष्ट िो जाए और सृतूष्ट िो गई।" "उसनेपवचार ककया कक म ैंसंसार की रचना करूंगा तब उसनेइन पवपवध प्रकार के संसारों, जल, प्रकार् आहद को रचा।" ककन्तु नासदीय सूतत द्वैतपरक आध्यात्ममक ज्ञान का उल्लंघन करके उच्च श्रेणी के द्वैतवाद को अपनाता िै। यि प्रकृतत और आममा दोनों को एक परम सत्ता के िी दो रूप बतलाता िै। परम सत्ता अपने-आप में न तो अि िै और न अि का अभाव िै, न तो अि की प्रकृतत की स्वयंचेतना िै और न िी अि के अभाव के नमूने ेकी अचेतना िै। यि दोनों से ऊंची श्रेणी की सत्ता िै। यि श्रेष्तिर चेतना िै। पवरोध का पवकास स्वयंइसी के अन्दर िुआ िै। उतत हिसाब से आधुतनक पररभाषा में सृतूष्ट की उमपपत्त की श्रेणणयां इस प्रकार िैं

(1) उच्चतम परमार्थ सत्; (2) केवल स्वसंचेतना, अथवा (3) स्वयंचेतना की सीमा, दूसरे के रूप में।

इसका तामपय शयि निीं कक कोई एक पवर्ेष लक्ष्यपवन्दु ुऐसा िै जब कक परमसत्ता गतत प्रारम्भ करती िै। ये श्रेणणयां केवल ताककशक र्दत्ष्ट से, ककन्तु ऐततिामसक कालक्रम से निीं, एक के पीछे एक आने ेवाली िैं। 'अि' अि के अभाव की कल्पना का कारण बनता िै, इसमलए उससे पूव शनिीं ंिो सकता। इसी प्रकार अि का अभाव भी अि

155 यि ध्यान देने योग्य पवषय िै कक ग्रीक पुराणग्रन्थों ने काम के देवता ईरोस को, जो काम का समानान्तर िै, पवश्व की सृतूष्ट के साथ जोड़ा िै। प्लेटो अपने 'मसम्पोत्जयम' में किता िै, "इरोस के कोई माता-पपता निीं च, न िी कोई अमर्क्षक्षत व्यत्तत अथवा कोई कपव उसके माता-पपता का वणनश करता िै।..." अरस्तू के अनुसार ईश्वर इच्छावूर गतत करता िै।

156 इसकी तुलना 'जेनेमसस' में हदए गए वृतूतान्त से कीत्जए "समुद्र के ऊपर अन्धकार था और ईश्वर की आममा समुद्र के ऊपर गततमान थी।" (जेनेमसस । 2); और भी देखें, ऋग्वेद, 10: 121; 10 :72 ।

के पिले निंआ सकता और न परम सत्ता िी पवना तपस् ्के सदा रि सकती िै। कालरहित पूण शसदा श्रृंखलाबद्ध तत्ताओं में प्रकट िोता रिता िै और यि क्रम तब तक चलता रिता िै जब तक कक आममा अपनेको पुनः प्रकट निं ंकरती-तनतान्त रूप में नानापवध अनुभवों में जो कभी आने ेवाली निं ंिै। इस प्रकार संसार सदा बेचैन रिता

ै। यि सूतत िमें सृतृष्ट के तनमाणश की पवधध को तो बतलाता िै; ककन्तुकिं ंसे यि बनी, इसका समाधान निं ं करता। यि सृतृष्ट रूपी घटना की व्याख्या-मात्र करता िै।'[157]

मि स्पष्ट देख सकतिैं कक ऋग्वेद के सूतत में जगत् ्के ममथ्या िोने के पवचार का कोई आधार निंिै। संसार एक प्रयोजनरून्य मृगृमरीधचका निं ंिै, बत्ल्क ईश्वर का िीक पवकासरूप िै। जिांकिं ंमाया र्ब्द आया ै वि केवल उसके सामथ्य शएवं ंर्तत का द्योतक िै। "इन्द्र अपनी माया से रीघ्र रीघ्र नानारूप धारण करता ै।"[158] तो भी कभी-कभी माया और इससे तनकले िुए मातयन्,् मायावन्त आहद र्ब्दों का व्यविार राक्षसों की इच्छा को प्रकट करता िै।"[159] और माया र्ब्द का प्रयोग भ्रमजल एवं ंप्रदर्नश के अथ शमें भी िोता िै।'[160] ऋग्वेद की मुख्य प्रवृपृत्त एक सीधा-सादा सरल यथाथवशाद िै। वाद के भारतीय पवचारकों ने पांच मूल तत्त्वों या मिाभूतों का प्रभेद ककया िै-आकार्, वायु, अत्ग्न, जल और पृथ्वी। परन्तु ऋग्वेद केवल एक, जल की िी पररकल्पना करता िै। यिी आहदमिाभूत िै, त्जससे धीरे-धीरे दूसूरे तत्त्वों का पवकास िुआ िै।

यि सोचना अयुत्तत युतत िोगा कक ऊपर त्जस सूतत की िमनेपववेचना की िै उसके अनुसार, प्रारम्भ में 'असत्'् था त्जससे सत्ता का प्रादुभुावश िुआ। प्रारत्म्भक अवस्था तनतान्त असत् ्की निं ंिै तयोंकक इस सूतत में एक ऐसी सत्ता की यथाथतशा को जो बबना श्वासोच्वास-प्रणाली के भी जीपवत िै, स्वीकार ककया गया िै। यि उनका एक तरीका िै त्जससे वे परमयथाथ शसत्ता का वणनश करते िैं, और जो समस्त पवश्व की सत्ता का ताककशक आधार िै। सत् ्और असत् ्अन्योन्याधश्रत पाररभापषक र्ब्द िैं और उस मिान एक के मलए प्रयुतत निं ंककए जा सकतेजो सब प्रकार के पवरोधों से परे िै। असत् ्का अथ शकेवल यिी िै कक जो इस समय िमारे र्दत्ष्टपथ में पवद्यमान िै उसकी उस समय प्रकटरूप में सत्ता निं ंथी। मण्डल 10 की 72वींऋचा में किा गया िै कक "सत्तावान असत् ्स्वरूप से प्रकट िुआ।" यिांभी इसका अथ शयि निंिै कक सत् ्असत् ्के अन्दर से आता िै। इसका तामपय शकेवल यिी िै कक प्रकट सत् ्अस्पष्ट असत् ्के प्रादुभूतश िोता िै। इसमलए िम इस पवचार से सिमत

---

157 तुलना कीत्जए, इसकी 'डेम्यूज'श से, त्जसका प्रयोग प्लेटो ने अपने 'टाइममयस' में ककया िै। रचनाममक कल्पना के भाव को, त्जसे ई० डगलस फॉसट ने अपनी दो पुस्तकों 'द वल्ड शऐ् इमेत्जनेर्न' और 'डडवाइन इमेत्जतनंगं' में हदखाया िै,

तुलनाममक र्दृत्ष्ट से देखना चाहिए।

158 6/47, 18।

159 5/2, 9, 6/61, 3; 1/32, 4, 7/49, 4; 7/98, 5।

160 10/54, 2।

भारतीय दर्नश -1 84 निीं ंिो सकते कक "यि ऋचा भौततक दर्नश का प्रारत्म्भक रूप िै जो आगे चलकर सांख्यदर्नश के रूप में
पवकमसत िो गई िै।"'[161]

सृतूष्ट की रचना कभी-कभी एक आहदपदाथ शसे िुई भी किी जाती िै; पुरुषसूतत162 में िम देखतें कक देवतागण सृतूष्ट के साधक-मात्र िैं जबकक वि सामग्री त्जससे संसार उमपन्न िुआ, परमपुरुष का र्रीर िै। सृतूष्टरचनारूप कम शको एक प्रकार का यज्ञ बताया गया िै त्जसमें पुरुष बमल का पर्ु िै। "यि सब भूत और भपवष्यत् ्जगत् ्पुरुष िी िै।"[163] ईश्वर के मानवीयकरण को ज्जयों िी एक बार आश्रय हदया तो उसको कफर ककसी सीमा के अन्दर बांधकर निीं ंरखा जा सकता, और एक भारतीय की कल्पनार्त्तत उसके ईश्वर की मिानता को बड़ी-बड़ी आकृततयों में पररणत कर देती िै। कपवहृदय पवस्तृत छन्दाममक मन्त्रों की रचना करके संसार और ईश्वर दोनों के एकमव को अपील करता िै। यि सूतत एक परम सत्ता से पवश्व की रचना के मसद्धान्त के साथ, त्जसका ऊपर वणनश ककया गया िै, असंगतत निीं ंरखता। समस्त जगत् ्इसके अनुसार भी परम सत्ता के अपने को पवषयी एवं ंपवषय के रूप में, अथात्श ्पुरुष और प्रकृतत के रूप में, पवलोपन करने ेके िी कारण बना िै। इस पवचार को केवल एक अपररमात्जतश अलंकार के रूप में रखा गया िै। सवोपरर मिान सत्ता कक्रयार्ील पुरुष का रूप धारण कर लेती िै, तयोंकक किा गया िै कक "पुरुष से पवराट उमपन्न िुआ पवराट से कफर पुरुष।" इस प्रकार से पुरुष जनक भी िै और जन्य भी। वि परम सत्ता के रूप में भी िै और स्वयंचेतन अिं भी िै।

9. धम श

मिनेदेखा िै कक ककस प्रकार भौततक घटनाओंने र्ुरू र्ुरू में मनुष्य के ध्यान को आकपषतश ककया, और उनका मानवीयकरण ककया गया। प्राकृततक घटनाओं को देवताओं का रूप देने का िातनकारक प्रभाव धाममकश पवचारों और धाममकश प्रकक्रयाओंके ऊपर भी िुआ। संसार ऐसे देवतारूपी पुरुषों से भर गया त्जनमें मनुष्यों की भांतत न्याय करनेका भाव था और जो घृणा अथवा प्रेम के मानवीय गुणों से प्रभापवत भी िो सकतेथे। बिुत-से देवताओं का पयाप्शत मात्रा में मानवीयकरण भी निीं ंिुआ और इसमलए वे आसानी से उतत त्स्थतत से धगरकर प्राकृततक रूप में वापस चले गए। उदिारण के मलए, इन्द्र त्जसका जन्म समुद्र और मेघ से िै, कभी-कभी द्युलोक से वज्र-ध्वतन के साथ, बबजली की क़क के साथ, नीचे उतर आता िै। वैहदक देवता, जैसा कक ब्लूमफील्ड ने किा िै, "पक़ ेगए व्यत्ततमव' का प्रततततनधधमव करते िैं। ककन्तु मानवाकृततधारी देवता भी असंस्कृतरूप में िी हदखाई िैं। उनके िाथों और पांवों की कल्पना भी मनुष्यों की सी की गई िै। उन्िें र्ारीररक आकृतत प्रदान की गई िै। त्जस प्रकार का द्वन्द्व मानवीय हृदय में मनोभावों में िोता िै, वैसा िी द्वन्द्व उनके अन्दर भी ममलता िै। गौरवण शमवचा की चमक-दमक भी मानव जातत के समान िै और एक लम्बी दाढ़ी से चेिरे

---

161 देखें, मैतैडॉनल: 'वेहदकरीडर' पृ.ृ207। ऐसेभीवैहैदक पवद्वान्िैं त्जन्िोंनेसत्औरअसत्को प्रायममक तत्त्वरूपमें मान मलया िै। (10/129 ,1 2 10:72,2) जिांतक आनुभपवक जगत् ्का सम्बन्ध िै। और इन्िोंने िी अवाचशीन समकायवशाद काय श का कारण के अन्दर उपत्स्थत िोना-और असमकायवशाद-काय शका कारण के अन्दर अनुपत्स्थत रिना को जन्म हदया।

162 10/90

163 10/90 2।

 की भव्यता भी ममलती ि ै। वे परस्पर युद्ध भी करते ि ैं, प्रीततभोज भी करते ि ैं, मद्य भी पीतेिैं

एवंनृमृय भी

करते ि ैं, खातेिैं और प्रसन्न िोतेिैं। उनमें से कुछ को संस्कारों में 'पुरोहित' का पद भी प्रदान ककया जाता ि ै, जैसे अत्ग्न और बृिस्पतत को। कुछ अन्य इन्द्र एवं मरुद्गण के समान योद्धा भी ि ैं। उनका भोजन भी विी ि ै जो मनुष्यों को पप्रय ि ै, अथात्श ्दूधू और मतखन, घी और अनाज। उनका पप्रय पेय सोमरस ि ै। मानवीय स्वभाव की दुबुलशताएं भी उनमें पाई जाती ि ैं और उन्िें चाटुकाररता से सुगमता से प्रसन्न भी ककया जा सकता ि ै। कभी-कभी वे इतनी स्वाथपशरक मूखतशा का भी प्रदर्नश करते ि ैं, और ि में तया देना चाहिए इस पवषय में बिस करने ेलगते ि ैं।

"इस काम को म ैंकरूंगा; अमुक कम शको निीं ंकरूंगा; म ैंअमुक को गाय दूंगा अथवा तया उसे अश्व दूं ? मुझे ख्याल निींकक अमुक से मुझे ेसोम ममला था या निीं।"[164] उनकी र्दत्ष्ट में सच्ची प्राथनशा की अपेक्षा एक प्रचुर अिुतत अमयधधक मित्त्व की ि ै। आदान-प्रदान का सीधा-सादा कानून देवताओं एवं ंमनुष्यों को एक समान परस्पर सम्बद्ध रखता ि ै यद्यपप परवतीकाल के ब्राह्मणग्रन्थों में उनके आदान-प्रदान-सम्बन्धी सम्बन्धों को पूणतशा देने का काय शअभी दूरू था।

"प्रकृततधम शका मानवीयकरण आवश्यक रूप से उन्िें अतनष्टकारी भी बना देना ि ै। आंधी-तूफान की पूजा करनेमें कोई बी़ नैततक ितन निीं ंि ै, यद्यपप बबजली अच्छे-बुरे सब पर बबना भेदभाव के प्रिार करती ि ै। इस पवषय में बिाना करने ेकी आवश्यकता निीं ंि ै कक बबजली एक बुद्धधपूण शऔर धाममकश चुनाव भी कर सकती ि ै, किकन्तुज्जयों िी एक बार आप ऐसे एक अधमशानुष देवता की पूजा करनेलगते ि ैं जो बबजली धगराता ि ै, आप एक प्रकार के उभयसंभव तकश को जन्म देते ि ैं। या तो आपको यि स्वीकार करना पगे़ा कक आप एक ऐसी सत्ता की पूजा एवं उसकी चापलूसी कर रि े ि ैं त्जसे कुछ भी नैततक ज्ञान निीं ंि ै तयोंकक वि भयंकर ि ै; अन्यथा आपको ऐसे कारण गढ़नेपे़ंगे त्जनसे उसके ऐसे व्यत्ततयों के प्रतत क्रोध की व्याख्या िो सके त्जन पर वि प्रिार करती ि ै। और ऐसे कारण तनश्चय िी अनुधचत िोंगे। ईश्वर को यहद मानवीय रूप में माना जाएगा तो वि अवश्य अत्स्थरमन व कू्रूर िोगा ।"[165] इस प्रकार के मत को स्वीकार करनेवाली भौततक र्ततयों की वैहदक पूजा ईमानदारी से परे ि ै और केवल उपभोधगतावादी ि ै। िम ऐसे देवताओं से डरतेिैं जो िमें नुकसान पिुंचा सकतेिैं, और उन्िें आदर की र्दत्ष्ट से देखतेिैं जो िमें िमारे दैतनक जीवन में सिायता देते ि ैं। िम इन्द्र से प्राथनशा करते ि ैं कक वि वषाश करे, और साथ-साथ यि भी याचना करते ि ैं कक वि तूफान को दूरू रखे। सूय शसे प्राथनशा की जाती ि ै कक िल्की उष्णता दे और यि कक झुलसाने ेवाली गमी को दूरू रखे ेत्जससे सूखा या दुमुभक्षश न पने़ ेपाए। देवता भौततक समृदू्धध के भी उद्गम बनते ि ैं, और सांसाररक पदार्थों के मलए प्राथनशाएं प्रायः िी सामान्य रूप से पाई जाती ि ैं। और चूंकक कमों और गुणों का पवभाग मभन्न ि ै, िम खास- खास देवताओं से खास-खास पदार्थों की प्रात्प्त के मलए प्राथनशा करते ि ैं।'[166] देवताओं की स्तुतत एक िी प्रकार की और सरल ि ै।167 देवताओं को साधुवृत्ूत मानने ेकी अपेक्षा अधधकतर र्ततर्ाली के रूप में सदाचारी िोनेकी अपेक्षा सामथ्यवशान के रूप में माना गया

---

164 ओल्डनबगश् एमएँटइंडडयापृ०् । 71

165 धगल्बटश मरे़'फोर स्टेजे़ आफ ग्रीक ररमलजन पृ०् 88।

166 10:47, 1; 4: 32, 4:2:1:2:6,759,7 24, 6;7: 67, 16।

167 10:42, 4।

ै। इस प्रकार का धम शमनुष्यों की नैततकता-सम्बन्धी उच्च आकांक्षाओं के मलए सन्तोषप्रद निीं ंिो सकता। यि वैहदक आय शके प्रबल नैततक भाव को दर्ातशा ि ै कक उपयोधगतावादी पूजा की प्रचमलत प्रवृपृत्त के पवद्यमान रिते े ुए भी वि सामान्यरूप से देवताओं को साधुवृत्ूत मानता ि,ै त्जनका झुकाव सज्जजनों की सिायता करने ेएवं दुजुनशों को दण्ड देनेकी ओर ि।ै मनुष्य की उच्चतम धाममकश मित्त्वाकांक्षा अपनेको परमब्रह्म के साथ संयुतत करने ेकी ि,ै यि स्पष्ट प्रतीत िोता ि।ै168 अनेक देवताओं का अत्स्तमव अपनेभततों को परमब्रह्म तक पिुंचाने े में एक प्रकार से सिायक िी था।"[169]

यज्ञों का प्रचार िोना अतनवाय शथा। तयोंकक ईश्वर के प्रतत प्रेम की गिराई इसी में तनहित ि ै कक उपासक अपनेसवस्शव और सम्पपत्त को ब्रह्म को अपपतश कर दे। िम प्राथनशा एवं ंसमपणश करते िैं। त्जस समय यज्ञाममक समपणश केवल औपचाररक रूप में थे,े तब भी भावना को िी अधधक मित्त्व हदया जाता था और यज्ञ के वास्तपवक स्वरूप पर िी बल हदया जाता था। "इन्द्र के प्रतत भावपूण शवाणी बोलो, जो घी या मधु ुसे अधधक मधुर ि।ै"[170] प्रमयेक संस्कार में श्रद्धा का भाव आवश्यक ि।ै171 वरुण ऐसा देवता ि ै जोकक मानवीय हृदय के गूढ़यतम भागों में प्रवेर् करके अन्ततनहशित प्रेरक भाव का पता लगाता ि।ै धीरे-धीरे देवताओं ंको मानवीय, और आवश्यकता से अधधक मानवीय, रूप दे देनेके कारण उन्िेंनिसोचा कक ईश्वर के हृदय में स्थान पाने के मलए पूण शभोजन अपणश करना सबसे उत्तम माग शि।ै'[172]

मनुष्य बमल के प्रश्न पर बिुत वाद-पववाद िो चुका ि।ै रु्नुश्रेपे173 का आख्यान यि निीं ंलक्षक्षत करता ै किक मनुष्य बमल की आज्ञा अथवा उसका प्रोमसािन वेदों में पाया जाता ि।ै िम अश्वमेध'[174] के पवषय में भी सुनते िैं। ककन्तु इन सबके पवरोध में उस समय में भी घोर प्रततवाद सुना जाता था। सामवेद किता ि,ै "ि देवताओं! िम यज्ञ सम्बन्धी ककसी खम्भे का प्रयोग निीं ंकरते, िम ककसी की हिंसा निीं ंकरते, िम केवल पपवत्र मन्त्रों का बारम्बार उच्चारण करके पूजा करते िैं।"[175] इस पवद्रोि की आवा़ को उपतनषदों ने अपनाया और बौद्ध एवं जैन सम्प्रदायों ने इसे आगे बढ़ाया।

---

168 ऋग्वेद ,10:88,15;1:125,5;10:107, 21

169 1/24, 1।

170 2:24,20,6 : 15 ,47

171 155,5; 1: 133, 5;1: 104, 67 ।

172 "िोमर में अनुष्िान की पवधध सरल और एक समान ि।ै इसमें प्राथनशा के साथ-साथ अनाज के कण पवखेर हदए जातेिैं और उसके बाद जले िुए प्राणी की आिुतत दी जाती ि।ै मांस के एक भाग को पुजारी चखते िैं और तब उसे आग में डालकर देवताओं ंको अपपतश ककया जाता ि।ै रे्ष भाग प्रीततभोज की भांतत खूब महदरा के साथ खाया जाता ि ै t ^ * (रीसन 'स्टेजेज आफ ग्रेमसयन लाइफ' पृ० 87-881) अत्ग्न भारत में मुख्य रूप से यज्ञों का देवता ि।ै प्राचीन ग्रीस देर् में भी यि इसी प्रकार से मानी गई ि।ै अत्ग्न पृथ्वीलोक से आिुततयों को अन्तररक्षलोक के देवताओं ंतक पिुंचाती ि।ै इन सब पवषयों में पवर्ेषरूप से भारतीय कुछ निीं ि।ै

173 ऋग्वेद, 1/6 241

174 ऋग्वेद, मंडल 2, 3, 6,7

175 मंडल 1; मण्डल 2/9, 2

यज्ञ वैहदक धम शकी दूसूरी श्रे्रेणी िै। प्रथम श्रे्रेणी में केवल सरल प्राथनशा का िी पवधान था। पारार्रस्मृतृत के अनुसार िमारे यिां ं'कृतयुग में समाधध का, त्रेतायुग में यज्ञों का, द्वापर में पूजा का और कमलयुग में स्तुतत एवं प्राथनशा का' पवधान िै। यि मत पवष्णुपुराण के मत के साथ पूणरूशप से ममलता िै जिां ंकिा गया िै कक यज्ञसम्बन्धी तनयमों का तनमाणश त्रेतायुग में िुआ।'[176] िम यिां ंयुगों के पवभाग के पवषय में भले िी सिमत न िो सकें, ककन्तु धाममकश प्रकक्रयाओं की प्रगतत समाधध से यज्ञ की ओर, यज्ञ से पूजा की ओर, और पूजा से स्तुतत एवं प्राथनशा की ओर यथाथ शघटनाओंके ऊपर अवश्य आधाररत िै।

वैहदक धम शमूततपूशजक धम शनिीं ंप्रतीत िोता। उस समय देवताओं के मत्न्दर निींथे। मनुष्य बबना ककसी दूसूरे की मध्यस्थता के देवताओं से सीधा सम्बन्ध रखते थे। देवताओंको अपने उपासकों का ममत्र समझा जाता था। 'द्यौत्स्पता', 'भूमम मांता', 'अत्न भ्राता'- ये वातय तनरथकश निीं िै। मनुष्यों और देवताओं के मध्य उस समय अमयन्त घतनष् िममत्रता का नाता था। धम शका जीवन के समस्त भागों में आधधपमय था। ईश्वर के ऊपर लोग पूण शरूपेण तनभरश करते थे। जीवन की साधारण-सी आवश्यकताओं के मलए भी लोग प्राथनशा करतेथे। "आज मिैं अपना दैतनक भोजन दो", यि वैहदक आय शके भाव के अनुकूल प्राथनशा थी। जीवन के सामान्य भोगों के मलए भी ईश्वर के ऊपर तनभरश करनेवाले भतत की सच्ची भत्तत का यि एक नमूना िै। जैसा कक िम पिले कि आए िैं, उच्च श्रे्रेणी के आत्स्तकवाद के सब सारभूत तत्त्व िमें वरुण की पूजा में ममल जाते िैं। यहद भतत का अथ शएक देिधारी ईश्वर में पवश्वास, उसके प्रतत प्रे्रेम, उसी की सेवा में सवस्शव अपणश करना और उसी की पवर्रे्षे भत्तत द्वारा मोक्षप्रात्प्त आहद समझे ेजाएं तो तनश्चय िी िमें ये सब तत्त्व वरुण की पूजा में ममलतिैं।

मण्डल 10 का 15वां ंएवं उसी मण्डल का 54वांसूतत (दो सूतत) िमें पपतरों को सम्बोधन करते िुए ममलेंगे। पपतर वे ेसौभाग्यर्ाली मृतृाममा िैं जो स्वग शमें तनवास करते िैं। वैहदकसूततों में देवताओं के साथ-साथ उनकी भी स्तुतत की जाती िै।177 यि कल्पना की जाती िै कक वे अर्दश्य आममाओं के रूप में प्राथनशाओंएवंयज्ञों में दी गई आिुततयों को ग्रिण करने ेके मलए आते िैं। इस सामात्जक परम्परा को पपतृपूजा के रूप में श्रद्धा-भाव से देखा जाता िै। वेदों के पवद्याथी ऐसे भी िैं त्जनका पवश्वास िै कक ऋग्वेद के सूततों में स्वगीय पूवजशों की पपवत्र आममाओं को उद्हदष्ट करके उत्तरकक्रयाकम-शसम्बन्धी आिुततयां ंएवंउपिार देनेका कोई पवधान निीं ंिै।178

वैहदकधम शके पवरुद्ध जो एक आक्षेप साधाराणतः ककया जाता िै वि यि िै कक वेदों "में पाप के प्रतत अमभज्ञा का प्रभाव िै। यि एक भ्रममूलक मत िै। वेदों के अन्दर ईश्वर से पवमुख िोने ेको िी पाप (अधम)श माना गया िै।'[179] पाप के पवषय में जो वैहदक धारणा िै वि • िीब्र् मसद्धान्त के सर्दर् िै। ईश्वरेच्छा िी नैततकता का मानदण्ड िै। मानवीय अपराध िी न्यूनता िै। िम पाप तभी करते िैं जब िम ईश्वर की आज्ञाओंका उल्लंघन करते िैं। देवता ऋत, अथात्श ्संसार की सदाचार-सम्बन्धी व्यवस्था, को धारण करने ेवाले िैं। वे ेसज्जजनों की रक्षा

---

176 6/2;20 देखेंपुरूरवाकीकथा।

177 10/15 ।

178 बबिारी लाल, 'द वेदापृ०', 101।

179 7/86 6; और भी देणखए 7/88, 5,

 88 करते ि एवं दुजुनशों को दण्ड देते िैं। बाह्य कतव्शयों के पालन न करनेमात्र का नाम िी पाप निीं ंिै। पाप दो प्रकार
के िोतिैं-एक नैततक पाप और दूसूरा कमकशाण्ड पवषयक पाप।180' यि पाप की चेतना िी िै त्जसके कारण र्मनकारी यज्ञों का पवधान ककया जाता िै। पवर्ेषे रूप से वरुण की कल्पना में िमें पाप और क्षमा की भावना ममलती िै, जो िमें आधुतनक ईसाई धम शके मसद्धान्तों का स्मरण कराती िै।

जबकक साधारणतया ऋग्वेद के देवताओं को नैततकता के संरक्षक समझा जाता िै, उसमें से कुछेक अब भी अपनी अिकारपूण शभावनाओं को बनाए िुए िैं, जोकक वस्तुतः बृिदाकाररूप मानव िी िैं, और ऐसे ेकपवयों का भी अभाव निीं ंिै जो इस सबके अन्दर की पोल साक्षात् ्देख सकते िैं। एक सूतत-पवर्ेषे181 में तनदेर् ककया गया िैकक ककस प्रकार सभी देवता एवं मनुष्य स्वाथ शके वर् में िैं। वैहदक पूजा का ह्रास कई देवताओं की इस तनम्नस्तर की भावना के कारण िी िुआ। अन्यथा िम उस सुन्दर सूतत'[182] का आर्य समझ निीं ंसकतेजो बबना ककसी देवी-देवता की प्रसन्नता का पवचार ककए परोपकार की भावना रूपी कतव्शय पर पवर्ेषे बल देता िै। देवता ुदुध नैततकता के तनयमों की रक्षा करने ेमें अमयन्त असमथ शिो गए प्रतीत िोते िैं। धाममकश कक्रया-कलापों से स्वतन्त्र नीततर्ास्त्र की भावना के-त्जसे बौद्धमत ने प्रचमलत ककया सम्बन्ध में िमें यिांसंकेत ममलता िै।

10. नीततर्ास्त्र

ऋग्वेदप्रततपाहदत सदाचार की ओर ध्यान देनेपर ज्ञात िोता ि कक विां 'ऋत' के पवचार का बिुत बा़ मित्त्व िै। यि कममशसद्धान्त का, जोकक भारतीय पवचारधारा का एक पवमर्ष्ट स्वरूप िै, पूवरूशप िै। यि वि कानून ि जो संसार. में सवत्रश व्याप्त ि और त्जसे सब देवताओं एवंमनुष्यों को अवश्य पालन करना चाहिए। यहद संसार में कोई कानून (बत्रकालाबाधधत तनयम, ऋत) ि तो उसे ेअवश्य कक्रयाममक रूप में आना िी चाहिए। और यहद ककसी कारण से इसके कायों का प्रकार् इस भूलोक में निीं िो सका, तो उनका फल अवश्य िी अन्यत्र किीं ंममलेगा। जिां ंतनयम काय शकरता ि विांअव्यवस्था अथवा अन्याय केवल अस्थायी एवं आंमर्क रूप से िी रि सकते िैं। दुजुनश की पवजय स्थायी एवं ंतनतान्त निीं ंिोती। सज्जजन पुरुष का अहित तनरार्ा का कारण न िोना चाहिए।

ऋत िमारे आगे सदाचार के एक मानदण्ड को प्रस्तुत करता िै। यि वस्तुओंका व्यापक सारतत्त्व िै। यि समय िै, अथात्श ्वस्तुओंकी यथाथतशा िै। अव्यवस्था अथवा अनृत् ममथ्या िै, जो समय का पवरोधी एवं ंसमय के पवपरीत िै,'[183] जो ऋत अथात्श ्समय एवं ंव्यवत्स्थत माग,श का अनुसरण करते िैं वे समपुरुष िैं। व्यवत्स्थत आचरण को समयव्रत किा जाता िै। ऋत के माग शका अनुसरण करनेवालों के जीवन-व्यविारों को 'व्रतातन' किा

---

[180] 1/23, 22 1:85
[181] 9:115
[182] 10/117
[183] देखें,ऋग्वेद ,7:56, 12, 9: 115, 4; 2:6, 10; 4:5, 5, 8:6, 2; 12; 7:47,5

जाता ि ै।'[184] त्स्थरता एवं ंसंगतत धाममकश जीवन का मुख्य लक्षण ि ै। वैहदक धमानुशयायी अपनेव्यविार में पररवतनश निीं ंकरता। वरुण, जो ऋत के माग शका अनुसरण करने ेवाला ि ै, आदर्रूशप ि ै, धृतृव्रत ि ै-अथात्श ्उसके व्यविार में पररवतनश निीं ंि ोता। जब कमकशाण्ड का मित्त्व बढ़नेलगा, ऋत यज्ञ अथवा यज्ञाममक अनुष्ठानि का पयायशवाची ि ो गया।

आदर् शजीवन का सामान्य वणनश करने ेके पश्चात् ्सूततों के अन्दर नैततक जीवन के पवमर्ष सारतत्त्व व्यौरेवार हदए गए ि ैं। देवताओंके प्रतत प्राथनशा करनी चाहिए, धाममकश अनुष्ठानि करनेचाहिए।'[185] वेद मनुष्यों एवं देवताओं के मध्य एक तनकटतम एवं ंघतनष्ठ् सिम्बन्ध को स्वीकार करते ि ैं। मनुष्य को चाहिए कक वि अपने जीवन के व्यविार में सवदशा ईश्वर को साक्षी मानकर चले। देवताओं के प्रतत जो िमारे कतव्शय ि ैं उनके अततरररतत मनुष्य- जातत के प्रतत भी कुछ कतव्शय ि ैं।186 सबके प्रतत दया का भाव कतव्शयरूप से पवधान ककया गया ि ै। अततधथसमकार की गणना मिान पुण्यकों में की गई ि ै। "जो दाता ि ै उसका धन कभी क्षीण निीं ंि ोता ।... ऐसे े मनुष्य को कोई सान्मवना निींदे सकता जो भोजन के पदाथ शको पास में रखते िुए भी एक तनबलश व्यत्तत के प्रतत, त्जसे पौत्ष्टक भोजन की अमयन्त आवश्यकता ि ै, अपनेहृदय को तनष्ठुर एवं कठोर बना लेता ि ै, और सिायता के मलए आए िुए दुखी व्यत्तत के आगे भी त्जसका हृदय निीं ंपसीजता, ककन्तु इसके पवपरीत उसके सामने िी अपने ेभोगों में मग्न रिता ि ै।"[187] इन्द्रजाल, जादूपूवद्या, नारीरण एवं ंव्यमभचार को पापकम शबताकर दूपूषत ठ ििराया गया ि ै।'[188] जुए को वत्जतश माना गया ि ै। धाममकश गुण ईश्वरीय तनयम की अनुकूलता ि ै और इसमें मनुष्य के प्रतत प्ेरम भी आ जाता ि ै। दुष्कुम शउस ईश्वरीय तनयम का उल्लंघन ि ै। "यहद िमनेऐसे ककसी मनुष्य के प्रतत जो िमसे प्ेरम करता ि ै, पाप ककया ि ै, ममत्र अथवा साथी का अतनष्ट ककया ि ै, ककसी पड़ोसी को जो सदा िमारे साथ रिता ि ै अथवा पराये को भी कभी नुकसान पिुंचाया ि ै, तो ि े प्रभु! इस तनयमोल्लंघन रूपी पाप से िमें मुतत करो।"[189] कुछेक देवता ऐसे ि ैं त्जन्िें धाममकश माग शसे दान-उपिार की ककसी भी मात्रा के द्वारा फुसलाकर पवचमलत निीं ंककया जा सकता। "उनके अन्दर दाय-ेंबायेंका भेद लक्षक्षत निीं ंकर सकते, आगे और पीछे का भी भेद निीं ंकर सकते। वे कभी न पलक झपकाते ि ैं, न सोते ि ैं। उनका प्रवेर् सब वस्तुओं में अबाधधत िैं; वे भलाई एवंबुराई का गिराई के साथ तनरीक्षण करते ि ैं; सुदूरस्थ पदाथ शभी उनके अमयन्त समीप ि ैं; वे मृमृयु को गहितश समझतेिैं एवं ंयमराज का दण्ड देते ि ैं; समस्त जंगम जगत् ्को धारण करते ि ैं एवं त्स्थर रखते ि ैं।"

यिां ंवैराग्यपरक प्रवृपृत्त के भी संकेत पाए जाते ि ैं। किा गया ि ै कक इन्द्र ने तपस्या के बल से िी अन्तररक्षलोक पर पवजय प्राप्त की।"[190] ककन्तु प्राधान्य तपस्वी-जीवन का निीं ंि ै। वैहदक सूततों के अन्दर िम

---

[184] 9: 121, 1; 10:37,5

[185] ऋग्वेद ,1:104,6;1:108, 6:22:26,3;10:151।

[186] ऋग्वेद , 10: 117।

[187] 8:6, 5;12,6।

[188] 7:104,8, और भी आगे ;4: 5, 5।

[189] ऋग्वेद , 5: 85, 7

[190] 10:127

प्रकृतत के सौन्दय,श उसकी मिानता एवं ंउसकी भव्यता और करुणामय स्वभाव के प्रतत उमकट अनुराग पातें। यज्ञों के अन्दर प्रेरणा का लक्ष्य संसार की उत्तम वस्तुओंके प्रतत प्रेम ि। िमें अभी भी दुःख और उदासी से रहित संसार में गंभीर आनन्द हदखाई पता ि। यद्यपप तपस्या के कक्रया-कलाप भी प्रचमलत थे। उपवास और परिे को नानापवधध अततप्राकृततक र्त्तयों को प्राप्त करने ेका साधन माना जाता था। किा जाता ि कक समाधध की अवस्थाओं में देवता मनुष्यों के अन्दर प्रवेर् करते ि।'[191] तपस्वी मिाममाओंकी समाधध-अवस्थाओं का सबसे पुराना वणनश ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 136वें सूतत में ममलता ि।192

हिन्दूसूमाज के चार वगों में पवभाजन का सबसे पिला वणनश िमें पुरुषसूतत में ममलता ि। इस संस्था की स्वाभापवक पवधध और ककस तरि इसका उदय िुआ इसे समझनेके मलए िमें अवश्य स्मरण रखना िोगा कक पवजेता आय शप्रस्पर रतत-सम्बन्ध एवं ंजाततगत पूवजशों के नाते भारत की पवत्जत आहदम वन्य जाततयों से मभन्न थे। प्रारत्म्भक आय शलोग सब एक िी वग शके थे,े प्रमयेक व्यत्तत पुरोहित और योद्धा, वाणणज्जय-व्यवसायी और ककसान था। पुरोहितों की कोई पृथक् पवर्ेषाधधकारसम्पन्न संस्था निीं ंथी। ककन्तु जीवन की जहटलता के कारण आय शलोगों में वगभेशद को जन्म ममला। यद्यपप र्ुरू-र्ुरू में िरेक मनुष्य देवताओं के प्रतत ककसी अन्य पुरुष के माध्यम से यज्ञ का अनुष्िान कर सकता था, पुरोहितवग शऔर कुलीन तन्त्र ने अपनेको तनम्न श्रेणी के लोगों से पृथक् कर मलया। आरम्भ में वैश्य र्ब्द समस्त मानव-समुदाय के मलए प्रयुतत िोता था। जैसा कक िम देखेंगे, जब यज्ञों ने अपनेमलए एक मित्त्वपूण शस्थान बना मलया जबकक जीवन की बढ़ती िुई जहटलता के कारण जीवन का पवभाजन भी आवश्यक िो गया तो कततपय पवमर्ष्ट पररवार जो मर्क्षा, बुद्धधमत्ता, काव्य-सम्बन्धी एवं काल्पतनक नैसधगकश प्रततभा के मलए प्रमसद्ध थे,े पूजा में 'पुरोहित' के नाम से प्रततततनधधमव करने ेलगे- पुरोहित का अथ शिै वि त्जसे सबसे आगे रखा जाए। और जब वैहदकधम शऔर अधधक पवकमसत िोकर एक क्रमबद्ध कक्रया-कलाप के रूप में आ गया, इन पररवारों ने अपनी एक पृथक् जातत बना ली। आय शलोगों की परम्परा को सुरुक्षक्षत रखनेके मित्त्वपूण शकाय शके कारण इस वग शको अपनी आजीपवका के मलए संघष शकरने ेकी आवश्यकता निींथी। तयोंकक ऐसे लोग त्जन्िें तनरन्तर जीवन के क्षुब्ध, उत्तेत्जत एवंव्याकुल वातावरण में अपनी आजीपवका अजनश करनेके मलए व्यस्त रिना प,े पवचार एवंधचन्तन के मलए आवश्यक स्वच्छन्दता एवं अवकार् प्राप्त निीं ंकर सकते। इस प्रकार एक ऐसा वग-शपवर्ेष जो आमम- सम्बन्धी पवषयों में पूणरूशप से तनमग्न रि सके, अत्स्तमव में आ गया। ब्राह्मण-वग शपुरोहितों की इस प्रकार की एक संस्था निीं ंि त्जनके मलए तनत्श्चत मसद्धान्तों का समथनश करना आवश्यक समझा जाए ककन्तु एक ऐसा बुद्धधजीवी कुलीन तन्त्र ि त्जनके सुपुदश जन-साधारण के उच्चतम जीवन के तनमाशण का काय शथा। वे राजा-लोग जो पवद्वान् ्ब्राह्मणों के आश्रयदाता थे,े अथवा ऐसे राजा लोग त्जन्िोंने ेउस समय र्ासन का भार अपनेऊपर ले रखा था, क्षबत्रय किलाए। 'क्षबत्रय' र्ब्द की उमपपत्त 'क्षत्र' र्ब्द से ि, त्जसका अथ शिै, र्ासन अथवा आधधपमय। यि अथ शवेदों, ज़ेन्दावस्ता (पारमसयों के धमग्रशन्थ) और फारस के मर्लालेखों में एक समान ि। बाकी सब लोग एक श्रेणी के मानेजाते थे ेऔर वैश्य' के नाम से पुकारे जाते थे। यि पवभाग र्ुरू-र्ुरू में तो पेर्े ेका द्योतक था ककन्तुबाद में

---

191 10:85,2

192 और भी देणखए,7: 59, 6 10: 167, 1:10:109,4।

 पैतृक् परम्परा का रूप पक़ गया। वैहदक सूततों के काल में पेरों का सम्बन्ध ककसी जातत-पवर्ेषे के

साथ र्निीं

था। मनुष्यों की नानापवध रुधचयों का वणनश करते िुए एक मन्त्र में किा गया िै, "म ैंएक कपव िंूं, मेरा पपता

धचककमसक िै और मेरी मां ंअनाज पीसनेवाली िै।"[193] ऐसी भी अंर् ममलतीं जो उदय िोती िुई ब्राह्मणर्त्तत की ओर संकेत करते िैं। "वि अपनेघर में र्ात्न्तपूवकश और आराम से रिता िै, उसके मलए पपवत्र और पुष्कल पररणाम में भोजन स्वयंप्राप्त िो जाता िै, जनसाधारण उसके मलए स्वेच्छा से आदर व समकार का भाव प्रदमर्तश करते िैं-वि राजा िै त्जसके आगे, ब्राह्मण को समकार पाने का अधधकार िै।"[194] वे सब जो मर्क्षा एवं ं ज्ञान-सम्बन्धी धन्धों में प्रवृत्त थे,े जो युद्ध करने ेवाले थे अथवा वाणणज्जय व्यवसाय का पेर्ा करते थे,े एक िी जातत के थे। यि जातत एक बी़ खाई के रूप में उन दी जाततयों से मभन्न एवं ंपवभतत थी जो पवत्जत जाततयां थीं, अथात्श ् (क) द्रपवड, जो चौथी श्रेणी के थे,े (ख) और आहदम वन्य जाततयां। आय शऔर दस्यु के पवभाग

जाततपरक

थे,े जो रतत और वंर् के आधार पर थे। कभी-कभी किा जाता िै कक त्जन आहदम वन्य जाततयों को आय शलोगों ने मत-पररवतनश कराके अपनेमें ममलाया वे र्ूद्र िो गए और त्जन्िें उन्िोंने बहिष्कृत समझा वे पंचम किलाए।195 दूसूरे लोगों का किना यि िै कक आयों के दक्षक्षणी भारत में आने ेसे पूव शिी उनके अपने अन्दर र्ूद्र पवद्यमान थे। इन दो परस्पर पवरोधी मतों में कौन-सा िीक िै, यि तनश्चयपूवकश किना कहिन िै।

वणव्शयवस्था न तो केवल आयों की और न िी केवल द्रपवों की थी, ककन्तु इसका प्रचार उस काल की आवश्यकताओं की पूतत शके मलए ककया गया था जबकक मभन्न-मभन्न जाततयों को एक साथ ममलकर सौिादशपूवकश यिां ंरिना था। उस काल में यि व्यवस्था देर् के मलए एक प्रकार से मुत्तत के समान वरदान मसद्ध िुई, भले िी वतमशान काल में इसकी प्रवृत्त्त जो भी िो। ककसी भी जातत की संस्कृतत को सुरक्षक्षत बचाकर रखनेका, त्जसे बिुसंख्यक आहदतनवामसयों के ममथ्यापवश्वासों में समा जानेका भय िो, एक िी उपाय था कक तामकामलक संस्कृततगत एवं ंजाततगत भेदों को लौि सीमाओंमें बांधकर रखा जाए। दुभाग्शयवर् सामात्जक संगिन को अवनतत एवं िास से बचानेके मलए जो यि नीतत अंगीकार की गई थी, आगे जाकर संस्कृतत की उन्नतत के माग श में बाधक िो गई।196 त्जस समय उन्नतत की लिर की मांग की थी कक उतत बंधन मर्धथल िो जाएं तब भी वे े मर्धथल न िुए। उन बन्धनों ने सामात्जक व्यवस्था को सुरक्षक्षत तो रखा ककन्तु वे ेराष्र के सवागां उन्नतत में सिायक मसद्ध न िो सके। ककन्तु इसके कारण िम वणव्शयवस्था के उस उद्देश्य को जो इसे प्रचमलत करने ेके मूल में था, दूपूषत र्निीं ंिििरा सकते। केवल वणव्शयवस्था के कारण िी यि सम्भव िो सका कक मभन्न-मभन्न

---

193 9:112, 3।

194 4:50, 8।

195 देखें, फक्र्कतयुिर: 'आउटलाइन आफ द ररमलजस मलटरेचर आफ इंडडया', पृ० 6।

196 र्ी डेपेवड्स नामक पवद्वान वगों की वणगशत किोरता का वणनश करते िुए मलखता िै, "यि बिुत सम्भव िै कक यि मित्त्वपूण शकदम इसमलए उिाया गया िो और उसका कारण मुख्य रूप से यि रिा िो कक पिले से अनायजशाततयों को आयजशाततयों के अन्दर पवविा न करने के ऊपर एवं ककसी आयेतर को आयजशातत के अन्दर प्रवेर् कराने पर एक किोर प्रततवन्ध लगा िुआ िो। आयों की यि परम्परागत कमज़ोरी थी कक वे दूसूरी जाततयों को िीनता की र्दत्ष्ट से देखते ेथे, त्जसकी प्रततकक्रया उनकी असहिष्णुता के कारण यि िुई कक र्तात्ब्दयों तक उन्िें इसका कड़वा फल भोगना पा़।" ('हिबटश लेतचस'श, पृ० 231)

श ्अन्तजातशीय
जाततयांबबना युद्ध के परस्पर एक साथ ममलकर रि सकीं। भारत ने उस समस्या को, अथात् सम्बन्ध की समस्या को बिुत रा्ंततपूण शढंग से सुलझा मलया था, त्जसे अन्य जाततयां मारकाट के बबना न सुलझा सकीं। जब यूरोपपयन जाततयों ने दूसूरों पर पवजय पाई, तो उन्िोंने ेपवत्जत जाततयों के मानवीय गौरव को ममटानें एवंउनके आममसम्मान को सवथशा नष्ट करने ेमें कोई कसर निीं ंरखी। वण-शव्यवस्था के द्वारा वैहदक आय शपवजेता एवं ंपवत्जत दोनों जाततयों की ईमानदारी की साख एवंस्वातन्त्र्य को सुरक्षक्षत रखनेमें समथ शिो सके, त्जसके कारण पारस्पररक पवश्वास एवं ंसामंजस्य को प्रोमसािन ममल सका।

11. परलोकर्ास्त्र

वैहदक आयों ने अपनेबल के अमभमान और पवजय के िष शको लेकर भारत में प्रवेर् ककया था। उन्िें अपनेजीवन की पूणतशा से प्रेम था। इसमलए आममा के भपवष्य के पवषय में पवचार करने ेकी उन्िें कोई पवर्ेष रुधच न थी। जीवन उनकी दृत्ष्ट में उज्जज्जवल एवं सुखमय था और सब प्रकार के क्रोधी एवं धचधड़चड़ ेस्वभाव से उमपन्न िोनेवाले कष्टों से उन्मुतत था। वे मृमृयु में अनुरतत निीं ंथे। वे अपनेमलए और अपनी समृद्धध के मलए दीर्ायु िोनेकी कामना करते थे।197' मृमृयु के उपरान्त के जीवन के पवषय में उनके कोई पवर्ेष मसद्धान्त न ये यद्यपप स्वग शऔर नरक के पवषय में कुछ अस्पष्ट पवचार पवचारर्ील व्यत्ततयों द्वारा अपरररिाय शन रि सके थे। पुनजन्शम का मसद्धान्त अभी भी दूरू था। वैहदक आयों को इस बात का तनश्चय था कक मृमृयुिी वस्तुओंका अन्त निीं ंिै। जैसे राबत्र के पीछे हदन आता िै, मृमृयु के बाद भी जीवन िोना चाहिए। एक बार उमपन्न िोने वाले प्राणी सदा के मलए तन:र्ेष निीं िो सकते। उन्िें किीं ंन किीं पवद्यमान रिना चाहिए, सम्भवतः अस्ताचलगामी सूय श के राज्जय में, जिां ंकिा जाता िै कक यम का र्ासन िै। मनुष्य की कल्पना ने मृमृयुके भय से कांपकर भी अभी तक यम को बदला लेनेवाले एक भयानक देवता के रूप में स्वीकार निीं ंककया था। यम और यमी मरनेवालों में सबसे प्रथम परलोक में प्रपवष्ट िुए, त्जनका र्ासन उस लोक पर िै। कल्पना की जाती िै कक मनुष्य जब मरता िै तब वि यम के राज्जय में पिुंच जाता िै। यम ने िमारे मलए एक स्थान बनाया िै, एक ऐसा घर जो िमसे छीना जानेवाला निीं ंिै। जबकक र्रीर को फेंक हदया जाता िै, आममा को उज्जज्जवल दीत्प्तमान आत्ममक आकृतत ममलती िै और वि देवताओं के स्थान पर चली जाती िै, जिां ंयम और पपतर लोग अमर िोकर तनवास करते िैं। ऐसी कल्पना की जाती िै कक मृत पुरुष, इस स्वगलशोक में िैं। जल एवंएक पुल (सम्भवतः वैतरणी नदी से तामपय शिै) पार करके पिुंच जाते िैं। पपतरों एवं ंदेवों के माग शके पवषय में एक वणनश ऋग्वेद के 10वें मण्डल की 88, 15वीं ऋचा में पाया जाता िै। जैसा संकेत ककया गया िै, यि सम्भव िै कक अन्मयेत्ष्टसंस्कार के समय अथवा

• सामान्यतः सभी यज्ञों के समय उमपन्न िोने ेवाले धुएं के आधार पर यि कल्पना की गई िो, जो मभन्न-मभन्न मागों से ऊपर आकार् की ओर उिता िै। यि माग-शभेद अभी भी अपवकमसत रूप में िी िै।

---

197 ऋग्वेद , 10/18

मृतृाममाएं स्वगलशोक में यम के साथ आमोद-प्रमोद में मग्न रिती िैं। वे विांमिारे िी समान जीवन-यापन करती िैं। स्वग शके सुखभोग पृथ्वीलोक के सुखों से उन्नत और उच्च कोहट के िैं। "ये प्रकार्मान पदाथ श उनके अंर् िैं जो उपिार देते िैं। उनके मलए स्वग शमें सूय शभी िै, दये अमरमव प्राप्त करते िैं; वे ेअपनेजीवन को दीघ शबनाते िैं।"[198] कभी-कभी भपवष्य- जीवन-सम्बन्धी वैहदक धचत्रांकन में पवषयभोग के रूप पर पवर्ेषे बल हदया गया िै। ककन्तु जैसा कक ड्यूसन का किना िै, "जीसस ने भी स्वग शके राज्जय का वणनश करते िुए उसे एक प्रकार की उमसव जैसी सभा का रूप हदया िै, जिां ंकक सब एक साथ टेबल के चारों और बैिकर भोजन करते िैं199'

व महदरा का पान करते िैं।200 और यिां ंतक कक दांते या ममल्टन भी इसका अन्य ककसी रूप में अंकन निीं ंकर सके। और उन्िोंनेभी इसके मलए पृथ्वी पर के अमोद-प्रमोद के धचत्र को िी उधार मलया।"[201] कल्पना की गई िै कक देवगण सोमरस की र्तत द्वारा अमरता को प्राप्त िो जाते थे। देवताओं के समान बनना िमारे प्रयमन का भी लक्ष्य िै। तयोंकक देवगण एक आध्यात्ममक स्वग शमें तनवास करते िैं, जिां ंवे दु:ख से पररमुतत आनन्द का उपभोग करते िैं। न उन्िें भूख लगती िै न प्यास सताती िै और न उन्िें पववाि की िी आवश्यकता अनुभव िोती िै। परलोक के आदर्-शवणनश में पृथ्वीलोक के जीवन और इस जीवन के उपरान्त के जीवन में भेद का भाव उदय िोता िै। देवता सौभाग्यर्ाली िैं; वे अमर िैं। िम सब तो केवल एक हदन के बच्चेिैं। देवताओं को ऊपर स्वग शमें सुख िै, जिांयम का र्ासन िै। िमारे भाग्य में पृथ्वीलोक में दु:ख बदा िै। िमें अमरमवप्राप्त्प्त के मलए तया करना चाहिए ? िमें देवताओं को लक्ष्य करके यज्ञ करने ेचाहिए, तयोंकक अमरता देवों से डरने ेवालों के मलए स्वग शसे हदया गया तन:र्ुल्क उपिार िै। देवताओं की पूजा करने ेवाला व्यत्तत अमर िो जाता िै। "िे अत्ग्नदेव! वि ममय श मनुष्य जो तुम्िारी पूजा करता िै, आकार् में चन्द्रमा बन जाता िै।"[202] कहिनाई का पिले भी अनुभव िुआ िै। तया वि चन्द्र वन जाता िै या चन्द्र के समान बन जाता िै ? सायण ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की िै, "वि चन्द्रमा के समान सबको आह्लाद देनेवाला बन जाता िै।"[203] दूसूरे इसके प्रततकूल किते िैं कक निीं, वि चन्द्रमा िी बन जाता िै।204 इस पवषय के संकतेममलतेिैं कक वैहदक आय शअपनी ममृयुके पश्चात् ्अपनेपूवजशों से ममलने की सम्भावना में पवश्वास करता था।'[205]

प्रश्न उिता िै कक यहद िम देवताओं की पूजा न करें तो िमारा तया िो जाएगा। तया स्वग शके समान नरक भी कुछ िै? अथात्श,् नैततक अपराधधयों के मलए एक पृथक् स्थान, उन नात्स्तकों के मलए जो देवताओं में पवश्वास निीं ंकरते। यहद स्वग शकेवल पुण्याममाओं ंएवं साधुपुरुषों के मलए िै तो दुश्चररत्र व्यत्तत ममृयुके उपरान्त एकदम पवलुप्त िो निीं ंसकते, और न िी वे स्वग शमें जा सकतेिैं। इसमलए एक नरक की भी

198 1/25,6 ।

199 सटें मैथ्यू, 7: 11

200 सटें मैथ्यू, 26, 9

201 'द कफलासफी आफ द उपतनषद्स', पृ० 320।

202 2:2:10:1,3।

203 'आह्लादक सवेषाम्' ्।

204 चन्द्र एव भवतत (चन्द्रमा िी बन जाता िै)।

205 1:24, 17:56,24

आवश्यकता ि। िम वरुण के पवषय में सुनते िैं कक वि पापपयों को गिरे गढ़े में नीचेढकेल देता िै, जिां ंसे वे कभी वापस निीं ंलौटते। इन्द्र से प्राथनशा की गई िै कक वि अपने उपासकों को नुकसान पिुंचाने ेवाले को नीचे े अन्धकार के सुपुदश कर दे।"[206] दुशुचररत्रों का अन्त इसी प्रकार िोना चाहिए कक वे उस अन्धकार के गड्ढे में धगरकर नष्ट िो जाएं। िमें इस समय तक नरक की उस िास्यास्पद, भद्दी और भयंकर कल्पना के दर्नश निीं ीतिजोकक परवती पुराणों में पाई जाती िै। पुण्याममाओं ंके मलए स्वग शऔर पापपयों के मलए नरक, यि साधारण तनयम िै। पुण्य के मलए पुरस्कार और पाप के मलए दण्ड ममलता िै। यद्यपप ड्यूसन का ऐसा मत िै, त्जससे में सिमत निींूं, किक ममृयु के पश्चात् ्अज्ञानी लोग एक ऐसे सुखवत्जतश और अंधकारपूण शदेर् में चले जाते िैं जो वैसा िी एक लोक िै जैसे में िम तनवास करते िैं। िमें ऐसे संसार का कोई संकेत अथवा सुख का भी ऐसा श्रेणी-पवभाजन अभी तक निीं ंममला िै। ऋग्वेद में एक पररच्छेदक आता िै'[207], त्जसमें किा िै, "जब वि अपने कतव्शयकमों को समाप्त कर लेता िै और वृद्ध िो जाता िै तो इस संसार से पवदा िो जाता िै; और यिां ंसे पवदा िोतेिुए कफर एक बार जन्म लेता िै। यि तीसरा जन्म िै।" यि वैहदक धम शके मसद्धान्त के अनुकूल िै, त्जसके अनुसार मनुष्य के तीन जन्म बताए गए िैं-पिला बच्चे के रूप में, दूसरा धाममकश से , और तीसरा ममृयुके पश्चात् ्का जन्म। िमें आममा के गततमान जीवनतत्त्व के िी सम्बन्ध में पवश्वास ममलता िै।208 मण्डल 10 के 58वें मंत्र में प्रकटरूप में अचेतन मनुष्य की आममा को वृक्षों, आकार् और सूय शमें से लौट आने ेका तनमन्त्रण िै। यि प्रकट िै कक कततपय असाधारण अवस्थाओं में मनुष्य की आममा को र्रीर से पृथक् ककया जा सकता था। ककन्तु ुइस सबसे यि संकेत निींममलता कक वैहदक आय शपुनजन्शम के पवचार से पररधचत थे।

12. उपसंिार

वैहदक सूतत परवती काल की भारतीय पवचारधारा की आधारमभपत्त का तनमाणश करते िैं। जिां ंएक ओर ब्राह्मणग्रन्थ यज्ञ आहद के अनुष्ठान पर बल देते िैं, त्जनकी छाया-मात्र सूततों में पाई जाती िै, उपतनषदें उनके अन्तगतश दार्तशनक पवचारों को आगे बढ़ाती िैं। भगवद्गीता का आत्स्तकवाद केवल वरुणदेवता की पूजा का िी भावधचत्र िै। कम शका मित्त्वपूण शमसद्धान्त ऋत के िी समान अभी भी अपनेर्ैर्वकाल में िै। सांख्य का द्वैतपरक आध्यात्ममक दर्नश अणवश (समुद्रजल) के ऊपर बिते िुए हिरण्यगभ शके पवचार का तकश-संगत पवकमसत रूपमात्र िै। यज्ञानुष्ठान, मन्त्रोच्चार अथवा सोमरस के प्रभाव से प्राप्त िुई समाधध-अवस्थाओं के वणनश tilde R जब िमारे आगे अन्तररक्षलोक का हदव्यज्जयोततसम्पन्न प्रभामण्डल आता िै, तो िमें दैवीय आर्ीवादश से उपलब्ध िोने ेवाली यौधगक मसद्धधयों का स्मरण िो आता िै, त्जनके द्वारा हदव्य वाणणयों को सुना एवं हदव्य दृश्यों को देखा जा सकता िै।

उद्धृि ग्रन्थ

---

[206] 10:132,4:4:5,5,973,8;10:152,4

[207] 4/27 , 1।

[208] 1/164, 30।

- मैतसमूलर और ओल्डनवग श:'द वेहदक ि◌इम्स'। 'सैके्रेड बुतस आफ द ईस्ट', खण्ड 32 और 46।
- म्यडोर: 'ओररत्जनल संस्कृत टेतस्ट्स', खण्ड 5।
- रैगोत्जन: 'वेहदक इंडडया।'
- मैतसमूलर : त्स्तस मसस्टम्स ऑफ इंडडयन कफलासफी', अध्याय 2।
- कैगी: द ऋग्वेद' (अंगे्रेजी अनुवाद)।
- घाटे: 'लेतचस शआन द ऋग्वेद' ।
- मैकडानल: 'वेहदक माइथोलॉजी': 'वेहदक रीडर' ।
- बरुआ: 'प्री-बुद्धधत्स्टक इंडडयन कफलासफी', पृ० ।-381
- ब्लूमफील्ड: 'द ररमलजन आफ द वेद।'

तीसरा अध्याय

उपननषदों ि◌ी ओर संक्रमण

अथववेशद-परमाथपशवद्या-यजुवेद और ब्राह्मणग्रंय-धम-श पवद्या-सृतूष्ट-सम्बन्धी मसद्धान्त नीततर्ास्त्र परलोकर्ास्त्र ।

1. अथववेशद

"अथववेशद के सूतत पवकट रूप से उलझे िुए, पूवयुशग के देवता िैरान करने ेवाले; और पुनुः परस्पर एक-दूसूरे में समापवष्ट िोकर देवमाला को पूण शरूप देते िुए; नये-नये अद्भुत देवताओं का समावेर्; र्ारीररक यन्त्रणा देने वाले एक नरक की कल्पना का समावेर्ः अनेक देवताओं के स्थान पर एक देवता की स्वीकृतत, जो सब देवताओं और प्रकृतत का भी प्रततततनधध िै; ककसी का बुरा करने ेके मलए जादू–टोना (अमभचार) और भला करने े के मलए भी मन्त्र एवं ंजादू,ू ऐसे लोगों के मलए "जो मुझतेघृणाृ करते िैं या त्जनसे में घृणाृ करता िंूू, र्ापपरक [illegible] तथा पवष के प्रभाव एवं अन्य रोग-दोषों को िटाने ेके मलए जादू–भरे मन्त्र, कमकशाण्ड के प्रतत जो अमयधधक श्रद्धा का भाव था, उसे त्तीतीन कर देना; सांपों के मन्त्र, मभन्न- मभन्न रोगों के मलए, तनद्रा के मलए, समय के मलए और नक्षत्रों के मलए मन्त्रः पुरोहितों को दुुःख देनेवालों को कोसना आहद-ऋग्वेद के बाद अथववेशद को पढ़नेसे सामान्य रूप में मन पर इस प्रकार का एक प्रभाव पता िै।"[209] अथववेशद में िमें जादू–टोना, इन्द्रजाल आहद के पवषय में अद्भुत उत्ततयां, ज़-पदाथों के मन्त्र, एवं ंडाककनी व पपर्ाच आहद के मन्त्र ममलतिैं। डाकुओंके प्रयोग के ऐसे जादू ू ममलतिैं त्जनसे मकान के तनवासी तनद्रा के वर्ीभूत िो सकते िैं210', ऐसे वर्ीकरण मन्त्र जो त्स्त्रयों की गभपशातकारी पे्रेत-त्ततयों का तनवारण कर सकतिैं211 और ऐसे जादू ूके मन्त्र जो रोग को दूरू भगा सकते िैं।'[212] यद्यपप भूतमसद्धध व इन्द्रजाल आहद ऋग्वेद के काल में प्रचमलत थे ककन्तु वैहदक ऋपषयों ने न तो उन्िेंपसन्द ककया और न िी प्रोमसाहित ककया। इस पवषय के यदा-कदा जो उद्धरण हदखाई देते िैं उनसे प्रतीत िोता िै कक वे प्रक्षक्षप्त िैं, जबकक अथववेशद के ये मुख्य पवषयवस्तु िैं।

अथववेशद त्जस मातयक या इन्द्रजालीय धम शका प्रततपादन करता िै वि तनःसंदेि ऋग्वेद के धम शसे पुराना िै, यद्यपप अथववेशद में संगृिीत मन्त्र परवती िैं। वैहदक आय शजैसे-जैसे भारत में आगे बढ़ते गए, असभ्य जातत के उन लोगों से उनका मुकाबला िुआ जो जंगली और बबरश थे ेऔर सप शआहद जन्तुओं, काष्ठ और पाषाण आहद को पूजते ेथे। कोई भी मनुष्य समाज असभ्य एवं अधसशभ्य आहदम जाततयों से तघरा रिकर प्रगततर्ील सभ्यता की व्यवस्था में तब तक अधधक हदनों तक निींरि सकता, जब तक कक वि उनको सवथशा परात्जत करके या अपनी संस्कृतत के तत्त्वों का उन्िेंज्ञान देकर नई त्स्थतत का सामना निीं ंकरता। इसमलए िमारे आगे यिी पवकल्प रितिैं-या तो िम अपनेबबरश पोमसयों का नार् कर दें, या उन्िेंअपनेअन्दर पचा लें और उनके जीवनस्तर को ऊंचा उिाएं, अथवा अपने-आपको उनके अधीन िो जानेदें। पिले माग शका अवलम्बन करना असम्भव था, तयोंकक आय शलोग संख्या में कम थे। तीसरे माग शका अवलम्बन करना उनके मलए अपनी संस्कृतत और जातत के गौरव के पवरुद्ध था, अतएव एकमात्र दूसूरा पवकल्प िी उनके मलए खुला था और उसी को आवं ं

209 िॉपककस : 'द ररमलजन्सआफइत्ण्डया', पृ॰ 51।

210 ऋग्वेद, 7:55 ।

211 ऋग्वेद, 10: 122।

212 ऋग्वेद, 10: 163।

लोगों ने अपनाया। जबकक ऋग्वेद गौरवण शआयों और कृष्णवण शदस्युओं के मध्य संघषकशाल का वणनश करता िै, जो हिन्दू ूपौराणणक आख्यानों में देवता और राक्षसों के परस्पर संघष शके रूप में वणणतश िै, विांअथववेशद उस काल का वणनश करता िै जबकक इन दोनों जाततयों के पवरोध ममट गए थेऔर दोनों साथ-साथ इस देर् में समानता के व्यविार से रिने लगी थींऔर उनमें परस्पर समझौता िो गया था। तन:संदेि इस समन्वय के भाव ने जिां एक ओर आहदम जाततयों को तो सभ्यता की दृजष्ट से ऊंचा उिा हदया, विांवैहदकधम शको नीचेधगरा हदया, तयोंकक वैहदकधम शके अन्दर जादू–टोना, इन्द्रजाल आहद अनायपशवधधयों का प्रवेर् िो गया। प्रेतामममाओं की पूजा, नक्षत्रों, वृकूषों, पवतशों की पूजा एवं ंअन्यान्य जंगली जाततयों के ममथ्या पवश्वास वैहदक धम शमें घुस आए। असभ्य लोगों को मर्क्षक्षत करनेके आय शलोगों के प्रयमन का पररणाम यि िुआ कक उनका अपना आदर्,श त्जसको वे फैलाना चािते थे,े भ्रष्ट िो गया। अथववेशद के चुने िुए मन्त्रों के अनुवाद की अपनी प्रस्तावना में ब्लूमफील्ड ने मलखा िै, "जादू–टोना भी हिन्दूधम शका एक अंग िै। यि इस धम शमें बािर से आकर प्रपवष्ट िुआ और पपवत्रतम वैहदक प्रकक्रयाओं में अपवत्च्छन्नरूप से सत्म्ममलत िो गया। जनसाधारण में प्रचमलत धम शऔर ममथ्या पवश्वासों ने पवमभन्न मागों से आकर उच्चतर वैहदक धम शको आच्छाहदत कर मलया, त्जसकांप्रचार ब्राह्मण पुरोहितों ने ककया था, और इस बात की कल्पना की जा सकती िै कक न तो उन्िोंनेअपने-आपको उस समय की आम जनता में, त्जससे वे तघरे िुए थे े, फैले िुए ममथ्या पवश्वासों से अछूता रिनेमें समथ शपाया और न उन्िोंने ेअपनेहित में इसे उधचत िी समझा ।'[213]' संसार में तनबलश जाततयांइसी प्रकार बलवान जाततयों के प्रतत बदला लेती देखी जाती िैं। ऊपर दी गई व्याख्या से यि स्पष्ट िो जाता िै कक हिन्दूधम शका स्वरूप पवपवध प्रकार का तयों िुआ इसमलए कक इसने असभ्य जाततयों की कल्पनाओं एवं ममथ्या पवश्वासों को भी, सािसी पवचारकों की अन्तर्दृत्ष्ट से उमपन्न उच्चतर ज्ञान के साथ-साथ, अपनेधम शमें स्थान दे हदया। प्रारम्भ से िी आयों का धम शफैलने वाला, अपने-आपको पवकमसत करनेवाला और सहिष्णुथा। अपनी उन्नतत के माग शमें त्जन-त्जन नई र्त्ततयों के साथ इसका सामना िुआ उनके साथ यि समन्वय करता चला गया। इस काय शमें आय शलोगों की सच्ची नम्रता का भाव और दूसूरे पक्ष के पवचारों को सहृदयतापूवकश अपनाने का भाव स्पष्ट लक्षक्षत िोता िै। भारतीय ने नीचे दजे के धम शको दृजष्ट से ओझल करना उधचत निीं ंसमझा और न िी उससे लड़कर उसे तनमूलश करना िीक समझा। उसके अन्दर िििधममतशा का अमभमान निीं ंथा, त्जससे कक वि ििपूवकश यि कि सके कक मेरा धम शिी एकमात्र श्रेष्ि िै। यहद कोई पवर्ेष देवता अपनी पवधध से मनुष्य की आममा को तृपूत कर सकता िै तो वि भी समय का एक आकार िै। कोई भी समय का एकमात्र स्वमवाधधकारी िोने ेका दम निीं ंभर सकता। समय पर नै: नै: श्रेणी पार करते िुए, अंर्-अंर् करके अस्थायी रूप में िी पवजय प्राप्त की जा सकती िै। ककन्तु उन्िोंने ेइस बात को भुला हदया कक असहिष्णुता कभी-कभी उत्तम गुण भी मसद्ध िोती िै। ग्रैर्न का तनयम धाममकश पवषयों में भी लागू िूोता िै। जब आय शऔर अनाय शधम,श त्जनमें से एक सुसंस्कृत और दूसूरा असंस्कृत था, एक उच्च और दूसूरा नीच प्रकृतत का था परस्पर सम्पकश में आए तो स्वभावत: बुरे धम शकी प्रवृपृत्त अच्छे को मार भगानेकी ओर थी।

---

213 सैक्रेडबुतसआफदईस्टखंड' 43।

2. परमाथ शपवद्या

अथववेशद का धम शआहदम और असभ्य मनुष्य का धम शिै, त्जसकी र्दत्ष्ट में संसार आकृततपविीन भूतों और पे्रेतामममाओं से पूण शिै।

जब वि प्राकृततक र्त्तयों के आगे अपनेको असमथ शपाता िै और अपनेअत्स्तमव को भी इतना पराधश्रत पाता िै कक वि तनरन्तर मृमृयु के अधीन िै, तब वि मृमृयु, रोग, वषाशके अभाव और भूकम्प आहद को अपनी ममथ्या कल्पनाओंका क्रीाक्षेत्र बना लेता िै। उसके पवचार में संसांर पपराचों व पे्रेतों तथा ऐसे िी देवी-देवताओं से भरा िै और उतत प्रकार की सब पवपपत्तयांपे्रेतामममाओं के प्रकोप का पररणाम िै। जब कोई बीमार पड़ता िै तो वैद्य को न बुलाकर जादू–टोना करने वाले ओझा को बुलाया जाता िै और वि रोगी के रीर से पे्रेतामममा को खुर् करके भगानेका मन्त्र पढ़ता िै।'[214] भयानक र्त्तयों की क्षुधा को केवल मनुष्यों अथवा पर्ुओंकी बमल देकर िी उनके रतत से रान्त ककया जा सकता था। मृमृयुके भय ने ममथ्या पवश्वासों की डोर को ढीला ककया। मैडम रैगोत्जन मलखती िैं, "िमें यिां ऋग्वेद के ऋपषयों द्वारा पवश्वास और कृतज्ञता के साथ सम्बोधधत ककए जानेवाले उज्जज्जवल, प्रसन्न और उपकारी देवताओं के स्थान पर और उनके पवरोधस्वरूप काले रंग के डरावनी सूरत के दैमयों वाला एक ऐसा मायावी संसार पातेिैं जो मन में तनम्नकोहट का भय उमपन्न करता िै और त्जसकी आय शलोगों ने कभी कल्पना तक निीं की थी।215 अथववेशद-प्रततपाहदत धम शइस प्रकार आय शऔर अनाय शपवचारों का एक प्रकार का सत्म्मश्रण िै। ऋग्वेद एवं अथववेशद के बीच के भेद का वणनश पवटनी ने इस प्रकार ककया िै, "ऋग्वेद में लोग देवताओं के समीप श्रद्धा से भरे िुए भय के साथ पिुंचने का सािस करते थे, ककन्तु साथ-साथ उनके प्रतत पे्रेम और पवश्वास का भाव भी रखते थे। पूजा का फल उन्िें प्राप्त िोता था, अथातश पूजा आराधक की आममा को ऊंचा उठाती थी। दैमय, त्जन्िें साधारणतः राक्षस किा गया िै, भय के कारण थे और देवता उन्िें परे रखते थे एवं उनका पवनार् करते थे। इसके पवपरीत अथववेशद में ऐसे देवताओं के प्रतत एक प्रकार का ऐसा भय पाया जाता िै त्जसमें चाटुकाररता आवश्यक िै । ऐसे देवता त्जनके कोप को रान्त करके चापलूसी द्वारा उनका कृपापात्र बननेकी आवश्यकता थी। यि पपराचों व राक्षसों के समूि को ममन्न-मभन्न श्रेणणयों में पवभतत करके उनके सामने नतमस्तक िोकर प्राथनशा करता िै कक वे कोई नुकसान न करें। मन्त्र और प्राथनशा, जो पुरातन वेद में भत्तत का साधन थी, यिांममथ्या पवश्वास का एक प्रकार से अस्त्र िैं। यिांमनुष्य अतनच्छा प्रकट करनेवाले देवता से चापलूसी द्वारा अपनेअमभलपषत पदाथ शको बलपूवकश छीनता िै जबकक ऋग्वेद के काल में उपासक मन्त्रों द्वारा देवता को प्रसन्न करके अपनेइष्ट पदाथ शका उसके प्रसादरूप में ग्रिण करता था। अथववेशद की सबसे अधधक और स्पष्ट हदखाई देनेवाली पवरे्षता यि िै कक उसमें बिुत अधधक मात्रा में जादू–टोना आहद इन्द्रजाल भरा िै। इन मन्त्रों का उच्चारण कभी साधक (फल-प्रात्प्त का अमभलाषी) करता िै और

---

214 यहद इस प्रकार का पवचार बराबर था तो इसमलए था कक इसमें समय का कुछ अंर् अवश्य था। 2. आधुतनक मनोपवज्ञान सम्मोिन की र्त्तत को इस रूप में माननेलगा िै कक यि रीर की व्याधधयों की एक धचककमसा, पवरे्षरूप से स्नायपवक पवकारों में।

215 'वेहदक इंडया', पृष्ठ 117-118।

कभी मसद्धपुरुष या जादू ूकरनेवाला ओझा करता ि। मन्त्रों का प्रयोग नाना प्रकार के उद्देश्यों की प्रात्प्त के मलए ककया जाता ि।... ऐसे भी सूतत िैं त्जनमें ककसी एक प्रकक्रया अथवा संस्कार का बिुत ऊंचा उि हदया गया िै और उसका मित्त्व ऋग्वेद के पावमान सूततों में हदए गए सोम के समान बतलाया गया ि। दूसूरे सूतूतों को, जो कल्पना एवं ममथ्या- पवश्वासपरक िैं, सूततों में गौण रूप हदया गया ि। ककन्तु तो भी ऐसे सूततों की संख्या बिुत अधधक निीं ि, जैसी कक इस बात को ध्यान में रखते िुए कक आहदम वेद के परवती काल में हिन्दूधम शका ककतना अधधक पवकास िुआ, स्वभावतः आर्ा की जा सकती थी। मुख्यतः ऐसा प्रतीत िोता ि कक अथववेशद केवल पुरोहितों का धम शन िोकर जनसाधारण में प्रचमलत धम शके रूप में ि; वैहदक काल से आधुतनक काल में संक्रमण के समय वि एक प्रकार के मध्यम माग शके रूप में था और उच्च आदर् शवाले ब्राह्मणों की अपेक्षा अमर्क्षक्षत साधारण जनता का धम शथा, त्जसमें मूततपूशजक और ममथ्यावादी िी अधधक थे।"[216] पवरुद्ध वैहदकधम शका स्थान जादू–टोना वाले, बच्चों के समान जादूगूरों में ममथ्या पवश्वास रखने वाले और जादूपूवद्या के ऊपर अधधक भरोसा करने ेवाले धाममकश सम्प्रदाय ने ले मलया। ऐसे धचककमसक को जो प्रेेताममाओं को भगाना और उन्िें वर् में करना जानता ि, अमयधधक प्रततष्ठा प्राप्त थी। िम ऐसे तपत्स्वयों के पवषय में सुनते िैं जो तप के द्वारा प्राकृततक र्त्ततयों को वर् में कर सकते थे। वे ेतपस्या द्वारा प्राकृततक तत्त्वों की र्त्तत को तनयंबत्रत कर सकतेथे। यि बात उस समय भली प्रकार पवहदत थी कक र्ारीररक तनयन्त्रण एवंइत्न्द्रय-दमन द्वारा समाधध- अवस्था, जो योगर्ास्त्रवणणतश एक मसद्धध ि, प्राप्त की जा सकती ि। मनुष्य प्राकृततक जादू ूके गुप्त बल द्वारा दैवीय र्त्तत में भागीदार बन सकता ि। जादूपूवद्या के पवर्ेषेज्ञों को वैहदक ऋपष भी स्वीकार करते थे ेऔर उनका पेर्ा सम्मान की दृत्ष्ट से देखा जाता था, त्जसके पररणामस्वरूप जादूपूवद्या एवं रिस्यवाद र्ीघ्र िी समानाथकश सगझे ेजाने लगे। िम ऐसे लोगों को पातेिैं जो पंचात्ग्न में बैिे िैं, एक टांग पर खड़े िैं, मसर के ऊपर एक बांि उिाए िुए िैं और यि सब वे ेप्राकृततक र्त्ततयों को वर् में करने ेके इरादे से और देवताओं को अपनी इच्छा के अधीन करनेके मलए करते िैं।

जिां ंएक ओर अथववेशद िमें भारत के ममथ्या पवश्वासों में फैले िुए दैमय पवज्ञान का पवचार देता ि, यि कई पवषयों में ऋग्वेद से भी आगे बढ़ा िुआ प्रतीत िोता ि, और कई तत्त्व उसमें एवं ंउपतनषदों और ब्राह्मणों में एक समान िैं। िमें उसमें काल, काम एवं स्कम्भ (आश्रय) की पूजा का पवधान ममलता ि। उन सबमें अधधक मित्त्वपूण शस्कम्भ ि। वि एक परम तत्त्व ि, त्जसे अव्यवत्स्थत रूप में प्रजापतत, पुरुष और ब्रह्म का नाम हदया जाता ि। इसके अन्तगतश समस्त देर् और काल, देवता और वेद तथा नैततक र्त्ततयांआती िैं।'[217] रुद्र पर्ुओं का अधधपतत ि और वैहदक धम शएवं ंपरवती मर्वपूजा के बीच की कड़ी के रूप में ि। ऋग्वेद में मर्व का अथ शकेवल कल्याणकारी ि, ककन्तु ककसी देवता का नाम निीं ंि; ऋग्वेद का रुद्र दुष्ट पर्ुओंका पवनार्कारी देवता ि ।"[218] अथववेशद में वि सब पर्ुओंका अधधपतत पर्ुपतत ि। प्राण का स्वागत प्रकृतत के जीवनप्रद तत्त्व के रूप में ककया

---

216 प्रोसीडडंग्स आफअमेररकनओररएंटल सोसाइटी ', 3 पृष्ि 307-308।

217 देखें, 10: 7,7, 13,17

218 ऋग्वेद, 4/3, 6 ;1:114,10 ।

गया ि।'[219] मित्त्वपूण शर्त्तयों के मसद्धान्त का, त्जसका परवती भारतीय आध्यात्ममक पवद्या में स्थान-स्थान पर वणनश आता ि, सबसे पूव शयिीं ंवणनश ममलता ि और सम्भवतः यि ऋग्वेद के वायुतत्त्व का पवकास िो सकता ि। यों तो ऋग्वेद-प्रततपाहदत देवता पुरुष एवं स्त्री दोनों मलंगं के पाए जाते िैं, लेककन पुल्लंगवाची देवता अधधक मुख्य िैं। अथववेशद में स्त्रीमलंगंवाची देवताओं पर अधधक बल हदया गया ि। इसमें आश्चय शकी बात निीं ंि, तियोंकक तांबत्रक दर्नश के दार्तशनक ग्रन्थों में यौनपवषय आधार बन गया ि। 'गाय' की पपवत्रता को स्वीकार ककया गया ि, और ब्रिालोक का वणनश भी अथववेशद में ममलता ि।220 नरक का वणनश नरक नाम से िी ककया गया ि। अपनेसम्पूण शभय-त्रास और शारीररक यन्त्रणाओं221 के साथ नरक पयाप्शत मात्रा में सुपुररधचत ि।

अथववेशद के जादूपूवद्यापवषयक भाग पर भी आयों का प्रभाव पड़ा ि। यहद जादूपूवद्या को स्वीकार करना िी ि तो अगला उत्तम काय शउसे पररष्कृत कर लेना ि। बुरे जादू ूकी तनन्दा की गई ि और उत्तम जादू ूको प्रोमसािन हदया गया ि। बिुत-से इन्द्रजाल पाररवाररक एवंग्रामीण जीवन में समानता लाने ेमें सिायक मसद्ध िुए िैं। बबरश और रततरंत्जत यज्ञ तनपषद्ध ठिराए गए िैं, जो आज भी भारत के उन भागों में जिां ंआयसशभ्यता निीं ंपिुंच सकी, प्रचमलत िैं। अथववेशद की पुरानी संज्ञा, "अथवाङ्शधगरसः', यि प्रकट करती ि कक इसके अन्दर दो मभन्न-मभन्न स्तर थे। एक अथवन्श ्का और दूसूरा अंङ्धगरस का। पिले भाग में कल्याणकारी पवधधयों का वणनश ि, त्जनका उपयोग रोगों की धचककमसा के मलए िोता था।222 उसके पवरोधी पवधानों का वणनश अंधगरस में ि। पिला धचककमसा-परक ि और दूसूरे में जादू–टोना आहद का पवधान ि, और इस प्रकार इस वेद में दोनों की िी णखचड़ी ि।

अथववेशद को, जो बिुत प्रकार के समझौते या समन्वय का पररणाम ि, ऐसा प्रतीत िोता ि कक वेद की कोहट में मान्यता प्राप्त करने ेके मलए कई प्रकार के संकटों में से गुजरना पड़ा ि।'[223] इसका मुख्य पवषय मंत्र-तंत्र िोने ेके कारण इसे अनादर की दृत्ष्ट से देखा जाता था। इसनेभारत में तनरार्ावादी दृत्ष्टकोण के पवकास में बिुत बड़ा काम ककया। मनुष्य र्ैतान और प्रलोभक में पवश्वास भी करें और कफर भी जीवन में सुखु प्राप्त कर सकें, यि निीं िो सकता। इस प्रकार दैमयों को तनकट देखकर मनुष्य जीवन से भयभीत िो जाता ि। अथववेशद के प्रतत न्याय करनेके पवचार से यि स्वीकार करना पड़ेगा कक इसनेभारत में वैज्ञातनक पवकास के मलए माग शतैयार ककया।

3. यजुवेुद और ब्राह्मणग्रन्थ

219 अथववेशद, 10:7।

220 19: 71, 1।

221 12/4 ,36 ।

222 भेषजतन, अथववेशद, 11/6,14।

223 अनेक धमर्शास्त्रों में तीन वेदों का वणनश ममलता ि, ऋग्वेद 10: 90, 9; 5:7, 1; तैपत्तरीयोपतनषद् 2 : 2-3। बौद्धों के प्रामाणणक ग्रंथों में अथववेशद का नाम निीं ंि। पीछे जाकर अथववेशद को भी वेद की मान्यता प्राप्त िो गई।

धचन्तन के इततिास में रचनाममक और आलोचनाममक युग क्रमर्ः एक-दूसूरे के पश्चात् ्आते िैं। इसी प्रकार धमों के इततिास में सम्पन्नता और उज्जज्जवलता के युग के पीछे र्ुष्कता एवं कृबत्रमता का काल आता िै। जैसे िी िम ऋग्वेद से यजुवेद, और सामवेद एवं ब्राह्मणों की ओर आते िैं, िमें वातावरण में पररवतनश हदखाई देनेलगता िै। जिां ंएक ओर पिले में नवीनता व सादगी थी, विांबाद के ग्रन्थों में रूखापन एवं कृबत्रमता प्रतीत िोती िै। धम शकी भावना तो पीछे रि गई, और उसके बाह्य रूप अधधक मित्त्व पक़ गए। प्राथनशा- पुस्तकों की आवश्यकता अनुभव िोने ेलगी। प्राथनशा-मल्न्दरों की स्थापना िोनेलगीं। ऋग्वेद से मंत्र तनकाल-तनकालकर यज्ञपरक आवश्यकताओंके अनुकूल बनाने में उनका उपयोग िोनेलगा। पुरोहित िी र्ासक (प्रभु) बन गया। यज्ञ वेदी तैयार करने ेके मलए भी यजुवेद में से पवर्ेष मन्त्र चुने ेगए और यज्ञ के समय गान के मलए सामवेद से मंत्र मलए गए। इन वेदों के पवषय में िम ब्राह्मणग्रन्थों के साथ-साथ पववेचना करेंगे, तयोंकक ये सब यज्ञर्ाला व प्राथनशामल्न्दरों का वणनश करते िैं। यजुवेद प्रततपाहदत धम शएक यांबत्रक पुरोहितवाद के रूप में िै। पुरोहितों की एक जमात ब्राह्य कक्रया-कलापों की एक पवस्तृत एवं जहटल पद्धतत का संचालन करती िै, और इन कक्रया कलापों को प्रतीकाममक मित्त्व प्रदान ककया गया और उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म अंर् को भी साथ-साथ वैसा िी मित्त्व हदया गया। जिां ंकक्रया-कलाप और यज्ञ आहद का वातावरण धम शकी वास्तपवक भावना को दबानेके मलए मसर उिा रिे िों विांधाममकश भावना जीपवत निीं ंरि सकती। अतः इस काल में आदर् शके प्रतत आस्था और पाप के प्रतत सचेत रिने ेका भाव देखने को निीं ंममलता। िर एक प्राथनशा एक पवर्ेष कक्रयापरक िै और उसका लक्ष्य भी ककसी भौततक लाभ की प्राल्प्त िै। यजुवेद के मन्त्रों में जीवनोपयोगी वस्तुओंके मलए तुच्छ-तुच्छ प्राथनशाओं की पवषादमय पुनरावृपृत्त िी िै। िम ऋग्वेद के सूततों एवंअन्य वेद और ब्राह्मणों के काल में कोई स्पष्ट पवभेदक रेखा निींखींच सकते, तयोंकक परवती वेदों एवं ंब्राह्मणों के समय में जो प्रवृपृत्तयों सुव्यतत रूप में दृल्ष्टगोचर िोती िैं वे ऋग्वेद के सूतत-तनमाणश काल में भी वतमशान थीं। िम कुछ अधधक तनश्चय के साथ कि सकतिैं कक ऋग्वेद के सूततों का अधधकतर समिू ब्राह्मणग्रन्थों की रचना के समय से पूव शसंगिृीत िो चुका था।

4. धमपशवद्या

ब्राह्मणग्रंथ, जो वेदों के दूसूरे भाग िैं, कक्रया-कलापों का पवधान करने ेवाली वे पाठ्य- पुस्तकें िैं ल्जनका मुख्य काय शयज्ञ-सम्बन्धी जहटल संस्कारपवधधयों में पुरोहितों का पथप्रदर्नश करना िै। उनमें से प्रधान ऐतरेय और र्तपथ िैं। ब्यौरे के पवषय में व्याख्या सम्बन्धी मतभेद के कारण ब्राह्मणों के पवमभन्न सम्प्रदाय बन गए। इस युग की पवर्ेषता यि िै कक धाममकश पवकास में कुछेक ऐसे मित्त्वपूण शपररवतनश िुए ल्जन्िोंने ेस्थायी रूप से इसके भावी इततिास पर असर डाला। यज्ञों के अनुष्िान के ऊपर बल देना, जात-पांत और आश्रम-व्यवस्था को मानना, वेद की तनमयता में पवश्वास, पुरोहित को सवोच्च पद देना ये सब बातें इसी युग की देन िै।

मि इस युग में पिले की वैहदक देव-माला में जो नये-नये देवता जो़ ेगए उनसे प्रारम्भ कर सकतिैं। यजुवेद में पवष्णु ने मित्त्व का स्थान प्राप्त ककया। र्तपथ ब्राह्मण ने उसे यज्ञ का मूतरूशप प्रदान ककया िै।'[224] इसमें नारायण का नाम भी आता िै, यद्यपप केवल तैपत्तरीय आरण्यक में िी नारायण और पवष्णु का एक साथ सम्बन्ध जो़ा गया िै। मर्व भी प्रकट िोता िै, और कौषीतकक ब्राह्मण में मभन्न-मभन्न नाम से उसका वणनश आया िै।225 रुद्र यिां ंदयालु ुरूप में आता िै और उसे धगरीर्'[226] नाम से पुकारा गया िै। ऋग्वेद का प्रजापतत मुख्य देवता और पवश्व का तनमातशा बन जाता िै। पवश्वकमाश के साथ उसकी समानता िै।'[227] अद्वैतवाद को मत्स्तष्क में बैा हदया गया िै। अत्ग्न बिुत मित्त्वपूण शिै। 'ब्रह्मणस्पतत', जो प्राथनशा का ईश्वर िै, सूततों का नेता और संस्कारों का संयोजक बनता िै। ऋग्वेद में 'ब्राह्मण' से तामपय शएक सूतत अथवा ऐसी प्राथनशा से िै जो परमेश्वर को संबोधधत करके की गई िो। वि उस आममतनष् र्त्तत से जो एक ऋपष को प्राथनशा तैयार करने ेमें सिायक का काम करती थी, बदलकर उस वस्तु के मलए प्रयुतत िोनेलग गया त्जसकी प्रात्प्त के मलए प्राथनशा की जाती थी। वैहदक प्राथनशा का तनममत्त कारण न िोकर अब इसका तामपय शयज्ञ की र्त्तत िो गया। और चूंकक ब्राह्मणों में समस्त ब्रह्माण्ड की यज्ञ से उमपपत्त बताई गई िै इसमलए ब्रह्म से ब्रह्माण्ड के सृजृनाममक तत्त्व का तामपय शमलया जानेलगा।'[228]

ब्राह्मणग्रन्थों का धम शपवर्द्ुधरूप से औपचाररक था। कपवयों का जोर् और वैहदक सूततों की िाहदशकता (तनष्कपटता) अब उपलब्ध निीं ंिोती। प्राथनशा से अमभप्राय अब केवल मन्त्रों का मन tilde 7 जाप अथवा पपवत्र सूततों का उच्चारण मात्र िी रि गया। परमाममा को कम शमें प्रवृतूत करने ेके मलए, ऊंचेस्वर से प्राथनशा करना आवश्यक समझा गया। र्ब्द कृबत्रम ध्वतनमात्र रि गए, त्जनमें गूढ़ र्त्तत थी। पुरोहित के मसवा कोई व्यत्तत इस सबके रिस्य को निींसमझ सकता था और पुरोहित अपनेको इस पृथ्वी पर ईश्वर के रूप में प्रकट िोने का दावा करता था। एकमात्र मित्त्वाकांक्षा यि थी कक िम भी देवताओं की भांतत अमर िो जाएं त्जन्िोंनेयज्ञों द्वारा वि पद प्राप्त ककया था ।"[229] सब कुछ यज्ञों के प्रभाव के अधीन िै। यज्ञों के बबना सूय शउदय निीं ंिोगा। यहद िम सौ अश्वमेधयज्ञ कर लेंगे तो िम स्वग शके इन्द्र का भी स्थान ले सकतिैं। यज्ञ के देवता प्रसन्न िोतिै और मनुष्य लाभ प्राप्त करते िैं। उनके द्वारा देवता मनुष्य के ममत्र बन जाते िैं। साधारण तौर से यज्ञ ककए जाते थे े सांसाररक लाभ-प्रात्प्त के मलए, स्वगीय सुख की प्रात्प्त के मलए निीं। वेदों के सीधे-सादे भत्ततपरक धम शका स्थान एक ऐसे किोर और आममा को तनत्ष्क्रय बना देनेवाले वणणक्-सम्प्रदाय ने ले मलया त्जसका आधार

224 5/2, 3, 6/5 / 4, 5, 1; 12/4, 1, 4; 14/1, 1, 1, 6 , और 15।

225 .6:1-9।

226 देणखए तैपत्तरीय संहिता, 45, 1; वाजसनेयी संहिता, 9।

227 र्तपथ ब्राह्मण, : 2 ,1, 10; 8: 2, 3, 13।

228 ऐसे अनेकों वातय ब्राह्मण र्ब्द इन अथों में प्रयुतत िुआ िै। "वास्तव में प्रारम्भ में यि पवश्व ब्रह्म िी थाइसने , देवताओं ंका तनमाणश ककया।" (र्तपथ ब्राह्मण 11 : 2, 3, 1; और भी देणखए 10: 6, 3, और छान्दोग्य उपतनषद्: 14 1)

229 र्तपथ ब्राह्मण, 3/1 1,493, ऐतरेय ब्राह्मण, 2/1 1 ।

 अनुबन्ध के रूप में एक उद्देश्यमसद्धध था।'[230] वैहदक मन्त्रों में यज्ञ नाममात्र को प्राथनशा के रूप थे,े त्जन्िें
समयधम शसमझा जाता था ककन्तु अब उन्िोंने मुख्य स्थान ग्रिण कर मलया था। यज्ञ के कमकशाण्ड में ककया गया प्रमयेक कम शऔर उच्चारण ककया गया प्रमयेक र्ब्द मित्त्व रखता था। ब्राह्मणों का धम शप्रतीकाममक जहटलताओं से लद गया और अन्त में आकर आमम-र्ून्य तनरथकश कक्रया-कलापों और पात्ण्डमयामभमानी लौकककता में खो गया।

यज्ञ की भावना के बढ़ते िुए आधधपमय ने पुरोहितों की मयादशा को समाज में ऊंचा उिा देनेमें सियता की। वैहदक सूततों का द्रष्टा एवं ेदैवीय प्रेरणा से प्रेररत िोकर समय का गान करने ेवाला ऋपष दैवीय धम शपुस्तक का धारण करनेवाला और जादू ूमंत्रों को दौडराने वाला मात्र बन गया। मभन्न-मभन्न पेर्ों के कारण आय शलोगों में साधारणरूप से जो तीन पवभाग बनेथे ेउन्िोंने ेवंर्परम्परागत पैतृक पेर्ों का रूप धारण कर मलया। यज्ञ-सम्बन्धी कमकशाण्ड का जो उच्च श्रेणी का कलापूण शरूप बन गया था उसके अनुरूप पुरोहित पद के मलए पवर्ेष प्रमर्क्षण की आवश्यकता थी। पपतृर्ूामसत परररवार का मुत्ख्या यज्ञाममक कमकशाण्डों की जहटल ककन्तुसूक्ष्म पद्धतत का और अधधक संचालन निीं ेकर सकता था। इसमलए पौरोहिमय एक पेर्ा बन गया और यि वंर्-परम्परागत पैतृक व्यवसाय िो गया। पुरोहित लोग, त्जनके पास वेदपवद्या का ज्ञान था, मनुष्यों और देवताओं

के बीच थे त्जनसे अधधकारप्राप्त मध्यस्य एवं ेदैवीय कृपा की र्दत्ष्ट करने ेवाले बन गए। वजमान, अथात् यज्ञ ककया जाता िै, अलग रिता िै। वि स्वयंएक तनत्ष्क्रय साधक के रूप में िै, त्जसका काय शकेवल मनुष्यों, धन एवं अन्य यज्ञ-सामग्री को जुटा देना मात्र िै; र्ेष सब काम उसकी ओर से पुरोहित करता िै। स्वाथ,श र्त्तत, प्रततष्िा और सुख की प्रात्प्त की प्रबल अमभलाषा ने बलपूवकश घुसकर यज्ञों के मौमलक आदर् शकी कात्न्त को मन्द कर हदया। जनसाधारण को यज्ञों के मित्त्व के पवषय में िगने के मलए प्रयमन ककए गए। पुरोहित के पद एवं यज्ञों पर एकाधधकार िो गया। असंख्य प्रकार के प्रतीकों के पवकास द्वारा इस एकाधधकार की मभपत्त को और भी सुर्दढ़ बना मलया गया। त्जस भाषा का प्रयोग ककया गया वि ऐसी थी जैसे कक वि िमें अपनेपवचारों को तछपाने के मलए दी गई िो। वस्तुओं के गूढ़ अथों को केवल पुरोहित िी जान सकते थे। इस प्रकार यहद पुरोहितों ने अपने को देवताओं के समान पूज्जय बननेका दावा ककया तो इसमें कुछ आश्चय शकी बात निीं। "यथाथ शमें देवता दो श्रेणी के िैं। देवता तो अपने-आप में देवता िैं िी, और उनके बाद पुरोहितजन भी मनुष्य रूपी देवता िैं त्जन्िोंने वैहदक ज्ञान (पवद्या) का अध्ययन ककया िै, और जो उसका अध्यापन करते िैं।"[231]

िमें जिां–तिांऐसे पुरोहित ममलते िैं जो गम्भीरतापूवकश यि घोषणा करते पाए जाते िैं कक वे अपने यजमानों की मृमयु भी बुला सकतेिैं, यद्यपप वे इस बात का नैततक ज्ञान रखते िैं कक इस प्रकार का काय श तनपषद्ध िै। एक अन्य पररत्स्थतत भी, त्जसने पुरोहित वग शकी त्स्थतत को और भी मित्त्वपूण शबना हदया, यि थी कक उन वेदों की रक्षा करने ेका भार भी त्जन्िें आय शलोग अपनेसाथ लाए थे ेउनके ऊपर था, और जैसा कक िम

230 "वि देवताओंको यज्ञ द्वारा इस मन्त्र से अपणश करता िै - तू मुझेदे और म ैंतुझेदूंगा। तू मुझे ेअपपतश कर, म ैंतुझे अपपतश करूंगा।" (वाजसनेयी सहिता 3: 50, और भी देणखए, र्तपथ ब्राह्मण, 2/5, 3, 19)

231 . र्तपय ब्राह्मण, 2 2, 2, 6; 2:4, 3, 14 |.

 अन्त में देखेंगे कक जनता के हृदय में वेदों की पपवत्रता का भाव बढ़ रिा था। वेदों की रक्षा भार को ब्राह्मणवग शके

सुपुदश ककया गया था यहद वेदों को जीपवत रखना िै तो ब्रााण को अपने पेर्े के प्रतत ईमानदार िोना आवश्यक िै।

तदनुसार उसनेअपनेऊपर कुछ किोर 'प्रततबन्ध' लगाए। "ऐसे ब्राह्मण को, त्जसने पपवत्र वेद का अध्ययन निीं ककया, आग पर रखी िुई सूखी घास की भांतत क्षणमात्र में नष्ट कर देना चाहिए।"[232] ब्राह्मण को उधचत िै कक वि सांसाररक मान- प्रततष्िा को पवष के समान समझकर छो़ दे। ब्रह्मचारी अथवा पवद्याथी अवस्था में उसे अपनी

वासनाओं को वर् में रखना चाहिए, अपने गुरु के पास रिकर भोजन के मलए ममक्षावृपृत्त करनी चाहिए, गृिस्थी िोने पर उसे धन-संग्रि का पवचार छो़ देना चाहिए, समय बोलना एवंधाममकश जीवन बबताना चाहिए, और अपने मन एवं र्रीर से पपवत्र रिना चाहिए। ब्राह्मणों ने अनुभव ककया कक जो काय शउनके सुपुदश ककया गया िै उसे उर्न्ें ईमानदारी के साथ तनभाना चाहिए। यि किने की आवश्कता निींकक त्जस प्रकार इस देर् के ब्राह्मणों ने इततिास की प्रमयेक भयानक दुघुटशनाओं के बीच वैहदक परम्परा को सुरक्षक्षत रखा वि अद्भुत िै। आज भी िमें भारतीय नगरों में वैहदक ज्ञान के ये भण्डार चलते-कफरतेर्दत्ष्टगोचर िोते िैं। परवती काल के जो किोर बन्धन देखने में आते िैं वे ऐततिामसक घटनाओंके कारण िैं। ब्राह्मणग्रन्थों के काल में द्पवजन्मा (द्पवज) आयों में परस्पर कुछ अधधक भेद-भाव निीं था। उन सबको वैहदक ज्ञान प्राप्त करने का अधधकार प्राप्त था।"[233] "यज्ञ स्वग शकी ओर तैरतेिुए एक जि़ाज़ के समान िै। यहद एक भी पुरोहित उसमें पापी िोगा तो वि एक पापी पुरोहित िी अपनेकारण उस जि़ाज़ को डुबो देगा।"[234] इस प्रकार नैततकता को एकदम िी असम्बद्ध मानकर छो़ निीं हदया गया था। ब्राह्मण पुरोहित न तो दुश्चररत्र थे और न िी ज़मतत। उर्न्ें अपनेकतव्शयपालन का ध्यान था और स्वयं सच्चररत्र भी थे, त्जसका उपदेर् वे अन्यों को भी देनेका प्रयमन करते थे। वे नेकनीयत, सरलधचत्त व्यत्तत थेजो तनयमों का पालन करते थे, और अपनी योग्यता के अनुसार सब संस्कारों को भी करते थे और मान्य परम्पराओं एवं मसद्धान्तों की रक्षा भी करते थे। वे अपनेपेर्े का पूरा ज्ञान रखते थे और अपनेकतव्शयों

को रुधच एवंश्रद्धा के साथ तनभातेथे। उर्न्िोंने तनयमों की पररष्कृत संकेतावली का तनमाणश ककया, त्जससे प्रकट िोता िै कक उर्न्ें पवद्या के प्रतत और मनुष्य जातत के प्रतत भी अनुराग था। यहद उर्न्िोंनेकिीं भूल की तो उसका कारण यि था कक वे परम्परा की श्रृंखला से पववर् थे। वे सदार्य और र्ुद्धाममा पुरुष थे, भले िी उनके अन्दर

कुछ अमभमान भी रिा िो। उर्न्ें संस्कृतत की अपनी पुरातन पररभाषा में

धारणाओं ने उनके पवचार को बेकार कर हदया। तो भी यि कोई निींकि सकता कक अपनी संस्कृतत एवंसभ्यता के प्रतत उनका अमभमान अनुधचत था, जबकक उनके पास-पो़स का सारा संसार बबररशता में डूबा िुआ था, और

---

232 तैपत्तरीय संहिता, । : 6, 10, 4; और ऐतरेय ब्राह्मण, 2: 21, 2।

233 मनु किते िैं, "एक ऐसा द्पवज-ब्राह्मण, क्षबत्रय या वैश्य पवना वेदाध्ययन के र्ीघ्र िी इसी जन्म में 2. पततत िोकर र्ूद्रकोहट में आ जाता िै।" मिाभारत में िम पढ़ते िैं, "वानप्रस्थ आश्रम का पवधान अथाशत् वनों में रिकर फलों, कन्दों और वायु पर िी तनवाश करने वाले सन्तों का पवधान तीनों द्पवजवणों के मलए िै, जबकक गृिस्थाश्रम का पवधान सब वणों के मलए िै।"

234 र्तपथ ब्रााण, 4/2, 5, 10

उसके अन्य िारों ककशर् और अमयाचारी अवयवों ने उन्िें उतेतत भावना को प्रकट करने के मलए प्रोमसाहित ककया था।

स्वभाव से िी पेरे् के रूप में पुरोहिताई िमेर्ा अनैततकता की ओर ले जानेवाली िोती िै। ककन्तुयि सोचनेका कोई कारण निीं िै कक भारत का ब्राह्मण अन्य देर् के पुरोहितों से अपेक्षाकृत अधधक हदखावटी या दम्भी था। सच्चे ब्राह्मणों ने उस युग में भी गम्भीर, र्ान्त एवं दैवीय प्ेरेरणा से प्ेरेररत िोकर सम्भापवत अवनतत के प्रतत पवरोधी वततव्य हदए थे। उन्िोंनेस्वाथी पुरोहितों की आममश्लाघा और दम्भ के पवरुद्ध पवद्रोि ककया और फैले िुए भ्रष्टाचार के प्रतत संकोचवर् लज्जजा भी प्रकट की। पुरोहिताई की पववेचना करते समय िमें इस बात का स्मरण करना आवश्यक िै कक गृिस्थ के कतव्शयों का उन्िोंने ख्याल रखा; और दूसूरे आश्रमों में, अथात्श ् वानप्रस्थाश्रम और सन्यास में, उन कक्रयाककलापों का कोई बन्धन निींरखा। ब्राह्मणों के र्ासन को यहद अमयाचारी और उमपीड़नर्ील समझा गया िोता तो वि हटक निीं सकता था। पवचारर्ील पुरुषों का उस र्ासन में पवश्वास था, तयोंकक इसका आग्रि केवल इतना था कक प्रमयेक को अपनेसामात्जक कतव्शय का पालन करना चाहिए।

उत्तरकालीन दर्नशयुग में िमें वेदप्रमाण अथवा र्ब्दप्रमाण के पवषय में बिुत कुछ् सुनने को ममलता िै। दर्नशों के अन्दर सनातन एवं अवाचशीन का भेद ककया जाता िै, अधधकतर इस दृत्ष्ट से कक वे वेद के प्रामाण्य को स्वीकार करते िैं या उसका तनषेध करते िैं। वेद को ईश्वरीय ज्ञान समझा जाता िै। यद्यपप परवती समय के हिन्दू सुधारकों ने वेदों के प्रामाण्य के समथनश में प्रततभासम्पन्न व्याख्याएं प्रस्तुत की िैं, तो भी जिां तक वैहदक ऋपषयों का सम्बन्ध िै, वे वेदों को उच्चतम समय के रूप में देखते िैं, त्जनका प्रकार् ईश्वर की ओर से पवर्ुद्ध आममाओं के अन्दर ककया गया। "सौभाग्यर्ाली िैं वे जो हृदय में पपवत्र िैं, तयोंकक ऐसे िी पुरुष ईश्वर का प्रमयक्ष ज्ञान प्राप्त कर सकतेिैं। "वैहदक सूततों के ऋपष अपने को उनका रचतयता न मानकर द्रष्टा किते िैं।'[235] यि मानमसक चक्षुअथवा आभ्यन्तर दृत्ष्ट द्वारा देखना िै। ऋपषयों की दृत्ष्ट वासनाओंके वाष्प से ममलन निीं िोती, इसमलए वे उस समय को देख सकतेिैं जो साधारणतः इन चमचशक्षुओंद्वारा निीं देखा जा सकता।236 ऋपषयों का काय शउस समय को दूसूरों तक पिुंचाना िै त्जसका उन्िोंनेदर्नश ककया। वे समय के तनमातशा निीं िैं। वेदों को श्रुतत नाम हदया गया िै, अथात्श ्अनन्त के छन्दों की वि ध्वतन जो आममा द्वारा सुनी गई िै। दृत्ष्ट और श्रुतत, जो हक वैहदकों ... द्वारा प्रत्यक्ष ककया जानेवाला पवषय निीं, बत्ल्क आममा की अन्तर्दृत्ष्ट का पवषय िै। कपव की आममा ने सुना अथवा दैवीय भावनायुतत अवस्था में उसके मन में इसका प्रकार् िुआ जबकक मन तकशपूण शएवं अत्स्थर चेतना की संकीण शसतति से ऊपर उिता िै। वैहदक ऋपषयों के मतानुसार, वैहदक सूततों के पवषय दैवीय प्ेरेरणा के पररणामस्वरूप िैं और केवल इन्िीं अथों में वे वैहदक सन्देर् अथात्श ्ईश्वरीय ज्ञान िैं। ऋपषयों का आर्य वेदों को चममकाररक एवंअलौककक बतलाने से निीं िै। कुछेक मन्त्रों

235 'वेद' र्ब्द आयजशातत की धातु 'पवद्' से तनकला िै, त्जसका अथ शि 'देखना'। इसकी तुलना इनसे कीत्जए: अंग्रेज़ी 'पवज़न' (लैहटन 'पवदेओ' से), 'आइडडयाज' (ग्रीक 'इदो' से), 'पवट'

236 वीयोवन किता िै, "यि सब कलापूण शरचना ईश्वर से िी आती िै और इसका सम्बन्ध मनुष्य िी से िै, तयोंकक यि दैवीय कक्रया को अपने अन्दर देखता िै।"

को वे अपने बनाए िुए भी बतलाते िैं। वे उन मन्त्रों के कपव के रूप में और उन्िीं ंअथों में कताश िैं त्जन अथों में, बढ़ई, जुलािा अथवा नापवक िोतेिैं237 और उनकी प्राकृततक व्याख्या करते िैं। वैहदक सूततों को मानवीय हृदय

के भावों नेिी रूप हदया िै।238 कभी-कभी वे यि भी किते िैं कक उन्िोंनेसूततों को ढूंढ तनकाला िै, अथाशत् ्उनका तनमाणश निींककया।"[239] उनका किना यि भी िै कक सोमपान करनेके पश्चात् ्हृदय में जो स्फूतत शिुई उसके ये पररणाम िैं।240 बिुत िी पवनम्र भाव से वे वैहदक सूततों को ईश्वरप्रदत्त स्वीकार करते िैं।'[241] दैवीय प्ेरेरणा का भाव अभी भी तनदोष ईश्वरीय ज्ञान के रूप में पररवततततश निीं ंिुआ िै।

जब भी िम ब्राह्मणों की ओर आते िैं तो िम ऐसे काल में पिुंच जाते िैं जबकक वेदों की दैवीय प्रामाणणकता को स्वतःमसद्ध समय के रूप में स्वीकार कर मलया गया िै।'[242] वेदों के दैवीय सन्देर् िोने ेका दावा और इसीमलए उनकी तनमयरूप में समयता इसी काल में मानी जानेलगी। वेद के उद्गम को बुद्धध द्वारा समझना आसान िै। लेखनकला उस काल में अज्ञात थी। उस समय न तो छापने ेवाले थे ेऔर न पुस्तक-प्रकार्क िी थे। वेदों के पवषय गुरु- परम्परा से एक से दूसूरे तक पिुंचाए गए। वेदों के प्रतत जनता के मन में आदर का भाव उमपन्न िो, इसके मलए उनके साथ पपवत्रता का भाव जो़ हदया गया। ऋग्वेद में वाक्, वाणी, को एक देवी के रूप में किा गया। और कफर किा कक वाक् से वेद तनगतश िुए। इस प्रकार से वाक् वेदों की जननी िै।243 अथववेशद में किा िै कक मन्त्र में जादू ूकी र्तत िै। "वेद स्वयम्भू ईश्वर से श्वास के समान प्रकट िुए िैं।"[244] वेदों को ईश्वरीय ज्ञान माना जानेलगा जो ऋपषयों को हदया गया तयोंकक उन्िें दैवीय प्ेरेरणा िुई। ब्दद, अथात्श ्अमभव्यत्तत को तनमय माना गया िै। वेदों के पवषय में इस मत का प्रमयक्ष प्रभाव यि िुआ कक दर्नशर्ास्त्र मर्क्षा का एक पवषय िो गया। जब उच्चारण ककया गया वास्तपवक और जीपवत ब्दद एक तनयमबद्ध मन्त्र में ज़ हदया गया तो उसका भाव गायब िो गया। भारतीय पवचारधारा के इततिास में जो इतनेप्राचीन समय से वेद की प्रामाणणकता स्वीकार कर ली गई, उसका प्रभाव पीछे आने वाले समस्त पवकास पर पा़। परवती दर्नशर्ास्त्र में ऐसी एक प्रवृपृत्त उमपन्न िुई त्जससे क्रमपविीन एवं सदा िी प्राचीन समय के सन्दभों के साथ संगत न बैिनेवाले पाि की व्याख्या तनणीत मतों के आधार पर िी िोने लगी। जब एक पवर्ेष परम्परा एक बार पपवत्र एवं ंतनभ्रशन्त समझी जाने लगी तो यि तनत्श्चत था कक उसे प्रमयक्ष अथवा परोक्ष रूप से समव प्रकट करने ेका साधन भी

---

237 देखें, म्योर, 'संस्कृत टेतस्ट्स', खण्ड 3।

238 ऋृग्वेडद, 1/117, 2 ;2: , 35, 2।

239 10/67 1।

240 6/47, 3।

241 1: 37, 4; 3: 18, 31 म्योरकृत 'संस्कृत टेतस्ट्स' नामक पुस्तक के दूसूरे अध्याय में (खण्ड 3. पृषि् 217-86) िमें ऐसे वातयों का संग्रि ममलता िै जो स्पष्ट रूप से हदखलातेिैं कक "यद्यपप ऋपषयों म ेंकुछेक यि कल्पना करतेिुए प्रतीत िोते िैं कक उनमें दैवीय प्ेरेरणा से िी धाममकश भाव उमपन्न िोते िैं, साथ िी उन्िोंने सूतूतों को अपनी रचना अथवा अपने पूवजशों की रचना माना, दोनों में अवाचशीन एवं प्राचीन का भेद-मात्र ककया और यि भी किा कक ये वातय केवल यथाथ-शसत्ता की प्ेरेरणा से िी मलखे जा सकते ेथे।"

242 देखें, 'ऐतरेय ब्राह्मण', 7:9।

243 'वेदानां माता' । 'तैपत्तरीय ब्राह्मण', 2: 8, 8, 5। तुलना करें, सटें जॉन के गास्पल का प्रारम्भ : "प्रारम्भ में ब्दद िी था।"

244 'र्तपथ ब्राह्मण', 11: 5, 81 और आगे। और साथ में 'पुरुषसूतूत' भी।

 स्वीकार ककया जाए। यिी कारण था कक परस्पर पवमभन्न, पवरोधी एवं असंगत मतों और मसद्धान्तों के समथनश में उसी एक वेदे से मन्त्र प्रस्तुत ककए जानेलगे। यहद रूहढ़ के प्रतत भत्तत एवं ंमतों की पवपवधता को एक साथ रिना िै तो यि उसी अवस्था में सम्भव िो सकता िै जबकक मन्त्रों की व्याख्या के पवषय में पूरी स्वतन्त्रता दी गई िो। और इसी पवषय में भारतीय दार्तशनक ने अपनी मेधापवता का प्रदर्नश ककया िै। यि अवश्य िी आश्चय श का पवषय िै कक परम्परा के रितुिए भी भारतीय पवचारधारा अपने-आपको एक दीघकशाल तक साम्प्रदातयक दर्नश से अछूता रख सकी। भारतीय पवचारक पिले एक युत्तत- युतत मसद्धान्त की स्थापना करते िैं और तब उसके समथनश में प्राचीन ग्रन्थों के उपयुतत स्थलों को चुनते िैं। ये या तो बलपूवकश उन ग्रन्थों की संगतत अपने मसद्धान्त के समथनश में लगाते िैं या अन्यथा व्याख्या करते पाए जाते िैं। इस वैहदक प्रथा का एक अच्छा फल िुआ िै। इससे यिां ंका दार्तशनक ज्ञान यथाथ शएवं जीपवत रि सका िै। खोखले वाद-पववाद में एवं आध्यात्ममक पवषयों की ऐसी बिस में त्जसका जीवन के साथ कोई सीधा सम्बन्ध निीं िै, अपना समय नष्ट न करके भारतीय पवचारकों ने एक ऐसा दृढ़ आधार बना मलया त्जसके सिारे वे आगे बढ़ सकतेथे,े और वि उच्चश्रेणी के ऋपषयों का धाममकश अन्तर्दत्शष्ट द्वारा प्राप्त ककया िुआ ज्ञान था जो वेदों के रूप में अमभव्यतत िुआ था। इसनेउन्िें जीवन के मुख्य समयों पर आधधपमय प्रदान ककया, और कोई भी दर्नश इन समयों की उपेक्षा निीं ंकर सका।

5. सृतूष्ट-सम्बन्धी मसद्धान्त

सृतूष्ट की रचना के पवषय में त्जतनेमसद्धान्त िैं वे सब प्रायः ऋग्वेद का अनुसरण करते िैं, ककन्तुकुछ पवधचत्र कल्पनाएं भी इस पवषय में पाई जाती िैं। ऋग्वेद के पश्चामवती तैपत्तरीय ब्राह्मण में आता िै: "रुरू-रुरू में कुछ निींथा, न द्युलोक था, न पृथूवी िी थी।" कामना िी संसार hat Phi अत्स्तमव का बीजरूप िै। प्रजापतत सन्ततत की कामना करता िै और सृतूष्टरचना करता िै। "वस्तुतः सृतूष्ट के प्रारम्भ में केवल प्रजापतत िी पवद्यमान था। उसनेअपने अन्दर पवचार ककया कक म ैंकैसे अपना पवस्तार करूं। उसने किोर पररश्रम ककया और तप ककया। उसनेजीपवत प्राणणयों को उमपन्न ककया।"[245]

6. नीततर्ास्त्र

ब्राह्मण ग्रन्थों के धम शके प्रतत न्याय करने के पवचार से यि मानना पड़गो कक िमें उनमें स्थान-स्थान पर नैततक भावना और उन्नत मनोभाव ममलतेिैं। मनुष्य के कतव्शय का भाव सबसेपिले ब्राह्मणग्रन्थों में िी उहदत िोता िै। किा गया िै कक मनुष्य के ऊपर कुछ ऋण अथवा कतव्शय देवताओं, मनुष्यों एवं पर्ुजुगत् ्के प्रतत िैं। उन कतव्शयों को यों पवभतत ककया गया िै: (1) देवऋण (2) ऋपषऋण, (3) पपतृऋण, (4) मनुष्यों के प्रतत ऋण और (5) तनकृष्ट योतनयों के प्रतत ऋण। जो मनुष्य उतत सब प्रकार के ऋणों से उद्धार पा जाता िै, अथात्श ्सबके प्रतत अपने कतव्शयों का िीकिीक पालन करता िै, वि समपुरुष िै। अपनेदैतनक भोजन के अंर्ों को बबना देवों,

245 र्तपथ ब्राह्मण ,2/5,1,1 - 3 ।

पपतरों, अन्य मनुष्यों एवं ंपरु्-ुपक्षक्षयों को अपपतश ककए एवंबबना दैतनक प्राथनशा ककये कोई भी मनुष्य अन्न का स्पर् शनिीं कर सकता। अपने चारों ओर के जगत् ्के साथ समानता का व्यविार करते ि्ुए जीवनयापन करने ेका यिी सिी तरीका िै। जीवन एक प्रकार से कतव्शयों और उत्तरदातयमवों का चक्र िै। यि भाव तनत्श्चतरूप से ऊंचा और उदार िै, भले िी आदर् शका वास्तपवक पूरक कुछ भी िो। िम अपनी सब कक्रयाओंमें तनःस्वाथभशाव रख

सकत्िंसर्वािेशधाह्मोणमुसेंतसकीवसृतुओंकेमसाधन;आसा्

गया िै।246 देवभत्तत तनःसन्दिे पिला कतव्शय िै। यात्न्त्रक रूप में पवर्ेषे कक्रया-कलाप का पूरा कर लेना देवभत्तत निीं ंिै। देवभत्तत के मलए स्तुतत और र्ुभुकम शआवश्यक िै। देवभत्तत से तामपय शिै जिां ंतक भी सम्भव िो सके हदव्य गुणों को प्राप्त करने ेके मलए प्रयमन करना। समय बोलना देवभत्तत का एक अतनवाय शअंग िै। यि धाममकश एवं नैततक कतव्शय िै। अत्न व्रतों का स्वामी और वाक् भाषण का स्वामी िै। यहद व्यविार में समयाचरण न िोगा तो दोनों िी अप्रसन्न िो जाएंगे।247 यज्ञों की सांकेततक व्याख्याओंके पवषय में िम पिले मलख आए िैं। ऐसे भी वातय ममलतेिैं त्जनमें कमों की अतनवाय शतनष्फलता बतलाई गई । "परलोक को यज्ञ में दी गई आिुततयों के द्वारा निीं ंपिुंच सकते, न िी तपस्या से पिुंच सकतेिैं, यहद इसका ज्ञान न िो। वि अवस्था उसी को प्राप्त िोती िै त्जसे इसका ज्ञान िै।"[248] व्यमभचार को पाप के रूप में तनपषद्ध ठिराया गया िै। देवताओं के प्रतत, पवर्ेषतः वरुण देवता के प्रतत, यि पापकम शिै। प्रमयेक पापकम शमें पापकम शको स्वीकार कर लेनेसे अपराध में कमी िो जाती िै।249 तपस्या को भी एक उत्तम आदर् शमाना गया िै, तयोंकक देवों ने भी तपस्या के द्वारा िी देवमय को प्राप्त ककया, ऐसा समझा जाता िै।'[250]

आश्रमधम शका भी इसी काल में प्रवेर् िुआ, प्रमयुत यि किना अधधक उधचत िोगा कक आश्रमधम शका तनमाणश िी इस काल में िुआ।251 वैहदक आयों के जीवन के चार अवस्थान िैं। उनके नाम इस प्रकार िैं (1) ब्रह्मचारी, अथात्श ्पवद्याथी त्जससे यि आर्ा की जाती िै कक वि एक या एक से अधधक वेदों का अध्ययन करेगा; (2) गिृस्थ, त्जसे धमर्शास्त्रों में पवहित सामात्जक और यज्ञ-सम्बन्धी कतव्शयों का पालन करना िोता िै; (3) वानप्रस्थ, जो उपासक अपना समय उपवास एवं तपस्या में व्यतीत करता िै; और (4) सन्यासी, अथवा तपस्वी, त्जसका कोई एक तनत्श्चत स्थान निीं ंिोता, त्जसके पास कोई तनजी सम्पपत्त निीं ंिोती और त्जसकी तीव्र आकांर्ा ईश्वर के साथ संयोग प्राप्त करना िी िै। वेद के चारों भाग अथात्श ्संहिताभाग, ब्राह्मणग्रन्थ,

---

246 .15/7, 1, 1

247 "देव लोग एक िी तनयम का पालन करते िैं- समय।" *र्तपथ ब्राह्मण, 1 1, 1, 4; और भी देखें. 1:1, 1, 5, 3: 3, 2, 2, और 3 4, 2, 8, और 2: 2, 5, 19।

248 र्तपथ ब्राह्मण', 105, 4, 15।

249 र्तपथ ब्राह्मण', 2/5, 2 ,20 ।

250 'तैपत्तरीय ब्राह्मण', 3: 12, 3।

251 'आश्रम' र्ब्द त्जस धातु (श्रम् ्धातु) सेतनकला िै उसका अथ शिै मेिनत करना। इसका तामपय शिै कक भारतीयों ने यि अनुभव ककया था कक बबना कष्ट के उन्नतत निीं ंिोती।

आरण्यक और उपतनषदें- वैहदक आय शलोगों के जीवन के चार पा्वों के अनुकूल िैं।252 लौककक एवं ंकमकशाण्ड सम्बन्धी पूजा के अन्दर तछपा िुआ समयधम शऔर नैततक सदाचार का भाव था, त्जससे मनुष्य के हृदय को सन्तोषलाभ िोता था। इस सदाचाराममक आधार के कारण िी ब्राह्मणों का धम शअन्य सब दुबुलशताओंके रिते िुए भी इतनेलम्बे समय तक हटका रि सका। ब्राह्य पपवत्रता के साथ-साथ आभ्यन्तर पपवत्रता पर भी पूरा बल हदया गया था। सच्चाई, देवभत्तत माता-पपता का आदर, प्रुजुगत् ्के प्रतत दयालुता का भाव, मनुष्यजातत के प्रतत पे्रेम, तथा चोरी, हिंसा और व्यमभचार से दूरू रिना आहद धाममकश जीवन के अंग िैं- यि मर्क्षा भारतीयों के मत्स्तष्क में अच्छी तरि से बिैा दी गई थी।

जाततभेद रूपी संस्था मसद्धान्तपविीन पुरोहितों का आपवष्कार न िोकर समय की अवस्थाओं द्वारा मनुष्य-समाज का स्वयंपवकमसत रूप थी। ब्राह्मग्रन्थों के समय में यि ज़ पक़ गई। पुरुषसूतत यद्यपप ऋग्वेद का एक भाग िै, ककन्तु िै ब्राह्मण ग्रन्थों के िी समय का। यि प्रकट िै कक उस समय आयों एवंदस्युओं में परस्पर अन्तजातशीय पववाि िोतेथे।"[253] परस्पर रतत के अमयधधक ममश्रण को बचानेके मलए आय शलोगों से अपनेगौरव की रक्षा के मलए अपील की जाती थी। इस प्रकार जो संस्था प्रारम्भ में केवल सामात्जक रूप में थी उसे धाममकश रूप दे हदया गया। इसे दैवीय स्वीकृतत दे दी गई, और जाततपवषयक तनयम अटल बन गए। प्रारत्म्भक वणधशम शमें जो लचीलापन था उसके स्थान में जात-पांत के तनयम अमयन्त किोर िो गए। प्राचीन वैहदककाल में पुरोहित लोगों का एक अलग पेर्ा तो था, ककन्तुउनको अलग जातत निीं ंथी। कोई भी आय श पुरोहित बन सकता था, और पुरोहित वग शआवश्यक रूप से क्षबत्रय अथवा वाणणज्जय व्यवसायी वैश्यवग शसे ऊंचा निीं ंसमझा जाता था। कभी-कभी उन्िें घृणा की र्दत्ष्ट से भी देखा गया िै।'[254] ककन्तुअब अमभमान के कारण जो अलग रिनेका भाव आ गया, वि जातत का आधार बन गया। इस प्रवृपृत्त के कारण स्वतन्त्र पवचार दव गया और धचन्तन सम्बन्धी उन्नतत पपछ़ गई। सदाचार का मानदण्ड डूब गया। जो व्यत्तत जातत-बबरादरी के तनयमों का उल्लंघन करता था उसे पवद्रोिी समझा जाता था और उसे जातत से बहिष्कृत कर हदया जाता था। रूद्रों के मलए उच्चतम धम शका द्वार बन्द था। पारस्पररक घृणा बढ़ती गई। "ये क्षबत्रयों के र्ब्द िैं," यि ब्राह्मणों द्वारा अपने से मभन्न वण शवालों के मलए उच्चारण ककए जानेवाले र्ब्दों का एक नमूना िै।255

7. परलोक र्ास्त्र

252 जीवनकीइनश्रेणियों कापववरणमभन्न-मभन्न ग्रन्थकारों के अनुसार मभन्न-मभन्न िै। देणखए बृिदारण्यक उपतनषद्, 3/51;' आपस्तम्बसूत्र, 2/9, 21, 1 गततसूतूर, 3/2 बोधावान, 2 : 6, 11, 12; मनु, 5: 137; 6/87 वमसष्ि, 7/2।

253 अथववेशद, 5 - 17, 8 |

254 देणखए, ऋग्वेद, 7/103, 1.7 और 8; 10:88, 119 |

255 र्तपथ ब्राह्मण, 8: 1, 4, 10 |

ब्राह्मणग्रथों के अंदर िमें भपवष्य जीवन के पवषय में कोई एक तनत्श्चत मत निीं ंममलता। पपतृलोक और देवलोक के पवमभन्न मागों का वणनश हदया गया ि।ै256 पृथ्वी से ऊपर कफर से जन्म धारण करने ेको वरदान

के रूप में मलया जाता था, न कक अमभर्ाप के रूप में, त्जससे बचने की रूरत समझी जाए। दैवीय रिस्य को जानने ेके मलए यि एक प्रकार का प्रततज्ञात पुरस्कार ि।ै'[257] ककन्तुसबसे ऊपर मत िै कक मनुष्य जन्म द्वारा अमरता प्राप्त करके देवताओं के तनवास स्थान स्वगलशोक की प्रात्प्त िो सकती ि।ै "वि जो इस प्रकार यज्ञ करता िै ि्श्वत ऐश्वय शएवं ख्याातत को प्राप्त करता िै और अपने मलए दोनों देवताओं अथात्श ्आहदमय और अत्ग्न, के साथ संयोग पाकर पवजयी िोता िै और उनके साथ उसी लोक में स्थान पाता ि।ै"[258] पवर्ेष-पवर्ेष यज्ञ िमें पवमर्ष्ट देवों के लोक में पिुंचने ेयोग्य बनाते िैं।"[259] नक्षत्रों में भी मृत आममाओंका तनवास माना गया ि।ै लक्ष्य कफर भी वैयत्ततक सत्ता को त्स्थर रखना िै, यद्यपप इस लोक से उत्तम लोक में । "ब्राह्मणग्रंथों में अमरमव अथवा कम से कम दीघ शजीवन उन व्यत्ततयों के मलए तनयत ककया गया िै जो यज्ञ को िीकिीक समझकर उसे कक्रया में लाते िैं; दूसूरी ओर वे त्जनमें यज्ञ की भावना का अभाव िै, समय से पूव शममृयुको प्राप्त िोकर परलोकगामी िोतिैं, जिांउनके कमों का न्याय िोता ि।ै'[260] और अच्छे या बुरे कमों के अनुसार उन्िें भला या बुरा फल प्राप्त िोता ि।ै त्जसनेत्जतने िी अधधक यज्ञ ककए िोतिैं, उतना िी अधधक अलौकिकक रूप से वायव्य (िलका) र्रीर वि प्राप्त करता िःै अथवा, ब्राह्मणग्रन्थ की पररभाषा में, यों किना उधचत िोगा कक उतने िी कम भोजन की उसे आवश्यकता िोती िै ।"[261] दूसूरे ग्रन्थों में, इसके पवपरीत262 बतलाया गया िै कक, उस मनुष्य को यि आर्ा हदलाई गई िै कक पपवत्राममा दूसूरे लोक में पूरे र्रीर समेत, सवतशनु, जन्म लेता ि।ै"[263] वैहदक मत और ब्राह्मणों के मत में यिां ंतक भेद िै कक जिां ंऋग्वेद के अनुसार पापी खाक में ममला हदया जाता िै और धमामशमा पुरुष अमरमव प्राप्त करता िै, विांब्राह्मण ग्रंथों के अनुसार दोनों िी को अपने-अपनेकमों का फल भोगने के मलए कफर से र्रीर धारण करना पड़ता ि।ै जैसा कक बेबर ने मलखा िै "जिां ंपुराने ेसमय में अमरमव को मिाभागों के लोक में-जिांकक दूधू और मधु बिती िैं-पुण्य अथवा ज्ञान की प्रात्प्त का पुरस्कार माना जाता िै जब पापी अथवा अज्ञानी एक अल्पकाल के जीवन के पश्चात् ्अपनी सत्ता को सवचशा खो देता िै, विांब्राह्मणों का मसद्धान्त िै कक ममृयु के बाद सब मनुष्य कफर से अन्य जगत् ्में जन्म धारण करते िैं जिां ंउन्िें अपनेकमों के अनुसार फल हदए जाते िैं-धमामशमाओं को पुरस्कार ममलता िै और दुरामममाओंको दण्ड ममलता िै ।"[264] सुझाव यि िै कक इसके पश्चात् ्एक िी जन्म और िै और उसका स्वरूप िमारे इस लोक में ककए गए कमों के अनुसार िी

---

256 विी 6:6, 2, 4

257 विी , 1: 5, 3, 14 ।

258 विी , 11: 6, 2, 5

259 विी , 2/6, 4, 8 ।

260 11: 2, 7, 33 ।

261 10/1, 5 ,4 ।

262 .4: 6, 1, 1, 11। 1, 8, 6, 12/ 8, 3, 31।

263 'जनलश आफ रायल एमर्याहटक सोसायटी' में हदया गया बेबर का उद्धरण ,1:1865, 306 और आगे।

264 'जनलश आफ एमर्याहटक सोसाइटी' में बेवर का उद्धरण, ।: 1865, 306 और आगे।

तनणयश ककया जाता िै। "मनुष्य एक ऐसे जगत् ्में जन्म लेता िै जो उसका अपना बनाया िुआ िै।"[265] "मनुष्य इस जगत् ्में त्जस अन्न को खाता िै विी अन्न अगले जगत् ्में मनुष्य को खाता िै।"[266] अच्छे और बुरे कमों का अनुरूप फल पुरस्कार एवं ंदण्ड के रूप में भपवष्य जीवन में ममलता िै। कफर "इस प्रकार से उन्िोंने िमारे साथ पिले जन्म में व्यविार ककया िै और िम भी इस जन्म में उनके साथ वैसा िी व्यविार करेंगे।"[267] र्नैः र्नैः बराबर के न्याय का भाव पवकमसत िुआ। ऋग्वेद में वणणतश पपतरों का लोक अनेक मागों में से एक था ककन्तु कफर वैहदक देवताओं और उनके लोक में एवं ंपपतरों के माग शऔर उनके लोक में, त्जनमें ंप्रततरोधकारी न्याय का भाव था, भेद उमपन्न िुआ। अभी िमारे आगे दूसूरे लोक में पुनुजन्शम का पवचार एवं इस पृथूवी पर ककए गए कमों का पश्चात्ताप, अथवा पापतनष्कृतत का पवचार निीं ंआया िै-ककन्तु यि प्रश्न टाला निीं ंजा सकता कक दुरामा लोग तनमय दण्ड भोगते िैं और पुण्याममा स्थायी आनन्द का उपभोग करते िैं। "नम्रस्वभाव और पवचारमग्न भारतीय मनुष्यों को यि उधचत प्रतीत निीं ंिो सका कक पुरस्कार और दण्ड भी तनमय एवं स्थायी िो सकतेिैं। वे यि तो सोच सकें कक पश्चात्ताप करके अपनेको रुद्ध कर लेने पर उन पापों से जो इस छोटे-से जीवन में ककए िैं, छुटकारा पा जाना सम्भव िो सकता िै। और उसी प्रकार से वे ेकल्पना निीं ंकर सके कक उसी स्वल्पकाल के जीवन में ककए गए रुभु कमों का पुरस्कार भी सदा के मलए बना रिेगा।" यि बताया गया िै कक जब िम अपने पुरस्कारों एवंदण्डों का फल पा चुकतेिैं, तब िमारा वि जन्म रेषे िो जाता िै और िम पृथूवी पर कफर से जन्म लेते िैं। प्रकृतत का प्रविा, त्जसके कारण जीवन के बाद मरण और मरण के बाद कफर जन्म िोता िै, िमें इस पररणाम पर पिुंचने ेके मलए पववर् करता िै कक यि जीवन और मरण का चक्र अनाहद एवंअनन्त िै।268 सच्चा आदर् शजीवन और मरण के बन्धन से मुतत िोना िी िै, त्जसका तामपय शसंसार से छुटकारा पाना िै। "देवताओं को उद्देश्य करके जो यज्ञ करता िै उसे उतना मित्त्वपूण शलोक प्राप्त निीं ंिोता त्जतना उस व्यत्तत को प्राप्त िोता िै जो आममा को उद्देश्य करके यज्ञ करता िै।"[269] "वि जो वेदों का अध्ययन करता िै मृमृयुके भय से मुतत िो जाता िै और ब्रह्म के समान रूप को प्राप्त करता िै।"[270] जन्म त्जसका कारण िो ऐसी मृमृयुवि वस्तु िै त्जससे वचना चाहिए। उसके बाद िमें ऐसा भाव भी ममलता िै कक वे मनुष्य जा बबना ज्ञान के कमकशांड करते िैं, बार-बार जन्म लेते िैं, और बार-बार मृमृयु के ग्रास बनते िैं।271 एक और स्थान पर272 उपतनषदों का भाव प्रस्तुत ककया गया िै, त्जसके अनुसार इच्छा और उसकी पूतत शसे ऊपर भी एक ऊंची अवस्था िै त्जसे सच्चेअथों में 'अमरता' किा जाता िै। "इस प्रकार की आममा इन सबका अत्न्तम लक्ष्य िै। यि सब जलों में वतमशान रिती िै; इसे सब अमभलपषत पदाथ शप्राप्त िो जाते िैं; यि इच्छा से मुतत िै और इसे सब अभीष्ट पदाथ शप्राप्त िैं, तयोंकक इसे ककसी वस्तु का अभाव निीं ंिै इसीमलए ककसी वस्तु की प्रात्प्त की इच्छा का प्रश्न िी निीं ंउिता।"

265

र्तपथ ब्राह्मण ,6/2, 2 27। "कृतंलोकं पुरुषोऽममयायते" े।

266 र्तपय ब्राह्मण ,12/9, 11 ।

267 र्तपथ ब्राह्मण ,2/6 ।

268 देखें, ऐतरेय ब्राह्मण , 3/44

269 11/2, 6।

270 10/5, 6, 9।

271 र्तपय ब्राह्मण ;10:4, 3, 10 और भी देखें 10: 1, 4, 14, 10:2, 6, 19, 10:5, 1, 4; 11: 4, 3, 20।

272 10:5, 4, 15।

"ज्ञान के द्वारा मनुष्य उस ऊंची अवस्था को प्राप्त करते िैं त्जसमें इच्छाएं नष्ट िो जाती िैं। विांन तो यज्ञ की अिुततयांपिुंचती िैं और न ऐसे तपस्वी भतत िी पिुंच सकतिैं जो ज्ञान से रूनूय िैं। तयोंकक वि मनुष्य त्जसके पास यि ज्ञान निीं ंिै उस लोक को प्राप्त निींकर सकता, अिुततयों द्वारा अथवा किोर तपस्या से भी निीं। यि उर्न्िें िी प्राप्त िोता िै त्जसके पास इस प्रकार का ज्ञान िै।"[273] पुनजन्शम के मसद्धान्त को पवकमसत करने ेके मलए त्जतने ेभी सुझाव सम्भव िो सकतिैं, वे ेसब ब्राह्मण ग्रन्थों में तनहित िैं। वे सब केवल सुझाव के रूप में िैं जबकक मुख्य प्रवृपृत्त अमरमव की प्रात्प्त की ओर िी िै। यि अब उपतनषदों का काम िै कक वे ब्राह्मग्रन्थों के उन सुझावों को पुनुजन्शम के मसद्धान्त का प्रततपादन करने ेके मलए क्रमबद्ध करें। जबकक कम शऔर पुनुजन्शम के पवचार तनःसन्दिे आय शलोगों के मत्स्तष्क की िी उपज िैं, इस बात से तनषेध करने ेकी आवश्यकता निीं ंकक सम्भव िैं उतत सुझाव आहदम जाततयों से भी आए िों त्जनका पवश्वास था कक मृमृयुके बाद उनकी आममाएं पर्ुओंके र्रीरों में तनवास करती िैं।

उच्चतर श्रेणी के नीततर्ास्त्र एवं धम शके सुझावों के पवद्यमान रिते िुए भी यि किना िी पग़ो कक वि काल अधधकतर पारमसयों के धम शकी भांतत अत्ग्नपूजा का काल था, त्जसमें लोग यज्ञों की पूतत शके मलए अधधक उमसुक रितेथे,े और आममा की पूणतशा की ओर इतना ध्यान निीं ंथा। आवश्यकता थी आध्यात्ममक अनुभव को कफर से त्स्थर करने की, त्जसके मूलभूत सच्चेअथ शको संकेतावमलपूण शऔपचाररक पपवत्रता ने धुंधला कर रखा था। इस काय शका उत्तरदातयमव उपतनषदों ने अपनेऊपर मलया।

उद्धृ ग्रंथ

- ब्लूमफील्ड: अथववेशद, 'सेक्रेड बुतस आफ द ईस्ट', खण्ड 43।
- एगेमलंगं : र्तपथ ब्राह्मण, विी, खण्ड 12, प्रस्तावना।
- िॉपिककंस : 'द ररमलजन्स आफ इत्ण्डया,' अध्याय 9।

[273] र्ंकर ने वेदान्तसूत्रोंके अपनेभाष्यमें इस वातय को उद्धृत ककया िै, यि हदखाने के मलए कक यि त्स्थतत उनके अपने मसद्धान्त के ककतने तनकट िै।

चौथा अध्याय

उपननषदों िा दशनश

उपतनषद-उपतनषदों का मर्क्षा उपतनषदों की सख्या और रचनाकाल-उपतनषदों के रचतयता-ऋग्वेद की ऋचाएं और उपतनषदें-उपतनषदों के पवषय यथाथतशा का स्वरूप- ब्रह्म-ब्रह्म और आममा प्रज्ञा और अन्तर्दशत्ष्ट-सृतृष्ट-रचना यथाथ शसत्ता की व्यवस्थाएं- जीवाममा-धाममकश चेतना मोक्ष या मुत्तत पाप और दु:ख कम-शपारलौककक जीवन- उपतनषदों का मनोपवज्ञान-उपतनषदों के सांख्य और योग के तत्त्व दार्तशनक अग्रतनरूपण।

1. उपतनषद्

उपतनषदें वेदों के अत्न्तम भाग िैं, और इसमलए इन्िें 'वेद अन्त' की संज्ञा दी गई िै, त्जससे यि ध्वतनत िोता िै कक वैहदक मर्क्षाओंका सार इनके अन्दर िै।'[274] उपतनषदें नींव के रूप में िैं, त्जनके ऊपर बिुत से भारतीय अवाचशीन दर्नशर्ास्त्रों व धाममकश सम्पद्रायों के भवन ख़ड़े िैं। "हिन्दू पवचारधारा का एक भी ऐसा मित्त्वपूण शअंग निीं िै, त्जसमें नात्स्तक-नामधारी बौद्धमत भी आता िै, त्जसका मूल उपतनषदों में न ममलता िो।275 परवती दर्नश, भले िी वे उपतनषदों को अपनेउमपपत्तस्थान के रूप में स्वीकार न करते िों, अपने-अपने मन्तव्यों का साम्य उपतनषद्-प्रततपाहदत मसद्धान्तों के साथ दर्तन के मलए तनरन्तर आतुर रिे िैं। भारत में पुनरुज्जजीपवत प्रमयेक आदर्वशाद ने अपनेउद्गम के मलए उपतनषदों की मर्क्षाओंकी ओर िी संकेत ककया िै।

उपतनषदों के काव्य एवं उन्नत आदर्वशाद आज भी मानव के मत्स्तष्क को प्ेरेरणा देनेएवं उनके हृदयों पर र्ासन करनेमें उतने िी समथ शिैं त्जतने कक प्राचीन समय में थे। उनके अन्दर भारतीय कल्पना के प्राचीनतम्

274 उपतनषद् र्ब्द 'उप-तन-सद्' से तनकला िै, अथात्श समीप बैिना। इसका अथ शिुआ मर्क्षा-प्रात्प्त के मलए मर्क्षक के पास बैिना। कालक्रम से इसका अथ शिुआ कक वि ज्ञान, अथात्श गुप्त रिस्य का मसद्धान्त, जो िमें मर्क्षक से प्राप्त िुआ िो। कभी-कभी इसका प्रयोग इस आर्य में भी िोता िै कक वि मर्क्षा त्जससे िमारा भ्रम दूर िोकर समय की प्रात्प्त िो। र्ंकर अपनी तैपत्तरीयोपतनषद् की प्रस्तावना में किते िैं कक "ब्रिह्मज्ञान का नाम िी उपतनषद् िै, तयोंकक उन व्यत्ततयों के जो अपना समय इसकी प्रात्प्त के मलए लगाते िैं, माता के गभ शमें आगमन, जन्म और मृमृयु आहद के बन्धन मर्धथल िो जाते िैं, अथवा इसमलए कक इसके द्वारा उनका सवथशा नार् िो जाता िै, या इसमलए कक यि मर्ष्य को ब्रह्म के अमयन्त समीप ले जाता िै, अथवा इसमलए कक इनमें परमब्रह्म का तनवास िै।" देखें, 'पत्ण्डत', माच श1872, पृष्ि 254।

275 ब्लूमफील्ड 'द ररमलजन आफ द वेद', पृष्ि 511

प्रमाण उल्लणखत िैं। वेदों के सूततों (मन्त्र एवं संहिता भाग) तथा कमकशाण्ड-सम्बन्धी वेदांगों में आयों की दार्तशनक पवचारधारा की अपेक्षा धाममकश पवचारों एवं प्रकक्रयाओंका िी अधधकतर प्रततपादन पाया जाता िै। उपतनषदों में िमें वेदसंहिता-भाग की पौराणणक गाथाओं एवं ंब्राह्मणग्रन्थों के बाल की खाल तनकालने वाले तनरथकश तको, यिां ंतक कक आरण्यकों में प्रततपाहदत आत्स्तकवाद के भी अधधक उन्नत पवचार उपलब्ध िोतेिैं, यद्यपप उतत सब क्रमों में से भी गुज़रना िी पड़ा िै। उपतनषमकारों ने अतीतकाल में पररवतनश पैदा ककया, और वैहदक धम शमें त्जन पररवतनशों का उन्िोंने ंसमावेर् ककया वे एक ऐसे सिामसक हृदय का पररचय देते िैं त्जसमें सदा केवल पवचार-स्वातन्त्र्य के मलए व्यग्रता पवद्यमान रिती िै। उपतनषदों का लक्ष्य इतना अधधक दार्तशनक समय तक पिुंचना निीं ंिै त्जतना कक त्जज्ञासु मानवी आममा को र्ात्न्त एवं ंस्वतन्त्रता प्राप्त कराना िै। आध्यात्ममक प्रश्नों के परीक्षणाममक समाधान वाद-पववाद एवं प्रश्नोत्तर के रूप में हदए गए िैं, यद्यपप उपतनषदें तत्त्वरूप में जीवन के समयों पर पवचार करते िुए दार्तशनक प्रवृपृत्त के मत्स्तष्कों के सिसा एवं ंस्वयंप्रस्फुहटत काव्यमय उद्‌गार िैं। उनके अन्दर मानवीय मत्स्तष्क की यथाथ शसत्ता के समयस्वरूप को ग्रिण करनेके मलए एक प्रकार की आतुरता और तमसम्बन्धी उद्योग की अमभव्यत्तत पाई जाती िै। उपतनषदों का स्वरूप क्रमबद्ध दर्नशर्ास्त्रों जैसा निीं ंिै। ये सब ककसी एक िी ग्रन्थकार की रचनाएं निींिैं, और न उन सबका तनमाणशकाल िी एक िै, इसीमलए उनके अन्दर पूवाश-पर-पवरोध, एवं ंकुछेक अवैज्ञातनक बातें भी बिुत स्थानों पर पाई जाती िैं। ककन्तु ुयहद यिी सब कुछ िोता तो उपतनषदों के अध्ययन की कोई उपयोधगता न िोती। उपतनषदों ने ऐसे मौमलक पवचारों को जन्म हदया िै जो अपने- आपमें सवथशा तनदोष और सन्तोषजनक िैं और कुछेक भूलें अनायास उनके अन्दर रि गईं और त्जन पर बल देकर अततर्योत्तत के रूप में त्जन्िें पवरोधाभास समझा जाने लगा, उनका तनराकरण भी उतत तनदोष एवं ंसन्तोषजनक पवचारों द्वारा स्वयंिी िो जाता िै। ग्रन्थकारों के मभन्न-मभन्न रिनेिुए भी और इन काव्यममधश्रत दार्तशनक रचनाओं में कालभेद िोने ेपर भी सबका उद्देश्य एक िै, तयोंकक सबके अन्दर िमें एक आध्यात्ममक समय की पवर्द झलक समान रूप से ममलती िै, और ज्जयों-ज्जयों िम उत्तरोत्तरकाल में उतरते जाते िैं यि तमव और भी अधधक स्पष्ट िोता जाता िै। उपतनषदें िमारे सन्मुख अपने समय के पवचारर्ील धाममकश मत्स्तष्क की अपूव शतनधध को प्रकार् में लाती िैं। आममतनरीक्षण-सम्बन्धी दार्तशनक साहिमय के क्षेत्र में उपतनषदों की सफलता अपूव शिै।। उपतनषदों के पूव शकी एक भी रचना अपने-आप में इतनी व्यापक, सर्तत, सांकेततक व सन्तोषप्रद निीं ंथी जो कक उनकी तुलना में ठिर सके। उपतनषदों के दार्तशनक व धाममकश साहिमय ने ककतने िी मिान पवचारकों व पिुंची िुई मिान आममाओं को सच्चेअथों में पूण श सन्तोष प्रदान ककया िै। िम उपतनषदों के सम्बन्ध में गफ के इस मूल्यांकन से सिमत निीं ंिै "इन सब में आध्यात्ममक अंर् अमयन्त अल्प िै," अथवा यों किना चाहिए कक "यि खोखला बौद्धधक पवचार, जो धाममकशता से र्ून्य िै, भारतीय मत्स्तष्क की योग्यता को प्रकट करनेवाला एक सवोमकृष्ट उदािरण िै।" प्रोफेसर जे० एस०

मैकें ी इससे किीं ंअधधक गिराई में जाकर किते िैं कक "उपतनषदों में जो प्रयमन िमारे सम्मुख रखा गया िै वि पवश्व के तनमाशण सम्बन्धी मसद्धान्त कर सबसे पिला प्रयमन िै और तनश्चय िी बिुत रोचक और मित्त्वपूण श िै।"[276]

---

276 'इंसाइतलोपीडडयाआफररमलजनएण्ड एधथतस', खण्ड 8, पृष्ठ 597; और भी देणखए, ह्यूम, 'द थरटीन पप्रंमसपल

2. उपतनषदों की मर्क्षा

उपतनषदों की मर्क्षा का पवषय तया ि, इसका तनणयश करना सरल निीं। उपतनषदों के आधुतनक पवद्याथी अपनेककसी न ककसी पूवतशनधारशरत मसद्धान्त के आधार पर इनका अध्ययन करते िैं। मनुष्यों को अपनेस्वतन्त्र तनणयश के ऊपर भरोसा करने ेकी इतनी कम आदत ि कक इसके मलए वे ेककसी प्रमाण एवंपरम्परा की र्रण लेते िैं। यद्यपप आचार-व्यविार एवं जीवन यात्रा के मलए वे पयाप्शत मात्रा में तनभरश करने ेयोग्य पथप्रदर्कश िैं कफर भी समय के मलए अन्तर्दशत्ष्ट और तनणयश की भी आवश्यकता ि। आज एक बिुत बी़ तादाद में पवचारकों की सम्मतत का झुकाव र्ंकर के मत की ओर ि, त्जन्िोंनेउपतनषदों, भगवद्गीता एवं ंवेदान्तसूत्रों पर ककए गए अपने ेभाष्यों में अमयन्त पररश्रम के साथ आध्याममपवद्या के उच्च एवं अमयन्त सूक्ष्म अद्वैतपवषय की व्याख्या की ि। इससे मभन्न और ठीक उतना िी प्रवल दूसूरा एक मत यि ि कक र्ंकर ने जो कुछ किा वि इस पवषय पर अत्न्तम र्ब्द निीं ंि और यि कक उपतनषदों की मर्क्षा का तकशसंगत सार प्ेरम एवं ंभत्ततरूप दार्तशनक पवचार ि। मभन्न-मभन्न भाष्यकार अपनेपवर्ेष पवश्वासों को लेकर चलते िुए बलपूवकश उपतनषदों में उनका प्रवेर् करते िैं और उनकी भाषा को इस प्रकार तोते़-मरोते़ िैं कक भाष्यकारों के अपनेपवर्ेष मसद्धान्तों के साथ उनकी संगतत बैि जाए। जब पववाद उपत्स्थत िोतेिैं तब सब सम्प्रदाय उपतनषदों की िी ओर लौटते िैं। उपतनषदों की अस्पष्टता ककन्तु सम्पन्नता, रिस्यमय धुंधलापन ककन्तु साथ िी सांकेततक गुणों के कारण व्याख्याकार उनका उपयोग अपने-अपनेधम शएवं दार्तशनक पवचारों के समथनश के मलए कर सके िैं। उपतनषदों का अपना कोई तनत्श्चत दार्तशनक मसद्धान्त अथवा आत्स्तकवाद की कोई पवर्ेष रूहढ़भूत योजना निीं ंप्रतीत िोती। जीवन में समय तया ि, इसकी ओर तो उपतनषदों में संकेत ि ककन्तु अभी तक भौततक पवज्ञान अथवा दार्तशनक पवचारों का संकेत निीं ंममला। समय-सम्बन्धी संकेत उपतनषदों में इतने ेअधधक िैं, ईश्वर-सम्बन्धी कल्पनाएं भी इतनी पवपवध िैं कक कोई भी व्यत्तत उनके अन्दर से अपना अमभलपषत मसद्धान्त ढूंढ़ तनकाल सकता ि, और जो ढूंढ़ता ि उसे प्राप्त कर सकता ि और प्रमयेक रूहढ़वादी सम्प्रदाय के लोग अपने-अपने मसद्धान्तों को उपतनषद् के वातयों में से ढूंढ़ तनकालनेपर अपनेको बधाई दे सकतेिैं। पवचारधारा के इततिास के प्रायः ऐसा िुआ ि कक ककसी भी नवीन दार्तशनक मत को प्राचीन समय की मान्यता प्राप्त परम्परा द्वारा उसकी व्याख्या करके दूपूषत एवं आग्राह्य ििरा हदया गया और इस प्रकार आगे आने ेवाले समीक्षकों एवं व्याख्याकारों के मलए भी उसका समुधचत रूप से ज्ञान प्राप्त करने ेके माग शमें बाधा प़ गई। स्वयं उपतनषदों की अपनी व्याख्या भी इस दुभाग्शय का मर्कार िोने ेसे न बच सकी। पत्श्चमी देर्ों के व्याख्याकारों ने भी एक न एक भाष्यकार का अनुसरण ककया। गफ र्ंकर की व्याख्या का अनुसरण करता ि। अपनी पुस्तक 'कफलासफी ऑफ उपतनषद्स' की प्रस्तावना में वि मलखता ि, "उपतनषदों के दार्तशनक तत्त्व का सबसे ब़ा भाष्यकार र्ंकर, अथात्श ् 'र्ंकराचाय'श ि। र्ंकर का अपना उपदेर् भी स्वाभापवक और उपतनषदों के दार्तशनक तत्त्व की युत्ततयुतत व्याख्या ि।277" मैतसमूलर ने भी इसी मत का समथनश ककया ि। "िमें अवश्य स्मरण रखना चाहिए कक वेदान्त

उपतनषदूस्',पृष्ि

2।

277 पंचात्स्तकायसमसार ,81

का सनातन मत वि र्नीं ंिै त्जसे िम पवकास कि सकतेिैं बल्ल्क 'माया' िै। ब्रह्म का पवकास अथवा 'पररणाम' प्राचीन पवचार से मभन्न िै, माया अथवा 'पववत'श िी सनातन वेदान्त िै।... लाक्षणणक रूप में इसे यों किेंगे कक सनातन वेदान्त के अनुसार यि जगत् ्ब्रह्म से उन अथों में उद्भूत र्नीं ंिुआ त्जन अथों में बीज से वृक्ष उमपन्न िोता िै, ककन्तु त्जस प्रकार सूय शकी ककरणों से 'मृगृमरीधचका' की प्रतीतत िोती िै उसी प्रकार ब्रह्म से जगत् ्की उमपपत्त भी भ्रांततवर् प्रतीत िोती िै।"[278] ड्यूसन ने यिी मत स्वीकार ककया िै। उपतनषद् के रचतयताओंका अपना आर्य तया था, िम यि तनश्चय करनेका प्रयमन करेंगे; परवती व्याख्याकारों ने जो आर्य लगाया उससे मिैं कोई प्रयोजन र्नीं। परवती टीकाकार िमें केवल इस पवषय में एक प्रकार का तनकटतम आर्यमात्र दे सकते िैंकक परवती काल में उपतनषदों की व्याख्या ककस प्रकार की गई। ककन्तु प्राचीन अन्वेषकों की अन्तर्दत्शष्ट दार्तशनक पवश्लेषण के सम्बन्ध में तया री, इसका पता वे ेअवश्य िी र्नींदे सकते, ककन्तुसमस्या यि िै तया उपतनषदों के पवचार एक िी ली में पपरोये िुए िैं। तया सृतृष्ट की साधारण व्यवस्था के पवषय में कोई तनत्श्चत सवमशान्य तनयम सबमें एक समान पाए जाते िैं? िम सिास के साथ इस प्रश्न का उत्तर िां ंमें र्नीं ंदे सकते। इन उपतनषद्-ग्रन्थों में आवश्यकता से अधधक संख्या में गूढ़ पवचार भरे िुए िैं; अमयधधक संख्या में सम्भापवत अथ श भरे प़ िैं; ये कल्पनाओंऔर पवतों की समृद्ध खान िैं; इसमलए यि आसानी से समझा जा सकता िै कक ककस प्रकार मभन्न उपतनषदें एक िी उद्गम स्थान से पे्रेरणा प्राप्त कर सकी िोंगी। उपतनषदों के अन्दर दार्तशनक संश्लेषण नाम की कोई वस्तु, जैसी कक अरस्तू, कांट अथवा र्ंकर की पद्धततयों में िै, र्नीं ंपाई जाती। ताककशक सार्दश्य की अपेक्षा उनमें आभ्यन्तर ज्ञान- सम्बन्धी सार्दश्य अधधक िै। और कुछ मूलभूत पवचार उनमें ऐसे िैं, जो किना चाहिए, कक दार्तशनक पद्धतत की रूपरेखा का तनमाणश करते िैं। इन पवचारों की सामग्री में से पूणसंशगत और अपवचल मसद्धान्त पवकमसत ककया जा सकता िै ककन्तुयि पवश्वास एवं तनश्चय के साथ र्नीं ंकिा जा सकता कक बिुत से स्थानों पर सन्दभ शके अस्पष्ट िोने ेके कारण उन अंर्ों के आधार पर त्जनमें न तो कोई पवधान िै और न कोई क्रम िी, जो मसद्धान्त बनाया जाएगा वि यथाथ शिी िोगा। कफर भी दार्तशनक व्याख्या के उच्चतम उद्देश्यों को ध्यान में रखते िुए िम यिां ंपर भौततक जगत् ्एवं ंउसमें मनुष्य के अपनेस्थान के पवषय में उपतनषदों के र्दत्ष्टकोण पर पवचार करेंगे।

3. उपतनषदों की संख्या और रचनाकाल

साधारणतः उपतनषदों की संख्या 108 कूती जाती िै, त्जनमें से लगभग 10 उपतनषदें प्रधान िैं और इन्िीं िंपर र्ंकर ने भाष्य ककया िै। ये िी सबसे प्राचीन और अमयन्त प्रामाणणक 2/3 उनके तनमाणश की कोई िीक ततधथ िम तनत्श्चत र्नीं ंकर सकते। इनमें से जो एकदम प्रारम्भ की िैं वे तो तनत्श्चतरूप से बौद्धकाल से पिले और उनमें से की िैं बुद्ध के पीछे कुछ बुद्ध की िैं। यि सम्भव िै कक उनका तनमाणश वैहदक सूततों की समात्प्त और बौद्धधम शके आततभावश, अथात्श ्ईसा से पूव शकी छिी र्ताब्दी के मध्यवती काल में िुआ िो। प्रारत्म्भक

278 'सैके्रेडबुतसआफदईस्ट',खंड 15,पृष्ि 27।

काल 1000 ई. पू. से लेकर 300 ई. पू. तक माना गया िै। कुछ परवतींउपतनषदें, त्जन पर
उपतनषदों का तनमाणश
र्ंकर ने भाष्य ककया िै, बौद्धकाल के पीछे की िैं और उनका तनमाणशकाल लगभग 400 या 300 ई. पू. का िै।
सबसे पुरानी उपतनषदें वे िैं जो गद्य में िैं। ये सम्प्रदायवाद से रहित िैं। ऐतरेय, कौषीतकक, तैपत्तरीय, छान्दोग्य, बृिदारण्यक के अलावा केन उपतनषद् के कुछ भाग पुराने िैं, जबकक केनोपतनषद् के 1 से 13 तक के मन्त्र और बृिदारण्यक के 4 : 8 से 21 तक के मन्त्र उपतनषदों के छन्दोबद्ध िोनेके संक्रमणकाल के िैं और ऐसा प्रतीत िोता िै कक पीछे से जोड़े गए िैं। किोपतनषद् और भी पीछे की िै। इसके अन्दर िमें सांख्य और योगदर्नश के तत्त्व ममलते िैं।279' किोपतनषद में स्थान-स्थान पर दूसूरी उपतनषदों एवं भगवद्गीता के उद्धरण पाए जाते िैं।280 सम्प्रदायवादी उपतनषदों के पूव शकी उपतनषदों के माण्डूतय सबसे अवाचशीन िै। अथववेशद-सम्बन्धी उपतनषदें भी पीछे बनीं। मैत्रायणी उपतनषद् में सांख्य और योग दर्नश दोनों के तत्त्व ममलतेिैं। श्वेताश्वतर का तनमाणश ऐसे काल में िुआ जबकक बिुत प्रकार के दार्तशनक मसद्धान्त प्रस्फुहटक िो रिे थे। अनेक स्थलों पर सनातन दार्तशनक ग्रन्थों के पाररभापषक र्ब्दों से इसके पररधचत िोने का साक्ष्य ममलता िै और उनके मुख्य मसद्धान्तों का भी वणनश िै। ऐसा प्रतीत िोता िै कक इस उपतनषद् का आर्य वेदान्त, सांख्य और योग इन तीनों दर्नशो का आत्स्तकवादपरक समन्वय करना िै। प्रारत्म्भक गद्यामक उपतनषदों में अधधकतर पवर्ुद्ध कल्पना पाई जाती िै जबकक परवती उपतनषदों में अधधकतर धाममकश पूजा ओर भत्त का समावेर् िै।'281
उपतनषदों के दार्तशनक तत्त्वों को उपत्स्थत करने में िम अपना आधार मुख्यरूप से बौद्धकाल से पूव शकी उपतनषदों को िी रखेंगे और अपनेप्रततपाद्य पवचारों का समथनश बौद्धकाल के पीछे की उपतनषदों के पवचारों से करेंगे। िमारे प्रयोजन की मसद्धध के मलए मुख्य उपतनषदें ये िैं: छान्दोग्य, बृिदारण्यक, तैपत्तरीय, ऐतरेय, कौषीतकक और केन उपतनषद्, ईर् और माण्डूतय इनके बाद आती िै।

279 देणखए, 2: 18-19; 2: 6, 10 और 111

280 देणखए, 1: 2, 5; और मुण्डक, 28; 12-7, और गीता, 2 29; 2: 18-19 और 2: 19-20 और 2: 23, और मुण्डक, 3 2-3, गीता, 1 53। ककतने िी पवद्वानों का झुकाव इस मत की ओर िै कक किोपतनषद् मुण्डक एवं गीता से पुरानी िै।

281 ड्यूसन के अनुसार उपतनषदों का क्रम तनम्न प्रकार से िै।

(1) प्राचीन गद्यामक उपतनषदें बृिदारण्यक, छान्दोग्य, तैपत्तरीय, ऐतरेय, कौपीतांकें, केन (जो कुछ अंर् में गद्यामक िैं)।

(2) छन्दोबद्ध उपतनषदें: ईर्, कि, मुण्डक एवं श्वेताश्वतर। (3) परवती गद्य: प्रश्न एवं मैत्रायणी।

उतत सब उपतनषदों की गणना, मैत्रायणी को छोड़कर, प्राचीन प्रततत्षित उपतनषदों में िोती िै। मैत्रायणी के बारे में प्रोफेसर मैकडानल मलखते िैं "अन्य उपतनषदों से हदए गए अनेक उद्धरण, ककतने िी परवती र्ब्दों का प्रयोग, पवकमसत सांख्य मसद्धान्त का समावेर् त्जसकी पिले से कल्पना कर ली गई िै, अवैहदक एवं नात्स्तक सम्प्रदायों का पवर्द वणनश यि सब एकत्र िोकर इस उपतनषद् को बिुत पीछे की माननेमें कोई सन्देि निीं रिने देते। वस्तुतः यि एक प्रकार से प्राचीन उपतनषदों के मसद्धान्तों को सांख्यदर्नश एवं बौद्धमत के पवचारों के साथ सत्ममश्रण करके प्रस्तुत ककया गया ग्रन्थ िै।" ('संस्कृत मलटरेचन', पृष्ि 230)।

नृमृसंित्तिरतापनीय उन 12 उपतनषदों में से एक िै त्जनकी व्याख्या पवद्यारण्य ने अपनी 'सवोपतनषदयानुशभूततप्रकार्' नामक पुस्तक में की िै।

4. उपतनषदों के रचतयता

दुभाुग्शयवर् िमें उन मिान पवचारकों के जीवन के पवषय में बिुत कम ज्ञात िै त्जनके पवचार उपतनषदों में तनहित िैं। वे आममख्याति के प्रति अमयधधक उदासीन थे ेऔर केवल समय के प्रचार के मलए िी उमसुक थे, े यिां ं तक कक उन्िोंने अपनेमतों की स्थापना वैहैदककाल के पूज्जय देवी-देवताओं ंऔर नायकों के नाम पर िी की। इन उपतनषदों में संवाद के मलए प्रजापतत, इन्द्र, नारद, और सनमकुमार आहद को िी मुख्यरूप से चुना गया िै। जब कभी उपतनषदों के मिान पवचारकों का इतितास उनके पवमर्ष्ट योगदान का वणनश करते िुए मलखा जाएगा तो कोल्पनमक िी नामों कारेछोज़ने उपत्स्थत िोंगे-महिदास, ऐतरेय, रैतय, र्ात्ण्डल्य, समयकाम जाबाल, जैवमल, उद्दालक, श्वेतकेतु, भारद्वाज, गाग्र्यायण, प्रतदशन, बालाकक, अजातर्त्रु, ु वरुण, याज्ञवल्तय, गागी और मैत्रेयी।'[282]

5. ऋग्वेद की ऋचाएं और उपतनषदें

अपनेप्रततपाद्य पवषय के पवमर्ष्ट स्वरूप के कारण उपतनषदों की गणना वैहदक सूततों एवं ंब्राह्मणों में सवथशा स्वतन्त्र एक पवर्ेष वग शके साहिमय में की जाती िै। जैसा कक िम पिले देख आए िैं, सूततों में वणणतश देवताओं के अन्दर सामान्य पवश्वास को ब्राह्मणों की यात्न्त्रक याक्षज्ञकता ने िटा हदया था। उपतनषदों का अनुभव िै कक मि को जन्म देनेवाला धाममकश पवश्वास पयाप्शत निीं। उपतनषदों ने वेदों के धम शमें बबना उसकी आकृतत को छे, े सदाचार का पुट देनेका प्रयमन ककया। उपतनषदों ने वैहदक सूततों में सांकेततक अद्वैतपरक पवचारों पर और अधधक बल देकर, एवं ंपवचार के केन्द्र को बाह्य जगत् ्से िटाकर आन्तररक जगत् ्की ओर मो़ हदया तथा वैहदक कमकशाण्ड के बाह्य स्वरूप का पवरोध करके, एवंवेदे की पपवत्रता के प्रतत उदासीनता धारण करके वेद से भी ऊपर उिकर पवचारधारा को अधधक उन्नत ककया।

समस्त वैहदक उपासना के क्रमपविीन अन्तःक्षोभ के अन्दर एकमव एवं अनुभूतत का एक तनत्श्चत मसद्धान्त स्पष्टरूप में अमभव्यतत िोता था। कुछ सूततों में वस्तुतः एकमात्र केन्द्रीभूत त्त्त के भाव का पवधान था। उपतनषदों ने इस प्रवृपृत्त की व्याख्या की। वि एक िी आममा को स्वीकार करते िैं जो सवर्शत्ततमान िै, अनन्त िै, तनमय िै, अतनवचनशीय िै, स्वयम्भू िै, पवश्व का स्रष्टा िै, रक्षक िै, और संिारकत्ताश भी िै। वि ज्जयोततमयश, स्वामी एवं ंपवश्व का जीवन िै, अद्पवतीय िै, एकमात्र विी पूजा, भजन एवं नमस्कार का पात्र िै। वेदों के अचेश्वररूपी देवताओं का पवनार् करके समयस्वरूप ब्रह्म सामने आया िै। "िे याज्ञवतल्य । देव ककतने े िैं?" उसने उत्तर हदया, "एक"[283] "अच्छा अब अगले प्रश्न का उत्तर िमें दो अत्ग्न, वायु, आहदमय, काल (जो प्राण िै), अन्न (भोजन), ब्रह्मा, रुद्र, पवष्णु-कोई ककसी एक देव का ध्यान करता िै तो दूसरा ककसी अन्य का इनमें से

---

282 त्जन पिाकों की रुधच िो वे इन पवचारकों और इनके मतों के पवषय में मेरे ममत्र एवं सियोगी डातटर बरुआ कृत 'प्री-बुद्धधत्स्टक' 'इंडडयन कफलासफी' नामक उत्तम ग्रन्थ से पवर्द् जानकारी प्राप्त कर सकते िैं।

283 वृिदारण्यडकोपतनषद् 3:9,11

बताइए, िमारे मलए सबसे उत्तम कौन िै ?" और उसनेत्जज्ञासुओं से किा "ये सब मुख्यतः सबसे ऊंचे, अमर, और अर्रीरी (तनराकार) ब्रह्म के िी अमभव्यतत रूप िैं।... तन:सन्दिे यि सब ब्रह्म िी िै। मनुष्य उन अमभव्यतत रूपों का ध्यान भी कर सकता िै और चािे तो उन सब को मयाग भी सकता िै।"[284] दृश्यमान अनन्त और अदृश्य अनन्त दोनों िी उस पूण शआध्यात्ममक ब्रह्म में समापवष्ट िैं।

भारतीय चेतना के अन्दर बिुदेवता-सम्बन्धी पवचार अमयन्त गिरी ज़ पक़ चुके थे, े त्जन्िें आसानी से उखाड़ा निीं ंजा सकता था। अब वे ेसब देवता एक देव की अधीनता में आ गए। ब्रह्मा के बबना अत्ग्न घास के एक ततनके को भी निीं ंजला सकती, वायुभूसे के ततनके तक को निींउड़ा सकती। "उसी के भय से आग जलाती िै, उसी के भय से सूय शचमकता िै, और उसी के भय से वायु, मेघ, और यमराज अपने-अपनेकतव्शय का पालन करते िैं।"[285] कभी-कभी बिुत से देवताओं को एक िी पूण शके अंगरूप में बतलाया गया िै। पांच गिृस्थ पुरुष उद्दालक को अग्रणी बना कर अश्वपतत नामक राजा के पास पिुंचे, त्जसनेउनमें से िर एक से पूछा। तुम आममा के रूप में ककसका ध्यान करते िो। पिले ने उत्तर हदया द्युलोक का, दूसूरे ने किा सूय शका, तीसरे ने किा वायु का, चौथेने किा र्ून्य आकार् का, और पांचवें ने किा जल का। राजा उत्तर देता िै कक उन सबमें से िरएक ने समय के केवल एक पाश्व शकी पूजा की िै। उस मुख्य सत्ता का द्युलोक र्ीषस्शथानीय िै, सूय शचक्षुस्थानीय िै, वायु प्राणस्वरूप िै, र्ून्याकार् धड़ के समान िै, जल मूत्रार्य िै और भूमम पादस्थानीय िै- यि पवश्वाममा का धचत्र िै। अल्पमत के मान्य दार्तशनक पवश्वासों और अधधकतर संख्या के काल्पतनक अन्धपवश्वासों के बीच समझौता िो जाना िी एकमात्र परस्पर समन्वय का सम्भव उपाय िै। िम प्राचीन व्यवस्थाओं को सवथशा उड़ा निीं ंसकते, तयोंकक ऐसी चेष्टा का तामपय शिोगा कक िम मनुष्य जातत के मूलभूत स्वभाव एवं प्रमयक्ष भेद-भाव की, जोकक पवश्वासी व्यत्ततयों की नैततक एवं ंबौद्धधक अवस्थाओं में रिता िै, उपेक्षा करते िैं, तयोंकक वे सब एक साथ िी उच्च ज्ञान को प्राप्त करने ेमें असमथ शिोते िैं। एक अन्य पक्ष ने भी उपतनषदों के भाव का तनणयश ककया। उनका लक्ष्य भौततक पवज्ञान अथवा दर्नशर्ास्त्र न िोकर समुधचत जीवन था। उनकी अमभलाषा आममा को देि के बन्धन से मुतत करानेकी थी, त्जससे कक वि परब्रह्म के साथ संयुतत िो जानेका आनन्द उपभोग कर सके। बौद्धधक मर्क्षा जीवन की पपवत्रता के एक उपयोगी सिायक के रूप में थी। इसके अततररतत भूतकाल के मलए उपतनषमकारों के मन में श्रद्धा का भाव भी था। वैहदक ऋपषयों की मंगलमयी स्मृतत के कारण भी उनके मसद्धान्तों पर आक्रमण करना एक अपपवत्र काय शिोता। इस प्रकार उपतनषदों ने एक उहदत िुए आदर् शदार्तशनक पवज्ञान के साथ रूहढ़गत पुराने ेआत्स्तकवाद की अनुकूलता स्थापपत करने ेका प्रयमन ककया।

मनुष्य के धाममकश आभ्यन्तर ज्ञान के उद्गमस्थान दो प्रकार के िोते िैं : वस्तुतनष्ठ और आममतनष्ठ, अथात्श ्बाह्य जगत् ्के अद्भुत चममकार और मानवीय आममा के अन्दर का प्रणणधान। वेदों के काल में प्रकृतत की पवस्तृत व्यवस्था ने मनुष्य के ध्यान को अपनी ओर आकृष्ट ककया। पवश्व की मभन्न-मभन्न र्त्ततयां िी उनके आराध्यदेव िैं। उपतनषदों में िम आन्तररक जगत् ्की गिराइयों में खोज करने ेके मलए उतरते िैं।

---

284 मैत्रायणीउपतनषद् ,4/5 - 6 मुण्डकोपतनषद् भी देणखए,1/1 ,1 i तैपत्तरीय,1/5 * i बृिदारण्यक ,7; 1/4 ,10

285 तैपत्तरीयोपतनषद् ।

"स्वयम्भूपरमाममा ने इत्न्द्रयों को बाह्य र्दत्ष्ट के मलए प्रवृपृत्तवान बनाया ि◌ै इसीमलए इन भौततक इत्न्द्रयों द्वारा मनुष्य बिार की ओर ि◌ी देखता ि◌ै अन्दर की ओर अपनी आममा में निीं ◌ं देख सकता। कोई बबरला ि◌ी धीर पुरुष आंखों को बन्द करके अमृतृ की इच्छा करता ि◌ुआ अपनेअन्दर आममा का साक्षामकार करता ि◌ै।"[286] भौततक जगत् ◌्से अन्दर तनवास करने वाली अमर आममा की ओर ध्यान संक्रममत ि◌ोता ि◌ै। उस उज्जज्जवल प्रकार् को प्राप्त करने ◌े के मलए ि◌में आकार् की ओर ताकनेकी आवश्यकता निीं, ◌ं तेजोमय अत्न तो अपनी आममा के ि◌ी अन्दर ि◌ै। मनुष्य की आममा सम्पूण शपवस्तृतृ पवश्व के अमभन्न रिस्य को खोलने की कुंजी ि◌ै। हृदयाकार् एक स्वच्छ जलार्य के समान ि◌ै, त्जसके अन्दर समय स्वयंप्रततपवत्म्बत ि◌ोता ि◌ै, और इस पररवततततश र्दत्ष्टकोण ने परवती पररणामों को जन्म हदया। नामधारी देवताओंकी निीं, ◌ं अपपतु ◌ुसमयस्वरूप जीपवत ईश्वर अथात्श ◌्ब्रह्मरूपी आममा की पूजा करना ि◌ी उधचत ि◌ै। परमाममा के तनवास का स्थान मनुष्य का हृदय ि◌ै। "ब्राह्मणः कोर्ोऽमस"[287], तुमु ब्रह्म का कोर्, आवेष्टन ि◌ो। "जो कोई दूसूरे ककसी देवता की पूजा करता ि◌ै यि समझकर कक वि दूसूरा ि◌ै और 'म ◌ैंि◌ ◌ं◌ू ◌ू' दूसूरा, वि निीं ◌ं जानता (अज्ञानी ि◌ै)।"[288] अन्तवासशी अमर आममा और मिान पवश्वर्त्तत

एक ि◌ी ि◌ैं, अमभन्न ि◌ैं। ब्रह्म आममा ि◌ै और आममा ब्रह्म ि◌ै। यि एकमात्र सवोपरर उमकृष्ट र्त्तत, त्जसके अन्दर से सब पदाथों की सृतृष्ट ि◌ुई ि◌ै, आन्तररक आममा के साथ तादामम्यामक ि◌ै और प्रमयेक मनुष्य के हृदय में सत्न्नपवष्ट ि◌ै।'[289] उपतनषदें तनष्कृतत के मसद्धान्त को उस भाव में निीं ◌ं स्वीकार करतींत्जसमें वेद उसे लेते ि◌ैं। उपतनषदों में ि◌म वैहदक देवताओं से सांसाररक वैभव, धन-सम्पपत्त एवं सुख की याचना की भांतत प्राथनशा निीं ◌ं करते, बत्ल्क विााँकेवल दु◌ुःख से तनवृपृत्त के मलए ि◌ी प्राथनशा पाई जाती ि◌ै।

दु◌ुःख के ऊपर जो इतना बल हदया गया ि◌ै उसका तामपय शकभी-कभी यि मलया जाता ि◌ै कक वि भारतीय ऋपषयों के अमयधधक तनरार्ावाद की ओर संकेत करता ि◌ै। ककन्तु यि बात निीं ◌ं ि◌ै। वेदपवहित धम शतनश्चय ि◌ी अमयन्त सुखोमपादक था, ककन्तु वि धम शका एक ि◌ीनतर स्वरूप था जिां ◌ंकक ऊपर के आवरण के नीचेपवचार ने कभी प्रवेर् निींककया। उस धम शमें मनुष्य की सुखमय संसार में अवत्स्थत ि◌ोने ◌े की प्रसन्नता-मात्र पाई जाती थी। देवताओं से मनुष्य भय भी खाते ◌े थे ◌े और उनके अन्दर पवश्वास भी रखतेथे। इस पृथूवी पर जीवन सादा, और मधुर भोलापन मलए ि◌ुए था। मनुष्य की आध्यात्ममक आकांक्षा सांसाररक सुख को तुच्छ बताकर मनुष्य को

---

286 किोपतनषद्, 4: 11

287 तैपत्तरीय उपतनषद्।

288 बृिदारण्यकोपतनषद्, 1/4 4,10

289 देणखए, छान्दोग्य, 3: 14। तुलना कीत्जए आगस्टाइन "परमेश्वर के मलए मनैंपृथूवी से प्रश्न ककया 4 और उसने किा, "म ◌ैंवि निीं ◌ं ि◌ ◌ं◌ू ◌ू'; मनैं समुदु्र सेऔर उसकी गिराई में रिने वाले जल-जन्तुओं से प्रश्न ककया और उन्ि◌ोंने उत्तर हदया, 'ि◌म परमेश्वर निीं ि◌ैं, ि◌मसे ऊपर खोज करो।' मनैं र्ीतल मन्द सुगत्न्धयुतत बिने वाली वायु एवं नभामंडल के तनवासी समस्त प्राणणयों से प्रश्न ककया। उत्तर ममला, 'अनात्तसमीज भूल करता ि◌ै, म ◌ैंपरमेश्वर निीं ि◌ं◌ू ◌ू', मनैं आकार्, सूय,श चन्द्रमा एवं तारों से प्रश्न ककया। 'ि◌म भी वि परमेश्वर निीं ि◌ैं त्जसे तुम ढूंढ़ते ि◌ो', उन्ि◌ोंने उत्तर हदया। कफर मनैं उन सब पदाथों से प्रश्न ककया जो मेरी इत्न्द्रयों के आसपास ि◌ैं, 'तुमने मुझेपरमेश्वर के पवषय में किा ि◌ै कक तुम व निीं ि◌ो; मुझेउसके पवषय में कुछ बतलाओ, और उन सबनेउच्च स्वर में किा, 'उसने ि◌में बनाया ि◌ै।" इस प्रकार से यि खोज आगे बढ़ती रिी, अन्त में अपने अन्दर की आममा गया, तो उत्तर ममला, "तुम्िारा परमेश्वर तुम्िारे पास ('कन्फेन्सं', 10: अध्याय 6)। ि◌ै, वि तुम्िारे जीवन का से प्रश्न पूछा भी जीवन ि◌ै।"

अपनेअत्स्तमव के वास्तपवक प्रयोजन के ऊपर गम्भीर धचन्तन करनेके मलए पे्रेरणा करती ि ै। प्रमयेक नैततक परस्वतनश एवं आध्यात्ममक नवजन्म के मलए वतमशान वास्तपवक त्स्थतत के प्रतत असन्तोष का िोना पिली र्त श ी। उपतनषदों का तनरार्ावाद समस्त दर्नशर्ास्त्र की पिली अवस्था ि ै। तनरार्ा अथवा असन्तोष व्यत्तत को संसार से मुतत िोने ेमें प्रवृत्त करता ि ै। ककन्तु यहद बचनेका कोई माग शन िो और न िी मुत्तत की प्रात्प्त के मलए कोई प्रयमन िो तो उस िालत में असन्तोष िातनकारक ि ै। उपतनषदों का तनरार्ावाद इस िद तक पवकमसत निीं ुआ ि ै कक वि अन्य समस्त पुरुषाय शको दबाकर तनत्ष्क्रयता उमपन्न कर दे। जीवन के प्रतत श्रद्धा एवं ं भत्ततभाव इस अंर् में पयाप्शत था कक समय के यथाथ शअन्वेषण के मलए पे्रेरणा ममलती रि। बाय शके ब्दों में, दु्ःख एवंतलातत के भाव की अपेक्षा उपतनषदों में कल्पनाममक सिास की मात्रा किीं ंअधधक पाई जाती ि ै।"[290] "उपतनषदों के क्षेत्र के अन्दर तन:सन्दिे ऐसे दुखुमय जीवन का वणनश कुछ स्थलों पर पाया जाता ि ै जो जीवन-मरण के तनरन्तर चलते िुए चक्र में जका िुआ ि ै। और उसके रचतयता तनरार्ावाद से इस अंर् में बचे िुए ि ै कक वे दु्ःख से मुत्तत पाने की घोषणा करके प्रसन्न ि ै।"[291] संसार अथवा पुनजन्शम के मसद्धान्त का आपवष्कार करने ेके कारण उपतनषदें तनरार्ावादी ि ैं, यि कोई ितेु निीं ंि ै। इस पृथूवी पर मनुष्य जन्म धारण करता ि ै आममा की पूणतशा के मलए। उच्चतम सुख और आध्यात्ममकं समय की सवाांगीण प्रात्प्त के मलए िमें पुरुषाथ शकरते समय संसार के तनयन्त्रण में से गुजरना जरूरी ि ै। आममपवजय से उमपन्न िोने ेवाले िषातशतरेक से िी जीवन में अमभरुधच उमपन्न िोती ि ै। संसार केवल आध्यात्ममक अवसरों की एक परम्परा-मात्र ि ै। जीवन आध्यात्ममक पूणतशा की प्रात्प्त के मलए यात्रा करते िुए माग शमें एक पाव की भांतत ि ै-अनन्त की ओर प्रस्थान करने ेकी हदर्ा में एक कदम ि ै। यि वि समय ि ै त्जसके अन्दर आममा को तनमयता की प्रात्प्त करने के मलए तैयारी करना ि ै। जीवन केवल खोखला स्वप्न निीं ंऔर न िी संसार आममा की तनश्रेष्टावस्था ि ै। परवती समय के भारतीय पवचार के इततिास में पुनजन्शम-सम्बन्धी व्याख्याओंमें िमें इस उत्तम आदर् शका अभाव हदखाई देता ि ै, इस काल में जीवन को आममा की भूल का पररणाम और संसार को एक तनरन्तर घसीटने वाली बंधनश्रृंखला किा गया ि ै।

ब्राह्मणों में त्जस जीवन की अवस्था का प्रदर्नश ककया गया ि ै उसमें वैहदक सूततों का प्रततपाहदत धम श यज्ञपरक था। मनुष्यों के सम्बन्ध देवताओं के साथ यात्न्त्रक थे–केवल आदान-प्रदान और ितन-लाभ के रूप में। आध्यात्ममक ज्ञान का पुनरुज्जजीवन, जो इस काल की आवश्यकता था, प्रकक्रयाओंमें डूबा िुआ था। उपतनषदों के अन्दर िमें धाममकश जीवन के नवीन स्रोतों की ओर वापसी ममलती ि ै। उनमें घोषणा के साथ किा गया ि ै कक यज्ञों के द्वारा आममा को मोक्ष की प्रात्प्त निीं ंिो सकती। मोक्ष की प्रात्प्त केवल सच्चेअथों में धाममकश जीवन बबताने े एवं पवश्व की आममा का आभ्यन्तर र्दत्ष्ट द्वारा साक्षामकार करनेसे िी िो सकती ि ै। पूणतशा आभ्यन्तर और आध्यात्ममक ि ै, बाह्य एवं ंयात्न्त्रक निीं। िम ककसी मनुष्य को उसके वस्त्रों को धोकर तनमलश निीं ंबना सकते। अपनी तनजी आममा के साथ मिान पूण शब्रह्म के तादामम्य की चेतना का उमपन्न िोना िी यथाथ शमें आध्यात्ममक जीवन का सारतत्त्व ि ै। कक्रयाकलाप की तनरथकशता, और मुत्तत प्राप्त करानेके साधनरूप में यज्ञों

---

290 ररमलजन्सआफइंडडयापृष्ठ84।

291 कावे कृत 'ररडेम्प्र्न, हिन्दू ूएण्ड कक्रत्श्चयन', पृष्ठ 64।

की तनःसारता को उपतनषदों ने स्पष्ट कर हदया। ईश्वर का समकार आध्यात्ममक पूजा द्वारा िोना चाहिए न कक बाह्य कक्रयाकलापों द्वारा। परमाममा की स्तुतत करके िम अपनी रक्षा निीं ंकर सकतेऔर न िी यज्ञों द्वारा उस पर कोई प्रभाव िी डाल सकते िैं। उपतनषदों के रचतयताओंके अन्दर ऐततिामसकता का बोध इतना पूण शथा कक वे जानते थेकक यहद वे वस्तुओंके अन्दर क्रांतत लानेका प्रयमन करेंगे तो उनके पवरोध का कोई फल न तनकलेगा। इसमलए उन्िोंनेकेवल भाव में पररवतनश करने ेकी मांग की। उन्िोंनेनये ढंग से दृष्टान्तरूप से यज्ञों की लाक्षणणक व्याख्या की। कुछ वातयों'[292] में िमें अश्वमेध यज्ञ का ध्यान करने ेका आदेर् हदया गया िै। यि ध्यानपरक प्रयमन िमारे मलए यज्ञ के अथों पर पवचार करने ेमें सिायक िोता िै और इस ध्यान का भी विी मित्त्व बताया गया िै जो यज्ञ करने ेका िै। दारु (काष्ठ) के फलकों के ब्यौरेवार वणनश से एवं सममधाओं के स्वरूप आहद से वे यि प्रदमर्तश करते िैं कक वे ेयज्ञपरक धम शके प्रतत उदासीन निीं। पवधधयों को स्वीकार करते िुए भी वे उनमें सुधार करने ेका प्रयमन करते िैं। वे किते िैं कक त्जतने ेभी यज्ञ िैं वे ेसब मनुष्य की आममा के ज्ञान के लक्ष्य को लेकर ककए जाते िैं। जीवन स्वयंएक यज्ञ िै। "मनुष्य यज्ञस्वरूप िै, उसके जीवन के पिले चौबीस वष श उसका प्रातःकालीन उदकदान िै... भूखे-प्यासे रिने ेएवं सुखों से वत्जतश रिने ेमें िी उसका उमसग शऔर संस्कार िैं... उसके खाने-पीने और आनन्द मनाने में उसका पपवत्र उमसव िोता िै और िंसी में, भोज में और खुमर्यां मनानेमें वि स्तुतत के मन्त्र गाता िै। आममतनयन्त्रण, उदारता, ऋजुता, पवनय, अहिंसा293 और वाणी में समय, ये उसके दान िैं, और यज्ञ के अन्त में पपवत्रता देनेवाला जो अवभृथ (यज्ञान्तस्नान) िै, वि मृमयुिै।"[294] िमें बताया गया िै कक ककस प्रकार दैवीय प्रकृतत अपनेको यज्ञ के मलए अपपतश करती िै। इसके यज्ञ से िी िम जीते िैं। यज्ञ का तामपय शभोग निीं,ं मयाग िै। अपनी प्रमयेक कक्रया, प्रमयेक मनोभाव और प्रमयेक पवचार ईश्वर को अपपतश करो। तुम्िारा जीवन यज्ञमय िो। कभी-कभी िमें बतलाया जाता िै कक उच्चतर माग शमें जानेके मलए यज्ञ सोपान (सीढ़ी) का काम देते िैं। ममयलशोक की आवश्यकताओं की पूतत शककए बबना कोई व्यत्तत ऊपर के माग शमें निीं ंपिुंच सकता। अज्ञातनयों के मलए यज्ञ आवश्यक िैं, यद्यपप केवल उनसे िी काम निीं ंचल सकता। उनके द्वारा िमें पपतरों के लोक में प्रवेर् ममलता िै, और एक अल्पकाल तक चन्द्रलोक में रिनेके पश्चात् ंइस ममयलशोक में िमें कफर से जन्म प्राप्त िोता िै। कक्रयाकलाप के पवरोध में आध्यात्ममक पूजा ने स्थान ग्रिण ककया।295 ऐसे अवसर आते िैं जबकक संस्कारों भरा पुरोहितों का धम शउन्िें कृबत्रम प्रतीत िोता िै और तब वे अपने समस्त व्याजोत्ततपूण शउद्गारों को प्रकट करते िैं। वे इस प्रकार तनन्दासूचक र्ब्दों में वणनश करते िैं कक पुरोहितों की र्ोभायात्रा उन कुत्तों की र्ोभायात्रा के समान िै त्जनमें से िर एक अपनेआगे वाले की पूंछ पकड़ िुए

---

292 बृिदारण्यक उपतनषद् 1/1, 2

293 तनदोषता।

294 छान्दोग्य उपतनषद्, अध्याय 3। तुलना कीत्जए, 'इसाइयाि', 58 6 - 7 तया यि विी अनर्न निीं िै त्जसेमनैं चुना िै ? दुश्चररत्रता के बन्धनों को ढीला करने के मलए, भारी बोझों को ममटानेके मलए और दमलतों को स्वतन्त्र करनेके मलए, और यि कक तू िर जुए को उतार फेंके ? तया यि अपनी रोटी भूखे को देनेके मलए निीं िै, और तू उन गरीबों को त्जन्िें कोई पूछता निीं,ं अपने घर लाता िै, जब तू नंगे को देखता िै तो उसे वस्त्र पिना देता िै, और तू अपने को तनजी मानव-देि से तछपाता निीं ं?" देखो प्लेटो- 'यूवाइफ्रोन, 14, ई; ला' 906, डी० जावेट का संस्करण।

295 और भी देणखए, छान्दोग्योपतनषद् 1/1 101

ैंऔर किता िै, "ओम्, ् आओ खाएं। ओम्, ् आओ सुरापान करें... आहद-आहद।"[296] इस प्रकार से ब्राह्मणों के किोर कक्रयाकलापों पर, त्जन्िोंने ेमनुष्य की दुबुलश आममा को बिुत कम सान्मवना प्रदान की, उपतनषदों की मर्क्षा द्वारा तनयन्त्रण ककया गया िै।

उपतनषदों का र्दत्ष्टकोण वेदों की पपवत्रता के प्रतत अनुकूल निींिै। आधुतनक काल के िेतुवादी पवचारकों की भांतत वेद के प्रामाण्य के प्रतत उनका दो प्रकार का र्दत्ष्टकोण िै। वे वेदों का उद्गम एक आध्यात्ममक सत्ता से स्वीकार करती िैं जब वे किती िैं, "ीक उस प्रकार त्जस प्रकार कक जब गीली लकड़यों में आग दी जाती िै तब धुएं के बादल चारों ओर फैल जाते िैं, इस मिान सत्ता से प्रकट िुए समय में ऋग्वेद, यजुवेद, सामवेद, और अथव शतया अंधगरस के सूतत, उपाख्यान, इततिास (ऐततह्य), पवज्ञान, रिस्यमयी समस्याएं, कपवताएं, किावतें और नाना भाष्य-ये सब उसी के श्वास से उद्भूत िैं।"[297] माना गया िै कक वैहदक ज्ञान सच्चे आन्तररक दैवीय ज्ञान से बिुत िीन कोहट का िै'[298] और यि िमें मुत्तत निींप्राप्त करा सकता। नारद ने किा, "भगवन्, ् म ैंऋग्वेद को जानता िंू, यजुवेद और सामवेद को जानता िूँ, इन सबके साथ मुझे ेमन्त्रों और पपवत्र ग्रन्थों का िी ज्ञान िै, म ैंआममा को निीं ंजानता ।'[299] मुण्डकोपतनषद् में किा िै, "दोनों प्रकार के ज्ञान का, ऊंची और नीची कोहट के ज्ञान का, सम्पादन करना आवश्यक िै। तनम्न कोहट का ज्ञान वि िै जो िमें ऋग्वेद, सामवेद, अथववेशद, कमकशाण्ड एवं व्याकरण आहद से प्राप्त िोता िै... ककन्तु उच्च कोहट का ज्ञान यि िै त्जसके द्वारा अपवनश्वर ब्रह्म को जाना जाता िै।"[300]

6. उपतनषदों के पवषय

उपतनषदों का केन्द्रीय पवषय दर्नशर्ास्त्र की मूलभूत समस्या िै। उपतनषदों का लक्ष्य समय की खोज करना िै। वस्तुओंऔर उनके गौण कारणों से असन्तोष ऐसे प्रश्नों को जन्म देते िैं जो िमें श्वेताश्वर उपतनषद् के प्रारम्भ में ममलतेिैं, "िम किां ंसे उमपन्न िुए, िम ककसमें तनवास करते िैं और िम किां ंजाएंगे? िे ब्रह्मज्ञातनयों! िम यिां ंदु:ख-सुख में ककसके र्ासन में रितेिैं? तया काल, या प्रकृतत या अभावजन्य अतनवायतशा, या संयोग, या तत्त्वों को कारण माना जाए, अथवा उसको त्जसे पुरुष किते िैं और जो परब्रह्म िै ?" केनोपतनषद् में मर्ष्य पूछता िै, "ककसकी इच्छा से प्ेररत िोकर मन अपनेअमभलपषत प्रयोजन की ओर आगे बढ़ता िै ? ककसकी आज्ञा से प्रथम प्राण विार आता िै और ककसकी इच्छा से िम यि वाणी बोलते िैं? कौन सा देव आंख या कान को प्ेरणा देता िै ।"[301] पवचारकों ने इत्न्द्रयानुभव को ऐसी सामग्री निीं ंमाना त्जसकी व्याख्या न िो सके, जैसा कक सामान्य बुद्धध वाले व्यत्तत समझते िैं। उन्िोंने सन्दिे प्रकट ककया तया इत्न्द्रयों द्वारा

---

296 विी, 1/12 4, 51

297 बृिदारण्यक उपतनषद्, 2/4 10

298 देखें छान्दोग्य, 5:3, 10; बृिदारण्यक ,3, 5, 1, 44, 21; 62, 12 कौषीतकक, अध्याय 1; तैपत्तरीय,2: 4; कि ,2: 23

299 छान्दोग्य उपतनषद्, 7: 21

300 मुण्डक, 1: 1, 4 - 5 मैत्रायण, 6/21 |

301 केनोपतनषद्, 1/11

 गृीत ज्ञान को अन्तम और तनतश्चत माना जा सकता ि ै? तया मन की वे ेर्त्तयां त्जनके द्वारा

इन्द्रियानुभव
िोता ि ैअपने-आपमें स्वतन्त्र सत्ता रखती िैं, या वे उनसे भी किीं ंअधधक र्त्तर्ाली एक ऐसी सत्तारूपी कारण के काय र्श िैं जो उनके पीछे पवद्यमान ि ै? कैसे िम भौततक पदाथों को कायक्रशम में उमपन्न और उसी रूप में त्जसमें वे िैं, उन्िें उनके कारणों के समान िी यथाथ शमान लें ? इन सबके पीछे कोई परमसत्ता अवश्य िोनी चाहिए, जो स्वयम्भू िो (जो अपनी सत्ता के मलए अन्य ककसी पर आधश्रत न िो), त्जसके अन्दर िी मन को भी आश्रय ममलता िो। ज्ञान, मन, इन्द्रियां और उनके पवषय सब पररममत और प्रततबन्धयुतत िैं। नैततकता के क्षेत्र में िम देखते िैं कक िमें सीममत पदाथ शसे सच्चा आनन्द निीं ममल सकता। सांसाररक सुख-भोग क्षणभंगुर िैं, जो बुढ़ापे एवंमृमृयु से पवनष्ट िो जाते िैं। केवल तनमय िी िमें स्थायी आनन्द प्रदान करा सकता िै। धम शके क्षेत्र में मि तनमयजीवन की प्रात्प्त के मलए आग्रि करते िैं। इन सब कारणों से यिां ंयि बलात् ्पवश्वास करना पड़ता ि ैकक एक ऐसी सत्ता अवश्य ि ैत्जसे काल निीं ंव्यापता; वि एक आध्यात्ममक सत्ता िै, ऐसी सत्ता ि ैजो दार्तशनकों की खोज का पवषय िै, िमारी इच्छाओंको पूण शकरने ेवाली एवं ंधम शका प्राप्तव्य लक्ष्य िै। उपतनषदों के

रचतयता
ऋपषगण िमें इस प्रधान यथाथसशत्ता की प्रात्प्त के मलए माग-श प्रदर्नश करते िैं जो तनमयसत्, ् परमसमय और पवर्ुद्ध आनन्द िै। प्रमयेक मानव-हृदय की प्राथनशा ि ै:

"मुझे ेअसत् ्से सत् ्की ओर ले चलो, अन्धकार से प्रकार् की ओर ले चलो, और मृमृयु से अमरमव की ओर ले चलो।"[302]

अब िम उपतनषदों के दार्तशनक तत्त्व की व्याख्या दो भागों, अध्याममपवद्या और नीततर्ास्त्र में पवभतत करके करेंगे। आध्याममपवद्या के अन्दर िम परमसत्ता, जगत् ्का स्वरूप और सृतृष्ट की समस्या का प्रततपादन करेंगे और नीततर्ास्त्र में उनका व्यत्तत-सम्बन्धी पवश्लेषण, व्यत्तत का अत्न्तम लक्ष्य, उसका आदर्,श कम शका मुत्तत के साथ सम्बन्ध एवं ंमुत्तत की उच्चतम धारणा तथा पुनजन्शम के मसद्धान्त का प्रततपादन करेंगे।

7. यथाथतशा का स्वरूप

परमसमय का स्वरूप तया िै, इस प्रश्न को िल करने ेके मलए उपतनषमकारों ने वैहदक ऋपषयों की

आमममर्दवृष्ट के साथ अध्यमममर्दत्व को कामममक ववकास वैहदक सूक्तों से उच्चतम पवचार तक पिुंचे े थे, े उनके अनुसार एकमात्र सत्ता यथाथ शथी (एकं सत्) ्, जो नानापवध सत्ताओं में अपनेको व्यतत करती िै। उपतनषदों में विांइसी तनष्कष शका समथनश ककया गया ि ैजिां ंइस समस्या के समाधान के मलए उन्िोंनेआममा के स्वरूप का दार्तशनक र्दत्ष्टकोण से पवश्लेषण ककया िै। आममा र्ब्द की व्युमपपत्त के पवषय में िीकिीक िम निीं ंजानते। ऋग्वेद के 10: 16, 3 में इसका अथ शप्राण अथवा जीवनाधार (आध्यात्ममक सत्त्व) बताया गया िै। र्नैः-र्नैः आगे चलकर इसका अथ शआममा अथवा जीव िो गया। वास्तपवक जीव, अथाशत् ्आममा की सैद्धात्न्तक कल्पना की किींभी स्पष्टरूप में पूरे ब्यौरे के साथ व्याख्या निींकी गई और न िी इससे सम्बत्न्धत बबखरे-

[302] असतोमासद्गमयतमसोमाज्जयोततगमशय, मृमृयोमा शअमृतं ंगमय।" बृिदारण्यक उपतनषद् ,1: 3, 27।

बबखरे कथनों को ककसी एक स्थान पर संगतरूप में रखा गया ि ै। गुरु प्रजापतत और उसके मर्ष्य इन्द्र के मध्य संवाद में, जो छान्दोग्य उपतनषद् में आता ि ै, िमें अि या आममा की पररभाषा के पवषय में प्रगततर्ील पवकास ममलता ि ै, त्जसे चार श्रेणणयों में पवभतत ककया गया 3 / (1) र्ारीररक आममा, (2) आनुभपवक आममा, (३) सवातशतर्ायी, प्रच्छन्न, आममा, और (4) परम आममा। प्रश्न का रूप, त्जसकी पववेचना की गई ि ै, मनोवैज्ञातनक न िोकर अधधकतर आध्यात्ममक ि ै। मनुष्य की आममा, एवं ंउसकी केन्द्रीय सत्ता का स्वरूप तया ि ै? प्रजापतत संवाद को प्रारम्भ करते िुए कुछ सामान्य लक्षणों का वणनश करता ि ै जोकक यथाथ शआममा के अन्दर पाए जाने चाहिए, "आममा वि ि ै जो पाप से मुतत ि ै, वृद्धावस्था से रहित ि ै, मृमृयु एवंर्ोक से रहित ि ै, भूख और प्यास से रहित ि ै, जो ककसी वस्तु की इच्छा निीं ंकरती यद्यपप उसे इच्छा करनी चाहिए, ककसी वस्तु की कल्पना निीं ं करती यद्यपप उसे कल्पना करनी चाहिए, यि वि सत्ता ि ै त्जसको समझने ेका प्रयमन करना चाहिए।"[303] यि एक कताश ि ै जो सब पररवतनशों के अन्दर सामान्य रूप से पवद्यमान रिता ि ै, जागररत अवस्थाओं में, स्वप्न में, तनहद्रतावस्था में, मृमृयु में, पुनजन्शम में और अत्न्तम मुत्तत में भी एक समान पवद्यमान रिने ेवाला एक आवश्यक अवयव ि ै।304 यि एक र्ुद्ध एवं ंसरल समय ि ै त्जसे कोई नष्ट निीं ंकर सकता। मृमृयुइसे छू निीं सकती, न कोई पवकार इसे तछन्न-मभन्न कर सकता ि ै। त्स्थरता, तारतम्य एकता एवं तनमयकक्रयार्ीलता इसके पवर्ेष लक्षण ि ैं। यि अपनेमें पूण शएक लोक ि ै। ऐसी कोई बाह्य वस्तु निीं ंजो इसकी प्रततद्वन्द्वी बन सके। आधुतनक काल का समीक्षक इसमें आपपत्त करेगा कक यि सारी प्रकक्रया 'चक्रक दोष' से पूण शिै। आममतनभरशता एवं आममपूणतशा के लक्षणों को स्वतःमसद्ध मान लेने ेपर समाधान भी स्वयंमसद्ध िो जाता ि ै। ककन्तुजैसा कक आगे चलकर िम देखेंगे, इस प्रकक्रया को अपनाने में एक पवर्ेष तामपय शिै। प्रजापतत इस पवषय को स्पष्ट कर देता ि ै कक मनुष्य की आममा यथाथ शमें स्वयं कत्ता ि ै एवं स्वतःमसद्ध ि ै और इसमलए वि साध्य पदाथ शनिीं ंिो सकती। यि पुरुष ि ै जो द्रष्टा ि ै, देखे जानेवाला पदाथ शनिीं ंि ै।' यि गुणों का संघात निीं ंि ै, त्जसे 'पवषय' कि सकें ककन्तुवि स्वयंपवषय ि ै जो उन सब गुणों के परे ककन्तुउनकी पृष्ठभूमम में तनरीक्षण करने ेवाला अि ि ै। यि यथाथरूशप में पवषयी ज्ञाता ि ै और इसमलए कभी ज्ञेये कोहट में निीं ंआ सकता। आममा के बिुत से घटक, त्जनका सामान्यरूप से उपयोग िोता ि ै, पवषय की कोहट में आ सकते ि ैं। यि दलील एक धारणा बना लेती ि ै कक जो कुछ भी पवषय की कोहट में आ सकता ि ै उसे अनामम िोना चाहिए। ऐसे प्रमयेक पवषय को िमें अलग कर देना चाहिए जो िमारी यथाथ शआममा के मलए पवजातीय एवं ंउससे मभन्न ि ै। पिला उत्तर यि हदया गया कक यि दे ि जो उमपन्न िोती ि ै, बढ़ती ि ै, क्षीणता को प्राप्त िोती ि ै और नष्ट िोती ि ै, यिी यथाथ शमें आममा ि ै। प्रजापतत के अनुसार, आममा वि ि ै जो तब हदखाई पड़ती ि ै जब िम अन्य पुरुष की आंखों में देखते ि ैं, अथवा पानी-भरे पात्र में या दपणश में देखने पर जो हदखाई पड़ता ि ै विी आममा ि ै। यि सुझाव हदया गया ि ै कक धचत्र में तो केर् और नाखून तक आ जाते ि ैं। इसमलए इस बात का तनदेर् करनेके मलए कक यि आममा निीं ि ै, प्रजापतत ने इन्द्र से किा कक तुम अपनेको सजाओ, बहढ़या ककस्म के वस्त्र धारण करो और कफर अपना प्रततबबम्ब जल में अथवा दपणश में तनिारो। और इन्द्र ने अपनी ि ी समान व्यत्तत को बहढ़या वस्त्रों से सत्ज्जत िुए और साफ-सुथरे रूप में देखा।

---

303 8:7,1।

304 बृिदारण्यक उपतनषद् , 4: 4, 3।

इस पर इन्द्र को संर्य उमपन्न ि◌ुआ। "यि छाया में अथवा जल में वतमशान सजी-धजी आममा ि◌ै जब र्रीर सजा-धजा ि◌ै; वि उत्तम वस्त्र पिने ि◌ै जब र्रीर भी उत्तम वस्त्र पिने ि◌ै; वि भली प्रकार से साफ-सुथरी ि◌ै जब र्रीर भी साफ-सुथरा ि◌ै, जब र्रीर अन्धा ि◌ोगा तो यि छायापुरुष भी अन्धा हदखाई देगा, यहद र्रीर लंगड़ा ि◌ै तो यि भी लंगड़ा हदखाई देगा, यहद र्रीर अंगपविीन ि◌ै तो छायापुरुष भी अंगपविीन हदखेगा और यहद वस्तुतः र्रीर नष्ट ि◌ो जाएगा तो यि भी नष्ट ि◌ो जाएगा। इसमलए म ◌ैंइसमें संगतत निीं ◌ंदेखता।"[305] इन्द्र अपनेगुरु प्रजापतत के पास पिुंचता ि◌ै और एक दीघ शव्यवधान के बाद उसे बताया जाता ि◌ै कक "वि जो स्वप्नों में सुखपूवकश पवचरण करती ि◌ै विी आममा ि◌ै।" र्रीर यथाथ शमें आममा निीं ◌ंि◌ै, तयोंकक र्रीर सब प्रकार के दु◌ुःखों एवं अपूणतशाओंका लक्ष्य बनता ि◌ै जोकक भौततक घटनाएं ि◌ैं। र्रीर चैतन्य का साधन मात्र ि◌ै और चैतन्य र्रीर से उमपन्न पदाथ श निीं ◌ंि◌ै। और अब इन्द्र से किा जाता ि◌ै कक स्वप्न देखने वाली पवषयी आममा ि◌ै। ककन्तु अब उसके आगे एक और कहिनाई आती ि◌ै। "यद्यपप यि तो िीक ि◌ै कक उस आममा में र्ारीररक दोष के कारण दोष निीं ◌ंआता, न र्रीर पर चोट लगने से चोट लगती ि◌ै, न र्रीर के लंगड़ेपन से वि लंगड़ी ि◌ोती ि◌ै, तो भी ि◌ो सकता ि◌ै कक दोष उसका पीछा करके उसे स्वप्नों में चोट पिुंचा सकें। उस पर दु◌ुःख का असर तो ि◌ोता ि◌ै तयोंकक दु◌ुःख के कारण वि आंसू ◌ूबिाती ि◌ै, इसमलए इसमें भी म ◌ैं संगतत निीं ◌ं देखता।"[306] और मानमसक अनुभवों के स्थान पर प्रजापतत ने स्वप्न की अवस्थाओं को िी इसमलए उदिारण के मलए चुना, तयोंकक स्वप्न र्रीर के ऊपर अधधक तनभरश निीं ◌ंकरते, और अपने पवमर्ष्ट स्वरूप के कारण मित्त्वपूण शिैं। यि कल्पना की जाती ि◌ै कक आममा बबना रोक-टोक स्वप्नों में पवचरण करती ि◌ै और मन भी स्वप्नावस्था में र्रीर के घटनाक्रम से स्वतन्त्ररूप में इतस्ततः गतत करता ि◌ै। यि मत बराबर बढ़ते रिने ◌ेवाले और पररवतनशर्ील मानमसक अनुभवों एवं आममा को एक समान स्तर पर ला देता ि◌ै। यि अनुभव करने ◌ेवाली आममा ि◌ै, और इन्द्र ने िीक िी पिचाना कक यि अनुभव करने ◌ेवाली जीवाममा आनुभपवक घटनाओं के अधीन ि◌ै। यि पवषयी निीं ◌ंि◌ो सकती, तयोंकक यि प्रततक्षण पररवततततश ि◌ोती रिती ि◌ै। यद्यपप यि र्रीर से स्वतन्त्र ि◌ै, ककन्तु स्वप्न की अवस्थाओं की स्वतन्त्र सत्ता निीं ◌ंि◌ै, और यथाथ शजि अथवा आममा को अवश्यमेव सवथशा स्वतन्त्र पवद्यमान ि◌ोना चाहिए। काल और जन्म की मयादशाओं के ऊपर तनभरश जि तनमय निीं किा जा सकता। स्थानीय एवं ◌ंभौततक पररत्स्थतततयों में बंधी ि◌ुई आममा एक कालजन्य प्राणी ि◌ै। यि भौततक जगत् ◌्रूपी संसार में भ्रमण करने ◌ेवाली ि◌ै। यि अपने मलए अपूण शसामग्री से एक अपूण शजगत् ◌्का तनमाणश करती ि◌ै। यि न तो अपवनश्वर ि◌ै और न िी इसे असीम स्वतन्त्रता प्राप्त ि◌ै। िमें एक ऐसे पवषयी की आवश्यकता ि◌ै जो सब प्रकार के अनुभवों का आधार और उनका धारण करने ◌ेवाला ि◌ो, एक अततव्यापक सत्ता, त्जसकी स्वप्नावस्था एवं ◌ंजाग्रतावस्था के अनुभव केवल अपूण शअमभव्यत्तत मात्र ि◌ों। केवल अवस्थाओं का प्रविा स्वयं अपनेको अपने-आप धारण करनेकी क्षमता निीं ◌ंरख सकता और भौततक अनुभव करने ◌ेवाली आममा का स्वाधधकार से तनमय निींिो सकती। इन्द्र कफर एक बार प्रजापतत के पास पिुंचता ि◌ै और अपनी त्स्थतत को उसके आगे रखता ि◌ै। एक लम्बे समय के पश्चात् ◌्उसे इस प्रकार मर्क्षा दी जाती ि◌ै, "जब मनुष्य नींद में आराम करता ि◌ै और पूण शपवश्राम कर लेता ि◌ै तथा कोई स्वप्न निीं ◌ंदेखता, विी आममा ि◌ै।"[307] प्रजापतत ने

305

8:9,11

306 8: 10, 2 3

307 8: 11,11

इन्द्र की कहिनाई को समझ मलया। आममा को अपनेउन्नत पद से उतारकर अवस्थाओं की श्रृंखला का दजाशमात्र निीं ंबताया जा सकता था तयोंकक उससे एक त्स्थर अि की वास्तपवकता की आवश्यकता िी जाती रिती और आममा को अपनेआकत्स्मक अनुभवों के अधीन बना देना पड़ता। इन्द्र को इस पवषय की मर्क्षा देना िै कक अनुभवगम्य बाह्य पदाथों को एक त्स्थर पवषयी की आवश्कता िै त्जससे वे ेअनुभव प्राप्त कर सकें। प्रजापतत का आर्य यि बात स्पष्ट करनेका था कक त्जस प्रकार एमलस के अद्भुत देर् की कितनयों को छोड़कर अन्यत्र सब जगि मंुि बिनाकर धचढ़ाना तो बबना बबल्ली की सत्ता के सम्भव निीं ंिो सकता ककन्तु बबल्ली के मलए आवश्यक निीं कक वि रूर िी मंुि बिनाकर धचढ़ानेवाली िो, इसी प्रकार पवषय की सत्ता के मलए पवषयी का िोना आवश्यक िै ककन्तु यि आवश्यक निीं ंकक बबना पवषय के पवषयी भी गायब िो जाए। बबना आममा के कोई भी ज्ञान, कोई भी कला एवं ंकोई भी नैततकता सम्भव निीं ंिै। आममा के साथ सम्बन्ध से रहित पवषय असत् ्रूप में िैं। पवषयी सत्ता से तो सब पवषयों की सत्ता िै, ककन्तु पवषयी स्वयं उन ज्ञेय पवषयों की कोहट में निीं। इन्द्र को इस पवषय का अनुभव करने ेयोग्य अवस्था में लानेके मलए कक वि समझ सके कक आममा िी सब अनुभवों का ज्ञाता िै, प्रजापतत ने अपकषणश पद्धतत का उपयोग ककया, त्जसमें कुछ अपनी प्रततकूलताएं भी िैं। साधारणतः िमारा जीवन पवषयों में उलझा रिता िै। िम संसार में बिुत फंसे िुए िैं। िमारी आममा मनोभावों, इच्छाओंऔर कल्पनाओं में इतनी खोई रिती िै कक वि अपनेको निीं ंपिचान पाती कक वि यथाथ शमें तया िै। केवल पदाथतशनष्ि जीवन व्यतीत करनेके कारण, प्राकृततक वस्तुओंमें िी अमयधधक लीन रिने के कारण एवं ंसंसार के व्यवसायों में कमणशयता के साथ तनरन्तर संग्लन रिने ेके कारण िम समस्त वस्तुओंके प्रथम तत्त्व, मनुष्य की आममा के पवषय में पवचार करनेके मलए एक क्षण भी निींदेना चािते। िम समझ लेते िैं कक ज्ञान अपने-आप िो गया। इस पर धचन्तन करने ेका और इसकी जहटलताओंएवंगुत्मथयों को सुलझाने ेका मतलब िै मत्स्तष्क पर दबाव डालना। यूरोपपयन पवचारधारा के इततिास में ज्ञान की सम्भाव्यता का प्रश्न बिुत पीछे आकर उमपन्न िुआ, ककन्तुजब भी यि प्रश्न उिा तो इस बात का अनुभव ककया गया कक जब तक आममा अपनी मानमसक कक्रयाओं ंके साथ, कांट के अनुसार, अनुभवों के ज्ञात लक्षण के ऐतय की स्थापना निीं ंकरती तब तक ज्ञान का िोना असम्भव िै। इसे िी प्लाहटनस ने 'सिचय'श का नाम हदया। तनतान्त प्राथममक साक्षामकार के मलए भी आममा की यथाथ शसत्ता आवश्यक िै। प्रकट में जो इत्न्द्रयानुभव तनत्ष्क्रय प्रतीत िोतेिैं, उनमें भी िम आममा की चेष्टा का अनुभव करते िैं। िर एक पररवतनश एवं िर एक अनुभव एक केन्द्रीय आममा की कल्पना करता िै। स्वयंपररवतनशों को भी एक सम्पूण शसत्ता के अन्तगतश पररवतनश माना जाता िै, त्जन्िें िम समय समझकर जानने का प्रयमन करते िैं। प्रजापतत इस त्स्थतत को स्पष्ट करके आगे रखना चािता िै कक आममा तनरन्तर पवद्यमान रिती िै, उस समय भी जबकक जागररत या स्वप्न अवस्था के अनुभव कुछ समय के मलए स्थधगत एवं तनत्ष्क्रय तयों न रिें। सुषुत्प्त की अवस्था में िमारे सामने कोई अनुभूत पदाथ शनिीं ंिोते, ककन्तु इसी कारण िम यि निीं कि सकते कक आममा भी पवद्यमान निीं ंिै। प्रजापतत इस बात को मानकर चलता िै कक इन्द्र तनहद्रतावस्था में आममा की सत्ता स्वीकार करेगा, तयोंकक स्वप्नावस्था में भौततक जगत् ्के साथ सामतयक पवच्छेद एवंक्रमभंग िो जानेपर भी चेतना तनरन्तर बनी रिती िै; अन्य ककसी प्रकार से इसकी व्याख्या निीं ंिो सकती, यहद चेतनास्वरूप आममा की तनरन्तर सत्ता को स्वीकार न ककया जाए। देवदत्त एक प्रगाढ़ तनद्रा से उिनेपर भी देवदत्त

िी रिता िै, तयोंकक त्जस समय वि सोनेगया था उस समय उसके इत्न्द्रयानुभवों में जो क्रम था, वि सोकर उिनेके बाद के अनुभवों के क्रम में संगत िो जाता िै। उसके पूवानुशभव वतमशान पवचारों के साथ परस्पर एक िी कड़ी में जुु जाते िैं, अन्य ककसी के पवचारों के साथ निीं ंजुते़। अनुभवों का यि नैरन्तय शिमें यि स्वीकार करने े को पववर् कर देता िै कक चेतना के समस्त घटकों की पृष्िभूमम में तनरन्तर पवद्यमान रिने ेवाली एक त्स्थर आममा िै। बबना ककसी पवषय पर पवचार करने ेके भी तनहद्रतावस्था में जो रिती िै, यि आममा िै। दपणश केवल इसीमलए कक उसमें कुछ निीं ंहदखाई देता, नष्ट निीं ंिो जाता। प्रजापतत यिां ंपवषय के ऊपर पवषयी के परम आधधपमय को मसद्ध करना चािता िै, जो याज्ञवल्तय के अनुसार तथ्य िै, अथात्श ्उस अवस्था में भी जबकक सब पवषय या प्रमेय पदाथ शपवलुप्त िो जाते िैं, पवषयी या प्रमाता आममा तनजी प्रकार से वतमशान रिता िै। "त्जस समय प्रकार् के पुंज सूय शएवं ंचन्द्रमा अस्त िो जाते िैं और अत्ग्न बुझा दी जाती िै, तब आममा स्वयंअपने-आपमें प्रकार्मान रिती िै।"[308] ककन्तु ्इन्द्र प्रजापतत के आगे अपने को अधधकतर मनोपवज्ञान का पत्ण्डत समझता िै। वि यि समझता िै कक समस्त दैहिक अनुभवों से पवरहित एवं ंअमूत शस्वप्न आहद के अनुभव-कलाप से भी पविीन यि पवषयपविीन आममा एक प्रकार की तनष्फल ममथ्या कल्पनामात्र िै। यहद आममा वि निीं ंिै त्जसे यि जानती िै, त्जसको अनुभव करती िै एवं ंत्जसके ऊपर कक्रया करती िै, यहद यि उससे सवथशा पवयुतत िै, और इस प्रकार अपनेघटकों से रूनूय िै तब तया बच जाता िै? "कुछ निीं, ं" ऐसा इन्द्र ने किा, "प्रमयेक पदाथ शसे पृथृक् िो जाना रूनूय के समान िै।"[309] गौतम बुद्ध एक वृकृष के दृष्टान्त को लेते िैं और पूछते िैं कक यहद िम उसके सब पत्तों को झाड़र परे फेंक दें, रााखाओं को काट डालें, छाल को भी तनकाल फेंकें या एक प्याज की प्रमयेक परत को उधे़ डालें तो तया बचता िै। कुछ निीं? ब्रैडले तनदेर् करता िै कक "ऐसा अिं आममा जो अपने रारीभूत आत्ममक अनुभव के पूरकों से पूव शएवं ंपरे भी पवद्यमान रिने ेका दावा करता िै, एक तनतान्त कोरी कल्पनामात्र एवं ंममथ्या िै, और केवल एक पवरालकाय दानव िी िोगा त्जसे ककसी भी प्रयोजन के मलए िम स्वीकार निींकर सकते।"[310] इस मत के आधार पर स्वप्न रहित प्रगाढ़ तनद्रा में आममा बबल्कुल पवद्यमान निीं ं रिती। लॉक घोषणा करता िै कक ऊंघने ेकी प्रमयेक अवस्था आममा के पवचार को तनमूलश मसद्ध कर देती िै। "नींद में एवंसमाधध अवस्था में मन तो पवद्यमान रिता निीं, ं इसमलए काल अथवा पवचारों की परम्परा का भी कोई प्रश्न निींउिता। बबना पवचार के भी मन की पवद्यमानता को मानना एक प्रकार का प्रमयाख्यान िै, यि कुछ निीं ंऔर तनरथकश कल्पना िै।"[311] लॉक और बकशले से भी तात्ल्दयों पूव शइन्द्र एक अनुभववादी िो गया िै, ऐसा प्रतीत िोता िै। लोमसे प्रश्न करता िै कक "यहद तनतांत स्वप्नरहित प्रगाढ़ तनद्रावस्था में आममा पवचार करती िै, अनुभव भी करती िै, ककन्तु ककसी पदाथ शकी इच्छा निींकरती तो तया आममा वास्तव में उस समय िै और यहद पवद्यमान िै तो कैसे िै ?" "ककतनी बार उत्तर हदया गया िै कक यहद यि सम्भव िो सकता िै तो आममा की सत्ता कुछ न िोती। तयों न िम सिासपूवकश स्वीकार करें कक त्जतनी बार ऐसा िोता िै आममा निीं ंिोती।"[312] इन्द्र इस

---

308 बृिदारण्यकउपतनषद् ;4:3,6 ।

309 ब्रैडले एधथकल स्टडी़ पृष्ि 52।

310 अपपरेवग्स एण्ड ररयमलटी'पृष्ि 89।

311 बकशले का वतस'श : खंड1 पृष्ि4।

312 'मेटाकफत्जतस, अंग्रेजी अनुवाद,खंड 2, पृष्ि 317।

प्रकार की घोषणा करने ेका सािस रखता िै।"[313] "वस्तुतः यि नष्ट िो जाता िै।" यि एक मित्त्वपूण शमर्क्षा िै त्जसे भारतीय पवचारधारा में बार-बार भुला हदया गया िै। बाह्य जीवन के तनषेध का अथ शिी आभ्यन्तर देवता का नार्। ऐसे व्यत्ततयों को जो समझतेिैं कक िम पवर्ुद्ध आममतनष्ठा के पवचार द्वारा परम प्रातव्य लक्ष्य के उन्नत मर्खर तक पिुंचते िैं, इन्द्र और प्रजापतत के संवाद की ओर ध्यान देना चाहिए। इन्द्र के मत में दिे द्वारा उमपन्न मयादशाओं से स्वतन्त्र, काल एवं ंदेर् की सीमा से भी स्वतंत्र और पवषय की सत्ता से भी रहित िोने ेकी अवस्था एक प्रकार की सरल र्ून्यता-मात्र िै। यि पवषयपविीन अिं-डेकोटश का यि अमूत शचेततयता (Cogito), कांट के र्ब्दों में यि औपचाररक एकमव, यि पवषयरहित पवषयी एक असम्भवरूप िै त्जसकी कल्पना पृष्ठभूमम में की जाती िै और त्जसका कोई सम्बन्ध आनुभपवक चेतना के साथ निीं ंिै। दार्तशनक धचन्तन एवं मनोवैज्ञातनक पवश्लेषण दोनों िी िमें उतत पररणाम की ओर ले जाते िैं। ककन्तुप्रजापतत आममा के उस अत्स्तमव पर बल देनेका प्रयमन कर रिा था त्जस पर इत्न्द्रयानुभव-संबंधी पररवतनशों का कोई असर निीं ंपड़ता। वि इस आर्य को स्पष्ट करनेके मलए आतुर था कक यद्यपप आममा चेतनावस्थाओं में एकदम पृथक् निीं िै, वि चेतनावस्था स्वरूप भी निीं ंिै। डातटर मैटैगटश इस पवषय को इस प्रकार प्रततपाहदत करता िै, "आममा के अन्दर तया-तया तनहित िै ?- वि प्रमयेक पवषय त्जसका उसे ज्ञान िोता िै। और आममा से बाह्य तया िै ? उसी प्रकार, यि समस्त वस्तु-पवषय त्जसका ज्ञान उसे िै। जो पवषय उसके अंतगतश निीं ंिै, उसके पवषय में वि तया कि सकता िै ? कुछ निीं। और त्जसके पवषय में वि कुछ कि सकता िै वि इसके मलए बाह्य निीं ंिै। यिी एकमात्र तनष्कष शिै। और इस पवरोधाभास को दूरू करने ेका कोई भी प्रयमन आममा को पवलुप्त कर देता िै, तयोंकक दोनों पक्ष अतनवाय शरूप से परस्पर सम्बद्ध िैं। यहद िम इसे अन्य सब वस्तुओंसे पृथक् करके एक पवमर्ष्ट व्यत्ततमव देने का प्रयमन करें तो वि सब पवषयवस्तु त्जसका इसे ज्ञान िो सकता िै, नष्ट िो जाता िै, और इसका वि व्यत्ततमव िी नष्ट िो जाता िै त्जसे सुरक्षक्षत रखने के पवचार से िमनेप्रारम्भ ककया था। ककन्तु यहद दूसूरी ओर िम इसके घटकों की रक्षा का प्रयमन करें, बाह्य वस्तुओं का एकदम पवचार न करके केवल इसके आन्तररक रूप पर िी ोर दें तो चैतन्य पवलुप्त िो जाता िै, और चूंकक आममा के अततररतत घटक कोई निीं ंिैं, मसवा प्रमेय पदाथों के त्जनका ज्ञान प्राप्त करना िी उसका काय शिै, वे ेघटक भी नष्ट िो जाते िैं।"[314] आममा के सवातशतर्ायी स्वरूप की कल्पना में किां ंदोष आता िै, इसका हदग्दर्नश इन्द्र िमें कराता िै। आममा को पूण शके जीवनरूप में प्रदमर्तश करना चाहिए न कक मात्र अमूत शरूप में। इसमलए आगे का क्रम यि िै, जबकक इन्द्र प्रजापतत के आगे अपनी कहिनाई की व्याख्या इन र्ब्दों में करता िै, "इस तथ्य में कक स्वप्नरहित प्रगाढ़ तनद्रा में पवषयी स्वयं की सत्ता का भी ज्ञान निीं ंरखता और न ककसी अन्य पवद्यमान पदाथ शका ज्ञान रखता िै, वि एक प्रकार से सवथशा र्ून्यरूप िो गया। इसमलए म ैंइसमें भी संगतत निींदेखता।'[315] प्रजापतत तनदेर् करता िै कक यि अमभज्ञा तनरन्तर पवद्यमान रिती िै और पररवतनशों के अन्दर भी समान रूप से रिती िै। समस्त पवश्व परमाथ श के पवचार को आममसाक्षामकार करने ेकी एकमात्र प्रकक्रया िै। "िे भगवन्।् यि र्रीर मरणधमाश िै और सब कुछ

---

313 "पवनार्मेवापीतोभपवत।" छान्दोग्य उपतनषद् , 8: 11, 1-2।

314 'गेमिलयन कास्मोलॉजी,' पवभाग 27।

315 8 :11, 1।

नश्वर िै। यि आममा का तनवास स्थान मात्र िै, जो आममा अमर िै और रीर से मभन्न िै। आंखों की पुतमलयों में जो पुरुष हदखलाई देता िै यि विी िै ककन्तु आंख स्वयंमें देखने का साधन-मात्र िै। वि जो पवचार करता िै कक म ैं इसे सूघू वि पवचार करने ेवाला आममा िै पर नाक तो गन्ध आहद का अनुभव करने ेका साधन मात्र िै।"[316] आममा को एक अमूत शऔपचाररक तत्त्व के रूप में न हदखलाकर एक कक्रयारील व्यापक चेतना के रूप में दर्ायशा गया िै, िैगल के र्ब्दों में, त्जसकी अपनी स्वतन्त्र सत्ता िै और अपने मलए भी वि सत्त िै। यि एक सरल, अपने में पूण शऔर नानापवध-भेदयुतत भी िै। यि दोनों िी िैं, अथात्श ्पवषयी भी और पवषय भी। पवषय, त्जनका ज्ञान मि अनुभव करते िैं, इसके ऊपर आधाररत िै। यथाथ शअनन्त आममा वि आममा निीं ंिै जो मात्र सीममत निीं ंिै। यि सीममत वस्तुओंकी गणना के अन्दर निीं ंआती, ककन्तु तो भी उन सबका आधार िै। यि व्यापक आममा िै. जो सवान्शतयामशी भी िै और सवातशतर्ायी भी िै। समस्त पवश्व ब्राह्माण्ड इसी के अन्दर तनवास करता िै और इसी के अन्दर उच्च्र्ास लेता िै। "चन्द्रमा और सूय शइसके चक्षुिैं, अन्तररक्ष की चारों हदर्ाएं इसके कान िैं, वायु

इसका प्राण िै।"[317] यि एक देदीप्यमान प्रकार् िै, जो व्यत्तत के अन्तस्तल में प्रज्जवमलत िोता िै; एक व्यापक आकार्, त्जससे सब प्राणी जन्म ग्रिण करते िैं;[318] सृत्ष्टरचना का प्राणमूलक'[319] तमव, ऐसा पवषयी, त्जसमें समस्त संसार स्पन्दन करते िुए गततमान िै।'[320] इसके बिार कुछ निीं ंिै। यिी तनत्श्चतरूप से समस्त पदाथों की चेतना को धारण ककए िुए िै। समस्त पवश्व में कोई ऐसी वस्तु निीं ंिै जो िमारे अन्दर त्स्थत इस असीम सत्ता में समाई िुई न िो। यि आममा त्जसमें समग्र जगत् ्पररवेत्ष्टत िै, एकमात्र यथाथ शसत्ता िै, त्जसके अन्दर प्रकृतत की सब घटनाएं और अनुभवों के भी कुल इततिास वतमशान िैं। िमारी अणु आममाएं भी इसके अंतगतश िैं और यि उनके भी ऊपर िै। यिी पवषयी िै, जो पदाथानुशभवों के समुच्चय से भी अधधक िै और जो इसी

की अपूण शअमभव्यत्ततमात्र िै। िमारी समस्त चेतनावस्थाएं इसी केन्द्रीय प्रकार् के इतस्ततः चतकर काटती िैं। इसका पवलोप िोने ेसे उनका भी पवलोप िो जाएगा। पवषयी के अभाव में अनुभवपुञ्ज भी निीं ंरिेगा, देर् एवं काल-सम्बन्धी संवेदनाओं की व्यवस्था भी न रिेगी। इसी की सत्ता के कारण स्मरण, अन्तध्यानश, ज्ञान और नैततकता आहद सब सम्भव िो सकतिैं। उपतनषदों का मत िै कक यि पवषयी एकमात्र व्यापक आधार िै जो सब व्यत्ततयों में िै। यि सब वस्तुओंमें गूढ़रूप से िै और सृत्ष्टमात्र में व्यापक िै। "इसके समान दूसूरा कोई इसके अततररतत निीिंऔर न कोई अन्य पवपवतत पद िै।"[321] "श्वास लेते ेसमय इसे िी श्वास का, बोलने ेके समय इसको वाणी का, देखने के काय शमें आंख का, सुनने ेमें कान का और पवचार करते समय इसे मानस का नाम हदया

---

316 8:12। प्लेटो सेतुलना कीत्जए, जो अपने 'टीममयस' नामक ग्रन्य में दो आममाओं ेके अन्दर भेद करता िै-एक अममय श और दूसूरी ममय।श ममय शआममा में मनोवेग और राग तनहित िैं। यि अनुभवाममक जि िै जो पवनश्वर जगत् ्का, जो पररवतनशों एवं ंमृमृयु सेपूण शिै, समान-धमा शिै। अमर आममा एक बौद्धधक तत्त्व िै, जो मनुष्यों एवं संसार में एक समान व्याप्त िै, एक दैवीय स्फुमलंगं िै जो मनुष्य के व्यत्ततमव में आवद्ध द्ध िै िै (टाममयस और फीडो)। िमें अरस्तूके

'इंटलैतटस एजेंस' में भी यिी पवभेद ममलता िै, जो पवनश्वर मन एवं स्मृतृत का पवरोधी मसद्धान्त िै।

317 मुण्डोपतनषद् 1: 1; छान्दोग्य उपतनषद्, 3/13, 7।

318 छान्दोग्य, 1/91

319 छान्दोग्य, 1/11, 5 ।

320 कि, 6/1

321 बृिदारण्यक, 4 / (3) 23; छान्दोग्य, 8/1, 3।

जाता hat 3 - hat 4 सब संज्ञाएं इसी के मभन्न- मभन्न कायों के मलए दी जाती िैं।"[322] इस प्रकार त्जस आममा की व्याख्या की गई िै वि यि त्स्थर एवं तनमय पवषयी िै जो जागररत एवं ंस्वप्न अवस्था में, मरण एवंतनद्रा की अवस्था में, बन्धन तथा मुत्तत की अवस्था में बराबर एकरस रिता िै। यि बराबर िर काल में पवद्यमान िै और समस्त पवश्व का सवेक्षण करता िै। यि व्यापक पवषयी भी िै और उसी समय व्यापक पवषय भी िै। यि देखता िै और निींभी देखता िै। जैसा कक उपतनषद् ने किा, "जब कफर वि देखता निीं, ं तो भी वि देख रिा िै यद्यपप वि निीं ंदेखता; तयोंकक उसके अपवनश्वर िोनेके कारण, उस द्रष्टा के मलए देखने में कोई व्यवधान निीं ंिोता; ककन्तु ुउसके अततररतत उस जैसा दूसूरा कोई निीं, ं उससे मभन्न भी निीं, ं जो उसे देखे।"[323] यि आममा िी पूण श पवश्व िै। "म ैंिी तन:संदेि यि सब पवश्व ब्राह्माण्ड िंूं।"[324]

यि पवश्वरूपी व्यापक आममा अपनेपवमर्ष्ट स्वरूप के कारण र्दत्ष्ट का पवषय निीं ंिै। र्ंकर ने इसे इस प्रकार वणनश ककया िै, "साक्षीरूप आममा चेतना को प्रकामर्त करता िै. ककन्तु स्वयंकभी चेतना का पवषय निीं बनता।" यि अनुभव की सामग्री निीं ंिै, प्रमेय निीं ंिै, यद्यपप सब प्रमेय पदाथ शइसी के मलए िैं। यि स्वयं पवचार निीं ंिै ककन्तु समस्त पवचार इसके मलए िैं। यि स्वयंएक र्दश्य वस्तुनिीं िै, ककन्तुसमस्त र्दत्ष्टरूपी घटना का आधारतत्त्व िै। कांट के र्ब्दों में, ज्ञाता स्वय इत्न्द्रयों द्वारा ज्ञेय भौततक पदाथों का िेतु िोने ेके कारण प्रमाण का पवषय निीं बन सकता। कांट किता िै, "ककसी प्रमेय पदाथ शको जानने ेके मलए मुझे ेत्जस ज्ञाता की पिले स्थापना करनी पड़ती िै स्वयंउसे म ैंप्रमेय पदाथ शके रूप में निीं ंमान सकता।" समस्त अनुभवों का सम्पादन करने ेवाला पवषयी स्वयंकभी अनुभूतत का पवषय निीं ंबन सकता। तयोंकक यहद यि भी अनुभूतत का पवषय िो तो प्रश्न उिता िै कक इसका ज्ञान प्राप्त करने ेवाला अन्य कौन िोगा। ज्ञान सदा दो पक्षों के आधार पर कक्रया करता िै। इसमलए यि आममा अव्याख्येय िै, त्जसकी पररभाषा निींिो सकती। अन्य कततपय परमतत्त्वों की भांतत इसे स्वयंमसद्ध स्वीकार करना िोता िै। यि अन्य सबकी व्याख्या िै यद्यपप स्वयंयि अव्याख्येय िी रिता िै। कोंते की यि पुरानी समस्या की पवषयी लौटकर स्वयं अपने को ग्रिण निीं कर सकता, तनतान्त कल्पना िी निींिै। "यि आममा जो यि भी निीं, ं वि भी निीं ंऔर न और िी कुछ िै, अमूत शएवं अनुभवातीत िै तयोंकक यि पकड़ में निीं ंआ सकती।"[325] उपतनषदें दिे अथवा मानमसक अवस्थाओं की श्रृंखलाओंअथवा बाह्य प्रमयक्ष घटनाओं के अपवत्च्छन्न क्रमरूप अथवा चेतना के तनरन्तर प्रवाि के साथ आममा के तादामम्य का वणनश करने ेसे तनषेध करती िैं। आममा ऐसा एक सम्बन्ध निीं ंिो सकता त्जसे सम्बन्धों की आधार भूमम की आवश्यकता िो, न िी वि घटकों का परस्पर सम्बन्ध रूप िै, तयोंकक उसके मलए परस्पर सम्बन्ध करानेवाला एक स्वतन्त्र कताश चाहिए। िमें एक ऐसी व्यापक चेतना की यथाथतशा को स्वीकार करनेके मलए पववर् िोना पड़ता िै त्जसका चेतना के घटकों के साथ बराबर सािचय शिै और जो घटकों के अभाव में भी अपनी स्वतन्त्र सत्ता

---

322 बृिदारण्यक, 1/4,72कौषातककअध्याय 3।

323 बृिदारण्यक, 4:3,23।

324 "अिमेव इदं सवोऽत्स्म ।"

325 बृिदारण्यक, 3 7, 3, 4:4, 22 ।

 को अक्षुण्ण बनाए रिती िै। यि मौमलक तादाममय िी, जो आमम एवंअनामम को मूलरूप से मान लेता िै, आममा
ीं। इसकी यथाथसशत्ता के पवषय में ककसी को सन्दिे निीं िो सकता।"[326]

माण्डूतय उपतनषद् में चेतना का एक पवश्लेषण हदया गया िै, जो िमें इसी तनष्कष शतक पिुंचाता िै। इस पवषय पर जो कुछ उतत उपतनषद् में किा गया िै उसे िम यिां ंअपवकल रूप से अनुवाद के रूप में देते िैं।327 आममा की तीन अवस्थाएं िैं और ये तीनों िी एक चौथी अवस्था में सत्म्ममलत िैं। ये िैं-जागृतृत, स्वप्न, सुषुत्प्त और वि त्जसे तुरीय अवस्था किते िैं। पिली अवस्था वि िै जो जागते समय िोती िै, त्जसमें आममा को बाह्य पदाथों से पूण शसामान्य संसार का ज्ञान रिता िै। इस अवस्था में यि स्थूल पदाथों का सुखोपभोग करती िै। यिां पर यि सबसे अधधक र्रीर के ऊपर तनभरश रिती िै। दुसुरी अवस्था स्वप्न की िै. त्जसमें आममा सूक्ष्म वस्तुओं का आनन्द लेती िै।'[328] अपनेमलए जागररत अवस्था की सामग्री से नई-नई आकृततयों का तनमाणश करती िै और किा जाता िै कक आममा स्वेच्छापूवकश र्रीर के बन्धनों से मुतत िोकर इतस्ततः भ्रमण करती िै। तीसरी अवस्था गाढ़ तनद्रा की िै, त्जसमें िमें न तो स्वप्न आते िैं और न िी कुछ इच्छा िोती िै। इसका नाम सुषुत्प्त िै। किा जाता िै कक इस अवस्था में आममा कुछ समय के मलए ब्रिा के साथ एकाकार िोकर आनन्द का उपभोग करती िै। प्रगाढ़ तनद्रा में िम सब इच्छाओंसे ऊपर उिजाते िैं और अनुभव िोने ेबाले कष्टों से भी मुतत रिते िैं। किना चाहिए कक त्जतने ेभी पवरोध िैं वे ेइस तनपवषशयज्ञानरूप आममा की अवस्था में दूरू िो जाते िैं।'[329] र्ंकर का किना िै कक मानस की कक्रयाओं द्वाग उमपन्न द्वैत का भाव पिली दानों अवस्थाओं में तो वतमशान रिता िै, ककन्तु ुइस अवस्था में अनुपत्स्थत रिता िै। अनेक वातयों में िमें बताया जाता िै कक स्वप्न रहित प्रगाढ़ तनद्रा में िमें परम आनन्द का स्वाद ममलता िै, तयोंकक उस अवस्था में मनुष्य का सम्बन्ध ध्यान बंटान वाले बाह्य जगत् ्से कटा िुआ रिता िै। आममा का मौमलक स्वरूप दैवीय िै, यद्यपप देहिक मांस ने उसमें बाधा दे रखी िै। तनद्रावस्था में यि दिे के वन्धनों से मुतत िोती िै अतएव अपनेस्वाभापवक स्वरूप को पुनः प्राप्त कर लेती िै । िमें अरस्तूके एक लेखांर् में इस आर्य का वातय ममलता िै, "जब कभी आममा अकेली रिती िै, जैसे कक तनहद्रतावस्था में, तो यि अपनी यथाथ शप्राकृततक अवस्था में लौट आती िै।"[330] आममा का स्वाभापवक दैवीय रूप कफर से अपने को अमभव्यतत करता िै जब वि दैहिक अमयाचार से मुतत रिती िै। "तनद्पवतावस्था में वि अपने पप्रय समय का दान करती िै।" तनमय रिने ेवाली स्वप्नपविीन तनहद्रतावस्था की उपमा का प्रयोग यि समझानेके मलए ककया गया िै कक ककस प्रकार उम अवस्था में बिार की समस्त कक्रयाएं दबी रिती िैं। ककंतु इस बात की भी सम्भावना िै कक इसे भ्रमवर् मूच्छाशकी अवस्था के समान समझ मलया जाए। इसमलए माण्डूतय उपतनषद् आगे चलकर बतलानी िै कक उच्चतम अवस्था यि स्वप्नरहित तनद्रावस्था निीं,ं ककन्तु आममा की इससे मभन्न एक चौथी अवस्था िै अथात्श ्तुरीय अवस्था। वि पवर्ुद्ध आन्तररक चैतन्य की अवस्था िै त्जसमें बाह्य एवं

---

326 "नहिकत्श्चत्संहदग्धेिअियानिांवेतत" भामती टीका (ब्रह्मसूत्रों पर)

327 1:2,7।

328 देणखए, बृिदारण्यक उपतनषद्, 4: 3, 9, 14 ।

329 देणखए, बृिदारण्यक, 2 1, कोपीतकक, अध्याय 4।छान्दोग्य 6:8, 1, प्रश्न ,44, 4/3, 7I

330 'फ्रेग्मेंट', 2।

आभ्यन्तर ककसी भी प्रकार के पदार्थों का ज्ञान निीं ंिोता। प्रगाढ तनद्रा में मानवीय आममा एक ऐसे देर् में ब्रह्म के संग तनवास करती िै जो भौततक इन्द्रियों के पररवतनशाममक जगत् ्से दूरू ऊपर िै। तुरीय अवस्था प्रगाढ़ तनद्रा के तनषेधाममक रूप को तनपवककशल्प एवं ंभावनाममक रूप प्रदान करती िै। "यि चौथी अवस्था वि निीं ंिै जो पवषवी का ज्ञान रखती िो, न ऐसी िै जो पवषय का ज्ञान रखती िो, न ऐसी िै जो दोनों से अमभज्ञ िो, और न िी पवर्ुद्ध चेतना का स्वरूप िै, न पूण शचेतना का पवमर्ष पुंज िै ओर न विी िै, त्जसे तनपवज्ञ अन्धकार कि सकें। यि अर्दष्ट िै, सवातशतरर्ायी िै, अज्ञेय िै, अनुमानातीत िै, अधचन्मय िै, अव्याख्येय िै, आममचेतना का मूलतत्त्व िै, संसार का पूणमशव िै, सदा र्ान्तमय, सवथशा आनन्दमय, एकमात्र इकाई, यि तनःसन्दिे आममा िै।"[331]
ओंकार इसका उपलक्षण िै जो 'अ-उ-म्' ् से ममलकर बना िै, जो तीन अवस्थाओं-जागृतृत, स्वप्न और सुषुत्प्त को उपलक्षक्षत करते िैं। यि ऐकात्न्तक आममा नर िै, ककन्तुसबके मलए सामान्य आधार िै त्जस पर उन सबकी सत्ता आधश्रत िै।'[332] प्रगाढ़ तनद्रा में कि जा सकता िै कक िम एक स्थायी एकमव में पिुंच गये, त्जसमें कुल भेद लुप्त िो जाते िैं और समस पवश्व भी लुप्त िो जाता िै। ककन्तु इसे उन्नततम अवस्था निीं ंसमझा जा सकता, अत्त उससे भी ऊंची तनपवकशल्प एवं भावानाममक एक अवस्था प्रस्तुत की गई िै। भौततक-व्यातत के पास यहद अनाम पिुंचता िै तो उसका व्यत्ततमव भी लुप्त िो जाता िै। इसमलए यि आर्ंका िै कक प्रमेय पवषयों के पवलोप से आममा भी एक क्षीण अमूतरूशप में पररवतततश िो जाएगी, ककन्तु परम व्यापक आममा के अन्दर समस्त प्रमेय पदार्थों की सत्ता का भी समावेर् िो जाता िै। जिां तक िम सांसाररक पदार्थों का ज्ञान उपलब्ध करते िैं एवं उनके प्रतत लगाव रखते िैं जिां तक कक वे िमारी आममा में प्रवेर् पाते िैं-आममा, जो अपनेअन्दर पवश्व के सभी पदार्थों का ज्ञान-सम्पादन करके सुरक्षक्षत रखती िै और त्जसके बिार कुछ निीं ंिै। यि स्वयंअपररवतततश एवं तनरन्तर रिने ेवाली सत्ता िै, जो समस्त पररवतनशों के अन्दर भी तनरन्तर एकरस बनी रिती िै। धचत्तवृपृत्तयां ंआती िैं, गुजर जाती िैं और पररवतततश िोती िैं, ककन्तु आममा सदा एकरस रिती िै। इसका कोई आहद निीं ंिै, अन्त निीं ंिै, यद्यपप उन पदार्थों का त्जनका इसे ज्ञान िोता िै, आहद भी िै और अन्त भी िै। "चेतना का पवराम कभी निीं अनुभव ककया गया, न उसका कभी प्रमयक्ष साक्षात् ्िी िुआ और यहद कभी िुआ भी तब साक्षी, अथात्श ्त्जसने अनुभव ककया, स्वयंपृष्ठिभूमम में पवद्यमान रिा, त्जसे उसी चेतना का तनरन्तर स्थायी रूप समझना चाहिए।"[333] यि समस्त सत्ता की आधारभूमम िै, जो उस सबका एकमात्र साक्षी िै त्जसका िम ज्ञान प्राप्त करते िैं एवं सम्भापवत आधार भी िै, यद्यपप प्रमेय पदार्थों की प्रमाता के ऊपर की तनभरशता, त्जसे वार-बार आग्रिपूवकश दिुराया जाता िै, बबलकुल स्पष्ट निीं ंिै। आममा की तीनों अवस्थाए अथथात्श ्जागृतृत, स्वप्न, सुषुत्प्त - उस अवस्था के साथ ममधश्रत िोकर जो इन सबका ज्ञान प्राप्त करती िै, क्रमर्ः पवश्व, तैजस, प्राज्ञ एवं तुरीय अवस्थाएं किी जाती िैं।334

331 1:7।

332 "बत्रपु धामसु यत्तुल्युंसामान्यम्' ् (गौडपादीय काररका, 1: 22)।

333 देखें देवी भागवत, 3 32, 15-161

334 वौद्धदर्नश का चार क्षेत्रों काम, रूप, अरूप और लोकोत्तर का पवभाग उतत चारों अवस्थाओं ंके अनुकूलता रखता िै।

इन तीनों अवस्थाओं-अथात्श ्जागृतृत, स्वप्न एवं ंसुषुत्प्त के पवश्लेषण से यि तनष्कष शतनकलता ि कक ये तीनों िी अयथाथरूशप िैं, यद्यपप अभावाममक निीं ंिै। "जो प्रारम्भ में असत् ्िै, और अन्त में भी असत् ्िै, मध्य में भी तनत्श्चत रूप से असत् ्िोना चाहिए।"[335] इस मसद्धान्त की र्दत्ष्ट से जागररतावस्था का अनुभव भी यथाथ श निीं ंिै। यहद किा जाए कक स्वप्नावस्था अयथाथ शिै, तयोंकक वि िमारे र्ेषे अनुभवों के साथ मेल निीं ंखाती, तो तया ऐसे िी जागररतावस्था के पवषय में भी निीं ंजा सकता कक उतत अनुभव भी स्वप्नावस्था के अनुभवों के साथ मेल निीं ंखाते? े स्वप्न अपनेक्षेत्र के अन्दर तो एक-दूसूरे से मेल खाते िैं, िीक जैसे कक जागररतावस्था के अनुभव। संसार भी आममा की पवर्ेषे मनोवृपृत्तयों के सम्बन्ध से यथाथ शभासतिैं। जागररतावस्था के मानदण्ड का प्रयोग स्वप्नावस्था के ऊपर करना और इस प्रकार उसे ेदूपूषत ििराना युत्ततयुतत निीं ंिै। स्वप्नावस्था एवं ं जागररतावस्था दोनों िी के अनुभव अयथाथ शिैं यद्यपप मभन्न-मभन्न श्रेणी के पवचार से। प्रगाढ़ तनद्रा की अवस्था इस प्रकार की अवस्था ि त्जसमें िमें बाह्य अथवा आभ्यन्तर ककसी पवषय का भी ज्ञान प्रमयक्ष निीं िोता। यि एक प्रकार का भेदरूनूय पुंज ि जो अन्धकार के आवरण के नीचे तछपा ि, त्जसकी तुलना िगल की राबत्र की कल्पना से की जा सकती िै, त्जसके अन्दर सब गाएं एक समान काली िैं। िमें यिां ंउच्चतम कोहट की अभावाममक अवस्था ममलती ि जिां ंदु:ख निीं ंिै। ककन्तुआममा इस दु:ख के अभाव का नाम निीं ंिै। आममा भावाममक आनन्दस्वरूप िै। यि न जागररत अवस्था िै, न स्वप्नावस्था िै, न सुषुत्प्त िै, बत्ल्क चौथी तुरीयावस्था ि जो र्ेषे तीनों की साक्षी एवं उनसे भी सवातशतर्ायी िै। यि तनषेधाममक व्याख्या, जो यिां ंदी गई ै, संकेत करती ि कक िम सीममत प्राणी इसके अस्मयाममक स्वरूप को निीं ंजान सकते। चौथी तुरीयावस्था की प्रात्प्त तीनों का तनषेध करके उतनी सम्भव निीं ंि त्जतनी कक उन तीनों से ऊपर उिकर सम्भव िै। िम पररममत र्तत पाने वाले प्राणणयों के मलए उस आदर् शयथाथसशत्ता की व्याख्या करना असम्भव िै, यद्यपप उपतनषदं बलपूवकश प्रततपादन करती िैं कक वि रूनूय निीं ंिै। तो भी उच्चतम सत्ता के पवषय में ममथ्या पवचारों का तनराकरण करने ेके मलए और इस समय की स्थापना के मलए कक यि अमूत शकी कल्पना मात्र निीं ंिै, वे ेअपयाप्शत धारणाएं िमारे सामने प्रस्तुत करती िैं। यहद सच पूछा जाए तो िम इसके पवषय में कुछ निीं ंकि सकते। कफर भी पववेचना के प्रयोजन से िम बौद्धधक धारणाओं का प्रयोग करनेके मलए पववर् िोतिैं, यद्यपप उनकी प्रामाणणकता सीममत िै।

आममा की समस्या, उपतनषदों में पववेधचत बिुत मित्त्वपूण शसमस्याओं में से एक िै। यिी समस्या आगे चलकर भगवद्गीता में एवं ंवेदान्त सूत्रों में अध्याममपवद्या के नाम से पाई जाती िै। आममा के स्वरूप का पवश्लेषण उपतनषदों की पवरासत िै, जोकक पररवती भारतीय पवचारधारा को उत्तराधधकार में प्राप्त िुई िै। इससे अनेक ममथ्या कल्पनाओंकी उमपपत्त िुई। आममा के स्वरूप के पवषय में बुद्ध और र्ंकर, कपपल और पतञ्जमल आहद पवपवध पवद्वानों के परस्पर-पवरोधी मसद्धान्तों का मूल उपतनषदों में ममल सकता िै। उपतनषदों का आर्य यि कभी भी निीं ंथा कक गम्भीरतर आममा को एकमात्र रूनूय का रूप दे हदया जाए। यि अपने-आपमें पूणतशम यथाथसशत्ता िै, पूणूतशम चेतना िै, और मात्र एक तनषेधाममक तनश्चेष्ट निीिं त्जस पर ककसी बेचैनी का

---

335 गौडपादीय काररका 1:6

प्रभाव न प़ सके अथवा जो ककसी दोष से आवृतूत न िो सके। तकशसम्मत पवचारधारा में एक तनषेधाममक गतत रिती िै जिां यि सीममत के तनषेध से उिती िै, ककन्तु आगे बढ़नेके मलए यि केवल एक पाव की िी भांतत िै। तनषेधाममक प्रकक्रया द्वारा आममा को यि जान लेना आवश्यक िोता िै कक इसकी सीममतता अथवा आममपूणतशा ीि प्राधन तत्त्व निीं ंिै। अस्मयाममक पवधध के माग शसे यि अपनेआमम को सबके जीवन एवं सत्ता में जान सकती ीै। सब पदाथ शइसी समयस्वरूप आममा के अन्दर अवत्स्थत िैं। कुछ बौद्ध पवचारक आममा का तनरूपण केवल अभावाममक या रू्नूय के रूप में करते िैं और इस धारणा के आधार पर वे आध्यात्ममक ज्ञानी की दृत्ष्ट से इसे भावरूप या अमूतरूशप बतातिैं। िम इस आममा को चेतनता के क्षेत्र के ककसी भी कोने ेमें निीं ंढूंढ़ सकतेऔर

इसमकुयपविंरि।ममलने पर िम तुरन्त इस पररणाम पर पिुंच जाते िैं कक यि कुछ निीं, ं अथात् सांख्यकार ने इसे एक सरल एवं पवरुद्ुध रूप में माना िै यद्यपप यि तनत्ष्क्रय, प्राणर्त्तरूप एक तत्त्व िै, जो प्रकटरूप में सरल िोने ेपर भी अपना एक पवमर्ष्ट स्वरूप रखता िै और इसीमलए िम सांख्य के मत में आममाओं का बिुल्य पाते िैं। कई वेदात्न्तयों का मत िै कक यथाथ शआममा अथवा ब्रह्म पवरुद्ध िै, तनश्चेष्ट िै, र्ात्न्तमय ीै और पवकारहित िै, और वे किते िैं कक आममा केवल एक िी िै। उसके तनत्ष्क्रय पक्ष पर बल देने ेके कारण उसके रू्न्यरूप िो जानेका भय उनके मत में अवश्य िै। इसी प्रकार कुछ ऐसे बौद्ध सम्प्रदाय भी िैं जो आममा को केवल बुद्धध का रूप देकर उसे क्षुद्ररूप बना देते िैं, और उनके मत से यि बुद्धधरूप आममा ककसी न ककसी प्रकार बबना घटक की सिायता के भी पवचार कर सकती िै।

8. ब्रह्म

अब िम पवषयपक्ष की ओर से यथाथ शपरमसत्ता की व्याख्या प्रारम्भ करते िैं, त्जसे 'ब्रह्म' नाम से पुकारा गया िै।'[336] िमनेदेखा कक ऋग्वेद के समय में अद्वैत का भाव आ गया था। उपतनषदों ने उस तनमय आममा की

---

336 इस प्रश्न का उत्तर कक ककस प्रकार 'ब्रह्म' र्ब्द उपतनषदप्रततपाद्य परमसत्ता का द्योतक िुआ, मभन्न-मभन्न पवद्वानों ने मभन्न-मभन्न प्रकार से हदया िै। िीग का मत िै कक ब्रह्म का अथ शिै प्राथनशा, जो 'वृि' धातु से तनकला िै, त्जसका अथ शिै बढ़ना या उमपन्न िोना। यि वि सत्ता िै जो बढ़ती िै या उमपन्न िोती िै। पपवत्र प्राथनशाएं उमपपत्त का कारण िैं और इसी से आगे चलकर इसका उपयोग प्रकृतत की र्त्तत के अथों में िोने लगा एवंआगे यि परमाथसशत्ता अथवा सवोमकृष्ट सत्ता के अथों में आ गया। रॉथ के अनुसार, ब्रह्म र्ब्द का प्रयोग सबसे पूव शदेवताओं ंके प्रतत प्ेररत इच्छार्त्तत के अथों में िुआ। उसके बाद इसका प्रयोग पपवत्र तनयम के अधों में िुआ और आगे चलकर इसका अथ शपरमसत्ता िो गया। ओल्डनवग शका पवचार िै कक वैहदक काल में जबकक संसार में अनेक देवता भरें थे और ऐसी रिस्यपूण शर्त्ततयां भी पवद्यमान थीं ंजो सुख और दुुःख को उमपन्न करने की क्षमता रखती थीं, सबसे अधधक र्त्तर्ाली मनुष्य धचककमसक था, त्जसके िाथ में जादू ूया और वि जो चािता था उसे कायरूशप में प्रकट कर देता था। उस समय ब्रह्म का प्रयोग भी जादू, ू वर्ीकरण अथवा मायावी के अथों में इसका प्रयोग िोनेलगा। ब्राह्मण ग्रन्थों के काल में यज्ञों में प्रयुतत िोनेवाले पपवत्र मन्त्रों के अथ शमें इसका प्रयोग िोता था। सम्भवतः उनमें से कुछ एक मन्त्रों का प्रयोग जादू ूका प्रभाव डालने के मलए भी िोता िो। धीरे-धीरे यिी र्ब्द उस प्रधान र्त्तत के अथों में प्रयुतत िोने लगा जो संसार को उमपन्न करती िै। ड्यूसन का मत िै कक 'ब्रह्म' प्राथनशा िै, जो आममा को ऊंचा उिाती िै त्जससे िमें समय का दर्नश िोता िै और इस प्रकार यि र्ब्द समय का द्योतक बन गया। मैतसमूलूर के अनुसार, इसकी उमपपत्त 'र्ब्द' से िै जैसाकक बृिस्पतत अथवा वाचस्पतत र्ब्द से स्पष्ट िै, त्जसका अथ शिै वाणी का स्वामी। "वि जो बोलता िै, ब्रह्म िै" (मसतस मसस्टम्स आफ इंडडयन कफलासफी,' मैतैसमूलर कृत, पृषिू 52, 70)

एक अधधक तकशसंगत व्याख्या करने ेका काय शअपनेत्मे मलया जो सदा कक्रयार्ील भी ि ै और सदा पवश्राम भी करती ि ै। एक और स्थान पर िमनेतनम्नकोहट के अपूण शपवचारों से उिकर उन्नतत के पथ पर अग्रसर िोतुिेए अधधक पयाप्शत पवचारों तक के क्रम को देखा ि ै, जैसा कक तैपत्तरीय उपतनषद् में ि ै।337 तीसरी बल्ली में वरुण का पुत्र भृगुअपने पपता के पास पिुंचकर प्रश्न करता ि ै कक मुझे ेउस यथाथसशत्ता के स्वरूप की मर्क्षा दीत्जए त्जसके अन्दर से समस्त भूत या स्थावर एवं ंजंगम जगत् ्का पवकास िोता ि ै और कफर त्जसके अन्दर िी समस्त भूत समा जाते ि ैं। पुत्र के आगे ब्रह्म के सामान्य लक्षणों को रखते िुए पपता ने उसे आदेर् हदया कक अब यि उस मूल तत्त्व का पता लगाए त्जसमें ये सब लक्षण घट सकतेिीं। "यि त्जससे इन सब भूतों की उमपपत्त िुई, और उमपन्न िोने ेके पश्चात् ्त्जसमें ये सब जीवन धारण करते ि ैं और वि त्जसके अन्दर ये सब मृमृयुके समय समा जाते ि ैं, विी ब्रह्म ि ै ।"[338] संसार के पदाथ शसदा अपनी आकृततयां ंबदलते रिते ि ैं और इसमलए परमाथरूशप में उन्िें समय निीं ंसमझा जा सकता। इस पररवतमशान पदाथों से पूणू शनामरूपाममक पवश्व की पृष्िभूमम में ऐसी भी कोई सत्ता ि ै जो त्स्थर िो और त्जसमें कभी पररवतनश न िोता िो? उपतनषद् की पररभाषा में इस जगत् ्को नामरूपाममक किा गया ि ै, त्जसका ज्ञान नाम और रूप या आकृतत द्वारा िोता ि ै। पुत्र (भृगु) प्रकृतत को िी परमसत्ता मान लेता

ि ैशतयोंकक बाह्य जगत् ्का वि सबसे अधधक सुव्यतत स्वरूप ि ै। लोकायत-सम्प्रदाय वालों अथात् भौततकवाहदयों का भी यिी मत ि ै ककन्तु पुत्र को र्ीघ्र िी मालूम िोता ि ै कक प्रकृतत को यथाथसशत्ता को मानने ेसे जीवन की घटनाओं की उधचत व्याख्या निीं िो सकती वनस्पतत का पवकास एक मभन्न प्रकार की व्याख्या से िी संभव ि ै। यि प्राण अथवा जीवन की ओर संकेत करता ि ै कक यिी परम-तत्त्व ि ै।339' प्रकृतत में जीवन का रिस्य सत्न्नहित निीं ि ै यद्यपप बबना प्रकृतत के जीवन-धारण निीं ंिो सकता। जीवन के अन्दर ऐसी कोई र्त्तत ि ै जो इसे जत़्त्वों को आममसात् ्करके उनके रूप को पररवतनश करने ेयोग्य बनाती ि ै। यिी र्त्तत वि मौमलक तत्त्व ि ै जो मानव के अन्दर वानस्पततक पदाथ शको रतत, अत्स्थ और मांसपेर्ी के रूप में पररवतततश करने ेमें सिायता करती ि ै। यिी तत्त्व ि ै जो पवश्व को आच्छाहदत ककए िुए ि ै और जो मानव को अन्य समस्त जगत् ्के साथ सम्बद्ध ककए ि ै।340 पुत्र को तनश्चय ि ै कक जीवन प्रकृतत से पृथक् प्रकार की व्यवस्था में आता ि ै यद्यपप प्राण दिे का सारभूतू तत्त्व ि ै।'[341] ककन्तु प्राण को समस्या का समाधान माननेपर भी वि असन्तुष्ट िी रिता ि ै, तयोंकक प्राणी-जगत् ्में जो चेतनाममक घटना िमारे सम्मुख आती ि ै उसकी व्याख्या जीवनतत्त्व से निीं ंिो सकती। मानव अथवा प्रमयक्ष ज्ञानाममक चेतना एक ऐसा पदाथ शि ै जो जीवन एवं प्रकृतत से पवलकुल पवलक्षणस्वरूप ि ै और जो समस्त प्राणधारक प्रकक्रया का मूधन्शय प्रतीत िोता ि ै। इसमलए पुत्र मानने ेलगता ि ै कक मानस िी ब्रह्म ि ै। ककन्तु यि भी पयाशप्त निीं ंि ै, तयोंकक ऐसी बौद्धधक घटनाएं ि ैं त्जनकी व्याख्या केवल

मिें इस र्ब्द की व्युमपपत्त के पवषय में अधधक झंझट करनेकी आवश्यकता निीं। िमारे मलए तो स्पष्ट ि ै-ब्रह्म का तामपय श ि ै यि यथाथसशत्ता जो बढ़ती ि ै, उच्छ्वास लेती ि ै या उत्तरोत्तर वृद्धधि को प्राप्त िोती ि ै।

337 देणखए,'रेनआफ ररमलजन',अध्याय 13।

338 3:1 ।

339 प्राण का अथ शि ै श्वास। देणखए, ऋग्वेद ,166, li * 3/5.21 ; 10 :59 6 ।

340 देणखए, प्रश्नोपतनषद्, प्रश्न 2।

341 बृिदारण्यकउपतनषद् , 13, 90; देणखएछान्दोग्य उपतनषद् ,6/2, 4।

प्रमयक्ष ज्ञान सेनिीं ंिो सकती। पवज्ञान अथवा बुद्धध ब्रह्म िै।342' बौद्धदर्नश के कततपय सम्प्रदाय इसी मत को स्वीकार करते िैं। अब पुत्र अनुभव करता िै कक बौद्धधक आममचेतना अपूण शिै, तयोंकक वि असंगतत एवं अपूणतशा के अधीन िै। उपतनषदों का लक्ष्य यि प्रदमर्तश करनेमें िै कक बुद्धध के स्तर पर द्वैत एवं वाह्यता के तत्त्व पवद्यमान रिते िैं, भले िी िम ककतना िी उनसे ऊपर उिने की कोमर्र् तयों न करें। ज्ञान और नैततक जीवन में परस्पर पवषयी पवषय-सम्बन्ध िै। केवल बुद्धध से ऊंचा अवश्य कोई तत्त्व िोना चाहिए, जिांकक सत्ता को ज्ञान की पररभाषा में तनयन्त्रत न ककया गया िो। सत्ता के एकमव की मांग िै कक िम बौद्धधक स्तर से ऊपर उिें पवचार का सम्बन्ध, जैसा कक साधारणतः समझा जाता िै, उन पदाथों से िै जो दूरूत्स्थत िैं और पवचार की प्रकक्रया से पृथग्रूप िैं। इसकी पिुंच बािर की ओर उस पवषय तक िै, जो इससे पृथक् िै एवंपवरुद्ध स्वभाव का िै। यथाथसशत्ता पवचार से मभन्न िै और उस तक उच्चतम अव्यवहित सात्न्नध्य की तुरीयावस्था में पिुंचा जा सकता िै और वि अवस्था ऐसी िै जो पवचार एवं ंतदन्तहितश भेदों से किीं ंऊपर िै और जिां ंव्यत्तत प्रधान यथाथसशत्ता के साथ एकाममरूप िो जाता िै। आनन्द उच्चतम पररणाम िै त्जसमें ज्ञाता, ज्ञेय एवं ंज्ञान एकाकार िो जाते िैं। यिां ंआकर दार्तशनक खोज समाप्त िो जाती िै; इससे यि लक्षक्षत िोता िै कक आनन्द से ऊंची और कोई सत्ता निीं,ं विी परम सत्ता िै। यि आनन्द एक प्रकार का कक्रयार्ील सुखाममक अनुभव अथवा क्षमता का अबाधश उपयोग िै। यि र्ून्य में पवलोप िोना निीं,ं ककन्तु प्राणी का पूणतशा को प्राप्त करना िै।343 "भेद करके देखनेवाले ज्ञानी अपने अधधक उमकृष्ट ज्ञान के बल पर आममा का साक्षात् ्करते िैं जो केवल आनन्द एवं ंअमरता के रूप में प्रकार्मान िै ।"[344] सच पूछा जाए तो िम वस्तुतः आनन्द रूप उच्चतम यथाथसशत्ता का वणनश करने ेमें अपनेको असमथ शपाते िैं। यि प्रश्न भी कक यि अमूत शिै या मूतरूशप िै, तकशसंगत निीं ंिै। बौद्धधक आवश्यकताएं िमें प्रेररत करती िैं कक िम कुछ न कुछ वणनश अवश्य करें। उसे केवल भावाममक रूप में मानने ेकी अपेक्षा मूतरूशप में समझना अधधक यथाथ शिै। प्रमयेक उच्चतर तत्त्व तनम्नतर तत्त्व की अपेक्षा अधधक िोस और समवेतरूप िोता िै। और इसमलए आनन्द, जो 'ब्रह्म' िै, अन्य सब तत्त्वों की अपेक्षा सबसे अधधक समवेततमव िै। इसी से सब वस्तुएं पवकमसत िोती िैं। समस्त वस्तु समूि का धारण भी इसी से िोता िै और इसी के अन्दर सब कुछ पवलीन िो जाता िै। मभन्न-मभन्न भाग, खतनज-जगत्,् वनस्पतत-जीवन, जीवजन्तु-जगत् ्एवं ंमनुष्य-समाज उस परमोमकृष्ट सत्ता के साथ ककसी अमूतरूशप या यात्न्त्रक पवधध से सम्बद्ध निीं ंिै। वे सब उसके अन्दर एकीभूत िैं और उसी के द्वारा अपनी सत्ता रखते िैं जो उन सबके अन्दर व्याप्त िै। सब भाग इस पवश्व ब्रह्माण्ड की इसी व्यापक आममा के अंर् िैं और अपने-अपनेपवर्ेष कायों के सम्पादन के मलए पवमर्ष्ट-पवमर्ष्ट रूप मलये िुए िैं। ये सब भाग स्वतन्त्र सत्ता वाले अवयव न िोकर उस एक के िी ऊपर अपनी सत्ता के मलए तनभरश करते िैं। "भगवन् ्वि अनन्त ककसके ऊपर आधश्रत िै? तया अपनी मिानता के ऊपर अथवा मिानता के ऊपर भी निीं ं?" रिएक वस्तु इसके ऊपर आधश्रत िै, यि ककसी अन्य वस्तु का आधश्रत निीं।िै अनेक स्थलों पर (उपतनषदों में) अवयवों का सम्पूण शके साथ अंगांगीभाव से सम्बन्ध का भी वणनश ककया गया िै। "जैसे सब आरे एक धुरे के साथ

342 देणखए, ऐतरेयोपतनषद् ,3/3*i तैपत्तरीय उपतनषद् ,3:5 ।

343 देणखए, मुण्डक उपतनषद् ।

344 देणखए, मुण्डक उपतनषद्2:8 ।

जु िोतीं और पहिये के बाह्य घेरे के भी अन्दर िैं, इसी प्रकार सब प्राणी, सब देवता, समस्त लोक और सब अवयव भी उसी आममा में तनहित िैं।"[345] "यि वि पुरातन वृकूष िै त्जसकी जे़ं ऊपर की ओर िैं और त्जसकी र्ाखाएं नीचे की ओर जाती िैं। यि प्रकार् का पुंज उज्जज्जवल ब्रह्म िै, जो अमर िै सब लोक उसी के अन्दर तनहित ैं और उसके बिार कुछ निीं ंिै।"[346]

मिनेआनन्दरूप में परमसत्ता की व्याख्या की िै और इस प्रकार इस कथन का खण्डन िो जाता िै कक परमसत्ता अव्याख्येय िै। सवागां-सम्पूण शसत्ता को जानने ेके सब रचनाममक प्रवन्ध अन्त में सामान्यरूप से एक समवेतपूण शके िी पररणाम तक पिुंचते िैं। ककन्तु यहद िम व्याख्यात सत्ता का समन्वय अव्याख्यात के साथ करने ेका प्रयमन करें, त्जसका समथनश उपतनषदें भी करती िैं, तब िमें किना पगे़ा कक वतमशान संदभ शमें आनन्द अत्न्तम सत्ता निीं ंिै बत्ल्क यि आनंद तो केवल मनुष्य के धचन्तन की उच्चतम उपलत्ब्ध िै। यि परम अथवा तनमय सत्ता निींी जो सदा अपनी तनजी पवमर्ष्टता में रिती िै। ताककशक मत्स्तष्क के र्दत्ष्टकोण से पूणसशत्ता िी यथाथ शिै और संसार की पवपवधता इसी के अन्तगतश समाती िै। संतिरूप आनन्द प्रामाणणक सत्ता िै अथवा यथाथतशा िै, त्जसकी अमभव्यत्तत पवचारत्त्त के अन्दर िोती िै और इसी को रामानुज ने उच्चतम ब्रह्म के रूप में स्वीकार ककया िै। पवर्ुदुध ब्रह्म, जो सब गुणों से मुतत िै, तनरुपाधधक सत्ता िै, अथवा तनगुणश ब्रह्म िै, त्जसे

र्ंकर से समीकृत [illegible] ब्रह्म, प्रथम प्रकार का [illegible] अथात् िै

और दूसूरा अथात्श ्रं्कर का प्रततपाहदत ब्रह्म, एक अव्याख्येय यथाथसशत्ता िै। कफर भी रं्कर के मत से भी दूसूरे प्रकार का ब्रह्म अपनेको प्रथम प्रकार के रूप में दर्ातशा िै। और अन्तर्दत्शष्ट द्वारा ज्ञान से पररपूण शिै।'[347]

इस प्रकार के मतभेद के पररणामस्वरूप िी आनन्द की व्याख्या के पवषय में बिुत अधधक वादपववाद उपतनषदों में पाया जाता िै। रं्कर तो स्पष्ट रूप से किते िैं कक आनन्दमय अपनी माया के संयोग से प्रकट करता िै कक यि एक घटनाममक काय शिै। यहद यि आममा से मभन्न न िोता तो इसके पवषय में तकश िो िी न सकता। यहद यि पवर्ुद्ध ब्रह्म िै तो इसे आकृतत देना एवं इसके साथ मसर, अंग आहद का जो़ना, जैसा कक

---

345 बृिदारण्यक, 2 5,15 ।

346 किोपतनषद्, 2/6 1; और भी देणखए, तैपत्तरीय उपतनषद्, 1/10 : भगवद्गीता, 15:1 ।

347 उपतनषदों का यि तनत्श्चत मसद्धान्त िै कक परम सत्ता अव्याख्येय अथवा अतनवचशनीय िै यद्यपप वे इसके पवषय में बौद्धधक पववेचन उपत्स्थत करती िैं, जो तनतान्त समय निीं िै। यहद कोई बौद्धधक पववेचन कभी समय समझा जा सकता ैं तो यि यि िै त्जसकी रामानुज नेस्थापना की िै। उपतनषदों के वास्तपवक भाव को लेकर रं्कर का किना िै कक तकश द्वारा रामानुज [illegible] सत्ता कोई िै। रं्कर के दर्नश की पववेचना करते ेसमय िम इस पवषय का प्रततपादन करेंगे कक वे ककस प्रकार उच्चतम सत्ता के पवषय में प्रततपादन की गई समस्त धारणाओं ंकी अपूणतशा की स्थापना करतिें। उनका तकश िै कक िम परमसत्ता के पवषय में यि निीं कि सकते कक वि सान्त िै अथवा अनन्त िै, अथवा दोनों िी िै या दोनों में से एक भी निीं। यिी बात सब प्रकार के अन्य सम्बन्धों जैसे पूण शका अंर् के साथ, पदाथ शका उसके गुण के साथ, कारण का काय शके साथ के पवषय में भी िै। पवचार की सीमाओंका एक पववेकपूण शतनरूपण, जैसाकक िमें रं्कर के ग्रन्थों में ममलता िै, तयों सम्भव िो सका इसका कारण ढूंढने से प्रतीत िोगा कक उपतनषदों के और रं्कर के बीच बौद्ध-दर्नश की जो परम्परा आ गई उसके कारण यि त्स्थतत सम्भव िो सकी।

तैपत्तरीय उपतनषद् करती ि ै, असंगत िोगा। यहद आनन्द िी ब्रह्म ि ै तब ब्रह्म का अलग वणनश करना, एक पूंछ की तरि, तनरथकश ि ै।348 इसमलए र्ंकर इस तनष्कष शपर पिुंचते ि ैं कक "आनन्दमय आममा का एक काय शि ै, ककन्तु
तनपवकशल्प आममा काय शनिीं ंि ै।" दूसूरी ओर रामानुज का तकश ि ै कक यि आनन्द की ब्रह्म ि ै। माया का संयोग केवल प्राचुय शअथवा पूणतशा का संकेत करता ि ै। यद्यपप प्रकृतत एवंजीवन आहद के पवषय में यि स्पष्टरूप से किा जाता ि ै कक अन्दर कोई और ि ै, जैसे 'अन्योऽन्तर आममा', आनन्द के पवषय में इस प्रकार का अन्ततनपशवष्ट ककसी अन्य सत्ता का कथन निीं ंककया जाता। अंग आहद का साथ में वणनश करना कल्पना के अततररतत और कुछ निीं। पुच्छयुतत ब्रि का मतलब यि न समझा जाना चाहिए कक यि आनन्द एवंब्रह्म के अन्दर ककसी
प्रकार के अन्तर की ओर संकेत करता ि ै। दोनों का सम्बन्ध परस्पर अंगांगीभावरूप भी िो सकता ि ै349, जो आरोपक उपयोग में कभी-कभी साथकश िोता ि ै। आनन्दमय के वणनश के साथ-साथ िी उपतनषदों में 'सोऽकामयत्' ् किा ि ै, अथात्श ्उस (पुल्लग) ने इच्छा की, और यि पुल्लग वाचक का प्रयोग केवल आनन्दमय के मलए िी िो सकता ि ै न कक 'पुच्छं ब्रह्म' के मलए, जो नपुंसकमलंगं ि ै। सुख के अन्यान्य सब रूपों, जैसे पप्रय, मोद आहद, का समावेर् आनन्द के अन्दर िो जाता ि ै और इस प्रकार एक मर्ष्य अपनेअन्तम पवश्रामस्थान को पिुंच जाता ि ै, जब वि आनन्द को प्राप्त कर लेता ि ै। उसी उपतनषद् में िमें ककतने िी स्थल ऐसे ममलते ि ैं जिां

.

पर कक आनन्द र्ब्द कषायशरूप से अन्तम सत्ता के मलए प्रयुतत िुआ ि ै।

यि प्रमयक्ष ि ै कक सारा वाद-पववाद इस सन्दि के कारण िी ि ै कक िम तकश से प्राप्त िुई उच्चतम सत्ता को आनन्द मानें अथवा तनतान्त परमसत्ता को आनन्द मानें। उपतनषदों ने ककसी भी स्थान पर पवभेदक सीमा का स्पष्ट धचह्न निीं ंहदया ि ै जिां ंकक रामानुज के समवेतपूणस्शवरूप ब्रह्म एवं ंर्ंकर के सरल एवं तनरुपाधधक ब्रि के, जो अन्तर्दत्शष्ट से प्राप्तव्य ि ै, मध्य में स्पष्ट भेद ककया जा सके। यहद िम दोनों को बबलकुल पृथक् कर दें तो यि िमारे मलए कफर असम्भव िो जाएगा कक िम िोस अत्स्तमवमेय जगत् ्के ककसी भेदपरक मूल्यांकन को स्वीकार कर सकें। उपतनषदों का संकेत ि ै कक ईश्वर और ब्रह्म यथाथतश: एक िी ि ैं। अमयन्त सूक्ष्म दार्तशनक र्दत्ष्ट से यहद िम पववेचन करें और र्ब्दों का संकुधचत अथों में पूरी सावधानी के साथ प्रयोग करें तो िम देखेंगे कक जब िम 'म ैंम ैंि िूं ू' ऐसा किते ि ैं तो उस समय परमसत्ता से थोड़ा-सा िी ि्रास िोता ि ै, जो केवल कल्पना में िी आ सकता ि ै।'350 इस आभासमात्र र्ून्य को लेकर िी र्ंकर पवर्ुद्ध सत्ता को, जो सबको आधारभूत पवचार और समय ि ै, देर्काल और कारण से आबद्ध जगत् ्की उमपपत्त का कारण बना डालता ि ै। उपतनषदें परोक्षरूप से स्वीकार करती ि ैं कक ज्जयों िी िम पवर्ुद्ध ब्रह्म का पवचार करते ि ैं, िम र्ून्य को भेदक तत्त्व और आधार स्वीकार कर लेते ि ैं। चेतनस्वरूप ईश्वर, जो आगे चलकर सुव्यवत्स्थत पूणसशत्ता के रूप में पवकमसत िोता ि ै, अधधक से अधधक अंर् में सत् ्ि ै और न्यून से न्यून अंर् में असत्।् पवषयमव का भाव सबसेन्यून ि ै और बाह्यता के साथ उसका सम्पकश ि ै। विी एक जगत् ्की सत्ताओं के रूप में अमभव्यतत िोता ि ै और यिी कारण ि ै कक िम सांसाररक पदाथों में तनहित अत्स्तमव के अंर् को उस परमसत्ता से उनको पृथक करने ेवाली दूरी को

348 ब्रह्मपुच्छंप्रततष्ठा ।

349 समुदायसमुदायीभाव ।

350 बृिदारण्यक 1/4 ,10 1

मापकर, तनत्श्चत करने ेमें समथ शिोर्तें। प्रमयेक तनम्न श्रेणी उच्चतम सत्ता का िास- मात्र िै, यद्यपप बराबर पवद्यमान पदाथों में ऊंचेसे ऊंचेसे लेकर नीचेसे नीचेतक िम ब्रह्म की भी अमभव्यत्तत पार्तें एवं देर्, काल और कारण भाव के लक्षणों को भी साथ-साथ पाते िैं। तनम्न स्तर के पदाथ शपवरुद्ध ब्रह्म से उच्चतर स्तर के पदाथों की अपेक्षा अधधक दूरूवती िैं, यिां ंतक कक उपतनषदों का आनन्दमय, रामानुज का समवेत ब्रिा और र्ंकर का ईश्वर ये सब उस पवरुद्ध परमसत्ता के तनकटतम िैं। इससे और अधधक सामीप्य पवचार में निीं ंआ सकता। सवोपरर ब्रह्म अथवा आनन्द, पवज्ञान के स्तर पर अथवा आममचैतन्य के स्तर पर, व्यत्ततरूप ईश्वर बन जाता िै, जो स्वेच्छा से मयादशासम्पन्न िै। ईश्वर अथवा आममा एकमव की आधारमभपत्त िै, और प्रकृतत अथवा अनामम द्वैत अथवा बिुमव रूपी तत्त्व वन जाता िै।351

9. ब्रह्म और आममा

पवषयी और पवषय, ब्रह्म और आममा, पवश्वसनीय एवं आत्ममक दोनों िी तत्त्व एकाममक मान गए िैं, ब्रह्म िी आममा िै।"352 "वि ब्रह्म जो पुरुष के अन्दर िै और वि जो सूय शमें िै, दोनों एक िैं।"353 ईश्वर के सवातशतर्ातयमय का भाव, जो ऋग्वेद में िै यिां ंपर आकर सवान्शतयामशी के भाव में पररणत िो गया िै। अनन्त सान्त से परे निीं,ं बत्ल्क सान्त के अन्तगतश िै। उपतनषदों की मर्क्षा पवषयीपरक रिने ेसे यि पररवतनश िुआ। पवषयी एवं पवषय के मध्य तादामम्य का अनुभव भारत देर् में उस समय िुआ जबकक अभी प्लेटो का जन्म भी निीं ंिुआ था। ड्यूसन इसके सम्बन्ध में इस प्रकार किता िै, "यहद िम इस पवचार को नाना आलंकाररक आकृततयों से, उन्नततर वग शके पदाथों से, जो बिुत अधधक वेदान्तसूत्रों में पाए जाते िैं, पृथक् करके अपना ध्यान इसके ऊपर केवल इसकी दार्तशनक पवरुद्धता को िी लक्ष्य करके त्स्थत करें, अथात्श ्ईश्वर एवं ंआममा के, ब्रह्म और आममा के तादामम्य पर ध्यान दें, तो पता लगेगा कक इसकी यथाथतशा उपतनषदों से भी दूरू, उनके काल और त्जस देर् में उनका तनमाणश िुआ उससे भी दूरू िै; प्रमयुतः किना िोगा कक समस्त मनुष्य जातत के मलए इसका अमूल्य मित्त्व िै। भपवष्य को देखने में तो िम असमथ शिैं, िम निीं ंजानते कक अभी तया- तया और गवेषणाएं एवं ंदैवीय ज्ञान मानवीय आममा के पवषय में त्जज्ञासुओं की बेचैनी के कारण सामने आएंगे ककन्तु िम एक बात तनश्चय एवं ंपवश्वास के साथ कि सकर्तें कक भपवष्य का दर्नश भले िी कोई नया एवं ंअसाधारण माग श ढूंढ तनकाले, यि दार्तशनक तत्त्व त्स्थररूप से अखत्ण्डत रिेगा और इससे ककसी प्रकार का अततक्रम संभव न िो सकेगा। यहद कभी इस मिान समस्या का कोई और व्यापक समाधान तनकल भी आया-जोकक ज्जयों-ज्जयों आगे ज्ञान की वृद्धध िोगी और ककतने िी पदाथ शदार्तशनकों के सामने आएंगे तो उसकी कुंजी विींमलेगी जिां ंप्रकृतत के रिस्य खुल सकर्तें, अथात्श ्अपनी आममा के अन्तस्तल के अन्दर िी, बािर निीं। इसी अन्तस्तल के अन्दर सबसे पिले उपतनषदों के पवचारकों ने त्जन्िें अनन्त समय तक प्रततष्ठा की र्दत्ष्ट से देखा जाएगा, इस तत्त्व को ढूंढ़ तनकाला था जबकक उन्िोंने पिचाना कक िमारी आममा, िमारे अन्तस्तल में पवद्यमान सत्ता ब्रह्म के रूप में

351 देणखएतैपत्तरीय1/5 वेदान्तसूत्रोंपरककया गया र्ांकरभाष्य एवं रामानुजभाष्य, 1:1, 6 ।

352 तैपत्तरीय उपतनषद्, 1/5

353 2/8 और भी देणखए, 3: 10; छान्दोग्य, 3 13, 7 3/14, 2, 4 बृिदारण्यक, 5 5, 2. मुंडक ,2/1.10 ।

ि और विी व्यापक भौततक प्रकृतत एवं ंउसकी समस्त घटनाओं के अन्दर सत्ताममक रूप से व्याप्त िै।"[354]
पवषयी एवंपवषय का यि तादामम्य केवल एक अस्पष्ट कल्पना िी नििीं, ककन्तु समस्त पवषय संगत पवचार,
अनुभव और इच्छाएं आवश्यक रूप से इसकी ओर संकेंत करते िैं। यहद मानवीय आममा स्वयंअधचन्मय,
अपराजेय एवं पे्रमपात्र बननेके अयोग्य िोती तो यि प्रकृतत पर पवचार न कर सकती, उस पर पवजय न पा
सकती और न उससे पे्रम िी कर सकती। प्रकृतत एक पवषयी (प्रमाता) के मलए पवषय (प्रमेय पदाथ)श िै बबलकुल
बुद्धधगम्य, स्वयं युत्ततसंगत, जो वर् में आने ेएवं ंपे्रम करने ेयोग्य िै। इसका अत्स्तमय मनुष्य के मलए िै।
नक्षत्रगण उसके चरणों में जलतेिुए प्रदीपरूप िैं, और राबत्र का अन्धकार उसे लोररया देकर सुलाने ेके मलए िै।
प्रकृतत िमें जीवन के आध्यात्ममक तत्त्व की ओर चलनेको पुकारती िै और इस सम्बन्ध में आममा की सब
आवश्यकताओं की पूतत शकरती िै। प्रकृतत का तनमाणश, र्तत-सम्पादन एवं संचालन पवश्वाममा के द्वारा िोता
ि। जब से धचन्तन प्रारम्भ िुआ, पवषयी एवं ंपवषय की यि एकता केन्द्रीय सत्ता का अत्स्तमव तथा जो सबमें
व्याप्त और सबको अपनेअन्तर समापवष्ट ककए िुए िै, भतत लोगों का मसद्धान्त रिा िै। धाममकश रिस्यवाद
और गम्भीरतम पपवत्रता वाले भतत लोग सब इस मिान वातय, अथात्श ्विी तू िै- 'तत्त्वममस' की यथाथतशा के
साक्षी िैं। िम इसे भले िी न समझ सकें ककन्तु िमारी यि अज्ञानता िमें इसका प्रततवाद करने ेका अधधकार निीं
देती।

ब्रह्म के पवषय में बनाई गई मभन्न-मभन्न धारणाएं आममा-सम्बन्धी पवचारों से अनुकूलता रखती िैं
और इसी प्रकार िीक इसके पवपरीत भी िैं। जागृतृत, स्वप्न, सुषुत्प्त और आममा की समाधध अवस्था का पवचार
परवती वेदान्तग्रन्थों में स्पष्ट करके अलग-अलग रूप में हदखाया गया िै और वि ब्रह्म-सम्बन्धी पवपवध
कल्पनाओं के अनुकूल बैिता िै। उच्चतम ब्रह्म, जो आनन्द िै, िीक आममा का स्वरूप िै त्जसकी अमभव्यत्तत
चौथी अवस्था, अथात्श ्तुरीय अवस्था, में िोती िै। उस अवस्था में पवषयी और पवषय एक िी िैं। द्रष्टा अथात्श ्
देखने वाला और दृश्यमान पदाथ शएक सम्पूण शब्रह्म में समवेत िोकर एकाकार िो जाते िैं। जब िम आममा का
स्वयंचेतन स्वरूप व्यत्तत के साथ तादामम्यवणनश करते िैं, तो ब्रिा को िम एक स्वयंचेतन स्वरूप ईश्वर के रूप
में देखतिैं, त्जसके अन्दर एक पवजातीय र्तत िै। चूंकक स्वयंचेतन व्यत्तत केवल एक भावाममक वस्तु रि
जाएगा जो घटक, अथात्श ्पवषय िै, त्जसके कारण िी उसकी अपनी पृथृक् सत्ता िै, इसी प्रकार ईश्वर को भी एक
पवजातीय अवयव की आवश्यकता िै। ईश्वर का पवचार धाममकश चेतना के मलए सबसे ऊंचा पवषय िै। जब आममा
कोमनुष्य की मानमसक एवं ंप्राणभूत र्ततरूप माना गया, तो ब्रह्म का स्वरूप हिरण्यगभ शका रि गया, अथात्
पवश्वाममा का, त्जसकी त्स्थतत ईश्वर और मानव के मध्य की समझी जानी चाहिए। इस हिरण्यगभ शका सम्बन्ध
पवश्व के साथ िीक उसी रूप में िै त्जस रूप में कक मानवीय आममा का मानवीय दिे के साथ िै, अथात्श ्पवश्वरूप
रीर में पवद्यमान रीरी हिरण्यगभ शि। िमें यिां ंपर ऋग्वेद का प्रभाव हदखाई देता िै। संसार में चेतेनता एवं
इच्छा की कल्पना की जाती िै। मानस बराबर रीर के साथ-साथ रिता िै। मानस की पवस्तृतृर व्यवस्थाओं का
सिाचय शर्रीर की पवस्तृतृतर व्यवस्थाओं के साथ िै। इस संसार का भी त्जसके अन्दर िम रितिैं, इसी प्रकार

354

'कफलासफीऑफदंउपतनषदूसूपृषृ 39-40।

hbar 4 एक सिचारी मानस ि◌ै, और इस पवश्वव्यापी र्रीर का मानस यिी हिरण्यगभ शि◌ै। पवश्वाममा के इस भाव को उपतनषदों में मभन्न-मभन्न नामों एवं ◌ंआकृततयों में वणनश ककया गया ि◌ै। इसे 'कायब्रशह्मा' कि◌ा गया ि◌ै जो 'कारणब्रह्मा' ईश्वर से मभन्न प्रकृतत का ि◌ै। यि कायब्रशह्मा उमपन्न सब पदाथों का समुच्चय ि◌ै, सान्त पदाथ श त्जसके अंर्-मात्र ि◌ैं। सब कायों को चेतनामय समुच्चय ब्रह्मा अथवा हिरण्यगभ शि◌ै। यि ब्रह्म से सवथशा मभन्न नि◌ीं ◌ंhat 3 । ब्रह्म पवर्ुद्ध ि◌ै, व्यक्ततरूप ि◌ै, तनतान्त आममस्वरूप ि◌ै और एक एवं ◌ंअद्पवतीय ि◌ै, अथवा उस जैसी दूसूरी कोई सत्ता नि◌ीं ◌ंि◌ै। एक समय में उसे कताश अथाशत् ◌्ईश्वर के रूप में देखा जाता ि◌ै और अन्य समय में कायरूशप में, अथात्श ◌्हिरण्यगभ शके रूप में। यिां ◌ंतक कक यि हिरण्यगभ शब्रह्मा भी ब्रह्म के ि◌ी अन्दर से आता ि◌ै।355 "वि◌ी ब्रह्मा का उद्गमस्थान ि◌ै ।" समस्त पवषयाममक ब्रह्माण्ड इसी प्रमाता पवषयी द्वारा धारण ककया

जाता ि◌ै। जबकक व्यक्ततरूप पवषयी पवलुप्त ि◌ो जाते ि◌ैं वि उस समय भी, अथात्श ◌्प्रलयकाल में भी, नई सृत्ष्ट के पवषय में संकल्प करने ◌ेवाला पवद्यमान रिता ि◌ै। जब ि◌म आममा का अपनेर्रीर के साथ तादामम्य करते ि◌ैं,

ब्रह्म प्रमुसनवस्था की शक्त्रपवास्वस्तुदेवीता ि◌ै। पवराट् ि◌ी सब कुछ ि◌ै, अथात् र्रीर के रूप में ि◌ै। यि वस्तुओंका समुच्चय अथात्श ◌्समस्त समपदाथों का एकत्रीकृत पुञ्ज ि◌ै। "यि वि ि◌ै- समस्त उमपन्न पदाथों का आभ्यन्तर आममा, अत्न त्जसका मसर ि◌ै, सूय शऔर चन्द्रमा त्जसकी आखें ि◌ैं, चारों हदर्ाएं त्जसके कान ि◌ैं, वेद त्जसकी वाणी ि◌ै और उन वेदों का प्रादुभुावश भी उसी से ि◌ुआ ि◌ै, वायु त्जसका श्वमसत ि◌ै, समस्त पवश्व ब्रह्माण्ड त्जसका हृदय ि◌ै और त्जसके चरणों से पृथूवी का प्रादुभुावश ि◌ुआ।"[356] पवराट् का र्रीर भौततक पदाथों की संतित से बना ि◌ै। वि अमभव्यक्ततरूप ईश्वर ि◌ै त्जसकी इत्न्द्रयांसब हदर्ाएं ि◌ैं, त्जसका र्रीर पांच तत्त्व ि◌ैं और त्जसकी चेतना 'म ◌ैंि◌ी सब कुछ ि◌ं◌ूं◌ू' इस भावना से दीत्प्तमान ि◌ोती ि◌ै। पवराट् के पवकास से पूव श सूत्राममा का भी पवकास अवश्य ि◌ुआ ि◌ोगा जोकक पवश्वप्रज्ञा अथवा हिरण्यगभ शि◌ै और त्जसका विान सूक्ष्म र्रीरों की संतित ि◌ै। हिरण्यगभ शके पीछे पवराट् अपनेरूप में प्रकट ि◌ोता ि◌ै। पवराट् के रूप में हिरण्यगभ शप्रमयक्ष ि◌ोता ि◌ै। जब तक काय शका पवकास ि◌ोता ि◌ै, यि सूत्राममा सूक्ष्म र्रीर से सम्पृतृते चेतनास्वरूप ि◌ोता ि◌ै। उसकी उपत्स्थतत केवल प्रारत्म्भक कारण में पवज्ञान एव कक्रया की संभाव्यता के रूप में ि◌ै। व्यापक आममा की संसांर के मूतरूशप भौततक पदाथों में अमभव्यक्तत की संज्ञां ◌ंपवरार ि◌ै और पवश्व ब्रह्माण्ड की सूक्ष्म प्रकृतत (सामग्री) की उसी प्रकार की अमभव्यक्तत की संज्ञा ब्रह्मा ि◌ै। सूत्राममा हिरण्यगभ शि◌ै। सवोपरर आममा, जो कारण कायभशाव से परे ि◌ै यि ब्रह्म ि◌ै, ककन्तु जब यि अनामम से पृथृक् रूप में आममप्रज्ञ ि◌ो जाता ि◌ै, ि◌म इसे ि◌ी ईश्वर संज्ञा से पुकारते ि◌ैं।'[357] तनम्नतामलका ि◌में इस योजना का संकेत देती ि◌ै:

पवषयी (आममा)	पवषय (ब्रह्म)
1. र्रीरी आममा (पवश्व)	1. ब्रह्माण्ड, व्यवत्स्थत पवश्व

355 मुण्डक, 3/13, 1 ।

356 मुण्डक ,4:4 11 ।

357 सुषुत्प्त अवस्था में पवषयी आममा और पवषय जगत्दोनोंि◌ी उपत्स्थत तो रिते ि◌ैं ककन्तु दमन ककए ि◌ुए अप्रकामर्त रूप में रिते ि◌ैं, यद्यपप सवयशा पवलुप्त नि◌ीं ि◌ोते।

(पवराट अथवा वैश्वानर)

2. तैजस आममा	2. पवश्व की आममा (हिरण्यगभ)श
3. प्रजारूप आममा	3. आममप्रज्ञ (ईश्वर)
4. तुरीयावस्था-त्स्थत आममा	4. आनन्द (ब्रह्म)

यहद एक ताककशक व्यवस्था का आश्रय मलया जा सके तब िम कि सकतेिं कक उपतनषदों का ब्रह्म आध्यात्ममक भाव (अमूत)श निीं ंिै, अतनहदशष्ट सत्ता भी निीं ंिै, न िी मौन की र्ू्यता िै। यि अमयन्त पूण शऔर सबसे अधधक यथाथसशत्ता िै। यि एक जीपवत ऊजस्शवी एवं सकक्रय आममा िै जो यथाथसशत्ता की अनन्त और नानापवध आकृततयों का उद्गम धारणकताश िै। पवमभन्नताएं मायास्वरूप में पवलुप्त िो जानेके स्थान में उच्चतम सत्ता में पररवततशत िो जाती िैं। 'ओम्'् संज्ञाममक अक्षर त्जसका प्रायः ब्रह्म के स्वरूप की व्याख्या करने के मलए प्रयोग ककया जाता िै, अपना मूतरूशप अमभव्यतत करता िै।358 यि सवोपरर आममा उपलक्षण िै, "सबसे ऊंचे(प्रकृष्ट) का प्रतीक िै ।'359 ओम् ्िोस मूतूतशा एवं ंपूणूतशा का प्रतीक िै। परवती साहिमय में यि सवोपरर आममा के तीन मुख्य लक्षणों को व्यतत करता िै त्जन्िें ब्रह्मा, पवष्णुऔर मिेर् नाम से मूतरूशप हदया गया िै। 'अ' पवश्व का स्रष्टा ब्रह्मा िै, 'उ' रक्षक पवष्णु का उपलक्षण िै, और 'म्'् मर्व अथाशत् ्संिारकताश िै।360 ईर् उपतनषद् िमें ब्रह्म की उपासना दोनों प्रकार की अथात्श ्अमभव्यतत और अव्यतत अवस्थाओं में करने ेका आदेर् देती िै ।361 उपतनषदें त्जस एकेश्वरवाद का प्रततपादन करती िैं वि केवल भावाममक रूप निींिै। उसमें पृथृतमव िैकिकन्तु तादामम्य भी िै। ब्रह्म अनन्त िै, इन अथों में निीं कक सान्त पदाथ शउससे बािर िैं, ककन्तु इन अथों में िै कक समस्त सान्त पदाथों की आधारमभपत्त िै। यि तनमय िै, इन अथों में निीं ंकक यि एक ऐसी वस्तु िै जो पीछे और सब काल से परे िै- मानो दो मभन्न अवस्थाएं िों, एक कालवाची और दूसूरी तनमय त्जसमें से एक दूसूरी से उन्नत िै; परन्तु इन अधों में तनमय िै कक वि उन समस्त पदाथों में त्जन्िें काल व्याप्त सकता िै, विी कालातीत (अकालपुरुष) िै। परमसत्ता न तो अनन्त िै और न िी सान्त िै, आममा अथवा उसका साक्षामकार एक जीवन अथवा इसकी नानापवध अमभव्यत्ततयां िैं, ककन्तु यि यथाथसशत्ता िै त्जसके अन्तगतश आममा िै और जो आममा से भी ऊपर सवातशतर्ायी िै, आममा भी िै, इसका साक्षामकार भी िै, जीवन और उसकी अमभव्यत्तत भी िै। यि ऐसा आध्यात्ममक वसंत िै जो प्रस्फुहटत िोता िै, फलता-फूलता िै, और अपने-आपको अनधगनत सीममत केन्द्रों में पवभतत करता िै। ब्रह्म र्ब्द का अथ शिै पवकास, और यि जीवन, गतत, एवं उन्नतत का द्योतक िै ककन्तु मृमृयु, तनश्चेष्टता अथवा त्स्थरता का द्योतक बबलकुल निीं। परमाथसशत्ता को सत्,् धचत् ्और आनन्दरूप अथात्श ्

358 'ओम्'् तनमयसत्ता का उपलक्षण-मात्र िै, उसी प्रकार जैसे कक एक मूतत शपवष्णु का उपलक्षण िै। प्रततमेव पवष्णोः (तैपत्तरीय उपतनषद् पर र्ंकर भाष्य 1/6)

359 मनु, 2: 83; और भी देणखए, तैपत्तरीय उपतनषद्, 17; कि उपतनषद् 1/2 15-16।

360 देणखए, छान्दोग्य उपतनषद्, 1 3, 6-7, बृिदारण्यक उप०, 2/9 1 और 8/3 3,4-5 ।

361 "उभयं सि" अथात्श ्दोनों को साथ-साथ

त्स्थतत, चेतना, एवं परमसुख के रूप में वणनश ककया जाता िै। "ज्ञान, सामथ्य शऔर कक्रया उसके स्वरूप में िैं।" यि स्वयंभूि्।'[362] तैपत्तरीय उपतनषद् किती िै कक ब्रह्म सत्, ्धचमस्वरूप और अनन्त िै। यि एक भावनाममक यथाथसशत्ता िै, "वि पूण शिै, यि भी पूण शिै (पूणमशदः पूणमशम दम्)।[363] अब यि प्रमयक्ष िै कक परमसत्ता पवचार निीं ंिैं, अथवा गमयाममक त्तत निीं ंिै, अथवा एकदम अनासतत बाह्य वस्तु भी निीं ंिै, ककन्तु सारभूत तत्त्व एवं त्स्थतत का, आदर् शएवं ंयथाथ शका, ज्ञान, प्रेम और सौन्दय शका एक जीपवत समत्ष्टरूप ऐतय िै। ककन्तु जैसा कक मिनेपिले किा िै, इसका वणनश िम 'नेतत नेतत' के रूप में िी कर सकतिैं, यद्यपप स्वयंमें यि एक अभावाममक अतनहदशष्ट तत्त्व निीं ंिै।

10. प्रज्ञा और अन्तर्दशत्ष्ट

बुद्धध का लक्ष्य उस ऐतयरूप वस्तु की खोज करना िै त्जसमें पवषयी एवं पवषय दोनों एकसाथ समापवष्ट िों। तकश एवं ंव्याविाररक जीवन दोनों का िी कक्रयाममक मसद्धान्त िै कक इस प्रकार की एक ऐतयरूप वस्तु िै। उसके घटकों का पता लगाना दार्तशनक प्रयास का उद्देश्य िै। ककन्तुबुद्धध के अपनेअन्दर उस पूण शको ग्रिण करनेकी योग्यता के अभाव के कारण यि प्रयास असफल रिकर िमें तनरार्ा की ओर अग्रसर करता िै। बुद्धध नाना प्रकार के प्रतीकों एवं रूढ़ मसद्धान्तों, सम्प्रदायों और रूहढ़गत परम्पराओंके कारण परमसत्ता को ग्रिण करनेके मलए अपने-आपमें अपयाप्शत िै, "त्जस तक न पिुंचकर वाणी और मन दोनों वापस लौट आते िैं (यतो वाचो तनवतन्शतेअप्राप्य मनसा सि)"[364] "र्दत्ष्ट विांनिींपिुंच सकती, न वाणी और न मन िी पिुंच पाते ैं। िम निींजानते। िम यि भी निीं ंसमझते कक कैसे कोई इसके पवषय में मर्क्षा दे सकता िै।"[365] परमसत्ता को इस प्रकार के प्रमेय पदाथ शके रूप में भी निींउपत्स्थत ककया जा सकता कक बुद्धध उसे ग्रिण कर सके। "वि उसे कैसे जाने त्जसकी र्तत से वि सवको जानता िै? िे पप्रय वि अपने-आपको, जो ज्ञाता िै, कैसे जान सके ।'[366] पवषयी का पवषय के रूप में ज्ञान करना असम्भव िै। यि "देखा निींजाता ककन्तु देखने वाला िै, सुना निीं ंजाता ककन्तु ुसुननेवाला िै, प्रमयक्ष ज्ञान का पवषय निीं ंिै ककन्तु प्रमयक्ष ज्ञान करने ेवाला िै, अज्ञात िै ककन्तु जानने वाला िै ।'[367] आममा का अभाव केवल इसीमलए कक वि प्रमेय निींबन सकता निीं ंकिा जा सकता। यद्यपप मानव की बौद्धधक योग्यता इसे प्रमयक्षरूप से निीं ंजान सकती तो भी उन सबकी सत्ता िी न िोती यहद आममा की सत्ता न िोती।"[368] "वि त्जसका धचन्तन मानव के मन द्वारा निींिो सकता ककन्तु त्जसकी प्रेरणा से िी मन

---

362 स्वयम्भूईरा ू ", 7।

363 बृिदारण्यक , 5 1, 1/1

364 तैपत्तरीय, 2/4।

365 केन , 2/3 मुण्डक, 2/1 देणखएकि , 1/3, 10।

366 बृिदारण्यक , 2/4 13; औरभीदेणखए 3/4, 2

367 बृिदारण्यक 3/7, 29 देणखए38, 11।

368 देणखएबृिदारण्यक , 3 = 8, 11 24, 14, 45, 15।

के अन्दर धचन्तन करने ेकी र्त्तत आती िै, केवल उसी को ब्रद्य करके जानो ।'[369] बुद्धध चूंकक देर्, काल, कारण और र्त्तत आहद के पवभागों की सीमा के अन्दर रिकर काय शकरती िै, इसमलए ये िमें गततरोध एवं ंअसमयाभास में लाकर फंसा देत िैं। या तो िम आहदकारण की कल्पना करके चलें, और उस अवस्था में कारणकायभशाव व्यापक मसद्धान्त निीं ंरि सकता, अन्यथा िमें वापस लौटकर किींरिने को जगि निीं ंममलेगी। इस जहटल समस्या का समाधान केवल बुद्धध द्वारा निीं ंिो सकता। जिां ंपरम को जानने ेके प्रश्न उिेंगे, बुद्धध अपनेको विांसाधनिीन और कोरा पाएगी, यि उसे स्वीकार करना िी िोगा। "देवता इन्द्र के अन्दर िैं, इन्द्र पपता ईश्वर के अन्दर िै, और पपता ईश्वर ब्रह्मा में िै, ककन्तु ब्रह्मा ककसके अन्दर िै ?" अब याज्ञवल्तय उत्तर देते िैं, "अब आगे अधधक प्रश्न मत कीत्जए।370 िमारे बौद्धधक पवभाग केवल इत्न्द्रयगम्य भौततक जगत् ्की व्याख्या देर्, काल और कारणों से आबद्ध आकृततयों के रूप में कर सकतिें ककन्तुयथाथसशत्ता इन सबसे परे िै। देर् को यि अपनेअन्दर धारण करती िै ककन्तु ुस्वयंदेर् की सीमा में वद्ध निीं, काल को अपनेअन्दर धारण करते िुए भी स्वयंकाल की सीमा में बद्ध निीं,ं यि काल से ऊपर िै; प्रकृतत की कारण काय शके तनयम से बद्ध व्यवस्था को अपनेअन्दर धारण करती अवश्य िै ककन्तु यि स्वयंकाय-शकारण-तनयम के अधीन निीं ंिै। स्वयंसमस्वरूप ब्रह्म काल, देर् एवं ंकारण से सवथशा स्वतन्त्र िै। उपतनषदों में इसकी काल से स्वतन्त्रता का प्रततपादन कुछ असंस्कृत ढंग से ककया गया िै। ब्रह्म को सवान्शतयामशी, सवव्शयापक, अनन्त रूप से मिान और अनन्त रूप में लघुकिा गया िै। "िे गागी, वि जो अन्तररक्ष से ऊपर िै, और वि जा पृथूवी के भी नीचे िै, वि त्जसे मनुष्य भूत, वतमशान और भपवष्य किते िैं, उस सबकी रचना अन्दर और बिार देर् के अन्तगतश िै। ककन्तु कफर इस देर् की रचना भीतर और बिार ककसके अन्दर िुई? िे गागी समय के अन्दर, इत्त अपवनार्ी के अन्दर, सब देर् के अंदर और बिार गुथा िुआ िै।"[371] ब्रह्म का वणनश ककया गया िै कक वि काल की मयादशा से स्वतन्त्र िै, अथात्श ्वि तनमय िै त्जसका न आहद िै न अन्त अथवा एक तामकामलक अवधध िै त्जसे एक तनयममत काल- व्यवधान की आवश्यकता निींि। वि भूत और भपवष्यत् ्के पवचार से मुतत िै। और सबका प्रभु िुै।'[372] त्जसके चरणों में काल लोटता रिता िै।373 कारण-सम्बन्धी सम्बन्धों से सवधशा स्वतन्त्रता पर बल देते समय ब्रह्म का एक अचल सत्ता के रूप में तनरूपण ककया गया िै, जो प्रादुभुावश िोने ेके समस्त तनयमों से पूण शस्वतन्त्र िै, तयों कारणकायभशाव का व्यापक तनयम विींलागू िूोता िै। ब्रह्म की कारणकायभशावाममक सम्बन्धों से स्वतन्त्रता िोने ेकी इस प्रकार की स्थापना से ब्रह्म की तनतान्त स्वयंसत्ता के भाव एवं उसकी अपररवतनशीय सहिष्णुता का समथनश िोता िै और इससे अनेक प्रकार की ममथ्या धारणाएंउमपन्न िोती िैं। संसार में त्जतने ेभी पररवतनश िोतिें, कारणकायभशाव के तनयम की िी वजि से िोतिें। ककन्तु ब्रह्म इस तनयम के अधीन निीं ंिै। ब्रह्म के अन्दर कोई पररवतनश निीं ं िोता, यद्यपप कुल पररवतनश उसके आधश्रत िैं। दूसूरा कोई उससे बिार निींि और न िी उससे मभन्न प्रकृतत िै। ब्रह्म के अन्दर सब प्रकार के द्वैतभाव को ममटा देना िै। समस्त देर्गत सामीप्य, कालजतनत पूवाश-पर-क्रम एवं

---

369 केनोपतनषद् ।

370 बृिदारण्यक ,3/6, 1 ।

371 बृिदारण्यक ,3/8, 7i और भी देखें 4/2 4, छान्दोग्य ,3 14,3,और 8/24, 7

372 बृिदारण्यक ,4/4 ,15 ।

373 4 4. 16, 17।

सम्बन्धों की परस्पर तनभरशता इसके आधश्रत ि ै। इस गम्भीर दार्तशनक संश्लेषण की प्रात्प्त िमें निीं ंि ो सकती, जब तक कक िम बुद्धध के क्षेत्र में ि ी अटके रिते ें। उपतनषदों का कभी-कभी दावा ि ै कक पवचार के द्वारा िमें उस परमसत्ता का अपूण शएवं आंमर्क धचत्र ि ी ममलता ि ै, अन्य समयों में वे यिां ंतक दावा करती ि ैं कक पवचार के द्वारा व्यत्स्थत ढंग से िम यथाथसशत्ता तक पिुंच ि ी निीं ंसकते। तयोंकक पवचार (बुद्धध) सम्बन्धों के ऊपर आधश्रत ि ै और इसमलए वि सम्बन्धपविीन परमसत्ता को ग्रिण निींकर सकता। ककन्तुइस पृथ्वी पर ऐसा भी एक पदाथ शनिीं ि ै जो देर् एवं ंकाल में अवत्स्थत ि ोकर उस परमसत्ता को अमभव्यतत न करता ि ो। कोई भी ज्ञान तनतान्त असमय निीं ंि ै, यद्यपप तनतान्त समय भी कोई ज्ञान निीं। एक सुव्यत्स्थत संपूण शसत्ता का भाव समय के अमयधधक तनकट ि ै यद्यपप यि भी पूणरूशप में समय निीं तयोंकक इसका स्वरूप सापेक्ष जो ि ै। यि परमसत्ता का सबसे उच्च स्वरूप ि ै जिां ंतक मानवीय मत्स्तष्क की पिुंच ि ो सकती ि ै। केवल समझ लेनेके भाव से भी बुद्धध, त्जसे कक काल, देर् एवं ंकारण रूपी पररममत पवभागों की सिायता से काय शकरना पड़ता ि ै, अपयाप्शत ि ै। तकश भी असफल रिता ि ै, यद्यपप यि िमें समझने ेकी कोहट से आगे अवश्य ले जाता ि ै। यि िमें यथाथसशत्ता को प्राप्त निींकरा सकता, जो पवचारमात्र निीं ंककन्तु आममस्वरूप ि ै। परमसत्ता न समय ि ै और न ममथ्या ि ै। िमारे अपनेतनष्कष शउस परमसत्ता के पवषय में समय अथवा ममथ्या ि ो सकते ें तयोंकक वे पवचार और परमसत्ता के मध्य पवद्यमान द्वैत का संकेत करते ि ैं। यहद िम उस परमसत्ता तक पिुंचना चािते ि ैं जिां मनुष्य का अत्स्तमव और दैवीय सत्ता ममलकर एकाकार ि ो जाते ि ैं तो उसके मलए िमें पवचार से दूरू जाना ि ोगा, पवरोधी मतों के परस्पर संघष शसे भी दूरू, और ऐसे समयाभासों से भी दूरू जो िमारे सामने उपत्स्थत ि ोते ें जब िम अमूत श केवल भावाममक पवचार के सीममत पवभागों द्वारा अपना काय शसम्पादन करते ि ैं। केवल उसी अवस्था में जवकक पवचार पूणतशा को प्राप्त ि ोता ि ै, िम अन्तर्दत्शष्ट द्वारा परमसत्ता की झलक को ग्रिण कर सकते ें। संसारभर के सब ब्रह्मसाक्षामकारवाहदयों ने इस समय के ऊपर बल हदया ि ै। पास्कल ने ईश्वर की अज्ञेयता का पवस्तार से तनरूपण ककया ि ै। और बोस्युएट िमें आर्ा हदलातेिुए किता ि ै कक पथपवच्युततयों में भी िमें तनरार् न ि ोना चाहिए, प्रमयुत पवश्वास के साथ उन सबको एक प्रकार की स्वण-शश्रृंखलाओंके समान समझना चाहिए जो मरणधमाश मनुष्य की र्दत्ष्ट से परे ईश्वर के राजमसंिासन पर जाकर ममल जाती ि ैं।

उपतनषदों के अनुसार एक उच्चतर त्तत ि ै जो िमें इस केन्द्रीय आध्यात्ममक सत्ता को ग्रिण करने योग्य बनाती ि ै। आत्ममक पवषयों का पववेचन आध्यात्ममक र्दत्ष्ट से ि ी ि ोना चाहिए। योग की प्रकक्रया एक कक्रयाममक अनुर्ासन ि ै जो इसकी प्रात्प्त के माग शकी ओर तनदेर् करती ि ै। मनुष्य के अन्दर दैवीय अन्तर्दत्शष्ट की योग्यता ि ै, त्जसे यौधगक अन्तर्दत्शष्ट किते ि ैं त्जसके द्वारा वि बुद्धधगत भेदों से ऊपर उिकर तकश की पिेली को बुझा लेता ि ै। पवमर्ष्ट आममाएं पवचार के उच्च मर्खर तक पिुंचकर आभ्यन्तर तनरीक्षण द्वारा परमाथसशत्ता को पा लेती ि ैं। इस आध्यात्ममक मसद्धध के द्वारा "जो श्रवणगोचर निीं ंथा वि श्रवणगोचर ि ो जाता ि ै, जो अप्रमयक्ष था वि प्रमयक्ष ि ो जाता ि ै, और जो अज्ञात था ज्ञातकोहट में आ जाता ि ै।"[374] त्जस क्षण िम तकश से ऊपर उिकर धाममकश जीवन व्यतीत करना प्रारम्भ करते ि ैं, बुद्धध की सब समस्याएं स्वयंअपनेसमाधान आप

---

[374] छान्दोग्य , 6: 13; औरभीदेणखएबृिदारण्यक ,2/4.5 ।

से कर लेती िैं।375 इसीमलए उपतनषदें िमें आदेर् देती िैं कक िमें बुद्धध एवं ंआममचेतना सम्बन्धी अपनेगव शको एक ओर रखकर एक मर्ु के समान नवीन एवं ंतनरुपाधधक र्दत्ष्टकाण से समय को प्राप्त करना चाहिए। "ब्राह्मण को पवद्या को छोक़र एक बच्चे ेकी भांतत रुद्धधचत्त बन जाना चाहिए।"[376] बबना पिले एक छोटे बच्चे का रूप धारण ककए कोई मनुष्य ईश्वर के राज्जय में प्रवेर् निींपा सकेगा। तनश्छल और रुदुधचेता ब्र ेसे ब्र े समय को प्राप्त कर लेते िैं त्जर्न्िें व्यिविारकुर्ल बुद्धध मसद्ध निींकर सकती। "बिुत र्ब्दों (वाग्जाल) के पीछे निीं ंपऩा चाहिए तयोंकक उससे व्यथ शमें वाणी को श्रम करना पड़ता िै।"[377] "अध्ययन से आममा की प्राप्त निीं ं िोती, मेधा से भी निीं ंऔर पुस्तकों के बिुत अधधक ज्ञान से भी निीं।"[378] इसे योगी लोग आभ्यन्तर ज्जयोतत के प्रकार् के क्षणों में प्राप्त करते िैं। यि अव्यवहित ज्ञान अथवा तनकटतम तामकामलक अन्तर्दत्शष्ट िै। योगी लोगों के अनुभव में आममा अपनेको सवोपरर सत्ता के सात्न्नध्य में उपत्स्थत पाती िै। अमभज्ञता, धचन्तन और परमसत्ता के सुख में मग्न िो जाती िै। उसके समीप पिुंचकर यि अपनेअत्स्तमव को भी भूल जाती िै। इससे ऊंचा और कुछ निीं ंिै और सब वस्तुएं इसी के अन्दर सत्न्नपवष्ट िैं। इसे तब ककसी पाप का डर निीं ंिोता, ककसी असमय का भय निीं ंिोता, अपपतु यि पूणरूशप से ईश्वर का आर्ीवादश प्राप्त करती िै। इस प्रकार की आध्यात्ममक झलक िमें सब प्रकार की वासना एवं दु्ःख से मुतत करके र्ात्न्त प्रदान करती िै। आममा अपनेइस उच्चपदारोपण में उसके साथ त्जसका वि प्रमयक्ष कर रिी िै, अपूनी एकाममा का अनुभव करती िै। प्लाहटनस किता िै, "ईश्वर के दर्नश में जो द्रष्टा िै वि तकश निीं िै ककन्तु तकश से बड़ा एवं ंतकश के पूव शकी अवस्था िै, त्जसकी धारणा तकश को भी पिले से करनी पड़ती िै, और वि इस दर्नश का पवषय िै। वि जो उस समय अपने-आपको देखता िै जब वि देखता िै, अपनेको एक सरल प्राणी के रूप में देखेगा और इसी रूप में अपने ेसाथ भी संयुतत िोगा और अपनेमें अनुभव करेगा कक म ैंभी तद्रूप िो गया िूं। यहद वस्तुतः अब आगे को द्रष्टा और र्दश्य के मध्य पववेचन करना सम्भव िो सके और र्दढ़तापूवकश यि तनत्श्चत रूप से न किा जा सके कक दोनों एक िी िैं तो िमें यि भी न किना चाहिए कक वि देखेगा, बत्ल्क वि त्जसे देखेगा विी िो जाएगा। वि ईश्वर से सम्पृतत िै और उसके साथ एकाकार िै, त्जस प्रकार दो समकेत्न्द्रत वृत्त िोते िैं। जब वे ेएक-दूसरे के अन्दर समापवष्ट िोते िैं तो एक िैं और अलग ककए जानेपर िी वे दो मभन्न-मभन्न प्रतीत िोते िैं।"[379] मानवीय मानस की सब मित्त्वाकांक्षाएं, इसकी बौद्धधक मांगें, इसकी मनोभाव सम्बन्धी आकांक्षाएं एवं संकल्परूप आदर् शये सब विां

चररताथ शिो जाते िैं। मनुष्य के पुरुषाथ शका यि सवोपरर लक्ष्य िै, अथात्श ्वैयत्ततक जीवन की समात्प्त। "यि

---

375 मुण्डक 3: 1, 8 ।

376 बृिदारण्यक, 3: 5, 1: ड्यूसन एवं ंगफ नेइस अनुवाद अनुवाद को ग्रिण ककया िै, यद्यपप मैतैसमूलर इसका अनुवाद इस प्रकार करता िै। "अध्ययन की समात्प्त के अनन्तर एक ब्राह्मण को अपनी र्त्तत का आश्रय लेना चाहिए।" इसका आधार 'बाल्येन' के स्थान पर 'बल्येन' इस िीन श्रेणा के अध्ययन पर िै। "तस्माद् ब्राह्मणः पात्ण्डमयं तनपवद्य बाल्येन ततषि्ासैत् ्।"

377 बृिदारण्यक, 4/4, 21 ।

378 किोपतनषद्, 2/23 ।

379 इंगे । 'प्लाहटनस', खण्ड 2 पृष्ि 140।

उसकी परमगतत ि◌ै, यि उसकी परमसम्पपत्त ि◌ै, यि उसका परमलोक ि◌ै, और यि उसका परम आनन्द ि◌ै।"[380] एक स्तर पर यि प्रमयक्ष अनुभव के ि◌ी समान ि◌ै, ककन्तु अन्य प्रमयक्ष ज्ञान से इसका इतना भेद ि◌ै कक यि पवषयगत प्रमयक्ष ज्ञान निीं ◌ंि◌ै त्जसकी यथाथतशा को अन्य लोग परख सकें। अनुमानजन्य ज्ञान की भांतत इसे अन्यों को निीं हदया जा सकता। इसकी औपचाररक रूप से व्याख्या करना असम्भव ि◌ै। यौधगक अन्तर्दत्शष्ट मूकरूप अव्यतत ि◌ै (त्जसे वाणी द्वारा प्रकामर्त निींककया जा सकता)। त्जस प्रकार एक जन्मान्ध को ि◌म इन्द्रधनुष की सुन्दरता निीं ◌ंसमझा सकते, न ि◌ी सूयास्शत का सौन्दय शसमझा सकतिैं, ि◌ीक उसी प्रकार एक ऐसे ◌े लौककक व्यत्तत को त्जसे योगसमाधथ का अनुभव निीं ◌ंि◌ै, योगी के साक्षामकार की व्याख्या करके निीं समझाया जा सकता। यौधगक अनुभव का अत्न्तम सन्देर् यि ि◌ै कक "ईश्वर ने यि मेरे मत्स्तष्क में डाला और म ◌ैंइसे तुम्िारे मत्स्तष्क में निीं ◌ंडाल सकता।" केवल इसी कारण कक इस अनुभव को दूसूरे को निीं ◌ंहदया जा सकता, इसका प्रामाण्य ज्ञान के अन्यान्य प्रकारों से न्यून निीं ि◌ो जाता। ि◌म इस अनुभव का वणनश केवल रूपक अलंकारों द्वारा ि◌ी कर सकतिैं, तयोंकक वि ि◌में चौंधधया देनेवाला एवं मूक बना देनेवाला ि◌ै। इस अतनवचशनीय का पूरा-पूरा पववरण निीं ◌ंहदया जा सकता। राजा वाष्कमल ने जब बाह्व से किा कक ब्रह्म के स्वरूप की व्याख्या करे तो वि मौन रिा। जब राजा ने अपनेतनवेदन को कफर दोिराया तो उस मिाममा ने उत्तर हदया, "म ◌ैंतुम्िें इसे बतलाता ि◌ंू◌ू ककन्तु तुम इसे समझतेनिीं;◌ं 'र्ान्तोऽयमाममा: यि आममा र्ान्त का स्वरूप ि◌ै, तनश्चल ।"[381] बुद्धध द्वारा प्रस्तुत ककसी भी पररभाषा के मलए ि◌म उत्तर में केवल यिी किेंगे कक यि ि◌ीक निीं ◌ंि◌ै, यि उपयुतत निीं ◌ंि◌ै।382 नकाराममक पररभाषाएं प्रकट करती ि◌ैं कक ककस प्रकार सकाराममक गुण, जो ि◌में ज्ञात ि◌ैं, उच्चतम सत्ता के पवषय में अपयाप्शत ि◌िरतिैं। "उसको मापना कहिन ि◌ै त्जसका गौरव वस्तुतः मिान ि◌ै।"[383] ब्रह्म के साथ परस्पर पवरोधी गुणों का प्रयोग यि प्रकट करता ि◌ै कक जब तक ि◌म बुद्धध से संबंधधत तकशर्ास्त्र का प्रयोग करते ि◌ैं, ि◌म नकाराममक भावों का प्रयोग करने ◌ेके मलए पववर् ि◌ोते ि◌ैं यद्यपप ब्रह्म का साक्षात् ◌्जब अन्तर्दत्ष्ट द्वारा ि◌ोता ि◌ै तो ककतने ि◌ी सकाराममक लक्षण अमभव्यतत ि◌ोतिैं। "यि सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतर ि◌ै, मित से भी मित्तर ि◌ै।"[384] "यि गतत करता ि◌ै, यि गतत निीं ◌ंभी करता, यि दूरू भी ि◌ै और समीप भी ि◌ै, यि इस सबके अन्ततनपशवष्ट ि◌ै, और इस सबके बािर भी ि◌ै।"[385] असंगत प्रतीत ि◌ोने ◌ेवाली ये पररभाषाएं पवचार की ककसी अस्तव्यस्तता की लक्षण निीं ◌ंि◌ैं।

प्रमयेक प्रकार के आनुभापवक ज्ञान में परमसत्ता का संकेत ममलता ि◌ै, तयोंकक संसार का प्रमयेक भौततक पदाथ शउस परमसत्ता के ऊपर आधश्रत ि◌ै, यद्यपप कोई भी पदाथ शपूणरूशप से उसकी अमभव्यत्तत निीं ◌ंकरता। इस

---

380 एषास्यपरमागततःएषास्यपरमा सम्पत्,◌् एषोऽस्य परमो लोकः, एषोऽस्य परम आनन्दः । " (बृिदारण्यक , 4/3, 32) ।

381 र्ांकर भाष्य,4: 3, 32 ।

382 देखें बृिदारण्यक, 3/9, 26 , 4: 2, - 4/4, 22 45, 15, 2:3, 6, कि, 3: 15, प्रश्न, 4: 10; छान्दोग्य , 7/24, 1 मुण डक, 117, 2:1,2,3:1,7-8 ।

383 यजुवेद ।

384 श्वेताश्वतर, 3 20; केन 1:3।

385 ईर्ोपतनषद्, अध्याय 5।

प्रकार वे लोग जो समझतेिैं कक वे ेपरमसत्ता को निीं ंजानते, उसे जानते िैं यद्यपप अपूणरूशप से, और वे लोग जो समझतेिैं कक वे परमसत्ता को जानते िैं उसे ेबबलकुल िी निीं ंजानते। यि एक प्रकार का आधा ज्ञान और आधा अज्ञान िै। केन उपतनषद् में किा िै, "वि उन लोगों के मलए अज्ञात िै जो जानते िैं और उनके मलए ज्ञात िै जो निीं ंजानते।"[386] उपतनषदों का अमभप्राय यि निीं ंिै कक बुद्धध एक अनुपयोगी पथप्रदर्कश िै। बुद्धध द्वारा प्राप्त यथाथसशत्ता का पववरण असमय निीं ंिै। बुद्धध वििंअसफल िोती िै जिां ंयि उतत सत्ता को उसके पूणरूशप में ग्रिण करनेका प्रयमन करती िै। अन्य प्रमयेक स्थान पर इसे सफलता प्राप्त िोती िै। बुद्धध त्जस वस्तु की गवेषणा करती िै वि ममथ्या निीं ंिै, यद्यपप वि परमस्वरूप से यथाथ शसत् ्निीं ंिै। कारण और काय शमें, पदाथ श और उसके गुण में, पाप और पुण्य में, समय एवं ंभ्रांतत में, पवषयी और पवषय में जो समयामास प्रतीत िोतेिैं वे मनुष्य की परस्पर सम्बद्ध पररभाषाओं को पृथक् पृथक् करके देखने की प्रवृपृत्त के कारण िैं। कफश्तेकी आमम एवं अनामम सम्बन्धी जहटल समस्या, कांट के समयाभास, ह्यूम का घटनाओं का तनयमों के साथ पवरोध, ब्रैडले के असंगततपरक पवसंवाद-इन सबका समाधान िो जा सकता िै यहद िम इस बात को स्वीकार कर लें कक परस्पर पवरोधी अवयव परस्पर एक-दूसूरे के पूरक अंर् िैं, त्जन सबका आधार एक िी सामान्य तत्त्व िै। बुद्धध के तनषेध की आवश्यकता निीं,ं ककन्तु ुउसकी अनुपूतत शकी आवश्यकता िै। अंतर्दत्शष्ट के ऊपर त्जस दर्नश-पद्धतत का आधार िो, जरूरी निीं ंकक वि तकश एवं ंबुद्धध के पवपरीत िी िो। जिांबुद्धध का प्रवेर् सम्भव निीं ंिै ऐसे अन्धकारमय स्थानों में अन्तर्दत्शष्ट प्रकार् डाल सकती िै। यौधगक अन्तर्दत्शष्ट से प्राप्त तनष्कषों को ताककशक पवश्लेषण के अधीन करने की आवश्यकता िै। और केवल यिी प्रकक्रया ऐसी िै कक परस्पर संर्ोधन एवं पूतत शके द्वारा प्रमयेक व्यत्तत सात्त्वक एवं सन्तुमलत जीवन बबता सकता िै। यहद अन्तर्दशत्ष्ट की सिायता न ली जाए, तो बुद्धध द्वारा प्राप्त ककए गए तनष्कष शनीरस, तनस्सार, अधूरे एवं आमर्क िी रिेंगे, दूसूरी ओर नैसधगकश अन्तर्दत्शष्ट के तनष्कष शपवचाररूून्य, मूक, अन्धकारवृत एवं ंअरूप प्रतीत िोंगे, जब तक कक उन्िें बुद्धध का समथनश प्राप्त न िो। बुद्धध के आदर् शकी प्रात्प्त अन्तर्दत्शष्ट के अनुभव द्वारा िोती िै, तयोंकक सवोपरर परब्रह्म के अन्दर समस्त पवरोधी पवषयों का समन्वय िो जाता िै। केवल वैज्ञातनक ज्ञान और अन्तर्दत्शष्ट के अनुभव के सिायता शसे िी िमारे यथाथ शअन्तज्ञानश की वृद्ूधध िो सकती िै। अकेला तकश िमें इस क्षेत्र में सिायता निीं ंकर सकता।'[387] यहद िम बुद्धध द्वारा दी गई अत्न्तम व्यवस्था से िी संतोष करें तो उस अवस्था में बुित एवं व्यत्ततयों के स्वातन्त्र्य को िी दर्नशर्ास्त्र का अत्न्तम तनणयश समझना िोगा। प्रततद्वन्द्पवता एवं संघष शपवश्व का अत्न्तम लक्ष्य िोगा। अमूत शभावाममक बुद्धध िमें ममथ्या दर्नश एवं ंअनुधचत नैततक मान्यताओंकी ओर ले जाएगी। इस प्रकार के ज्ञान से बाह्य आवृत रिेगा।388 एकदम धचन्तन में न जानेकी त्स्थतत सम्भवतः इस प्रकार के बुद्धधवाद से अधधक उत्तम िै। "वे सब जो उस वस्तु की उपासना करते िैं जो अपवद्या िै, प्रगाढ़ अन्धकार में प्रपवष्ट िोतेिैं, और वे जो पवद्या की उपासना करते िैं वे उससे भी प्रगाढ़तर अन्धकार में प्रवृष्ट िोतेिैं ।"[389] बुद्धध द्वारा प्राप्त पवपवधता का ज्ञान, त्जसके साथ आममदर्नश निीं, ममथ्या पवश्वास अथवा

---

386 2:3।

387 किोपतनषद्, 2/9।

388 "मेधया पपहितः" (अथात्श, ् जो बुद्धध के आवरण से प्रमयक्ष निीं ंिो), तैपत्तरीय उपतनषद् ।

389 बृिदारण्यक उपतनषद् 4:4-10, देखें ईर्ोपतनषद, अध्याय 9।

 अज्ञान से भी अधधक बुरा िै। जीवन एवं ंतकश की असंगततयों एवं ंअन्तपवरशोधों को इमसनश द्वारा वणणतश ब्रह्मा के
अन्दर समवेत करना िी िोगा।

जो मुझे ेएकदम निीं ंधगनते उनकी गणना भ्रान्तपूण शिै;
जब मेरा ध्यान करते िैं तो उनकी उ़ान सम्भव िो सकती िै
तयोंकक म ैंिी पंख िंूं त्जनके सिारे वे उ़ सकतिैं,
संर्यकताश भी म ैंिंूं और संर्य भी म ैंिी िंूं।
वि एक िी एकमात्र तनमय आममा िै जो इस संसार की नानापवध सम्पपत्त को उसके सब मनोवेगों,
असंगत पवरोधाभासों, भत्ततपूण शभावों, समयों एवं ंअसंगततयों के रिते िुए भी अमभव्यतत करता िै, अपनेअन्दर ग्रिण करता िै, एकीभूत करता िै, और उसका सुखोपभोग भी करता िै। दुबुलशाममा व्यत्तत इस सवामशमरूप यथाथसशत्ता से अनमभज्ञ िोने के कारण बौद्धधक, सौन्दय-शसम्बन्धी एवं नैततक संघष शसे तलान्त एवं ंतनरार् िो जाते िैं। ककन्तु उन्िेंइस समय से उमसािपूवकश प्ेरेणा लेनी चाहिए कक सामंजस्य का सुखानुभव परस्पर-पवरोधी अवयवों के संघष शके अन्दर से िी उमपन्न िोता िै। प्रतीयमान अंतपवरशोध आत्ममक जीवन से सम्बद्ध िैं। विी एकमात्र सत्ता जीवन और पवचारधारा के समस्त पवरोधों में अपनेअत्स्तमव को अमभव्यतत करती िै, जो ह्यूम की समस्याएं, कांट की समस्याएं एवं ंप्रमयक्षवाद के अन्तदद्वशन्द्व और मसद्धान्त-पररकल्पना की रूहढ़यां िैं।

तकश की अपेक्षा अन्तर्दत्शष्ट पर, एवं ंपवज्ञान की अपेक्षा आनन्द पर अधधक बल देनेके कारण उपतनषदें अद्वैतवाद की समथकश प्रतीत िोती िैं, त्जसका वणनश िम अपनी प्रस्तावना में कर आए िैं। जब तक िम तकशसंगत पवचारों को लेकर यथाथसशत्ता के ऊपरी पृष्ि पर िी स्पर् शकरते रिेंगे, िम आममा की गिराई में निीं ंपिुं सकेंगे। आनन्द के अन्दर मनुष्य को यथाथसशत्ता का सबसे अधधक और अगाधतम स्वरूप उपलब्ध िोता िै। मानवीय अनुभव द्वारा त्जस गिराई का अभी तक अनुसन्धान निींिो सका, अथात्श ्आनन्दमय, उसी के अन्दर यथाथसशत्ता की सामग्री तनपवष्ट िै। तकशपद्धततयां जीवन रूपी प्रचुर मूल्यवान खान की गिराई में नीचेउतरने की उपेक्षा करती िैं। जो कुछ पवज्ञान का पवषय िो गया वि अयथाथ शिै यद्यपप इसका झुकाव व्यापक एवं पदाथतशनष्ि िोनेकी ओर िै। और यथाथ शमें आममतनष्ि विी िै जो ककसी प्रकार की धारणा एवं ंपवभाग के रूप में निीं ंपररणत tilde 61 सका िै। पवज्ञान द्वारा िम त्जस सुव्यवत्स्थत पूण शतक पिुंचते िैं, उससे ब्रह्म के साथ अमभन्नता पर मोिर लगकर पतको िो जाती िै। अन्तर्दत्शष्ट भी उसी अमभन्नता (सायुज्जय) को दर्ातशी िै। इस अमभन्नता के ज्ञान की प्रात्प्त के मलए प्रयमन करने ेमें िम पिले ऊपर ऊपर से इसे नानापवध भेदों में पवभतत करते िैं और कफर उनको ममलाकर एक पवर्ेष पद्धतत द्वारा अमभन्नता तक पिुंचते िैं। ककन्तुत्जस यथाथतशा को िमने एक बार मभन्न-मभन्न भागों में पवभतत कर हदया उसे कफर से केवल तकश द्वारा एकमव को निीं ंप्राप्त कराया जा सकता। जैसा कक िम अनेक बार कि चुके िैं, तकश का एक बार का िी प्रयोग 'ऐतयरूप' सत्ता को पद्धतत-पवर्ेष में पररणत कर देनेके मलए पयाप्शत िै।

11. सृतूष्ट-रचना

ऊपर हदए गए िमारे ब्रह्म के स्वरूप-सम्बन्धी पववरण से यि स्पष्ट िै कक उपतनषदें भौततकवादी एवं जैव-(प्राणर्त्तत) वाहदयों के पवकास के मसद्धान्त से सन्तुष्ट निीीं। भौततक प्रकृतत तब तक जीवन एवं चेतना के रूप में पवकमसत निीं ंिो सकती जब तक कक तद्पवषयक सामथ्य शउसके अपनेस्वरूप के अन्दर तनहित न िो। बाह्य वातावरण के ककतने ेभी प्रमयाघात तयों न लगें, वे भूतों के संघातमात्र प्रकृतत के अन्दर से जीवन को उमपन्न निींकर सकते। आनन्द पवकास का अत्न्तम पररणाम निीीं िसकता जब तक कक प्रारम्भ में आनन्द की पवद्यमानता स्वीकार न की जाए। पररणामी ककसी न ककसी अवस्था में, चािे वि अप्रकामर्त अवस्था में िी तयों न िो, बराबर उपत्स्थत रिता िै। संसार का प्रमयेक पदाथ शअपने उपादान एवं अत्न्तमरूप के लक्षणों को धारण ककए रिता िै। "एक पुत्र के अन्दर जो कुछ उपलक्षक्षत िोता िै वि उसके पपता के कारण िै; और जो कुछ पपता के अन्दर िै वि पुत्र के अन्दर भी प्रकट िोता िै।"[390] संसार की प्रमयेक वस्तु, केवल व्यत्ततगतरूप में मनुष्य िी निीं, तत्त्व रूप से स्वयंयथाथसशत्ता का स्वरूप िै। पवकास से तामपय शवस्तुओंकी अन्तगतश क्षमताओं ं की अमभव्यत्तत िै जो बांधक र्त्तयों के िट जानेसे प्रकट िो जाती िै। वैज्ञातनक दृत्ष्टकोण से िम सांसाररक पदाथों में पवकास की मभन्न-मभन्न श्रेेणणयों को लक्षक्षत करते िैं। दार्तशनक का लक्ष्य उनके अन्दर एकमव को ढूंढ़ना िै। संसार की गुणनावस्था का आधार विी एक आममा िै। "तन:सन्दिे यहद यि आनन्द आकार् में न िोता तो कौन जीवन धारण कर सकता था, या श्वास ले सकता था ?"[391] सूय शिीक समय पर उदय िोता िै, नक्षत्रगण अपनी कक्षा में घूमते िैं, और सब पदाथ शअपनी-अपनी व्यवस्था में त्स्थत िैं और अपनेकतव्शयों में मूतछशत निीं िोते, उसी तनमय आममा की सत्ता के कारण जो कभी ऊंघता निीं, न कभी सोता िै, जो सवदशा साक्षीरूप से पवद्यमान िै। "सब पदाथ शउसी की ज्जयोतत से ज्जयोततष्मान िैं, उसी की ज्जयोतत से यि सब पवश्व प्रकामर्त िै।"[392] आनन्द िी संसार का आहद एवं ंअन्त िै, काय शभी िै कारण भी िै, पवश्व का मूल िै और लक्ष्यस्थान भी िै।393' तनममत्त कारण और अत्न्तम कारण दोनों एक िैं। प्रकृतत, त्जससे पवकास की प्रकक्रया का प्रारम्भ िोता िै, एक स्वतन्त्र सत्ता निीं ंिै। इसनेअपनेअन्दर उच्चतर आनन्द को तछपा रखा िै। क्रममक उन्नतत में सम्भाव्य कारण से वास्तपवक कारण की ओर संक्रमण िोता िै। प्रकृतत के अन्दर जीवन की अपेक्षा त्स्थततर्त्तत अधधक िै, अत्स्तमव के क्रमबद्ध नमूनों के अन्दर सबसे पीछे आने ेवाले अधधकतर पवकमसत और आकृततरूप िैं, जबकक पिले वाले अधधकतर कायक्षशम ककन्तु आकृततपविीन िोतिैं। अरस्तू के ब्दों में पूवतशर प्रकृतत िै और पीछे की आकृतत िै। प्रकृतत तनत्ष्क्रय तत्त्व िै त्जसको र्त्तत से तनपवष्शट करनेकी अथवा ज्ञान के साथ संपृतृत िोने ेकी आवश्यकता िोती िै। तकशर्ास्त्र के वणनश के अनुसार ईश्वर प्रकृतत का तनरीक्षक िै, जो इसमें गतत देता िै। यि ईश्वर प्रज्ञान िै, अथात्श ्अनाहदकाल से कक्रयार्ील आममचेतन बुद्धधरूप िै।394' पररवतनश के समस्त साम्राज्जय

---

390 ऐतरेय आरण्यक, 2/1,8, 1।

391 तैपत्तरीय उपतनषद्, बल्ली 2।

392 मुण्डक, 2/2 10।

393 मूल और तूल, ऐतरेय आरण्यक ,2/1, 8, 1।

394 ऐतरेय आरण्यक, 1:3, 3, 6।

की त्जम्मेदारी उसी के ऊपर िै। उपतनषदें पूव शसे पवद्यमान प्रकृतत को बनाकर उसमें से सृतृष्ट की रचना करने वाले एक सवर्शत्ततमान कारीगर को स्वीकार करने ेमें संकोच अनुभव करती िैं। यहद प्रकृतत ईश्वर से बाह्य िै, भले िी िम उस प्रकृतत को केवल त्स्थततर्त्तत के रूप में िी स्वीकार करें, तो िम द्वैतवाद से निीं ंबच सकते. तयोंकक ईश्वर प्रकृतत के पवरोधी स्वभाव वाला रिेगा। इस प्रकार का द्वैतभाव अरस्तू के दर्नशर्ास्त्र का एक पवमर्ष्ट लक्षण िै, त्जसमें उन्िोंने ेएक सवप्रशथम गतत देनेवाले को एवं ंसवप्रशथम प्रकृतत को स्वीकार ककया िै। उपतनषदों के अनुसार आकृतत एवं ंप्रकृतत दोनों सतत कक्रयार्ील चेतना और तनत्ष्क्रय अचेतना एक िी अद्पवतीय यथाथ शसत्ता के स्वरूप िैं। प्रकृतत स्वयंएक देवता िै।395 इसकी प्रथम आकृततयां ंअथात्श ्अत्ग्न, जल और भूमम भी दैवीय समझी जाती िैं, तयोंकक उन सबमें एक आममा के द्वारा िी चैतन्य आता िै। सांख्य-प्रततपाहदत द्वैतवाद उपतनषदों को रुधचकर निीं ंिै। सवातशतर्ायी यथाथसशत्ता आधार अथवा व्याख्या िै उस संघष श की जो आममा एवं ंप्रकृतत के मध्य चलता िै ।"[396] यि समझा जाता िै कक सारे संसार में एक िी सामान्य प्रयोजन काम करता िै, और पररवतनश की आधारभूमम भी एक समान िै। उपतनषदें अनेक अद्भुत और ममथ्या कल्पनाओं के द्वारा सृतृष्टरचना का वणनश करते िुए संसार के एकमवरूपक समय मसद्धान्त का प्रततपादन करती िैं। ब्रह्म

शी इस् बी सृतृष्ट का मात्र उपादान मूल एवं श तनयामक भी िै। असत् संसार के पवमभन्न सत्त्व उस एक िी पवकासरूप रज्जजु में गांिें के समान िैं, त्जसका प्रकृतत से प्रारम्भ िोकर आनन्द में अन्त िोता िै।

"उसनेअपनेको अपने-आप से बनाया।"[397] "वि सृतृष्ट की रचना करता िै और कफर उसमें प्रपवष्ट िोता िै।"[398] एक दिेधारी ईश्वर प्रजापतत ने अकेले रिते-रितेऊबकर प्रमयेक पदाथ शको, जो पवद्यमान िै, अपने अन्दर से प्रादुभूतश ककया अथवा यों किना चाहिए कक उसनेअपनेको दो भागों में पवभतत ककया, पुरुष और स्त्री के रूप में।'[399] किीं-किीं ंर्रीरधारी अथवा उमपन्न सत्ता को इस रूप में दर्ाशया गया िै कक वि स्वयंएक भौततक आधार से उद्भूत िुई। दूसूरे अवसरों पर पदाथों के मौमलक तत्त्व को दर्ायशा गया िै कक विी अपनेको सृतृष्ट के रूप में अमभव्यतत करती िै।400 आममा पदाथों के अन्दर िीक उसी प्रकार व्याप्त िो जाती िै जैसे कक नमक पानी में घोला जाकर सारे पानी को व्याप्त कर लेता िै आममा से पदाथ शिीक उसी प्रकार प्रादुभूतश िोतें कक जैसे कक प्रज्जजवमलत अत्ग्न से धचंगाररयां तनकलती िैं, अथवा जैसे मकड़ी के अन्दर से उसके द्वारा बुने ेगए जाले के तागे तनकलतें, अथवा जैसे बांसुरी से ध्वतन तनकलती िै।401 जिां ककसी वस्तु का प्रादुभाववश िोने ेपर भी उससे उसके

---

395 छान्दोग्य उपतनषद्, 6 : 8, 4-6।

396 प्रश्नोपतनषद्, 1: 3।

397 तैपत्तरीय उपतनषद्, और भी देखें, विृदारण्यक, 21, 20; मुण्डक, 1: 1, 7; 2:1, 1।

398 विृदारण्यक, 4/7।

399 बृिदारण्यक, 1/2 14। िमें चीन देर् के 'यांग' और 'तयन' के मसद्धान्त में भी इसीके सदर्ृ मसद्धान्त ममलता िै आहदम सृतृष्ट के पूव शपवश्रृंखला का भंग इन्िीं दो परस्पर पवरोधी तत्त्वों अथात्श ्प्रसरण एवं संकुचन द्वारा िुआ। यांग सब प्राणणयों में पुंस्मव-र्त्तत और तयन स्त्रीमव र्त्तत िै। इसकी तुलना 'एत्म्पडोतली' के मत के साथ भी कीत्जए।

400 छान्दोग्य, 3/39 I

401 छान्दोग्य, 7: 21, 2, 6/2 1; विृदारण्यक, 4/5 मुणुडकोपतनषद्, 2।

उद्भवस्थान पर कोई प्रभाव नर्िीं ंपड़ता ऐसे मसद्धान्त को भी प्रस्तुत ककया गया िै। सूय शके प्रकार् तनकलता िै
कफर भी उससे सूय शमें कोई पररवतनश नर्िीं ंआता। यि उस परवती मत की युत्ततयुतत व्याख्या प्रतीत िोती िै
त्जसके अनुसार एक व्यत्तत केवल ब्रह्म का आभास अथवा अमभव्यत्तत िी िै। मकड़ी द्वारा जाला बुने ेजाने,
माता द्वारा बच्चे ेको जन्म देनेऔर वाद्य-यंत्रों द्वारा स्वरों के तनकलने के सब दृष्टान्त यि बतलाने के मलए िै
कक ककस प्रकार कारण और काय शका परस्पर सम्बन्ध अमयन्त घतनष्ठ िै। ब्रह्म और जगत् ्में परस्पर तादाममय
का िी सम्बन्ध िै जो इस सब प्रतीक एवं ंमूत शसम्पदा में प्राप्त िोता िै। बाह्य जगत् ्कुछ मभन्न नर्िीं जो कक
आममा के साथ-साथ मभन्न रूप में पवद्यमान िै। सत्ता का परम आधार अथात्श ्ब्रह्म, और इत्न्द्रयगम्य त्स्थतत

श्अथात्जगत् ्परस्पर मभन्न नर्िीं ंिै। द्वैतरूपक जगत् ्का भाव, बबना ककसी अवमर्शं के उस एकमात्र सत्ता
ब्रह्म के अन्दर िी सत्न्नपवष्ट मान लेनेसे, स्वतः पवलुप्त िो जा सकता िै। उपतनषदों का मसद्धान्त इस पवषय
में तनत्श्चत िै कक ब्रह्म िी एकमात्र समस्त जंगम जगत् ्के जीवन का प्रादुभावश-स्थान िै और विी एकमात्र सूत्र िै
जो समस्त बिुल्य को एकमात्र एकमव में आबद्ध ककए िुए िै। बिुल्य एवं एकमव की समस्या की व्याख्या करते
समय उपतनषदें उपमाओं और प्रतीकों का िी आश्रय लेती िै, ककन्तुकोई तनत्श्चत उत्तर नर्िीं ंदेतीं। ब्रह्म के ज्ञान
के अभाव में इत्न्द्रयगम्य जगत् ्का ब्रह्म के साथ ककस प्रकार सम्बन्ध िै इस बारे में कोई रूढ़ मसद्धान्त त्स्थर
नर्िीं ंकर सकते। दोनों परस्पर असम्बद्ध नर्िीं ंिो सकतेतयोंकक जो कुछ भी पवद्यमान िै वि सब एक िी सत्ता िै,
तो भी िम यि नर्िीं ंजानते कक ककतने ेसूक्ष्मरूप में वि एक िै। प्रथम पिलू ूके पवषय में किा जाता िै कक ब्रह्म िी
जगत् ्का तनममत्त एवं उपादानकारण िै, जबकक दूसूरे पिलू के पवषय में किा गया िै कक िम इसके बारे में कुछ भी
नर्िीं ंजानते। यि माया िै, अथवा रिस्यमय िै, अथवा अतनवचशनीय, जैसाकक र्ंकर ने इसे किा िै। िम यि भी
नर्िीं ंपूछ सकते कक ककस प्रकार सम्बन्धपविीन ब्रह्म इस जगत् ्के साथ सम्बन्ध िै। कल्पना की जाती िै कक
सम्बन्धों में जकड़ा िुआ जगत् ्ककसी प्रकार भी ब्रह्म के स्वरूप को पररवतततततश नर्िीं ंकर सकता। दृश्यमान जगत् ्
का पवनार् ककसी प्रकार का भी िास ब्रह्म के अंदर नर्िीं ंला सकता। ब्रह्म संबंधों पर आधश्रत इस दृश्यमान जगत् ्
से पृथृक् भी रि सकता िै और रिता भी िै (जैसेकक प्रलयकाल में)। ब्रह्म की सत्ता के मलए जगत् ्कोई अतनवाय श
घटक नर्िीं। यिद ब्रह्म व जगत् ्दोनों को अपनेअत्स्तमव के मलए एक-दूसूरे पर तनभरश माना जाएगा तो उससे
ब्रह्म में िीनता का आधान िो जाएगा और वि भी जगत् ्के समान काल एवं ंप्रयोजन के अधीन िोने के कारण
जगत् ्के स्तर पर आ जाएगा। परमब्रह्म के जगत् ्के साथ सम्बन्ध की व्याख्या करने ेमें असामथ्य शप्रकट करने े
का अथ शयि न लगाया जाना चाहिए कक पररममत र्तत वाले मानव ने जो यि धारणा बनाई िै कक इस भौततक
जगत् ्ने ब्रह्म के ऊपर एक प्रकार का परदा िम लोगों के मलए डाल रखा िै त्जससे िमें ब्रह्म का दर्नश नर्िीं ंिोता-
उस धारणा का इससे प्रमयाख्यान िो जाता िै, तयोंकक यि घोषणा की जा चुकी िै कक देर्, काल और कारण से
जकड़ा िुआ दृश्यमान जगत् ्ब्रह्म के अन्दर अपना अत्स्तमव त्स्थर रखता िै। सम्बन्धों से जकड़ िुए इस जगत् ्
में परमब्रह्म इतनी दूरू तक उपत्स्थत िै कक बाह्य जगत् ्और इसके मध्य के व्यवधान की दूरूी को माप सकतिैं
एवं उन पदाथों की श्रेेणणयों का मूल्यांकन भी कर सकतिैं। ब्रह्म जगत् ्के अन्दर िै यद्यपप जगमस्वरूप नर्िीं ंिै।
उपतनषदें इस प्रश्न का उत्तर सीधी तरि से नर्िीं ंदेतीं। नानापवध पववरणों का समन्वय करने ेका जो एकमात्र
उपाय िै वि यिी िै कक ब्रह्म की परम स्वाममपूणतशा को स्वीकार करें। ब्रह्म की पररपूणतशा उपलक्षक्षत करती िै

भारतीय दर्नश -1 154 कक समस्त लोक-अवस्थाएं, एवं पक्ष और भूतकाल, वतमशानकाल एवं भपवष्यमकाल की सब अमभव्यत्ततयां इस

ब्रह्म के अन्दर इस प्रकार से यथाथरूशप में देखी जा सकती िैं कक बबना ब्रह्म ने उनकी सत्ता कुछ निीं ंिै, यद्यपप वि स्वयंअन्य सब पवद्यमान पदाथों से स्वतन्त्र अपना अत्स्तमव रखता िै। यहद सिी-सिी जो दार्तशनक त्स्थतत ै, अथात्श ्ब्रह्म व जगत् ्के मध्य िीकि–ीक तया संबंध िै, इसे िम निीं जानते, और उसके अनुसार न चलकर मि उसके स्वरूप का वणनश करने ेलगें तो यि किना अधधक समय िोगा कक जगत् ्सवोपरर परंमब्रह्म का स्वयंमयाहशदत रूप िै, अपेक्षा इसके कक िम जगत् ्को उसकी रचना करके मानें। तयोंकक परमब्रह्म द्वारा सृत्ृष्ट की रचना माननेका उपलक्षक्षत अथ शिोगा कक परमब्रह्म जगत् ्की रचना के इततिास में एक समय और एक त्स्थतत पर अकेला था। परमब्रह्म को जगद्रूपी काय शका कालक्रम से पूववशती कारण मानना िीक निीं ंिै। जगत् ् का परमब्रह्म की अमभव्यत्तत के रूप में वणनश करना अधधक उत्तम िै। वस्तुतः कई स्थलों पर उपतनषदों ने स्पष्ट रूप में किा िै कक यि जगत् ्परमब्रह्म का एक प्रकार से पवकास िै. प्रकृतत स्वयंस्फूतत शकी एक प्रणाली अथवा अपने-आप पवकमसत िोने ेवाला स्वतन्त्र र्ासन िै, तयोंकक यि ब्रह्म की र्तत का संचार िै। इस पवकास के अन्दर पिला पा्व इन दो अवयवों-अथात्श ्स्वयंचेतन ब्रह्म और भौततक प्रकृतत की तनत्ष्क्रय कायक्षशमता के उदय िोनेसे तनष्पन्न िोता िै। ब्रह्म की आममतनभरशता परमसमय िै और िम यि निीं ंकि सकतेकक संसार इसके साथ ककस रूप में सम्बत्न्धत िै। यहद िम ककसी न ककसी समाधान अथवा व्याख्या के मलए आग्रि िी करें तो सबसे अधधक सन्तोषजनक व्याख्या जो िो सकती िै वि यि िै कक िम परमसत्ता को एक प्रकार की भेदसम्पन्न एकता के रूप में अथवा एक पूण शसकक्रय आममा के रूप में स्वीकार कर लें। इस प्रकार िम आमम एवं अनामम तक पिुंचते िैं, जो एक-दूसूरे के ऊपर कक्रया-प्रततकक्रया करते िुए समस्त पवश्व का पवकास करते िैं ।"[402]

---

402 स्वगीय बाबू भगवानदास ने अपने 'प्रणववाद' नामक अनूहदत ग्रन्य में, जो गायायशण-रधचत बताया जाता िै, उपतनषदों के एक मिान वातय 'अिं एतन्न', म ैंयि निीं, की उच्च श्र्ेणी की दार्तशनक व्याख्या की िै। 'अिं' अथवा आममा स्वयंप्रज्ञ ईश्वर तिैतनषेधपरक 'एतत्' से प्रकृतत, अथात्श ्अनामम, को किा गया िै। इन दोनों के मध्य के सम्बन्ध को 'न' अथात् ै। 'आममा अनामम निीं ंिै।' 'ओम्'् ब्दं में 'अ' आममा का द्योतक िै, 'उ' अनामम का और 'म्'् दोनों के तनषेध का द्योतक िै, ककन्तु ये तीनों एक साथ ममलकर 'ओम्'् में ममल गए िैं, जो 'प्रणव' िै। जगत् ्को अिं के तनषेधाममक पवचार के रूप में किा गया िै। इसेआममा अपने असली स्वरूप में पिुंचने के मलए स्वीकार करती िै (जैसा दर्नशर्ास्त्र में किा िै, 'भोगापवगाथश श र्दश्यम्'्)। 'एतत्'् अवास्तपवक छायामात्र िै जबकक अिं यथाथसशमय िै। यि व्याख्या सुकुत्ल्पत िै। ककन्तु िमें यि स्मरण रखना चाहिए कक त्जस वस्तु का तनषेध ककया गया िै वि एतत् ्(अनामम), जो अिं (आममा) की छायामात्र िै, निीं िै, बत्ल्क केवल एतत् ्(अनामम) िै जो अिं से सवथशा मभन्न िै। उन अनेक पदाथों का जो आममा से अलग और मभन्न िैं, तनषेध िै। ब्रह्मरूप यथाथसशत्ता के कारण िी, यहद इस पररभाषा का प्रयोग युत्ततयुतत समझा जा सके, कुल भेद िैं। भारतीय पवचारधारा में यि प्रतीक 'ओम्'् कई प्रकार के पवषयों को व्यतत करता 5/61 िर प्रकार के त्रय का प्रतीक ओम् ्िै; यथा, सत्,् असत् ्और आपवभूतश िोना; जन्म, जीवन और मृमयुः प्रकृतत, जीवाममा और परमाममाः सत्त्व, रजस् ्और तमस्ः भूत, वतमशान एवं भपवष्यत्,् ब्रह्मा, पवष्णु और मर्व। ब्रह्मा, पवष्णु और मर्व का पवचार एक िी सवोपरर सत्ता के पवपवध पिलुओं पर बल देता िै त्जसके अन्दर तीनों त्स्थततयां तनहित िैं। परमेश्वर अपनी स्वतन्त्र इच्छार्तत के बल से सृत्ृष्ट की रचना करता िै अथवा दार्तशनक भाषा में एक तनमय पवश्व को त्स्थर करता िै। इस पवश्व के त्स्थर करने वाले ईश्वर को िी ब्रह्म किते िैं। वि इसे देखता िै, इसके पवषय में धचन्तन करता िै, इसको धारण करता िै और अपने से मभन्न प्रकृतत वाला िोने से उससे सुख-लाभ करता िै। यि परमाममा पवष्णु िै। वि कफर इसे अपनेसाथ एकमव में वापस ले लेता िै तयोंकक वि स्वयं ं में अपवलुप्त िै, उस अवस्था में वि मर्व िै। वे लोग त्जनकी कल्पना में तीनों मभन्न-मभन्न िैं, तीन दिधारी प्रततततनधधयों की कल्पना करते िैं, त्जनके तीन मभन्न प्रकार के काय शिैं।

तनजाममव्यत्तत िी परमब्रह्मरूप सत्ता सारतत्त्व िै। कक्रयार्ीलता जीवन का तनयम िै। र्तत सत्ता के अन्दर तनहित िै। र्ततरूप माया उस सत्ता के अन्दर संभापवत कारण के रूप में अनन्तकाल से वतमशान िै।

उपतनषदों में किीं ंभी ऐसा सुझाव निीं ंपाया जाता कक यि समस्त पररवतनशों से युतत संसार एक तनराधार भ्रमजाल िै, केवल घटनाममक प्रदर्नशमात्र िै, अथवा एक छायाओंका पुंज िै। उपतनषदों के कलापवद् और कपवहृदय रधचयता बराबर इस प्राकृततक जगत् ्के अन्दर जीवनयापन करते रिे और उन्िोंने ंइस जगत् ्से दूरू भागने का कभी पवचार तक निीं ंककया। उपतनषदों की मर्क्षा में किीं ंभी यि निीं ंिै कक जीवन एक भयानक दु:स्वप्न िै और जगत् ्एक तनजनश एवं र्ून्य िै। इसके पवपरीत उनकी र्दत्ष्ट में सामंजस्यपूण शजगत् ्में जीवन की धड़कन और स्फुरण के अततरररतत ताल और लय के साथ सुमधुर-जीवन के धचह्न वतमशान िैं। यि जगत् ् ईश्वर का अपना िी अमभव्यतत रूप िै। यि सब र्दश्यमान मभन्न-मभन्न आकृततयां ंउसनेअपनी प्रसन्नता से

तनममत्तिं।403 ककन्तु एक प्रचमलत मत ऐसा भी िै त्जसके अनुसार उपतनषदों के मसद्धान्त को अमूत शएवं ं भावाममक अद्वैतचाद के साथ समानता वणनश की जाती िै जो इस जगत् ्के सम्पन्न जीवन को मात्र एक खाली स्वप्न समझता िै। ककन्तु यहद िम अपनेदैतनक जीवन के अनुभव को लेकर चलें और उनका पववेचन करें तो मिें दािाँ अवयव अन्त में जाकर ममलतिैं अथात्श ्आममचेतन ईश्वर एवं ंअतनधारशरत प्रकृतत। बौद्धधक र्दत्ष्ट से तो िमें इन दोनों के एक िोने ेका तनश्चय िै। िमारी कहिनाई केवल इन दोनों के सामंजस्य हदखलाने में िै; पवषयी और पवषय एक ओर, और उपतनषदों में स्पष्ट रूप से त्जसका व्याख्यान ककया गया िै वि ब्रह्म दूसूरी ओर। यथाथसशत्ता एक िी िै तो भी िमें दो सत्ताएं प्रकटरूप में ममलती िैं। इसी द्वैत के कारण जगत् ्में कुल मभन्नता िै। िमारे सामने एक खाली दीवार िै। यहद दर्नशर्ास्त्र सिसी और नेकतनयत िै तो इसे किना पड़ेगा कक इन दोनों के बीच का सम्बन्ध अतनवचशनीय िै। एक िी सत्ता न मालूम कैसे दो में पवभतत िो जाती िै। उपत्स्थत पररत्स्थततयों में यिी मत तकशसम्मत प्रतीत िोता िै। "सीमावद्ध केन्द्रों के अन्दर परमसत्ता की अन्तहितश रूप में पवद्यमानता और सीममत केन्द्रों की परमसत्ता के अन्दर पवद्यमानता-इसे मनैं ेसदा िी अव्याख्येय समझा िै... इसको समझना िमारी बुद्धध से परे िै।"[404] उतत दोनों के मध्य सम्बन्ध को उपतनषदों ने अतनवचशनीय माना िै और परवती वेदान्त इसको माया के नाम से पुकारता िै।

सन्तोषप्रद व्याख्या न कर सकने ेमें कहिनाई इसमलए िै कक मानवीय मानस अपूण शिै और उसके प्रयोग में आने ेवाले साधन अथात्श ्भेदक वग-शदेर्, काल और कारण अपयाप्शत भी िैं और परस्पर पवरोधी भी िैं। इस जगत् ्के वे पक्ष जो उन्िें मालूम िैं, आमर्क िैं और यथाथस्शवरूप में समय निीं ंिैं। उन्िें एक प्रकार से अलौककक सत्ता की छाया किा जा सकता िै, ककन्तु उस वास्तपवक सत्ता के ककसी प्रयोजन के वे निीं ंिैं। िमारे अपनेसीममत अनुभवों में जो भी पदाथ शआतिैं वे ेकिीं ंन किीं ंजाकर भग्न िो जाते िैं और असंगत प्रतीत िोतिैं। जब सब

---

403 आनन्दडरुपम अमृतं ंयद्पवभातत

404 बे्रेडले : 'माइंड' संख्या 74, पृष्ि 154। तुलना कीत्जए, ग्रीन "इस पुराने प्रश्न का कक ईश्वर नेजगत् ्को तयों बनाया, कभी उत्तर न ममला और न ममलेगा। जगत् ्की तया आवश्यकता िै यि िम निीं जानते;े िम इतना िी जानतिैं कक जगत् ् िै।" ('प्रोलेगोममना दु ुएधथतस', पवभाग, 100)।

सीममत अनुभव मयाहशदत और अपूण र्शिं, उनकी अपूणतशा में मभन्न-मभन्न श्रेणणयां ि◌ै, तो उन सबको एक ि◌ी स्तर पर रख देना उधचत न ि◌ोगा, न सबको एक समान यथाथ शअथवा असमय ि◌ी मानना उधचत ि◌ोगा। माया का मसद्धान्त सीममत पदाथों के सामान्य स्वरूप को एक अमूत शभावाममक रूप में अमभव्यतत करता ि◌ै त्जससे परमसत्ता से यि कुछ ि◌ी न्यून बिैता ि◌ै। जिांएक ओर मानवीय अपूणतशा के कारण उमपन्न ि◌ुई बौद्धधक नम्रता से उपतनषदों के पवचारकों को पववर् ि◌ोकर सवोपरर यथाथसशत्ता के पवषय में 'नेतत नेतत' परक ि◌ी कथन करना पढ़ा, विां दूसूरी ओर उपतनषदों के आदर्ों का ममथ्या अनुकरण करनेवाले अमयन्त अमभमान एवं ◌ंसािसकता के साथ घोषणा करते ि◌ैं कक ब्रह्म एक अमयन्त समांग (एकजातीय) और व्यत्ततमवरहित प्रज्ञा (ज्ञानस्वरूप) ि◌ै- यि एक ऐसी रूहढ़गत घोषणा ि◌ै जो उपतनषदों के भाव के सवथशा पवपरीत ि◌ै। ब्रह्म के स्वरूप की इस प्रकार की एक सुतनत्श्चत व्याख्या कर देना कभी तकशसंगत निीं ◌ंि◌ो सकता, तयोंकक यिां ◌ंतक कक र्ंकर ने भी यिी किा ि◌ै कक यथाथसशत्ता अद्वैत (अद्पवतीय) ि◌ै और उसका सुतनत्श्चत स्वरूप निीं ◌ंि◌ै।

धथबौत के अनुसार ऐसे वातय ि◌ैं "त्जनका तनत्श्चत झुकाव ब्रह्म को सवगुशणातीत एवं ◌ं व्यत्ततमव रहित और मभन्नता रहित प्रज्ञा के पुंज के रूप में उपत्स्थत करने ◌ेकी ओर ि◌ै।"[405] "और चूंकक बिगुणाममक जगत् ◌्की प्रतीतत का तनषेध निीं ◌ंककया जा सकता, एक पूणसंशगत पररकल्पना के मलए और कोई माग शखुला निीं ◌ंथा मसवाय इसके कक यि इसकी यथाथतशा का ि◌ी तनषेध करे और इसे भ्रममात्र किकर इसकी व्याख्या करे, त्जसका कारण एक असत् ◌्तत्त्व ि◌ै, और जो ब्रह्म के साथ तन:सन्दिे सम्पृतत रिता ि◌ै, ककन्तु जो ब्रह्म की एकता को भंग निीं ◌ं कर सकता केवल इसमलए कक वि स्वयंस्वभाव से असद्रूप ि◌ै।"[406] धथयौत के अनुसार माया पवपवधता की अमभव्यत्तत यथाथसशत्ता के साथ एकमवरूप में समवेत करती ि◌ै, ककन्तु दुभाग्शयवर् एक अमूतरूशप (भावाममक) प्रज्ञा का भाव एक तनरथकश पवचार ि◌ै जोकक रूहढ़वाद-पवरोधी उपतनषदों को मान्य निीं ◌ंि◌ो सकता। उपतनषदें परम यथाथसशत्ता के अमूतरूशप भावाममक पवचार का समथनश निीं ◌ंकरतीं। उपतनषदों का दार्तशनक मसद्धान्त

एकेश्वरवाद की अपेक्षा अद्वैत) अथवा (अथात्) पवषयी एवं ◌ंपवषय के मध्य का भेद यद्यपप जगत् ◌्में वास्तपवक प्रतीत ि◌ोता ि◌ै ककन्तुपरमाथरूशप में इनमें भेद निीं ◌ंि◌ै। ि◌म इस पवश्व को पवषयी और पवषय के रूप में आधा-आधा निीं ◌ंबांट सकते, तयोंकक दोनों की पृष्ठभूमम में ब्रह्म की सत्ता पवद्यमान ि◌ै। द्वैत का तनषेध करते ि◌ुए भी यि र्दढ़तापूवकश इसे स्वीकार निीं ◌ंकरता कक सब पदाथ शपवलीन ि◌ोकर एकमव के रूप में पररणत ि◌ो सकतिं, आलंकाररक रूप में भले ि◌ी यि स्वीकार कर ले।'[407]

---

405 वेदान्तसूत्रों की भूममका, पृष्ठ 123।

406 विी, 125।

407 ि◌म देखतिं कक उन पररच्छेदों में जो ब्रह्म और जगत् ◌्की एकता की व्याख्या करने के मलए ममट्टी (तांबा आहद) के र्दष्टान्त का प्रयोग करतिं, इन र्ब्दों का प्रयोग ि◌ुआ ि◌ै, ि◌ै, "वाचारम्भणं पवकारा नामधेयं ◌ंमपत्तकेमयेव समयम्।◌्" इन वातयों का अथ शयि प्रतीत ि◌ोता ि◌ै कक सब पदाथ शएक ि◌ी सत्ता के "पररवतततश रूप ि◌ैं, यद्यपप नामभेद से मभन्न-मभन्न ि◌ैं। र्ंकर की व्याख्या के अनुसार इसका अथ शिुआ कक पररवतनश (पवकार) उमपन्न ि◌ोता ि◌ै और रिता भी केवल वाणी में ि◌ी ि◌ैं, यथाथतश: काय शनाम की कोई चीज़ निीं ि◌ै। यि केवल नाममात्र ि◌ै और इसीमलए अयथाथ शि◌ै।" यि 'व्याविाररकम्'◌् अथवा इत्न्द्रयगम्य ि◌ै, ककन्तु इसका तामपय शयि निीं कक यि ममथ्या ि◌ै। साथ में इस पवषय पर भी ध्यान देना चाहिए कक यि कथन उद्दालक का ि◌ै जो भौतिकवाद को मानता ि◌ै और जो केवल आकृततमात्र के पररवतनश को स्वीकार करता ि◌ै। उसके मत में प्राकृततक

अन्य कततपय उपतनषदों के अनुकूल व्याख्याकार भी र्दढ़तापूवकश कितैं कक उपतनषदें माया के मसद्धान्त को संसार की भ्रात्न्तपूणतशा के अथ शमें स्वीकार करती िैं। आइए, िम यि देखें कक उनका इस प्रकार का कथन किांतक मूल्य रखता िै। ड्यूसन, त्जसने ेयूरोप में वेदान्त के मसद्धान्त का प्रचार करने ेमें बिुत अधधक प्रयमन ककया िै, तनदेर् करता िै कक सृतूष्ट-रचना के पवषय में चार मभन्न प्रकार के मसद्धान्त उपतनषदों में आते िैं। विैं: (1) प्रकृतत अनाहदकाल से ईश्वर के अत्स्तमव से स्वतंत्ररूप में पवद्यमान िै, ईश्वर केवल उसको आकार देता िै ककन्तुउसकी रचना निीं ंकरता; (2) ईश्वर असत् ्से पवश्व की रचना करता िै, और पवश्व ईश्वर से स्वतन्त्र िै यद्यपप यि पवश्व उसकी रचना िै; (3) ईश्वर अपनेको िी पररवतततश करके सृतूष्ट की रचना करता िै और, (4) ईश्वर िी एकमात्र यथाथसशत्ता िै और सृतूष्ट कुछ निीं ंिै। उसके अनुसार, अत्न्तम मत िी उपतनषदों का मौमलक मत िै। देर् और काल से बद्ध संसांर एक आभास-मात्र िै एक भ्रांतत िै, ईश्वर की छाया-मात्र िै। ईश्वर को जाननेके मलए िमें इस भासमान जगत् ्का तनषेध करना िोगा। ड्यूसन का िी अपना यि पवश्वास कक प्रमयेक समयकम शका सारतत्त्व संसार की वास्तपवकता से तनषेध करना िै, उतत मत की ओर झुकाव का कारण िै। उतत पररणाम का स्वतन्त्ररूप से पिुंचकर वि अपनेमसद्धान्त का समथनश प्राचीन भारत के दर्नशर्ास्त्रों- उपतनषद् और सांख्य-में से प्राचीन ग्रीस के पररमेतनड्स और प्लेटो में से, एवं ंअवाचशीन जमनशी के कांट और र्ोपनिावर में से खोज तनकालने के मलए उमसुक िै। अपने मसद्धान्त की पुत्ष्ट के प्रतत आतुरता की लिर में आकर वि समयों की ओर भी पवलकुल ध्यान निीं ंदेता। वि स्वीकार करता िै कक उपतनषदों का सवोपरर मुख्य मसद्धांत सवेश्वरवाद-पवषयक िै जबकक मौमलक मसद्धान्त िै माया, भ्रांतत की कल्पना। समय के दबाव में आकर िी उसे यि स्वीकार करने ेके मलए पववर् िोना पड़ा िै कक सवेश्वरवाद 'सवोपरर' मसद्धान्त िै। और यि कक भ्रांतत का पवचार आधारभूत िै, उसके वास्तपवकता के अध्ययन का पररणाम िै। इन दोनों के बीच, अथात्श ्सवेश्वरवाद के तथ्य एवं अध्ययन के पररणामस्वरूप भ्रांततमत्ता के मध्य, समन्वय िोना िी चाहिए। ड्यूसन यि किकर अपना प्रयोजन इस प्रकार से साध लेता िै कक यि साधारण त्स्थतत के मानव के मलए उसके घोर पवरोध एवं

जगत् ्एक तनरन्तरवतीपूण शिै त्जसमें गुणभेद से मभन्न कण एक-दूसूरे में ममधश्रत िैं। उपतनषद्वातय में किा गया िै कक नाम-पररवतनश मात्र से िी पवकास की प्रतीतत िोती िै। उपतनषदों में नाम और रूप (आकृतत) का उपयोग व्यत्ततमव को

वेर्मलोद्य्यत्रए ककया गया िै। देणखए, वृिदारण्यक, 14, 7। एक का अनेक रूप में पवकास प्राथममक तत्त्व में नाम एवं रूप के प्रादुभुावश के कारण िी िै। ककन्तु यि किी निीं किा गया कक नाम द्वारा तनहदशष्ट पररवतनश असमय िै। अवश्य िी ब्रह्म के अततररतत उनकी पृथक यथाथसशत्ता निीं िै। नामरूप वि निीं िै जो अंग्रेजी के र्ब्द 'नेम' (नाम) 'फॉम'श (आकृतत) से प्रकट िोता िै। । वि अरस्तू की 'आकृतत' और 'प्रकृतत' के अनुकूल िै और और दोनों एकसाथ ममलकर संसार के व्यत्ततयों के द्योतक िैं। बौद्धमत में रूप से तामपय शमूत शरीर से िै और नाम से तामपय शसूकूष्म मानस से िै। उपतनषदों में नाम और आकृतत के पवकास का तामपय शएकमात्र ब्रह्म को व्यत्ततमव प्रदान करना िै। व्यत्ततमव सृतूष्ट-रचना का मसद्धान्त तत्त्व िै और यि पवश्व-चनशा की प्रकक्रया का मुख्य स्वरूप िै। वस्तुएं और मानव अंततम रूप में परमाममा के अत्स्तमव के केवल प्रकार मात्र िैं। वे अपने-आपमें यथाथ शनिीं िैं। इस प्रकार केवल ग्रिां िी यथाथ शिै। उनका पृवृकमव केवल कृबत्रम िै। उपतनषदों में मोक्ष का स्वरूप नामरूपाममक पृथृकमव के भाव का नष्ट िो जाना िी िै। मुंडकोपतनषद् में किा िै: "वि त्जसने उच्चतम ज्ञान प्राप्त कर मलया िै, पवश्वाममा िो जाता िै और नामरूप समान, जैसे वे पवश्वाम से रहित िोकर नहदयों के के साथ संयुतत लेने के मलए समुद्र में समा जाती िैं, यि भी पवश्वाममा में पवलीन िो जाता िै" आगे चलकर किा गया िै कक कारण काय श की अपेक्षा अधधक यथाथ शिै। परमाला की समस्त जंगम एवंज़ जगत् ्का कारण िै। जैसेसोने के आभूषणों का आधार सोना िै, इसी प्रकार ब्रिा सारे जगत् ्का आधार अथवा सामान्य सत्ता िै।

इत्न्द्रयानुभव की मांग को र्ान्त करने ◌ेके मलए एक प्रकार की ररयायत ि◌ै। "तयोंकक मूलभूत पवचार-त्जसे कम से कम मसद्धान्त के रूप में ि◌ी ि◌रएक त्स्थतत में, यिां ◌ंतक कक तनम्नतर त्स्थतत में भी, दृढ़ता के साथ स्वीकार ककया गया ि◌ै और जो प्रकृतत की स्वतन्त्र सत्ता को त्स्थर रखता ि◌ै-केवल आममा की ि◌ी एकमात्र यथाथसशत्ता में पवश्वास ि◌ै, इसमलए केवल इस धारणा के साथ और इसके बावजूद जगत् ◌्की यथाथतशा की आनुभापवक चेतना के मलए वि न्यूनाधधक छूट प्रदान की गई ि◌ै, त्जसका कभी भी पूणतशः मयाग निं ◌ंककया जा सकता।"[408] भ्रांतत-पवषयक कल्पना के समथनश में सबसे पिला तकश यि ि◌ै कक उपतनषदें मात्र ब्रह्म की ि◌ी यथाथसशत्ता पर बल देती ि◌ैं। इसका तामपय शयि ि◌ै कक संसार असमय ि◌ै। आममा ि◌ी एक मात्र यथाथसशत्ता ि◌ै, इससे ि◌म सिमत ि◌ैं। यिद ि◌म

शसे ज्उस त्सें तो सोंबकुछ परमात्मा कोई यिं धारणा कक स्वीकार करबिमवे यी गई ि◌ै निं, कमसुात् कोई भी पररवतनश उसके अन्दर या बिार ि◌ै ि◌ी निं ◌ंऔर

िोता ि◌ी निं ◌ंऔर द्वैत एवं ◌ंबिुल्य भी निं ◌ंि◌ै इस प्रकार की एक अपवादरहित स्थापना समझ में निं ◌ंआ सकती। ड्यूसन किता ि◌ै कक "प्रकृतत जो बिुमव एवं पररवतनश के रूप में ि◌मारे सामने प्रकट ि◌ोती ि◌ै, केवल भ्रांतत ि◌ै।"[409] उतने ि◌ी बल के साथ फ्रेर तकश करता ि◌ै कक "उपतनषदों की आममा की एकमात्र यथाथतशा का प्रततपादन

करने ◌ेबाली मर्क्षाओं का स्वाभापवक एवं तकशसम्मत पररणाम भी यिी तनकलता ि◌ै कक समस्त दृश्यमान जगत्, ◌् जो सद्रूपू में ि◌मारे समक्ष भामसत ि◌ो रिा ि◌ै, केवल भ्रात्न्तमात्र ि◌ै।410 इन तकाश में अनन्त (असीम) को ममथ्या अथों में मलया गया ि◌ै। जो सीमावद्ध निं ◌ंि◌ै उसे 'अनन्त' के समान समझ मलया गया ि◌ै और जो तनमय ि◌ै उसे ◌े अभौततक के समान मान मलया गया ि◌ै। जब तनमयसत्ता को कालातीत अमूतभशाव के रूप में माना गया तो सांसाररक जीवन, जो कालबद्ध ि◌ै, स्वतः ि◌ी अवास्तपवक ि◌ो जाता ि◌ै। देर् और काल से आबद्ध संसार के साथ परमाथ शऔर तनमय जगत् ◌्का पवरोध स्वतः ि◌ी अत्न्तम रूप से एवं र्ाश्वत ि◌ो जाता ि◌ै। परन्तु, उपतनषदें किं ◌ंभी

यि निं ◌ंकितीं कक अनन्त से सान्त बिार ि◌ै। जिां ◌ंकिं ◌ंभी वे ◌ेबलपूवकश किती ि◌ैं कक ब्रह्म ि◌ी एकमात्र यथाथसशत्ता

ि◌ै, वे बिुत सावधानी के साथ यि भी कथन करती ि◌ैं कक संसार का आधारमूल भी ब्रह्म में ि◌ै और इसी दृत्ष्ट से वि (संसार) भी उसी ब्रह्म का अंर्रूप ि◌ै। "सीममत पदाथ शअनन्त ब्रह्म के अन्दर ि◌ैं, यि आममा ि◌ी समस्त पवश्व ि◌ै।"[411] यि प्राण ि◌ै। यि वाणी ि◌ै। यि मानस ि◌ै। पवश्व में सब कुछ यिी ि◌ै। ब्रह्म नीचेसे नीचेदजे की धूल में भी ि◌ैऔर एक क्षुद्र रजकणणका में भी ि◌ै।'[412] यथाथसशत्ता की स्वीकृतत के अन्दर उन सबकी भी स्वीकृतत आ जाती ि◌ै जो उसके ऊपर आधाररत ि◌ैं। ब्रह्म को एकमात्र यथाथ शसत् ◌्मान लेने से उन सब पदाथों की सापेक्ष सत्ता की भी स्वीकृतत जो उसके अन्तगतश ि◌ैं या उसके ऊपर आधश्रत ि◌ैं, स्वतः ि◌ी तनष्कष शरूप में आ जाती ि◌ै ।

---

408 'द कफलासफीआफदउपतनषद्सपृष्ठि 161-162 ।

409 पंचात्स्तकायसमयसार , 237।

410 'इत्ण्डयनथाटपृष्ठि 68।

411 छान्दोग्य , 24, 26 ।

412 मुण्डकोपतनषद्, 2/2 11; किोपतनषद् , 2: 5, 2; 2/14 2 - 4i 6/9, 1i बृिदारण्यक 2:4, 16; 2:5 15; 3; 7, 15; 4 :4, 231 तैपत्तरीय, 3: 1; छान्दोग्य , 3: 14, 1: 6:45, 7; 2:5, 2, 5:3, 1: 1:4

ड्यूसन बलपूवकश किता िै कक "उन अंर्ों से जो घोषणा करते िैं कक आममा के ज्ञान से िी सबका ज्ञान िो जाता िै, बुिमव के पवचार का स्वतः खण्डन िो जाता िै।" िम इस पववादग्रस्त पवषय से सिमत निीं ंिो सकते। यहद आममा पवश्व की आममा िै और अपने अंदर समस्त पवचारर्ील प्राणणयों एवं ंप्रमेय पदाथों को भी समवेत ककए िुए िै, तब स्वभावतः यि पररणाम तनकलता िै कक यहद उसका ज्ञान िो जाए तो अन्य सब कुछ स्वतः िी जाना जा सकता िै। जो समयज्ञान िमें मोक्ष का माग शहदखाता िै, अन्तवामशसनी सत्ता का साक्षात् ्करनेमें भी सियक िोता िै। ऐसा कोई सुझाव निीं ंिै कक आममा और यि संसार एक-दूसूरे से पृथक् िैं। उस अवस्था में, इन्द्र ने र्ंका उपत्स्थत करते िुए जो कुछ प्रजापतत से किा था, वि िीक िी िो जाएगा और आममा जो प्रमयेक तनयममत और प्रमयक्ष िोने वाले पदाथ शको अपनेसे बाह्य रखती िै, स्वयंकेवल एक कोरी अमूतरूशप भावाममक सत्तामात्र रि जाएगी। यहद िम भेदों को दृत्ष्ट से ओझल कर देते िैं तो िम परमाथसशत्ता को एकमात्र असत् ्के रूप में पिुंचा देते िैं। इस प्रकार सापेक्ष जगत् ्की सापेक्षता का तनषेध करके िम परमाथसशत्ता की समस्या को कुछ भी निीं ंसंवारते। तनमयरूप ब्रह्म इत्न्द्रयगम्य भौततक जगत् ्को एकदम असत् ्और र्ून्यूयाममक किकर सवथशा छो निीं ंसकता। मानव के धाममकश एवं ंनैततक, दार्तशनक एवंसौन्दयर्शास्त्र के क्षेत्र में उपलब्ध ऊंचेसे ऊंचेअनुभव का यि उधचत आग्रि िै कक इत्न्द्रयगम्य भौततक जगत् ्की वास्तपवकता को तनमयसत्ता के अन्दर, सान्त की वास्तपवकता को अनन्त के अन्तगतश पवद्यमान, एवं ईश्वर से उमपन्न मानव की यथाथतशा को स्वीकार करें। आकत्स्मक घटना एवं ंव्यत्तत के तनषेध करने ेका तामपय शिोगा कक िम आवश्यक एवं ंव्यापक को ममथ्या समझतें। उन अनेक वातयों के पवषय में जो संसार को ब्रह्म में आधाररत घोपषत करते िैं, ड्यूसन यों किकर समाधान कर देता िै कक यि भौततक चेतना के साथ एक प्रकार की ररयायत िै। यहद उपतनषदों के मत में संसार भ्रात्न्तमात्र िोता तो उपतनषदें कभी भी गम्भीरतापूवकश संसार के सापेक्षता-पवषयक मसद्धान्तों का प्रततपादन न करतीं। ड्यूसन ने एक अव्यवविाय शव्याख्या को अपनाया िै और एक ऐसी स्थापना का, जो मौमलक रूप से दोषपूण शिै, समथनश करने ेके मलए मानमाने ेतकों वाली युत्ततयों का उपयोग ककया िै। ड्यूसन ने स्वयंभी माया के मसद्धान्त का प्रततपादन करने ेका श्रेय मिान जमनश दार्तशनक कांट को देनेका प्रयमन करने ेके प्रसंग में स्वीकार ककया िै कक उपतनषदों के पवचारकों ने उतत मसद्धान्त की पररकल्पना निीं ंकी थी, या कक संभवतः वे इसमे सुस्पष्ट निीं ंथे। तयोंकक वि मलखता िै कक "अभी तक और सदा िी एकमात्र ब्रह्म और उसकी बिुगुणणत अमभव्यत्ततयों के अन्दर बिुत बड़ा भेद िै, और न तो प्राचीन पवचारक और न कांट से पूव शका कोई पवचारक इस भाव तक पिुंच सका कक देर् और काल में त्जतना अमभव्यतत प्रपंच िै वि मात्र आममजात अथवा पवषयीगत घटना एवं प्रततभास िै।"[413] ड्यूसन का यि सुझाव तो वस्तुतः िीक िी िै कक उपतनषदों ने संसार की

---

413 पंचात्स्तकायसमयसार, 103। ड्यूसन कांट के मसद्धान्त की व्याख्या उपतनषदों के अनुसार और 1 उपतनपदों की व्याख्या कांट के मत के अनुसार करता प्रतीत िोता िै। पररणाम यि िुआ कक दोनों को िी उसने ममथ्यारूप में समझा। कांट को धचन्ता िै कक उसके प्रमयवाद को बकशले के पवषयीपवज्ञानवाद के समान न समझ मलया जाए िीक उसी तरि जैसे र्ंकर को धचन्ता िै कक उनके प्रमयवाद को और बौद्धमत के पवषयीहदज्ञानवाद को एक समान न समझ मलया जाए। सम्भवतः र्ोपनिावर के समान ड्यूसन भी सोचता िै कक कांट के द्वारा प्रमयवाद का तनराकरण एक मूखतशा-भरा पीछे का पवचार था और भयंकर भूलू थी। कांट के पिाक ड्यूसन के मत से सिमत िो सकेंगे यि सन्दिास्पद िै। "कांट का यि प्रमसद्धतम तकश भी त्जसमें आचार-सम्बन्धी उस तनयम के प्रमयक्षीकरण को अमरता का आधार बताया गया िै, जो िमारे अन्दर तनपवष्ट िै-

पवषयीतनष्तिा के मत को कभी भी स्वीकार निीं ंककया। सृतूष्टरचना- सम्बन्धी मभन्न-मभन्न कल्पनाएं केवल यि प्रदमर्तश करनेके मलए प्रस्तुत की गई िैं कक ब्रह्म और जगत् ्के मध्य अतनवाय शतनभरशता िै। िम स्वीकार करते िैं कक ऐसे भी वातय िैं जो प्रततपादन करते िैं कक यि नामरूपाममक धचत्र-पवधचत्र जगत् ्एक िी परमसत्ता के अन्दर से पवकमसत िुआ िै। इनसे यिी ध्वतनत िोता िै कक सब वस्तुओं का मौमलक सारतत्त्व एक िी यथाथसशत्ता िै और यहद िम नामरूपाममक जगत् ्में िी खो जाएंगे तो इस बात का भय िै कक िमें उस अन्तस्तल में तनहित सारतत्त्व की प्राप्त्त न िो सकेगी जो इन सब भेदों का मूल कारण िै। िम कि सकते िैं कक यि नामरूपाममक जगत् ्िी उस अमरणधमाश सारतत्त्व का िमसे तछपाकर रखता िै।414 उस अद्भुत सत्ता को जो सब नश्वर वस्तुओं ं के चारों ओर व्याप्त िै, िमें परदे के पीछे से झांकना िोता िै। देर् और काल से आबद्ध पदाथ शवस्तुओंके सारतत्त्व को आवृत् रखते िैं। यि जीवन का क्षणणक रूप इसका अपवनारी् समय निीं ंिै। वास्तपवक सत्ता इन सब वस्तुओंसे ऊपर िै। यि अपने-आपको इस दर्श्यमान जगत् ्के द्वारा अमभव्यतत करती िै। ककन्तु यि अमभव्यत्तत साथ-साथ गोपन भी िै। अमभव्यत्तत त्जतनी िी अधधक स्पष्टतया लक्षक्षत िोती िै, यथाथसशत्ता उतनी िी अधधक गुप्त िोती जाती िै। परमाममा अपना गोपन करता िै और अपने-आपको प्रकट भी करता िै, केवल अपने चेिरे पर आवरण कर लेता िै। वस्तुओंका अन्ततनहशित आर्य इत्न्द्रयों के साक्ष्य के पवपरीत िै। यि पवश्व जिांएक ओर उसकी महिमा को अमभव्यतत करता िै, विांदूसरी ओर उसके परम एवं पवर्ुद्ध स्वरूप का गोपन भी करता िै। समय, वि अद्भुत सारतत्त्व, एक परमसत्ता िै जो घटनाओंसे पवरहित और मयादशाओं से तनमलप्शत, इस रचनाममक सृतूष्ट के बिगुणमव एवं बिुल्य के कारण आवृत् रिती िै। इस पवश्व के पदाथ,श त्जनमें सान्त जीवाममा भी सत्म्ममलत िै, अपनेको कल्पत रूप में पृथक् एवं ंस्वतन्त्र अत्स्तमववान अनुभव करते िैं और आममा सत्ता को अक्षुण्ण बनाए रखनेमें तनरत रितेप्रतीत िोते िैं। वे भूल जाते िैं कक वे सब एक तमसमान त्तत से उमपन्न िुए िैं और उसी से उनका धारण भी िोता िै। यि पवश्वास माया अथवा भ्रांतत के कारण िै। "वृकूष की प्रमयेक क्षुद्र पत्ती में भी यि समझ लेनेकी चेतना पवद्यमान िो सकती िै कक वि एक सवथशा मभन्न सत्ता िै जो सूय शके प्रकार् एवं ंवायु में अपनेको बनाए िुए िै और जब र्ीतकाल आता िै तो वि मुरझाकर धगर पती् िै और यिी इसका अन्त िै। वि सम्भवतः यि निीं ंसमझ सकती कक उसे तनरन्तर वृकूष के तनेसे तनकलनेवाले द्रव से सिारा ममलता िै और अपनी ओर से वि भी वृकूष को आिार पिुंचा रिी िै और यि कक उसकी आममा समस्त वृकूष की भी आममा िै। यहद यिी पत्ती वस्तुतः अपनेको समझ सकनेकी योग्यता रखती तो वि अनुभव करती कक उसकी आममा अधधक गिराई में और घतनष्तिा के साथ पूरे वृकूष के जीवन के संग एकाममभाव से

एक ऐसा पररणाम त्जसेकेवल सत्न्नकटन की अनन्त प्रकक्रया द्वारा िी प्राप्त ककया जा सक.ता िै–में साधारण अथों में अमरता के पवषय में तो निीं ंककन्तु पुनजन्शम के पवषय में बतलाता िै।" (पृषि् 314)।

414 विृदारण्यक, 16, 31 "अमृतं ंसमयेन आच्छन्नम्।्" सत् ्र्ब्द के द्वयथकश िोने के कारण िी उपतनषदों के यथाथसशत्ता पवषयक मत के पवषय में बिुत कुछ भ्रम िुआ िै। सत् ्का अथ शिै यि सब पदाथ शजो पवद्यमान िै। पररवतनशर्ील एवं ं उन्नततर्ील संसार इस अथ शअथ शमें में सत् ्िै। सत् ्से तामपय शउस यथाथसशत्ता से भी िै जो समस्त पररवतनशों में अपररवतततश, अमर अथवा अमृतूरूप में एक समान पवद्यमान रिती िै। तैपत्तरीय पिले को 'सत्'् और दूसूरे को 'मयत्'् किता िै। चूंकक मयत् ् पवद्यमान *सत् ्के पवपरीत गुण िै, इसे कभी-कभी असत् ्अथवा अनत नाम से किा गया िै (तैपत्तरीय, 2:6)। साधारण तौर से तनमयसत्ता अथवा ब्रह्म को सत् ्और पररवतनशर्ील संसार को असत् ्किा जाता िै। (छान्दोग्य, 6:2, 1, 3: 19, 1) ।

 सम्बद्ध िै।"[415] ऊपर की चेतना की लिरों के नीचेअन्तस्तल में जीवन की अगाध सामान्य गिराई में वि स्रोत

ै जिां ंसे सब प्रकार की अन्यान्य सत्ताओं का पवकास िुआ िै। यहद िम पदार्थों को पृथक् एवं स्वतन्त्र सत्ताधारी मान लें तो िम एक ऐसा परदा खा़ कर लेते िैं जो िमारी र्दत्ष्ट से समय को दूरू िटा देता िै। सीममत पदार्थों की स्वतन्त्र सत्ता के रूप में ममथ्या कल्पना उस हदव्य प्रकार् को िमारी र्दत्ष्ट से ततरोहित कर देती िै। जब िम गौण कारणों की ति में पैिकर समस्त पदार्थों के सारतत्त्व को ग्रिण करनेका प्रयमन करते िैं तो सब आवरण फट जाते िैं और िमें स्पष्ट िो जाता िै कक उन सबकी पृष्िभूमम में जो तत्त्व िै वि विी िै जो समानरूप से िम सबके

अन्दर पवद्यमान िै। छान्दोग्य उपतनषद् में पपता व पुत्र के परस्पर संवाद में (6 : 10, और आगे) गौण कारणों की पृष्िभूमम में जाकर यि जानने ेकी आवश्यकता का प्रततपादन ककया गया िै कक सब पदार्थों में ऐतय िै।

"विांमेरे मलए न्यग्रोध वृकूष का एक फल लाकर दो।" "यि लीत्जए, भगवन्, ् यि िै।" "इसे फोो़।"

"लीत्जए भगवन्, ् यि फूट गया।" "तुम्िें इसमें तया हदखाई देता िै?" "ये बीज िैं जो अमयन्त सूक्ष्म िैं।" "इनमें ककसी एक को फोो़।" "लीत्जए भगवन्, ् यि फूट गया।" "तुम्िें इसमें तया हदखाई देता िै?" "कुछ निीं ंभगवन् ्

पपता ने किा, "िे मेरे पुत्र, वि सूक्ष्म तत्त्व जो तुम्िें उसमें प्रमयक्ष निीं ंिोता वस्तुतः उसी तत्त्व से इस मिान न्यग्रोध वृकूष की सत्ता िै। िे मेरे पुत्र ! पवश्वास करो इस समय पर कक यि एक सूक्ष्म तत्त्व िी िै और इसी के अंदर सब कुछ वतमशान िै और अपनी आममा को धारण करता िै। यिी समय िै। यिी आममा िै। और श्वेतकेतु, ु तू यिी िै।" तू. िै

आगे चलकर पपता पुत्र के सम्मुख कुछ और प्राकृततक पदार्थों को क्रमर्: उपत्स्थत करता िै और बलपूवकश किता िै कक वि जीवन की दार्तशनक एकता को ग्रिण करे एवंमानव-जीवन के पवश्व-जीवन के साथ तारतम्य को भी समझतेका प्रयमन करे। िम आसानी के साथ उस परमाथसशत्ता की कल्पना निीं ंकर सकतेजो नानापवध भौततक पदार्थों के कारण ततरोहित रिती िै। िम संसार में इतने ेअधधक मलप्त रिते िैं, सांसाररक अनुभवों में इतने ेअधधक डूबे रिते िैं और अपनिी प्रतत इतने ेअधधक लीन रिते िैं कक उस सत्ता की यथाथतशा को ग्रिण निींकर सकते। िम ऊपर के धरातल पर िी रि जाते िैं, आकृततयों से धचपटे रिते िैं और आभास-मात्र र्दश्यमान पदार्थों की पूजा करते िैं।

डयूसन यि कथन करते समय उपतनषदों के दार्तशनक मौमलक समय को र्दत्ष्ट से बबल्कुल ओझल कर देता िै कक उपतनषद् के दार्तशनक पवचार के अनुसार "समस्त पवश्व, सब बच्चे, धन-सम्पपत्त एवं ज्ञान अन्त में अवश्यमेव र्ून्य में पररणत िोकर पवलुप्त िो जाएंगे, तयोंकक वे िैं िी र्ून्यरूप।"[416] इस कल्पना के आधार पर यि भी आवश्यक िो जाता िै कक उस सब उपतनषद् वातयों का भी कोई न कोई उधचत समाधान ककया जाए जो पवश्व के आधारस्वरूप ब्रह्म और व्यत्ततरूप आममा के भौततक तत्त्व को एकाममक किते िैं। डयूसन आगे

---

415 एडवडशकारपेण्टर : 'पैगनऐण्डकक्रत्श्चयन क्रीड्स', पृष्ि 301 ।

416 पंचात्स्तकायसमयसार, 168।

चलकर इसका भी व्यवस्थापन यों करता िै, "ब्रह्मवाद में ब्रह्म को एक भौततक तत्त्व की आकृतत देकर (उपतनषदों ने) अपनी अनुकूलता (समवायरूपक) के भाव को यिांभी प्रदमर्तश ककया िै।"[417] उपतनषदें िमारे अन्दर अमयन्त अणुरूप में अवत्स्थत आममा का िमसे बिार अव्यत्स्थत अनन्तरूप में मिान आममा के साथ तादामम्य-वणनश करती िुई एक पवर्ेषे प्रकार का सुख अनुभव करती िैं।"[418] जब िम कष्ट में िोते िैं, िमें ईश्वर को बीच में डालने की आवश्यकता निीं ंिै, केवल दुबुलश मानव-स्वाभाव के साथ अनुकूलन करने ेकी आवश्यकता िै।

"आध्यात्ममक ज्ञान आममा के अततररतत और ककसी भी यथाथसशत्ता का प्रततवाद करता िै और वि आममा चेतनस्वरूप िै। इसके पवरुद्ध भौततक मत िमें यि बताता िै कक बिुगुणपवमर्ष्ट एक संसार वाह्यरूप के अवत्स्थत िै। इन दो परस्पर पवरोधी स्थापनाओं ंके परस्पर-सत्म्मश्रण से इस मसद्धान्त की उमपपत्त िुई कक पवश्व यथाथ िै और कफर भी आममा एकमात्र यथाथसशत्ता रिती िै, तयोंकक आममा िी पवश्व िै।"[419] यि समझना आसान निीं कक दोनों स्थापनाएं परस्पर पवरोधी कैसे िैं और पररणाम में ककस प्रकार से इनके मध्य कोई समवाय निीं ंिो सकता। जब यि किा जाता िै कक ब्रह्म के बिार कोई अन्य यथाथसशत्ता निीं ंिै, उसका तामपय श यि िोता िै आममा िी पवश्व की आममा अथवा चेतनारूप िै, अन्य सबकुछ त्जसके अन्दर समवेत िै। इसी प्रकार जब यि कथन ककया जाता िै कक एक बिुगुण-पवमर्ष्ट पवश्व िमसे बिार अवत्स्थत िै तो 'िम' से तामपय शयिां भौततक (सांसाररक) व्यत्ततयों से िै जो मन एवं र्रीर से मयाहशदत िैं, जो अपना स्थानीय आवास स्थान एवं भौततक आकार-प्रकार रखते िैं। तनश्चय िी ऐसे प्राणणयों के मलए संसार वास्तपवक िै। त्जस आममा की िमें खोज िै वि ज्ञान का पवषय निीं ंिै, अपपतु समस्त ज्ञान का आधार िै। यि भौततक एवं आध्यात्ममक दोनों प्रकार के जगत् ्के मलए एक समान पूवधशारणा िै। पवचारर्ील प्राणी अथवा जीव, जो मनोवैज्ञातनक अिं िैं, प्राकृततक जगत् ्के अंर् िैं। उस जगत् ्में ये ब्राह्मरूप से अन्य प्राणणयों के ऊपर कक्रया करते िैं और प्रततकाररूप में उनके ऊपर कक्रया की जाती िै। ककंतु ्तकशर्ास्त्र की र्दत्ष्ट से सम्बद्ध पदाथों से युतत जगत् ्की सत्ता के मलए आममा की सत्ता एक आवश्यक र्त िै। समस्त सत्ता आममा की सत्ता के मलए िी िै। जगत् ्िम मनोवैज्ञातनक आममाओं के मलए परे और दूरू िै। यि पवश्व की आममा में पवद्यमान िै। पररणाम यि तनकला कक पवश्व िमारे मलए यथाथ शमें सत् ्िै तयोंकक िम अभी पूणतशा तक पिुंची िुई आममाएं निीं ंिैं। आममा िी एकमात्र यथाथसशत्ता िै और यि अपने अन्दर पवश्व को भी समापवष्ट ककए िुए िै। इसके अततररतत और कोई भी स्थापना तकशसंगत न िोगी। भौततक (अनुभवाममक) आममाओं के रूप में िम जगत् ्के समीप पवपरीत गुण वाले िैं और पदाथों द्वारा मयाहशदत िैं। त्जस प्रकार िमारा जीवन, जो पिले-पिल प्रकृतत के एकदम पवरुद्ध प्रतीत िोता िै, आगे चलकर र्नैः र्नैः पदाथों के यात्न्त्रक पक्ष को पररवततशत करके अपनेअन्दर समापवष्ट कर लेता िै, उसी प्रकार पवषयी को भी पदाथ श को रूपान्तररत करना िोता िै। उस समय जो कुछ प्रारम्भ में बाह्य एवं प्रमेय पदाथ शथा, पवषयी की कक्रयार्ीलता के मलए पूवत्शस्थत आवश्यक उपाधध बन जाता िै। यि प्रकक्रया धीरे-धीरे चलती रिती िै और अन्त में जाकर

---

417 विी , 171।

418 विी , 237।

419 विी , 405।

पूणरूशप से प्रमेय पदाथ शको दबा देती ि◌ै और पूण शएकता धारण कर लेती ि◌ै। उस समय पवषयी के माग शमें कोई बाधा निींरि जाती, ककन्तु ◌ुतब भी लक्ष्य की प्राप्प्त निीं ि◌ोती। पवरोध को नष्ट ि◌ो जाना आममा के पवकास का लक्षण-मात्र ि◌ै। इस पररणाम पर कक जगत् ◌्केवल आभास मात्र ि◌ै, ि◌म तब पिुंच सकेंगे जय व्यत्ततरूप आममा को पवकास की श्रृंखला की इस पवर्ेष कड़ी को जो देर् और काल से आबद्ध ि◌ै, परम यथाथसशत्ता के रूप में स्वीकार ककया जाएगा। यहद ि◌म, त्जस रूप में ि◌म ि◌ैं इसी रूप में आममा ि◌ोते, यहद ि◌म एकमात्र यथाथसशत्ता ि◌ोते तव ि◌मसे पवपरीत जगत् ◌्एक जादू ◌ूका खेल-मात्र ि◌ी ि◌ोता। ककन्तु वि आममा त्जसे यथाथसशत्ता के रूप में वणनश ककया जाता ि◌ै, पूण शआममा ि◌ै, त्जस त्स्थतत में अभी ि◌में पिुंचना ि◌ै। उस पूणस्शवरूप आममा के मलए जो उस सबको जो ि◌मारे अन्दर एवं ◌ंि◌मसे बिार अवत्स्थत ि◌ै, अपनेअन्दर समापवष्ट रखती ि◌ै, कुछ भी पवपरीत एवं ◌ं पवरोधी निींि। इस प्रकार मयाहशदत आममा के जो मानव के अन्दर ि◌ै और जो सब प्रकार की असंगतत और परस्पर पवरोध से आबद्ध ि◌ै-और परम ब्रि के अन्दर पररभ्रांतत कर देनेसे ि◌ी ड्यूसन को इन दोनों के अन्दर एक कल्पना तक प्रततद्वन्द्पवता की प्रतीतत ि◌ोती ि◌ै और इसे दूरू करने ◌ेके मलए वि एक कृबत्रम उपाय का आश्रय लेता ि।

ऐसे भी कुछ पपरच्छेद उपतनषदों में ि◌ैं जो प्रततपादन करते ि◌ैं कक ि◌में ब्रह्म में नानामव निीं देखना चाहिए।'[420] इन पररच्छेदों में जगत् ◌्के ऐतय की ओर संकेत ककया गया ि◌ै। एक अनन्त के ऊपर बल हदया गया ि◌ै, अनेक सान्त सत्ताओं के ऊपर निीं। अपनी जागररत अवस्था में ि◌म पवषयी एवं पवषय के मध्यगत पवरोध की वास्तपवक कल्पना कर लेते ि◌ैं। ककन्तु धीर-गम्भीर धचन्तन ि◌में बतलाता ि◌ै कक यि पवरोध चरम निीं ◌ंि◌ै। पवषयी एवं पवषय का द्वैत परमसमय निीं ◌ंि◌ै। जब यि किा जाता ि◌ै कक द्वैत ि◌ी सब कुछ निीं ◌ंि◌ै, अथवा दैत अत्न्तमरूप निीं ◌ंि◌ै, तो इसका तामपय शयि न समझना चाहिए कक द्वैतवाद ि◌ै ि◌ी निीं,◌ं अथवा परस्परभेद अथवा पवपवधता एकदम ि◌ै ि◌ी निीं। बौद्धदर्नश के एक सम्प्रदाय-पवर्ेष के इस ममथ्या मत का र्ंकर ने घोर पवरोध ककया ि◌ै। जब तक ि◌म इस जगत् ◌्के परमब्रह्म से मभन्न स्वरूप की कल्पना में रिेंगे, ि◌म माग शभ्रष्ट ि◌ैं। मात्र घटक की ब्रह्म से पृथक् सत्ता का उपतनषदों ने पवरोध ककया ि◌ै। नमक व जल की, अत्ग्न व उसके स्फुमलंगों की, मकड़ी के जाले व तन्तुओंकी तथा बांसुरी व उसके स्वरों की उपमाओं के आधार पर, त्जनका उपयोग उपतनषदों ने संसार के साथ ब्रह्म के सम्बन्ध में व्याख्या करने ◌ेमें ककया ि◌ै, तकश करते ि◌ुए ओल्डबग शकिता ि◌ै कक ि◌म इन सब तुलनाओंके पीछे-त्जनके द्वारा मानवों ने आममा की जीवन-र्त्तत को पवश्व के अन्दर अपनी समझ में प्रततत्ष्ति करनेका प्रयमन ककया और त्जसे उन्िोंने ◌ेतनत्श्चत समझ मलया, यद्यपप यि केवल आंमर्क ि◌ी ि◌ै-सब वस्तुओंमें आममा से मभन्न एक तत्त्व को लक्षक्षत कर सकतेिैं। एक भारतीय पवचारक का किना ि◌ै कक आममा पवश्व में उसी प्रकार सवत्रश व्याप्त ि◌ै जैसे कक लवणयुतत जल में लवण व्याप्त ि◌ोता ि◌ै ककन्तु इसके गुणवणनश में मि आसानी के साथ आगे यि भी कि सकतेिैं कक यद्यपप नमकीन जल का एक भी बबन्दु ◌ुनमक से रहित निीं ◌ं ि, कफर भी जल की संरचना लवण से सवथशा मभन्न रिती ि◌ै। और इस प्रकार ि◌म अनुमान कर सकतेिैं कक आममा भारतीय पवचारक के मलए अवश्य एकमात्र प्रकामर्त वास्तपवकता ि◌ै- एकमात्र साथकश सत्ता, जो पदाथों

420

देणखए बृि दारण्यक , 4/4 ,19 ।

के अन्दर ि कक्न्तु पदाथों में एक अवर्ेे रि जाती ि, वि यि निीं। इस प्रकार के मतों के पवरोध में िी द्वैतवाद के तनषेध की आवश्यकता प्रतीत िोती ि। उपतनषदें इस पवषय को स्पष्ट करती िैं कक वे रचनाममक पवश्व को आममा से पृथक् माननेको उद्यत निीं ंि। उनका बराबर यिी आग्रि ि कक आममा अनुभवों की पयाप्शत क्षमता रखती ि। अमूत शप्रमययवाद के पवपरीत उपतनषदों के मसद्धान्त का वैमर्ष्ट्य यि ि कक वे र्दढ़ पवश्वास के साथ समय घटना के प्रतत भक्ततमान िैं। इसका सवोच्च तत्त्व अथवा ईश्वर एक तनमयस्थायी आममा ि,[421]' जो सवातशतर्ायी ि और अपनेअन्दर प्रमेय जगत्422 को एवं ंप्रमाता मानव को भी समापवष्ट रखता ि।'[423] सबसे उन्नत अवस्था में मात्र एक ब्रह्म िी सत् ्रिता ि। "उसके अततररतत िमें कुछ भी र्दत्ष्टगोचर निीं ंिोता, श्रुततगोचर निीिता और न िी ज्ञानगोचर िोता ि।"[424] आममा की सवोमकृष्ट ज्जयोतत में425 िम पवषयी और पवषय के एकमव को अनुभव करते िैं, संसार की सापेक्षता एवं ंपवरोधों के अस्थायी स्वरूप को अनुभव करते िैं। "विांकफर न हदन रिता ि, न रात रिती ि, न कोई अत्स्तमव रिता ि, और न कोई अनत्स्तमव रिता ि केवल ईश्वर रिता ि।"[426] सटें पाल किता ि, "जब वि जो पूण शि आ जाता ि, तब वि जो अंर्मात्र ि पवलुप्त िो जाता

ब्रोकससकाक्तिनारी ि कक "चतुयावशस्था एक प्रकार की ररततावस्था ि, जो िमें परमेश्वर के चरम पे्रेम एवं हदव्य ज्जयोतत में एकामम्य स्थापपत करती ि।... त्जसमें कक मनुष्य अपने-आपको भूल जाता ि और कफर केवल पे्रेम के अततररतत और ककसी भी वस्तु को-न अपनेको न परमेश्वर को और न ककसी भी प्राणी को निीं पिचानता ि।" यि आभ्यन्तर अनुभव का अखण्ड एकमव िी ि, त्जसकी ओर उन सब पररच्छेदों में संकेत ककया गया ि त्जनका तनदेर् िमें यि ि कक सवोच्च सत्ता में िम ककसी प्रकार का भेद न मानें।

मि स्वीकार करते िैं कक उपतनषदों के अनुसार बिुमव, काल का अनुक्रम, देर् में सिसत्ता, काय-शकारण-सम्बन्ध, पवषयी (प्रमाता) एवंपवषय (प्रमेय) के परस्पर-पवरोध-ये सब सवोच्च सत्ता निीं ंिैं। कक्न्तु इसका आर्य यि निींकक इनकी सत्ता िी निीं। उपतनषदें माया के मसद्धान्त का केवल इन अथों में समथनश करती िैं कक पृष्ठिभूमम में एक सत्ता ऐसी ि त्जसमें र्रीरधारी ईश्वर से लेकर तार के खम्भे तक सब पदाथ शसमापवष्ट िैं। र्ंकर किते िैं, "आममा समस्त जीवधारी प्राणणयों के हृदय में वतमशान ि अथात्श ्ऊपर ब्रह्म से लेकर नीचेएक नरकुल तक में।" व्यक्ततमव की मभन्न-मभन्न श्रेणणयां एक िी परमसत्ता के आंमर्क प्रकार् िैं। माया प्रमययाममक स्तर पर िी यथाथसशत्ता के अन्तदशय में अवत्स्थत अपनेभेद को दर्ातशी ि और उसे, अपनेको पवकमसत िोने के मलए आगे बढ़ाती ि। पवर्ेे पदाथ शिं भी, और निीं ंभी। उनकी मध्यवती सत्ता ि। परमसत्ता की पूणतशा के मानदण्ड से मापनेपर, जो अमयाहशदत सत्ता की पूणतशा ि, बिुमव से भरी जगत् ्त्जसमें दुःख और परस्पर पवभेद ि, न्यूनतम वास्तपवक सत् ्ि। सवोपरर एकमात्र सत्ता से तुलना करने ेपर इसमें सत्ता का अभाव ि। यहद िम

421 अधधदैवम्।्
422 अधधभूतम् ्
423 अध्याममम् ्। देणखए, तैपत्तरीय 7
424 छान्दोग्य, 7 23।
425 आममबुद्धधप्रकार् ।
426 श्वेताश्वतर, 4: 181

 मनुष्यों एवं संसांर के पदाथों को एक तत्त्व का छायारूप भी मान लें तो भी जब एक वि तत्त्व यथाथ

शसत् ्ि ै, छाया

भी अपेक्षाकृत सत्ता रखेगी। यद्यपप सांसाररक पदाथ शयथाथसशत्ता के अपूणूरूशप िैं, ककंतु ु वे उसके मायावी स्वरूप

निीं ंिैं। परस्पर पवरोध और अन्तद्वशन्द्व जो प्रमयक्ष हदखाई देते िैं वे ेउस परमसत्ता के सापेक्ष प्रकार िैं जोकक

पृष्ठ्भूमम में पवद्यमान िैं। द्वैत और अनेकमव यथाथसशत्ता निीं ंिै।'[427]

अपववेकी चेतना र्ीघ्रता से यि धारणा बना लेती िै कक सान्त जगत् ्परमरूप से सत् ्िै। ककन्तु ु

वास्तपवकता यि निींि़। जगत् ्की आकृततयां ंऔर र्त्तयां अल्तम एवं ंचरमरूप में ऐसी निीं ं5/61 उन्िेंस्वयं

अपनी व्याख्या की आवश्यकता िै। वे स्वतः-प्रादुभुावश अथवा स्वाधश्रत भी निीं ंिैं। उनकी पृष्ठ्भूमम में और उनसे

दूरू भी कुछ िै। िमें पवश्व को ईश्वर के अन्दर पवलीन करना िोगा, सान्त को अनन्त के अन्दर एवं

अनालोचनाममक प्रमयक्ष सत्ता को आध्यात्ममक ब्रह्म में पवलीन करना िोगा। उपतनषदों में किीं ंभी इस प्रकार

का संकेत निीं ंिै कक ये पदाथ शजो िमारे चारों ओर अनन्त देर् के पवस्तार में और अपनेभौततक र्रीरों के कारण

ैं त्जनका िमारे साथ सम्बन्ध िै, केवल आभास-मात्र िैं।

उपतनषदों के मसद्धान्त की समीक्षा बिुत कुछ ममथ्या पवचार के आधार पर िुई कक वि

जगत् ्के भ्रात्न्तस्वरूप का समथकश िै। यि दृढ़तापूवकश तकश ककया जाता िै कक उन्नतत अवास्तपवक िै,

तयोंकक उन्नतत एक प्रकार का पररवतनश िै और पररवतनश अवास्तपवक िै तयोंकक काल, त्जसके अन्तगतश

पररवतनश िोता िै, अवास्तपवक िै। ककन्तु सारा दोषारोपण एक ममथ्या धारणा के आधार पर िै। यि समय िै कक

परमसत्ता काल के अन्तगतश निीं ंिै ककन्तु काल परमसत्ता के अन्तगतश िी िै। परमसत्ता के अन्तगतश िी िमें

वास्तपवक पवकास ममलता िै जो रचनाममक पवकास िै। भौततक प्रकक्रया एक वास्तपवक प्रकक्रया िै तयोंकक

यथाथसशत्ता अपनेको भौततक पररवतनशों के अन्दर एवं उनके द्वारा िी अमभव्यतत करती िै। यहद िम यथाथसशत्ता

की खोज ककसी तनमय एवं कालातीत र्ून्य में करेंगे तो यिांमि इसे निींपाएंगे। उपतनषदें त्जस पवषय पर बल

देती िैं वि केवल यि िै कक काल की प्रकक्रया का आधार एवं ंसाथकशता एक ऐसी परमाथसशत्ता िै जो कालातीत िै।

वास्तपवक उन्नतत के मलए परम यथाथसशत्ता की धारणा आवश्यक िै। बबना इस सवज्ञशानी परमसत्ता के िमें यि

तनश्चय निींिो सकता कक पवश्व का तनःसरण एक प्रकार का पवकास िै और पररवतनश उन्नतत िै, एवं संसार का

अत्न्तम लक्ष्य श्रेयस् ्(पुण्य) की पवजय िै। परमसत्ता िमें इस पवषय का तनत्श्चत रूप से पवश्वास हदलाती िै कक

पवश्व की प्रकक्रया अस्तव्यस्त रूपक निीं ंककन्तु सुव्यवत्स्थत िै और यि कक पवकास अव्यवत्स्थत रूप में निीं ंिै,

न िी ककन्िीं आकत्स्मक पररवतनशों का पररणाम िै। यथाथसशत्ता असम्बद्ध अवस्थाओंकी श्रृंखला भी निीं ंिै।

यहद ऐसा िोता और यहद परमाथ शसत्ता कोई न िोती, तो िम ऐसी तनरन्त प्रकक्रया के चंगुल में जा फंसते त्जसकी

पृष्ठ्भूमम में कोई भी योजना अथवा प्रयोजन काय शकरता न प्रतीत िोता। परमसत्ता का एकमव जगत् ्के पवकास

में बराबर और आहद से अन्त तक अपना काय शकरता िै। िम असिाय रूप में एक एसे पदाथ शको ग्रिण करने ेके

मलए तनश्चय िी संघष शनिीं ंकर रिे िैं त्जसका अभी अत्स्तमव निींिै अथवा भपवष्य में भी कभी न िोगा। एक

427

यिांकारणिैककुछउपतनषदोंमेंइव' र्ब्द'का प्रयोग ककया गया िै। देणखए, बृिदारण्यक, १ 4, 14; 4/3 7/4 / 4 191।

 अथ शमें यथाथसशत्ता की अमभव्यत्तत इस पवकास के दौरान में ि र क्षण में िोती िै पवद्यमान और आने वाले दोनों

िी एकाममक और एकरूप िैं। इस दृत्ष्टकोण से उपतनषदों की मर्क्षा में अतनवाय शसामंजस्य ममलता िै। वे जगत् ् की भ्रात्न्तरूपता के मसद्धान्त की बबलकुल भी समथकश निीं ंिै । िो पककंस किता िै कक "तया प्राचीन उपतनषदों में

किीं ंभी ऐसा कुछ िै त्जससे प्रदमर्तश िोता िो कक उनके रचतयता भौततक जगत् ्को भ्रात्न्तरूप समझतेथे ? पवलकुल भी निीं।"[428]

12. यथाथसशत्ता की अवस्थाएं

जिां ंतक परमसत्ता का सम्बंध िै, श्रेणणयों का कोई प्रश्न सवथशा िी निीं ंउिता। श्रेणीबद्धता का पवचार केवल सीममत बुद्धध के मलए िी कुछ अथ शरखता िै जो वस्तुओंके अन्दर भेद करती िै। इसका परमाथरूशप में कुछ मित्त्व निींिै। जबकक जगत् ्की अनेकता को एकमवरूप में पररणत कर हदया गया तो श्रेणणयों का पवचार स्वतः िी दब गया। उपतनषदों की आध्यात्ममक सत्ता में सत्ताओं की कोई क्रममक व्यवस्था निीं ंिै। तो भी अनुभवाममक जगत् ्में इसका अपना मित्त्व िै। जगत् ्की कुल उन्नतत इसको अपनेअन्दर स्थान देती िै। सत्ता की िर एक उन्नतत की मांग एवं ंिर एक पररवतनश इसकी पूवकशल्पना करता िै। सापेक्ष भौततक जगत् ्में यथाथसशत्ता के स्वरूप का सामीप्य प्रमयेक पदाथ शके अन्दर यथाथसशत्ता के अंर् भी न्यूनाधधकता की परख करता िै। परमसत्ता के पवषय में िम इतना कुछ पयाप्शत ज्ञान रखते िैं कक इस जगत् ्में उस ज्ञान का उपयोग कर सकें। उपतनषदों के इस मत की र्ंकर ने रक्षा की िै। इस समस्या के समाधान में कक ब्रह्म ज्ञात िै अथवा अज्ञात, और यहद ज्ञात िै तो िमें इसके स्वरूप के पवषय में त्जज्ञासा निींकरनी चाहिए और अज्ञात िै तो भी त्जज्ञासा का कोई मूल्य निीं, र्ंकर किते िैं कक आममा के रूप में यथाथसशत्ता तनःसन्दिे ज्ञात िै। यि इस प्रकार के कथनों के द्वारा िमें अपना ज्ञान करा देती िै, यथा, 'म ैंप्रश्न करता िूाँ', अथवा 'म ैंसन्दिे करता िंूं'; यि कक यथाथसशत्ता कोई वस्तु िै, स्वतःप्रकट समय िै। िमें केवल उसके स्वरूप को िी समझना िै। यि यथाथसशत्ता त्जसका िम अनुभव करते िैं, परख का काम देती िै त्जसके द्वारा िम अन्य सत्ताओंमें समय की मात्राओं को करते िैं, परख जगत् ्के भ्रात्न्तमय िोनेका मसद्धान्त यथाथसशत्ता की श्रेणणयों के पवचार के साथ मेल निीं ंखा सकता। उपतनषदें िमारे सम्मुख सत्ताओं की एक पवमभन्न श्रेणीयुतत धमसशत्ता प्रस्तुत करती िैं, त्जसमें सवोपरर सत्ता सवग्रशािी परमसत्ता िै जो मुख्य उद्भव एवं ंजगत्–्सम्बन्धी प्रकक्रया का अत्न्तम पवलयनस्थान भी िै। उच्च एवंनीच पवमभन्न प्रकार के अत्स्तमवमय प्राणी सब उसी एक परमसत्ता की अमभव्यत्तत िैं, तयोंकक इस पृथ्वी पर कोई वस्तु अकेली त्स्थर निीं ंरिती, चािे वि ककतनी िी अपेक्षाकृत अपने-आपमें पूण शअथवा आममतनभरश प्रतीत िोती िो। प्रमयेक सीममत पदाथ शअपने अन्दर भेद रखता िै, त्जन भेदों के कारण िी वि परमसत्ता ते दूरू िै। जबकक परमसत्ता सब सीममत

---

428 'जनलश आफ द अमेररकन ओररयण्टल सोसायटी', 22, पृष्ि 385। सर आर० जी० भण्डारकर का मत िै कक "यि सम्मतत, जो कुछ प्रमसद्ध पवद्वानों ने भी प्रकट की िै, कक उपतनषदों का मर्क्षा का प्रमुख पवषयवस्तु जगत् ्को भ्रात्न्तरूप से तनरूपण करना िै और एक आममा का िी अत्स्तमव िै, एक ममथ्या धारणा िै और म ैंयिां तक कि सकता िंूं कक इस प्रकार की सम्पपत्त एक असमीक्षाममक तनणयश िै।" (वैष्णपवज़्म', पृष्ि 2, पाद-हटप्पणी)।

 पदार्थों के अन्दर भी ि और उनको आच्छाहदत भी ककए ि ुए ि ै, पदाथ शएक-दूसूरे से मभन्न

ि ै-अपनी-अपनी
आच्छादनीयता के श्रेणी-भेद से एवं ंउस पूणतशाभेद के कारण जो अपनी अमभव्यत्तत बिार की ओर करती ि ै।

समस्त अंर् एक समान निीं, ं ककन्तु एक से प्रततभापषत ि ैं-

एक उज्जज्जवल ज्जयोतत से ।...

ज़ प्रकृतत की अपेक्षा सुव्यवत्स्थत चेतनामय जीवन में यथाथसशत्ता की अमभव्यत्तत अधधक प्रचुर मात्रा में ि ोती ि और चेतन प्राणणयों में भी मानव-समाज में सबसे अधधक मात्रा में अमभव्यत्तत ि ोती ि ै। यथाथसशत्ता की अमभव्यत्तत की पयाप्शत-अपयाप्शत मात्रा ि ी सब पदार्थों के ऊंचेया नीचेदजे की तनणायशक ि ै। जीवन प्रकृतत की अपेक्षा ऊंची श्रेणी में ि ै। आममचेतना का पवचार केवल चेतना सेअधधक ि ोस एवं पूण ि ै। "वि व्यत्तत जो अंततनहशित आममा के क्रममक पवकास से अमभज्ञ ि ै, अधधक पवकास को प्राप्त ि ोता ि ै। इस जगत् ्में पौधे, औषधधयां और वृकूष ि एवं ंअन्यान्य पर्ुजुगत् ्भी ि और वि उनके अन्दर आममा को क्रममक रूप में पवकमसत ि ोते िुए जानता ि ै; तयोंकक पौधों में और वृकूषों में केवल र्तत धारक रस ि ी हदखाई देता ि ै, जबकक जीवधारी प्राणणयों में चेतना हदखाई देती ि ै। और चेतन प्राणणयों में भी आममा क्रममकरूप से पवकमसत ि ोती ि ै, तयोंकक ककन्िीं में, जैसे वनस्पतत जगत् ्में, केवल र्ततधारक रस ि ी हदखाई देता ि और साथ-साथ चेतना भी, परन्तु ि ु अन्य कततपय में चेतना भी निीं ंलक्षक्षत ि ोती और कफर मानव में भी आममा क्रममक रूप में पवकमसत ि ोती ि ै, तयोंकक मानव ि ी सबसे अधधक ज्ञान-सम्पन्न ि ै। त्जसे वि जानता ि उसका वाणी द्वारा कथन करता ि ै, और त्जसे उसने जाना ि उसे देखता ि ै। वि जानता ि कक कल तया ि ोनेवाला ि ै, वि दृश्य और अदृश्य दोनों प्रकार के संसार के पवषय का ज्ञान रखता ि ै। मरणधमाश र्रीर के साधन से वि अमरमव को प्राप्त करने ेकी अमभलाषा करता ि ै-उसमें यि क्षमता पवद्यमान ि । जबकक अन्य प्राणणयों के पवषयों में यि ि कक वे भूख और प्यास को ि ी एक प्रकार से समझते ि ैं ककन्तु उन्िोंने तया जाना उसे वाणी के द्वारा प्रकट निीं कर सकतेऔर जो कुछ उन्िोंने जाना उसे देख निीं ंसकते। वे निीं ंजानते कक कल तया ि ोने ेवाला ि ै-और न ि ी वे दृश्य एवं ंअदृश्य जगत् ्के पवषय में कुछ जानते ि ैं। वे इतनी दूरू तक ि ी जाते ि ैं, उसके आगे निीं ।"[429] ि म देखते ि ैं कक यद्यपप वि ी यथाथसशत्ता लक्षक्षत ि ोती ि ै, 'एक तारे में, पमथर में, दि े में, आममा में और ममट्टी के ढेले में भी', तो भी जीपवत प्राणणयों में यि ज़ प्रकृतत की अपेक्षा अधधक पूणतशा के साथ लक्षक्षत ि ोती ि ै, त्जसके कारण अपने-आपमें सन्तुष्ट पर्ु ुकी अपेक्षा मनुष्य का बौद्धधक क्षेत्र की अपेक्षा धाममकश क्षेत्र्े में पवकास अधधकतर ि ोता ि ै।"[430] इस

---

429 ऐतरेय-आरण्यक

430 ऐतरेय उपतनषद् इन जीवों के जो योतनमाग शसेउमपन्न ि ोते ि ैं, चार प्रकार के भेदों की ओर संकेत करती ि ै-यथा, जरायुज, जैसे मनुष्य और ऊंचे दजे के जन्तु, दू ूदूसूरे वे त्जनका उद्भव अण्डे ेके अन्दर से ि ोता ि ै, अंडज, जैसे कौए एवं बत्तखें, तीसरे वे जो नमी से प्रादुभावश ि ोते ि ैं और स्वेदज किलाते ि ैं, जैसे, की्े मको् ेआहद; और चौथे वे जो भूमम के अन्दर से उद्भूत ि ोते ि ैं और त्जन्िें उत्भ्दज किते ि ैं, जैसे पौधे (3/3) । यि श्रेणी-पवभाग पवमभन्न प्रकार के प्राणणयों का ि ै और त्जस रूप में वे इस भूमम पर प्रकट ि ोते ि ैं उसके आधार पर ककया गया ि ै। देखें, मनु भी 1: 43-46। अरस्तू इसी का वनस्पतत,

आममानुभूतत एवं ंआममपूणतशा की प्रकक्रया में सबसे तनम्न श्रेणी में पृथ्वी िै। उपतनषदों के पवचारक वैहदक पवचारकों द्वारा प्रततपाहदत एकमात्र जलतत्त्व से आगे बढ़ते िैं। कभी-कभी अत्नन, जल एवं ंपृथ्वी ये तीन तत्त्व स्वीकार ककए गए िैं।431 पांच तत्त्व अथात्श ्आकार्, वायु, अत्नन, जल और पृथ्वी पृथक् मानेगए िैं। "उसी आममा (ब्रह्म) से आकार्, आकार् से वायु, वायु से अत्नन, अत्नन से जल और जल से पृथ्वी ये पांच तत्त्व क्रमर्: उद्भूत ुिए। पृथ्वी से औषधधयां, औषधधयों से अन्न, अन्न से बीज (वीय)श और बीज से मनुष्य की उमपपत्त िुई। इस प्रकार मनुष्य के अन्दर अन्न का सारभूत तत्त्व िै।""432 जीवन के मौमलक आधार का प्रततपादन करते िुए ग्रन्थकार प्रकृतत के पवकास का क्रम प्रततपादन करता िै। सबसे उच्च पदाथ शमें सबसे नीचेपदाथ शके गुण पवद्यमान िैं। आकार् सबसे पिले आता िै, त्जसका एकमात्र गुण 'र्ब्द' िै। यिी वि वस्तु िै त्जसके कारण िम सुनते िैं। आकार् से िम वायु की ओर चलते िैं त्जसमें आकार् का गुण िै और उसके साथ-साथ स्पर्गुशण भी िै। इसी के कारण िम सुनते िैं एवं ंछूकर अनुभव करते िैं। वायु से अत्नन की ओर आते िैं। यि वि वस्तु िै त्जसे िम सुनते,े अनुभव करते एवं ंदेखतिैं। अत्नन से िम जल की ओर आते िैं। िम इसका स्वाद भी ले सकतिैं। जल से पृथ्वी की ओर आते िैं, त्जससे िम सुनते,े अनुभव करते, देखते, स्वाद लेते और सूंघते िैं। यद्यपप यि पवज्ञान त्जसकी प्राचीन समय में कल्पना की गई थी, आज के समय में कृबत्रम, कत्ल्पत एवं पवधचत्र प्रतीत िो सकता िै, तो भी इस वणनश में एक मसद्धान्त काम करता था। िम यि सबसे पूव शउपतनषदों में िी देखते िैं कक पांच तत्त्वों के मसद्धान्त का वणनश िै। पदाथों एवं पंचतत्त्वों की तन्मात्रा के मध्य में भेद का सुझाव सबसे प्रथम यिीं ंममलता िै। छान्दोग्य उपतनषद् में अनेक स्थानों पर संकेत िै कक संसार के पदाथ शगुणभेद के कारण परस्पर एक-दूसरे से मभन्न िैं और अनन्त हिस्सों में पवभतत िो सकतिैं। उद्दालक इस कल्पना को पवचाराथ शप्रस्तुत करता िै कक प्रकृतत के अनेक हिस्से िो सकतिैं और पवमभन्न गुणों के कारण पिचानेभी जा सकते िैं। वस्तुओंका परस्पर रूप पररवतततश िोना ऐसी कोई ची़ निीं ंिै। जब िम दिी का मन्थन करके उसमें से मतखन तनकालते िैं तो दिी मतखन के रूप में पररवतततश िो जाता िो ऐसी बात निीं ंिै, ककन्तुमतखन के कण पिले से दिी में पवद्यमान थे जो मन्थन की कक्रया से ऊपर आ जाते िैं।'433 अनतसागोरस नामक दार्तशनक का कथन कक मभन्न-मभन्न प्रकार के प्राकृततक तत्त्व एक-दूसरे के अन्दर प्रवेर् करते िैं, इसी के समान िै : "तब यहद एक भौततक तथ्य, जैसे कक एक पौत्ष्टक भोजन का पररपाक, यि प्रदमर्तश करता िुआ प्रतीत िोता िै कक अनाज मांस और अत्स्थ के रूप में पररवतततश िो गया िै, तो िमें इस घटना की व्यवस्था अवश्य इस रूप में करनी िोगी कक अनाज के अपनेअन्दर वि वस्तु ुइतनी अधधक सूक्ष्म रामर् में उपत्स्थत िै जो िमें प्रमयक्ष तो निीं ंिो सकती ककन्तु विी पररवतततश िोती

जन्तु एवं मानवीय आममाओंके तीन पवभागों में वणनश करता िै। लीब्नी़ जीपवत प्राणणयों को पौधों, जन्तुओंएवं मनुष्यों में पवभतत करता िै।

431 इन तीनों के सत्म्मलन से अन्य सभी तत्त्वों का तनमाणश िोता िै (देणखए, छान्दोग्य उप०, 4:2 3-4)। संभवतः इसी मत से सांख्य के उन 'तन्मात्र', या सूक्ष्म तत्त्वों के मसद्धान्त का उद्गम िुआ, त्जनसे आगे चलकर स्थूल तत्त्वयों का पवकास िुआ। और भी देणखए, प्रश्न उप०, 4/8 |

432 तैपत्तरीय उपतनषद्, 2/1 |

433 छान्दोग्य, 6/6, 1।

 िै। यथाथरूशप में अनाज मांस, रतत, मज्जजा एंव ि्डी के कणों को अपनेअन्दर तनहित रखता

ि।"[434] कणाद का

अणुवाद भी इस मत में प्रस्तुत ककया जाता िै, अथात्श ्कण िी परस्पर ममलतिैं और अलग िोतिैं। प्रकृतत को एक अव्यवत्स्थत पुंज के रूप में वणनश ककया गया िै जैसेकक नाना वृकूषों के रस को परस्पर फेंटकर उन्िें रिद में ममला हदया जाए।"[435] इस मत में सांख्यमत को लक्षक्षत करना असम्भव निीं ंिै। प्रकृतत के पवकास की व्याख्या करते िुए बताया जाता िै कक या तो जीवाममा का प्रवेर् प्रकृतत के अन्दर िोता िै अथवा आममा के द्वारा नानापवध श्रेणणयों में उसके अन्दर चेतना का प्रवेर् कराया जाता िै। कभी-कभी यि भी किा जाता िै कक गतत का तत्त्व स्वंय प्रकृतत के अन्दर पवद्यमान िै। यद्यपप प्राण अथवा जीवन का प्रादुभावश प्रकृतत से िी िै ककन्तु प्रकृतत के द्वारा इसकी व्याख्या निींिो सकती। इसी प्रकार से चेतनता, यद्यपप इसका प्रादुभावश जीवन से िी िै, प्राण अथवा जीववाद की कल्पना द्वारा बुद्धध मे निीं ंआ सकती। जब िम मनुष्य तक पिुंचते िैं तो िमें आममचेतना का पवचार िोता िै। मनुष्य पाषाणों, नक्षत्रों, पर्ुओंएवं पक्षक्षयों से उच्च श्रेणी का िै, तयोंकक वि तकश और इच्छा, प्रेम एवंपववेक में साथ दे सकता िै तो भी उच्चतम वि भी निीं ंिै, तयोंकक उसे भी प्रततकूलता का दुुःख अनुभव िोता िै।

इससे पूव शकक िम इस पवभाग से आगे बढ़ें, आइए िम इस पर पवचार करें कक तया उपतनषद् के मसद्धान्त का सवेश्वरवाद के रूप में तनरूपण करना ठीक िै। सवेश्वरवाद के मत के ईश्वर और पदाथों के समस्त पुंज में सारूप्य िै एवं ंइस मत में ईश्वर सवातशतयी निीं ंिै। यहद संसार के प्रसरण में परमसत्ता सम्पूण शरूप vec H समापवष्ट िोकर उससे अततररतत रूप में कुछ निीं ंरिती, अथात्श ्उतत दोनों एकरूप िो जाते िैं तो इसी का नाम सवेश्वरवाद िै। ककन्तु उपतनषदों में ऐसे पररच्छेद आते िैं जो स्पष्ट रूप से किते िैं कक संसार के प्रसरण में परमसत्ता का स्वरूप पूणरूशप से उसके अन्दर समापवष्ट िोकर तनःर्ेष निीं ंिो जाता। संसार की पवद्यमानता से परमसत्ता का पूणमशव सवथशा नष्ट (अथवा पवलुप्त) निीं ंिोता। एक सुन्दर रूपक में यि किा गया िै : "वि पूण िशै, और यि भी पूणू िशै; उस पूण शमें से यि पूण शउद्धृत िोता िै। इस पूण शको उस पूण शमें से तनकाल लेनेके पीछे जो बच जाता िै वि तब भी पूण िशै।" परमेश्वर भी अपनेको संसांररूप में पररवतततश करने ेपर अपनेस्वरूप में से कुछ भी निीं ंखोता। प्राचीन से प्राचीन समय में अथात्श ्ऋग्वेद में भी यिी किा गया िै कक सब प्राणी-मात्र पुरुष का केवल चतुथांर् िै। जबकक अवमर्ष तीन चौथाई अपवनश्वर रूप में प्रकार्मान लोकों में त्स्थत रिता िै।'[436] बृिदारण्यक के अनुसार (5/14) ब्रह्म के एक पग में तीन लोक िैं, दूसूरे में तीन प्रकार का वेदज्ञान िै, तीसरा पग तीन जीपवत र्तपूण शउच्वास (प्राण, अपान, उदान) िैं एवं चौथा पृथूवी के ऊपर उिकर सूय शके समान द्युततमान िै।'[437] उपतनषदें स्पष्ट रूप से किती िैं कक पवश्व परमेश्वर के अन्दर िै। ककन्तु यि मत उन्िोंने ेकिीं ं निीं ंप्रततपाहदत ककया कक पवश्व परमेश्वर िै। परमेश्वर पवश्व से मिान िै, तयोंकक पवश्व उसका काय िशै। वि इतना तो िै िी ककन्तु इससे भी परे िै, ठीक जैसे मनुष्य का व्यत्ततमव र्रीर से परे िै, तयोंकक र्रीर इसके जीवन

434 ऐडम्सन : डडवेलपमेंटऑफग्रीककफलासफी', पृष्ठ 50।

435 छान्दोग्य, 6/9, 1 - 2

436 10/90, S छान्दोग्य उपतनषद् भी, 9/12, 6

437 4/3, 32 ।

का साधन मात्र ि। उपतनषदें परमाममा को जगत् ्में कैद करने ेसे तनषेध करती िैं। इससे यि तनष्कष शनिीं तनकालना चाहिए कक परमेश्वर बिार त्स्थत िोकर पवश्व की रचना करता ि और जगत् ्से मभन्न रिता ि। परमेश्वर जगत् ्के द्वारा अपनेको अमभव्यतत करता ि और यि जगत् ्उसकी सत्ता की अमभव्यत्तत मात्र ि। परमब्रह्म अपनी अनन्त पूणतशा में सीममत पदाथों से पूण शपवश्व में, जिां ंभौततक एवं आत्ममक सत्ताओं के रूप में

ऊपर स्वयं ि इन अपनेको तथा अमभव्यतत रूपों से भी ऊपर पवद्यमान रिता ि।
परमेश्वर पवश्व के ऊपर भी ि और पवश्व में समापवष्ट भी ि। उपतनषदें उतत पररभाषा के अवांछनीय अथों में सवेश्वरवादी निीं ंिैं। पदाथ शबबना ककसी एकता, प्रयोजन अथवा गुणभेद के एकत्र पुंजरूप में एकत्र निीं ंिो गए, त्जन्िें परमेश्वर के नाम से पुकारा जाता ि। परमाममा के दिेधारी देवता स्वरूप के पवचार के पवरुद्ध उपतनषदें पवद्रोि करती िैं। वे किींभी निीं ंकिींकक परमेश्वर जगत् ्के बिार ि एवं ंकभी-कभी अलौकिकक दैवीय प्रेरणा अथवा चममकारपूण शइस्तक्षेप द्वारा अपनी उपत्स्थतत का मित्त्व अनुभव कराता रिता ि। यि सवेश्वरवाद ि, यहद सवेश्वरवाद से तामपय शयि ि कक परमेश्वर िम सबके जीवनों की मौमलक यथाथसशत्ता ि और यि कक बबना उसके िम निीं ंजीपवत रि सकते। इस जगत् ्में प्रमयेक पदाथ शसीममत भी ि; और अनन्त भी; पूण शभी ि; अपूण श
भी। प्रमयेक वस्तु अपनेसे परे एक श्रेयस् ्की खोज में ि; अपनी सीममतता को दूर करना चािती ि और पूणतशा प्राप्त करना चािती ि। सान्त अपनेको सवाशततर्यी बनानेके मलए प्रयमन करता ि। यि स्पष्टरूप से इस पवषय की स्थापना करता ि कक अनन्त आममा सान्त के अन्दर काम कर रिा ि। यथाथसशत्ता असत् ्का आधार ि। यहद परमब्रह्म की अन्तयामशमता के मसद्धान्त से उपतनषदों के सवेश्वरवाद की पयाप्शत मात्रा में दोषरुदुधध िो जाती िो, तो उपतनषदों के दार्तशनक मसद्धान्त को सवेश्वरवाद के रूप में स्वीकार ककया जा सकता ि। ककन्तु ुइन अथों में सवेश्वरवाद प्रमयेक समयधम शका अतनवाय शस्वरूप ि।

13. जीवाममा

उपतनषदों का मत ि कक सान्त पदाथों की श्रेणी में जीवाममा के अन्दर यथाथसशत्ता का अंर् सबसे उच्चकोहट का ि। यि परमब्रह्म के स्वरूप के सबसे अधधक तनकट ि, यद्यपप यि स्वयंपरमब्रह्म निीं ंि। ऐसे भी पररच्छेद उपतनषदों में ि त्जनमें सान्त जीवाममा का पवश्व के प्रततबबम्ब के रूप में प्रततपादन ककया गया ि। समस्त संसार सान्त जीवाममा के अनन्तता प्राप्त के मलए ककए गए प्रयल की प्रकक्रया-स्वरूप ि और यिी प्रसरणर्ील त्तत जीवाममा में पाई जाती ि। तैपत्तरीय उपतनषद् के अनुसार, पवश्व के अनेक अवयव (घटक) जीवाममा के स्वरूप में दृत्ष्टगोचर िोति। छान्दोग्य उपतनषद् में (6, 2, 3 और 4) किा गया ि कक अत्ग्न, जल और पृथ्वी ममलकर अनन्त सत्ता के तत्त्व को साथ लेकर जीवाममा की सृत्ष्ट करते िैं।"[438]

---

438 "ईश्वर ने समस्त अन्तररक्ष, पृथ्वी और प्रकार्पुंजों को,

पर्ु-पक्षी, मीन और कीट-पतंगों को

एकत्र कर प्रततत्ष्ति ककया मानव में-

पवमभन्न जीवन-श्रृंखलाओंका पुनगशिन कर

यथाथसशत्ता की पवपवध अवस्थाओं के परस्पर ममलने का लक्ष्यबबन्दु ुमानव ि। रीरस्थ प्राण सांसाररक वायु के अनुरूप ि, मानस आकार् के अनुरूप, अथात्श ्मानव का मन संसार के आकार् (ईचर) के अनुरूप ि और ससि मूतरूशप रीर भौततक अवयवों के अनुरूप ि। मानव-आममा का सम्बन्ध ऊपर से नीचेतक सत्ता की प्रमयेक श्रेरणी के साथ ि। इसके अन्दर एक दैवीय अंर् ि त्जसे िम आनन्दायक चेतना के नाम से पुकारते िैं, अथात्श ् आनन्द की अवस्था त्जसके द्वारा पवरे्षे क्षणों में यि परमसत्ता के साथ साक्षात् ्घतनष् सिम्बन्ध में संयुतत िो जाता ि। सान्त आममा अथवा रीरधारी आममा वि आममा ि त्जसके साथ इत्न्द्रयों एवं मन का सम्बन्ध ि।439

पवमभन्न अवयव अत्स्थर समानता में िैं। 'दो पक्षी, एक जैसे और परस्पर ममत्र उस एक िी वृक्ष से धचपटे िुए िैं। उनमें से एक तो वृक्ष के स्वादु ुफलों का स्वाद लेता ि, ककन्तु दूसूरा फलों को खाए बबना उसकी ओर ताकता रिता ि। उसी संसार रूपी वृक्ष में मानव ईश्वर के साथ तनवास करता ि। आपपत्तयों में तघरकर वि मूतछशत िोता ि और अपनी िी अर्तता के ऊपर दुःख प्रकट करता ि। ककन्तु जब वि दूसूरे को देखता ि-जगत् ्के स्वामी को, तो उसके सात्न्नध्य में प्रसन्न िोता ि। अिा, उसकी ककतनी हदव्य ज्जयोतत ि ! उस समय उसकी पवपपत्तयों का अन्त िो जाता ि।"[440] प्राकृततक और दैवीय दोनों नेअभी तक एक स्थायी सामंजस्य नििंप्राप्त ककया। वैयत्ततक जीवाममा की सत्ता सतत पररणतत को प्राप्त कर रिी ि, एक ऐसी वस्तु को प्राप्त करनेके मलए सतत प्रयमनर्ील ि जो यि निीं ंि। मानव के अन्ततनहशित अनन्त सत्ता जीवाममा को पे्ररेणा करती ि कक वि बिुमव के अन्दर एकमव स्थापपत करे, जो समस्या उसके सामने ि। सान्त और अनन्त के मध्य जो यि प्रसरण तनरन्तर संसार की प्रककक्रया में पवद्यमान ि, मानव-चेतना के सम्मुख आ जाता ि। उसके जीवन के बौद्धधक, मनोभाव-सम्बन्धी एवं ंनैततक-प्रमयेक पक्ष में इस संघष शका अनुभव ककया जा सकता ि। परमेश्वर के राज्जय में वि प्रवेर् पा सकती ि जिांकक तनमय यथाथतशाएं परम पे्रेम और परम स्वातन्त्र्य के रूप में केवल अपने व्यत्ततमव को पवलोप करके और अपनी समस्त सान्तता को अनन्तता में पररणत करके एवं मानवीयता को देवमव में पररणत करके तनवास करती िैं। ककन्तुजब तक वि सान्त ि और मानवीय रूप धारण ककए ि, उसे फल की प्रात्प्त निीं ंिो सकती, न वि अत्न्तम लक्ष्य तक पिुंच सकती ि। वि सत्ता त्जसमें यि चेष्टा देखी जा सकती ि अपनेसे दूरू का तनदेर् करती ि, और इसमलए मनुष्य जीवन से भी ऊपर जाना िी िोता ि। सान्त जीवाममा अपने-आपमें पूणसशत्ता निीं ंि। यहद वि ऐसी िो तो परमेला केवल एक अन्य स्वतन्त्र व्यत्तत-मात्र रि जाएगा जो सान्त जीवाममा द्वारा पररममत िोगा। आममा की यथाथतशा अनन्त में ि। और अयथाथतशा, त्जससे

समस्त सृतूष्ट के योग, इस सूक्ष्म-ब्रह्मांड मानव को रचा।"- ब्राउतनंगं और भी देखें, ऐतरेय, 3/3 श्वेताश्वतर, 2: 12, 6; प्रश्न, 6/~~111 जीवाममा पवश्व का संक्षक्षप्त रूप ि और संसार जीवाममा का पवर्ाल रूप ि। प्लेटो ने अपने 'टीममयस' ग्रन्थ में पवश्व-~~ब्रह्माण्ड एव क्षुदुर जगत् ्के मध्य पवश्व एवं मानव के सादृश्य का वणनश ककया ि। परमब्रह्म नेस्वयं ंसंसार की आममा को ममधश्रत करके पररवतनशर्ील और पररवतनशरहित के मध्य में पवश्व के मध्य में बिा हदया (34, बी) उसके अनुसार पवश्व मानव का िी बृिदाकार रूप ि। देणखए, तैततरीय, 1 : 3 और उस पर आनन्दधगरर का टीका।

439 छान्दोग्य उपतनषद्, 8: 12, 31

440 मुण्डक, 3/1, 2 देणखए; ऋग्वेद, 1/164 ,20 ।

पीछा छुाना ि◌ै, सान्त ि◌ै। यहद आममा की आममा पृथक् कर दें तो सान्त जीवाममा उस यथाथतशा को भी जो कुछ उनमें ि◌ै अन्मयधगरी। अनन्त की अन्दर उपत्स्थतत के कारण से ि◌ी मानव को उन्नत पदवी प्राप्न ि◌ाती खो देती ि◌ै। अपना अत्स्तमव एवं ◌ंअपनी त्स्थतत दोनों ि◌ी पवश्वाममा से प्राप्त करती ि◌ै। आमडमा पूण शि◌ै (Sub specie aeternitatis) ।'[441] एक मनोवैज्ञातनक पक्ष ऐसा ि◌ै त्जस पर आममाण पूण शदूसूरे को परे ि◌टाती ि◌ैं एवं एक-दूसूरे से अततररतत रिती ि◌ैं। इस प्रतीयमान घटना से एक यि अनुमान न लगा लेना चाहिए कक वस्तुतः आममा एक-दूसूरे से सवथशा पृथक् ि◌ैं। पृथकमव केवल एक प्रकार से प्रतीयमान भेद ि◌ै। इसे सार्दश्य के रूप में ि◌ी समझना चाहिए, पुचतया केवल ि◌मारे मनों का अमूतीकरण रि जाएगा। आममाओं में पृथुग्भाव की कल्पना मान लेनेपर समय के आदर्ों, सदाचार एवं ◌ंप्रेम के मलए कफर कोई स्थान निीं ◌ंरि जाता। इस प्रकार इस बात की पररकल्पना ि◌ोती ि◌ै कक मनुष्य त्जस त्स्थतत में ि◌ै, पूण शनिीं ◌ंि◌ै; और वास्तपवक आममा से भी ऊंची कोई सत्ता ि◌ै त्जसको प्राप्त करना मन की र्ात्न्त के मलए आवश्यक ि◌ै। "और जीवाममा की स्वतन्त्र यथाथतशा, जब ि◌म इसकी परीक्षा करते ि◌ैं, यथाथ शमें केवल एक भ्रात्न्त ि◌ी प्रतीत ि◌ोती ि◌ै। समुदाय के अततररतत मनुष्य पृथुग्रूप में तया ि◌ै? यि सबके अन्दर सामान्य रूप से वतमशान मन ि◌ी ि◌ै जो मनुष्य रूपी जीव को यथाथतशा प्रदान करता ि◌ै, और स्वतन्त्र रूप में वि और जो कुछ भी ि◌ो, मानवीय निीं ◌ंि◌ै... यहद सामात्जक चेतना के पवषय में नाना प्रकार की आकृततयों में यि समय ि◌ै, यि उस सामान्य मन के पवषय में भी कम समय निीं ◌ंि◌ै जो सामात्जक से भी अधधक ि◌ै। सान्त मानस, जो धम शके क्षेत्र में और धम शके मलए एक धाममकश इकाई का तनमाणश करते ि◌ैं, वस्तुतः अन्त में कोई र्दत्ष्टगोचर मूत शरूप निींरखते, ककन्तु तो भी मसवाय एक अर्दश्य समुदाय के सदस्य ि◌ोने ◌ेके नाते वे यथाथ शएकदम निीं ◌ंि◌ै। संक्षेप में कि सकतिैं कक एक जो अन्दर अवत्स्थत आममा ि◌ै यहद उसे ि◌टा दें तो धम शके मलए और कोई आममा निीं ◌ंरि जाती।442

यद्यपप व्यत्ततगत जीवाममा तनम्नतम प्रकृतत के साथ संघष शकरती ि◌ुई संसार में सबसे ऊंची ि◌ै, कफर भी यि इतनी ऊंची निीं ◌ंत्जसे ग्रिण ककया ि◌ी जाना चाहिए। मनुष्य को पवसंवादी आममा को अपनी स्वतन्त्रता एवं सामंजस्य का आह्लाद और परमसत्ता की प्रात्प्त का सुख प्राप्त करना चाहिए। केवल उसी समय जबकक उसके अन्दर त्स्थत ईश्वर अपनेको पिचान लेता ि◌ै, और केवल तभी जबकक आदर् शअपनी फल प्रात्प्त तक पिुंच जाता ि◌ै, मनुष्य का अंततम लक्ष्य पूरा ि◌ो सकता ि◌ै। संघष,श परस्पर पवरोध और जीवन के पवरोधाभास ये सब अपूण शपवकास के लक्षण ि◌ैं; इसके पवपरीत सामंजस्य, ि◌ष शऔर र्ांतत पवकास की प्रकक्रया की पूणतशा को द्योततत करते ि◌ैं, जीवाममा एक प्रकार का युद्ध क्षेत्र ि◌ै, त्जसमें युद्ध ि◌ोता ि◌ै। युद्ध को समाप्त ि◌ोना ि◌ी चाहिए और पवरोधों सेऊपर उि कर आदर् शको ग्रिण करना चाहिए। ईश्वर के प्रतत झुकाव जो पूणतशा प्राप्त मनुष्य में प्रारंभ ि◌ोता ि◌ै, उस समय पूणरूशप से सफल ि◌ोगा। पवश्व के और सब पक्षों में मनुष्य ऊंचा ि◌ै और जैसे ि◌ी वि अनन्त के साथ ऐतय प्राप्त कर लेता ि◌ै, उसका लक्ष्य पूरा ि◌ो जाता ि◌ै। प्रकृतत के अन्दर जीवन गुप्तरूप से तनहित ि◌ै और जब जीवन पवकमसत ि◌ो जाता ि◌ै तो प्रकृतत का लक्ष्य पूरा ि◌ो जाता ि◌ै। जीवन के अन्दर चेतना गुप्त रिती ि◌ै और जब जीवन चेतना को स्वतन्त्र कर देता ि◌ै, इसका उद्देश्य पूरा ि◌ो जाता ि◌ै। जब बुद्धध

---

441 देणखए र्ंकर,'इण्रोडतर्न टु वेदान्तसूतूर' ।

442 ब्रैडले : 'ट्रुथ ऐण्ड ररयमलटी', पृषि्ठ 435।

अमभव्यतत िोती िै तब चेतना का उद्देश्य पूण शिो जाता िै। ककन्तु बुद्धध का समय तभी प्राप्त िोता िै जब वि ऊंचेदजे के आममाज्ञान में पवलीन िो जाती िै जो स्वयंमें न तो पवचार िै, न इच्छा और न अनुभव िी िै, ककन्तु तो भी पवचार का लक्ष्य िै , इच्छा का उद्देश्य िै और अनुभव की पूणतशा िै। जब सांत जीवाममा मर्रोमणण सत्ता

ब्रह्म कोप्राप्तकरलेतीिैजिससेयिप्रादुभुावश िुई थी तो धाममकश जीवन का भी लक्ष्य प्राप्त िो जाता िै। "जब एक ज्ञानवान मनुष्य के मलए जीवाममा सब पदाथों का स्वरूप िो जाती िै, और जब उसनेएक बार उस ऐतय का साक्षामकार कर मलया तो उसके मलए कफर तया दुुःख एवं तया कष्ट रि जाता िै !"

14. उपतनषदों का नीततर्ास्त्र

उपतनषदों के नीततर्ास्त्र का मूल्यांकन करनेके मलए िमें उनके द्वारा प्रततपाहदत आदर् शकी ताककशक उलझनों पर पिले पवचार करना िोगा और कफर उपतनषद्-वातयों में हदए गए सुझावों को पवकमसत करना िोगा। मिारे पूव शके पववादों से यि स्पष्ट िो गया कक उपतनषदों का आदर् शपरमेश्वर के साथ ऐतयभाव प्राप्त करना िै। संसार की रचना इसके अपनेमलए निीं ंिुई िै। यि परमेश्वर से प्रादुभूतश िोता िै और इसीमलए इसे परमेश्वर के अन्दर िी पवश्राम करने ेके मलए प्रयमन करना िै। संसार की प्रकक्रया के अन्दर बराबर इस सान्त का प्रयमन अनन्तता की प्राप्त्प्त की ओर िै। ऱ्ेषे संसार की भांतत अपने ेअन्दर अव्यवत्स्थत अनन्त के दवाब का अनुभव करके मानव अपनिेाथ उन्नततम के पास पिुंचने ेके मलए फैलाता िै। "सब पक्षी अपनेअभीष्ट आवास स्थान की ओर जाते िैं। इसी प्रकार यि सब जगत् ्सवोपरर परब्रह्म के प्रतत जाता िै।"[443] "तया म ैंतुम्िारे अन्दर प्रपवष्ट िो सकता िंूं, िे प्रभु जैसे तुम िो ? िे प्रभु, तुम मेरे अन्दर प्रपवष्ट िो जाओ, म ैंपपवत्र और र्ुद्ध िो जाऊं,

िे प्रभु ।"[444] "तुम मेरे पवश्रामस्थान िो ।" [445] परमेश्वर के साथ ऐतय को प्राप्त कर लेना मनुष्य का आदर् शिै। मानवीय चेतना एवं ंअन्य सबके अन्दर जो भेद िै वि यि िै कक जिांऔर सब सान्त की खोज करते िैं, केवल मनुष्य को िी अंततम उद्देश्य का पवचार िै। पवकास के अनेक युगों के पश्चात् ्मनुष्य को पवश्व की मिान योजना का ज्ञान प्राप्त िो सका िै। केवल यिी अनन्त के आह्वानों को अनुभव कर सकता िै। और पूरे ज्ञान के साथ दैवीय पदवी को प्राप्त करनेके मलए आगे बढ़ता िै, जो उसकी प्रतीक्षा में िै। परमसत्ता सान्त आममा के मलए एक तनत्श्चत लक्ष्य िै।

यि सबसे उन्नत एवं ं पूण श िै, सबसे अधधक वांछ नीय आदर्श िै, इस बात का कई प्रकार से प्रततपादन ककया गयािै।यिएकऐसीअवस्थािै"जोभूख-प्याससेबुितऊपर,दुुःखऔरमतत-पवभ्रमरोभीऊपरऔर वृद्धावस्थाएवं ंमृमृयुसेभीऊपरिै।""जैसेसूय,शजोपवश्वकाचक्षुिै,अमयंतदूरत्स्थतिैऔरआंखोंकोिोने वाले रोगों से सवथश ा अछू ता रिता िै, ठीक इसी प्रकार से यि एक, आममा, त्जसका तनवास सब प्राणणयों में िै, पृथ क्

443 प्रश्न। ,4/7

444 तैपत्तरीय,1/4

445 तैपत्तरीय,1/4 देखें, बृिदारण्यक ,4 : 3, 32।

 174 त् मलप्शत रिती ि और इसे संसार के दु:ख र्निं ंव्यापते।" बुिमव-सम्पन्न संसार में रिना, अपना सब कुछ क्षुद्ररूप

आममा के ऊपर तनछावर कर देना और इस प्रकार रोग एवं दु:ख की अधीनता में रिना वस्तुतः दुभाुग्शय का पवषय ी। उन कारणों का तनराकरण करना जो िमें सान्त सत्ता की ओर ले जाते िैं, मनुष्य का उधचत उद्देश्य िै।

बुितमववाद से वापस लौटकर एकमव में आ जाना एक आदर् शलक्ष्य ि और अमयधधक मित्त्व का िै। यि मनुष्य की जीवाममा को पूणरूशपेण सन्तोष देता िै। तैपत्तरीय उपतनषद् के अनुसार, यि 'प्राणारामं मन आनन्द श्ात्न्तसमृद्धम् ्अमृतृम्'् - जीवन एवं ंमन को आह्लाद देनेवाला, श्ात्न्त एवं ंतनमयता की पूणतशा िै। तनम्न स्तर के लक्ष्य, त्जनके पीछे िम लालातयत रितेिं, इसी जीपवत रीर को सन्तोषदायक मसद्ध िो सकतेिं अथवा मानमसक इच्छाओंकी पूतत शकर सकतेिं, ककन्तु वे ेसब इसके अन्दर तनपवष्ट िैं, और यि उनसे भी ऊपर िै। मिारे आगे मभन्न-मभन्न प्रकार के सुख िैं, जो िमारे जीवन के मभन्न-मभन्न स्तरों के अनुकूल िैं; जैसे जीवनदायक सुख, इत्न्द्रयभोगजन्य सुख, मानमसक एवं ंबौद्धधक सुख। ककन्तु सबसे उन्नत एवं उमकृष्ट सुख आनन्द िै।

मिें उपतनषदों में जो कुछ भी नीततर्ास्त्र उपलब्ध िोता ि वि सब इसी उद्देश्य का सिकारी िै। कत्तव्शय कम शउच्चतम पूणतशा के उद्देश्य की प्रात्प्त का साधन मात्र िै। इस सवोन्नत अवस्था से कम में किीं ंसन्तोष र्निं ंममल सकता। सदाचार का मित्त्व भी तभी ि जबकक वि उतत लक्ष्य की प्रात्प्त की ओर िमें अग्रसर करे। मनुष्य के हृदय के अन्दर त्जसका अंकुर उपत्स्थत ि उस पूणतशा के प्रतत धाममकश स्फुरण की यि अमभव्यत्तत िै। यि तनमय यथाथसशत्ता के प्रतत श्रद्धा एवं भत्तत का भाव िी ि जो िमारी चेतनामय आममा को पववर् करता िै। इस कथन का कक कतव्शय कम श"परमाममा की वाणी की किोर पुत्री ि" यिी अथ शिै। िमारे जीवन का पूण शआदर् श

केवल तनमयसत्ता में िी उपलब्ध िोता िै। सदाचार का तनयम पूण शबनने के मलए एक तनमन्त्रण के समान िै, "जैसे

तुम्िारा स्वगशस्थ परमपपता पूण शिै।" इससे पूव शकक िम नैततक जीवन के पववेचन को िाथ में लें, िम उन आपपत्तयों पर भी पवचार कर लें जो साधारणतः उपतनषदों की दार्तशनक पद्धतत में नीततर्ास्त्र की सम्भावना के पवरुद्ध की जाती िैं। यि प्रश्न उपत्स्थत िोता ि कक यहद सब एक ि तो नैततक सम्बन्ध कैसे बन सकतेिं। यहद परमसत्ता पूण शिै तब कफर उसे े प्राप्त करनेके मलए ककसी प्रकार के प्रयल की आवश्यकता िी किाँरि जाती िै, तयोंकक वि तो पिले िी उपलब्ध ी। परन्तु अद्वैतवाद का अथ शयि र्निीं कक पुण्य एवं ंपाप के मध्य जो भेद ि उसे सवथशा उ़ा हदया जाए। अन्यथा के एवं बुिगुणता के भाव को, जो नैततक जीवन के मलए बुित आवश्यक िै, उपतनषदों ने मान्यता दी िै। उनका किना ि कक िमें अपनेपो़सी के प्रतत पे्रम करने ेएवं ंसंसार के एकमव को प्राप्त करने ेके मलए किने ेका कोई अथ शिी र्निं ंिै, यहद परस्पर भेद- भाव मनुष्यों के जीवन में मौमलकरूप से पवद्यमान िै। यहद मनुष्य वस्तुतः एक-दूसूरे से लीब्नी़ के मूलजीवों (स्वयंभू ूव्यत्ततयों) की तरि बाह्य एवं पृथक् पृथक् िैं और यहद पूवत्शस्थत साम्य में कोई सुधार र्निं ंिो सकता तब तो नैततक आदर् शकी प्रात्प्त असम्भव िै। यहद िमें अपने पो़सी से पे्रम करने ेका आदेर् हदया जाता ि तो इसीमलए तयोंकक यथाथ शमें सब एक िैं। मेरा पो़सी और म ैं अपनी अन्तराममा में वस्तुतः एक िी िैं-यहद ऊपरी एवं ंक्षणभंगुर भेदों में िम ऊपर उि सकें। यथाथ शआममा, जो

 परमाथरूशप से और तनमयरूप में पवरुद्ध िै, देर् और काल की पररवतनशर्ील उपाधधयों से परे ि।ै िमें अपने

पृथृतमव से ऊपर उिनैको जो किा जाता िै यि तनरथकश वचन निीिं। मोक्ष का यौधगक अथ शिै छुटकारा पाना। इत्न्द्रयों के पवषयों के बन्धनों एवं व्यत्ततमव से तथा उस सबसे जो संकीण शऔर सान्त िै, अपनेको मुतत कर लेनेका नाम मोक्ष िै। यि स्वाममा के पवस्तार एवं ंस्वतन्त्रता का पररणाम िै। सम्पूण शसौजन्य का जीवन बबताने का िी तामपय शिै कक िम अपनेऔर अन्य सबके जीवनों में एकमव को ग्रिण कर चुके िैं। यि आदर्,श त्जसके मलए मानव का नैततक स्वरूप लालातयत रिता िै, केवल उसी अवस्था में प्राप्त ककया जा सकता िै जबकक यि सान्त आममा अपने संकीण शव्यत्ततमव से ऊपर उिकर सम्पूण शब्रह्माण्ड के साथ अपनेतादामम्य को पिचान लेती िै। मोक्ष का माग शआममा की उन्नतत का माग शिै। अपनेव्यत्ततमव से ऊपर उिकर त्जस यथाथसशत्ता पर उपतनषदों के अन्दर िमें रिना िै विी सबसे उच्च िै और उसी यथाथसशत्ता पर उपतनषदों में पवर्ेष बल हदया गया िै।

यि किा जाता िै कक नैततक पुरुषाथ शके मलए किीं ंजगि निीं ंिै, तयोंकक मनुष्य स्वभाव से दैवीय िै। केवल इसमलए कक ईश्वर का तनवास मनुष्य के अन्दर िै, यि पररणाम निीं ंतनकालना चाहिए कक इसके साथ िी समस्त पुरुषाथ शकी समात्प्त िो जाती िै। ईश्वर मनुष्य के अन्दर अवश्य िै, ककन्तुइतना अधधक व्यततरूप में निीं ंिै कक मनुष्य उधर से बबलकुल गाकफल रिकर और बबना ककसी पुरुषाथ शके िी उसकी सत्ता को सुरुक्षक्षत रख सके। ईश्वर मनुष्य के अन्दर सम्भावना के रूप में पवद्यमान िै। मनुष्य का यि कतव्शय िै कक वि उसे पुरुषाथ श एवं ब्रह्म के ग्रिण करके, अनुभव करे। यहद वि ऐसा निीं ंकरता तो अपनेकतव्शय से च्युत िोता िै। मनुष्य के अन्दर ईश्वर की उपत्स्थतत समय घटना भी िै और सम्पादन-योग्य काय शभी िै; एक समस्या भी िै और एक तनधध भी। मनुष्य अपनेअज्ञान के कारण बाह्य आवरणों के साथ, जो भौततक एवंमानमसक आवरण मात्र िैं, अपना तादामम्य स्थापपत कर लेता िै। परमसत्ता के प्रतत उसकी अमभलाषा का संघष शउसकी सांतता एवं पररममत त्तयों के साथ िोता िै। "यद्यपप व्यत्ततरूप जीवाममा में हदव्य ज्जयोतत का प्रकार् िोता ि,ै वि स्वयं पूणरूशप में दैवीय निीं ंिै। उसकी देवीयता यथाथ शनिीं ंिै ककन्तु सम्पूणतशा को प्राप्त करने ेकी उमकट अमभलाषा मलए िुए परमाममा का एक अंर्मात्र िै। वतमशानरूप में वि धूल भी िै और देवता भी िै, वि ईश्वर और पर्ु ुसे ममलकर बना िै। नैततक जीवन का यि काम िै कक वि अदैवीय तत्त्व को तनकाल बिार कर दे, उसका सवयशा नार् करके निीं ंअपपतु दैवीय भाव से उसे दबाकर।"[446] प्रकृतत की सान्त दाय एवंआममा के अनन्त आदर् शके बीच में मनुष्य एक प्रकार का पवसंवाद िै और उसे प्रकृतत के पवश्रृंखल तत्त्वों को क्रमर्: हदव्य आममा के प्रतत झुकाकर अपनेलक्ष्य तक पिुंचने के मलए पुरुषाथ शकरना िोता िै। यि उसका उद्देश्य िै कक वि अपनी सत्ता के पररममत आवरण को तछन्न- मभन्न करके अपनेको पे्रेमपूवकश हदव्य एवं ंपूण शआममा के साथ संयुतत कर ले। नैततकता की समस्या का मित्त्व उस मनुष्य के मलए अमयधधक िै त्जसका जीवन सान्त एवं ंअनन्त के मध्य में एक संघष शका एवं ंराक्षसी तथा दैवीय तत्त्वों के मध्य संग्राम का िै। मनुष्य संघष शके मलए उमपन्न िुआ िै और बबना पवरोध के अपने-आपको निीं ंपिचान सकता।

---

446 इण्टरनेर्नलजनलशऑफएधथतस ', (1914), पृषि्ू 169।

राथीतर का तथ्य, पौरुमर्त्ष्ट की तपस्या एवं मौद्गल्य की पवद्वत्ता447 आहद उच्चतम सत्ता को प्राप्त करने ेके नाना प्रकार के मागों से- त्जनका उल्लेख उपतनषदों में ममलता ि- यि स्पष्ट िै कक उस युग के पवचारकों ने नीततर्ास्त्र की समस्याओं पर पयाप्शत धचन्तन ककया था। पवमभन्न पवचारकों के मतों का पवस्तार से वणनश न करके िम केवल कुछ ऐसी सामान्य स्थापनाओं का िी यिां वणनश करेंगे त्जन्िें उन सबनेसमानरूप से अंगीकार ककया िै।

नीततर्ास्त्र का आदर्श िै अपने-आपको पिचानना। नैततक आचार आममामभज्ञानपूवकश आचरण िै, यहद आममा से तामपय िमारा उस भौततक (आनुभपवक) अिं से न िो त्जसमें सब प्रकार की दुबुलशता एवं असंस्कृतत, स्वाथपशरायणता और लघुता सत्म्ममलत िै, बत्ल्क मनुष्य के उस गम्भीरतम स्वरूप से िो जो सब प्रकार के स्वाथमशय व्यत्ततमव के बन्धनों से स्वतन्त्र िै। पात्श्वक अिं की वासनाएं एवं राग, अिभाव की इच्छाएं एवं ं मित्त्वाकांक्षाएं जीवनधाररणी र्त्ततयों की आममा के तनम्न स्तर तक बद्ध रखती िैं और इसमलए उनको वर् में रखना आवश्यक िै। आममा की उन्नतत के मलए एवं उच्चतम सत्ता को ग्रिण करने ेके मलए जो बाधाएं अथवा पवरोधी प्रभाव िैं उन्िें दबाना िोगा। नैततक जीवन पवचारर्ील एवं तकशसंगत जीवन िै; वि केवल इत्न्द्रयभोग एवं सिज प्रवृपृत्त का जीवन निीं। "आममा को रथ में बैिनेवाला स्वामी करके जानो, र्रीर को रथ करके जानो, बुद्धध को रथ-संचालक सारथी करके जानो, तथा मन रास (लगाम) की जगि िै, इत्न्द्रयां घोड़ों की जगि िैं और सांसाररक पदाथ शमाग िैं। बुद्धधमान लोग इत्न्द्रयों एवं ंमन से संयुतत आममा को िी भोतता किकर पुकारते िैं। ककन्तु ुजो व्यत्तत दुबुलश िै और अज्ञानी िै उसकी इत्न्द्रयां वर् में न रिकर र्ैतान घोड़ों की तरि रथी के वर् से बािर िोकर इधर-उधर तनरुद्देश्य रूप से दौड़ती िैं। इसके पवपरीत त्जसे ज्ञान िै और जो मानमसक बल से युतत िै उसकी इत्न्द्रयां भली प्रकार वर् में रिती िैं जैसे कक अच्छे घोड़े ेएक रथी के वर् में रिते िैं। ऐसा व्यत्तत जो अज्ञानी िै और पववेकर्ून्य एवंअपपवत्र िै, अमरमव को कभी प्राप्त निीं ंकर सकता, न अभौततक अवस्था को िी पिुंच सकता िै, बत्ल्क बार-बार जन्म (आवागमन) के चक्र में फंसता िै। ककन्तु वि जो ज्ञानी िै और पववेक-र्त्तत रखता िै और पपवत्र िै, उस अवस्था तक पिुंच जाता िै जिांसे कफर उसे इस जन्म के चक्र में लौटने ेकी आवश्यकता निीं रिती।"[448] कामना की सिज प्रवृपृत्त को वर् में रखना िोगा। जब कामना जीवन के र्ासनसूत्र को िाथ में ले ले तो आममा के मलए ध्वंस अवश्यम्भावी िै, तयोंकक मनुष्य-जीवन का यि धम शनिीं ंिै। यहद िम बुद्धध द्वारा तनहदशष्ट आदर्शको ग्रिण निीं करते और एक उच्चतर नैततक धम शको भी स्वीकार निीं ंकरते तो िमारा जीवन पर्ु ुके समान िोगा त्जसका कोई लक्ष्य निीं,ं कोई उद्देश्य निीं;ं और ऐसे जीवन में िम बबना सोचे-समझे ेहदन-रात काम में रत रिते िैं, प्रेेम करते िैं, ककसी से घृणा करते िैं, ककसी को अमयन्त प्यार से गले लगाते िैं और बबना ककसी प्रयोजन व कारण के ककसी की जान तक ले लेते िैं। बुद्धध के द्वारा िमें स्मरण िोता िै कक भौततक प्रकृतत मात्र से भी ऊंची कोई सत्ता िै, और बुद्ुधध िी िमें प्रेेरणा करती िै कक िम अपनी भौततक सत्ता को मानुपषक सत्ता में पररणत करें, त्जस सत्ता का कुछ अथ शिै, कुछ प्रयोजन िै। इस प्रकार के संकेतों के रिते िुए भी यहद िम इसके पवरुद्ध सुखोपभोग को अपनेसब कायों को उद्देश्य बना लें तो िमारा यि जीवन नैततक

[447] तैपत्तरीयउपतनषद्,1/9 ।

[448] कि उपतनषद्

 बुराई का जीवन िोगा और मनुष्य-योतन के अनुकूल इसे िम न कि सकेंगे। "केवल बुद्धधसम्पन्न

तिनि ेसे िी

मनुष्य पर्ुतुा से ऊपर ततनक निीं ंउिता, यहद िम अपनी बुद्धध का प्रयोग उसी प्रकार करें त्जस प्रकार कक पर्ु अपनी सिज प्रवृपृत्तयों का करते िैं।"[449] केवल दुराचारी जन िी संसार के भौततक पदाथों को देवता करके मानतिैं व उन उनकी पूजा करते िैं। "अब पवरोचन अपनेपवचार से सन्तुष्ट असुरों के पास और उन्िेंइस मसद्धान्त का उपदेर् देने लगा कक केवल र्रीरधारी आममा की पूजा करनी चाहिए, और इसी की एकमात्र सेवा करनी चाहिए, और वि जो र्रीर की पूजा करता िै एवं ंइसकी सेवा में रत रिता िै, इिलोक एवं परलोक दोनों लोकों को प्राप्त करता िै। इसमलए वि ऐसे मनुष्य को जो अब िै तो मनुष्य ककन्तु जो इस लोक में दान निीं ंकरता, जो श्रद्धावान निीं ंिै और एकदम यज्ञ निीं ंकरता, असुर नाम से पुकारते िैं। तयोंकक इस प्रकार के मसद्धान्त असुरों के िी िोते िैं।"[450] िमारा जीवन जब उसे माग शमें प्ेररत िोगा तक तनष्फल आर्ाओं ंएवं भयों के िी अधीन

रिगा।

"पववेकी जीवन में एकता एवं ंसंगतत स्पष्ट लक्षक्षत िोगी। मानवीय (अथात्श ्आसुरी जीवन के पवपरीत) जीवन के पवमभन्न भाग क्रमबद्ध और एक िी सवोपरर आदर् शकी अमभव्यत्तत करेंगे। ककन्तु यहद बुद्धध के स्थान में िमारे प्ेरेरक िमारी इत्न्द्रयां ंिोंगी तो िमारा जीवन एक ऐसे दपणश के समान िोगा त्जसमें क्षणणक वासनाएं एवं अत्स्थर प्रवृपृत्तयां ंिी प्रततबबत्म्बत िो सकेंगी। उस व्यत्तत को जो इस प्रकार का जीवन व्यतीत करता िै, 'डॉगबरी' के समान केवल गधा िी कि जाएगा। उसके जीवन को, जो जीवन की केवल असम्बद्ध एवं बबखरी िुई घटनाओंकी श्रृंखलामात्र िोगा, कोई प्रयोजन निीं ंिोगा; वि ककसी काम का निीं ंिोगा और न िी उसका कोई उद्देश्य िोगा। एक पववेकी जीवन में कम शका प्रमयेक क्रम, इसके पूव शकक उसे अंगीकार ककया जाए, सबसे पिले बुद्धध के न्यायालय में उपत्स्थत ककया जाएगा और उच्चतम लक्ष्य की प्रात्प्त की उसकी क्षमता को परखा जाएगा और उसी अवस्था में उस पर आचरण ककया जाएगा जबकक वि जीवामम‍ा व्यत्ततमव के उपुयतत मसद्ध िोगा।"[451]

इस संसार में तन:स्वाथ शतनष्िा वाला जीवन िी पववेकपूण शजीवन िै। बुद्धध िमें यि बतलाती िै कक पवश्वाममा के अततररतत, त्जसका कक वि अंर्मात्र िै, जीवाममा के अपनेपृथक् स्वाथ शकुछ निीं। यहद मात्र वि इत्न्द्रयभोग-सम्बन्धी अपनी पृथक् सत्ता के पवचारों की मयाग दे तो वि भाग्य के बन्धन से मुत्तत पा जाएगी। वि मनुष्य जो अपनेजीवन में तनजी हितों को सामात्जक हितों के अधीन कर देता िै, सज्जजन या धमाममशा िै एवं जो इसके पवपरीत आचरण करता िै, दुजुनश या दुराममा िै। जीवाममा स्वाथपशरक कमों को करती िुई अपनेको बन्धन में बांध लेती िै जो केवल उसी अवस्था में कट सकतिैं जबकक वि पुन: अपनेव्यापक पवश्वाममा के जीवन में अधधकार का दावा करती िै। इस प्रकार के समधचन्तन का माग शसबके मलए खुला िै और आममा के पवस्तार की ओर िमें ले जाता िै। यहद िम पाप से दूरू रिना चािते िैं तो िमें स्वाथ शसे बचाना चाहिए, िमें अपने अनुरूप जीवाममा के सवोपररता-पवषयक ममथ्यामभमानों एवं मूखतशापूण शअसमयों को दूरू करना चाहिए। िममें से प्रमयेक अपने को एक अनन्य इकाई एवं ंअपनेभौततक र्रीर तथा मानमसक घटनाचतक की पररधध से बिार की

---

449 कांट:'कक्रटीक आफप्योररे़न। '

450 छान्दोग्य, 8: 8, 4-5।

451 'इण्टरनेर्नल जनलश आफ एधथतस ', (1914), पृष्ि 171-72।

ककसी सत्ता से सवथशा पृथक् अिम् ्मानता िै। वे सब भाव जो नैततक र्दत्ष्ट से र्दत्ष्टपूण शिैं इसी अिभाव से उमपन्न िोतेिैं। िमें अपनेजीवन एवं आचरण में इस बात को स्वीकार करना चाहिए कक सब वस्तुएं ईश्वर में िैं और ईश्वर के मलए िैं। एक ऐसा व्यत्तत त्जसनेइस तथ्य को समझ मलया िै, अपनेजीवन के पररमयाग की भी कामना करेगा, सब प्रकार के स्वाथपशरक पदाथों से घृणा करेगा और अपनी सब सम्पपत्त को भी बेच देगा और यहद संसार उससे घृणा करे तब भी उसे कुछ लगाव न िोगा, वि केवल इस प्रकार के आचरण से ईश्वर के पवश्वव्यापी जीवन के साथ तादामम्य प्राप्त कर सकता िै। एक प्रकार के उपतनषदों की नैततक मर्शा वैयत्ततक या जीवाममा-सम्बन्धी िै, तयोंकक इसका उद्देश्य आममा के स्वरूप को पिचानता िै। ककन्तु यिां ्वैयत्ततक ब्दं का अथ शपृथृतमव निीं ंिै। अपने-आपको पिचानना, अपनेको सवोत्तम के साथ तादामम्यरूप में या जाना िै और वि सबके मलए एक समान िै। नैततक जीवन ईश्वरोन्मुख या ईश्वरकेत्न्द्रत जीवन िोता िै। ऐसा जीवन मानवता के प्रतत उमकट पे्रेम और श्रद्धा से ओतप्रोत िोता िै, और सान्त को साधन बनाकर अनन्त की साधना करता िै। वि छोटे-छोटे उद्देश्यों के मलए स्वाथपशरक सिास का काय शमात्र निीं िोता ।"[452]

सान्त पदाथ शिमें वि सन्तोष प्राप्त निीं ंकरा सकतेत्जसकी िमारी आममा को भूख िै। त्जस प्रकार बुद्धध के क्षेत्र में िमें आनुभापवक जगत् ्के पदाथों में यथाथसशत्ता की उपलत्ब्ध निीं िोती, उसी प्रकार से िमें सान्त पररतोषों द्वारा नैततक क्षेत्र में परम साधुता की प्रात्प्त निीं िो सकती। "अनन्त आनन्दयमय िै जबकक सान्त पदाथों में आनंद उपलब्ध निीं ंिो सकता।"[453] वन के मलए प्रस्थान करते िुए याज्ञवल्तय ने अपनी सारी सम्पपत्त को अपनी दोनों पत्मनयों, मैत्रेयी और कामयायनी के बीच बांट देनेका प्रस्ताव उपत्स्थत ककया। मैत्रेयी निीं ंसमझ सकी कक वि तया करे; अपनी गृिस्थी के पदाथों के अन्दर दुखी िोकर बैठी िुई वि बािर की ओर केवल वन की हदर्ा में िी देखने लगी। उस हदन उसनेएक क्षुद्र व्यत्तत को जो बबना ककसी उद्देश्य के बबना पवश्राम ककए जल्दी-जल्दी काम कर रिा था, बिुत कुछ बुरा- भला किा। सान्त पदाथ शजो कुछ िम उनके द्वारा प्राप्त करना चािते िैं उससे ठीक पवपरीत पररणाम देते िैं। िमारी अन्तराममा सच्चा सन्तोष चािती िै और ककसी अवस्था में भी उससे न्यून निीं ंजोकक अनन्त त्तत िी िमें प्राप्त करा सकती िै। िम सान्त पदाथों की खोज करते िैं, वे िमें प्राप्त िो जाते िैं ककन्तु उनसे सन्तोष एवं तृत्प्त निीं ंिोती। िम समस्त संसार को भी तयों न पवजय कर लें तो भी िमें असन्तोष बना िी रिता िै–िम कफर भी आि भरते िैं कक पवजय करने ्के मलए और भी अधधक संसार तयों न िुए। "वि जिां ंतक पिुंचता िै, उससे भी आगे जाना चािता िै। यहद आकार् में भी पिुंच जाए तो भी उससे परे जानेकी कामना करता िै।"[454] िममें से अधधकतर व्यत्तत उस माग शपर िैं त्जससे धन-सम्पदा ममलती िै ककन्तु अनेक मनुष्य उसमें नष्ट िो जाते िैं।'[455] पदाथों के दास बनकर और बाह्य वस्तुओंमें अपनेको मलप्त करके िम यथाथ शआममा को भूल जाते िैं। "लक्ष्मी से कोई मनुष्य सुखी निीं ंिो सकता।" "अचेत युवक की र्दत्ष्ट में परलोक का पवचार कभी उदय निीं ंिोता, तयोंकक वि लक्ष्मी की माया से मूढ़ता में डूबा िुआ

---

452 ईर्उपतनषद् । , 1

453 छान्दोग्य , 7: 1, 24।

454 ऐतरेय आरण्यक ,2:3,3, 1।

455 कि उपतनषद् , 2:2-3।

 179 ि ै। वि सोचता ि ै कक 'यिी लोक ि ै। इससे अन्य और कोई लोक निीं।" इस प्रकार से बार-बार

वि मृमृयुके चंगुल

में फंसता ि ै।"[456] "बुद्धधमान मनुष्य अमर (ब्रह्म) के स्वरूप को पिचानकर इस लोक के अस्थायी पदाथों में कुछ त्स्थरता निीं ंपाते।"[457] "ईश्वर से पवयुतत िोकर मनुष्य दारूण व्यथा का अनुभव करता ि ै और ईश्वर के साथ योग िोनेके अततररतत अन्य कोई वस्तु उसके हृदय की भूख को निीं ंममटा सकती।'[458] जीवाममा की अपररममत मित्त्वाकांक्षाएं, आदर्रूशप से ऐसी सुन्दर (अमभराम) सत्ता के मलए जो तनष्कलंक रूप से पपवत्र और पवरुद्ुध ि ै, देर्, काल एवं ंइत्न्द्रयों की बेड़यों में जक़ िुए पररममत पदाथों द्वारा तृपूत निीं ंिो सकतीं। ऐसे भी अनेक मनुष्य िैं जो परम योग्य सत्ता के साथ प्रे्रेम सम्बन्ध स्थापपत करनेके आदर् शकी प्रात्प्त की इच्छा रखते िैं। ककन्तुजब तक वि सत्ता मात्र एक अन्य मानवीय सत्ता िी ि ै, त्जसके साथ देर् और काल का वन्धन लगा िुआ ि ै, उनका आदर् शपूण शनिीं िो सकता। ककसी अन्य मानुपषक सत्ता-स्त्री या पुरुष के अन्दर प्रे्रेम एवं सौन्दय श के पूणरूशप को खोजना केवल अपनेको धोखा देना ि ै। पूणतशा को ग्रिण करना तो केवल तनमय में िी संभव ि ै और इसके मलए संसार एवं ंसांसाररक सम्पपत्त सेअसंग िोना आवश्यक ि ै। प्रारम्भ से िी ऐसे व्यत्तत रिे िैं त्जन्िोंने संसार से पवरतत िोने ंमें िी दुुःख से त्राण पाने का प्रयमन ककया ि ै। बिुत-से व्यत्तत ऐसे भी िुए िैं जो स्त्री-पुत्र, सब पदाथों एवं अपनी चल सम्पपत्त का मयाग करके और मभक्षुक रूप धारण करके अककंचनता एवंजीवन की पपवत्रता द्वारा िी मोक्षप्रात्प्त की अमभलाषा में घर से तनकल प़।े तपत्स्वयों के इन समुदायों ने, त्जन्िोंने उन सब बन्धनों को तो़ हदया जो उन्िें गृिस्थ-जीवन में आबद्ध रखते थे,े बौद्धों के वैराग्य के माग शका आश्रय मलया। पपवत्र मयाग का जीवन िी मोक्ष का प्रधान माग शसमझा गया ि ै।

पररणाम यि तनकलता ि ै कक उपतनषदें नैततक जीवन के आन्तररक स्वरूप पर बल देती िैं और आचरण के प्रे्रेरक भाव को अधधक मित्त्व देती िैं। आभ्यन्तर पपवत्रता बाह्य कक्रयाकलापों एवं ंलक्षणों की अपेक्षा अधधक मित्त्व रखती ि ै। उपतनषदें केवल इतना िी आदेर् निीं ंकरतींकक 'चोरी मत करो', 'ककसी की िमया मत करो', बत्ल्क वे यि घोषणा भी करती िैं कक 'लोभ मत करो', अथवा 'ककसी से घृणा मत करो एवं क्रोध, दुभाुवशना तथा लालच के वर्ीभूत मत िोओ।' मन को पिले अवश्य रुद्ुध पपवत्र करना िोगा, तयोंकक यहद ज़ को वैसे िी बना रिने ेहदया जाए तो केवल वृकूष की पपत्तयों को काट देने मात्र से कोई लाभ निीं। आचरण का तनणयश उसके पवषयीगत मूल्य ककंवा मयाग की मात्रा के आंधार पर ककया जाता ि ै।

उपतनषदों के अनुसार, समस्त संसार मनुष्य की आममा के िी समान ब्रह्म से उमपन्न िुआ ि ै। यहद उतत मसद्धान्त पर बल देनेका तामपय शयि समझा जाए कक समस्त प्रे्रेम संकुधचत िोकर अन्त में अिंभाव में िी समा गया ि ै, तो उपतनषदें स्वीकार कर लेती िैं कक नैततक तत्त्व और प्रे्रेम उच्चतम सत्ता की प्रात्प्त के िी स्वरूप िैं ककंतु अिंभाव के अधीन िैं। याज्ञवल्तय का मत ि ै कक आममप्रे्रेम अन्य सब प्रकार के प्रे्रेम की नींव में तनहित ि ै। लक्ष्मी, सम्पपत्त, जातत एवं ंदेर् का प्रे्रेम आममप्रेम के पवमर्ष्ट रूप िैं। सान्त पदाथ शका प्रे्रेम केवल यांबत्रक मित्त्व

---

456 विी, 1: 2, 6।

457 विी, 2/4, 2।

458 "मुझे ेसांमवना देने वाले तुम सब अमयन्त दयनीय िो। िाँ, कार् म ैंजानता कक वि मुझेकिां ंममल सकता ि ै।" (जीव)

 रखता ि ै, जब कक तनमय का प्ेरेम आंतररक मूल्य रखता ि ै। "पुत्र इसमलए प्यारा ि ै, तयोंकक उसमें तनमयसत्ता का तनवास ि ै।" सान्त पदाथ शिमें आममा की पिचान करानेमें सियक िोतेिैं। तनमय के प्रतत जो प्ेरेम ि ै केवल विी सवोपरर प्ेरेम ि ै और यि स्वयंअपना पुरस्कार ि ै, तयोंकक परमेश्वर प्ेरेमस्वरूप ि ै।'[459] परमेश्वर का प्ेरेम आनन्द ि;ै उससे प्ेरेम न करना दु:ख का कारण ि ै। परमाममा के प्रतत प्ेरेम करना ज्ञान एवं ंअमरमव प्राप्त करना ि ै। उनके प्रतत प्ेरेम न रखनेके मनुष्य का जीवन संर्य और भ्रांतत, दु:ख एवं मृमयुका मर्कार िोता ि ै ।"[460] सब समय-धमों में िम इसी सवोपरर भाव को पातेिैं। "वि जो मेरे प्रतत पापकम शकरता ि ै, अपनी आममा का अतनष्ट कराता ि ै। वे े सब जो मुझसे दूरू रितेिैं, मृमयु से प्ेरेम करते िैं ।"[461] पापी मनुष्य आममघाती ि-ैउन्िेंउपतनषदों ने 'आममिनो जना:' किा ि ै।

उपतनषदें िमें तनदेर् करती िैं कक िम स्वाथमशय प्रयमनों को मयाग दें ककन्तु सब हितों को निीं। अिभाव से पृथक् रिकर ईश्वर को संयुतत िोना िी उपतनषदों की मांग ि ै। एक आदर् शमिाममा कामना तो रखता ि ै ककन्तु स्वाथपशरक कामनाएं निीं। "त्जस व्यत्तत की इच्छाएं निीं ंि ैं, जो इच्छाओं से पवमुतत ि ैं, त्जसकी इच्छाएं पूण शिो चुकी ि ैं, त्जसकी इच्छा का लक्ष्य केवल आममा ि ै, वे वि तो ब्रह्म को भी पा सकता ि ै।"[462] काम, त्जसका पररमयाग करनेको िमें किा जाता ि ै, वस्तुतः इच्छा ि ै निींवरन् ्केवल पार्पवक इच्छा ि ै। कामवासना पर्ुरूपी मनुष्य की प्रबल इत्न्द्रय-प्ेरेरणा का नाम ि ै। काम के पररमयाग का र्ास्त्रों में उपदेर् ि ै ककन्तुयि केवल तनत्ष्क्रयता निींि ै। िमें आदेर् हदया गया ि ै कक िम अपनेको कामवासना एवं लालसा से पवमुतत करें, बाह्य वस्तुओंकी चकाचौंध से अलग रिें, सिजप्रवृपृत्तजन्य उमकट अमभलाषाओं की पूतत शसे दूरू रिें।463 वास्तपवक इच्छा का तनषेध निीं ंककया गया ि ै। यि सब सदाथ शके ऊपर तनभरश करती ि ै। यहद मनुष्य की इच्छा पवषयासत्तत के प्रतत ि ै, तो वि व्यमभचारी िो जाता ि ै, यहद सुन्दर पदाथों की अमभलाषा ि ै तो कलाकार बन जाता ि ै; और यहद ईश्वर-प्रात्प्त की इच्छा ि ै तो वि सन्त बन जाता ि ै। मोक्ष एवं ंज्ञान की प्रात्प्त की इच्छाओं का अमयधधक मित्त्व ि ै। इच्छाओं में भी भेद ि ै अथातश ्समय एवं ंममथ्या इच्छाएं।464 िमें तनदेर् ककया गया ि ै कक केवल समय इच्छाओंमें िी भाग लें। नधचकेता जैसी धमतशनष्ठा एवंपपतृभृत्तत, सती सापवत्री-सा प्रगाढ़ प्ेरेम एवं ं पततभत्तत, यि दूषूण निीं ंि ै। सृतूष्ट के स्वामी का काम इच्छा के अथों में ि ै, "उसनेकामना की (स अकयामत), आओ, म ैंअनेक बन जाऊं।" यहद परम प्रभु भी इच्छा करता ि ै तो िम तयों न करें? उपतनषदों में िमें किीं ंभी अनुराग एवं प्ेरेम की तनतान्त तनन्दा निीं ममलती। िमें अमभमान, रोष, कामवासना आहद के तनमूलशन का तो आदेर् ककया गया ि ै, ककन्तु प्ेरेम के कोमल मनोभावों, करुण एवं ंसिानुभूतत इमयाहद को मयाग देने ेका आदेर् निीं ंि ै। यि ठीक ि ै कक जिां-तिांउपतनषदें तपस्या का धाममकश मसद्धध के रूप में प्रततपादन करती ि ैं, ककन्तु

459 कामायतन, बृिदारण्यक, 3/9, 11 |

460 बृिदारण्यक, 4/4, 5

461 प्रॉव०, 8: 36, देखें, ईर् उपतनषद्

462 बृिदारण्यक, 4 4,61

463 सच्चे मिाममा का वणनश ककया गया ि ै कक वि र्ांत, बश्रांत, दांतं, उपरत एवं समाहित िो। इस सबसे तामपय शिै वासना पर पवजय।

464 छान्दोग्य, 7/1.3।

तपस्या का केवल अथ शिै आममर्त्तत का पवकास, अथात्श ्आममा को दैहिक दासता से मुतत करना, गम्भीर धचंतंन अथवा मानस को सर्तत बनाना 'त्जसका तपस् ्पवचारस्वरूप िै ।"[465] जीवन एक प्रकार का मिान पव शिै, त्जसमें िमें तनमन्त्रत ककया गया िै, त्जसमें कक िम तपस्या का आमममयाग, दान या उदारता, आजवश या समय-व्यविार, अहिंसा या ककसी को कष्ट न पिुंचाना और समय-वचन का प्रदर्नश कर सकें।466 तपस्या अथवा मयाग द्वारा तनरपेक्षता का भाव द्योततत िोता िै। "अमरमव की प्राप्त्त न तो कम शसे, न संतान से, और न धन-सम्पदा से, वरन् ्मयाग द्वारा िी िोती।"[467] छान्दोग्य उपतनषद् (5 10) में किा िै, "श्रद्धा तपः" श्रद्धा िी तपस्या िै

श्रद्धा पर्दींथों के बन्धनों से मुतत िोने के मलए आवश्यक िै कक और एकान्त में जाएं कक त्जससे कक सांसाररक पदाथों का संबंध एकसाथ छूट जाए। "मयाग
भाव से तुम भोग करो", (तेन मयततेन भुञ्जीयाः) ईर् उपपतनषद् में किा िै : िम संसार का सुखानन्द तभी प्राप्त कर सकते िैं जबकक िम सांसाररक सम्पदा के पवनार्जनक दुखु के बोझ से दबे िुए न िों; िम संसार में राजाओं

के समान रि सकतिैं यहद िम लोलुपत्ता की भावना को बबलकुल िी आश्रय न दें। िमारा सांसाररक सुखानुभव मिारी तनधनशता के साथ सीधा सम्बन्ध रखता िै। मयाग की पुकार पृथृतमव के भावों को तवधशा ममटा देनेके अथ श में िै, और तनरक्षेप प्रेम सारे धम शका यथाथ शसार िै।"[468]
वैहदक काल के पश्चात् ्भारतीय पवचारधारा में एक पररवतनश िुआ।469 अथववेशद के वैराग्यवाद के कारण रिस्यवादी प्रवृपृत्त ने बल पकड़ा। ऋग्वेद की ऋचाओंके तनमाणश काल में एक प्रकार के स्वाथपशरक भोग के मलए स्वच्छन्ता थी। मानवीय आममा की सिज धाममकश भावना ने ोर मारा और उपतनषमकाल में इत्न्द्रयों के अमयाचार के पवरोध में प्रवल आवाज़ सुनाई दी। आममा को और अधधक तनःसिाय एवं ंदुखी िोकर उस पवषय-वासना का अनुसरण निीं ंकरना िोगा जो मसर उिाती िै एवं ंउपद्रव करती िै। ककन्तु इस मयाग के भाव की, उपतनषदों के काल में, परवती काल के मूखूतशापूण शवैराग्य के रूप में अवनतत निीं ंिुई, त्जसमें र्रीर को दागना आहद ऐसी िी अन्यान्य कक्रयाएं प्रचमलत िो गईं। बुद्ध की भांतत िी भारद्वाज भी सांसाररक जीवन एवं वैराग्य दोनों का पवरोध करता िै।470 िम यिां ंतक किेंगे कक यि अपरररममत और िििधममतशा की पराकाष्िा को पिुंचा िुआ वैराग्यवाद यथाथ शमयाग को लक्षक्षत निीं ंकरता, वरन् ्एक प्रकार से स्वाथपशरता का िी रूपान्तर िै। व्यत्ततगत और एकान्त मोक्ष की प्राप्त्त के मलए इस पवचार को लेकर ककए गए प्रयमन कक िमारी आममा अन्य सब एकबत्रत सांसाररक आममाओंसे अधधक मूल्यवान् ्िै ककसी यथाथ शएवंपवनम्र आममा का प्रकटीकरण निीं ंिै। उपतनषदों का तनदेर् िै कक िम कम शकरें ककंतु तनमलप्शत िोकर करें। धाममकश मनुष्य वि निीं ंिै जो संसार का

---

465 मुण्डक, 1/1, 9।

466 छान्दोग्य, 3/16 तैपत्तरीय, 19।

467 नारायणीय, 4 / 31 ।

468 . "रे मूख शत्जसेतू बोता िै उसके फलने में जल्दी निीं िो सकती, मसवा इसके कक यि नष्ट िोजाए। "- बाइपवल, कोररधथयंस, 15: 36)।

469 देखें, री़ डेपेवड्स : 'बुद्धधज्जम, हिब्बटश लेतचस'श, पृष्ि 21-22।

470 देखें, मुण्डक उपतनषद् ।

मयाग करता ि और एक तनजनश स्थान या मि में पवश्राम प्राप्त करता ि, बल्ल्क वि ि जो संसार में रितुिए सांसाररक पदाथों से प्रेम करता ि, केवल अपनिी मलए निीं ंवरन् ्उस अनन्त के मलए भी जो उनमें तनहित ि एवं उस व्यापक पवश्वाममा के मलए जो उनके अन्दर गुप्त ि। उसके मलए ईश्वर तनरुपाधधक मित्त्व रखता ि और सब पदाथ शसापेक्ष मित्त्व रखते िैं एवं वे सब ईश्वर अथवा पूणसशत्ता तक पिुंचने ेके मलए विानरूप िैं। प्रमयेक साधारण पालन ककया िुआ कतव्शय, प्रमयेक वैयत्ततक स्वाथ शमयाग आममा को ग्रिण करने ेमें सिायक िोता ि। िम पपता (बत्रदेव) बन सकतिैं, तयोंकक वि एक उपाय ि त्जससे िम अपने संकीण शव्यत्ततमव से ऊपर उिकर अपने-आपको अधधक पवस्तृत प्रयोजनों के उपयुतत बना सकतिैं। मानवीय प्रेम दैवीय प्रेम की केवल छायामात्र ि। मि अपनी पमनी से प्रेम कर सकतिैं उस आनन्द के मलए जो प्रमयेक पदाथ शके हृदय में वतमशान ि। "यथाथ शमें पतत पतत िोने ेमात्र से पप्रय निीं ंिोता ककंतु आममा के मलए पप्रय िोता ि," यि उपतनषद् का वचन ि। यिी कथन तनरन्तर पुनरुत्तत के साथ ककया जाता ि, स्त्री पुत्र, राज्जय, ब्राह्मण और क्षबत्रय जाततयों, सांसाररक धमों, देवताओं, जंगम जगत् ्एवं ंपवश्व आहद को पवषयरूप में आगे रखकर। वे सब इस संसार में अपनेमलए निीं ंवरन् ्उस तनमयसत्ता के मलए िैं।471 संसार के पदाथों को पाप के प्रतत लुभाने ेके मलए निीं ंअपपतु आनंद-प्राप्त के साधन रूप में मसरजा गया ि। जिांमिारा दृत्ष्टकोण एक बार यथाथ शिो गया, िमें धन सम्पपत्त आहद सब कुछ ममल सकता ि।"[472] "ततो में धश्रयम् ्आवि", उसके पश्चात् ्मुझे ेलक्ष्मी प्राप्त कराओ। रंकर तनदेर् करते िैं कक लक्ष्मी असंस्कृत व्यत्तत के मलए बुराई की ज़ ि, ककंतु बुद्धधमान के मलए निीं। संसार की वस्तुएं जो प्रकटरूप में अदैवीय या भौततक प्रतीत िोती िैं, धाममकश आममा की सतत प्रततद्वन्द्वी िैं। उसे उन वस्तुओंके पृथृतमव से संघष शकरना पग़ो और उन्िें दैवीय त्तत्तयों की अमभव्यत्तत का रूप देना िोगा। वि सब काय शइस तनमलप्शत भाव से करता - ि। "तनमलप्शत अथवा असंग िोने ेसे तामपय शि ऐसे प्रमयेक बंधन को मर्धथल करना, त्जससे यि आममा पृथ्वी के साथ बंधी िुई ि और ककसी भी भूमंडलीय पदाथ शके ऊपर तनभरश न करना एवं ंककसी भी भौततक इत्न्द्रयगम्य पदाथ शकी और झुका िुआ न िोगा। दूसरे लोग िमारे पवषय में तया किते ेया सोचते िैं या िमसे तया कराना चािते िैं, उसकी ततनक भी परवाि न करना। अपनेकाम में िम ऐसे जुट जाएं जैसे कक एक योद्धा तैयार िोकर युद्ध- भूमम में जाता ि पररणाम तया िोगा, इसकी ततनक भी धचंता न करना। श्रेय, सम्मान, प्रमसद्धध, अनुकूल पररत्स्थतत, सुख-सुपवधा, त्स्नेि-मिो आहद की उस समय ज़रा भी परवाि न करना जबकक ककसी धाममकश कतव्शय के मलए उनका बमलदान आवश्यक िो।"[473] उपतनषदें आध्यात्ममक संघष शके मलए र्ारीररक तैयारी की िमें प्रेरणा करती िैं। स्वच्छता, उपवास, इत्न्द्रय तनग्रि, एकांतवास इमयाहद का पवधान रीर-रुद्धध के मलए ककया गया ि। "मेरा रीर समथ िो, मेरी त्जह्वा अमयन्त मधुर िो, में कानों से अधधक सुन सकूं।474 तामपय शयि ि कक मि रीर को बाधक (अवष्टम्भ) एवं ंआममा के ऊपर भार मानकर तुच्छ न समझें; इसी प्रकार यि रीर का

---

471 वृिदारण्यक, 2:4,5।

472 तैपत्तरीय, 1: 4।

473 न्यूमैन: 'युतनवमसटशी स्केचे़,' पृष्ठ 127।

474 तैपत्तरीय, 1: 4।

पपवत्रीकरण, इत्न्द्रयों का स्वातन्त्र्य, मन का पवकास अपनेर्रीर को कष्ट देनेके समान भी निीं ंिै।475 आगे चलकर छान्दोग्य उपतनषद्476 में िमें यि भी तनदेर् ककया गया िै कक ब्रह्मलोक की प्रात्प्त उन्िीं िोती िै जो ब्रह्मचय शका पालन करते िैं। ब्रह्मचय शवि तनयन्त्रण िै त्जसमें प्रमयेक पवद्याथी को गुरु से पवद्याध्ययन करते समय गुज़रना पड़ता िै। यि संसार के मयाग के साथ तपस्या या वैराग्य निीं ंिै, तयोंकक उसी उपतनषद् ने 8:5 में ब्रह्मचय शको यज्ञों के अनुष्ठान के समान स्थान हदया िै। ऐसा प्रतीत िोता िै मानो यि एक प्रकार का संकेत था त्जससे ब्रह्मचय शकी ममथ्या व्याख्या, अथात्श ्संसार-तनवृपृत्त की, न की जा सके। र्रीर आममा का सेवक िै, कारागाररूप निीं। उपतनषदों में इस प्रकार का कोई संकेत किीं ंनिीं िै त्जसमें यि आदेर् िो कक िमें जीवन, मन, चेतना, बुद्धध आहद का मयाग कर देना चाहिए। दूसूरी ओर अन्तःस्थ दैवीय र्तत का मसद्धान्त िमें इससे ठीक पवपरीत हदर्ा में ले जाता िै।

गफ का किना िै कक "उपतनषदों की आख्या के अनुसार, भारतीय ऋपष-मुतन दैवीय जीवन में भाग लेने का प्रयमन केवल पपवत्र भावना, उच्च पवचार एवं कठोर पररश्रम द्वारा निीं,ं और न िी समय-ज्ञान की प्रात्प्त के मलए तथा समय-काय शद्वारा अपपतु एकांतवास, अनासत्तत तनत्ष्क्रयता एवं ंसमाधध द्वारा भी करते िैं।"[477] यूकन के अनुसार, उपतनषदों का लक्ष्य "अधधकतर संसार में घुसकर उस पर पवजय पाना इतना निीं ंिै, त्जतना कक उससे अनासत्तत एवं ंमुत्तत पाना िै; कठोर से कठोर बाधा के पवरुद्ध भी त्स्थर रखनेके मलए जीवन को दीघ शबनाना निीं, वरन् ्प्रमयेक प्रकार की कठोरता को कम करना एवं नरम करना िै तथा एक प्रकार की पवलीनता, धीरे-धीरे ततरोधान िो जाना एवं ंगम्भीर धचंतंन िै।"[478] यिां ंपर वणणतश यि मत कक उन अवस्थाओं से

तजनसे मनुष्य मुत्तत, जीवनयात्रा का तनिीम उपतनषदों का प्रततपाद्य पवषय िै, पूण शरूप से ममथ्या पवचार िै। उपतनषदें िमें जीवन को मयाग देनेका उपदेर् निीं ंदेतीं, न इच्छाओंको िी वत्जतश करने ेका तनदेर् करती िैं। नैततक जीवन का सार इच्छा का प्रमयाख्यान करना निीं ंिै। ममथ्या वैराग्य जो जीवन को एक स्वप्न व भ्रांतत-मात्र समझता िै और जो पवचार कुछ भारतीय पवचारकों एवंयूरोपीय पवचारकों के मन में भी बार-बार आता िै और उन्िें परेर्ान करता िै-उपतनषदों के व्यापक भाव के सवथशा पवपरीत िै। सांसाररक जीवन में एक स्वस्थ प्रसन्नता की लिर वातावरण में िमें उपलब्ध िोती िै। संसार से पवरतत िो जानेका तामपय शमनुष्य जातत के प्रतत तनरार्ा एवं ंईश्वर का पराभव िै। "केवल कम शकरते िुए िी एक सौ वष शकी आयुतक मनुष्य को जीपवत रिने ेकी इच्छा करनी चाहिए।"[479] संसार को मयाग देनेका आदेर् किींनिीं ंिै, ककन्तुउसकी पृथक् सत्ता मानने े के स्वप्न को मयाग देनेका आदेर् अवश्य िै। िमें उपतनषदों में परदे के पीछे झांककर प्राकृततक जगत् ्एवं मनुष्य-समुदाय के अन्दर त्स्थत ईश्वर को ग्रिण करने ेका आदेर् हदया गया िै। जो संसार के साथ तनकटतम

---

475 गफ ने तपस का आममपीड़न के अथ शमें अनुवाद करके गलती की िै। तैपत्तरीय उपतनषद् (1:4) में जो तनदेर् हदया गया िै, वि इस अथ शमें िै कक र्रीर को ब्रह्म-तनवास के योग्य बनाया जाए।

476 8:4,3।

477 'कफलासफी आफ व उपतनषद्', पृष्ठ 266-267।

478 'मेन करेंट्स', पृ० 13।

479 ईर् उपतनषद्, 2।

 लगाव िै उसे मयागना िै, उसके बाह्य स्वरूप से पृथक् िोकर ईश्वर की प्राप्त्त के मलए प्रवृत्त

िोिा िै त्जससे कक
यि संसार अपनेअंदर के व िमारे अंदर के दैवीय अंर् को अमभव्यतत िोने ेका अवसर दे सके। उपतनषदों की संसार के प्रतत धारणा यि िै कक यि मनुष्य की आध्यात्ममक कक्रयार्ीलता के माग शमें पवरोध उमपन्न करनेवाला ीं। मयाग की दार्तशनक मर्क्षा, जो वैराग्यपरक नीतत-र्ास्त्र का पवधान िै, और संसार से ऊबकर एक तलांत मन:त्स्थतत बना लेना पवश्व के स्रष्टा का अपमान िै, िमारी अपनी आममा के प्रतत भी अपराध िै एवं उस संसार के प्रतत भी दूषण िै त्जसका आधार िमारे ऊपर िै। उपतनषदें परमेश्वर में आस्था रखती िैं और इसीमलए संसार में भी आस्था रखती िैं।

उपतनषदें केवल समयधम शके भाव पर बल देकर िी निीं ंसंतुष्ट िो जातीं, वे िमें िमारे कतव्शयों का एक पवधान-पवर्ेष भी देती िैं त्जनके बबना नैततक आदर् शएक अतनत्श्चत माग शप्रदर्कश िी रि जाता िै। आचरण की वि प्रमयेक अवस्था धाममकश िै-त्जिां ंवासना पर तनयन्त्रण रखा जाता िै और बुद्धध िी सवोपरर र्ासन करती िै, त्जिां ंस्वाथमशय व्यत्ततमव की संकीणतशा से युत्तत प्राप्त करके आममोन्नतत की ओर अग्रसर िोना िोता िै, त्जिां मि तनरंतर अनयक रूप से कम शमें तमपर रिते िैं तयोंकक िम सब दैवीय योजना में परस्पर सियोगी िैं। और उससे पवपरीत कोई भी अवस्था अधाममकश िै। आममसंयम, उदारता और करुणा सद्गुण िैं।[480] इस मसद्धान्त का कक बायांिाथ न जानेकक दायां िाथ तया करता िै तनम्नमलणखत र्ब्दों में वणनश ककया गया िै: "श्रद्धा से दान दो न कक अश्रद्धा से, बुितायत से दो, लज्जजा से दो, भय से दो, सिानुभूतत के साथ दो।"[481] छान्दोग्य उपतनषद् (3:17) में ईश्वर का ध्यान, दानर्ीलता, समय-व्यविार, अहिंसा और समय-भाषण सदाचार के ये प्रकार वताए गए ीं।"[482] पर्ुजुगत को पीड़ा देनेमें संकोच करना, मर्कार िुए र्त्रु के मलए दु:ख प्रकट करना, िमारे आधुतनक भावों के अनुसार, मूखतशापूण शभावुकता िो सकती िै जो केवल तुनकममज़ाज स्त्री- जातत के िी योग्य िै। ककन्तु उपतनषदों में पर्ुसृत्ष्ट के प्रतत प्रेम को एक मिान धम शसमझा गया िै। इस भूमम पर उन सबके प्रतत त्जनमें जीवन िै, दयालुता एवं ंकरुणा रखना भारतीय नीततर्ास्त्र का एक सामान्य रूप िै। आखेट के मलए एक मृग को मारना एवं कौतूिल के मलए ककसी चिूे को सताना पाप धगना गया िै। वासनाओंपर पवजय पाने के मलए कभी-कभी पवर्ेष तनयन्त्रण का पवधान िै। भारतीय पवचारक मानते िैं कक मन र्रीर के ऊपर तनभरश करता िै, और इसमलए मन की पपवत्रता के मलए वे भोजन की र्ुद्धध का िोना आवश्यक बतातेिैं।[483] वासनाओंको तनयंत्रण स्वेच्छा से ककया जाना चाहिए ककन्तु ुजिां ंवि संभव न िो विांबलपूवकश तनयंत्रण के साधनों का प्रयोग ककया जाता िै। तपस्या अथवा वासनाओंका वर्ीकरण बलपूवकश बाह्य साधनों द्वारा ककए जानेएवं 'न्यास' अथवा धाममकश भावनाओं के द्वारा वासनाओंके मयाग में भेद ककया जाता िै। तपस्या का पवधान वानप्रस्थ के मलए िै जो तनरन्तर श्रेणी में िै और न्यास संन्यासी के मलए िै। मन को एकाग्र करने ेकी एवं धचन्तन की यौधगक प्रकक्रयाओं की भी साधना करनी चाहिए। "बुद्धधमान मनुष्य को अपनी वाणी का पवलोप मन के अन्दर और मन

480 वृिदारण्यकउपतनषद् 5,2।

481 तैपत्तरीय उपतनषद् 1 : 11।

482 और भी देखें, 1:9, 12

483 "आिारर्ुद्धौ सत्त्वर्ुद्धध:"

 का पवलोप बुद्धध के अन्दर करना चाहिए।"[484] समाधध एवं ध्यान-त्स्थतत का पवधान मन की रुदुधध के मलए

ककया गया िै। जीवाममा को आदेर् हदया गया िै कक वि अपनेसब पवचारों को अन्दर की ओर प्रवृतृत करके केवल ईश्वर का िी ध्यान करे, उसकी कृपा की मभक्षा के मलए निीं,ं वरन् ् उसके साथ तादाम्य प्राप्त के मलए। ककन्तु धचंतंनाममक जीवन का यि उन्नत स्वरूप यथाथ शसत्ता से बिार निीिं। यि केवल साधनमात्र िै, त्जसके द्वारा मि वस्तुओं की यथाथतशा को देख सकतेिैं। सतकश एवं सूक्ष्म मन के द्वारा िी वि देखा जा सकता िै।'[485] ब्रह्मचय,श गृिस्थ, वानप्रस्थ एवं ंसन्यास ये चारों आश्रम बनाए गए िैं, त्जनमें से गुज़रकर मनुष्य धीरे-धीरे अपनेको सांसाररक मल से रुदुध करता िै और तब अपनेआध्यात्ममक तनवासस्थान में प्रवेर् पाने का अधधकारी िो जाता िै।

प्रमयेक आय के मलए जब समाज के प्रतत उसके समस्त कतव्शय पूरे िो जाएं तो संसार से पवरतत िोकर पवश्राम करनेका पवधान िै और यि मनुष्य-जीवन के अन्त भाग में िोता िै। तपस्वी पररव्राजक, त्जसका जीवन पे्रेमस्वरूप िै और आचरण धाममकश िै, अपनी दृत्ष्ट स्वग शकी ओर मोड़ता िै और संसार के प्रलोभनों से अपनेको स्वतन्त्र रखता िै। भारत के तनश्छल ककन्तु भत्ततभावपूणू शमुतनयों को अपवनार्ी सौंदुयु शऔर अनिद नाद का साक्षामकार स्वप्नरूप में िो जाता था। वे ेउस परम आदर् शके इतनेसात्न्नध्य में रितेथे ेकक उसके अत्स्तमव से आकृष्ट िो सकतेथे। िमारे मलए यि केवल स्वप्नमात्र िो सकता िै ककंतु वे इसी स्वप्न में जीवन व्यतीत करते े थे,े और यि इसमलए उस सत्ता से अधधक यथाथ शिै, अथाशत् ्भौततक सत्ता से अधधक यथाथ शिै, त्जसकी वे उपेक्षा ककया करते थे। तपत्स्वयों के मलए र्रीर एवंआममा को साधनेके वास्तेएक कठोर व्रत का पवधान िै तयोंकक केवल तपस्वी िी इस प्रकार का आदर् शजीवन व्यतीत कर सकतेिैं। तपस्वी का जीवन कठोरतम पपवत्रता एवं तनधनशता द्वारा र्ामसत िोना चाहिए। उसे पीत वस्त्र धारण करने ेचाहिए, अपनेमसर को मुंडाकर भोजन के मलए नगर के अन्दर मभक्षावृपृत्त करनी चाहिए। ये साधन िैं त्जनसे आममा के अन्दर नम्रता आती िै। आममा सावधानी के साथ तनयममत प्राथनशाओंएवं उपवासों के द्वारा धचरस्थायी आनन्द को प्राप्त कर सकती िै। एक तपस्वी को मिान् ्बनानेवाली वस्तुएं उसकी पपवत्रता एवं नम्रता िैं। चतुर जादूगर के से िस्तकौर्ल या वातोन्मत्त स्वप्न देखने की सामथ्य शसे तपस्वी मिान निीं ंिोता, वरन् ्पवषयभोग, क्रोध, वासना और इच्छा से रहित एवं पपवत्र रिने ेसे वि मिान् ्पदवी को प्राप्त करता िै। यि जीवत िुताममापन आममिमया से भी किीं ंअधधक कहिन िै। मृमयु आसान िै। जीवन िै जो भाररूप एवंकष्टप्रद िै। वि व्यत्तत सच्चा तपस्वी निीं ंिै जो अपनेसामात्जक बंधनों से बचनेके मलए गृि एवंमनुष्य समाज का मयाग करता िै। न विी सच्चा तपस्वी िै जो इसमलए संन्यासी बन जाता िै चूंकक उसे जीवन में असफलता ममली। इसी अत्न्तम प्रकार के संन्यासी समस्त संन्यासी-संस्था के अपमान का कारण बनते िैं। सच्चा सन्यासी वि िै जो आममसंयभ एवं धाममकश भावना के द्वारा मनुष्य-जातत के मलए कष्ट सिन करता िै। जीवन का श्रम िमारे ऊपर डाला गया िै कक िम अिंभाव से रहित िोकर पपवत्र बनें। और सामात्जक संस्थाएं आममोन्नतत में सियक बनने के मलए तनमाणश की गई योजनाएं िैं। इस प्रकार से गृिस्थाश्रम के पश्चात् ्पररव्राजक साधु की अवस्था का पवधान िै। उपतनषदें घोषणा करती िैं कक आममज्ञानी

---

484 कि उपतनषद् 1:3,10।

485 कि उपतनषद्, 3:12।

व्यत्तत अपने सब प्रकार के स्वाथमशय हितों को छोक़र पररव्राजक सन्यासी बनते िैं। "उसको, अथात्श ्आममा को, जानकर ब्राह्मण लोग भावी संततत की कामना मयाग देते िैं वैयत्ततक सम्पपत्त की इच्छा का भी मयाग कर

देते रिैं और सांसाररक पेश्वयश की इच्छा भी।[486] प्राचीन भारत में यद्यपप सन्यासी तनधनश और अककंचन था, दैतनक दान के ऊपर जीवन का तनविाश करता था, ककसी प्रकार की र्त्त अथवा अधधकार भी निीं ंरखता था, तो भी उसे इतने ेसम्मान की र्दत्ष्ट से देखा जाता था कक संसार के चक्रवती राजा भी उसके आगे झुकतेथे। पपवत्र जीवन का इतना आदर-सम्मान था !

आश्रमधम,श जो हिंदूंधूम शका प्रधान लक्षण था, समस्त जीवन में आममा की र्त्त भर देनेका प्रयमन करता िै। उसका बल इस पवषय पर था कक पववाहित जीवन के मलए भी पिले से किोर पपवत्रता या ब्रह्मचय श द्वारा पूरी तैयारी की आवश्यकता िोती िै। उपतनषद् के पवचारकों के मत में पववाि एक धाममकश संस्कार िै एवं दैवीय सेवा की एक पद्धतत िै।487 गृिस्थी का तनवासस्थानगृि एक पपवत्र वेदी िै और कोई भी धाममकश अनुष्िान पूण शनिीं ंिोता, त्जसमें धमपशमनी भाग न ले। जब एक व्यत्तत पूरी तरि से मानवीय पे्रम की उष्णता, दीत्प्त एवं ं पाररवाररक पे्रम को पववाि के द्वारा अनुभव कर लेता िै तब उसके पश्चात् ्उसे नैःनैः गृि एवं ंपररवार के प्रतत मोि से पवमुतत िो जाना चाहिए त्जससे कक वि पवश्व-मात्र का तनवासी िोने ेकी मित्त्वपूण शभावना को अनुभव कर सके। यहद बौद्धधम शधचरकाल तक एवं ंस्थायी रूप से भारतीयों के हृदयों पर अधधकार बनाए रखनेमें असमथ शमसद्ध िुआ तो उसका कारण यि था कक उसने पववाहित जीवन के पवपरीत अपववाहित (अपररग्रि अथवा ब्रह्मचय)श जीवन को इतना अधधक प्रकृष्ट बना हदया और बबना ककसी पूव शतैयारी के िर ककसी को संन्यास के उच्चतम आश्रम में प्रपवष्ट िोने का अधधकार दे हदया। संन्यासी वग शएक ऐसे धाममकश बन्धुओंकी संस्था िै त्जनके पास तनजी सम्पपत्त कुछ निीं;ं जो जन्म, जातत एवंराष्रीयता के भेद से परे िैं और त्जनका धम श प्रसन्नता की भावना से पे्रम व सेवा के भाव का सवत्रश प्रचार करना िै। वे ेइस ममयलशोक में ईश्वर के प्रततततनधध अथवा राजदूत िैं जो पपवत्रता के सौंदय,श नम्रता के सामथ्य,श तनधनशता के आनन्द एवं सेवा स्वातन्त्र्य के साक्षी िैं।

जाततपरक तनयम समाज के प्रतत कतव्शयों का पवधान करते िैं। मनुष्य को अपनेकतव्शय-कम शका पालन करना चाहिए, भले िी उसका पररणाम कुछ भी िो। योग्यताओं के अनुसार कतव्शय-कमों का पवधान ककया गया िै। ब्राह्मणमव जन्म से निींअपपतु आचरण से माना गया िै, तनम्नमलणखत आख्यान इसकी यथाथतशा को स्पष्ट करता िै:

486 ओल्डनवग शके अनुसार यिं भारतीय वैराग्यवाद का प्राचीनतम प्रमाण िै: "आममा का ज्ञान प्राप्त कर लेने पर समस्त सांसाररक वस्तुओंका मयाग करके सन्यासी बन जाने वाले इन ब्राह्मणों से िी ऐततिामसक पवकास एक सीधी रेखा में आगे बढ़ते िुए पिुंचता िै, त्जन्िोंने तनवाणश की िुए बुद्ध तक प्राप्त्त के मलए अपने बंधु-बांधवों का, सुखु-ऐश्वय शऔर धन-सम्पदा का मयाग ककया तथा पीत वस्त्र धारण कर सन्यास ग्रिण ककया। भारत में तनमय परब्रह्म के मसद्धान्त का प्रादुभावश और वैराग्यपूण शजीवन की उमपपत्त साथ-साथ िुई, ये एक िी मित्त्वपूण शघटना की दो उमपपत्तयाँ िैं।" (ओल्डनबग श'बुद्ध', 32)।

487 देखें, तैपत्तरीय उपतनषद्, 1।

"जाबाला का पुत्र समयकाम अपनी माता के पास जाकर बोला, 'ि माता, म ैंब्रह्मचारी बनना चािता िं ू। म ैंककस वंर् का िं ू ?'

माता ने उसे उत्तर हदया, 'ि मेरे पुत्र! म ैंनिींजानती कक तू ककस वंर् का िै। अपनी युवावस्था में जब मुझे ेदासी के रूप में बिुत अधधक विार जाना-आना िोता था तो तू मेरे गभ शमें आया था। इसमलए में निींजानती कक तू ककस वंर् का िै। मेरा नाम जाबाला िै। तू समयकाम िै। तू कि सकता िै कक म ैंसमयकाम जावाला िं ू।'

रिरद्रुमुत् ्के पुत्र गौतम के पास जाकर उसनेकिा, 'भगवान् ्म ैंआपका ब्रह्मचारी बनना चािता िं ू। तया म ैंआपके यिां, ं आ सकता िं ू ?'

उसनेसमयकाम से किा, 'ि मेरे बन्धु, तू ूककस वंर् का िै ?'

उसनेकिा, 'भगवन्' ् म ैंनिीं ंजानता कक म ैंककस वंर् का िं ू। मनैं ेअपनी माता से पूछा था और उसनेयि उत्तर हदया अपनी युवावस्था में जब दासी का काम करते समय मुझे ेबिुत बािर जाना-आना िोता था तब तू मेरे गभ शमें आया। म ैंनिीं ंजानती कक तू ककस वंर् का िै। मेरा नाम जाबाला िै और तू ूसमयकाम िै। इसमलए ि भगवान् ्म ैंसमयकाम जाबाला िं ू।'

गौतम ने समयकाम से किा कक, 'एक सच्चेब्राह्मण के अततररतत अन्य कोई इतना स्पष्टवादी निीं ंिो सकता। जा और सममधा ले आ। म ैंतुझे ेदीक्षा दूंगा। तू समय के माग शसे च्युत निीं ंिुआ िै।'[488]

उपतनषदों के समस्त दार्तशनक ज्ञान का झुकाव पवभागों के संघष शको नरम करने ेएवंजाततगत द्वेष और पवरोधों के उन्मूलन की ओर िै। परमेश्वर सब जाततयों में एक समान अन्तयामशीरूप आममा िै। इस प्रकार सब एक समान िी समय को ग्रिण कर सकतिैं और इसीमलए सबको समय की मर्क्षा ग्रिण करने ेका अधधकार सामानरूप से िै। क्षबत्रयों का प्रतततनधध सनमकुमार नारद को, जो ब्राह्मण था, वस्तुओंके परम रिस्य के बारे में मर्क्षा देता िै। उच्च श्रेणी के दर्नश-ज्ञान एवं ंधम शककसी प्रकार से भी केवल ब्राह्मणवग शतक िी सीममत निीं ंथा। मि ऐसे राजाओं ंके पवषय में पढ़ते िैं जो अपनेसमय के प्रमसद्ध मर्क्षकों को आममा-सम्बन्धी गम्भीर समस्याओं का उपदेर् देते थे। जनक और अजातर्त्रु ुक्षबत्रय राजा थे, े त्जन्िोंने ेधाममकश सभाओं का आयोजन ककया, त्जनमें दार्तशनक प्रश्नों पर वाद-पववाद िुए। यि युग तीक्ष्ण बौद्धधक जीवन का था। साधारण जन भी दार्तशनक समस्याओं में रुधच प्रदमर्तश करते थे। ज्ञानी पुरुष र्ास्त्राथ शके मलए उमसुक िोकर देर् के एक कोनेसे दूसूरे कोने तक चतकर लगाते पाए जाते िैं। उपतनषदों के ब्राह्मण ग्रन्थकारों की समय के प्रतत इतनी यथाथ श तनष्ठा थी कक वे इस पवषय को सिष शस्वीकार करते िैं कक इन अनुसंधानों में क्षबत्रयों ने एक मित्त्वपूण शभाग मलया

488 छान्डदोग्यब्/4, 1, 4।

 ि।'[489] त्स्त्रयों को यद्यपप उर्न्ें पियाप्शत आश्रय प्राप्त था जिां ंतक कक जीवन के संघष शका सम्बन्ध ि, पुरुषों के
समान िी मोक्ष प्राप्त के मलए धाममकश चेष्टा करने ेका अधधकार प्राप्त था। मैत्रीय और गागी आममा-सम्बन्धी गम्भीर प्रश्नों पर र्ास्त्राथ शकरती िैं और दार्तशनक पववाद-सभाओं में भी भाग लेती िैं।490

यि समय ि कक उपतनषदें ज्ञान को मोक्ष का साधन माननेपर बल देती ि। "तरतत र्ोकम् ्आममपवत् ्" आममा को जाननेवाला सब दुःखों से पार उतर जाता ि। "ब्रह्मपवद् ब्रह्मवै भवतत", ब्रह्म का जाननेवाला तनत्श्चत िी ब्रह्ममव को प्राप्त कर लेता ि। चूंकक उपतनषदें ज्ञान पर बल देती िैं और समस्त सदाचार को उसका पूववशती स्वीकार करती िैं, ऐसे भी समालोचक िैं त्जनका किना ि कक उपतनषदें ज्ञान के प्रतत अपने उमसाि में इच्छा को अपनेस्थान से धगराकर गौण स्थान देती िैं। ड्यूसन यि किनेके बाद कक ज्ञातनयों के मलए सदाचार का कोई अथ शनिीं ंि, किता ि कक अज्ञातनयों के मलए भी इसकी आवश्यकता निीं। "नैततक आचरण प्रमयक्षरूप में तो निीं, पर अप्रमयक्षरूप में भले िी ऐसे ज्ञान की प्रात्प्त में सिायक िो जो मोक्ष को प्राप्त कराता ि। तयोंकक यि ज्ञान ऐसा कुछ वन जाना निीं ंि, त्जसकी सत्ता पिले न रिी िो और जो उधचत साधनों से उमपन्न ककया गया िो, ककन्तु उसका अनुभवमात्र ि जो अनन्तकाल से पवद्यमान था।"[491] ककन्तुउपतनषदें ज्ञान को र्ब्द के संकीण श अथ शमें मोक्ष प्रात्प्त के एकमात्र साधन के रूप में स्वीकार निीं ंकरतीं। "वि आममा केवल वेद के ज्ञानमात्र से प्राप्त निींिो सकती, न बिुत पढ़नेसे िी प्राप्त िोती ि।"[492] समय-जीवन पर बल हदया गया ि। ज्ञान के साथ धम शका रिना आवश्यक ि। यहद ब्रह्मज्ञान के त्जज्ञासु में नैततक एवंधाममकश योग्यता निीं ंि तो उसे प्रवेर् निीं ममल सकता, चािे उसके अन्दर ककतना िी उमसाि एवं ंप्रबल त्जज्ञासा का भाव तयों न िो।493 िमें यि अच्छी तरि समझ लेना चाहिए कक ज्ञान केवल वौद्धधक योग्यता का िी नांम निीं ंि। यि आममा से सम्बन्ध रखता ि। ब्रह्मज्ञान के पवद्याथी का मन अमयधधक चंचल निीं ंिोना चाहिए, न िी वि संसार में इतना मलप्त िो कक सवोच्च सत्ता में ध्यान िी न लगा सके। उसका हृदय ईश्वर-भत्तत द्वारा पपवत्र एवं उमसािपूण शिोना चाहिए। उपतनषदों में िम ऐसे कततपय व्यत्ततयों के पवषय में सुनते िैं त्जन्िें पिले एक दीघ शनैततक एवंधाममकश तनयन्त्रण में गुज़रना पड़ा, इससे पूव शकक ब्रह्मज्ञान के पवर्ेषज्ञ ऋपषयों ने उन्िें अपना मर्ष्य बनाना स्वीकार ककया। प्रश्न उपतनषद् में पपप्पलाद ऋपष ने छि त्जज्ञासुओंको एक वष शतक और तनयन्त्रण में रिने ेके मलए वापस कर हदया था। छान्दोग्य उपतनषद् में समयकाम जाबाल को जंगल में गुरु के पर्ुओंको चरानेके वास्ते भेज हदया जाता ि त्जससे कक वि एकान्त-धचन्तन की प्रवृपृत्त को बढ़ाए और प्रकृतत के सम्पकश में आए। उपतनषदें त्जस ज्ञान के ऊपर बल देती िैं वि श्रद्धा अथवा पवश्वास ि जो आममा की र्त्तत का जीपवत तनयम ि। जैसे वृक्ष के ऊपर फल आता ि, ज्ञान को भी काय शमें अमभव्यतत िोना चाहिए। जब िमारे पास ज्ञान ि तो समझना चाहिए

---

489 देखेंकौषीतककउपतनषद्,1:4, बृिदारण्यक ,3: 7; देखें, कौषीतकक उपतनषद्, 4, 2; बृिदारण्यक ,3: 7; छान्दोग्य ,5: 3,7 ।

490बृिदारण्यक, 2:4

491 'कफलासफी आफ द उपतनषद्स', पृ० 362।

492 मुण्डक, 3: 2, 3, और भी देणखए, 3: 1, 8।

493 देखें, कि उपतनषद्, 1: 2, 24-25।

कक िमारे अन्दर सचाई िै। उसे िम अपनाएं और उसके द्वारा अपने अन्दर उधचत पररवतनश करें। 'एक ऐसे व्यत्तत के मलए जो दुराचरण से पवरत निीं ंिुआ, जो र्ान्त निीं ंिै, जो समाहित निीं ंिै और त्जसके हृदय में

र्ात्न्त नमिीं िैं, 'सी सिम्भ्रह्मनिीकी प्रात्प्तअथीात् ंिो सकती। इसमलए रामानुज ने ज्ञान की व्याख्या में ध्यान, समाधध, अथवा उपासना एवं पूजा को स्थान हदया िै। ज्ञान की इस प्रकार की

पररभाषा, त्जसमें नैततक जीवन को स्थान न हदया गया िो, ककसी प्रकार भी उधचत निींमानी जा सकती। यि समय िै कक उपतनषदों का किना िै कक मात्र कमों से काम निीं ंचलेगा जब तक कक उनमें आममा के साथ एकमव की अमभव्यत्तत न िो। "निीं, ं वि व्यत्तत जो यि निीं ंजानता कक आममा को यिां ंकुछ मिान पपवत्र काय शकरना िैं, अन्त में उसका कम शउसके मलए नष्ट िो जाएगा; और यहद मनुष्य अपनी आममा को िी समय समझकर पूजा करता िै तो उसका कम शनष्ट निीं ंिोगा। तयोंकक जो कुछ भी वि इच्छा करता िै उसकी प्रात्प्त उसे इसी आममा से िोती िै।"[494] इस वातय का यिी आर्य िै कक ज्ञानपूवकश कम शकरनेचाहिए। सवोपरर सत्ता के प्रतत श्रद्धा से पविीन कम शस्फूततरशहित एवं तनस्तेज रिते िैं।495 मनुष्य का वास्तपवक लक्ष्य केवल मात्न्त्रक सदाचरण से िी प्राप्त निींककया जा सकता। यज्ञों के अनुष्ठान करते िुए सब कामों में, सब कमकशाण्डों में आममा ऊंची उिती िै ककन्तु ंिुयि आवश्यक निीं ंकक अनन्त के साथ उसका तादामम्य िी िो जाए। सब कम शयथाथ शआममा के हित की

उन्नतत के पवचार को रखते िुए करने ंचाहिए। बबना ईश्वर के िमारे जीवन का न कोई लक्ष्य िै, न सत्ता िै और न कोई सिारा िै। इस प्रकार के अनुष्ठानों एवं ंयज्ञों को उपतनषदों ने दूपूषत ििराया िै जो केवल इसी पवचार से ककए

जाते िैं कक उनसे अधधकाधधक मात्रा में इिलोक अथवा परलोक में िमें भलाई ममले। िमें अपनेकतव्शय का पालन केवल इस प्रकार की प्रेरणा को लेकर कक परलोक में िमें लाभ िोगा अथवा ईश्वर के पास िमारी जमा-पूंजी रिेगी, न करना चाहिए। उपतनषदें एक आवश्यक समय पर पवर्ेष बल देती िै। ककन्तु वे इस मत का कक कम शऔर ज्ञान दोनों एक-दूसरे से पृथक् िैं एवं ंकेवल ज्ञान िी मोक्षदायक िै, एकदम समथनश निीं ंकरती िैं। उपतनषदें ऐसे आध्यात्ममक जीवन पर बल देती िैं त्जसमें ज्ञान एवं कम शदोनों का यथोधचत समन्वय िो।

जिस त्जस प्रकार बुद्धध के आदर् शकी प्रात्प्त तब तक निींिो सकती जब तक िम केवल बुद्धध के िी स्तर तक रितेिैं- ककन्तु ंिुउस स्तर सेऊंचा उिनेपर िी अथात् श ंअन्तर्दशत्ष्ट द्वारा उसकी प्रात्प्त िोती िै-इसी प्रकार नैततकता के आदर् शतक भी तब तक निीं ंपिुंच सकतेजब तक िम केवल नैततक स्तर तक िी रि जाएं-विांतभी पिुंचा जा सकता िै जब िम धम शका आश्रय लें। नैततक स्तर के ऊपर िमारे स्वरूप के दोनों पक्ष सान्त एवं अनन्त परस्पर प्रततद्वन्द्वी रिते िैं। सान्त में अिभाव अथवा अिंकार की गन्ध आती िै, और यि

व्यत्ततपरक आममा की व्यापक परब्रह्म से पृथृतमव का भाव उमपन्न करता िै। उसके अन्ततनहशित अनन्त पवश्व में त्स्थत अपनी सत्ता को ग्रिण करने ंके मलए बलपूवकश प्रेरणा करता िै। आममा के पवश्लेषण या पवयोजन की प्रवृपृत्त के कारण आममपूणतशा का पवरोध िोता िै। िम नैततक जीवन व्यतीत करके, तनम्नतर प्रकृतत को वर् में रखनेका प्रयमन करते िैं ककन्तु जब तक तनम्नतर सवागां में धाममकश न िो जाए, आदर् शकी प्रात्प्त निीं ंिो सकती। तभी और केवल उसी अवस्था में जबकक िम अपनेव्यत्ततमव की बाह्यता को नष्ट कर देते िैं, और

494 बृिदारण्यक , 14, 15।

495 देखें, बृिदारण्यक , 3:8,10।

उसके साथ ि◌ी पृथृतमव के भाव को भी नष्ट कर देते ि◌ैं, ि◌म धम शके आनन्द को प्राप्त करते ि◌ैं और आममा की पूण श स्वतन्त्रता को ग्रिण करते ि◌ैं।

इस धाममकश मसद्धध की सम्भाव्यता ि◌ी सदाचार की पूवकशल्पना ि◌ै। बबना इसके ि◌में अभी तनश्चय निीं िो सकता कक ि◌मारी नैततक मित्त्वाकांक्षाएं पूण शिो सकेंगी या निीं। सामने पवपपत्तयों, भयों, मृमृयुएवं रोगों के रिते◌ुए भी यि र्दढ़ पवश्वास कक प्रतीयमान असंगतत और पवरोधों के रिते◌ुए भी सब वस्तुएं अल्न्तम भलाई के मलए ि◌ी कम शकरती ि◌ैं, ि◌में प्रोमसािन दता रिता ि◌ै। नैततकता का आधारतत्त्व धम शिै। ईश्वर ि◌में यि सुरक्षा का भाव प्रदान करता ि◌ै कक संसार बबलकुल ि◌ीक ि◌ै और मनुष्य की पवजय अवश्यम्भावी ि◌ै। "जब एक मनुष्य उस अगोचर, अमूत,श अतनवचशनीय, अगाध के अन्दर अपना पवश्रामस्थान खोजता ि◌ै तो उसे र्ाल्न्त प्राप्त ि◌ोती ि◌ै। इसके पवपरीत यहद मनुष्य उसके अन्दर एक व्यवधान एवंपृथृतव मानता ि◌ै तब उसकी बेचैनी बनी रिती ि◌ै और यि बेचैनी ऐसे मनुष्य की ि◌ै जो अपनेको पववेकी समझता ि◌ै।"[496] इस प्रकार का धाममकश आश्वासन रिनेपैर पररल्स्थततयों का दवाव अथवा मनुष्य का अमयाचार ि◌में अर्ान्त निीं ◌ंकर सकता। ि◌मारा कोई भी प्रततद्वन्द्वी ि◌मारे अन्दर क्रोध या कटुता पैदा निीं ◌ंकर सकता। नैततकता को धम शसे अन्त:प्ेरेरणा प्राप्त ि◌ोती ि◌ै। धम शके प्रभाव में नैततकता का तामपय शिै अनन्त समय तक प्रयमन करते रिना, एक सतत पवकास, ककसी पदाथ शके प्रतत एक अन्त-रहित मित्त्वाकांक्षा, ल्जसे ि◌म कभी प्राप्त निीं ◌ंकर सकते । धम शके अन्दर ये सब मसद्धध, सुख एवं ◌ं फल की प्राल्प्त के रूप में पररणत ि◌ो जाते ि◌ैं। तब सान्त के सामथ्य शकी तनबलशता दूरू ि◌ो जाती ि◌ै और सान्त को एक पवर्ेषे मित्त्व एवं ◌ंजीवनोद्देश्य का अधधकार प्राप्त ि◌ो जाता ि◌ै। जब एक बार यि चेतना प्राप्त ि◌ो जाती ि◌ै, दैहिक सत्ता रि◌े या समाप्त ि◌ो जाए इसके प्रतत मनुष्य उदासीन ि◌ो जाता ि◌ै।497 मनुष्य परमेश्वर के प्रतत प्ेरेम के उमसाि एवं मानव-समाज की सेवा में अपनेको खपा देता ि◌ै। वि इस बात की भी परवाि निीं ◌ंकरता कक वि माग श ल्जस पर उसे चलना ि◌ै, तनवाधश ि◌ै या बाधाओं से भरा ि◌ै। जब मनुष्य समय को ग्रिण कर लेता ि◌ै, बुराई स्वयं उससे दूरू भाग जाती ि◌ै और स्वयंनष्ट ि◌ो जाती ि◌ै, ि◌ीक जैसे एक ममट्टी का ढेला ककसी कि◌ोर पमथर से टकराकर चकनाचूर ि◌ो जाता ि◌ै।498

जैसे अन्तर्दशल्ष्ट का क्षेत्र बौद्धधक अवस्थाओंसे बिुत दूरू और ऊपर ि◌ै, इसी प्रकार से धाममकश स्तर (क्षेत्र) भी भलाई और बुराई से बिुत ऊपर ि◌ै। ल्जसने ◌ेपरमसत्ता को प्राप्त कर मलया यि सब प्रकार के तनयमों से ऊपर ि◌ै।'[499] यि पवचार कक तयों मनैं ◌ेभला काम निीं ◌ंककया अथवा मनैं ◌ेतयों पाप ककया, ऐसे व्यल्तत के मन की

---

496 बृिदारण्यक, 4 : 2, 4।

497 दुश्ुचररत्र व्यल्तत को मनैं बा़ र्ततसम्पन्न पाया ि◌ै और पवस्तार में फैलते ◌ेदेखा ि◌ै। तो भी (एक ि◌रे-भरे तेजेपत्र वृकूष के समान बराबर यि मर गया और देखो, उसका सका किीं ◌ंअल्स्तमव ि◌ी निीं रिा। मनैंऐसे व्यल्तत का पता लगाना चाि◌ा ककन्तु उसका तो नामोतनर्ान भी ममट गया। पूव शमनुष्य की ओर लक्ष्य करो और धाममकश पुरुष को देखो, तयोंकक उस व्यल्तत का लक्ष्य र्ाल्न्त ि◌ै। 'साप', 37 : 35-37।

498 छान्दोग्य, 1: 2, 7।

499 कौषीतकक, 2: 8; बृिदारण्यक, 4 :4, 22।

 कष्ट निीं देता।500 यि ककसी से निीं ◌ंडरता, और न ि◌ी अपनेभूतकाल के अच्छे या बुरे कमों का

कोई सोच करता

ि। "वि अमरमयप्राप्त अच्छाई या बुराई दोनों से परे ि◌ै; उसने ककतना ककया और ककतना अधूरा छो़ हदया इससे ◌े उसे दु:ख निीं ◌ंि◌ोता; उसके क्षेत्र पर ककसी कम शका प्रभाव निीं ◌ंपड़ता।" इस मसद्धान्त में एक पापी जीवन के कमों के ममट जाने की सम्भाव्यता की भी गुंजाइर् ि◌ै, यहद हृदय-पररवतनश ि◌ो जाए। इसी मसद्धान्त के ऊपर ईसाइयों के इस मत का आधार ि◌ै कक ककतना भी पाप तयों न ि◌ो, वि मोक्ष में बाधक निीं ◌ंि◌ो सकता, यहद दृढ़ तनश्चयपूवकश उसका प्रायत्श्चत कर मलया गया ि◌ै। जब एक बार आममा यथाथसशत्ता को प्राप्त कर लेती ि◌ै, 'त्जसके अन्दर तनवास करना स्थायी आनन्द ि◌ै', मनुष्य की दिे हदव्य ज्जयोतत से आपूण शिो जाती ि◌ै और उसके अन्दर वि सब जो ि◌ीन एवंनीच ि◌ै, मुरझाकर नष्ट ि◌ो जाता ि◌ै। नैततकता के प्रश्न का कुछ मित्त्व निीं ◌ंरि जाता तयोंकक अव जीवाममा तो कुछ करती ि◌ी निीं,◌ं उसकी इच्छा ईश्वर की इच्छा और उसका जीवन ईश्वर का जीवन ि◌ै। वि पूण शसे संयुतत ि◌ो चुकी ि◌ै और इसमलए स्वयंभी पूण शिो गई। समस्त कम शअव ईश्वर में ि◌ी ि◌ोता ि◌ै। अब ईश्वर एवं जीवाममा के अन्दर और कोई भेद ि◌ी निीं ◌ंरिता। डातटर बोसनकट ने अपनी छोटी-सी उत्तम पुस्तक 'धम श तया ि◌ै' में इस एकमव की मूल भावना की उच्चतम अवस्था का प्रततपादन ककया ि◌ै। "प्रे्रेम की पपवत्रता और सवोपरर रुदु्ध सत्त्व की इच्छा के साथ संयुतत ि◌ोकर तुम न केवल यिी कक सुरक्षक्षत ि◌ो गए, प्रमयुत तुम स्वतन्त्र और र्तत सम्पन्न भी ि◌ो जाते ि◌ो... एकमव में इस प्रकार का पवभाग करके कक इतना मुझसे आया उतना ईश्वर से आया, तुम्िारा अमभप्राय मसद्ध न ि◌ोगा। तुम्िें अपनेको उसके अन्दर गिराई से पिुंचा देना ि◌ोगा। अथवा वि तुम्िारे अन्दर गिराई में प्रपवष्ट ि◌ो जाए-इनमें से जो भी भाषा तुम्िें अधधक उपयुतत जंचे।"[501]

दुभाुग्शयवर् धाममकश जीवन के इस केन्द्रीय तथ्य का अथ शभारतीय पवचारधारा के अच्छे- अच्छे पवद्याथी भी पयाप्शत मात्रा में निीं ◌ंसमझ पाए। उपतनषदों के सबसे अवाचशीन समीक्षक डॉ. ह्यूम किते ि◌ैं, "उपतनषदों के मसद्धान्त एवं ◌ंग्रीस देर् के तत्त्वपवद् दार्तशनकों के मसद्धान्त में अधधक मतभेद इस पवषय में ि◌ै कक एक ज्ञानी पुरुप अपनेज्ञान के कारण धाममकश चररत्र का भी ि◌ो सकता ि◌ै या निीं,◌ं अथवा ज्ञान की मर्क्षा का पररणाम अतनवाय शरूप से धाममकश जीवन ि◌ोना चाहिए या निीं,◌ं यिांकुछ आध्यात्ममक ज्ञान की प्रात्प्त से सब पुराने ◌ेपाप नष्ट ि◌ो जाते ि◌ैं और उतत ज्ञान को प्राप्त कर लेनेवाला णझझक को छोड़कर उसी प्रकार पापमय जीवन में आगे भी चल सकता ि◌ै, पवना ककसी दण्ड को भोगे, यद्यपप इस प्रकार के कम शअन्य सबके मलए, त्जन्िें आध्यात्ममक ज्ञान निीं ◌ंि◌ै, जघन्य पाप समझे ◌ेजा सकतेि◌ैं।"[502] ि◌म पिले कि आए ि◌ैं कक उपतनषदों का ज्ञान न

---

500 तैपत्तरीय उप०, 2/9।

501 पृष्ठ 20-21, "त्जस प्रकार जल की एक बूंद र्राब के बतनश में प़कर उसका रंग एवं स्वाद ग्रिण कर लेती ि◌ै और जैसे पपघला ि◌ुआ लोिा अत्ग्न के समान बनकर अपनी आकृतत खो बैठता ि◌ै, एवंसूय शकी धूप से संयुतत वायु जैसे उसी सूयकशकरण सरीखी बन जाती ि◌ै, उसे उस समय वि प्रकामर्त निीं ◌ंअपपतु स्वयं ◌ंप्रकार्स्वरूप प्रतीत ि◌ोती ि◌ै, इसी प्रकार सन्तपुरुषों में मानवीय प्रे्रेम एक वणनशातीत रूप में द्रपवत ि◌ोकर अपने को परब्रि की इच्छा के अन्दर ममधश्रत कर लेता ि◌ै। यहद उस अवस्था में मनुष्य के अन्दर मनुष्यमव का कुछ भी अंर् र्ेष रि जाएगा तो ईश्वर के सवामशमभाव का कुछ अथ शिी निीं ि◌ोता। एक पवमर्ष्ट सत्ता उस समय पवद्यमान रिेगी, यद्यपप अन्य आकृतत, अन्य वैभव एवं एक अन्य र्तत के रूप में।" (सटें

बनाड,श 'माइंड' से उद्धृत, 1913, पृष्ठ 329)।

502 'द थरटीन पप्रंमसपल उपतनषद्' की भूममका, पृष्ठ 60।

तो आध्यात्ममक ज्ञान-सम्बन्धी पात्ण्डमय ि ै और न ि ी ताककशक या आध्यात्ममक खण्डन-मण्डन-सम्बन्धी तनपुणता ि ी, वरन् ् वि उच्यतम सत्ता का पवश्व के मध्य में सवोपरर र्त्तत के रूप में प्रमयक्षीकरण ि ै। यि धाममकश प्रमयक्षीकरण तभी सम्भव ि ोता ि ै जबकक मनुष्य प्रकृतत का सम्पूणरूशप में कल्पनाममक एवं ंकक्रयाममक दोनों ि ी पक्षों में पररवतनश ि ो जाए। त्जस डॉ. ह्यूम ने 'कुछ आध्यात्ममक ज्ञान की प्रात्प्त' किा ि ै वि केवल उन्िीिं के मलए सम्भव ि ै त्जनका हृदय पपवत्र ि ो। उन्िेंपूरी स्वतन्त्रता ि ै। "उस उच्चतम अवस्था में एक चोर चोर निीं ि ैएवंएक ि मयारा भी ि मयारा निीं ंि ै। पुण्य व पाप उसका पीछा निींकरते तयोंकक वि उस समय हृदय के सब दु:खों पर पवजय प्राप्त कर लेता ि ै।"[503] स्वतन्त्र मनुष्य जो चािें, कर सकतिैं और उन्िें कोई दण्ड निींमिल सकता। ककन्तु वि स्वातन्त्र्य 'स्वैरता का उन्माद निीं ंि ै।"[504] ब्रह्मसाक्षामकारवादी अपना पवधान अपने-आप ि ी ि ै। वि अपना भी स्वामी ि ै एवंउस संसार का भी स्वामी ि ै त्जसमें वि रिता ि ै। पवधान व बन्धन उन मनुष्यों के मलए आवश्यक ि ैं जो स्वभावतः अपनी अन्तराममा के आदेर्ों के अनुसार आचरण निीं ंकरते। ककन्तुउन व्यत्ततयों के मलए जो अपनेस्वाथमशय अिभावों से ऊपर उि गए ि ैं नैततकता स्वयंउनके अत्स्तमव का प्रततबन्ध बन जाती ि ै और पवधान की पूतत शप्रेम में ि ो जाती ि ै। उनके अन्दर दुष्कुम शकरने ेकी सम्भावना भी निीं ंरिती। बिार का दबाव आन्तररक स्वीकृतत में पररणत ि ो जाता ि ै। जब तक धाममकश जीवन की प्रात्प्त निीं ंि ोती, नैततकता का पवधान एक प्रकार का बाह्य आदेर् प्रतीत ि ोता ि ै त्जसका पालन प्रयमनपूवकश और दु:ख उिाकर भी करना ि ी ि ोता ि ै, ककन्तु ुजब प्रकार् उपलब्ध ि ो गया, यि आममा का आभ्यन्तर जीवन बन जाता ि ै और सिज रूप से एवंअन्तःस्फूतत शके साथ काम करता ि ै। एक सन्त पुरुष का काय शअपनेको आममा की स्फूतत शके तनतान्त अधीन कर देना ि ै ककन्तु ुबाह्य पवधान के तनयमों के प्रतत अतनच्छा से आज्ञापालन निीं ंि ै। ि मारे सम्मुख एक तनःस्वाथ शआममा का आदेर् आता ि ै त्जसमें कम शके पुरस्कार अथवा उल्लंघन के दण्ड का तनरूपण निीं ंि ोता। परम्परागत एवं ंप्रचमलत आदेर् बाह्य कतव्शय एवं नैततक पवधध-पवधानों का उसके मलए कुछ अथ श निीं ंि ै। आममा उस सवोपरर परमानन्द को पाकर प्रसन्न ि ोती ि ै, सब पदाथों के एकमव को प्रमयक्ष देखती ि ै और संसारमात्र से उसी प्रकार प्रेम करती ि ै जैसे ि म अपनी-अपनी पृथक् आममाओं से प्रेम करते ि ैं। एक पूण श सद्भावना भी इस प्रकार सदाचार-सम्बन्धी तनयमों के अधीन रिेगी ककन्तु ुइसी कारण से तनयमों के बन्धन में रिकर काय शकरनेके मलए वाध्य निीं ंि ोगी, तयोंकक पवषयीतनष्ि संघटन के कारण नैततकता के भाव से ि ी उसका तनश्चय ि ो सकेगा। इसमलए दैवीय अथवा पपवत्र इच्छा के मलए कोई भी आदेर्ाममक एवं ंअवश्यकतव्शय निीं िि सकते। यिां'अवश्यकरणीयता' के मलए कोई स्थान निीं ि ै, तयोंकक इच्छार्त्तत और पवधान यिां एकाकार ि ै।"[505] नैततक तनयम इसकी अमभव्यत्तत ि ैं और इसमलए उसे निींबांध सकते। इस प्रकार का सवोपरर आममा गुणों का तनमाणशकताश और 'स्वराट्'[506] ि ै, अथात्श ्स्वयंतनयमस्वरूप ि ै। संसार की योजना में तीन वग शके प्राणी ि ैं: (1) वे जो कक अपनी सत्ता के मलए प्रयमन करते ि ैं और क्षुधाओं की पूतत शके मलए काय शकरते ि ैं : दुश्चुररत व्यत्तत जो यहद कभी सदाचरण भी करते ि ैं तो स्वाथ शको ि ी लेकर करतिैं जैसे या तो स्वग शकी कामना से

503 बृिदारण्यक, 4।

504 रवीन्द्रनाथ ि ाकुर, 'साधना', पृष्ि 18।

505 कांट, 'मैटाकफत्जतस आफ मोरल्स', पृष्ि 31(ऐबट संस्करण)।

506 स्वमेव राजा।

अथवा नरकश के चय शसे; (2) ऐसे व्यत्तत जो पवधान से अमभज्ञ िैं और अमयन्त प्रयमन से कष्ट उिाकर भी उसकै अन्तगतश रिने का प्रयमन करते िैं तयोंकक उनकी आममा असामंजस्य या पृथृतमव के अधीन िैं; और (3) संसार की रक्षा करने ेवाले, त्जन्िोंनेजीवन के संघष शपर पवजय पाकर र्ात्न्त प्राप्त की िै ऐसे व्यत्तत जीवन के प्रयोजन से अमभज्ञ िैं और स्वत: िी पवना ककसी प्रयमन के उसके अनुकूल आचरण करते िैं। उपतनषदें िमें आदेर् देती िैं कक जिां किीं ंसंर्य िो अथवशा कहिनाई का अनुभव िो विां ब्रह्मज्ञानी लोग, जो कतव्शयतनष् िैं, जैसा आचरण करते िों वैसा िी आचरण करें।'[507] ये मिापुरुष अपना दैतनक काय शकरते िैं एवं स्वभाव से िी अपने सिमणों का पवस्तार करते रिते िैं जैसे कक नक्षत्रगण प्रकार् प्रदान करते िैं और जैसे पुष्प अपनेसौरभ को सवत्रश वायुमण्डल में पवतररत करता िै; यिां ंतक कक वे स्वयंभी इससे अनमभज्ञ िोते िैं। इस प्रकार की अवस्था प्रमयेक व्यत्तत प्राप्त कर सकता िै। परब्रह्म के साथ ऐतय स्थापपत करनेकी सम्भावना केवल उसकी वास्तपवकता से िी िो सकती िै। मनुष्य के सवर्शत्ततमान आममा के साथ तादामय-सम्बन्ध स्थापपत िो सकनेका प्रमाण स्वयं तादामम्य प्राप्त िो जाना िी िै। ईसाई मत के पवचारकों के अनुसार, ईश्वर की मनुष्य के रूप में इस प्रकार की एक सम्पूण शअमभव्यत्तत ईसामसीि के व्यत्ततमव में पाई जाती िै। उपतनषदों की घोषणा िै कक सब मनुष्यों में दैवीय सम्पूणतशा तक उिनेकी सम्भावना रिती िै और यहद वे प्रयमन करें तो उसे प्राप्त कर सकते िैं।

चूंकक नैततकता का अथ शकेवल अपूण शसंसार के मलए िी िै, त्जसमें वतमशान रिकर मनुष्य अपने उच्चतम स्वरूप को ग्रिण करने ेके मलए संघष शकरता िै, यि कभी-कभी किा जाता िै कक उपतनषदों की आध्यात्ममक पद्धतत में नैततकता के मलए कोई उधचत स्थान निीं। ड्यूसन का किना िै कक "जब आममा का ज्ञान प्राप्त िो गया तब प्रमयेक कम शका, और इसमलए प्रमयेक नैततक कम शका भी, कुछ अथ शनिीं रि जाता, अथात्श ्उसमें पुण्य एवं ंपाप का प्रश्न िी निीं ंउिता।"[508] अभी तक िम बराबर इस प्रकार की आपपत्तयों का संकेत कर रिे िैं। नैततक कक्रयार्ीलता अपने-आपमें उद्देश्य अथवा लक्ष्य निीं ंिै। इसे पूणजशीवन में पररवततततश करना िै। केवल पूणजशीवन िी सवोपरर मित्त्व रखता िै। जैसा कक तालमद ने सुन्दर ब्दों में किा िै, मुतत व्यत्तत

स्वर्शीतलमानपरब्रह्म। वीमिंसा थेनैसृतूहकले सुक्मपयथान-पवर्ेषे का

आज्ञापालन िै त्जसका स्थान लक्ष्य के प्रतत स्वतन्त्र सेवा ले लेती िै जो पूणब्रशह्म के प्रतत स्वयंस्फुररत भत्ततरूप िै। इस अवस्था में जीवाममा परब्रह्म में पवलीन िो जाती िै। केवल यिी सवातशतर्यी मूल्य रखती िै, ककन्तु उस अवस्था की प्रात्प्त के मलए जो नैततक संघष शककया जाता िै वि व्यथ शनिीं ंजाता।

15. आधथकश चेतना

---

507 तैपत्तरीय,1 : 11।

508 कफलासफी ऑफ द उपतनषद्स', पृष्ि 362।

धम शयथाथ शमें जीवन एवं ्अनुभव का पवषय ि ै। उपतनषदें धाममकश चेतना की उमपपत्त के मलए तीन श्रेणणयों का पवधान करती ि ैं: श्रवण अथात् श ्पवद्वानों से रास्त्रीय उपदेरों को सुनना, मनन अथवा धचन्तन अथात्श ्उतत उपदेरों पर पवचार करना और तनहदध्यासन अथात्श ्मैग्न िोकर अथवा एकाग्रता के साथ ध्यान करना।'[509] पिली श्रेणी में धाममकश जीवन में परम्परा के स्थान का संकेत रिता ि ै। जीपवत ईश्वर में पवश्वास की दीक्षा के मलए ककसी न ककसी प्रकार की परम्परागत दैवीय प्रेरणा आवश्यक ि ै। "धन्य ि ैं वे त्जन्िोंने ेबबना प्रमयक्ष

ककएमूततपूसकी सत्ता में पवश्वास कर मलया।" अधधकांर् मनुष्य परम्परा एवं ्धाममकश प्रतीकों अथात् आहद तक िी रि जाते ि ैं। उपतनषदों के अनुसार, रूहढ़वाद को धम शन समझ लेना चाहिए। पररश्रमपूवकश अपनी बुद्धध की योग्यता से िमें धाममकश परम्परा के तात्मवक अथ शएवं उसके अन्ततनहशित समय को ग्रिण करने ेका प्रयमन करना चाहिए। दूसूरी श्रेणी में युत्ततपूण शपवचार की आवश्यकता का प्रततपादन ककया गया ि ै। प्रथम श्रेणी में जो कुछ परंपरागत िोने ेके कारण स्वीकार कर मलया गया अब वि ताककशक तनणयश का रूप धारण करता ि ै। समय को समझने ेमात्र से िी यथाथसशत्ता की प्रात्प्त निीं ्िो जाती। उच्चतम श्रेणी की धाममकश चेतना के मलए यथाथसशत्ता अनुमान का पवषय न रिकर साक्षामकार का पवषय िो जाती ि ै। यथाथसशत्ता के इस प्रकार के अनुभव, अनन्त के पवषय में इस प्रकार की चेतना, के मलए एक ऐसी पवचारपद्धतत के पवकास की आवश्यकता ि ै जो केवल तकश से सवथशा मभन्न िो। तनहदध्यासन अथवा मग्नता के साथ ध्यान ि में एक ताककशक पवचार को धाममकश

पवचार के रूप में पररवतततश करने ेमें सिायक िोता ि ै, त्जसे िम दर्नश किते ि ैं और जो पिले से स्वीकृत समय का

कक्रयाममक प्रमयक्षीकरण ि ै। यि स्वतन्त्ररूप से एकान्त में रिकर प्राप्त िोता ि ै, और त्विटमैन के समान, गणणतं ज्जयोततष के ताककशक अध्ययन के अनन्तर 'एतदम मौन रिकर नक्षत्रों को तनिारतेरिना' ि ै। यि एक प्रकार से मानमसक दृत्ष्ट के सामने उस पदाथ शको उपत्स्थत करना ि ै त्जसे िम जानना चािते ि ैं। ध्यानमग्नता का

अचेतनावस्था अथवा मूच्छाशवस्था के साघनरूप में न मान लेना चाहिए तयोंकक इन अवस्थाओं को बुित क़ े ब्दों में दूपूषत ठिराया गया ि ै। ये केवल मन को पदाथ शमें त्स्थर करने ेमें सिायता करती ि ैं। पवचार के समस्त उतार-चढ़ाव को एवं इच्छा के पवभेदों को वर् में करके िम मन को पदाथ शके अन्दर त्स्थर रिने,े उसके अन्दर प्रवेर् करनेऔर उसके साथ एकाकार िो जानेकी अनुमतत प्रदान करते ि ैं। परमेश्वर की उपासना, सदाचरण और समय का पालन करना-यि सब आममा के अन्दर समय-जीवन के तनमाणश में सिायक िोतीं। त्जस समय कल्पनापरक मन परमेश्वर की सत्ता का धचन्तन करता ि ै तब उसका मनोवेग स्वरूप परमाममपरक भत्तत में लीन िो जाता ि ै। उस समय पदाथ शिमसे बाह्य निीं रिता, जैसाकक साधारण अनुभव में रिता ि ै। उस समय प्रबल भावनामय आममदर्नश िोता ि ै, त्जसका स्फुरण समस्त सत्ता के अन्दर प्रतीत िोता ि ै, मानो परमाममा के साथ एकीकरण िो रि िो। पूजा करने ेवाला उसके तनकट िो जाता ि ै त्जसकी वि पूजा करता ि ै। पदाथ शउस अवस्था में केवल घटक मात्र न रिकर ध्यान करने ेवाले की चेतना का रूप धारण कर लेता ि ै। एक अथ शमें मन का पररवतनश स्वयंसत्ता का पररवतनश िो जाता ि ै। उपतनषदें िमें गौण देवताओं की अन्तःप्रेरणा के पवषय में बतलाती ि ैं एवं उसके साथ-साथ ब्रह्म की परमानन्ददायक समाधधस्थ अन्तःप्रेरणा का भी वणनश करती ि ैं। जब

509 . बृिदारण्यक उपतनषद्, 2 : 4,5; 4: 5, 6। उदयन ने अपनी 'कुसुमांजमल ' (1 : 3) में एक वृतूत उद्धृत ककया ि ै त्जसमें आगम अथात्श ्धमर्शास्त्र, अनुमान, और ध्यान का वणनश ि ै।

तक अन्तःपे्रेरणा के पवषय प्रमेय पदाथों में पररममतता एवं ंव्यत्ततमव का लेमार्त्र भी रिेगा, परम लक्ष्य की प्रात्प्त निींिो सकती। ब्रह्म की प्रात्प्त के मलए िमें ब्रह्म-पवषयक अन्तःपे्रेरणा िोना आवश्यक िै।

यि स्पष्ट िै कक उपतनषदों में प्रततपाहदत धम शमनुष्य के एकदम पररवतनश के ऊपर बल देता िै। धम श मात्र एक औपचाररक पन्थ, अथवा नैततक तनयन्त्रण, ककंवा रूहढ़गत कट्टर सम्प्रदाय निीं ंिै। यि किना असमय िोगा कक उपतनषदें मनुष्य-स्वभाव के तकशरहित पक्ष की सवथशा अविेलना करती िैं। उन्िोंनेभावुकतापूण शएवं कल्पनाममक धम शके मलए भी उधचत स्थान रखा िै। उपतनषदें उन पवरोधों से भी सवथशा अनमभज्ञ निीं ंिै जो साधारण धाममकश चेतना में प्रकट िो सकतेिैं। यहद परमेश्वर सर्दपत्त का पूणरूशप िै तव नैततकता स्वयं िी मसद्ध िै, तयोंकक प्रमयेक वस्तु को, त्जसकी सत्ता िै, पूण शइच्छा की अमभव्यत्तत िोना चाहिए। यहद परमेश्वर संसार का रचतयता िै तब वि ऐसी िी वस्तु की सृत्ष्ट करेगा जो उसके अपनेस्वभाव को पररममत कर देगी। या तो उमपन्न जगत् ्उसके स्रष्टा परमाममा से मभन्न िै त्जस अवस्था में वि अपनी िी सृत्ष्ट से सीममत िो गयी, अथवा दोनों एकसमान िैं, यि एक ऐसी सम्भाव्य कल्पना िै जो प्रमयेक धम शएवंनीततर्ास्त्र को अमान्य रिेगी। धम शमें िम मनुष्य िी इच्छा के पवरुद्ध परमेश्वर की इच्छा को रखते िैं। यहद दोनों एक िैं तब नीतत का कोई प्रश्न निीं उिता, तयोंकक उस अवस्था में मानवीय इच्छा की कोई स्वतन्त्र सत्ता निीं ंिै। यहद दोनों पृथक िैं तब परमेश्वर भी पररममत एवंसान्त िोरता िै और एक सान्त परमेश्वर िमारे अन्दर पवश्वास उमपन्न निीं ंकरा सकता। इसके अततररतत यहद परमेश्वर में िम स्वतन्त्र इच्छा का गुण स्वीकार करते िैं तो वि कमों को भी उलट सकता िै और उस अवस्था में मन की मौज मुख्य व्यवस्थापक बन जाती िै। ककन्तुदूसूरी ओर वि तनयमों के अधीन िै और िमारे कमों के अनुसार िी िमारे साथ व्यविार करता िै तब उसकी स्वतन्त्रता पररममत िोरती िै। ये सब पारस्पररक पवरोध िमें इस पररणाम पर पिुंचाते िैं कक ईश्वर के सम्बन्ध में ऊंची से ऊंची कल्पना जो िम कर सकतेिैं वि सवोमकृष्ट यथाथसशत्ता निीं ंिै। धम शपीछे पड़ रि सकता िै और एक सीमाबद्ध ईश्वर से सन्तुष्ट रि सकता िै-यि कल्पना भले िी ककतनी असंगत तयों न िो। इस पवचार को इस आधार पर युत्ततयुतत किा जा सकता िै कक धम शका मुख्य काय शउच्चतम समय की खोज करना निींिै और दार्तशनक र्दत्ष्ट से भी िमें स्वीकार करना पड़ेगा कक परमाममा-सम्बन्धी सब कल्पनाएं, चािे वे ककतनी िी उच्च श्रेणी की तयों न िों, केवल सापेक्ष िैं।"[510] साधारणतः यि उपतनषद् के मसद्धान्त का उपलत्क्ष्यत अमभप्राय िी समझा जाता िै, ककन्तु उपतनषदों के अन्तदशर्नश को पवचार की वैज्ञातनक पद्धतत के रूप में ज्जयोंिी पररवतततश ककया जा सकेगा, यि पवचार साक्षात् ् मसद्धान्त के रूप में आ जाएगा। उपतनषदें धम शकी उमकृष्ट एवं िीनतर आकृततयों को भी मानती िैं।

िमें यि भी स्मरण रखना चाहिए कक उपतनषदों का उमकृष्ट श्रेणी का धम,श जो ध्यान और नैततक जीवन पर एवं परमेश्वर की पूजा को भावरूप से और यथाथरूशप से करनेपर बल देता िै, परम्परागत रूहढ़यों एवं चममकारों के बोझ से बोझल निीं ंिै जो कक आज तक भी अन्यान्य धमों के चारों ओर छाया रिता िै। उपतनषद् धम शके इस केन्द्रीभूत मसद्धान्त को कक सवोपरर यथाथसशत्ता केवल एक िी िै जो अपनेको पवश्व में अमभव्यतत करती िै, रूहढ़ की संज्ञा निीं ंदी जा सकती। यि परम समय िै त्जस तक मनुष्य-बुद्धध पिुंच सकती िै। पवज्ञान

510 देखें,केनोपतनषद् , 1:5,8 ।

एवं दर्नशर्ास्त्र की उन्नतत का उसके साथ मतभेद निीं ंिै। वरन् ्ये दोनों इसे पुष्ट करते िैं। उपतनषदों का धम श मिान आममा के प्रतत श्रद्धाभत्तत एवं ंप्रेम का अनुभव िै। इस प्रकार का ध्यान धाममकश भत्तत िै। यि इस पवषय को भी स्वीकार करता िै कक पवषयी एवं पवषय के बीच जो भेद िै वि धाममकश उमसाि में लुप्त िो जाता िै। संसार का ऐतय एवं ंपूणतशा उपतनषद्धम शका सवोपरर तत्त्व िै। यि साधारण धाममकश चेतना के मलए सन्तोषप्रद निीं ंिो सकता। मनुष्य सीममत र्ततसम्पन्न आममा िोनेके कारण परमसत्ता को ग्रिण करने ेके अयोग्य िै। वि अपने अततररतत एक पदाथ शकी कल्पना कर लेता िै। परमसत्ता एक दिेधारी ईश्वर बन जाता िै। यि दिेधारी ईश्वर यद्यपप चरम तथ्य निीं ंिै, कफर भी साधारण धाममकश चेतना को इसकी आवश्कता रिती िै। ईश्वर ममत्र एवं सिायक िै, पपता िै, सृतूष्ट का स्रष्टा और पवश्व का र्ासक िै। उसे सवोत्तम पुरुष या पुरुषोत्तम किा जाता िै ककन्तु ुवि संसार का र्ासन बािर से निीं ंकरता िै। उस अवस्था में ईश्वर एवं ंसंसार के मध्य में ककसी प्रकार का

यांबत्रक सम्बन्ध निीं ंिोगा। वि अन्दर रिकर प्रेरणा करता िै अथात् श ्अन्तयामशी िै। यद्यपप िै तो वि पुरुष ककन्तु ुवि सबसे ऊपर िै, सबमें िै, और सबके द्वारा िै। सब पदाथ शउसके िैं, उसके अन्दर िैं और उसके प्रतत िैं, अथात् श ्उसी को उद्दिदष्ट करके िैं। ककन्तु जैसा कक जैकोबी ने किा िै, ऐसा परमेश्वर त्जसे जाना जाए, ककसी काम का परमेश्वर निीं ंिै। इस प्रकार की कल्पना करना कक परमाममा वि िै जैसा िम उसे समझतेिैं, तनरा पाखण्ड िै। यद्यपप धमसशम्मत ईश्वर परमसत्ताममक ब्रह्म की पररममत अमभव्यत्तत िै, यि केवल कल्पनाममक पवषय निींिै। सान्त मन द्वारा कत्ल्पत परमसत्ता के पवश्व के रूप में पवकास में सबसे पूव शपवद्यमान प्राणी ईश्वर िै, त्जसे स्वयंचेतन पवश्वाममा भी किा जाता िै। वि दिेधारी परमसत्ता िै। उपतनषदें उसका तादाम्म्य वस्तुओंकी आदर्ामशमक प्रवृपृत्त के साथ जोनेकी धचन्ता निीं ंकरतीं, त्जसे आदर् शके पवपरीत पवरोध एवं ंसंघष श का मुकाबला करना प ेतयोंकक उस अवस्था में वि अपनेपद से धगरकर सान्त के स्तर पर आ जाएगा। उपतनषदों के अनुसार परमसत्ता एवं ंईश्वर दोनों एक िैं। िम इसे सवोपरर ब्रह्म के नाम से इसमलए पुकारते िैं कक सान्त से ऊपर का भाव व्यतत िो सके, इसकी अज्ञेयता एवंपवश्वजनीनता का द्योतन िो सके। इसी को िम ईश्वर इसमलए किते िैं कक उसके दैहिक रूप पर बल हदया जा सके तयोंकक धाममकश भत्तत के मलए उसकी आवश्यकता िै। परमब्रह्म एवंदिेधारी ईश्वर के मध्य इस प्रकार का सम्बन्ध समझना चाहिए, जैसा कक यथाथ श प्रभु का सम्बन्ध मूतत शके साथ िै।'[511] और तब भी दोनों िैं एक िी। परमसत्ता दोनों रूप रखती िै-दिेधारी भी और अमूत शभी।512 सवोपरर सत्ता में ध्यान लगाना पवश्व के स्वामी के प्रतत भावनाप्रधान भत्तत िै। जीवाममा ईश्वर को एक सवातशतयी रूप में समझता िै और प्रबलरूप से उसके अनुग्रि की आवश्यकता अनुभव करता िै। देवप्रसाद अथवा ईश्वर की दया मनुष्य की बन्धन से मुत्तत की अवस्था िै। "यि आममा न तो बिुत अध्ययन से, न बुद्धध के द्वारा, और न बिुत र्ास्त्रज्ञान से प्राप्त िो सकता िै। त्जस मनुष्य को यि आममा स्वयंचुनता िै अथात्श ्त्जस पर प्रभु ुस्वयंकृपा करते िैं, विी इसे प्राप्त कर सकता िै, और उसके िी सम्मुख यि पवश्वाममा अपनेयथाथ शस्वरूप को प्रकट कर देता िै।"[513] कभी-कभी धाममकश आवेर् इतना अधधक बढ़ जाता िै कक भतत

511 तैपत्तरीयउपतनषद्पर र्ांकरभाष्य, 1/6, "र्ालग्राम इव पवष्णोः ।"

512 मूतामूशतम्् ्। तैपत्तरीय उपतनषद् पर र्ांकर भाष्य, 1/6

513 मुण्डक उपतनषद्, 3/2 3; कि, 2: 23।

धचल्ला उिता िै कक "यिी वि िै जो उस मनुष्य को पुण्य कम शकरनेके मलए पे्रेररत करता िै त्जसे वि ऊपर उिाना चािता िै, और यिी िै वि जो उस मनुष्य को पापकम शकरने ेके मलए पे्रेरणा देता िै त्जसे वि नीचेधगराना चािता ि।"[514] जीवाममा और परमाममा की एकता बिुत अधधक संयम एवंकिोर पररश्रम द्वारा मसद्ध िोती िै। जब धम शका आदर् शप्राप्त िो जाता िै, व्यत्ततमव का भाव उि जाता िै। िम ज्जयों-ज्जयों धाममकश अनुभव में, ऊपर उिते िैं, िम उपास्य एवं ंउपासक के मध्य तादाम्म्य अनुभव करनेलगतेिैं, यिां ंतक कक अन्त में दोनों संयुतत िोकर एक िो जाते िैं। उस अवस्था में परम्परागत अथों में उपासना को भाव िी निीं ंरिता। परमब्रह्म के अनन्तरूप का तब अनुभव िोता िै जो समस्त पवश्व में व्याप्त िोकर मनुष्य की आममा को भी प्लापवत कर रिा िै। उस समय िमारी मयादशाएं लुप्त िो जाती िैं और मनुष्य की अपूणतशा के कारण उमपन्न िुए दोष स्वयंपवलीन िो जाते िैं। धम शका लक्ष्य धम शका ऊंचा उिना िै। आदर् शधम शवि िै जो उस द्वैतभाव पर त्जसको लेकर यि चलता िै, पवजयं प्राप्त करता िै। धाममकश पूजा भय के भाव से प्रारम्भ िोती िै, भत्तत एवं पे्रेम तथा तनमय के साथ संगम के माग शसे गुज़रती िै और समाधध-अवस्था में जाकर रेूपे िो जाती िै, जिां ंईश्वर एवं ंजीवाममा एक-दूसूरे के अन्दर समा जाते िैं। धाममकश पूजा का पवधान तभी तक के मलए िै जब तक पूणावशस्था की प्रात्प्त निीं ंिोती।

उपासना अथवा धाममकश पूजा के अपूण शप्रकार पूणतशा को प्राप्त करने ेके साधनरूप में अंगीकार ककए जाते िैं। उपतनषदों को परस्पर पवरोधी मतों के साथ अमयधधक न्याय करनेमें किीं–किीं ंअसंगत कल्पनाओंको भी अपनाना पड़ा िै जो उस समय की जनता में प्रचमलत थीं। कुछ लोगों का जादू ूमें पवश्वास था; अन्य कइयों ने प्राकृततक र्त्ततयों को मन की एकाग्रता एवं तपस्या की अन्यान्य प्रकक्रयाओंद्वारा दबानेका प्रयमन ककया; अन्य कुछ व्यत्तत ऐसे थे ेजो तनरथकश औपचाररक पवधधयों में िी मलप्त रि गए; कुछ वैहदक देवताओं को पूजते थे;े और कुछ ऐसे भी थे ेत्जन्िोंने ेअपनी धाममकश अन्तर्दत्शष्ट द्वारा इस पररवतनशर्ील जगत् ्से बच तनकलनेका माग शढूंढ़ मलया। उपतनषदों के पवचारक मनुष्य की पववेकर्त्तत की दुबुलशता को भली प्रकार जानते थे ेकक इसके कारण सब पदाथों में, सवकशाल में और सब देर् में पवद्यमान परब्रह्म को मनुष्य स्थान-पवर्ेषे, काल-पवर्ेषे एवं पदाथ-शपवर्ेषे में मयाहशदत एवंतनपवष्ट मान लेता िै, इसमलए उन्िोंनेस्वीकार ककया कक यहद पूजा की तनम्नतर पवधधयों का एकदम तनषेध कर हदया जाएगा तो भय िै कक किीं ंईश्वर इस जीवन से एकदम िी बहिष्कृत न िो जाए। एकदम पूजा न करने ेसे ककसी भी प्रकार की पूजा का प्रचमलत रिना अच्छा िै। और इसीमलए यि किा गया िै कक िम त्जस ककसी प्रकार की पूजा को अपनाते िैं, वैसे िी वन जाते िैं। "मनुष्य को आश्रय के रूप में ब्रह्म की उपासना करने ेदो तो उसे आश्रय ममलेगा। उसे ब्रह्म के मिान स्वरूप की पूजा करने ेदो तो वि भी मिान बन जाएगा। उसे ब्रह्म को मानस के रूप में पूजने ेदो तो उसमें भी मानमसक र्त्तत का पवकास िोगा। उसे ब्रह्म के रूप में ब्रह्म की उपासना करने ेदो तो ब्रह्म को प्राप्त कर लेगा।"[515] परब्रह्म मभन्न-मभन्न मनुष्यों में अपना प्रकार् मभन्न-मभन्न रूपों में करता िै। ककन्तु इसको अवतारवाद के मसद्धान्त के साथ निीं ंममलाना चाहिए, तयोंकक उपतनषदों में अवतारवाद का किीं ंपता निीं ंममलता। धाममकश भाव से परब्रह्म के ध्यान को

---

514 कौषीतकक, 3/8

515 तैपत्तरीय, 3: 10; देखें छान्दोग्य भी ,1/3, 12 बृिदारण्यक ,1/2, 13, ।

 उपतनषदों ने धम शका सबसेउमकृष्ट रूप स्वीकार ककया िै, उससे दूसूरी श्रेणी का िै अन्तःस्थ प्रभु के प्रतत
भावनापूण शभक्तत; और सबसे तनम्न श्रेणी का धम शवैहदक देवी-देवताओं की पूजा िै।

यि प्रायः किा जाता िै कक उपतनषदें ककसी प्रकार की धाममकश पूजा को स्वीकार निीं ंकरती। डातटर अकुशिटश मलखता िै, "चािे ककतनी िी स्पष्टता के साथ सच्ची पूजा का भाव लक्षक्षत ककया गया िो, कभी-कभी उस शक ियी मन्दिरों में उपास्य एवं ंउपासक के मध्य मेदभाव का तनतान्त तनषेध पाया जाता िै, अथात् उपासक को एक िी बताया गया िै, तयोंकक पूण शपवकमसत आत्स्तकवाद की यिी मांग िै।"[516] उपतनषदें जीव एवं ं ब्रि की एकता पर बल देती िैं। इन दोनों में जो अपेक्षाकृत भेद िमें हदखाई देता िै, ऊंचेउिकर एकमव में वि लुप्त िो जाता िै। "यहद कोई मनुष्य अन्य देव की पूजा करता िै इस पवचार को लेकर कक वि और ईश्वर मभन्न-मभन्न िैं, वि अज्ञानी िै।"[517] एकमव उपतनषदों के मसद्धान्त का सवोपरर तत्त्व िै। परब्रह्म को अन्तयामशी मानना उपतनषदों का केन्द्रीय समय िै। यहद धाममकश पूजा के साथ उसकी संगतत निीं ंबैिती तो इसका अथ श केवल यि िोगा कक समय धम शके मलए आत्स्तकता को कोई स्थान निीं, तयोंकक एक यथाथ शआत्स्तकवाद के मलए ब्रह्म को अन्तयामशी मानना अमयन्त आवश्यक िै। प्रमयेक समय-धम शइस पवषय की घोषणा करता िै कक सान्त पदाथ शस्वयं अपनेआधार पर निीं ंिैं और न अपने-आप पवकमसत िुए िैं, ककन्तु परब्रह्म सबसे ऊपर िै, सबके अन्दर िै, सबके मध्य में िै; वि सत्ता की आधारभूमम िै, जीवन का स्त्रोत एवं ंइच्छा का लक्ष्यबबन्दु िै। "यहद म ैं ऊपर चढ़कर स्वग शमें पिुंचूं ंतो विांभी तू िै, यहद नरक को म ैंअपना आश्रय बनाऊं तो देखता िंूं कक तू विांभी िै। यहद मुझे ेप्रातःकालीन स्वच्छ वायु के पंख ममल जाएं और समुद्र के गिनतम भाग में तनवास करूं तो विांभी तेरा िी िाथ मुझु ेपिुंचाएगा।"[518] "ईसा किते िैं कक तया म ैंयिां ंउपत्स्थत ईश्वरमात्र िंूं, और दूरूत्स्थत ईश्वर निीं ं िूं ? तया कोई अपनेको ऐसे गुप्त स्थानों में भी तछपा सकता िै जिांम ैंउसे निीं ंदेख सकता ? ईसा किते िैं, तया अन्तररक्ष और पृथूवी लोक मुझुसे पूररत निीं ंिैं?" "ईश्वर के अन्दर िी िम तनवास करते िैं, समस्त चेष्टाएं करते िैं एवं अपनी सत्ता को त्स्थर रखते िैं।"[519] और "जो प्रेम में तनवास करता िै वि परमेश्वर में तनवास करता िै, और परमेश्वर उसके अन्दर तनवास करता िै।"[520] प्रमयेक सच्चा धम शईश्वर को अन्तयामशी मानता िै, और उमकृष्टरूप से ईश्वरवादी िै।

16. मोक्ष या मुत्तत

तया धाममकश आममज्ञान की सवोच्च अवस्था परब्रह्म के साथ सत्न्ध िो जाना िै, या केवल रूनूयता के रूप में लुप्त िो जाना िै ? उपतनषदों का मत िै कक सवोच्च अवस्था में व्यत्ततमव का पवश्लेषण िो जाता िै, यि

---

516 दउपतनषद्स ऐण्ड लाइफ',पृषृि 60।

517 बृिदारण्यक, 1/4 , 10।

518 'साम', 139।

519 सटें पाल।

520 सटें जान।

स्वाथमशय एकाकीपन का मयाग ि◌ै, ककन्तु यि केवल रू्न्यता अथवा मृमयुनिीं। "त्जस प्रकार बिनेवाली नहदयां ◌ंसमुद्र में जाकर पवलुप्त ि◌ो जाती ि◌ैं और अपनेपृथृक् नाम एवंरूप को खो बैिती ि◌ैं, इसी प्रकार एक ज्ञानी पुरुष नाम और रूप से मुतत ि◌ोकर दैवीय त्तत के समीप पिुंच जाता ि◌ै, जो सबसे दूरू ि◌ै।"[521] उपतनषदें संकीण श जीवाममा को परमसत्ता स्वीकार निीं ◌ंकरतीं। वे मनुष्य जो वैयत्ततक अमरमव के मलए प्राथनशा करते ि◌ैं, जीवाममा की परमाथतशा को माननतें एवंइस जगत् ◌्से परे भी उसकी त्स्थरता पर बल देते ि◌ैं। पररममत त्तत वाले जीवन में यथाथ शतत्त्व, जीवाममा के स्वरूप में सबसे श्रेष्ि ि◌ै; वि अनन्त ि◌ै और वि भौततक की सीमाओंके परे भी पवद्यमान रिता ि◌ै। मित्त्वपूण शअंर् का नार् निीं ◌ंि◌ोता। इस संसार में त्जन धाममकश मित्त्वों की खोज में ि◌म रिते िैं और त्जन्िें अपूणरूशप में प्राप्त कर पाते िैं, सवोच्च अवस्था में ि◌म उन्िें परमाथरूशप में पाते िैं। मनुष्य के रूप में ि◌म अपने आदर्ों तक अपूणरूशप में पिुंच पाते िैं जो क्षणणक प्रकार् के रूप में एवं अन्तर्दत्शष्ट के क्षणों में कभी-कभी प्राप्त ि◌ोते िैं। सवोच्च अवस्था में ि◌म उन तक पूणतशा के साथ, सवागांरूप से एवंपरमरूप से पिुंचते ि◌ैं। तैपत्तरीय उपतनषद् ि◌में बताती ि◌ै कक इस जगत् ◌्में जो आनन्द ि◌में प्राप्त ि◌ोता ि◌ै वि दैवीय आनन्द की छायामात्र िै, उसका एक तुच्छ- सा उपलक्षण ि◌ै।"[522] जीवन रूपी समुद्र में सब प्रकार के कष्टों के पश्चात् ◌्ि◌म एक ऐसे रेतीले ककनारे पर निीं ◌ंपिुंचते ◌ेजिां ◌ंभोजन के मलए ि◌में कुछ प्राप्त न ि◌ो और ि◌म भूख से प्राण दे दें। मुतत अवस्था को आममा की पूणतशम अमभव्यत्तत मानना चाहिए। यहद स्वयंपरब्रह्म को एक अमूतरूशप भावाममक सत्ता माना जाए तो ईश्वर की ओर उिनेका अथ शिोगा कक ि◌म एक रू्नूयताममक अथिा गत शमें अपनेको धगरा रिे ि◌ैं। और उस अवस्था में मनुष्य का लक्ष्य रू्न्यता ि◌ोगा। उपतनषदें इस पररणाम को स्वीकार करनेके मलए तैयार निीं ◌ंि◌ैं। उच्चतम अवस्था प्रसन्नता एवं ◌ंपरमाह्लाद की अवस्था ि◌ै। यि आनन्द की अवस्था ि◌ै, जिां ◌ंप्राणी का प्राणीरूप पवनष्ट ि◌ो जाता ि◌ै, ककन्तु वि अपनेस्रष्टा के साथ एकामम ि◌ो जाता ि◌ै, अथवा यों किना अधधक यथाथ शिोगा कक वि उस स्रष्टा के साथ अपनी एकता का अनुभव कर लेता ि◌ै। ि◌म इस पूणतशा का ि◌ीकिीक वणनश निीं ◌ंकर सकते। ि◌म प्रतीकों का ि◌ी प्रयोग करते ि◌ैं। तनमय जीवन का स्वरूप एक आनन्द की अवस्था ि◌ै अथवा मुत्तत ि◌ै, जीवाममा का सुखपूण शपवस्तार ि◌ै। जिां ◌ंस्वगलशोक एवं इिलोक एकत्र ि◌ोकर आगे बढ़ते ि◌ैं।

इसके स्वरूप को मसवाय प्रततकृतत या रूपक अलंकार के अन्य ककसी प्रकार से निीं ◌ंबताया जा सकता। इस जीवन में ऐसी अवस्थायेंभी ि◌ैं त्जन्िें तनमय अथवा कालातीत सत्ता के उदिारणस्वरूप किा जा सकता ि◌ै। बैरन वान ह्यूगल ि◌में समाधध की अवस्थाओं के पवषय में बतलाता ि◌ै, जो "अनुभवी आममा को, एकाग्रता के अनुपात में, कालपविीन अथाशत् ◌्बबना तारतम्य के एवं समसामतयक प्रतीत ि◌ोती ि◌ैं और इसीमलए तनमय ि◌ैं... आममा की तनमयता यिां ◌ंअन्य र्दत्ष्टयों से प्रमयक्ष में परमेश्वर से समानता ि◌ोने ◌ेके कारण तनष्कष शके रूप में निीं जबकक आममा इस अवस्था में ि◌ोती ि◌ै, बत्ल्क इसके पवपरीत तनमयता स्वयंअनुभव का केन्द्र ि◌ै एवंआममा के मलए दैवीय स्वरूप प्राप्त ककए रिने ◌ेके मलए पवर्ेष आकषणश का ि◌ेतुि। आममा के अमरमव का अनुभव मृमयुसे पूव शनिीं ◌ंि◌ो सकता, जबकक इसके तनमयमव का त्जस अथ शमें संकेत ककया गया ि◌ै उसका इस जीवन सम्बन्धी अवस्थाओं में साक्षात् ◌्अनुभव ककया जा त्तकता ि◌ै। इस प्रकार अमरता में पवश्वास की तो यिां ◌ंकल्पना की जाती

---

521 मुण्डक , 3 : 2,8, प्रश्न उपतनषद्भीदेखें ,6/5 ।

522 देखें,2 : 8; कौषीतकक, 1/3 5; बृिदारण्यक,4: 3, 33।

 ि◌ै, ककन्तु तनमयमव का भाव मुख्य ि◌ै ।"[523] ककसी मधुर संगीत का आनन्द लेनेमें, ककसी कलाममक वस्तु के तकश

का पूणरूशपेण ग्रिण करने ◌ेमें ि◌मारे आगे एक अलौककक अवस्था उपत्स्थत ि◌ो जाती ि◌ै, त्जसमें परमेश्वर का दर्नश एवं तनमयमव का अनुभव ि◌ो जाता ि◌ै।'[524] भौततक या लौककक घटनाएं तब तनमय ि◌ो जाती ि◌ैं जब उन्िें परब्रह्म के सम्बन्ध में समझकर यथाथरूशप में देखा जाए।

चूंकक ि◌मारे मानवीय दृत्ष्टकोण से परमसत्ता की पूणतशा का वणनश करना सम्भव निीं ◌ंि◌ै, उपतनषदों ने भी परम मुत्तत या मोक्ष की अवस्था का यथाथ शएवं ◌ंसूक्ष्म रूप में वणनश निीं ◌ंककया ि◌ै। दो बराबर पवरोधी वणनश मिैं उपतनषदों में ममलतिैं यि परमाममा के सादृश्य की अवस्था ि◌ै एवं कक यि परमेश्वर के साथ ऐतय की अवस्था ि◌ै।

उपतनष्दों में ऐसे स्थल आए ि◌ैं जिां ◌ंजीवाममा के परब्रह्म के साथ एकाकार ि◌ो जानेका वणनश ि◌ै; यथा 'प्रवण धनुष ि◌ै, आममा बाण ि◌ै और ब्रह्म लक्ष्य ि◌ै। अप्रमत्त ि◌ोकर बाण चलाना चाहिए। जो वेधन करने वाला ि◌ै, बाण के ि◌ी समान ि◌ो जाता ि◌ै एवं ◌ंलक्ष्यरूपी ब्रह्म के साथ एकाकार ि◌ो जाता ि◌ै ।"[525] आममा ब्रह्म के साथ एकाकार ि◌ो जाती ि◌ै।'[526] यिां ◌ंपर जीवाममा और ब्रह्म में एकदम तादामम्य-वणनश ककया गया ि◌ै। आगे चलकर "ये सब सवोच्च अपवनश्वर ब्रह्म में पिुंचकर एकाकार ि◌ो जाते ि◌ैं।"[527] "वि सवोपरर अक्षर आममा में पवलीन ि◌ो जाता ि◌ै।"[528] "वि सवज्ञश और सवामशमा ि◌ो जाता ि◌ै ।"[529] "वि समस्त में प्रवेर् करता ि◌ै ।"[530] मुततामममा संब

---

523 'इटनलश लाइफ', पृष्ि 27।

524 सन्त आगस्टाइन ने अपने 'कन्फेर्ंस' में मलखा ि◌ै 'मान लीत्जए कक ि◌मारी सारी र्ारीररक ि◌लचल सदा के मलए समाप्त िो जाए और जल, थल व नभ के समस्त इत्न्द्रयग्राह्यरूप र्ांत ि◌ो जाए; मान लीत्जए कक अन्तररक्ष त्स्थर ि◌ो जाए और यिां तक कक आममा भी तनःर्ब्द ि◌ो जाए और अपनी तनज की संज्ञा भूल जाए; मान लीत्जए कक सारे स्वप्न और कल्पना की समस्त अमभव्यत्ततयां,◌ं र्ब्द और संकेत आहद, तथा इस क्षण भंगुर संसार से सम्बत्न्धत सब कुछ र्ांत ि◌ो जाए; मान लीत्जए कक ये सब चुप ि◌ो जाएं-और यहद ये उससे कुछ किें भी जो सब कुछ सुनता ि◌ै, तो केवल यि किें 'ि◌मने अपने-आपको निीं बनाया ि◌ै, बत्ल्क उसने ि◌में बनाया ि◌ै जो धचरन्तन ि◌ै। मान लीत्जए कक ये केवल इतना ि◌ी किें और बबलकुल र्ांत रिें, और उसी को सुनें त्जसने इन्िें बनाया ि◌ै, उसे ि◌ी बोलने दें, अपने माध्यम से निीं बत्ल्क उसे स्वयं ◌ंबोलने दें, त्जससे कक ि◌म उसके र्ब्द सुन सकें-ककसी की चम ◌ेकी जीभ से या ककसी देवाममा के माध्यम से निीं,◌ं न ि◌ी गजनश के माध्यम से या ऐसी ककसी चीज़ के जररए, जो उसे तछपा देती ि◌ै त्जसे वि प्रकट करना चािती ि◌ै; मान लीत्जए कक तब वि परमाममा, त्जससे ि◌म इस प्रकार के प्रमयक्षीकरणों के कारण प्रेम करने लगे ि◌ैं, बबना ककसी माध्यम के ि◌मारे सामने प्रकट ि◌ोता ि◌ै–ठीक उसी तरि त्जस तरि कक अन्तदृत्शष्ट के एक क्षणणकआलोक में ि◌में उसे सवज्ञश और र्ाश्वत की अनुभूतत प्राप्त ि◌ोती ि◌ै, त्जसका स्थान सवोपरर ि◌ै; अन्त में मान लीत्जए कक परमाममा का यि दर्नश धचरकामलक ि◌ो जाए और इससे तनम्न अन्य सभी वस्तुएं दृत्ष्ट सेओझल ि◌ो जाएं, ताकक केवल विी अपने दर्कश को मुग्ध कर सके और उसे एक रिस्यमय आनन्द में सम्मोहित कर सके, और ि◌मारे जीवन को वि अन्तदृत्शष्ट और आममप्रेरणा के उस क्षण के एक धचरस्थायी पवस्तार में बदल दे त्जसे ि◌मने प्राप्त ककया था तो तया यि विी त्स्थतत निीं ि◌ोगी जो इन र्ब्दों के अथ शसे इंधगत ि◌ै 'तू अपने प्रभु ◌ुके आनन्द को प्राप्त कर'?'

525 मुण्डक, 2/2 2; कि उप० भी देखें, 2/15

526 र्रवत् ◌तन्मयो भवेत् ◌।

527 मुण्डक, 3/2 7; सव शएकीभवत्न्त ।

528 प्रश्न उप०, 4:9।

पदाथों में प्रपवष्ट िोता ि ै और भावरूप में तदाममक िो जाता ि ै। "उसको प्राप्त करने े पर ऋपषगण का, जो अपने

ज्ञान से संतुष्ट िैं, प्रयोजन मसद्ध िो जाता िै; वे सब प्रकार की इच्छाओं से पवरहित, और पूण शऱ्ांतत के साथ, सवव्शयापी आममा को सब ओर से प्राप्त करके बराबर अपनेमन को एकाग्र करके प्रमयेक पदाथ शमें प्रपवष्ट िोते िैं।"[531] उन व्यत्ततयों को जो समस्त पवश्व को एकमात्र सवग्रशिी सत्ता के अन्दर सत्नपवष्ट अनुभव कर लेते िैं, कोई दु:ख या तलेर् निीं ंिो सकता। "बबना ककसी संर्य के और वेदान्त के ज्ञान का मित्त्व खूब अच्छी तरि से समझकर समय के अन्वेषक, त्जनके मन मयाग से पपवत्र िैं, उस ब्रह्म के लोकों को प्राप्त करते िैं और जब उनकी दिे छूटती ि ै तब उनकी आममा अमर एवं ंसवोपरर परब्रह्म के साथ एकाकार िो जाती ि ै और ये सब प्रकार से मुतत िो जाते िैं।"[532] मुतत आममा ब्रह्म के साथ अपनी एकता को इस प्रगाढ़ रूप में अनुभव करती ि ै कक वि अपनेको संसार का स्रष्टा किने ेलगती ि ै। "म ैंभोजन िूाँ, म ैंिी खाने वाला िूाँ। म ैंपवषयी िूाँ, म ैंिी पवषय िूाँ, एवं म ैं दोनों िी िूाँ। म ैंिी आहदजन्मा िूाँ एवं संसार का संिारक भी म ैंिूाँ। म ैंसूय शके सदृर् प्रकार् िूाँ। म ैंसंसार एवं ंअमर देवताओं का केन्द्र बबन्दु िूाँ।'[533] उतत स्थल यि उपलक्षक्षत करते प्रतीत िोते िैं कक द्वैत का भाव ि ै िी निीं ंऔर

इसमलए सवोच्च अवस्था में कम शका प्रश्न िी निीं ंउिता। यि चेतनता से रहित िोने ेके पश्चात् ्भी जीवन लगता ि,ै जिां ंर्रीर पवकीण शिो जाता ि ै एवं ंमन भी पवलुप्त िो जाता ि ै और सब कुछ एक तन:सीम अन्धकार में खो जाता ि ै। अंगर िम चािें तो इसे स्वप्नों से रहित तनद्रा अथवा चेतना पविीन र्ान्त का नाम दे सकतेिैं। जब याज्ञवल्तय ऋपष ने मैत्रेयी को इन र्ब्दों में समझाया, "त्जस प्रकार नमक का एक ढेला जल में छोड़ने ेपर उसमें एकदम घुल-ममल जाता ि ै और पुनः िम उसे स्वरूप में निीं ंपा सकते, ककन्तुजिां ंपर से भी जल लें वि नमकीन िी ममलेगा, यिी अवस्था यथाथ शमें इस मिान आममा की ि ै जो तनरन्त ि,ै अपररममत ि,ै ज्ञान की सम्पूण शइकाई ि,ै इन्िीं ंप्राणणयों के द्वारा यि अमभव्यतत िुई और इन्िीं ंके साथ अन्तधानश िो जाएगी। मृमृयुके बाद चेतना की कोई सत्ता निीं ंरिती।" मैत्रेयी किती ि,ै "तुम्िारा यि वचन कक मृमृयु के पश्चात् ्कोई चेतना निीं ंरिती, मुझे ेभ्रम में डालता ि ै।" याज्ञवल्तय उत्तर देता ि ै, "मनैं े ऐसी तो कोई बात निींकिी, त्जससे तुम्िें भ्रम िो, यि बबलकुल बोधगम्य ि ै। जिां ंसत्ताओं में द्वैतभाव रिता ि,ै एक-दूसूरे को देख सकता ि,ै एक-दूसूरे की गन्ध ले सकता ि,ै एक दूसूरे से भाषण कर सकता ि,ै एक दूसूरे की बात सुन सकता ि,ै एक दूसूरे के पवषय में सोच सकता ि,ै एक दूसूरे को जान सकता ि ै। ककन्तु जब प्रमयेक पदाथ शआममरूप िो गया तो वि ककसके द्वारा और ककसको देखेगा, ककसके द्वारा और ककसकी गन्ध लेगा, ककसके द्वारा और ककससे भाषण करेगा, ककसके द्वारा और ककसे सुनेगा, सोवेगा या जानेगा ? ककस साधन से उसे जानेगा, त्जसके द्वारा वि समस्त पवश्व को जान सकता ि ै ?" इससे यि बात स्पष्ट िो जाती ि ै कक ककसी पवर्ेष रूप में, त्जसे िमारी बुद्धध ग्रिण निीं ंकर सकती, जीवाममा ऐसी मुतत प्राप्त करती ि ै त्जसमें सब प्रकार की चेष्टा, प्रमयक्ष ज्ञान, पवचार अथवा चेतना का अभाव रिता ि,ै तयोंकक यि सब द्वैतपरक दृत्ष्ट में िी सम्भव ि ै। ये सब चेष्टाएं पवषयी एवंपवषय के परस्पर पवरोध के िी ऊपर तनभरश

529 1/10 ससवज्ञश...।

530 1/7 सवम्...एवापव्...।

531 मुण्डक 3:2, 5।

532 3:2,6 ।

533 तैपत्तरीय, 3।

करती ि ैं और सापेक्षाममक जगत् ्में ि ी इनकी सम्भावना रिती ि ै। परमलोक में जाकर सब प्रकार का द्वैतभाव पवलुप्त ि ो जाता ि ै ऐसा कि ा गया ि ै, और उसके साथ ि ी साथ प्रमयक्ष ज्ञान एवं कम शभी पवलुप्त ि ो जाते ि ैं। यि उस अवस्था में स्वयंतनमयस्थायी एवं ंअपररवतनशीय आमम ि ो जाता ि ै त्जसकी पूणतशा में सब प्रकार की गतत मन्द ि ो जाती ि ै, सब रंग फीके प़ जाते ि ैं, और सब ब्द समाप्त ि ो जाते ि ैं। यि मोक्ष का तनषेधाममक पक्ष ि ै, यिी सब कुछ ि ै त्जसे सीममत बुद्धध ग्रिण कर सकती ि ै। इसका पवधायक पक्ष भी ि ै। केवल इसीमलए कक ि म पररममत त्तत वाले ि ोने ेके कारण परमाथ शअवस्था की पूणतशा का वणनश निीं ंकर सकते, यि तनषेधाममक रूनूयता निींि। तनषेधाममक दत्ष्ट से जीवाममा सब प्रकार के पवभेद को छोक़र इस रूप में प्रतीत ि ोती ि ै जो न यि ि ै न वि ि ै ककन्तु ुएक अतनहदशष्ट मध्यवती प्रकार की वस्तु ि ै। ऐसे बेपरवाि प्राणी जो इन सब मामलों में सोते ि ुए से प्रतीत ि ोतेि, वस्तुतः बिुत सकक्रय ि ो सकतेि। जब पवध्याममक पक्ष पर बल हदया जाएगा, मुतताममा को एक पूणतशा प्राप्त जीवाममा के रूप में ि म समझ सकेंगे, त्जसका दजाशसवोपरर परमसत्ता के ि ी समान ि ै।'[534] ऐसे वातयों में जिां ंकि ा गया ि ै कक मुतताममा अपनी सब इच्छाओंकी पूतत शकरते ि ुए लोकों में भ्रमण करती ि ै, उससे यि ध्वतनत ि ोता ि ै कक मुतताममा की अभी भी सकक्रय सत्ता ि ै। "इन लोकों में पवचरती ि ुई, इच्छानुसार भोजन करती ि ुई, नाना आकारों को अपनी इच्छानुसार धारण करती ि ुई वि गीत गाती ि ुई पवराजती ि ै।"[535] और कफर भी उसे इस प्रकार की भावना ि ोती ि ै कक वि ईश्वर के साथ एकाकार ि ै। छान्दोग्य के अनुसार, अमरमव से तामपय शि ै अपनेको देवताओं के देर् की ओर ऊपर उिना।'[536] मुण्डक उपतनषद् में से इसे ईश्वर का सािचय शकि ा गया ि ै।537 ईश्वर के साथ तनतान्त समानता का सुझाव भी हदया गया ि ै।538 दैहिक कम श के मलए गुंजाइर् बतलाने के मलए कि ा गया ि ै कक जीवाममा परमेश्वर के समान ि ो जाती ि ै। सवोच्च सत्ता की यथाथ शअवस्था के पवषय में ककतने ेभी मतभेद भले ि ी तयों न ि ों, एक बात बबलकुल स्पष्ट ि ै कक यि तनत्ष्क्रय न िोकर सकक्रय अवस्था ि ै जो स्वातन्त्र्य एवं ंपूणतशा से युतत ि ै। यहद ि ीकि–ि ीक किं तो कि ना ि ोगा कक ि म उस अवस्था का वणनश निीं ंकर सकतेककन्तु यहद उसकी पररभाषा अवश्य ि ी चाहिए तो कि सकतेि कक उसे दैवीय जीवन की अवस्था समझा जा सकता ि ै। आममा की सत्ता एकदम गायब निीं ंि ो जाती जैसेकक सूय शकी ककरण सूय शमें समा जाती ि ै, अथवा समुद्र की लिर समुद्र में समा जाती ि ै और संगीत के स्वर एक स्वरलिरी में समा जाते ि ैं। जीवाममा का संगीत सांसाररक गतत में पवलुप्त निीं ंि ोता। यि सवदशा के मलए एकसमान ि ैऔर कफर भी एकसमान निींि। यि कि ा जाता ि ै कक मुतताममा सबके साथ एकाकार ि ो जाती ि ै और ईश्वर के साथ एक िोकर जीवन व्यतीत करती ि ै। मुतताममा के इस प्रकार के पवध्याममक वणनश से एक वैयैत्ततक पृथृतमव के भाव का संकेत ममलता ि ै, यद्यपप इस प्रकार के वैयत्ततक पृथृतमव का आधार आममभावना का कोई रूप निीं ंि ै। जीवाममा का इस प्रकार का मोक्ष-जीवन परमसत्ता के साथ एकमव का आनन्द अनुभव करने ेके मलए आवश्यक ि। यद्यपप आममामभव्यत्तत के मलए इस प्रकार के व्यत्ततमव के केन्द्र का धारण ि ै, कफर भी ि में बताया जाता ि ै

534 परमंसभ्यम् ्उपैतत।मुण्डक ,3/1;3 1.

535 तैपत्तरीय, 3/10, 8।

536 2:22।

537 3/2, 6 |

538 3/1.3।

 कक जीवाममा में अपनेगौरव एवं ं अमरता के मित्त्व की चेतना भी पवद्यमान रिती िै। यि अनुभव करती िै कक
पवश्व रूपी नाटक में ईश्वर काय शकर रिा िै त्जसमें दैवीय चेतन अपना भाग अमभनीत करती िै। मुतुताममा भी उसी नाटक में अमभनय करती िै और पूणरूशप से समय का धारण ककए रिती िै। ऐसा कोई पदाथ शर्नीं ंजो उसके प्रयोजन के मलए न झुक सके। "वि वायुओंको अपनेदेवदूत बनाती िै, और जाज्जवल्यमान अत्ग्नमर्खाएं उसके मत्न्त्रगण िैं।" मुतताममा की नानापवध पररभाषाओं के दार्तशनक समन्वय के मलए अभी िमें और कुछ हदनों तक प्रतीक्षा करनी पर्ेगी। अिंभाव को भी इसी जीवन में पृथक् करना सम्भव िै और वि व्यत्तत जो इसी जीवन में पूणतशा को प्राप्त कर लेता िै, जीवन्मुतत किलाता िै। उसका अमरमव-सम्बन्धीसुख उसकी गतत सम्बन्धी स्वतन्त्रता में िी प्रकट िोता िै।

उपतनषदों के मसद्धान्तों के रिस्यमय िोने ेके कारण उन्िींएकसमान संदंभों में से िी पवमभन्न मतभेद प्रकट िो गए। कुछ बौद्धधमानुशयायी उपतनषद् के मुततावस्था-सम्बन्धी पवचार को सवथशा अभाव के रूप में प्रततपाहदत करते िैं, एवं ंकुछ वेदान्ती इसे सवोपरर परमाथसशत्ता में तल्लीन िो जाना किते िैं। कुछ अन्य लोगों को मत िै कक यि एक तनमयसत्ता िै जो पवचार, प्ेरम एवं सवोपरर परब्रह्म में आममसात् ्िो जाती िै। ककन्तु यि एकदम ममट जाना अथवा र्ून्य िो जाना र्नीं ंिै। भत्ततभाव से पूण शकपव का यि घोपषत करना कक "म ैंर्कशरा खाकर उसका स्वाद लेना चािता िंूं ककन्तु र्कशरा र्नीं ंबनना चािता," इसी मत को प्रकट करता िै। वैष्णव एवं र्ैव मत के धाममकश दर्नश-र्ास्त्री भी इसी पक्ष को स्वीकार करते िैं। ककन्तु ुप्रायः सभी भारतीय पवचारक इस पवषय पर एकमत िैं कक मोक्ष जन्म और मृमृयु के बन्धन से छूट जाने का नाम िै। ईश्वर के साथ सत्म्मलन तनमय िो जानेका िी दूसूरा नाम िै। दृश्यमान जगत् ्की पररभाषा में यहद िम तनमयता की पररभाषा करें तो यि जन्मरहित एवं मृमृयुरहित अव्यवस्था िी िै।

17. पाप और दुःख

पाप की समस्या वेदान्त दर्नश की समस्त पद्धततयों के माग शमें एक बाधक के रूप में िै। सान्त के उन्नतत करने की आध्यात्ममक समस्या के पवषय में िम पिले मलख चुके िैं। यिांपर अब िमारे सामने नैततक पापाचरण का प्रश्न िै। वैहदक ऋचाओंमें वैहदक मर्क्षाओं के अनुकूल आचरण करना पुण्य िै और उसके पवपरीत आचरण पाप िै। उपतनषदों में तनमय जीवन का ज्ञान पुण्य िै और अज्ञान पाप िै। इस ममथ्या दृत्ष्ट को व्यतत करने ेवाला आचरण एवं उसके कारण आममा का पृथकमव िी पाप िै। उपतनषदों के मत में संसार के समस्त पदाथों की प्रात्प्त केवल ईश्वरप्रात्प्त के साधन के रूप में िी स्वीकार करनेयोग्य िै। यहद िम उन्िंिोस और पृथग्रूप सेमानें और अपनेको भी एक पृथक् इकाई िी मानें तब िम नैततक दृत्ष्ट से पाप के भागी िैं। अिंभाव से पूण शकी सवोपरर सत्ता से तनषेध करना अथवा अपनी सवागांपूणतशा की घोषणा करना भ्रांतत िै। और आचरण में अिं द्वारा पूण शकी सवश्ेरेशष्ठता का तनराकरण पाप िै। ओछी अन्तर्दत्शष्ट से, जो स्वाथमशय अिं को जन्म देती िै और अपनी संकीणतशा के कारण सब प्रकार के मयाग से संकोच करती िै, पाप उमपन्न िोता िै। उपतनषदें पाप को न तो माया अथवा भ्रांतत िी किती िैं और न उनकी दृत्ष्ट में यि कोई स्थायी भाव िै। िर अवस्था में मनुष्य' का

कतव्शय ि◌ै कक वि नम्रतापूवकश इसके आगे झुके। पाप इस अथ शमें अयथाथ शि◌ै कक इसे अवश्य पुण्य में पररवतततश िोना ि◌ै। यि इसी सीमा तक यथाथ शि◌ै कक इसके स्वभाव को बदलने के मलए प्रयमन करने की आवश्यकता ि◌ै।

अपनी आममा को ईश्वर से ऊंचा समझना पाप ि◌ै, जबकक आममचेतना के स्थान में परमाममचेतना की स्थापना पपवत्रता ि◌ै। मनुष्य ि◌मेर्ा के मलए पाप में मलप्त निीं ◌िरि सकता। यि अस्थायी सन्तुलन की अवस्था में ि◌ै एवं वस्तुओं के स्वभाव का पवरोधी ि◌ै। उपतनषदों के मन में नैततकता वस्तुओंके यथाथ शस्वरूप को अमभव्यतत करती ि◌ै। अन्त में केवल पुण्य का ि◌ी अधधपमय रिता ि◌ै। "समय की ि◌ी जय ि◌ोती ि◌ै अनृत् की निीं।"[539] पाप एक तनषेधाममक वस्तु ि◌ै, अपनेअन्दर परस्पर पवरोधी एवं ◌ंमृमृयुका मसद्धान्तः पुण्य, यथाथ शएवं पवध्यथकश वस्तु और जीवन का तत्त्व ि◌ै। पाप कभी सबको सन्तोषप्रद मसद्ध निीं ◌िं◌ो सकता, यि वतमशान समय की करुणाजनक अर्ांन्त से स्पष्ट ि◌ो जाता ि◌ै, यद्यपप संसार ने इतनी भौततक समृद्धधध, सुख-सुपवधा एवं ◌ंयन्त्रों पर पवजय पा रखी ि◌ै।

उपतनषदों में ककतने ि◌ी स्थलों पर ब्रह्म की प्राप्त्त के माग शमें आने ◌ेवाली कहिनाइयों पर बल हदया गया ि◌ै। "वि व्यत्तत हदव्य ि◌ै जो उस आममा के पवषय में मर्क्षा दे सके त्जसके पवषय में बिुत-से व्यत्तत सुन भी निीं पाते, त्जसके पवषय में बिुत-से यहद सुन भी लें समझ निीं ◌ंपाते, और हदव्य ि◌ै वि जो उसे समझ सकनेमें समथ श ि◌ो सके।"[540] मोक्ष-प्राप्त्त का माग श'एक उस्तरे की धार की भांतंत तीक्ष्ण ि◌ै त्जस पर चलना कहिन एवं ◌ंपार करना अमयन्त ि◌ी कहिन ि◌ै।"[541] आममा के स्वरूप का ज्ञान तनबाधश पवकास का अथवा बबना पवघ्न-बाधाओं के उसमें आगे बढ़ सकें ऐसा निीं ◌िं◌ै। पूणतशा की ओर अग्रसर ि◌ोने ◌ेमें कष्ट एवंदुुःख का अनुभव ि◌ोना आवश्यक ि◌ै। किोर चकमक के पमथरों में परस्पर बलपूवकश रग़ ि◌ोना आवश्यक ि◌ै तयोंकक बबना उसके आग की धचनगारी उमपन्न निीं ◌िं◌ो सकती। अमृत शप्रकार् एवं ◌ंवायुका आनन्द लेनेके मलए पक्षी के बच्चेको अण्डे ◌ेके किोर बाह्यावरण के भेदन का कष्ट एवं ◌ंपवयोग सिना आवश्यक ि◌ै। नैततक आचरण को पदाथों के स्वभाव के प्रततकूल भी जाना ि◌ोता ि◌ै। पुण्य एवंसुख ि◌मेर्ा साथ-साथ निीं ◌िरिते। "श्रेय और ि◌ी पदाथ शि◌ै एवं ◌ंप्रेम उससे भी मभन्न पदाथ शि◌ै। इन दोनों का उद्देश्य मभन्न ि◌ै और ये मनुष्य को बन्धन में जकड़ते ि◌ैं। श्रेय के माग शका आश्रय लेनेवाले का कल्याण िोता ि◌ै, और जो प्रेय के माग शका आश्रय लेता ि◌ै वि उद्देश्य से भ्रष्ट ि◌ोता ि◌ै।"[542] प्राकृततक अमभलाषा की पूतत शमें सुख प्रतीत ि◌ोता ि◌ै जबकक श्रेयमाग शकी मांग ि◌ै कक प्राकृततक प्रेरणा-र्त्तत को वर् में ककया जाए। मनुष्य नैततक योजना द्वारा यथाथ शआममा की खोज करता ि◌ुआ प्रतीत ि◌ोता ि◌ै, त्जसे उसनेककसी प्रकार खो रखा ि◌ै। ककन्तु जब तक यथाथ शआममा की मसद्धधध न ि◌ो, नीतत का पवधान एक बाह्य प्रेरणा का रूप स्वीकार कर लेता ि◌ै। पुण्य सुखकारी प्रतीत निीं ◌िं◌ोता। नैततकता संकेत करती ि◌ै कक ि◌ीनतर प्रवृपत्त के साथ संघष शकरना ि◌ोगा, त्जसका अनुसरण सुखकर प्रतीत ि◌ोता ि◌ै। एवं ◌ंजब मनुष्य अपनेको प्राकृततक बन्धनों से मुतत करने ◌ेके मलए संघष श

---

539 मुण्डक, 3: 1, 6।

540 कि, 1: 2, 7; भगवद्गीता ,2: 29।

541 कि उपतनषद्, 1/3 , 14।

542 विी, 1: 2, 1, 2।

 करता ि◌ै तो जीवन में घोर द्वन्द्व ि◌ोता ि◌ै। द◌ुःख उन्नतत की एक अवस्था ि◌ै, संघष शअत्स्तमव का तनयम ि◌ै एवं

मयाग पवकास का मसद्धान्त ि◌ै। त्जतना अधधक संघष शएवं मयाग ि◌ोगा, प्रसन्नता एवं स्वतन्त्रता भी उतनी ि◌ी अधधक ि◌ोंगी। प्रमयेक उन्नतत का यि पवनार्क पक्ष ि◌ै। धाममकश जीवन में लाभ का तामपय शभौततक जीवन में ह्रास ि◌ै। ककन्तु यि ि◌ास वास्तपवक निीं ि◌ै। यहद यि ि◌ास वास्तपवक और परमरूप में ि◌ोता तब वि तनतान्त ह्रास

ि◌ोता और उसे ि◌म सिन न कर सकते। मनुष्य के पुत्र (ईसा) को यहद अपना खोया ि◌ुआ अधधकार पुनः प्राप्त करना ि◌ै तो उसे बन्दी के उद्धार के मूल्य के रूप में द◌ुःख झेलना ि◌ी ि◌ोगा। यि ि◌मारे सम्मुख जीवाममा एवं इस भौततक जगत् ् के अपूण शस्वरूप को प्रकट करता ि◌ै। स्तोत्रकार डेपेवड किता ि◌ै कक "मुझेद◌ुःख ममला, यि मेरे मलए

हितकर ि◌ै, तयोंकक द◌ुःख परमेश्वर का दूत बनकर ि◌मारे सम्मुख जगत् ्की अपूणतशा का प्रदर्नश करता ि◌ै, और यि दर्ातशा ि◌ै कक इस लोक का जीवन केवल प्रासंधगक ि◌ै और आममा के प्रमर्क्षण में द◌ुःख के तनग्रि का भी अपना उपयोग ि◌ै। तयोंकक बाधा के कारण आममा को पूरी र्त्तत लगानेका अवसर ममलता ि◌ै, त्जससे उसे उन्नतत के मलए पववर् ि◌ोना पड़ता ि◌ै। अन्तररक्ष त्जतना ि◌ी अधधक कृष्णवण शिोगा, नक्षत्रगण उतनी ि◌ी अधधक ज्जयोतत से चमकेंगे। द◌ुःख का एकदम पवनार् निीं ि◌ो सकता, जब तक कक मानवीय अवस्थाओंमें रिकर जीवनयापन करना ि◌ै। जब तक कक अपना सम्पूण शसमय परब्रह्म को अपपतश निींकर हदया जाता, तब तक क्रममक उन्नतत की प्रकक्रया द◌ुःख के माग शसे तनःर्ेष निीं िो सकती। उपतनषद् में किा ि◌ै कक "मनुष्य यथाथ शमें एक यज्ञ का रूप ि◌ै।"[543] जब तक ि◌म परब्रह्म का साक्षामकार निीं ◌ंकर लेते तब तक जीवन तनरन्तर मरण की कक्रया ि◌ै। जीवन एक ऐसा स्थान ि◌ै जिां ◌ंमानवीय आममा तनमय की प्राप्त्त के मलए छटपटाती ि◌ै एवं यन्त्रणा सिती ि◌ै। परदे के बाद परदा उिता ि◌ै। दैवीय जीवन तक पिुंचने ◌ेसे पूव शजीवन की भ्रांततयों को समूल नष्ट करके दूरू फेंकने ◌ेकी आवश्यकता ि◌ै और वांतछत आकांक्षाएं भी समाप्त ि◌ोनी चाहिए।

18. कम श

कम शका मसद्धान्त नैततक जगत् ्में विी स्थान रखता ि◌ै जो भौततक जगत् ्में एकरूपता के मसद्धान्त का ि◌ै। यि नैततक र्त्तत के संरक्षण का मसद्धान्त ि◌ै। ऋग्वेद में वणणतश 'ऋत' के रूप में र्ांतत एवं ◌ंसुव्यवस्था का आभास देखा जा सकता ि◌ै। कम शमसद्धान्त के अनुसार नैततक जगत् ्में अतनत्श्चत एवं मनमाना कुछ निीं ◌ंि◌ै।[544] िम विी काटते ि◌ैं जो बोते ि◌ैं। पुण्य के बीज से पुण्य की खेती फलेगी, पाप का फल भी पाप ि◌ोगा। छोटे से छोटा कम शभी चररत्र पर असर रखता ि◌ै। मनुष्य जानता ि◌ै कक कम शमें प्रवृत्त करानेवाली जो कुछ प्रवृपृत्तयां ◌ंउसके अन्दर अब पवद्यमान ि◌ैं उसके अपनेजान-बूझकर ककए गए चुनाव का पररणाम ि◌ैं। ज्ञानपूवकश ककए गए कम शआगे

---

543 छान्दोग्य, 3 16, 1।

544 कारलाइल इस मसद्धान्त को इस रूप में रखता ि◌ै, "ि◌े मूख,श तू सोचता ि◌ै कक चूंकक तेरी दुभाषशा को नोट करने के मलए कोई बासवेल यिां ◌ँनिीं ि◌ै, यि स्वयं ◌ंनष्ट ि◌ो जाएगी और इसका कुछ पता निीं ◌ंममलेगा। कोई वस्तु नष्ट निीं ◌ंि◌ोती, न नष्ट ि◌ो ि◌ी सकती ि◌ै, तनरथकश र्ब्द भी काल में डाला गया बीज ि◌ै, जो अन्त समय तक फल देता रिेगा।" "अपने को धोखा मत दो; परमाममा से बनावट निीं की जाती, तयोंकक जो कुछ मनुष्य बोता ि◌ै विी उसे काटना भी ि◌ोगा।"

चलकर अनजाने स्वभाव बन जाते िैं। और आज जो िमारी स्वाभापवक प्रवृपृत्तयां ंिैं वे ेभी पूव शमें ज्ञानपूवकश ककए गए अपने िी कमों का पररणाम िैं। नैततक पवकास को िम ठीक उसी प्रकार रोकनेमें असमथ र्ैं जैसे समुद्र के ज्जवार को एक नक्षत्रों के माग शको रोकना कहिन िै। कम शके उल्लंघन का प्रयमन ठीक उसी प्रकार तनष्फल िोगा,

श्नसः्जैबोसमुष्युकिअखमीाछ्बायबकसेल्थंघरितीीं िैसकना श्रभीात्

बराबर साथ रिता िै। यि मनोवैज्ञातनक मसद्धान्त िै कक िमारे जीवन के अन्दर सब कमों का लेखा रिता िै, त्जसे काल धुंधला निीं ंकर सकता और न मृमृयु िी ममटा सकती िै। पुराने ेवैहदक पवचार के इस प्रकार के दूषणों को दूरू करनेके मलए कक देवताओं को उद्देश्य करके यज्ञ करने ेसे पापों से मुत्तत ममल सकती िै, कम-शमसद्धान्त के ऊपर पवर्ेष बल हदया गया िै। यि घोर दन्डाज्ञा की घोषणा करता िै कक जो मनुष्य पाप करेगा वि मृमृयुको अवश्य प्राप्त िोगा। यज्ञों द्वारा निीं ंअपपतुसुकमों द्वारा िी मनुष्य पुन्याममा बनता िै। "पुण्यकमों से मनुष्य पुण्याममा एवं पापकमों से पापी िोता िै।"[545] आगे किा िै कक "मनुष्य इच्छार्त्तत का प्राणी िै-इस संसार में जैसी उसकी भावना िोती िै, मृमृयु के पश्चात् ्उसी प्रकार का वि बन जाएगा।"[546] इसमलए िमारे वास्तेपवधान िै कक सहदच्छा करो और पुण्यकम शकरो। "अपनेमन से त्जन-त्जन लोकों की वि आकांक्षा करता िै और त्जन-त्जन पदाथों की यि इच्छा प्रकट करता िै उस पपवत्र मन वाले को वे लोक और वे िी पदाथ शउपलब्ध िो जाते िैं। इसमलए जो भूतत (अमभव्यत्तत र्त्तत) की इच्छा रखता िै उसे उपसत्ता की उपासना करनी चाहिए जो आममा को जानती िो।"[547] कम शके प्रततफल के िी मलए इस जन्म एवं मृमृयुवाले संसार की सृतृष्ट िोती िै, जो अनाहद िै एवं अनन्त िै। कम शका मसद्धान्त अपनी लपेट में मनुष्यों, देवताओं, पर्ुजुगत् ्एवं ंवनस्पतत सबको ले लेता िै।

चूंकक वैयत्ततक त्जम्मेदारी के भाव पर बल हदया जाता िै, ऐसे भी समीक्षक िैं जो सोचते िैं कक कम-शमसद्धान्त की सामात्जक सेवा से संगतत निीं ंबन सकती। यि किा जाता िै कक एक-दूसूरे के बोझ पर बल निीं ंहदया गया िै। वस्तुतः उपतनषदों का मत िै कक िमें समाजसेवा द्वारा कमों से मुत्तत ममल सकती िै। जब तक मि स्वाथ शको लेकर काम करते िैं, िम कमबशन्धन के तनयम के अधीन रितेिं। जब िम तनष्काम कम शकरते िैं, तो मोक्ष को प्राप्त िोतेिं। "जब तक तुम इस प्रकार तनष्काम कम शकरते िुए जीवन व्यतीत करते िो, ऐसा कोई कारण निीीं सिकता कक कम शतुर्म्िं बन्धन में डाल सकें।"[548] कम शके कारण निीं ंककन्तुस्वाथमशय कम शके कारण िी िम जन्म और मृमृयु के बन्धन में पड़ते िैं। एक ऐसे युग में जबकक मनुष्य अपनी त्म्मेदारी से बचनेके मलए सारा भार पवधाता पर अथवा ग्रि-नक्षत्रों पर अथवा ककसी अन्य सत्ता के िी ऊपर छोक़र सन्तोष कर लेना चािता िो, कम-शमसद्धान्त ने बलपूवकश किा कक "मनुष्य अपनेआप िी अपनेको बन्धन में डालता िै, जैसे एक पक्षी स्वयं िी अपनेमलए घोंसला बनाता िै।"[549] जो कुछ िमें डरावना प्रतीत िोता िै वि अन्धकारपूण शभाग्य निीं ंिै, वरन् ्िमारे अपनिी पूवकृशत कम िै। िम मृमृयुचक्र के मर्कार निीीं। दु्ःख िमें पापकमों के पाररश्रममक के

545 वृिदारण्यक, 3: 2,13।

546 छान्दोग्य, 3: 14, 1; देखें, बृिदारण्यक ,44, 5।

547 छान्दोग्य, 3: 1, 10।

548 ईर् उपतनषद, 2।

549 मैत्रायणी उपतनषद, 3:2।

रूप में ममलता ि◌ै। यि तनपववशाद ि◌ै कक इस प्रकार का पवचार सदाचार के मलए बित प्रेरणा देता ि◌ै। इसका तामपय श केवल इतना ि◌ी ि◌ै कक मनुष्य के कमों को सीममत करने ◌ेवाली कुछ र्तीं। ि◌मनेअपनेको निीं ◌ंबनाया ि◌ै। जब मिारे आगे कोई असम्भव काय शआाता ि◌ै तो ि◌म अनुभव करते ि◌ैं कक ि◌म जो चािते ि◌ों वि कर सकें ऐसी बात निीं ीं। कम-शमसद्धान्त को यहद ि◌ीकि–ीक समझा जाए तो वि नैततक पुरुषाथ शको तनरुमसाहित निीं करता, न वि मन को और न इच्छा को ि◌ी जकड़ता ि◌ै। कम-श मसद्धान्त केवल इतना ि◌ी किता ि◌ै कक प्रमयेक कम शपूवत्शस्थत अवस्थाओं का अतनवाय शपररणाम ि◌ै। कारण की कायरूशप में पररवततशत ि◌ोने ◌ेकी प्रवृपृत्त ि◌ोती ि◌ै। यहद जीवाममा, जो प्रकृतत से ऊंचेस्तर पर ि◌ै, अपनी स्वतन्त्रता का प्रयोग न करे तो भूतकाल का आचरण और वतमशान पररत्स्थतत मनुष्य के वतमशान कम शका कारण रिेंगे। मनुष्य मात्र प्रकृतत की ि◌ी उपज निीं ि◌ै। वि कम शसे अधधक र्त्तर्ाली ीं। यहद कानून ि◌ी सब कुछ ि◌ै तो ककसी प्रकार की भी स्वतन्त्रता सम्भव निीं ◌ंि◌ै। मनुष्य-जीवन केवल यांबत्रक सम्बन्धों का ि◌ी नाम निीं ◌ंि◌ै। मभन्न- मभन्न प्रकार के स्तर ि◌ै। यांबत्रक, प्राणधारक, संवेदनायुतत, बौद्धधक एवं धाममकश ये सब मभन्न प्रका दूसूरे को काटती ि◌ैं वि एक-दूसूरे से कटती ि◌ैं एवं ◌ंएक-दूसूरे में प्रवेर् करती ि◌ैं। कम-श मसद्धान्त का, जो मनुष्य की तनम्नतर प्रकृतत पर अधधकार रखता ि◌ै, असर मनुष्य के अन्दर के धाममकश अंर् पर निीं ◌ंि◌ोता। मनुष्य के अन्तःकरण में जो अनन्त का अंर् ि◌ै वि सान्त की मयादशाओं से ऊपर उिनेमें उसकी मदद करता ि◌ै। जीवाममा का तत्त्वसार मोक्ष ि◌ै। उस स्वतन्त्रता का उपयोग करके मनुष्य अपनी भौततक प्रवृपृत्तयों की रोकथाम कर सकता ि◌ै एवं ◌ंउन्िें वर् में रख सकता ि◌ै। इसीमलए उसका जीवन यांबत्रक पवधध से तनधारशरत की जानेवाली अवस्थाओं से किीं अधधक श्रेष्ि ि◌ै। उसके मुत्तत प्राप्त करने ◌ेके सब प्रयमन केवल स्वभाव के बल पर िी निीं ◌ंअथवा पररत्स्थततयों के आघात के कारण ि◌ी निीं,◌ं बत्ल्क अन्तराममा की प्रेरणा से ि◌ोने ◌ेचाहिए। धाममकश प्रकृतत उसके उपक्रम एवं पुरुषाथ शका आधार ि◌ोनी चाहिए। यांबत्रक भाग तनयन्त्रण में रिता ि◌ै। यहद मनुष्य केवल प्राकृततक अवस्थाओं का ि◌ी समुदाय मात्र ि◌ोता तो वि पूणतशया कममशसद्धान्त के अधीन रिता। ककन्तु उसके अन्दर आममा का तनवास ि◌ै जो अधधष्िाता (स्वामी) ि◌ै। कोई ब्राह्य पदाथ शउसे पववर् निीं ◌ंकर सकता। ि◌में तनश्चय ि◌ै कक संसार की भौततक र्त्ततयों को धाममकश र्ासन के आगे अवश्य झुकना चाहिए। और इसीमलए कममशसद्धान्त को भी आममा की स्वतन्त्रता के आगे झुकना चाहिए। मनुष्य को उच्चतम स्वतन्त्रता तभी प्राप्त िो सकती ि◌ै जबकक वि परब्रह्म के साथ एकाकार ि◌ो जाता ि◌ै। "जो मनुष्य बबना आममा का ज्ञान प्राप्त ककए और समय-इच्छाओं को बबना जाने इस संसार से पवदा ि◌ोता ि◌ै, प्रमयेक लोक में उसका जीवन बंधन का जीवन ि◌ोता ि◌ै जबकक उस मनुष्य के भाग में जो आममा का ज्ञान प्राप्त करके और सब समय-इच्छाओंको जानकर इस संसार से पवदा ि◌ोता ि◌ै, सब लोकों में स्वतन्त्रता का जीवन ि◌ै।"[550] परमाममा के साथ एकाकार ि◌ोना सवोच्च स्वतन्त्रता की प्रात्प्त ि◌ै। ि◌म त्जतना ि◌ी अधधक ईश्वर की सत्न्नधध में जीवन व्यतीत करेंगे उतना ि◌ी अधधक आममा के अधधकार का उपयोग करेंगे और उतने ि◌ी ि◌म मुतत ि◌ोंगे। सम्पूण शब्रह्म को पकड़र रखनेमें, त्जसके साथ मिारा नाता ि◌ै, ि◌म त्जतनी ि◌ी अधधक मर्धथलता हदखाएंगे उतने ि◌ी अधधक ि◌म स्वाथी ि◌ैं और उतने ि◌ी अधधक मि कम-शवन्धन में बंधे ि◌ुए ि◌ैं। मनुष्य प्रकृतत एवं ◌ंआममा के बीच डोलता ि◌ै और इसीमलए स्वतन्त्रता और पववर्ता दोनों के अधीन ि◌ै।

---

[550] छान्दोग्य ,8:1

कम शके दो पक्ष िैं, एक पवश्व-सम्बन्धी, दूसूरा मनोवैज्ञातनक। प्रमयेक कम शअवश्य िी संसार में अपना स्वाभापवक पररणाम छोता़ िै। उसके साथ िी साथ वि मनुष्य के मन पर भी एक असर छो़ जाता िै जो प्रवृपृत्त के रूप में पररणत िो जाता िै। यि प्रवृतूत अथवा संस्कार अथवा वासना िी िै त्जसके कारण िम कफर उस काम को दीरानेमें प्रवृतूत िोतिैं त्जसे िम एक वार कर चुके िैं। इस प्रकार से सब कम शसंसार में अपना फल भी देते िैं और मन के ऊपर असर भी रखते िैं। जिां ंतक पिले प्रकार के कमों का सम्बन्ध िै उनसे िम बच निीं ंसकते, चािे ककतना िी प्रयमन तयों न करें। ककन्तु ुमानमसक प्रवृपृत्तयों के ऊपर िम काबू पा सकतिैं। िमारे भपवष्य-आचरण में सब प्रकार की संभावना िै। आममतनयन्त्रण द्वारा िम सद्वृपृत्तयों को बलवती एवं कुप्रवृपृत्तयों को तनबलश बना सकतिैं।

मनुष्यों के कमों के पवषय में भपवष्यवाणी एवं पूणगशणना की जा सकती िै। यहद वे पववेकपूण शिैं तो उनमें कुछ गुण रिंगे, उनके अन्दर िमें समानता र्दत्ष्टगोचर िोगी एवंतनःस्वाथ शप्रयोजन हदखाई देगा, आहद-आहद। ककन्तुइससे िम यि धारणा निीं ंबना सकतेकक कमाँ का तनणयश ककसी यात्न्त्रक भाव में िुआ िै। प्रमयेक जीवाममा स्वभावतः स्वतन्त्र िै। उसके कम शरीरल के धागे की तरि निींखुलते। मनुष्य को स्वतन्त्रता प्राप्त िोती िै जोकक धाममकश जीवन का केन्द्रबबन्दु िु। परमाममा ने उसे बिार से स्वतन्त्रता प्रदान निीं ंकी िै। उसे स्वतन्त्रता स्वभावतः प्राप्त िै। तयोंकक उसका मूल परब्रह्म के अन्दर िै। त्जतना िी अधधक वि अपनेदैवीय स्वरूप को पिचान सकता िै उतना िी अधधक वि मुतत िै।

कभी-कभी यि युत्तत दी जाती िै कक कममशसद्धान्त आत्स्तकवाद के साथ मेल निीं ंखाता िै।'[551] कम श एक पववेकरूून्य एवं ंअचेतन तत्त्व िै जो समस्त संसार पर अधधकार जमाए िुए िै। यि ईश्वर के भी अधीन निीं ं िै। िमें ऐसे न्यायाधीर् की आवश्यकता निीं ंजो एक यात्न्त्रक कानून का व्यवस्थापक िो। परमब्रह्म की सत्ता के साथ कममशसद्धान्त की कोई असंगतत निीं ंिै। कम शका नैततक मसद्धान्त परमब्रह्म के रूप की अमभव्यत्तत िै। मानवीकरण की र्दत्ष्ट से िम कि सकतिैं कक एक देवीयर्त्तत सारी प्रकक्रया का तनयन्त्रण एवं ंसंचालन करती िै। वेदों में इस तनयम को ऋत किा गया िै। वरुण ऋत का स्वामी िै। कम शदेवताओं के अपररवतनशरीृल काय शको बताता िै।552 यि यथाथसशत्ता के स्वरूप की अमभव्यत्तत िै। नैततक पवकास में ककसी प्रकार की स्वेच्छापूण शबाधा को यि असम्भव बना देता िै। आधुतनक समय के वैज्ञातनक तनयम व प्रवृपृत्त के मसद्धान्त भी इसी पररणाम पर पिुंचते िैं, मनमानिेस्तक्षेप के अनुकूल वे भी निीं ंबैिते। यहद ईश्वर की सत्ता को प्रमाणणत करने ेके मलए चममकार आवश्यक िैं तो पवज्ञान ने ऐसे ईश्वर को सदा के मलए पवदा कर हदया। दैवीय िस्तक्षेप का भी तनयमों के िी अधीन रिकर तनयन्त्रण िोता िै। ईश्वर अपनी व्यत्ततगत चेष्टाओंएवं संकल्पों द्वारा कम शनिीं ंकरता, जैसा कक मैमलब्रांर् का मत िै केवल कम शका मसद्धान्त िी िमें धाममकश पवश्व का िीकिन्ीक पवचार दे सकता िै। यि एक पूणब्रशह्म के पववेकपूण शस्वरूप का िमारे सामने ेप्रततपादन करता िै। यि एक ढांचा िै त्जसके द्वारा

---

551 देणखए् मैतनीकोल इंडडयनबेइज्जम', पृ० 225।

552 "देवानां धुवाणण व्रतातन ।"

जीवाममा कम शकरती ि ै। धाममकश जगत् ्की स्वतन्त्रता किोर यात्न्त्रक पववर्ता के साथ प्राकृततक जगत् ्में अमभव्यतत िोती िै।'[553] स्वतन्त्रता एवं ंकम शएक िी यथाथसशत्ता के दो पक्ष िैं। यहद ईश्वर पवश्व के अन्दर अवत्स्थत िै तब उसका भाव भी इस जगत् ्रूपी यन्त्र के अन्दर पवद्यमान िै। दैवीय र्त्त तनयम में अपनेको अमभव्यतत करती िै पर तनयम ईश्वर निीं ंिै। ग्रीक पवद्वानों का भाग्य, एथेंस में जीनो द्वारा संस्थापपत दार्तशनक सम्प्रदाय का तकश, चीनी दार्तशनकों का ताओ आहद बत्रकालाबाधधत तनयम के िी मभन्न-मभन्न नाम िैं।

कम-शमसद्धान्त से बढ़कर कोई दूसूरा मसद्धान्त जीवन एवं ंआचरण में इतना अधधक मित्त्व निीं रखता। इस जीवन में िमें जो कुछ िोता िै, िमें बबना ककसी क्षोभ के स्वीकार करना चाहिए कक यि िमारे पपछले कमों का िी फल िै। ककन्तु भपवष्य कफर भी िमारे अपने ंवर् में िै और इसमलए इस आर्ा एवं पवश्वास के साथ कम शकर सकतिैं। कम शभपवष्य के प्रतत आर्ा का संचार करता िै एवंभूतूकाल को भूल जानेको किता िै। इससे े मनुष्य-जातत को यि अनुभव िोता िै कक संसार के पदाथों, सफलताओं एवं पवफलाताओं से आममा के गौरव पर कोई अवांछनीय प्रभाव निीं ंप़ सकता। केवल पुण्य िी श्रेय िै न कक पद और धन-दौलत, जातत अथवा राष्रीयता। साधुता के अततररतत अन्य कुछ श्रेय या कल्याणकारी निीं ंिै।

19. पारलौककक जीवन

उपतनषदों में िम परलोक के समबन्ध में वैहदक एवं ंब्राह्मण काल के पवचारों से आगे का पवकास पाते िैं, यद्यपप पारलौककक जीवन के सम्बन्ध में अभी तक कोई सुसंगत मसद्धान्त त्स्थर निीं ंिो सका िै। उपतनषदों में पुनजन्शम का पवचार सुस्पष्ट िै। इसका प्राचीनम रूप र्तपथ ब्राह्मण में िमारे सम्मुख आता िै, जिां ंमृमृयुके पश्चात् ्कफर से जन्म लेनेएवं बार- बार मृमृयुका भाव प्रमयपकार के साथ सत्म्मधश्रत रूप में पाया जाता िै। यि किा गया िै कक त्जन व्यात्ततयों को यथाथ शज्ञान िै, और जो अपनेकतव्शयों का िीकि-ीक पालन करते िैं, मृमृयु के पश्चात् ्अमरमव की प्रात्प्त के मलए जन्म लेते िैं, जबकक दूसूरी ओर ऐसे व्यत्तत त्जन्िें यि ज्ञान निीं और जो अपनेकतव्शयों के पालन में लापरविी करते िैं, बार-बार जन्म लेते िैं एवं मृमृयुका मर्कार बनते िैं।'[554] ब्राह्मण परलोक में भी जन्म एवंमृमृयुधारण करता िै। उपतनषदों में इसी पवश्वास को पुनजन्शम के मसद्धान्त का रूप हदया गया िै। िम निींकि सकतेकक इन दोनों मतों का समन्वय िो सकता िै या निीं। कभी-कभी िमें वे दोनों एकसाथ ममलतिैं। अच्छे व बुरे कमों का दो प्रकार का प्रततफल ममलता िै-एक बार परलोक में,

---

553 िमारे मलए कम शके मसद्धान्त को उपतनषदों में प्रततपाहदत ब्रह्मा की इच्छा के मसद्धान्त के पवरुद्ध उपत्स्थत करने की जावश्यकता निीं िै। ये दोनों पस्पर पृथक निीं िै। वैहदक मसद्धान्त की भांतत यहद बुित-से देवता िोंगे तो स्वयं ंदेवता भी कम शके अधीन िोंगे। "स्वयं ंदेवता भी उस व्यत्तत को जो उनका पप्रय िै, मृमृयु की भयावि तनयतत से करते िुए किता िै। कक यि 'भाग्य' की िी बात िै। पप्रय िै, पैरोततस के िाथों मरना पगो। बचा निीं ंसकते। स्वयं ंजीअस (ग्रीक इंद्र) पवलाप कक उसके पुत्र सापेंदोन को, 'भाग्य के तनणवश जो उसे सवाधशधक का सिास उसमें को बदलने निीं िै।' स्वयं ंककसी देवता के मलए भी भाग्य के आदेर् की टालना संभव निीं ंिै। यूररपपडी़ में एथेना अनात्तसमांडंर के र्ब्दों का प्रयोग करतिुए किती िै,

'भाग्य का आदेर् देवताओं का और तेरा स्वामी िै।" कॉनफशोड श'फ़ाम ररमलजन टु कफलॉसफी', पृष्ि 12,13।

554 तुलना कीत्जए, पुनमूमशयु का भाव। कौषीतकक ब्राह्मण, 25 : 1।

और दूसूरी बार इस ममयलशोक में पुनजन्शम के रूप में। यि किा गया ि कक जीवाममा मृत् र्रीर के भस्मीभूत िो जानेपर जब ज्जयोततमयश आकार में स्वग शकी ओर यात्रा करती ि तो विांसे तमकाल िी तीन मागों से नये जन्म में वापस लौट आती ि।555 इस पवषय की पयाप्शत साक्षक्षयां िमारे पास ि कक उपतनषमकाल में पुनजन्शम-पवषयक पवश्वास केवल पररपतवता तक पिुंचने के क्रम में था, तयोंकक उपतनषदों के कुछ स्थलों पर इसका एकदम पता निीं ममलता।'[556] पुनजन्शम-सम्बन्धी पवश्वास का वणनश करनेवाले सबसे पूव शके वातय छान्दोग्य (53,10) एवं बृिदारण्यक (6: 2) में ममलतिैं।

अमरमव का उच्चतम रूप ब्रह्म के साथ एकाकार िो जाना िी ि, यि मत उपतनषदों में स्पष्टरूप से प्रततपाहदत ककया गया ि। त्जस समय देवताओं को िी सवोपरर सत्ताओं के रूप में माना जाता था, स्वतन्त्रता का उनके साथ समवाय-सम्बन्ध था। अब ब्रह्म िी पदाथों का प्रधान तमव ि एवं संसार का परम आधार ि। इस प्रकार ब्रह्म के साथ योग का िी नाम तनमय जीवन ि। जब तक िमारे अन्दर उच्चतर स्वतन्त्रता की कुछ भी न्यूनता रिेगी, िमें काल के क्षेत्र का बन्धन रिेगा और िम जीवन के एक क्षेत्र से दूसूरे क्षेत्रों में र्ीघ्रता के साथ गुजरते रिेंगे। जो आममा मुतत निीं िुई ि वि जन्म एवं मृमृयु के अधीन रिती ि, और इसी लोक में बार-बार जन्म लेकर अपनी तनयतत का तनमाणश करती ि। जिां यथाथ शअमरमव मुततामयाओं के मलए ि, कालक्रम से जीवन धारण करना बद्ध आमम‍ाओं के मलए ि। िमें ऐसी प्राथनशा सुनने को ममलती ि कक "म ैंउस वणरूशनूय लोक में कदापप न जाऊं जो पवना दांतों के िी खाए डालता ि।"[557] कमों के अनुसार िी जन्म के प्रकार का तनणयश िोता ि। जब जीवाममा अपनेर्ुभ कमों से अपनेको ऊंचा उिाती ि तो उसे िम स्वग शकिते िैं और जब बीच कमों से अपनेको नीचे धगराती ि तो उसे िम नरक किते िैं। इस संसार में जो जीवाममा का अत्स्तमव ि वि यथाथ शअत्स्तमव निीं ि। जब तक सान्त पदाथ शिमसे धचपटे रिेंगे, िमें संसार की दासता में रिना िोगा। सान्त पदाथों के साथ जब तक िम धचपटे रिेंगे, कभी भी परमसत्ता को प्राप्त निीं कर सकेंगे, भले िी िम उसके ककतने िी समीप तयों न आ जाएं। प्रगतत या तो तनरन्तर पवकास का नाम ि या कफर सतत आसन्नता ि। जय सान्तता के घटक का सवधशा मयाग कर हदया जाएगा तभी ईश्वर के साथ एकाकार िोना सम्भव िो सकेंगा और कफर संसार में लौटना न िोगा558। संसार की आवश्यकता जीवाममा के प्रमर्क्षण के मलए ि।

प्राकृततक जगत् िमें अनुभव कराता ि कक इस लोक के सब पदाथ शककस प्रकार से अत्स्थर एवं अवास्तपवक िैं। इस संसार के अन्दर िम प्रमयेक पदाथ शका तनरन्तर जन्म एवं तनरन्तर पवनार् पाते िैं। "मरणधमाश मनुष्य अन्न (अनाज) की तरि िी क्षीण िोता ि और अनाज की भांतत िी कफर पैदा िोता ि।"[559] पवनार् केवल नये जीवन का अग्रदूत ि। मृमृयु दूसूरे जीवन का द्वार ि। यद्यपप कम-शमसद्धान्त अभी तक योग्यता एवंअनुभव के मध्य में सूक्ष्मतर रूप में कोई समानता तो निीं हदखला सका तो भी यि तनश्चयपूवकश

---

555 बृिदारण्यक , 62,141।

556 विी ,1:5,16 ।

557 छान्दोग्य ,8:14, 1।

558 विी ,4:16, 6 ।

559 कि 1:8।

किा जा सकता ि ै कक जन्म का स्वरूप मनुष्य के आचरण के ऊपर तनभरश करता ि।ै ऐसे व्यत्तत त्जनका आचरण उत्तम रिा ि,ै तुरन्त उत्तम जन्म-लाभ कर सकें, यथा ब्राह्मण, क्षबत्रय अथवा वैश्य I ककन्तु ऐसे व्यत्ततयों को भी त्जनका आचरण पापमय िोगा, नीच योतन में जैसे सूअर, कुत्ते अथवा चाण्डाल का जन्म ममलेगा।560

एक जन्म और दूसूरे के बीच में तनरन्तर एकरूपता बनी रिती ि,ै भले िी िमें उसकी चेतना न िो। यि कोई बड़ी कम ़ेरी निीं ंि,ै तयोंकक कई बार तो मनुष्य-जीवन के ब़्-े ब़् ेभाग तक पवस्मृत िो जाते िैं इस मसद्धान्त का सम्बन्ध चेतना की तनरन्तरता की अपेक्षा उपयोधगता के संरक्षण से अधधक ि।ै चूंकक पवश्वाममा ब्रह्म बन्धन के अधीन निीं ंि,ै इसमलए जन्म में जो त्स्थर रिता ि ै वि मनुष्य का कम शिी ि।ै "ि े याज्ञवल्तय! तया आममा र्रीर की मृमृयु के उपरान्त पवद्यमान रिती ि?ै यहद मनुष्य की मृमृयुके उपरान्त उसकी जीवाममा अत्ग्न में, श्वास वायु में, आंखें सूय शमें, मन चन्द्रमा में, कान दरे् की पवमभन्न हदर्ाओंमें, र्रीर पृथ्वी में, अिं अन्तररक्ष में, र्रीर के बाल पौधों में, मसर के बाल वृक्षों में प्रवेर् करते िैं, और रतत एवं वीय शजल में, तो कफर मनुष्य का तया िोता ि ै ?" यि प्रश्न आतभशाग ने याज्ञवल्तय से ककया। वे इस पररणाम पर पिुंचते िैं, "यथाथ शमें अच्छे कमों के करने स ेवि पुण्याममा और बुरे कमों से पापाममा िोता ि।ै"[561] जीवन की यथाथतशा आचरण ि,ै र्रीर व मन निीं। मृमृयु के पवश्लेषण के पश्चात् भ्ी यि पवद्यमान रिती ि।ै उपतनषदों का मत ि ै कक कम श में पररवतनश िो सकता ि ै परन्तु पवश्वाममा त्स्थर रिता ि।ै ककन्तुयहद कुछ बौद्ध पवचारकों के साथ सिमत िोकर मि ब्रह्म को तनरथकश बताकर छो़् दें तब िमें मानना प़्ेगा कक केवल कम शिी त्स्थर रिता ि।ै

याज्ञवल्तय के उपदेर्ों में पर्ुओंकी कोई चचाश निीं ंि,ै जो बृिदारण्यक उपतनषद् के चतुथ शखंड के साथ समाप्त िोते िैं, यद्यपप उसी उपतनषद् के अत्न्तम पररच्छेदों[562] एवं ंछान्दोग्य, कौषीतकक आहद उपतनषदों में आममा के पर्ुयोतन में जाने का भी उल्लेख ममलता ि।ै ऐसा प्रतीत िोता ि ै कक यि भाव आहदम जाततयों के पवश्वासों से मलया गया। संसार के प्राय: सभी भागों में अमर्क्षित असभ्य लोगों का यि पवचार रिा ि ै कक मानवीय आममाएं पर्ुओंके र्रीर में जा सकती िैं। आयजशातत के आक्रान्ताओं ने भारत के आहदवामसयों के संसग शमें आकर यि पवचार ग्रिण ककया कक पर्ुओंएवं पौधों में भी आममा ि ै और मानवीय आममा भी कभी- कभी उनके अन्दर अपना तनवासस्थान बनाती ि।ै सब योतनयों में जीवन की पपवत्रता, तथा पुष्प, कीट, पर्ु ुऔर मनुष्य में उस आहदकारण की समानता आहद उपतनषदों के मूलभूत पवचार थे, त्जन्िोंने ेउपतनषदों को इस त्स्थतत को स्वीकार करनेके मलए पववर् ककया। इसका कक्रयाममक मित्त्व भी बिुत ि।ै जंगलों में त्स्थत आश्रमों के अन्दर पर्ुओंके प्रतत जो दया का भाव प्रदमर्तश ककया जाता था उसका कारण भी यिी मसद्धान्त था। अमभमानी मनुष्य को अपनी कपटभद्रता एवं ंपृथग्भाव का मयाग करके सटें फ्ांमसस की नम्रता के साथ स्वीकार करना प़्ा कक

---

560 छान्दोग्य , 5: 10,71

561 बृिदारण्यक ,3:2, 13।

562 विी | 6:3, 16

काला भौंरा भी उसका भाई ि ै। जब िम आधुतनक पवकासवाद पर एवंउसके द्वारा मनुष्य और पर्ुओंमें परस्पर बन्धुमव पर हदए जानेवाले बल पर पवचार करते िैं तो िमें आश्चय शर्निीं ंिोता।

कोई भी दर्नश अपनेभूतकाल का एकदम मयाग निीं ंकर सकता। उपतनषदों को परलोक-जीवन-सम्बन्धी मसद्धान्त के साथ-साथ पुराने ेवैहैदक मसद्धान्त को भी मानना पा, त्जसके अनुसार परलोक में पुरस्कार एवंदण्ड का पवधान था। मनुष्य की अनुदार आममा ने पुनजन्शम के नये पवचार को प्राचीन परलोकर्ास्त्र के साथ संयुतत करने ेका प्रयमन ककया, त्जसमें पेरेतामममाओं के आह्लादपूण शलोक का वणनश था, यिां ंयम का र्ासन ि ै एवं दुःखमय और अन्धकारपूण शलोक भी ि ै। इसके कारण उपतनषद् के मसद्धान्त में जहटलता उमपन्न िो गई, तयोंकक उसमें मृमृयु के पश्चात् ्तीन मभन्न-मभन्न मागों या यानों का वणनश था। "तयोंकक िमनेएक ऋपष से भी सुना, "मनैं ेमनुष्यों के मलए दो माग शसुने िैं; एक पपतृलोक का माग शि ै और दूसूरा देवलोक का माग शि ै। उतत दोनों मागों पर िी समस्त जंगम जगत् ्जो पपतास्थानीय अन्तररक्ष एवं मातास्थानीय पृथ्वी के मध्य अवत्स्थत िै, गतत करता ि ै ।"[563] उपतनषदें उन दो मायों का उल्लेख करती िैं त्जनके द्वारा मृत पुरुष की आममा इस लोक में ककए गए कममों के फलों का उपभोग करती ि ै। एक को 'देवयान' अथवा 'अधचमशाग'श किते िैं अथाश् ्प्रकार्मय माग,श जऔर दूसूरा पपतृयान अथवा धूममाग शअथात्श ्अन्धकारमय माग।श पिला अत्न इमयाहद पवमभन्न क्षेत्रों में िोकर ब्रह्मलोक अथवा समयलोक की ओर ले जाता ि ै। उतत क्षेत्र से कफर आममा लौटकर इस संसार में निीं ं आती। जब तक ब्रह्मा को एक पवषयाधश्रत सत्ता के रूप में माना जाता रि ा, जो अपनेराजभवन में ऊंचेमसंिासन पर बैिा था और त्जसके पास पुण्याममा पपवत िी जाते थे ेतभी तक देवयान का अमभप्राय रि ा। ककन्तु जब जीवाममा एवं ब्रह्म का तादामम्य िो जाता ि ै तब ब्रह्मा का वि आसन डगमगा जाता ि ै और देवयान उच्चतम सत्ता के साथ एकाकार िोने ेका माग शबन जाता ि ै। पपतृयान का माग शममन्न-मभन्न धूम्र एवं ंराबत्र आहद के अन्धकारमय क्षेत्रों में से गुज़र कर चन्द्रलोक की ओर ले जाता ि ै। वे आममाएं जो देवबान के माग शसे जाती िैं, कफर लौटकर इस जगत् ्में जन्म निीं ंलेती। परन्तु वे जो पपतृयान के माग शसे जाती िैं, अपनेसुकमों का फल भोगकर कफर इस लोक में जन्म लेती िैं। ब्यौरे में नाना प्रकार के मतभेद िैं। कौषीतकक उपतनषद् के मत से मृमृयु के पश्चात् ्सब आममाएं चन्द्रलोक को जाती िैं, यद्यपप चन्द्रलोक से कुछ पपतृयान माग शद्वारा ब्रह्म को प्राप्त िोती िैं जबकक अन्य आममाएं- मनुष्य से लेकर कीट तक की जीवन की अनेक योतनयों में अपनेकम शके गुणों एवं ं ज्ञान की श्रेेणी के अनुसार जाती िैं।'[564] देवयान एवं पपतृयान क्रमर्: प्रकार् एवं अन्धकार के राज्जय के अनुसार िैं, त्जनके कारण िम संसार में जन्म लेते िैं। एक तीसरे माग शका भी उल्लेख ममलता ि ै, जो दुःखमय ि ै एवं अन्धकार से आवृत ि ै।565 यि व्यत्तत जो ऐसी सूखी गायों का त्जन्िोंने जल एवं ंघास खानेके बाद दूधू हदया ि ै ककन्तु ुअब सूख गई िैं, दान करते िैं। वे अपने-आप उन दुःखमय लोकों में जाते िैं।566 यि वि तीसरा माग शि ै

---

563 वि ी ,6:2,2 ।

564 1:2,3 ।

565 बृिदारण्यक , 4:11।

566 कि, 1/3

 त्जस पर की़ -ेमको़ ेएवं ंसरीसृपृ जाकर इस संसार में जन्मते और मरते िैं।567 मुततामममा को, त्जसने ेब्रह्म के
साथ अपने तादामम्य का साक्षात् ्कर मलया िै, अपनेमोक्ष के मलए किींनिीं ंजाना िोता िै।'[568] यि जिांभी रिती िै, ब्रह्म के आनन्द को अनुभव करती िै। "उसके प्राण किीं ंनिीं ंजाते। ब्रह्म िोने ेके कारण वि ब्रह्म के स्वरूप में लीन िो जाती िै।"[569] त्जन्िोंनेमोक्ष प्राप्त कर मलया िै वे ेककसी भी माग शसे निीं ंजाते ेककन्तुवे त्जन्िें उसकी
प्रात्प्त के मलए चढ़कर जाना िै, देवयान के माग शसे जाते िैं। चूंकक क्रममक चढ़ाई का वणनश ककया गया िै, इसमलए
इसे क्रमममुत्तत किकर पुकारा जाता िै।

पुनजन्शम की योजना की व्याख्या पवपवध प्रकार से की जाती िै। "तब उसका ज्ञान और कम शएवं पूव-श अनुभव उसे िाथ पकड़कर ले जाते िैं। जैसे एक कीड़ा रेंगते-रेंगते घास के ऊपर आ जाता िै और एक बार सारे रीर को मसकोड़ लेता िै तब दूसूरी घास के मसरे पर आगे बढ़ता िै, इसी प्रकार मनुष्य भी, त्जसने ेअपना रीर छोड़ हदया िै, मसकुड़कर नये जन्म में अग्रसर िोता िै ।"[570] आगे चलकर "जैसे एक सुनार सोनेका एक टुकड़ा लेकर और उसे घड़कर दूसूरी आकृतत बनाता िै जो अधधक नई एवं आनन्दप्रद िोती िै, उसी प्रकार रीर छोड़कर एवं उसी ज्ञान के साथ आममा एक ऐसी अधधक नई आनन्दप्रद आकृतत बनाती िै जो इस संसार के अनुकूल िो।" "जैसे एक मूततकशार एक मूतत शसे सामग्री लेकर उससे अपनी सैनी द्वारा दूसूरी आकृतत बनाता िै जो अपेक्षाकृत अधधक नई एंव अधधक सुन्दर िोती िै वैसे िी यि जाया भी अपना रीर छोड़कर और अज्ञान को दूरू करके अपने मलए एक अन्य अपेक्षाकृत नावे एवं अधधक सुन्दर आकार का तनमाणश करती िै वि चािे पपतरों का िो, गन्ययों का िो या देवताओं ंका: प्रजापतत का िो या ब्रह्म का अथवा अन्य प्राणणयों का।"[571] कभी-किीं ंयि किा गया िै कक मृमृयु के उपरान्त अपनेअन्दर जीवनधारक नैततक प्रवृपृत्तयों को एकत्र करके आममा पवदा िोती िै, और उन सबको दूसूरे रीर में साथ ले जाती िैं, चािे वि रीर उमपन्न िो या निींजैसा कक छोड़ िुए रीर के द्वारा ककए कमों के अनुसार उसे नये जन्म में प्राप्त िुआ।'[572] इस मत को उसके पश्चात् ्के मसद्धान्तों में मलंग-रीर का नाम देकर अधधक पवकमसत ककया गया और धथयोसोकफस्टों के द्वारा इस मत का ज्ञान पंत्श्चमी पािकों तक पिुंचाया गया। वे इसे सूक्ष्म रीर किते िैं। यि सूक्ष्म रीर मन एवंआचरण का वािक बनता िै, और भौततक रीर से पवनार् के साथ इसका पवनार् निीं िोता। यिी सूक्ष्म रीर नये भौततक रीर का आधार बनता िै और उसी के ऊपर नये जन्म में नया रीर बराबर भौततक-रूप में तनममतश िोता िै तथा त्स्थर रिता िै। यि भी किा गया िै कक एक िी यथाथसशत्ता से सब प्राणी अपने-अपनेवैयत्ततक जीवनों में आते िैं, और उसी में कफर पवलीन िो जाते िैं।573

---

567 बृिदारण्यडक6:2.16;िमें इसी केसमान परंपराएं 'नॉत्स्टक' लेखों में एवं सटें पाल के लेखों में हदखें िैगेसन मलणखत 'प्रोलेगेममना दु ुग्रीक ररमलजन' एवं गाडनशर की 'द ररमलजस एतसडपीररएंस जाफ सटें पाल'।

568 कि 6:14।

569 बृिदारण्यक, 4: 4,6।

570 विी, 4: 4, 3।

571 बृिदारण्यक 4:4,4 देखें, छान्दोग्य भी, 5/10 2; कौषीतकक, 1, 2, बृिदारण्यक, 1/5 , 16।

572 देखें, बृिदारण्यक, 4:3, 38, 44, 5 प्रश्न, 3 10; कौषीतकक, 4:3 ।

573 छान्दोग्य, 6 9, 2; 6:10, 1, 2।

उपतनषदें भौततकवाहदयों के इस मत का समथनश निीं ंकरतीं कक मृमृयुसे जीवाममा नष्ट िो जाती िै। उन्िें जीवन की तनरन्तरता में दृढ़ पवश्वास िै और उनका मत िै कक र्ारीररक मृमृयुके पश्चात् ्भी एक वस्तु ु पवद्यमान रिती िै। पुरुष-स्त्री का लधैंगक सम्बन्ध ऐसी अवस्थाएं उमपन्न कर देता िै त्जनमें नया जीवन प्रकट िोता िै। ककन्तु यि अपने-अपनेनये जीवन की पयाप्शत व्याख्या निीं ंिै। चेतना की उमपपत्त की व्याख्या केवल एक कोर्ाणु के पवकास के द्वारा निीं ंकी जा सकती। अध्यात्ममक ज्ञान-सम्बन्धी यि कल्पना कक प्रमयेक बार जबरताची िै, उजनमापदोंकी किल्पनाईश्वरअथवाकये जीवाममा का तनमाणश सन्तोषप्रद प्रतीत िोती त्जसके अनुसार जीव अपनेको वीयरूशपी बीज में अमभव्यत्तत करता िै और जो योतन उसे े आवश्यक रूप में प्राप्त िोनी िोती िै, उसमें जाता िै।

पुनजन्शम की कल्पना उसी प्रकार की एक बबलकुल तकशसम्मत कल्पना िै जैसी अन्यान्य ककतनी िी कल्पनाएं िमें दार्तशनक क्षेत्र में ममलती िैं और जो तनश्चय िी तनतान्तरून्यता अथवा तनमय-प्रततकार की कल्पनाओं की अपेक्षा किीं ंअधधक सन्तोषप्रद िै। इस जगत् ्में प्रतीयमान त्जतनी भी नैततक अव्यवस्था अथवा दु:खों की पवश्रृंखलता िै, पुनजन्शम एवं कम शका मसद्धान्त िी उसकी व्याख्या कर सकता िै। दु:ख का अनुधचत पवभाजन पवश्व की पववेकपूणतशा के पवरुद्ध जाता प्रतीत िोता िै। जैसे भौततक इत्न्द्रयगम्य जगत् ्की असमानताएं ताककशक पवश्वास के मलए एक प्रकार की चुनौती िैं, उसी प्रकार नैततक अव्यवस्था इस जगत् ्में काम करनेवाले मसद्धान्त के औधचमय के मलए एक चुनौती िै। यहद िमारा जन्म पववेकपूण शिै तो कफर ककसी प्रकार की भी बौद्धधक एवं नैततक अस्त-व्यस्तता निीं ंिोनी चाहिए थी। यहद नैततक अस्तव्यस्तता एक तनयतत िै तो पररणाम नैततक जड़ता या र्त्तिीनता के रूप में िोगा। नैततक जगत् ्में दृत्ष्टगोचर िो रिी आश्चयजशनक अस्तव्यस्तता को एक धमस्शवरूप एवं ंिमान जगत् ्के र्ासक ईश्वर के अत्स्तमव के साथ िमें समन्वय करना िी िोगा। यि पवचार करके कक संसार का संगिन एक अव्यवत्स्थत रूप में िुआ िै, िम सन्तोष निीं ंकर सकते। जो कल्पना नैततक जगत् ्की अव्यवस्था एवं दु:खों के कारण की खोज करते-करते मनुष्यों के धम-शस्वातन्त्र्य तक पिुंचती िै, उन असमानताओं की व्याख्या निीं ंकर सकती त्जन्िें लेकर मनुष्यों को इस संसार में डाल हदया गया िै। प्रारत्म्भक रचना में पवद्यमान पारस्पररक ये भेद दैवीय व्यवस्था-सम्पन्न पवश्व के साथ पवरोध में पड़े यि पुनजन्शम की कल्पना िी िै जो िमारे आगे इस प्रारत्म्भक भेदों या असामानताओं की एक व्याख्या उपत्स्थत करती िै। यि िमें अनुभव कराती िै कक संसार में सुख और दु:ख प्रगततर्ील मर्क्षा एवं चररत्र के कारण िी िैं। दण्ड केवल प्रततर्ोध के पवचार से िी निीं ंअपपतु सुधार के पवचार से भी हदया जाता िै। िमें अपनेपापों के मलए दण्ड ममलता िै और साथ-साथ उसी प्रायत्श्चतरूप दण्ड से िम पपवत्र भी िो जाते िैं। िमें जो दु:ख ममलता िै वि िमारी भलाई के मलए िै।

पुनजन्शम के मसद्धान्त के प्रादुभुावश-सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर िमनेपूवानुशमान के आधार पर हदया िै। िमनेदेख मलया िै कक ककस प्रकार से इसका स्वभावत: उस पवचार-समुदाय के अन्दर से प्रादुभुावश िुआ त्जसने उपतनषदों को घेर रखा था। वेद िमें दो मागों, अथात्श ्देवों एवं पपतरों के मागों, का पता देते िैं। भारत के

आहदतनवासी मानवीय आममाओंके वृकूषों एवं पर्ुओंके अन्दर प्रवेर् का पवचार िमें देते िैं। ब्राह्मणग्रन्थों में प्रततफल की आवश्यकता पर बल हदया गया िै। उपतनषदों का काम इस सब प्रस्तुत सामग्री को संसार के मसद्धान्त के रूप में पररणत कर देना मात्र था। इसमलए िमें इसके आहदम उद्भव की स्वतन्त्र खोज के मलए इधर-उधर भटकना न िोगा। यहद प्राचीन ग्रीस में इसी प्रकार के मसद्धान्त िमें ममलतेिैं तो उनके उद्भव एवं पवकास स्वतन्त्र रिे िोंगे, यद्यपप आधुतनक पवद्वान इस मत के पवरुद्ध िैं। इस प्रश्न पर िम भारतीय एवं ंग्रीक पवचार पर दो पवचारकों के प्रमाण उद्धृत करते िैं। मैतडॉनल किते िैं कक "भारतीय दर्नश एवं पवज्ञान के ऊपर पपथागोरस की तनभरशता बिुत अधधक मात्रा में संभव िै। पपथागोरस के सम्बन्ध में किना िोगा कक उसके लेखों में आया िुआ आवागमन का मसद्धान्त बबना ककसी पूवसशम्बन्ध एवं ंपृष्ठिभूमम के िै और ग्रीक पवद्वान उसे पवदेर्ों से मलया गया समझते ेथे। ममस्र से उसे यि निीं ंममल सकता था, तयोंकक प्राचीन ममस्र में इसका किीं ंपता निीं ंममलता।"[574] गौम्प र्मलखते िैं, "पपथागोरस के मसद्धान्तों एवं ंभारतीय मसद्धान्तों में तनकटतम अनुकूलता िै, केवल सामान्य रूप में िी निीं ककन्तु पववरण में भी अनुकूलता िै, जैसे कक र्ाकािार के मसद्धान्त के सम्बन्ध में; और यि किा जा सकता िै कक त्जस व्यवस्था के अनुसार जन्म-जन्मान्तर के पूरे चक्र की व्याख्या सूत्ररूप में की गई िै, वि सब भी िीक उसी रूप में दोनों जगि एक समान ममलती िै। इस समता को िम केवल आकत्स्मक कि सकें यि प्रायः असम्भव िै। यि धारणा बनाना अनुधचत न िोगा कक उतत त्जज्ञासुग्रीक

[illegible] न्यूनाधधक मात्रा में पूव शकी धाममकश कल्पनाओं की मर्क्षा को यथाथरूशप में ग्रिण कर मलया िो, तयोंकक वि युग बौद्धधक पवक्षोभ का युग था और यि आदान-प्रदान फारस के माध्यम से िुआ।"[575] एक बात तो बबलकुल स्पष्ट िै कक भारतीयों ने इस मसद्धान्त को किीं ंबािर से उधार निीं ंमलया।

20. उपतनषदों का मनोपवज्ञान

यद्यपप उपतनषदों में ककसी मनोवैज्ञातनक पवश्लेषण का पता निीं ंममलता कफर भी िम उनमें से ऐसे पवचारों को एकत्र कर सकतेिैं त्जन्िें उन्िोंनेअन्यत्र ग्रिण से ककया िै। प्रश्न उपतनषद् में[576] दस इत्न्द्रयों का, त्जनमें पांच कमेत्न्द्रयां ंऔर पांच ज्ञानेत्न्द्रयां िैं, उल्लेख िै जो क्रमर्: कम शऔर ज्ञान के उपकरण िैं। ये इत्न्द्रयांमन की अधीनता में रिकर काय शकरती िैं, मन एक केत्न्द्रय इत्न्द्रय िै त्जसके मुख्य काय शिैं प्रमयक्ष ज्ञान प्राप्त करना और कम शकरना। मन के बबना इत्न्द्रयांतनष्प्रयोजन िैं।577 यिी कारण िै कक मन को प्रधान इत्न्द्रय किा गया िै। मन अथवा प्रज्ञा रूप साधन के अभाव में वाणी ककसी पदाथ शका ज्ञान निीं ंकरा सकती। यि किती िै कक "मेरा मन उपत्स्थत निीं ंथा।" "मनैं ेउस जगत् ्को निीं ंदेखा।" प्रज्ञा के

---

574 हिस्री ऑफ संस्ंकृत मलटरेचर ', पृष्ठि 422।

575 ग्रीक धथंकंस,श खण्ड 1, पृष्ठि 127। एक मभन्न मत के मलए देणखए, कीय मलणखत 'पपथागोरस ऐन्ड दांतमाइग्रेर्न', जनलश आफ द रायल एधथयाहटक सोसायटी, 1909 ।

576 4:2।

577 बृिदारण्यक,1:5,3।

अभाव में आंख ककसी आकृतत का ज्ञान निीं ंकरा सकती।"[578] "मेरा मन अनुपत्स्थत था, इसमलए मनैं ेनिीं ंदेखा, मेरा मन किीं ंऔर था, इसमलए मनैं ेनिीं ंसुना, इस प्रकार यि प्रकट िै कक मनुष्य अपनेमन के साधन से देखता िैऔर मन के साधन से सुनता िै।"[579] मन को स्वरूप से भौततक माना गया था।580 इसमलए इत्न्द्रयानुभव के मलए उपतनषदों ने प्रततपादन ककया िै कक केवल इत्न्द्रय िी पयाप्शत निीं ंिै और न केवल उसका कम शिी पयाप्शत िै, अपपतु एक आममा को िोना आवश्यक िै जो उस इत्न्द्रय के साधन से देखती िै; विी वस्तुतः द्रष्टा की आंख िै। इत्न्द्रयों के अपनेपवषयभूत पदाथों के साथ सत्न्नकष शिोनेसे प्रमयक्ष ज्ञान िोता िै।581 मनुष्य एक समय में मन को एक िी ओर लगा सकता िै।'[582] बुद्धध मन से ऊंची िै। ऐतरेय में बुद्धध के काय शइस प्रकार ममलतेिैं, "संवेदना या अनुभव, प्रमयक्षज्ञान, धचन्तन, संबोधना या सामान्य प्रमयय, अथग्रशिण, अन्तर्दशत्ष्ट, प्रततस्थापन, सम्मतत-तनधारशण, कल्पना-र्त्तत, सिानुभूतत या शारीररक संवेदना, स्मृतृत, संकल्प, प्रयास, जीपवत रिनेकी इच्छा, अमभलाषा, एवं आममसंयम, ये सब बुद्धध अथवा समझने ेकी कक्रया के मभन्न-मभन्न नाम िै ।"[583] उतत पवश्लेषण समीक्षा के आगे ििर निीं ंसकता, ककन्तुि मित्त्वपूण,श तयोंकक यि दर्ातशा िै कक यिां ंतक कक इतने

प्राचीन उपतनषदों के काल में भी मनोपवज्ञान-संबंधी संवाद िोतेथे। सबसे उच्च स्थान पर जीवाममा िै, जो आंखों की आंख, एवं ंकानों की भी कान िै। यि बुद्धध, मन, इत्न्द्रयों एवं ंप्राण आहद सबको तनयंत्रण में रखती िै।"[584] इसे सवव्शयापक एवं परमसत्ता के रूप में माना गया िै।585 ऐसे भी वातय उपतनषदों में ममलतेिैं त्जनमें जीवाममा को भौततक गुणों से युतत बताया गया िै और उसका पवश्वास स्थान हृदयाकार् में तनहदशष्ट ककया गया िै।"[586] आकार की र्दत्ष्ट से जौ अथवा चावल के कण के समान उसका आकार बताया गया िै।"[587] अधिशस्त के पररमाण"[588] अथवा अंगिू के आकार का भी किा गया िै।"[589] जब िम स्मरण करते िैं कक अरस्तू नेअपने'द अतनमा' में जीवाममा का स्थान हृदय में तनदेर् ककया और गैलन ने मत्स्तष्क में, डेकाटश ने जीवाममा के स्थान की कल्पना र्ीषग्रशत्न्थ अथवा तृतीयनेत्र-ग्रत्न्थ में की, और लोमसे ने मत्स्तष्क में की, तो यि कोई आश्चय शका पवषय निीं ंिै कक उपतनषदों के मनोवैज्ञातनकों ने उसका स्थान हृदयदेर् में तनहदशष्ट ककया।

578 कौपीतकक।

579 बृिदारण्यक, 3/1 ,4 ।

580 प्रोफेसर अलेतेंडर मन को एक पवर्ेष सत्ता के रूप में मानते िैं और उसकी रचना को भी भौततक बताते िैं, जैसे कक भीततक-पवज्ञान का पवद्युदणु िोता िै।

581 एत्पडोतसी और डेमोक्राइट्स के पवचार इस पवषय में जो िैं, उनकी तुलना कीत्जए।

582 कौषीतकक, 3/2।

583 3/2 ।

584 बृिदारण्यक, 4: 4, 5i * 1/4 5/6 2:1, 17, 3:7, 22, 4:3, 7, 4:5, 13।

585 कि, 1/2 21; मुणुडक, 1 1, 6 ।

586 बृिदारण्यक, 4/3.17, 5 :6, 11. छान्दोग्य, 8 3, 5, 51, 6, कि, 2/20 3:1: 4/6 6/18 : और श्वेताश्वतर, 3/11.2 हृदय अथवा िमपच मेरुदण्ड का सूक्ष्मकेन्द्र िै।

587 बृिदारण्यक, 5/6.1 : छान्दोग्य, 3/14, 3।

588 छान्दोग्य, 5/18 1।

589 कि, 4/17 2/2 I_श्वेताश्वतर 3:13 ।

मन चेतना की अपेक्षा क्षेत्र में अधधक पवस्तृत ि ै। चेतना मानमसक जीवन का केवल एक पक्ष ि ै, िमारे आत्ममक जगत् ्की एक अवस्था ि ै, न कक स्वयंजगत् ्की अवस्था-यि बबलकुल तथ्य ि ै त्जसे अब पत्श्चम के पवद्वान धीरे-धीरे मानने ्लगे ि ैं। 'लीब्नीज' के समय से चेतना को मानमसक प्रमयक्ष की एक घटना-मात्र किा जाता रिा ि ै, न कक उसका एक आवश्यक एवं ्अतनवाय शगुण स्वीकार ककया गया ि ै। उसका यि मत ि ै कक "िमारा आन्तररक जगत् ्अधधक वैभवर्ाली, अधधक प्रचुर एवं अधधक रिस्यमय ि ै", उपतनषदों के रचतयताओंको बिुत पिले से िी और भली-भांतत ज्ञात था।

माण्डूतय उपतनषद् में जीवाममा की पवपवध अवस्थाओं, यथा जागररत, स्वप्न, सुषुत्प्त और आन्तररक तुरीय अवस्थाओं का उल्लेख ि ै। जागररत अवस्था में मन और इत्न्द्रयां सब सकक्रय रिती ि ैं। स्वप्नावस्थाओं में किा गया ि ै कक इत्न्द्रयांतनत्ष्क्रय रिती ि ैं और मन के अन्दर लुप्त रिती ि ैं-ककन्तुआधुतनक मनोपवज्ञान इस त्स्थतत को स्वीकार निीं ्करता। उपतनषदों के अनुसार, जब तक िमारी इत्न्द्रयांसकक्रय ि ैं, िम केवल ऊंघतेिैं, ककन्तु स्वप्न निीं ्देख सकते। िम उस समय अधजशागररत अवस्था में रितेिैं। वास्तपवक स्वप्नावस्थाओं में केवल मन िी स्वतन्त्र व बन्धनरहित रूप में सकक्रय रिता ि ै। जागररत एवं स्वप्न अवस्थाओं में भेद केवल इतना ि ै कक जागररत अवस्था में मन बिार के प्रमयक्ष ज्ञान के ऊपर तनभरश करता ि ै जबकक स्वप्नावस्था में यि अपनेअनुभवों का तनमाणश करता ि ै और उनका आनन्द लेता ि ै। तनःसंदेि यि जागररत अवस्था के समय की सामग्री का उपयोग करता ि ै। सुषुत्प्त अथवा प्रगाढ़ तनद्रा भी मनुष्य के जीवन की एक साधारण घटना ि ै। उस अवस्था में मन एवं ्इंहद्रयां ्दोनों िी तनत्ष्क्रय रितेिैं। आनुभपवक चेतना उस समय स्थधगत रिती ि ै और इसीमलए पवषयी एवं ्पवषय का भेद भी उस समय स्थधगत रिता ि ै। यि किा गया ि ै कक इस अवस्था में पवषयपविीन चेतना रिती ि ै जबकक जीवाममा अत्स्थर रूप में परमसत्ता के साथ सम्मृत्त रिती ि ै। िो सकता ि ै कक यि समय िो, ककन्तु ्इतना तो स्पष्ट िी ि ै कक यि पूण शअभाव की अवस्था निीं ्ि ै। यि स्वीकार करना कहिन

ै किक जीवाममा सुषुत्प्त अवस्था में तनरन्तर पवद्यमान रिती ि ै एवंआनन्द का अनुभव करती ि ै, यद्यपप वि उस समय सब प्रकार के अनुभव से वंधचत ि ै। वस्तुतः उपतनषदें स्वयं मनोवैज्ञातनक एवं अचेतन कक्रयाओंकी व्याख्या उस प्राण रूपी जीवन के तत्त्व से करती ि ैं जो श्वास-प्रश्वास की प्रकक्रया एवं रतत-संचालन आहद का तनयंत्रण करता ि ै। सम्भवतः यात्न्त्रक स्मृतृतर्त्त भी तनरन्तर रिनेबाली चेतना की व्याख्या कर सके। अमभज्ञा का अभाव रितेिुए भी यि प्रश्न उि सकता ि ै कक तया जीवाममा तनहद्रतावस्था में यथाथ शआनन्द का अनुभव कर सकती ि ै। तुरीयावस्था एफमय की चेतना का नाम ि ै, यद्यपप उसके भौततक अनुभव उसके अन्दर निीं ्आते। समस्त

पवश्व के एकमव का अलौककक अनुभव िी धाममकश जीवन कर चरमोमकष शिै। इससे पूव शकक िम उपतनषदों की अ-वेदात्न्तक प्रवृपृत्तयों के पवषय पर आएं, उपतनषदों के सामान्य आध्यात्ममक र्दत्ष्टकोण को संक्षेप में समझ लेना आवश्यक ि ै। एकदम प्रारम्भ में भी िमनेकाथ था कक उपतनषदों की त्स्थतत में बिुत कुछ संहदग्धता ि ै त्जसके कारण नकी बबन्स मभन्न व्याख्याएं िो सकती ि ैं। यि तनत्श्चत रूप से किना कहिन ि ै कक र्ंकर का अद्वैत, अथात् श ्जीव एवं ्ब्रह्म का अभेद, अथवा रामानुज की पररवततततश त्स्थतत इन दोनों में से कौन-

सा मूल धाममकश मसद्धान्त का अंततम तनष्कष शिै। उन प्रवृपृत्तयों पर जो ककसी भी हदर्ा में पूण शकी जा सकती िैं, पवचार करना िोगा। उपतनषदों को उन दोनों के परस्पर मतभेदों का कुछ भी ज्ञान निीं ंिै। अद्वैत प्रततपाहदत ब्रह्म, त्जसकी प्राप्त्त अन्तर्दृष्टि से िोती िै, और िोस रूप में पररभापषत यथाथसशत्ता-दोनों में वस्तुतः कोई अंतर निीं, ं तयोंकक ये दोनों केवल उसी एक सत्ता की अमभव्यत्तत के दो मभन्न-मभन्न माग शिैं। ये दोनों क्रमर्ः अन्तर्दत्शष्ट द्वारा एवं ंवौद्धधक प्रकक्रया द्वारा उस एकमात्र यथाथ-शसत्ता को समझने ेके प्रकार िैं। प्रथम मत के अनुसार यि जगत्, ् परब्रह्म का आभासमात्र िै, दूसूरे मत के अनुसार यि ईश्वर की अमभव्यत्तत िै। दोनों में से ककसी भी मत के अनुसार यि पवश्व बबलकुल असत् ्या भ्रांततरूप निीं ंिै, तयोंकक ऐसा मानने ेसे िमारे मलए सांसाररक अनुभवों का कुछ भी मिमव निीं रि जाएगा। बौद्धमत एवं ंउसके पवमभन्न सम्प्रदायों के प्रभाव से परमाथसशत्ता के अद्वैतपरक रूप और संसार के घटनामक स्वरूप पर गौडपाद एवं र्ंकर की दर्नश पद्धततयों में बल हदया जानेलगा। वस्तुतः इस प्रकार का अद्वैत दर्नश वैहदक पररभाषा में माध्यममक अध्यामम पवद्या की पररवतततश व्याख्या िै। मिाकाव्यों एवं ंभगवद्गीता द्वारा धाममकश पुनगिशन एवं न्याय में आत्स्तकवाद पर हदए गए बल के कारण पवमर्ष्टाद्वैत अथवा रामानुज के पररवतततश अद्वैतवाद का पवकास िुआ। वस्तुतः अद्वैतवादी पररर्ुद्ध 'सौगत' अथात्श र्ुद्ध िुए बौद्ध किलातेिं और पवमर्ष्टाद्वैतवादी पररर्ुद्ध 'नैयातयक'

अथात्श र्ुद्ध िुए न्यायर्ास्त्र के अनुयायी किलातेिं।

21. उपतनषदों में सांख्य और योग के तत्त्व

उपतनषदों में अद्वैत वेदांत की प्रततपक्षी दर्नशपद्धततयों के, अथात्श ्सांख्य और योग के, बीज भी पवद्यमान िैं। सांख्यदर्नश पुरुष और प्रकृतत के मध्य एक द्वैतभाव की स्थापना करता िै त्जसमें प्रकृतत समस्त सत्ताओं का उपादान या आहदकारण िै एवं ं'पुरुष' साक्षीरूप से प्रकृतत के पवकास का दर्कश िै। यि पुरुषों के अनेकमव में भी पवश्वास करता िै जो प्रमाता (पवषयी) िैं।'[590] उपतनषदें पुरुषों के अनेकमव का समथनश निीं ं करतीं, यद्यपप समीक्षा की स्वाभापवक प्रकक्रया और उतत मसद्धान्त के एक पक्ष का पवकास िमें इस पररणाम

---

590 एक अव्यतत अथवा प्रकृतत का पवचार, जो सब पवभेदों का कारण िै, उपतनषदों में स्पष्ट रूप से प्रस्तुत ककया गया िै। "इत्न्द्रयों से परे उनके पवषयों के मूलतमव िैं। इन मूलतत्त्वों से परे मन िै; मन से परे आममा िै त्जसे मित् ्किते िैं। मित् ्से परे अव्यतत िै जो प्रकट निीं िै; अव्यतत से परे पुरुष िै; पुरुष से परे और कुछ निीं िै।" (कि, 3: 10, 11; और भी देखें, 6/7, 81) अव्यतत से परे, जिांसे सब सृतूष्ट उमपन्न िुई िै, केवल ईश्वर िै। तपस् ्से ब्रह्म आकार में बढ़ जाता िै और इससे अन्न उमपन्न िोता िै; भोजन सेजीवन, मन, तत्त्व जगत्, ् कम शऔर इसके साथ इसके फल। (मुण्डक, ।: 1)। इस सन्दभ शमें आए िुए भोजन अथवा अन्न की व्याख्या र्ंकर नेअव्यतत, अथात्श ्अप्रकट अथ शमें की िै। प्रश्न उपतनषद्, 4 में िमें एक ऐसा वणनश ममलता िै। त्जसमें बताया गया िै कक ककस प्रकार सब पदाथ शपांच तत्त्वों की व्याख्या के अनुसार तदनुरूप मात्राओं अथात्श ्सक्ष्म तत्त्वों समेत अपवनार्ी के अन्दर पवलीन िो जाते िैं। देखें प्रश्नोपतनषद्, 48। उपतनषदों में बताया गया िै कक प्रकृतत पुरुष या ब्रह्म में से तनकलती िै। 'पुरुष' र्ब्द का अथ शिै-सवोपरर आममा । ऐसा प्रतीत िोता िै िै कक सांख्य का यि मसद्धान्त िै कक पुरुष साक्षीमात्र िै और वि स्वयं ंकुछ निीं करता, दो पक्षक्षयों के पवषय में जो एक सन्दभ शआता िै उससे प्ेररत िै, त्जनमें से एक तो स्वादु ुफल का उपभोग करता िै और दूसूरा उसका स्वाद पवना मलए केवल साक्षीरूप से देखता रिता िै।" मुण्डक, 3/1, 1।

तक पिुंचाते िैं। िमनेदेख मलया कक ककस प्रकार के उपतनषदों का अद्वैतवाद धाममकश प्रयोजनों के मलए एकेश्वरवाद में पररणत िो जाता िै। एकेश्वरवाद उपलक्षक्षत करता िै जीवामममा की पृथक् सत्ता को जो सवोपरर ब्रह्म से पवरुद्ध पक्ष में िै। पररणामस्वरूप जीवामममा संख्या में अनेक िो रती िैं। ककन्तुसांख्य के अनुयायी इस बात को अनुभव करने ेलगते िैं कक सवोपरर ब्रह्मा एवं जीवामममाओं की स्वतंत्र सत्ता को बराबर के मलए मान्य टिराना कहिन िै। एक-दूसूरे का उच्छेदक िै। उन दोनों में से ककसी न ककसी को, चािे सवोपरर ब्रह्म को और चािे जीवामममाओं को, तनरथकश िो राना िी पड़ेगा। जब उमपादन की कक्रया प्रकृतत को सौंप दी गई तो ईश्वर अनावश्यक िो गया। ईश्वरपविीन केवल भौततक प्रकृतत के हिस्से उमपपत्त की कक्रया को सुपुदश करने ेका पवरोध उपतनषदों ने ककया िै। उनका झुकाव प्रधानतया एक परम आममा का समथनश करनेकी ओर िै त्जसकी पृष्ठभूमम पर पवषयी (प्रमाता) एवं पवषय (प्रमेय पदाथ)श उहदत िोते िैं।'[591]

योगदर्नश के प्रारत्म्भक भाग उपतनषदों में पाए जाते िैं। उपतनषदों के लेखकों का यि दृढ़ पवश्वास िै कक िम अपनी अपूण शबुद्धध के द्वारा यथाथसशत्ता का िीकि्ीक ज्ञान निीं ंप्राप्त कर सकते। उन्िोंनेमनुष्य के मन की एक दपणश से उपमा दी िै, त्जसमें यथाथ शसत्ता स्वयंप्रततबबत्म्बत िोती िै। िम यथाथसशत्ता को ककस सीमा तक जानते िैं यि बात िमारी मानमसक अवस्था के ऊपर तनभरश करती िै कक वि उतत सत्ता के पूण शवैभव के अनुरूप अपनेको बना सकती िै या निीं। अंधे को रंगों की अमभव्यत्तत निीं िोती और न िी बिरे को संगीत का आभास िोता िै, इसी प्रकार दुबुलशाममा पुरुष को दार्तशनक सच्चाई का आभास निीं ंिो सकता। जानने की प्रकक्रया को तामकामलक उपलत्ब्ध किना अधधक उपयुतत िै एवं ंइसकी उमपपत्त निीं ंिोती, अमभव्यत्तत िोती िै। पररणामस्वरूप यहद ककसी प्रकार का दोष अथवा अपूणतशा यंत्र (मन) में रिेगी तो अमभव्यत्तत भी अपूण शएवं पवकृत िोगी। स्वाथपशरक कामनाएं एवं ंमनोवेग मन रूपी यन्त्र एवंयथाथसशत्ता, इन दोनों के बीच अमभव्यत्तत के मलए आ जाते िैं। जब प्रमेय पदाथ शका व्यत्ततमव यन्त्र (मन रूपी साधन) के स्वरूप में कुछ अनुधचत पररवतनश कर देता िै तो प्रततबबम्ब भी धुंधला िो जाता िै। द्रष्टा की अज्ञानता प्रमेय पदाथ शको उसकी अपनी कल्पनाओंसे ढक लेती िै। उसके अपनेबद्धमूल पक्षपात पदाथों के यथाथरूशप के ऊपर छा जाते िैं। साधन के दोषों के यथाथ श स्वरूप में भ्रांतत एक प्रकार की अनाधधकार चेष्टा िै। समय की खोज के मलए एक तनष्पक्ष एवं ंव्यत्ततमविीन मनोभाव (रुख) रखनेकी आवश्यकता िै और वि सब जो व्यात्ततगत िै, इस समयान्वेषण की प्रकक्रया में एक बड़ी बाधा उपत्स्थत करता िै। िमें मन की भ्रष्ट रचना एवं पवफलता से अपनेको बवाना चाहिए। मन की आग्रिशील या िि ी वृत्ततयों को झुकाना चाहिए त्जससे कक वे ेसमय के संक्रमण के तनवाधश माग शबन सकें। योग की पवधध उधचत तनदेश् देती िै कक ककस प्रकार मन को पररष्कृत करके एक उत्तम दपणश में समान बनाया जा सकता िै और वैयत्ततक तत्त्वों से रहित करके स्वच्छ रखा जा सकता िै। यि केवल इसी तनयन्त्रण के द्वारा सम्भव िै कक िम उस श्रमसाध्य एवं स्फूततमशान व्यत्ततमविीनता की ऊंचाई तक पिुंच सकतेिैं जिां ंसे संसार के मेधावी एवं गुणी आममा (ऋपष-मिपष)श सुदूरू परोक्ष की झांकी लेते िैं: यि प्रणाली उपतनषदों के जन्मा-सम्वन्धी मसद्धान्त के अनुरूप िै। िमारी साधारण चेतना तनमय जगत् ्की ओर से पीि फेर लेती िै और इस नश्वर एवं

591

देखें,ऐतरेय ।, : 1,2: बृिदारण्यक ,1/4 3, छान्दोग्य ,6/2, 6 तैपत्तरीय, 2/1।

कृबत्रम जगत् ्में िी खो जाती िै त्जसकी रचना इन्द्रियजन्य अनुभवों के आधार पर मन करता िै। जब िम इस लौककक आममा से ऊपर उिते िैं, िमें अभावाममक निीं ंअपपतु एक घनीभूत भावनामय आममा की प्रात्प्त िोती ि। जब तक आममा अपनी अनुभवमसद्ध घटनाओंके अर्दष्ट क्रम में बंधी रिती िै उसकी र्त्तयां पूणरूशप से काय शनिींकर सकतीं। जब आममा आनुभपवक सत्ता की मयादशाओं से ऊपर उिती िै, पवश्वव्यापी जीवन घनीभूत िी जाता िै और िम अपनी आममा को वैभवर्ाली एवं ंअपनेव्यत्ततमव को वधमशान अनुभव करने ेलगते िैं और तब वि सारे अनुभव को अपनेअन्दर आकृष्ट कर लेती िै। तनम्न श्र्ेणणयों में जबकक आममा का तादामम्य केन्द्र-पवर्ेष के साथ रिता िै, त्जसका तनमाणश देर् और काल की घटनाओं के द्वारा िोता िै- अनुभवजन्य जगत् ् उसकी अपनी कृतत निीं ंिोता। अनुभव के एक संकुधचत क्षेत्र में धचपके रिनेसे िमें ऊपर उिना िी चाहिए। इसके पूव शकक िम अपनेअन्दर उस आनुभपवक जगत् ्का पूण शरूप से संग्रि कर सकें त्जसके केन्द्र व पररधध ईश्वर एवं मनुष्य िैं। उस समय िम उस उन्नत अवस्था को पिुंचते िैं जिां ंपिुंचकर उपतनषद् के अपनेर्ब्दों में "जो कुछ अन्दर िै और जो बिार िै उसमें ककसी प्रकार का भेद निीं ंरि जाता।" योगदर्नश की प्रणाली में बात पर बल हदया गया िै कक ममथ्या ब्राह्य र्दत्ष्ट को दूरू करना आंवश्यक िै, इससे पूव शकक आन्तररक आदर् शको जीवन एवं अमभव्यत्तत के मलए अवसर प्राप्त िो सके। िमें छायामात्र जगत् ्में रिने ेका मयाग करना िोगा, इससे पूव शकक मि तनमय जीवन को ग्रिण कर सकें।

योग की प्रणाली के अनुसार मानमसक एवं धाममकश तनयन्त्रण के अन्दर से गुज़रना आवश्यक िै। उपतनषदें भी इसी बात पर बल देती िैं कक लक्ष्य पर पिुंचने ेसे पूव शकिोर तपस्या एवंधाममकश जीवन बबताना आवश्यक िै। प्रश्न उपतनषद् में पपप्लाद ईश्वर के पवषय की त्जज्ञासा के मलए आए िुए छः त्जज्ञासुओंको एक वष शऔर तनयन्त्रण में बबतानेके मलए यि आदेर् देकर वापस लौटा देता िै कक "तुम जाओ और एक वष शऔर ब्रह्मचयपूशवकश जीवन व्यतीत करो, तपस्या करो एवं श्रद्धा को धारण करो।" ब्रह्मचय शके जीवन में पररवार से कोई सम्बन्ध न रिने ेके कारण पवद्याथी का मन पवचमलत निीं ंिोता और इसीमलए वि अपनेकाय शमें पूरा-पूरा ध्यान दे सकता िै। आममतनग्रि एवं तपश्चयाश उसे मानमसक र्ात्न्त प्रदान करते िैं और मन तनश्चल िोकर ज्ञान का सम्पादन करने ेमें समथ शिोता िै। प्रमयेक काय शके मलए श्रद्धा अमयन्त आवश्यक िै। योगदर्नश का एवं ंसभी प्रकार की आध्यात्ममक रिस्यमय मर्क्षाओंका सारतत्त्व िै कक मनुष्य को स्वयंको साधारण स्तर से ऊंचे े उिाकर उच्चकोहट के स्तर पर पिुंचाने ेसे िी दैवीय चेतना सत्ता के साथ साक्षामकार िो सकता िै, अन्यथा निीं।

िमें मोक्ष प्राप्त करने ेके मलए अपनेमन को वर् में करना आवश्यक िै। तयोंकक यि मन िी िमें बाह्य पदाथों के साथ जकड़ता िै और िमें उनका दास बनाकर रखता िै। बाह्य पदाथों एवं पररत्स्थततयों के मर्कार रितेिुए िमें सन्तोष प्राप्त निीं ंिो सकता। "त्जस प्रकार एक मर्लाखण्ड पर धगरा िुआ वषाशका जल नीचेकी ओर उतरकर चारों ओर बबखर जाता िै, इसी प्रकार वि मनुष्य जो गुणों में नानामव को देखता िै, उसके पीछे चारों ओर भागता िै। "जैसे स्वच्छ जल स्वच्छ जल में डाला जाने पर भी वैसा, अथात्श ्उसी स्वच्छ रूप में रिता ि, इसी प्रकार िे गौतम, एक पवचारक की आममा िै, जो ज्ञानी िै।"[592] उस मनुष्य का मन त्जसने ेअपनी आममा

592 कि उपतनषद् ,2 : 151

को र्नीं ंपिचाना, इधर-उधर भटकता िै त्जस प्रकार की ढलवां चट्टानों पर पा ़िुआ जल सब हदर्ाओंमें फैल जाता िै। ककन्तु जब उसका मन पपवत्र िो जाता िै, वि जीवन रूपी मिान समुद्र में समाकर उसके साथ एकाकार िो जाता िै त्जसका तनवास स्थान समस्त मरणधमाश आकृततयों की पृष्ठिभूमम में िै। यहद बािा पवषयों में दौऩे के मलए मन को खुली छुट्टी दे दी जाय तो वि बालुकामय भूमम में ततर-बबतर िो जाएगा। त्जज्ञासुएवंसमय के अन्वेषक को उधचत िै कक वि मन को अन्दर की ओर खींचंकर रखे और बराबर वर् में ककए रिे त्जससे कक वि आन्तररक कोष को प्राप्त कर सके। वाणी को िमें मन के अधीन करना चाहिए; मन को पवचार के अधीन और पवचार को पवश्वव्यापी चेतन के अधीन करना चाहिए। केवल उसी अवस्था में िमें तनमय की गम्भीर र्ात्न्त का अनुभव िो सकता िै।'[593] केवल उसी अवस्था में जबकक 'पांचों ज्ञानेत्न्द्रयां मन समेत तनश्चल रिती िैं और बुद्धि भी तनश्चेष्ट रिती िै,' िम सवोच्च सत्ता तक पिुंच सकतीं।594 "उपतनषद् रूपी धनुष को पकड़कर जो मिान अस्त्र िै-और उसमें ऐसा बाण चढ़ाकर त्जसे तनरन्तर समाधध द्वारा तीक्ष्ण बना मलया गया िै, उसे िे सौम्य, भावपूण शमुद्रा से उसी एकमात्र अक्षर ब्रह्म को लक्ष्य करके छोऩ्ा चाहिए।"[595] कोषीतकक उपतनषद् में किा गया िै कक प्रतदशन आमम संयम अथवा संयमन की एक नई पद्धतत का संस्थापक था त्जसे आममयज्ञ के नाम से पुकारा जाता िै।596 वि इस बात पर बल देता िै कक मनुष्य को अपनी वासनाओं एवं मनोवृपृत्तयों पर पूरा-पूरा तनयन्त्रण रखना चाहिए। उपतनषदों में किीं-किीं ंसंकेत ककया गया िै कक प्राण को वर् में करके समाधध-अवस्था लाई जा सकती िै,'[597] यद्यपप अधधकतर वि मन की एकाग्रता का िी प्रततपादन करती िै।598 अलौककक पररभाषाओं यथा 'ओम्' ् 'तद्वनम्" ्599 'तज्जजलान्" ्600 और ऐसी सांकेततक पररभाषाएं िैं त्जनके ऊपर िमें अपना ध्यान केत्न्द्रत करने ेका तनदेर् ककया गया िै। मन की त्स्थरता का माग शकुछ समय के मलए मन को अन्य सब पदाथों को भूलकर केवल एक िी पदाथ शमें गा़ देना िै। केवल अभ्यास के द्वारा िी इस कला में तनपुणता प्राप्त की जा सकती िै।

परवती (नवीन) न्यायतकश का एक िी संकेत मुण्डक उपतनषद् में पाया जाता िै।601 "बलिीन पुरुष इस आममा को र्नीं ंप्राप्त कर सकता, इसी प्रकार आवेर् अथवा तप से अथवा मलङ्ग से आममा की प्रात्प्त र्नीं ंिो सकती।" जैसा कक आगे चलकर देखेंगे कक 'मलङ्ग' न्यायर्ास्त्र का एक पाररभापषक र्ब्द िै, त्जसका प्रयोग

---

593 कि उपतनषद्, 2: 13; तुलना कीत्जए, "पवचार उसी समय सबसे उत्तम िोता िै जबकक मन अपने अन्दर संगृिीत िोता िै, और अन्य कोई पदाथ शउसे कष्ट र्नीं देता, यथा न र्ब्द, न कोई दृश्य, न दु:ख, न कोई सुख, और जब उसे र्रीर से कुछ प्रयोजन र्नीं िोता, न ककसी इत्न्द्रय एवं मनोभाव से िी सम्बंधं िोता िै ककन्तु त्जस समय उसकी मित्त्वाकांक्षा परब्रह्म की प्रात्प्त के प्रतत िी लक्षक्षत िोती िै।" (प्लेटो के 'फीडो' से)।

594 कि उपतनषद्, 2/182

595 मुण्डक उपतनषद्, 2:2, 2।

596 आन्तरम् ्अत्ग्निोत्रम्, ् 2/5।

597 बृिदारण्यक, 1: 5,23।

598 प्रश्न उपतनषद्, 5:1।

599 केन उपतनषद्, 4/6।

600 छान्दोग्य, 3/14 1।

601 3: 2, 4; ड्यूसन एवं ह्यूम इस पद को दूसरे िी अथ शमें लेतें।

श्रृंखला अथवा लक्षण के अयों में अनुमान-प्रमाण के 'मध्यपद' ितुअथवा साधन के रूप में ककया गया ि।"[602] कततपय पररच्छेदों में यि भी प्रततपादन ककया गया ि कक ज्ञान का अनुभववादी मसद्धान्त ि कक यथाथ शसत्ता का स्वरूप अनुमान-प्रमाण की आगमन पवधध द्वारा ग्रिण ककया जा सकता ि। 'ममट्टी के एक ढेले से ममट्टी से बने सब पदाथ शजानेजाते ि।... सोनेकी एक मसल्ली से सोनेसे बने पदाथों का ज्ञान िो जाता ि।"[603] प्रतदशन आग्रिपूवकश किता ि कक ज्ञान केवल पवषयी एवं पवषय के पारस्पररक सम्बन्ध के द्वारा िी सम्भव ि।

22. दार्तशनक अग्रतनरूपण

उपतनषदें दार्तशनक अन्वेषण के मुख्य मुख्य पववाद-पवषयों का तनणयश करती िैं एवं ंआगामी दार्तशनक संवाद की पद्धततयों का भी स्पष्टरूप से तनदेर् करती िैं। िमने देख मलया कक उपतनषदों में अन्यान्य मसद्धान्तों के संकेतों के अततररतत पवर्ुद्ध दार्तशनक आदर्वशाद (वेदान्त-कल्पनावाद अथवा मायावाद) के तत्त्व पाए जाते िैं जो संसार की सापेक्ष सत्ता पर बल देते िैं एवं आममा के एकमव और पूणतशा पर और उसके साथ-साथ एक नैततक व धाममकश जीवन पर भी बल देते िैं। यद्यपप उपतनषदों में जो समन्वय प्रदमर्तश ककया गया ि-त्जसके साथ आममचेतना के एकमव का मौमलक पवचार भी जुा िुआ ि और यिी तमव सब वस्तुओंको एक ली़ में बांधता ि-वि उपतनषदों के पवचार को त्तर्तमान बनाता ि, ककन्तुउपतनषदों के पवचार की तनबलशता इस पवषय में ि कक उतत समन्वय की मसद्धध स्पष्ट तकश द्वारा न की जाकर केवल अन्तर्दत्शष्ट द्वारा की गई ि। यि उन पवमभन्न घटकों में परस्पर समन्वय के मलए कोई ताककशक समाधान उपत्स्थत निीं ंकरता, यद्यपप सारे यथाथ शदर्नश के केन्द्रीय भाव पर उपतनषदों के पवचार का सुर्दढ़ अधधकार ि।

वैहदक धम शके पवश्वासों के ऊपर उपतनषदों के पवचारकों ने पवर्ेष ध्यान हदया। यद्यपप उपतनषदों ने उतत पवश्वासों की आलोचना करने ेमें ककसी प्रकार संकोच निीं ंककया, तो भी भूतकाल की उस पवरासत ने किीं-किीं ंबाधा आवश्य दी। उपतनषदों ने भपवष्य की प्रगतत के मलए योद्धा ककन्तु साथ-साथ प्राचीनता के मित्त्व के प्रतत भी श्रद्धालु भतत रिने ेका प्रयमन ककया। पररणाम से ज्ञात िोता ि कक यि काय शतनश्चय िी उनके मलए कहिनतर मसद्ध िुआ। उपतनषदों के धम शने जिां ंएक ओर पवर्ुद्ध एवं धाममकश मसद्धान्त का प्रचार ककया, त्जसमें पूजा की ककन्िीं पवर्ेष पवधधयों का पवधान निींथा और इसीमलए न िी ककसी पुरोहितिी र्ासन का प्रश्न उिता था, तो भी उन्िोंने ेउतत पवधधयों के प्रतत सहिष्णुता हदखाई, प्रमयुत कि सकतेिैं कक उन्िें अंगीकार भी कर मलया। "नाना प्रकार के कम,श जो ऋपषयों ने मन्त्रों में ढूंढ़ तनकाले, यथाथ िैं और त्रेतायुग में उनका अधधकतर व्यविार िोता था; उन्िें सदा सहदच्छा से प्रेररत िोकर करो। कमफशल की प्रात्प्त का यिी साघन ि।"[604] वैहदक देवताओं का सूय शके अन्दर अपना स्थान था। कोई भी व्यत्तत जनता को उन देवताओं के पररमयाग के मलए निींकिता था त्जनकी पूजा करनेकी वि अभ्यस्त थी। प्रततभासम्पन्न समाधान, सुझाव एवं ं

602 मलंगं...श्रृंखलाकिी)। देखें,छान्दोग्य भी ,6: 8, 4।

603 छान्दोग्य उपतनषद्, 6/1 4-6।

604 मुण्डक उपतनषद्, ।:2,1।

 प्रतीकवादपुर ने ममथ्यापवश्वासों की नये आदर्वशाद के साथ संगतत लगाता व्याख्या करने ेमें सियक मसद्ध

ुए। यद्यपप उस समय की मांग थी कक धाममकश आदर् शके प्रतत भत्तत प्रदमर्तश की जाए, तो भी उपतनषदों में पयाप्शत मात्रा में अवसरवाहदता पाई जाती ै। उन्ोंने आन्दोलन के रूप में बाह्य प्रमाणों एवं अमयधधक रूहढ़वाद के बन्धनों से मनुष्यों को मुत्तत हदलानेसे काय शप्रारम्भ ककया ककन्तुपुरानी श्रृंखलाओंको ी मबूत करने ेमें समात्प्त की। जीवन के नये प्रकार से मूल्यांकन की स्थापना के स्थान में उन्ोंने परम्परागत पवधधयों का ी प्रचार ककया। धाममकश लोकतन्त्र का प्रचार उसकी स्थापना से बुित मभन्न वस्तु ै। उपतनषदों ने उच्चकोहट के ईश्वरज्ञान को पूवपुशरुषों के पवश्वासों के साथ ममलानेके मलए बुित प्रर्सनीय प्रयमन ककया। ककन्तु नये धाममकश आदर् शऔर भूतकाल की ममथ्या के के मलए के मध्य में कोई जीपवत पवकल्प भी ो सकता ै इसेसमय ने अनुभव नींककया। कानाजों के उच्चकोहट के आदर्वशाद ने जनसाधारण में प्रचमलत आन्दोलन का रूप धारण नीं ंककया। समाज के ऊपर इसका पूणरूशप से प्रभाव कभी नीं ंरा। यज्ञपरक धम शका जब भी बोलवाला था, उपतनषदों ने उसे प्रततष्ा प्राप्त करा दी। पुराने ेपवश्वास को एक प्रकार से एक नये क्षेत्र से नवीन र्तत के साथ प्ेरेरणा ममल गई। यहद उपतनषदों का आदर्वशाद जनसाधारण में प्रवेर् पा सकता तो जातत का चररत्र बबलकुल ी नये ढांचे में ढल जाता और सामात्जक संस्थाओं में तनश्चय ी नई जागृतत आ जाती। ककन्तु इसमें से कुछ भी नीं ंुआ। ममथ्या पवश्वासों से भरपूर तनम्नश्ेरेणी का धम शी जनसाधारण में फैला रा। पौरोहिमय सर्तत ो गया। धाममकश संस्थाओंकी अनुदारता या कट्टरपन एवं ंजनता के प्रतत घृणा भी साथ-साथ वतमशान री, यद्यपप पूण शजीवन के कततपय उपासकों ने भी उच्चतम भाव को अवश्य अपना मलया। यि धाममकश पवरोधों एवं ं अव्यवस्था का युग था। उपतनषदों की मर्ाएं अमयन्त लचकीली बन गई। उन्ोंनेअपनेअन्दर पवरुद्ध आदर्वशाद से लेकर असंस्कृत मूततपूशजा तक के परस्पर तनतांत पवरोधी मसद्धान्तों को भी धचपकाए रखा। पररणाम यि ुआ कक उच्चकोहट के धम शको तनम्न श्ेरेणी के धम शने एकदम ढक हदया।

रि स्थान पर ीमें परस्पर पवरोधी कल्पनाएं ममलती थीं। धम शके क्षेत्र में एक और वैहदक बुिदेववाद था तो दूसूरी ओर उपतनषदों के एकेश्वरवाद और आध्यात्ममक जीवन से ममधश्रत यज्ञों का कक्रयाकलाप भी पवद्यमान था। सामात्जक क्षेत्र में जन्मपरक जाततभेद था, त्जसकी कोरता को पवश्वव्यापकता के उदारभाव ने कम कर हदया था। परलोकपवज्ञान के क्षेत्र में पुनजन्शम का पवचार था, त्जसके साथ नरक के पवचार भी सत्म्ममलत थे। ककन्तु ुसमय को असमय ने दबा रखा था और ब्राह्मणधम शकी अव्यवस्था अपनी समस्त परस्परपवरोधी कल्पनाओंके साथ उपतनषदों के पश्चात् ्एवं ंबौद्धकाल से पूव शके समय में चरमसीमा तक पंुच गई। यि काल एक प्रकार की धाममकश रुषुकता का काल था, जबकक समय कोर रूप धारण करके परम्परा में पररणत ो गया और नैततकता भी दैतनक कायक्रशम में पररणत ो गई। जीवन कमकशाण्ड एवं ंकक्रयाकलाप की पररपाटी मात्र बन गया। मनुष्य का मन पवहित व्यवस्थाओं एवं कतव्शयों के पालनरूपी लौचक्र के अन्दर ी घूमने ेलगा। समस्त वातावरण में कक्रयाकलापों में दम घुट रा था। बबना कुछ मंत्र उच्चारण ककए या उपचार ककए मनुष्य बबस्तर से उकर प्रातःकाल का कोई कृमय यथा मंु धोना, ाजामत करना एवं ंप्रातरार् करना आहद भी नीं ंकर सकता था। यि एक ऐसा युग था त्जसमें एक क्षुद्र एवं ंउजा़ सम्प्रदाय छोटे-छोटे एवं तनःसार ममथ्या पवश्वासों से पूरा भरा ुआ था। एक नीरस एवं हृदयीन दर्नश- पद्धतत-त्जसे एक रुषुक और कट्टरतापूण शधम श

का समथनश भी प्राप्त था और जो आडम्बर एवंअततर्योत्तत से भरपूर थी-पवचाररी्ल थो़ ेसे व्यत्ततयों को थो़ े समय तक एवं जनसाधारण को अधधक समय तक सन्तोष न दे सकी। अब पवश्लेषण का युग आरंभ िुआ जबकक उपतनषदों के पवद्रो को कक्रयाममक रूप देने के मलए क्रमबद्ध रूप में प्रयमन प्रारंभ िुए। उपतनषदों के एकेश्वरवाद एवं वैहदक अनेकेश्वरवाद का असंगत गिबंधन, उपतनषदों का धाममकश जीवन एवं वेदों का यज्ञपरक दैतनक जीवन, उपतनषदों का मोक्ष और संसार और वैहदक नरक व स्वग,श उपतनषदों की पवश्वव्यापकता और प्रचमलत जन्मपरक जात-पांत अब और अधधक साथ-साथ निीं ंचल सकते थे। समय की सबसे बी़ मांग थी कक पुनः संघटन िोना चाहिए। समय प्रतीक्षा कर रिा था कक एक गम्भीरतर और आध्यात्ममक धम शका प्रचार साधारण जनसमाज में िोना िी चाहिए। इससे पूव शकी यथाथ शसमन्वय िो सके, अवयवों को-जो कृततमरूप में परस्पर जु़ े िुए थे ेउस संयुतत रूप सेतछन्न-मभन्न करना अमयन्त आवश्यक था त्जसमें वे अमूतरूशप में परस्पर पवरोधी िोने े

[illegible] बौद्धों, जैतनयों एवं ंचावाकश की कृबत्रम अवस्था की ओर तनदेर् ककया। इनमें से प्रथम दो ने अथात्श ्बौद्धों एवं जैतनयों ने एक पुनगिशन का प्रयमन ककया और आममा की नैततक मांगों के ऊपर बल हदया। ककन्तुउनके ये प्रयमन क्रात्न्तकारी आधार पर आधश्रत थे। जब उन्िोंने ेउपतनषमप्रततपाहदत नैततक पवश्वव्यापकता के मसद्धान्त का प्रचार ककया तो उन्िोंने कल्पना की कक उन्िोंने ेब्राह्मणधम शकी जात-पांत एवं यज्ञपरक कक्रयाकलाप तथा प्रचमलत धम शकी प्रामाणणकता को सवयां तो़ फेंका। भगवद्डगीता एवं ंअवाचशीन उपतनषदों ने भूतकाल से ममलकर तकशपवरुद्ध तत्त्वों को अधधक अनुदार भाव के साथ समत्न्वत ककया। यि िो सकता िै कक उपतनषदों के पश्चामकाल में जो धम शप्रचमलत था उसके पवरोध में तनतान्त और अनुदार प्रयमन देर् के मभन्न-मभन्न भागों में ककए गए; बौद्धमत एवं ंजैनमत ने पूव शकी हदर्ा में एवं ंभगवद्गीता ने पत्श्चम हदर्ा में, जो प्राचीन वैहदक धम शका गढ़ था, प्रचार ककया। अब िम बौद्धधक िलचल, पवद्रो एवं ंपुनगिशन के इसी युग की ओर चलते िैं।

उद्धृि ग्रन्थ

मैतसमूलर :	'द उपतनषद्स', (सैक्रेड बुतस आफ द ईस्ट, खण्ड 1 और 15)।
ड्यूसन :	'द कफलासफी आफ द उपतनषद्स' ।
रानाडे े:	'द साइकालोजी आफ द उपतनषद्स' (इत्ण्डयन कफलासाकफकल ररव्यू), 1918-1919 ।
गफ :	'द कफलासफी आफश द उपतनषद्' ।
बरुआ :	'प्री-बुद्धधत्स्टक इत्ण्डयन कफलासफी' ।
मिादेव र्ास्त्री:	'द तैपत्तरीय उपतनषद्' ।
ह्यूम :	'द थरटीन पप्रमसपल उपतनषद्स' ।

द्पवतीय भाग : मिाकाव्य काल

पांचवां ◌ंअध्याय

िीिनिवाद

मिाकाव्य काल-इस काल के प्रचमलत पवचार- भौततकवाद-भौततक मसद्धान्त सामान्य समीक्षा ।

1. मिाकाव्य काल

यद्यपप दोनों मिाकाव्यों अथात् श ◌्रामायण एवं मिाभारत में वणणतश घटनाएं अधधकतर उस वैहदककाल की िै जबकक प्राचीन आय शबी़ संख्या में गंगा की उपमयका में आकर बसे बे-कुछ लोग हदल्ली के आसपास, पांचाल लोग कन्नौज के समीप, कौर्ल लोग अवध के समीप, और कार्ी लोग बनारस में- ककन्तु ऐसी कोई साक्षी िमें उपलब्ध निीं ◌ंिै जो यि मसद्ध कर सके कक इन मिाकाव्यों की रचना ईसा से पूव शकी छिी र्ताब्दी से पूव शिुई िो। स्वयं वेदमंत्रों के भी क्रमबद्ध अवस्था में आनेका काल विी िै त्जस समय आय शलोग गंगा की उपमयका में फैल रिे थे। सम्भवतः यिी समय था जबकक मिाकाव्य मिाभारत में वणणतश कौरवों एवंपांडवों के बीच मिासंग्राम िुआ। भारतीय परम्परा और मिाभारत के अन्तगतश साक्ष्य के आधार पर वेदों के संग्रिाक मिपष श व्यास भी उतत काल में वतमशान थे। रामायण में उन युद्धों का वणनश िै जो आय शलोगों एवं यिां ◌ंके मूलतनवामसयों के मध्य िुए त्जन्िोंनेआयसंशस्कृतत को अपना मलया। मिाभारत उस समय का ग्रन्थ िै जबकक वैहदक ऋचाएं अपनी मौमलक र्तत व अथ शको खो चुकी थींऔर कमकशाण्ड-प्रधान धम शसवसशाधारण को अधधक आकृष्ट करता था और जन्मपरक जातत को प्रधानता दी जानेलगी थी। इसमलए िम मिाकाव्यों की रचना का

 समय ईसा से पूव शछिी र्ताब्दी के लगभग र्कीं ंरख सकते िैं। यद्यपप उनके अन्दर अवस्थाओं के अनुसार ईसा
के 200 वष शपश्चात् ्तक पररवतनश िोतेरिे और उस समय ये मिाकाव्य अपनेअंततम अथात्श ्वतमशान रूप में आ गए।

ऐसे अनेकों संकेत िैं त्जनके आधार पर यि मसद्ध िो सकता िै कक यि युग बौद्धधक रुधच के प्रतत
प्रबलरूप में जागरूक था त्जसमें प्रचुर मात्रा में दार्तशनक स्फूतत शऔर अन्यान्य क्षेत्रों में पवकास उपलब्ध िोतीं।
उस युग की नैततक पे्ररेणा का त्जसमें अनेक प्रकार की समूतत शममधश्रत थी, ठीकर्ीक वणनश करना कहिन िै।

उस
समय की जनता अध्यात्ममक एवं ंआधधभौततक समस्याओं के साथ संघष शकरती िुई पाई जाती िै। यि एक युग
था जो अद्भुत अतनयममतताओं एवं ंपारस्पररक पवरोधों से भरपूर था। बौद्धधक पवकास के प्रतत उमसाि एवं नैततक
गम्भीरता के साथ-साथ दूसूरे पक्ष में आममसंयम का अभाव एवं ंवासना के तनयन्त्रण का अभाव भी पाया
जाता िै। और चावाकशों एवं ंबौद्धों का युग था। तन्त्र-मन्त्र एवं ंपवज्ञान, संर्यवाद (स्याद्वाद) एवं अन्धपवश्वास,
स्वच्छन्द जीवन एवं ंतपस्या (आममसंयम) साथ-साथ एक-दूसूरे से ममले-जुले पाए जाते िैं। जबकक जीवन की
वेगवान र्त्तयां अपना प्रभुमव जमाती िों तो यि स्वाभापवक िी िै कक ककतने िी व्यत्तत उद्दाम कल्पनाओंकी
अधीनता स्वीकार कर लें। इस सबके िोतेिुए भी पवचारों की जहटलता एवं ंस्वाभापवक प्रवृपृत्तयों ने परस्पर
ममलकर जीवन को व्यापक बनानेमें सिायता की। स्वतन्त्र पवचार पर बल देनेके कारण बौद्धधक िलचल ने
परंपरागत प्राचीन र्ास्त्रों के प्रामाण्य रूपी बन्धन को मर्धथल करके समय की खोज में उन्नतत िोनेका माग श
खोल हदया। र्ास्त्र की प्रामाणणकता में सन्दिे प्रकट करना अब भयानक न रि गया।
अन्तर्दत्शष्ट का स्थान अब समीक्षा एवं समयान्वेषण और धाममकश पवश्वासों का स्थान दर्नशर्ास्त्र लेने े
लगे। जीवन की अद्भुत अतनत्श्चतता एवं ंसंहदग्धता, संसार को व्यवत्स्थत मसद्ध करने ेके मलए ककए गए
परस्पर पवरोधी प्रयमन, मनमानेपन्थों और मतों की भटका देने वाली अव्यवस्था एवं पवचार की समात्प्त
त्जनका तनमाशण दु:खों में ग्रस्त एवं ंभय से त्रस्त ककसी भी नये तथा अपरीक्षक्षत माग शको प्राप्त करके प्रसन्न िो
जानेवाली मनुष्य-जातत ने ककया, तथा अपवश्वास की मरुभूमम, र्त्तत, यौवन और उद्यम के मध्य में तलांतत व
कालसीनता-इन सबके कारण मिाकाव्यकाल भारतीय पवचारधारा का एक मित्त्वपूण श
अस्वस्थमनस्कता एवं ंर्त्तिीनता तथा स्नायु-दौबल्शय से पीड़त व्यत्तत संसार में सवत्रश अपनेइस रोग की
धचककमसा या तो पवश्राम और र्ांतत से प्राप्त करते िैं, अथवा कला, ज्ञान और सदाचार द्वारा उससे पररत्राण और
तनवाणश खोजते िैं, या कफर नर्ा करके, अचेतावस्था, वैतलव्य एवं उन्माद द्वारा उसकी र्ांतत का उपाय करते िैं।
इस प्रकार दर्नशर्ास्त्र सम्बन्धी परीक्षणों के इस युग में अनेक नई-नई पद्धततयां सामने लाई गईं। एक मत-
पवर्ेष की प्रततद्वन्द्पवता में दूसूरा मत लाया गया, एक आदर् शकी प्रततद्वन्द्पवता में दूसूरा आदर् शसामने
आया। पवचारधारा के स्वभावों में केवल अकेले एक िी पवचार के प्रभाव से निीं ंअपपतु अनेक पवचारों की संगहित
र्त्तत के द्वारा पररवतनश ककया गया। ऋग्वेद के अन्दर स्वतन्त्र कल्पना के अंर् और संर्यवाद के संकेत पिले
से उपत्स्थत थे।'[605] पूजा के बाह्य स्वरूप के प्रतत अमयधधक भत्तत िोने ेपर भी ब्राह्मणग्रन्थों तक में दार्तशनक

---

[605] ऋग्वेद ,7/89,3 - 4 ।

पववाद के मलए एक तन:रं्क आकांक्षा िमें ममलती िै। जब मनुष्यों की तकश-सम्बन्धी उमकट त्जज्ञासा को यों िी दवा देनेके मलए प्रयमन ककए जाते िैं तो मनुष्य का मन उसके प्रतत पवद्रो करता िै और एक अवश्यम्भावी प्रततकक्रया िमारे सामने आती िै, त्जसके पररणामस्वरूप सब प्रकार के औपचाररक प्रामाण्य के प्रतत अधीरता एवं ं

भािवुक जीवन का उद्रेक, त्जसे कमकशाण्ड-सम्बन्धी धम शने दीघकशाल तक दबाकर रखा था, उम़ पते़ उपतनषदों ने त्जज्ञासा के भाव को पवकमसत ककया, भले िी वे पुरानेवैहदक मत का ककतना भी दम भरती रिी िों। जब एक बार िम पवचार को अपना अधधकार प्रकट करने ेका अवसर दे देंगे, तो कफर िम उसे मयादशाओं ंके अन्दर तनयत्न्त्रत करके निीं ंरख सकते। त्जज्ञासा की नई पवधधयों का प्रचलन करके एवं ंमत्स्तष्क को एक नई पवधध से नये ढांचे में डालकर उपतनषदों के पवचारकों के अन्य सबसे किी अधधक उस युग की पवचारधारा को प्ेरेरणा प्रदान की। अपने दार्तशनक वादपववादसा यो द्वारा उपतनषदों ने एक पररवतनश का उडद्घाटन ककया त्जसका पूरा-पूरा तामपय शएवं प्रयाण की हदर्ा स्वयंउन पर भी प्रकट निीं थी। यि पवरे्षे ध्यान देनेयोग्य पवषय िै कक जिां ं उपतनषदों की पवचारधारा ने गंगा के प्रदेर् के पत्श्चमी भाग में पवकास पाया, विांपूवू शके भाग ने उसे प्राप्त तो ककया अवश्य, ककन्तु उसे इतना अधधक अपनेजीवन में ढाला निीं। पत्श्चम की कल्पनाओंको पूव-शभाग ने बबना संर्य प्रकट ककए अथवा बबना पूणरूशप से उस पर पववाद ककए अंगीकार निीं ंककया।

राजनैततक संकटकालों ने भी मनुष्यों के मन को अत्स्थर कर हदया। छोटी ररयासतों में, जो उस काल में बन रिी थीं, छोटी-छोटी बातों पर अनबन चलती थी। पवदेर्ी आक्रमणकाररयों ने देर् की र्ांतत को भंग कर रखा था। उस युग के अध:पतन, राजाओंकी कामवासना और जनसाधारण की अथलशोलुपता की बी़-बी़ मर्कायतें सुनी जाती थीं। एक बौद्धसुत्त (सूतत) किता िै, "म ैंइस संसार में धनवानों को देखता िंूं। उन वस्तुओंमें से त्जनका संग्रि उन्िोंने ेअपनी मूखतशावर् ककया िै, वे कुछ भी दूसूरों को निीं ंदेते; ये बी़ उमसुकता के साथ धनसंचय करते जाते िैं और अधधकाधधक उसके भोग करनेमें मलप्त िोते जाते िैं। एक राजा भले िी पृथूवी-भर को तयों न पवजय कर ले और समुद्र-पयतां समस्त भूभाग का भी र्ासक तयों न िो जाए, तो भी उसका लालच बढ़ता िी जाता िै और वि चािता िै कक समुद्र के उस पार को भी प्राप्त कर ले। राजा एवं ंअन्यान्य प्रजाजन भी अपनी अतृपूत इच्छाओंको साथ मलए िुए ममृयु का ग्रास बनते िैं... न तो सगे-सम्बन्धी, न ममत्र, न िी अन्यान्य पररधचत व्यत्तत मरते िुए मनुष्य को बचा सकतिैं; उत्तराधधकारी लोग उसकी जायदाद को लेते िैं ककन्तु उसे तो अपनेकमों का िी पुरस्कार ममलता िै; मरने ेवाले के साथ उसका संधचत कोर् निीं ंजाता, न पमलयां साथ जाती िैं, न बच्चे साथ जाते िैं, न जायदाद और न िी राज्जय साथ जाता िै।"[606] असफलता के भाव ने, सरकार एवं ं समाज की असफलता ने, संसार के प्रतत तनरार्ा ने, मानवजातत के आममसंर्य ने मनुष्य को पववर् ककया कक वि आममा एवं मनोभावों को पिचानना सीखे। उधर ऐसे भी व्यत्तत थे ेजो अपूण शएवं क्षणणक जीवन को एकदम भूलाकर पपवत्रता का जीवन व्यतीत करने ेके मलए उद्यत थे ेऔर ऐसे एक अमयन्त दूरू अवत्स्थत स्वप्नजगत् ्में पिुंचना चािते थे ेजो पाप एवं ंभ्रष्टाचार से रहित िै और भूत, वतमशान और भपवष्यत् ्में सदा एकसमान रिता िै। लगभग सभी लोग तलात्न्त, पवरत्तत एवं ंतनरार्ा के साथ जीवन से पवमुख िो गए थे।े परलोक के आकषणशों के

606

ओल्डनबग श : बुद्ध',पृषिू 65।

आगे वतमशान के प्रलोभन िार खा गए थे। लोग मोक्षप्रात्प्त के मलए छोटे-से-छोटे माग शकी ओर लोलुप र्दत्ष्ट से ताक रिे थे। सांसाररक क्षेत्र में पराजय का अनुभव िी उस युग में लोगों को दैवीय प्रेेरणा देनेलगा था। एक सद्‌गुणी परमेश्वर का भाव स्वभावतः जगत् ्के नैततक र्ासन के साथ-साथ रिता िै। जब इस लोक में जीवन के स्वरूप के सम्बन्ध में िी संर्य उमपन्न िोता िै तो परमेश्वर की सत्ता में पवश्वास भी ढीला प़ जाता िै। जब रिएक व्यत्तत सोचता िै कक जीवन दुःखमय िै, या कम से कम यि कक जीवन एक आर्ंकापूण शवरदान िै, तो पुराने ेपवश्वास को लेकर आगे चल सकना आसान निीं ंरि जाता। र्तात्ब्दयों का पवश्वास इस प्रकार एक स्वप्न की भांतत तछन्न-मभन्न िो रिा था। प्रामाणणकता का बन्धन मर्धथल िो गया था और परम्परा के बन्धन भी उसके साथ ढीले प़ गए थे। पवचारधारा के इस पवक्षुब्ध वातावरण में जबकक पुराना पवश्वास खत्ण्डत िो रिा था और मनुष्य के स्वातन्त्र्य की घोषणा की जा रिी थी, अनेकों आध्यात्ममक मतों एवं ंतनरथकश कल्पनाओं की सृत्ष्ट िुई। एक ऐसे युग में जबकक नैततक दुबुलशता का भाव ज़ पक़ रिा था, स्वभावतः मनुष्य ककसी भी धाममकश मत का आश्रय लेनेके मलए उमसुक था। उस युग में िमें केवल इत्न्द्रयगम्य संसार के ऊपर आग्रि करते िुए भौततकवादी ममलतेिैं, और ममलतेिैं अपनेबिुमूल्य मनोवैज्ञातनक एवं उच्च श्रेेणी के नीततर्ास्त्र सम्बन्धी मर्क्षाओंके साथ प्रकट िुए बौद्ध लोग। दूसूरी ओर कुछ ऐसे व्यत्तत भी ममलतेिैं जो डूबते िुए तनरार् मनुष्य की भांतत आश्रयरूप वेदों से िी धचपटे रिे; सुधारकों ने परलोक की सम्भाव्य कल्पना से तनषेध करते िुए अपना पूरा बल पपवत्र जीवन व्यतीत करने ेएवं ंउत्तम कम शकरने पर िी देने का संकल्प ककया। मयाधगयों-तपत्स्वयों एवं तीथकशरों (तरणी बनानेवालों) ने नये पन्थों के संस्थापक िोने ेका दावा ककया। गौतम बुद्ध एवं ंवधमशान मिावीर स्वामी सबसे प्रमुख सुधारक थे। बौद्धग्रन्थों में अन्यान्य कततपय पवधमी मर्क्षकों का भी वणनश आता िै, यथा- संर्यवादी संजय त्जसने ेआममा के समस्त ज्ञान का तनराकरण करके केवल र्ांतत की प्रात्प्त के प्रतत त्जज्ञासा तक िी अपने को मयाहशदत रखा; अत्जत केर्कम्बमलन एक भौततकवादी था त्जसने ेआन्तररक ज्ञान का सवथशा खण्डन करते िुए प्रततपादन ककया कक मनुष्य केवल चार तत्त्वों से ममलकर बना िै जो मृमयुके साथ िी तछन्न-मभन्न िो जाते िैं; उदासीनतावाद पुराण काश्यप ने नैततक पवमभन्नताओं को अमान्य ठिराते िुए आममा के अकारण एवं आकत्स्मक उद्भव'[607] के मत को अंगीकार ककया। भाग्यवादी मस्कररन् ्गोसाल ने प्रततपादन ककया कक जीवन अथवा मृमयु पर मनुष्य का कोई वर् निीं ंिै एवंसब वस्तुएं जीपवत जीव िैं, जो तनरन्तर पररवतनश की प्रकक्रया के अधीन िैं और इसका कारण उनकी अपनी अन्ततनहशित र्त्तत िै और यि प्रकक्रया तब तक चलती रिती िै जब तक कक वे ेपूणतशा प्राप्त निीं ंकर लेते।608 और कुकुद कामयायन ने प्रततपादन ककया कक सत्ता, पृथ्वी, जल, अत्ग्न, वायु, देर् और आममा इन सब तत्त्वों में अपने-अपनेगुणों के कारण मभन्नता िै और सुख एवं दुःख पररवतनश के घटक िैं त्जससे व्यत्तत उमपन्न िोतेिैं एवं ंनष्ट िोतेिैं।'[609] गणनातीत ऐसे मर्क्षक देर् के मभन्न-मभन्न भागों में उमपन्न िुए त्जन्िोंने मोक्ष के रिस्य के उद्घाटन करने ेवाले सुसमाचार की घोषणा की।

---

607 अिेतुवाद ।सामंत्रफलसुत्त।दीघतनकाय, 1।

608 मत्ज्झम तनकाय 1: देखें, सत्रकृतांग भी।

609 तुलना कीत्जए, इसके साथ एत्म्पडोतलीज के दर्नश की, त्जसमें चार तत्त्वों और पररवतनश के दो घटकों का वणनश ककया गया िै-अथात्श ्राग को जोड़ता िै और द्वेष जो पृथक् करता िै।

ऐसी अनेक पुनतनमशाणशकारी पवचारधाराओंका प्रारम्भ मिाकाव्य काल के साथ जोा़ जा सकता िै त्जन्िोंनेआगे चलकर संस्कृतत को समृद्ध बनाया। यद्यपप वे इस काल में भी वतमशान रिीं ककन्तु उन्िें पूरी र्तत प्राप्त निीं ंिुई जब तक कक िम उतत मिाकाव्य काल के अन्त तक निीं ंपिुंच गए। जीवन के दैवीय तनयमन में रोग और उसका उपचार साथ-साथ िी प्रकट िोतेिैं, और जिांकिीं ंभी भ्रात्न्त की पवषातत धाराएं बिती िैं विीं पर जीवन के ऐसे वृक्ष उमपन्न िो जाते िैं त्जनके पत्तों से राष्रों के रोगों की धचककमसा िो जाती िै। वैहदक ऋपषयों एवं ंउपतनषदों की मर्क्षाएं सूत्रों में लाकर संक्षक्षप्त रूप में एकत्र कर दी गईं। नीरस ताककशक पवचारों व उच्चतम भत्ततपरक पवचारों का प्रचार प्रारम्भ िुआ। सबसे पिले चावाकश, बौद्ध एवं जैन प्रकट िुए। उसके तुरन्त पश्चात् ्प्रततकक्रया के रूप में उपतनषदों के आत्स्तक पक्ष पर बल देनेके प्रयमन ककए गए। बौद्धमत एवं जैनमत नैततक पक्ष पर बल देनेके कारण धनुष्य की गिनतम धाममकश मांगों एवं मनोभावों को पौत्ष्टक भोजन देनेमें असमथ शरिे। जब उपतनषदों के क्षीणकाय अमूत शभावों अथवा वेदों की उज्जजवल देवमाला द्वारा भी जनसाधारण को सन्तोष प्राप्त न िो सका तो जैतनयों एवं बौद्धों के नैततक मसद्धान्त-सम्बन्धी अस्पष्ट आदर्वशाद सन्तोष दे िी कैसेसकतेथे। तब पुनः संगिन का काल आया और एक ऐसे चम शकी उमपपत्त िुई जो अपेक्षाकृत कम औपचाररक था, कम नीरस था और उपतनषदों के सम्प्रदाय से. उस समय की व्याख्या के अनुसार, अधधक सन्तोषप्रद था। उस धम शने जनता के आगे एक जीपवत दिेधारी ईश्वर को उपत्स्थत ककया, जबकक अब तक एक अतनत्श्चत, अस्पष्ट एवं ंनीरस परमेश्वर की भावना उनके सामनेथी। भगवद् गीता त्जसमें कृष्ण को पवष्णु का अवतार करके दर्ायशा गया िै, उपतनषदों का तनमय ब्रह्म, पंचरात्र पद्धतत, तथा श्वेताश्वतर एवं अन्यान्य अवाचशीन उपतनषदों का र्ैववाद, और बौद्धधम शका मिायान सम्प्रदाय, त्जसमें बुद्ध का एक तनमय परमेश्वर के स्वरूप में वणनश ककया गया िै-ये सब इसी धाममकश प्रततकक्रया के रूप िैं। इस युग में कततपय कल्पनाषरायण व्यत्ततयों ने दार्तशनक पद्धतत पर बल देकर नये प्रकार् को आगे भी बढ़ाया। क्रमबद्ध दर्नश के अंकुर भी उगते िुए हदखाई देनेलगे। सांख्य और योगदर्नश अपने प्राचीन रूप में एवं न्याय और वैर्ेपषक स्वतन्त्र रूप से पवकमसत िुए, यद्यपप इन्िोंनेअपनी ज़ को सुर्दढ़ करनेके मलए वेदों की मान्यता की ओर तनदेर् ककया। दोनों मीमांसाग्रन्थों का उद्भव अधधक प्रमयक्ष रूप में वैहदक ऋचाओं के भाष्यों के आधार पर िुआ। यि बबल्कुल तनत्श्चत िै कक उन सब दर्नश पद्धततयों का प्रकार् एवं ंप्रचार मिाकाव्य काल की समात्प्त के लगभग िी िुआ। उस समय के परस्पर पवरोध इन परस्पर-पवरोधी दर्नश-पद्धततयों में भी प्रकट िुए, त्जनमें से प्रमयेक नेउस युग के भाव के एक पवर्ेष पक्ष का तनदेर् ककया। इस युग के तीन मभन्न-मभन्न पवचारों के स्तरों में भेद करना िमारे मलए आवश्यक िो जाता िै जोकक कालक्रम से एवंताककशक र्दत्ष्ट से भी एक-दूसरे के पश्चाद्धती िैं: (1) पवद्रोिी पद्धततयां यथा चावाकश मत, जैनमत और बौद्धमत (600 ई. पू.): (2) आत्स्तकवाद-सम्बन्धी पुनतनमशाणश जो भगवद्डगीता एवं ंअवाचशीन काल की उपतनषदों में पाया जाता िै (500 ई. पू.); और (3) छि दर्नशर्ास्त्रों का कल्पनापरक पवकास (300 ई. पू.), त्जसने ईसा के लगभग 200 वष शबाद तक एक तनत्श्चत रूप धारण ककया।

2. इस काल के प्रचमलत पवचार

श ्भौततकवाद, जैनमत एवं बौद्धमत दर्शनों की पृवृततयों-अथात्
संक्षेप में उन पवचारों पर भी र्दत्ष्टपात कर लें जो उस काल में जनसाधारण में फैले िुए थे। पुनजन्शम एवं ंजीवन के दुुःखमय िोने ेका पवचार, त्जसके साथ अतनमयता का भाव भी जुा िुआ था, उस समय प्रचमलत था। जीवन दुुःखमय िै और संसार के पदाथ शिमें प्रलोभनों में फंसाकर केवल दुुःख का कारण बनते िैं, यि पवचारधारा उपतनषदों की देन थी, जो दाय के रूप में प्राप्त िुई थी। नधचकेता द्वारा यम से पूछे गए प्रश्नों की ओर ध्यान दीत्जए : "तया िम युवततयों, अश्वों, धन-सम्पदा एवं राज्जय तक को प्राप्त करके भी वस्तुतः सुखी िो सकतेिैं, जब िम तुम्िें (अथातश अवश्यम्भावी मृमृयु को) सामने देखते िैं?[610] कफर-कफर जन्म लेनेका जो चक्र िै वि केवल दुुःख को बढ़ाना िै। बबना ककिंअन्त के एक जन्म से दूसूरे जन्म और एक जीवन से दूसूरे जीवन की यि धारणा एक नीरस कल्पना प्रतीत िोनेलगी, त्जसके कारण जीवन िी तनरथकश और आह्लाद-रूनूय िो जाता िै। "यि आममा एक ऐसी तनयतत के अत्न्तम तनणयश के पवचार को तो सिन कर सकती िै त्जसमें यन्त्रणा का सदा के मलए अन्त िो सके, ककन्तु एक संसार से दूसूरे संसार, एक जन्म से दूसूरे जन्म और सदा िोतेरिनेवाले पवनार् की भयानक रृंतत के साथ तनरन्तर संघष शका पवचार ऐसा िै जोकक वीर से वीर पुरुष के हृदय को भी इस पररणाम रहित और कभी अन्त न िोनेवाली सांसाररक व्यवस्था को देखकर िण्डा कर दे सकता िै ।"[611] इस युग में उमपन्न िोनेवाले प्रमयेक सम्प्रदाय ने अतनमयता के भाव को अंगीकार ककया िै। इसे मभन्न-मभन्न नामों से पुकारा गया िै, जैसे जगद्व्यापार, संसार, व्यविार, प्रपञ्च आहद। कम शका मसद्धान्त इसका आवश्यक एवं सिज पररणाम िै। यि प्रश्न भी अतनवाय शि कक तया इस चक्र से उन्मुतत िोने ेको कोई माग शि, तथा तया मृमृयु से छुटकारा पाने ेका भी कोई साधन िै। मुतनयों के आश्रमों में अथववेशद में वणणतश कठोर तपस्याएं की जाती थीं, त्जससे कक अलौककक र्तत प्राप्त की जा सके। तपस्या में जीवन को पपवत्र करने ेकी र्तत पवद्यमान िै, इस बात में पवश्वास र्दढ़ था। कठोर तपस्या ने उपतनषदों में वणणतश ध्यान एवं ंधचन्तन की प्रणाली का स्थान ग्रिण कर मलया। परमेश्वर का अलौककक ज्ञान प्राप्त करने ेके मलए आममा को मौन धारण का व्रत लेना आवश्यक िै। तपत्स्वयों के समुदाय देर्-भर में बबखरे िुए थे ेजो अपने आप कष्ट सिन करने ेका अभ्यास करते थे। जन्मगत जातत को अधधकाधधक मान्यता दी जा रिी थी।

3. भौततकवाद

भौततकवाद उतना िी पुराना िै त्जतना कक दर्नशर्ास्त्र, और बुद्ध के पूव शभी इस मत का पता ममलता िै। ऋग्वेद की ऋचाओंमें भी इसके अंकुर पाये जाते िैं। "अनेक प्रमाण यि दर्ातेश िैं कक बौद्धमत से पूव शके भारत में भी पवरुद्ध भौततकवाद की घोषणा करने ेवाले लोग प्रकट िुए थे। और इसमें सन्देि निीं ंकक उन

---

610 कठउपतनषद् ।

611 ओल्डनबग:श 'बुद्ध', पृष्ठ 45।

 मसद्धान्तों के अनुयायी गुप्तरूप में, जैसे आज भी िैं, बराबर रिे िैं।"[612] बौद्धधम शके प्राचीन ग्रन्थों में इस
मसद्धान्त के उद्धरण ममलतेिैं। "मनुष्य चार तत्त्वों से ममलकर बना िै। जब मनुष्य मरता िै तो पाधथवश तत्त्व लौटकर पृथ्वी के अन्दर कफर से आ ममलता िै । जलीय तत्त्व जल में वापस ममल जाता िै, अत्ग्नतत्त्व वापस आकर अत्ग्न में ममल जाता िै और वायवीय तत्त्व कफर वायुमें ममल जाता िै। इत्न्द्रयां देर् के अन्दर समा जाती िैं। बुद्धधमान और मूख शएक समान, जब र्रीर तछन्न-मभन्न िो जाता िै, नष्ट िो जाते िैं और आगे के मलए उनकी सत्ता निींरिती ।"[613] भौततकवादी बौद्धमत के आपवभावश से पिले अवश्य रिे िोंगे, तयोंकक प्राचीनतम बौद्धग्रन्थों में उनका वणनश िै।"[614] मिाकाव्यों में भी भौततकवाद के उल्लेख िैं।"[615] मनु ने नात्स्तकों (जो परमाममा के अत्स्तमव का खण्डन करें) का उल्लेख ककया िै और पाखत्ण्डयों (पवधममयशों) का भी।[616] भौततकवाहदयों के मसद्धान्त के पवषय में र्ास्त्रीय प्रमाण बृिस्पतत के सूत्र किे जाते िैं, जो पवलुप्त िो गए िैं। मिारे मुख्य आधार अन्यान्य सम्प्रदायाओं के पववादाममक ग्रन्थ िैं। 'सवदशर्नशसंग्रि' के पिले अध्याय में उतत सम्प्रदाय की मर्क्षा का संक्षक्षप्त सार हदया गया िै।

4. भौततक मसद्धान्त

धाममकश एकाधधकार को नष्ट कर देनेके जोर् में और धाममकश पवश्वास के सम्बन्ध में पूणू शस्वतंत्रता घोपषत करनेके मलए भौततकवादी एकदम पवरोधी हदर्ा में अत्न्तम छोर पर पिुंच गए। िम उनके पवचारों से सीख सकते िैं कक एक अतनयत्न्त्रत पवचार सब प्रकार की बाधाओं को तोड़कर िमें किांपिुँचा दे सकता िै। इस मसद्धान्त का सार 'प्रबोधचन्द्रोदय' नामक एक अन्योत्तत रूपकालंकार युतत नाटक के एक पात्र में संक्षेप में हदया िै: "लोकायत सदा एक िी र्ास्त्र िै; इसमें केवल प्रमयाक्षानुभव की िी प्रामाणणकता को स्वीकार ककया गया िै। तत्त्व चार िैं-पृथ्वी, जल, अत्ग्न और वायु: धन-सम्पदा एवं सुख मानुषी सत्ता के पदाथ शिैं। प्रकृतत सोच सकती िै। इसके अततररतत और कोई लोक निीं। मृमृयिुी सबका अन्त िै"[617] इस र्ास्त्र को लोकायत किते िैं[618], तयोंकक इसका मत िै कक यिी एक लोक िै। भौततकवाहदयों को लौकायततक किा जाता िै। उन्िेंउतत मत के संस्थापक के नाम पर चावाकश भी किा जाता िै।

> साक्षाद् इत्न्द्रय-सम्बन्ध से जो जाना जाता िै विी समय िै केवल विी पवद्यमान िै। त्जसका िम प्रमयक्ष ज्ञान निींकर सकतेउसका अत्स्तमव निींिै। कारण स्पष्ट िै कक उसका प्रमयक्ष जो निीं ंिोता। अनुमान-प्रमाण कुछ निींिै। जब िुए धुएं को देखतेिैं तो िमें सिाचय शअथवा पुरानेप्रमयक्ष अनुभवों की स्मृतत द्वारा अत्ग्न का

---

612 गाय:श 'दकफलासफीआफ ऐत्न्र्येण्ट इत्ण्डया पृष्ठ्। 25

613 र्ी डेपेवड्स : 'डायलॉग्स आफ बुद्ध पृष्ठ् 2, 46

614 र्ी डेपेवड्स : 'अमेररकन लेतचसश पृष्ठ् 24।

615 देखें, र्ात्न्तपव,श श्लोक 1414 और 1430-1442, और र्न्ल्यपवश , 3619; और पवष्णुपुराण भी देखें , 3:18,14-26।

616 'इंत्स्टट्यूट्स आफ मनु ', 2: 11; 3: 150, 161-4:30, 61, 163; 5:89; 8:22,309,9 65, 66; 12:33, 95, 96।

617 अंक 2।

618 'लोकायत' - इत्न्द्रयजगत की ओर प्रवृत्त िुआ-यि संस्कृत र्ब्द िै जो भौततकवाद के मलए प्रयुतत िोता िै।

स्मरण िो जाता िै। विी कारण िै कक अनुमान कभी-कभी समय और कभी ममथ्या भी तनकलता िै। बाद के भौततकवाहदयों ने अनुमान के सम्बन्ध में अपनेतनजी मत के मलए कुछ कारण बताए िैं। िम अनुमान निीं ंकर सकतेजब तक कक िमें सामान्य सम्बन्धों का ज्ञान न िो। प्रमयक्षानुभव िमें सामान्य सम्बन्ध निीं ंदे सकता और न् ्अनुमान के िी कारण िमें सामान्य सम्बन्धों की प्रात्प्त िो सकती िै, तयोंकक इस प्रकार के अनुमान को एक अन्य अनुमान की अपेक्षा िोगी और उसको एक अन्य की आहद-आहद। दूसूरों की साक्षी का कोई मूल्य निीं। सार्दश्य या र्दष्टान्त अनुमान की व्याख्या निीं ंकर सकता और इसमलए अनुमान अवधाथ शि। यि केवल पवषयीगत सम्बन्ध िै, जो केवल आकत्स्मक रूप में िी उधचत ििर सकता िै, यहद उसे औधचमय समझा जाए।

ा प्रकृतत चूंकक प्रत्यक्ष धात्त्वशास्त्र के अनुसार भी केवल ज्ञान का प्रकार िै, मलिा

ीं। केवल इसी का ज्ञान इत्न्द्रयों द्वारा िो सकता िै। जो कुछ भौततक िै विी यथाथ शि। परम तत्त्व चार अवयव िैं पृथूवी, जल, अत्ग्न, एवं ंवायु। ये तनमय िैं और यिी संसार के समस्त पवकास की, अथात्श ्एक कोर्ीय जीव से लेकर दार्तशनक तक की, व्याख्या कर सकतिैं। बुद्धध इन्िीं ंचार तत्त्वों का पररवततततश रूप िै और जब उन तत्त्वों का त्जनसे यि उद्भूत िुई िै, पवलयन िोता िै तो यि बुद्धध भी पवनष्ट िो जाती िै। "वि बुद्धध जो अचेतन अवयवों की पररवततततश आकृततयों के अन्दर तनहित पाई जाती िै, िीक उसी प्रकार से उमपन्न िोती िै त्जस प्रकार पान की पत्ती, सुपारी, कमथा और चूना के परस्पर सत्ममश्रण से लाल रंग पैदा िोता िै ।"[619] त्जस प्रकार कुछ उपकरणों के परस्पर सत्ममश्रण से उनके अन्दर नर्ा उमपन्न कर देनेवाली र्तत उमपन्न िो जाती िै, उसी प्रकार से चार तत्त्वों के परस्पर संयोग से चेतना उमपन्न िो जाती िै। चार तत्त्वों के उपत्स्थत रिने पर चेतन जीवन स्वतः उनके अन्दर से प्रकट िो जाता िै, िीक जैसेकक अलादीन के धचराग को रगने़ ंसे राक्षस प्रकट िो जाता था। पवचार प्रकृतत की िी एक प्रकक्रया िै। कैचेनी़ के प्रमसद्ध कथन के र्ब्दों का यहद िम प्रयोग करें तो किंगे कक मत्स्तष्क क्षरणकक्रया द्वारा पवचार को उसी प्रकार से उमपन्न करता िै त्जस प्रकार त्जगर से पपत्त क्षररत िोता िै। र्रीर से मभन्न ककसी पृथृक् आममा के अत्स्तमव को मानने ंकी आवश्यकता निीं ंिै। र्रीर का बुद्धधगुण से युतत िोना िी पयाप्शत िै। "आममा िी स्वयंर्रीर िै जोकक ऐसे गुणों से पिचाना जा सकता िै त्जनका संकेत इस प्रकार के कथनों में रिता िै, जैसे 'में बलवान िूाँ', 'म ैंयुवा िूाँ', 'म ैंवृद्ध िंूू', 'में एक अधे़ िूाँ', आहद-आहद ।"[620] आममा एवं ंर्रीर के पृथृक् पृथृक् अत्स्तमव की कोई साक्षी िमें उपलब्ध निीं ंिै, तयोंकक र्रीर से मभन्न आममा िमें हदखाई निीं ंदेती। "र्रीर से पृथृक् अवस्था में पवद्यमान आममा को ककसने ंदेखा िै? तया जीवन प्रकृतत की परम सापेक्षक्षक व्यवस्था का पररणाम निीं ंिै?"[621] चेतना अतनवायरूशप से र्रीर के सम्पकश से िी पाई जाती िै। इसमलए यि र्रीर िी सब कुछ िै। मनुष्य वि िै जो कुछ वि भोजन करता िै। सदानन्द ने भौततकवाहदयों के धार मभन्न-मभन्न सम्प्रदायों का वणनश ककया िै। पववाद का मुख्य पवषय जीवाममा-सम्बन्धी पवचार िै। एक सम्प्रदाय के अनुसार, जीवाममा एवं मूत शर्रीर में तादामम्य िै। दूसूरा सम्प्रदाय इत्न्द्रयों को िी आममा मानता िै और तीसरा प्राण के साथ उसके तादामय का वणनश करता िै और चौथा पवचार के इत्न्द्रय अथात्श ्

---

619 सवमशसद्धान्तसारसंग्रि ,2/7 ।

620 विी, 2/6 ।

621 प्रबोधचन्द्रोदय, 2 ।

मत्स्तष्क के साथ तादामम्य को बताता ि।622 ककसी भी मत से तयों न िो, जीवाममा एक प्राकृततक व्यापार ि। अपनी इस त्स्थतत के समथनश में भौततकवादी धमग्रशन्थ का प्रमाण देते िैं और िमें उपतनषद् की ओर तनदेर् करते ैं, जो किती ि, "इन तत्त्वों से प्रादुभूतश िोने के कारण यि नष्ट िो जाती ि। ममृयुके बाद जब ये तत्त्व नष्ट िो जाते िैं बुद्धध भी निीं ंरिती।"[623] इससे यि पररणाम तनकलता ि कक यि सोचना मूखतशा ि कक भपवष्यजन्म में जीवाममा अपनेकमों का पुरुस्कार पाने वाली ि। यि एक भ्रात्न्तपूण शतनणयश ि, त्जससे कक अन्य लोक की कल्पना की भी धारणा बनानी िोती ि। इस लोक के अततररतत और कोई लोक निीं-न स्वग शि और न नरक िी। ये सब पाखत्ण्डयों के मत्स्तष्क की उपज िैं। धम शएक मूखतशापूण शमततभ्रम एवं एक प्रकार का मानमसक रोग ि। संसार की व्याख्या के मलए ईश्वर की कोई आवश्यकता निीं। धाममकश अन्धपवश्वासों एवं पक्षपातों के कारण मनुष्यों को दूसूरे लोक एवं ंईश्वर की कल्पना करने की आदत सी िो गई ि और जब धाममकश भ्रात्न्त नष्ट िो जाती ि तो वे एक प्रकार का अभाव, रूनूयतो गदश िैं। कलपापन अनुभव करने लगते िैं। प्रकृतत को मानवीय उमकष शसे कोई मतलब निीं। यि आप-पुण्य की ओर से सवथशा उदासीन ि। सूय शअच्छे व बुरे, पुण्याममा और पापाममा दोनों का एक िी समान प्रकार् देता ि। यहद प्रकृतत में कोई गुण ि तो वि इत्न्द्रयातीत अनैततकता का ै। मनुष्यों में अधधकतर अपनी दुबुलशता के कारण पवश्वास करते िैं कक ऐसे देवता िैं जो सदोष व्यत्ततयों के रक्षक िैं और पाप का बदला लेते िैं, त्जर्न्ें फुसलाया जा सकता ि और चापलूसी से प्रसन्न भी ककया जा सकता ै। यि सब धचन्तन के अभाव के कारण ि। िम इस संसार की प्रगतत में किीं ंभी उच्चेश्रेणी के प्राणणयों का स्तिक्षेप निीं ंपाते। जब िम देवी-देवताओं और दैमयों के प्रकोप का सम्बन्ध ककर्न्िींप्राकृततक घटनाओंसे जोते े ैं तो िम उतत घटनाओंकी व्याख्या एक ममथ्यारूप में करते िैं। उन व्यत्ततयों के मलए जो प्रकृतत के पयवेशक्षण के मलए आममाओं के अत्स्तमव का, जो एक उत्तम परमेश्वर की सत्ता का प्रमाण िो सकता था, तनषेध करते िैं, यि असम्भव था कक वे इततिास की व्याख्या करते िुए यि स्वीकार करते कक यि ककसी बुद्धधमान सत्ता की दैवीय प्रेरणा ि। ऐसे तनजी अनुभवों की व्याख्या करना भी असम्भव िोगा। ऐततिामसक घटनाओंके सम्बन्ध में परमेश्वर को न्याय के मलए साक्षी ििराना और यि समझना कक सांसाररक पदाथों की व्यवस्था परमाममा द्वारा मनुष्य की मोक्ष-प्रात्प्त के मलए बनाई गई योजनामात्र ि, यि सब मसवाय मतकारी के और कुछ निीं। प्रकृतत अपना काम अपने-आप करती ि उसमें देवताओं के िस्तक्षेप का कोई काम निीं। संसार की पवपवधता स्वयं उमपन्न िुई ि। अत्न उष्ण ि और जल र्ीतल ि, तयोंकक यि उन वस्तुओं का स्वभाव ि। "मोर को कौन अद्भुत रूप से धचबत्रत करता ि अथवा कौन कोयल की आवाज में इतनी ममिास भरता ि? इन मामलों में मसवाय प्रकृतत के और कौन सा कारण िो सकता ि?"[624] एक सिसपूण शकट्टरता के कारण दर्नशर्ास्त्र ने संसार के अपने े

---

622 वेदान्तसार ।

623 बृिदारण्यक उपतनषद् ,2/4, 12 |

624 सवमशसद्धान्तसारसंग्रि ,2:5 ।

 आन्तररक मूल्य को625 एक साथ िी एक ओर उिाकर घर हदया और ईश्वर एवं ंपरलोक की कल्पना को लाकर
आगे रख हदया जोकक ममथ्या कल्पना, स्त्रैणैता, दुबुलशता और भीरुता तथा बेईमानी का धचि िै।

इस कल्पना के आधार पर सुख और दुःख जीवन के मुख्य समय िैं। उपाधधरहित, स्वच्छन्द आनन्द-प्रमोदवाद िी भौततकवाहदयों का नैततक आदर् शि। खाओ, पपयो और मौज उ़ाओ, तयोंकक मौत तो सबकी आनी िै, जो िमारे जीवनों को तन:रे्ष कर देगी। "जब तक जीवन तुम्िारे पास िै, सुखुपूवकश त्जयो, मृमृयुकी तीव्र र्त्त से कोई बच निीं ंसकता, जब एक बार िमारे इस र्रीर के ढांचे को लोग जला देते िैं तो कफर यि कैसे वापस आएगा।"[626]

सुकृत कम शप्रपंच अथवा भ्रांतत मात्र िै और सुखभोग िी यथाथ शसत् ्िै। यि जीवन इसी जीवन के साथ समाप्त िो जाता िै। उत्तम अथवा र्ुभ चररत्र, उमकृष्ट, पपवत्र एवं दयालुप्रमयेक पदाथ शके प्रतत अश्रद्धा थी। उतत भौततकवाद का आर्य केवल इत्न्द्रयभोग एवं ंस्वाथपशरायणता, ककंवा उमकट इच्छा की पूतत शकरना मात्र िै। पवषय-वासना एवं ंनैसधगकश प्रवृपृत्त को वर् में करने ेकी कोई आवश्यकता निीं,ं तयोंकक उन सबको प्रकृतत ने मनुष्य को दायभाग के रूप में हदया िै। जिांएक ओर उपतनषदों नेमनुष्य जातत के मलए तनवृपृत्त-माग शएवं ंकिोर जीवन बबताने का पवधान ककया और इसके अततररतत पवश्व के प्रतत परोपकार और पे्रम के भाव का पवकास करने े का आदेर् हदया, विां ंभौततकवादी उद्दाम र्त्त, अिम्मयन्ता एवंसब प्रकार के प्रामाण्य के प्रतत घोर अश्रद्धा का प्रचार करते िैं। यि उधचत निीं ंिै कक एक व्यत्तत र्ासन करे और बाकी सब उसकी आज्ञा का पालन करें तयोंकक सब मनुष्य एक िी प्रकार की सामग्री से बनेिैं। नैततक तनयम सब मनुष्यों की अपनी स्वीकृत परम्पराएं िैं। जब िम उपवास एवं तपस्या की तनषेधाममक पद्धततयों का अनुसरण करते िैं उस समय जीवन के अतनवाय श लक्ष्य को भूल जाते िैं, जो केवल सुखोपभोग िै। "ऐसे व्यत्तत जो त्जज्ञासा प्रकट करते िैं कक पर्ुओंकी िमया करना, इत्न्द्रयों के भोग में मलप्त रिना, और दूसूरे की वस्तु को िराना न्यायसंगत िै अथवा निीं,ं उनका यि काय शजीवन के मुख्य उद्देश्य के अनुकूल निीं ंिै।"[627] बौद्धों के इस मत के पवषय में कक प्रमयेक सुख के साथ दुःख लगा िुआ िै, भौततकवादी उत्तर देता िै, "वे कल्पना कर लेते िैं कक चूंकक प्रमयेक सुख के साथ दुःख लगा िुआ िै, इसमलए तुम्िें सुखों का भी मयाग कर देना चाहिए, ककन्तु ऐसा कौन बुद्धधमान मनुष्य िै जो तछलके के सहित धान को इस का पवचार ककए बबना कक इसके अन्दर ककतना बहढ़या अन्न का कण तनहित िै, केवल उसी भूसी के कारण उसे फेंक देगा।"[628] "और न तुम यिी कि सकतेिो कक इत्न्द्रयसुख मनुष्य-जीवन का ध्येय निीं ंिै, केवल इसमलए कक उसके साथ कुछ न कुछ दुःख ममला रिता िै। बुद्धधमत्ता का काय शयिी िै कक जिां ंतक िो सके, िम सुख का उसके र्ुद्धधरूप में उपभोग कर लें और उस दुःख को जो सदा उसके साथ जु़ा रिता 5/6 एक ओर िटा

---

625 श्री बनजी का पवचार िै कक न्याय और वैर्ेमर्क प्रारम्भ में नात्स्तकवादी से यद्यपप उनके आधुतनक अनुयातययों ने उन्िें आत्स्तक सम्प्रदाय का घोपषत ककया िै। कुमाररल के अनुसार, पूव शमीमांसां-सम्प्रदाय के अनुयातययों में नात्स्तक वृपृत्त के भाव सामान्य रूप से पाए जातेथे।

626 सवदशनशसंग्रि, पृष्ि 2।

627 प्रबोधचन्द्रोदय, 2।

628 विी।

दें। इसमलए िमारा काम यि निीं ंिै कक दुःख के डर से िम उन सुखों से भी मुखु मो़ लें त्जन्िें िमारा स्वभाव सिज प्रवृपृत्त के कारण उपादेय मानता िै।"[629]

वेदों के प्रामाण्य का तनषेध ब्र ेकटु ब्दों में ककया गया था। वैहदक मन्त्र तीन दोषों अथात्   श ्असमय, असंगतत और पुनरुत्तत के दोषों से भरे प़ िैं।

"स्वग शकिीं ंनिीं ंिै, अंततम मोक्ष भी निीं ंिै और न िी अन्य लोक में कोई आममा िै, और न िी चारों वणों के एवंआश्रमों आहद के कम शकोई यथाथ शप्रभाव उमपन्न करते िैं।

अत्ग्नोत्र, तीनों वेद, तपस्वी कै बत्रदण्ड, और दि े में भस्म रमा लेना इन सबको प्रकृतत ने उन व्यत्ततयों की आजीपवका का साघनरूप बनाया िै, जो ज्ञान से रूनूय िैं और पुंस्मव से भी पविीन िैं।

यहद ज्जयोततष्टोम भाग में मारा िुआ पर्ु ुस्वयं सीधा स्वग शको पिुंच जाता िै तो तयों निीं ंयजमान तुरन्त अपने पपता को यज्ञ की बमल के मलए अपणश कर देता ?

यहद श्राद्ध उन प्राणणयों की तृतृप्त कर सकता िै जो मर गए िैं, तो इस लोक में भी जब पधथक यात्रा पर तनकलतिैं तो उन्िें साथ में माग शके मलए भोजन- सामग्री देनेकी आवश्यकता न िोनी चाहिए।

यहद इस लोक में श्राद्ध में हदए गए पदाथों से स्वगस्शथ प्राणणयों की सन्तुत्ष्ट िोती िो तब तयों न उनके मलए जो मकान की छत पर ख़ िैं, भोजन को नीचिी डाल हदया जाए?

जब तक जीवन िै मनुष्य को सुखपूवकश जीना चाहिए, खूब धी खाना चाहिए; भले िी उसके मलए ऋण भी तयों न लेना प़।े

जब एक बार रीर भस्म िो जाएगा, यि कफर वापस कैसे आ सकेगा ?

यहद वि जो इस दि े को छो़कर जाता िै, दूसूरे लोक में पिुंच जाता िै, तो तया कारण िै कक वि अपने सगे-सम्बत्न्धयों के पे्रेम में बेचैन िोकर कफर इस लोक में वापस निींआता ?

इसमलए यि सब ब्राह्मणों ने अपनी आजीपवका के मलए गढ़ मलया िै। ये संस्कार मृतृक के मलए इसी जगत् ्में िैं, उनका फल अन्यत्र निीं ंममलता।

तीनों वेदों के रचतयता पवदूषूक, धूत शऔर तनर्ाचर थे। पत्ण्डतों के सब प्रमसद्ध मंत्र एवं जाप, जरफरी, तरफरी आहद, और समस्त अश्लील कमकशाण्ड, त्जसका पवधान अश्वमेधयज्ञ में रानी के मलए ककया गया िै।

---

629 सवदश र्नश संग्र् ि पृषृ ि ।

- इन सबको पवदूषूकों ने आपवष्कार ककया था, और इसी प्रकार पुरोहितों के मलए नानापवध उपिारों का पवधान ककया गया। इसी प्रकार मांस खानेका पवधान भी तनर्ाचरों का ककया िुआ िै।"

(सवदशर्नशसंग्रि, 1)

स्पष्ट िै कक उतत पववरण में चावाकश की त्स्थतत के व्यंग्यधचत्र का एक अंर्मात्र िै ककन्तुएक ऐसी दर्नशपद्धतत त्जसे र्ताब्दियों तक गम्भीररूप में मान्यता प्राप्त री िो, इतनी अधधक असंस्कृत रूप की तो निीं ंिो सकती जैसाकक उसे ऊपर धचबत्रत ककया गया िै।"[630]

5. सामान्य समीक्षा

पुराने ेरूहढ़प्रधान एवं ंजादू ूमें पवश्वास करने ेवाले धम शको तनकाल बािर करने ेके मलए भौततकवाद को बिुत कहिनाई का सामना करना पा़। पवद्यमान संस्थाओंको, त्जन्िें समय की मान्यता प्राप्त थी और जो जनसाधारण के स्वभाव में अन्ततनपशवष्ट िो गई थीं, उन्नत करनेके मलए ककए गए ककतने िी उदार प्रयमन सवथशा तनष्प्रभाव मसद्ध िोते, यहद र्ताब्दियों की उदासीनता एवं ंअन्धपवश्वास को चावाकश-सम्प्रदाय सरीखे एक पवस्फोटक बल के द्वारा एकसाथ न हिला हदया गया िोता। भौततकवाद ने प्रामाणणकता के मसद्धान्त का तनराकरण करके व्यत्तत की धाममकश स्वतन्त्रता के मित्त्व की घोषणा की। व्यत्तत के मलए ऐसे ककसी भी पवषय को स्वीकार करना आवश्यक निीं ंत्जसका समथनश तकश की कक्रया द्वारा प्राप्त न िो सके। यि एक प्रकार से मनुष्य का अपनेअन्तस्तर के भाव के प्रतत पुनरावतनश-मात्र या और उस सबका तनराकरण था जो केवल बाह्य एवं पवदेर्ी िै। चावाकशदर्नश उस युग को भूतकात के बोझ से, जो उसे ेबलपूवकश दबाए िुए था, छुटकारा हदलानेके मलए ििधमी वाला प्रपल था। रूहढ़वाद को िटाना आवश्यक था, त्जसमें भौततकवाद ने बिुत बड़ी सिायता की, ताकक दार्तशनक कल्पनाओ के रचनाममक प्रयमनों के मलए स्थान बन सके।

परवतींकाल की भारतीय पवचारधारा में भौततकवाद के साथ स्वभावतः बिुत किोर एवं ंघृणास्पद व्यविार ककया गया। र्ास्त्रीय तकश को प्रायः िी दोिराया जाता िै, त्जसके अनुसार एक प्रमेय पदाथ शमें से प्रमाता पवषयी को तनकालना असम्भव िै तयोंकक बबना प्रमाता की पूवसशत्ता के प्रमेय पदाथ शनिीं ंिो सकता। चेतना प्राकृततक र्त्ततयों का पररणाम निीं ंिो सकती। र्रीर के अततररतत आममा कोई वस्तु निीं ंिै, इस मत की समीक्षा इन िेतुओंके आधार पर की जाती िै- (1) र्रीर के अततररतत चेतना को ग्रिण करने ेकी िमारी अक्षमता से यि उपलक्षक्षत निीं ंिोता कक चेतना र्रीर का गुण िै, तयोंकक र्रीर चेतना को ग्रिण करने ेमें केवल सिायक मात्र िो सकता िै। प्रकार् का प्रमयक्ष ज्ञान बबना प्रकार् के निींिो सकता, ककन्तु इससे यि पररणाम निीं ं तनकाला जा सकता कक प्रकार् का प्रमयक्ष ज्ञान की प्रकार् िै अथवा उसका गुण िै। (2) यहद चेतना र्रीर का गुण िोती तो र्रीर का ज्ञान एकदम निीं ंिो सकता था, तयोंकक चेतना उस पदाथ शका गुण निीं ंिो सकती त्जस पदाथ श

---

630 देखेंरीजडेपेवड्स : 'डायलॉग्सआफबुद्ध ',1, पृष्ि 166-172।

के पवषय में कोई अन्य व्यत्तत अमभज्ञानवान िो, यद्यपप उसका गुण िो सकती िै जो ज्ञानवान िै। दूसूरे ब्दों में यि किा जाएगा कक प्रमाता को अपनेस्थान से च्युत करके प्रमेय पदाथ शया उसके गुण का दजाशर्निंहदया जा सकता। (3) यहद चेतना र्रीर का गुण िोती तो उसके प्रमयक्ष ज्ञान की क्षमता र्रीर के स्वामी के अततररतत दूसूरों में भी रिती, तयोंकक िमें मालूम िै कक भौततक वस्तुओंके गुणों का प्रमयक्ष ज्ञान दूसूरों को िो सकता िै। ककन्तु ुएक व्यत्तत की चेतना उसका तनजी गुण िै और इसमलए उसका ज्ञान दूसूरों को वैसा र्निं ंिो सकता, जैसा अपनेको िोता िै। (4) र्रीर स्वयंभी साधनस्वरूप िै। इसका उपलक्षण यि िै कक इसे वर् में रखने के मलए ककसी अन्य की आवश्यकता िै। चेतना उस तनयंत्रणकताशमें िै। इस प्रकार भौततकवादी की त्स्थतत स्वयंअपने को खत्ण्डत करती िै। यि मनुष्य केवल प्रकृतत का पुतला िै तो यि समझ में र्निं ंआ सकता कक वि ककसी प्रकार के भी नैततक आदर्ों का तनमाणश कैसे कर सकता िै ! केवल प्रमयक्ष ज्ञान िी ज्ञान का साधन िै, इस मत की समीक्षा पवचारकों के अनेक सम्प्रदायों ने की िै। िम यिां ंकेवल एक उदािरण 'सांख्यतत्त्वकौमुदी' से देते िैं: "जब भौततकवादी स्थापना करता िै कक अनुमान ज्ञान का साधन र्निं ंिै तो यि ज्ञान ककस प्रकार से िोता िै कक अमुक व्यत्तत अज्ञानी या संर्यग्रस्त अथवा भ्रम में पड़ा िुआ िै ? तयोंकक अज्ञान, संर्य और भ्रांतत का ज्ञान दूसूरे मनुष्यों के अन्दर इत्न्द्रय-प्रमयक्ष द्वारा तो िो र्निं ंसकता। इस प्रकार भौततकवादी को भी अन्य मनुष्यों के अन्दर अज्ञान आहद के ज्ञान का उनके व्यविार और वाणी द्वारा अनुमान िी करना िोता िै। और इस प्रकार से इच्छा न रितुिए भी भौततकवादी के मलए अनुमान को ज्ञान का साधन स्वीकार करना आवश्यक िो जाता िै।" र्ून्यवाद और संर्यवाद ज्ञान के प्रमयक्षवादपरक मसद्धान्त को तनरन्तर स्वीकार ककए रिने ेके पररणाम िैं। इस मत के आधार पर वे सब ब़े–ब़े पवचार जो संसार को हिला देते िैं, असमय ििर जाएंगे तयोंकक उन्िेंककसी भी भौततक साधन से मापा र्निं ंजा सकता। इन सब दोषों के रितुिए भी जो ऊपर से िी स्पष्ट देखे जा सकतेिैं, इस सम्प्रदाय का प्रचमलत पवश्वासों पर पयाप्शत प्रभाव रिा और इसनेभूतकाल के आकषणश को भंग कर हदया इसने दर्नशर्ास्त्र के प्रमुख मसद्धान्तों के मलए एक ऐसे तनणयश का प्रयोग ककया जो आत्स्तकवाद की कल्पनाओं एवं प्रामाणणकता के आदेर्ों से ऊपर उिा िुआ और उनसे स्वतन्त्र था। जब मनुष्य पूवकशत्ल्पत धारणाओं और धाममकश अन्धपवश्वासों सेस्वतन्त्र िोकर धचन्तन करने ेलगते िैं, तब वे ेसरलता से भौततकवाद में पवश्वास करने के मलए झुक जाते िैं यद्यपप गम्भीरतम धचन्तन के पश्चात् ्वे ेउससे दूरू िट जाते िैं। बबना ककसी अन्य की सिायता के तकश िमें किां ंतक दार्तशनक कहिनाइयों को िल करने ेमें सिायता कर सकता िै, इसका सबसे पिला उत्तर िमें भौततकवाद में ममलता िै।

उद्धृ ग्रन्थ

- 'सवदर्शनशसंग्रि', कावेल एवं ंगफ द्वारा अनुहदत, अध्याय ।।
- 'सवमशसद्धान्तसारसंग्रि', र्ंकर के नाम से प्रमसद्ध, एम० रंगाचाय शद्वारा अनूहदत, अध्याय 2।
- प्रबोधचन्द्रोदय, अंक 2।
- म्योर : 'जनलश आफ द रायल एमर्याहटक सोसायटी', 1862, खण्ड 19, पृष्ि 299 और आगे।
- कोलब्रुक : 'ममसलेतनयस एसेज', 1, पृष्ि 402 और आगे।

छिा अध्याय

जैतनयों का अनेकान्तवादी यथाथवशाद

जैनमत वधमशान जैन साहिमय-अन्य पद्धततयों के साथ सम्बन्ध-ज्ञान का मसद्धान्त-जैन तकशर्ास्त्र का मित्त्व मनोपवज्ञान-तत्त्वपवद्या-नीततः र्ास्त्र-ईश्वरवाद के सम्बन्ध में जैनदर्नश का मत-तनवाणश -उपसंिार।

1. जैनैमत

त्जस प्रकार बौद्ध लोग बुद्ध (जागररत) के अनुयायी िैं, जैनी लोग 'त्जन' के अनुयायी किे जाते िैं। 'त्जन' का तामपय शिै पवजेता। यि उपाधध वधमशान को दी गई िै, जो जैतनयों के अत्न्तम तीथकांर थे। यि ऐसे स्त्री-पुरुषों के मलए भी प्रयुतत िो सकती िै त्जन्िोंनेअपन तनम्नकोहट के स्वभाव पर पवजय पा ली िो और इस प्रकार सवोच्च सत्ता का साक्षामकार मलया िो। "जैनमत' ब्द संकेत करता िै कक जैनदर्नश का स्वरूप मुख्यतः नैततक िै।

2. वधमशान

वधमशान, जो आयुमें बुद्ध से ब्र ेऔर उनके समकालीन थे,े मगध देर्, वतमशान पविार प्रान्त, के एक क्षबत्रय सरदार के द्पवतीय पुत्र थे। जनश्रुतत के अनुसार, उनका जन्म 599 ई. पू. में िुआ और वे 527 ई. पू. में मृमृयु को प्राप्त िुए। "वधमशान अपनेपपता के िी समान काश्यप थे। ऐसा प्रतीत िोता िै कक जब तक उनके माता-पपता मृमृयु को प्राप्त निीं ंिो गए तब तक वे ेअपनेपपता के िी साथ रिे, और उनके ब्र ेभाई नन्दवधनश उतत राज्जय के उत्तराधधकारी िुए जो उनका था। कफर अट्ठाईस वष शकी आयु में अपनेर्ासकों की अनुमतत लेकर उन्िोंने ेधाममकश जीवन में प्रवेर् ककया, जो पाश्चामय देर्ों की भांतत भारत में भी छोटे लड़कों के मलए अपनी मित्त्वाकांक्षाओं की पूतत शके मलए एक उत्तम कायक्षेशत्र प्रस्तुत करता था। बारि वष शतक उन्िोंने ेतपस्या का जीवन व्यतीत ककया। यिां ंतक कक देर् की राधा नामक जंगली जाततयों में भी काम ककया। पिले वष शके पश्चात् ्िी वे बबलकुल नग्न रिकर घूमने ेलगे। आममतनग्रि की तैयारी के इन बारि वषों के बाद िी वधमशान की 'कैवल्य अवस्था' प्रारम्भ िोती िै। इसके पश्चात् ्उन्िें सिवज्ञशरूप में माना जाने लगा, और वे जैतनयों के तीथकांर, अथात्श ् मोक्षमाग शके संस्थापक मानेजानेलगे। उन्िें 'त्जिन' अथाशत् ्धाममकश पवजेता और मिावीर अथात्श ्मिान वीर आहद की उपाधधयां प्रदान की गईं, जो र्ातयमुतन को भी प्रदान की गई थीं। अपनेजीवन के अन्ततम तीस वष शउन्िोंने अपनी धाममकश पद्धतत के प्रचार में और तपत्स्वयों की एक संस्था के संगिन में व्यतीत ककए। इस संस्था को जैसाकक िम ऊपर देख आए िैं, अधधकतर उन राजकुमारों का संरक्षण प्राप्त िुआ, त्जनके साथ उनका ररश्ता मां की ओर से था।631 वधमशान अपने-आपको उन पूवजश एवं क्रमागत तेईस तीथकशरों द्वारा प्रततपाहदत मसद्धान्तों के केवल प्रवतकश अथवा व्याख्याकार के रूप में उपत्स्थत करते िैं. द्वारा का इततिास न्यूनाधधक रूप में पौराणणक कल्पना के रूप में िी ममलता िै। वे ककसी नये मर्क्षक संस्थापक निीं ंथे अपपतु ुपूव शसे पवद्यमान पाश्वनशाथ के मत के सुधारक के ककसी नये साता िै, पाश्वनशाथ ईसा से 776 वष शपूव शमृमृयुको प्राप्त िुए थे। जैन-परम्परा के अनुकारा आता र्नश का उद्भव ऋषभदेव से िुआ, त्जन्िोंने कई र्ताब्दी पूव शजन्म धारण ककया था। इस की पयाप्शत साक्षी उपलब्ध आधार पर कि जा सकता िै कक ईसा से एक प्रकादी पूव शभी ऐसे लोग थे ेजो ऋषभदेव की पूजा करते थे,े जो सबसे पिले तीथकशर थे। प्रकार इसमें कोई सन्देि निीं ंकक वधमशान एवं ंपाश्वनशाथ से पूव शभी जैनमत प्रचमलत था। यजुवेद म ेंतीन तीथकशरों के नामों का उल्लेख िै ऋषभदेव, अत्जतनाथ एवं अररष्टनेमम । मागवत पुराण इस बात का समथनश करता िै कक ऋषभ जैनमत के संस्थापक थे। इस सबमें जो कुछ भी ऐततिामसक तथ्य का अंर् िो, ककन्तु जैनी लोगों का पवश्वास िै कक उनके मत का प्रचार बिुत पूवू शअनेक युगों से मिान तीथकशरों की परम्परा में ककसी न ककसी तीथकांर द्वारा ककया जाता रिा िै।

वधमशान के अनुयायी अधधकतर कुलीन क्षबत्रयों में से िी आए थे ेऔर उन्िोंनेउनके अन्दर से िी एक समुदाय का तनयममत संघटन ककया, त्जसमें पुरुष एवं महिलाएं दोनों की वग शके साधारण नागररक तथा आश्रमवासी सदस्य सत्ममममलत थे। यि मानने ेके मलए िमारे पास पयाप्शत कारण िै कक वधमशान के प्रभाव से

631 जैकोबी : 'सेक्रेडबुतसआफदईस्ट',खण्ड 22, भूममका, पृष्ि 15। और भी देखें, पृष्ि 217 जऔर आगे।

श ्वे जो उनके
श्वेताम्बर एव हदगम्बर दोनों ि◌ी सम्प्रदायों के अनुयायी इस संस्था में सत्ममलत ि◌ो गए थे ◌ेअथात्
साथ इस पवषय में सिमत थे ◌ेकक सब प्रकार की सम्पपत्त के पूण शपररमयाग के अन्दर सब प्रकार के वस्त्रों का पररमयाग भी आ जाता ि◌ै; और वे भी जो पाश्वनशाथ द्वारा प्रचमलत संस्ंथा के अनुयायी थे,◌े जो इस प्रकार के पररमयाग की पराकाष्ठा को स्वीकार निीं ◌ंकरते थे ◌ेऔर वस्त्रों को आवश्यक समझतेथे। सम्भवतः इसी तथ्य का उल्लेख 'उत्तराध्ययन"[632] में हदए गए दो धाममकश सम्प्रदायों केर्ा एवंगौतम के सत्ममलन के वृत्तान्त में आता ि◌ै। यि प्रश्न कक वस्त्रों को पररमयाग ककया जाए अथवा वस्त्र धारण ककए जाएं, आगे चलकर जैतनयों में एक ब़ ◌े पवभाजन का कारण बना- अथात्श ्एक वे ि◌ुए जो श्वेतवस्त्र धारण करतेिैं और दूसूरे वे जो हदगम्बर अथात्श ् हदर्ाओंको ि◌ी अपना वस्त्र समझकर नग्न रिते िैं। यि पवभाजन ईसा के पश्चात् ्79 अथवा 82 वष शमें ि◌ुआ।

उतत दोनों सम्प्रदायों में दार्तशनक मसद्धान्त सम्बन्धी मतभेद इतना निीं ◌ंि◌ै त्जतना कक नैततक मसद्धान्त-सम्बन्धी मतभेद ि◌ै। हदगम्बरपंथी मानतेिैं कक केवली अथवा पूणज्ञशानी संतं वे ि◌ैं जो बबना भोजन के जीवन-तनविाश करते ि◌ैं; और वि साधु जो कुछ भी सम्पपत्त अपनेपास रखता ि◌ै, त्जसमें वस्त्र धारण करना भी आ जाता ि◌ै, तनवाणश या मोक्ष को प्राप्त निीं ◌ंकर सकता, तथा कोई स्त्री मोक्ष की अधधकाररणी निीं ◌ंि◌ै। ये लोग वधमशान तीथकांर को भी नग्नरूप में और बबना ककसी श्रृंगार के ि◌ी प्रस्तुत करते ि◌ैं, त्जनकी र्दत्ष्ट नीचेकी ओर उनका पवचार ि◌ै कक वधमशान आजन्म ब्रह्मचारी थे। ये श्वेताम्बर सम्प्रदाय के प्रामाणणक ग्रन्थों को अस्वीकार करते ि◌ैं, और उनके अपनेप्रामाणणक ग्रन्थ कोई निीं ◌ंि◌ै।

3. जैनै साहिमय

लोगों के मन में तो पूववशत धाममकश पवश्वास सुरक्षक्षत था, ककन्तुधमर्शास्त्र का ज्ञान धीरे-धीरे क्षीण ि◌ो रिा था, जबकक ईसा से पूव शचौथी र्ताब्दी में धाममकश तनयम बनाने को धीरे-धीरे सीपणा करूप से अनुभव ि◌ोने लगी। इसी प्रयोजन को लेकर पाटमलपुत्र में ईसा से पूव शआवश्यकतादी के लगभग एक पररषद् का आयोजन ि◌ुआ, त्लिांकक धाममकश तनयमों को चौथीम रूप हदया गया वल्लभी वाली पररषद् में, त्जसमें प्रधान पद का आसन देवद्धध में आणण ककया था। यि पररषद् उसके 800 वष शके पश्चात् ्लगभग 454 ईस्वी में ि◌ुई थी। 84 ग्रन्थों को धाममकश साहिमय में प्रामाणणक माना गया। उनमें से 41 तो सूत्रग्रन्थ ि◌ैं, ककतने ि◌ी प्रकीणकश, अथाशत् ् वगीकरणपविीन ग्रन्थ ि◌ैं, 12 तनयुत्शततग्रन्थ अथवा टीकाएं ◌ंि◌ैं, एक मिाभाष्य अथात्श ्विृद् टीका ि◌ै। 41 सूत्रों में 11 अंग, 12 उपांग, 5 छेद, 5 मूल एवं ◌ं8 पवपवध ग्रन्य जैसे भद्रबािु का 'कल्पसूत्र', सत्ममलत ि◌ैं।'[633] ये सब अधमशागधी भाषा में मलखे ◌ेगए, ककन्तु ◌ुआगे चलकर संस्कृत जैनधम शकी पप्रय भाषा ि◌ो गई। हदगम्बर सम्प्रदाय के अनुसार, सन् ्57 ईस्वी में उस पपवत्र जनश्रुतत को मलपपबद्ध ककया गया जबकक उतत ज्ञान के तनष्णात पवद्वानों का उपलब्ध ि◌ोना कहिन ि◌ो गया और वधमशान एवं ◌ंअन्यान्य केवमलनों ने तया कि इसके संकलन का

632 स्लेतचर', 23।

633 जैकोबी द्वारा अनूहदत 'सेक्रेड आफ द ईस्ट, खण्ड 22।

साधन केवल जनश्रुतत और उनकी अपनी स्मृतत िी रि गई। इस प्रकार उन धमग्रशन्थों का तनमाणश, त्जनमें 7 तत्त्व, 9 पदाथ,श 6 द्रव्य एवं ं5 अत्स्तकायों634 का वणनश िै, इन श्रुततयों एवं स्मृतृयों के आधार पर िी िुआ।635

4. अन्य पद्धततयों के साथ सम्बन्ध

बौद्धमत एवं जैनमत दोनों िी ककसी एक प्रज्ञावान आहदकारण की सत्ता को मानने ेसे तनषेध करते िैं, दैवीयरूप संतों की उपासना करते िैं, ऐस ेंपुरोहितों की संख्या को माननेसे जो ब्रह्मचय शका पालन करते िों, और ककसी भी कारणं तथा ककसी भी प्रयोको मानते िैं जीवहिंसा को पाप समझते िैं। उतत दोनों मतों के संस्थापक वे थे ेत्जन्िोंने अपनेको पूण शजीवया, यद्यपप वे सदा ऐसे निीं ंरिे। दोनों िीं मत वेदीं के प्रामाण्य के यहद पवरोधी निीं ंतो कम से कम उसके प्रतत उदासीन अवश्य िैं। बुद्ध एवं वधमशान के जीवन एवं ंमर्क्षाओंमें पाई कम वाली अद्भुत समानताओं के कारण कभी-कभी यि किा जाता िै कक बौद्ध एवं जैनमत जोनों एक िी िैं और यि कक जैनमत बौद्धमत की एक र्ाखामात्र िै। वाथ शमलखता िै, दोनाघभान का-त्जन्िें अधिकतर उपयोग में आने ेवाले मिावीर अथवा वतमशान युग के 'त्जन' नाम से पुकारना अधधक उधचत िोगा-हदव्य चररत्र िमारे आगे गौतम बुद्ध के साथ सम्बन्ध के इतने अधधक और इतने पवमर्ष्ट अंर् प्रस्तुत करता िै कक िम पववर् िोकर अपनी सिज प्रेरणा से इस पररणाम पर पिुंचते िैं कक विी एक व्यत्तत दोनों चररत्रों का नायक िै। दोनों िी का जन्म राजकुल में िुआ; विी सामान्य नाम उन दोनों के बंधुओंएवं मष्यों के पाये जाते िैं। उन दोनों का जन्म और मृमृयुएक िी देर् में और एक िी युग में िुए। अधधकृत ऐेततिामसक सूचनाओं ंके अनुसार 'त्जन' का तनवाणश ईसा से पूव श526वें वष शमें और बुद्ध का 543वें वष शमें िुआ; और यहद उपयुतशत सामग्री के अन्तगतश अतनत्श्चतता की मात्रा का पवचार करके किं तो कि सकतिैं कक दोनों का काल बबल्कुल एक िी िै। इसी प्रकार के अन्य आकत्स्मक संघटन

---

634 देणखए,जैनी आउटलाइंस आफ जेतनज्जम', पररमर्ष्ट। 5

635 श्वेताम्बरों के अमयधधक आप्त ग्रन्थों में तनम्नमलणखत ग्रन्य दार्तशनक मित्त्व के िैं (1) उमास्वातत का 'तत्त्वाथधशधगमसूतूर', (ईसा के पश्चात् ्तीसरी र्ताब्दी में मलणखत)। इसमें दस अध्याय िैं और कई लेखकों ने इस पर टीकाएं की िैं। यि बिुत लोकपप्रय ग्रन्थ िै; (2) मसद्धसेन हदवाकर का 'न्यायावतार' (ईसा के पश्चात् ्5वींर्ताब्दी में मलणखत); (3) रिरभद्र का 'षड्दर्नशसमुच्चय' (9वींर्ताब्दी में तनममतश); (4) मेरुतुंग (14वीं र्ताब्दी), का 'षड्दर्नशपवचार' 'नवतमव' भी इसी काल का ग्रन्य िै, यद्यपप इसके रचतयता का नाम ज्ञात निीं ंिै। हदगम्बरों 'के मुख्य धाममकश ग्रन्थों में तनम्नमलणखतों का नाम मलया जा सकता िै (1) कुन्दकुन्दाचाय शका 'पंचात्स्तकायसार' (50 वष शईसापूव?श)। किा जाता िै कक कुन्दकुन्दाचाय श वास्तव में एलाचाय थिे और 'ततरुतकुरल' का रचतयता िै जबकक ततरुवल्लुवर केवल उतत ग्रन्य का प्रकार्क था: (2) पवद्यानन्द का 'जैनश्लोकवातत्कश' (8वीं र्ताब्दी), (3) गुणभद्र का 'आममानुर्ासन' (9वींर्ताब्दी), (4) अममतचन्द्र का 'तत्त्वाथसशार (5) 'पुरुषाथमशसद्ध्युपाय' (9वीं र्ताब्दी), (6) नेममचन्द्र का 'द्रव्यसंग्रि' (10वीं र्ताब्दी); त्जसमें द्रव्यों का वणनश ि,ै (7) 'गोम्मटसार' त्जसमें 5 बन्धों पर संवाद िै, यथा, ('बद्धयमान', जो बन्धन में आता िै, 'बन्ध स्वामी', वि जो बांधंता िै, 'बन्धिेतु', अथात्श ्बन्धन का कारण और 'बन्यभेद' अथात्श ्बन्धन तोड़ने वाले के उपाय, (8) 'लत्ब्धसार', जो लत्ब्ध अथात्श ् प्रात्प्त के पवषय का प्रततपादन करता िै; (9) 'क्षपणसार', त्जसमें उन उपायों एवं साधनों के पवषय में संवाद िै त्जसके द्वारा कपायों या वासनाओंको दूरू ककया जा सकता िै; (10) 'बत्रलोकसार', त्जसमें तीन लोकों अथवा पवश्व के तीन पवभागों का वणनश िै, और (11) सकलकीतत शका 'तत्त्वाथसशारदीपपका' (सन् ्1464) । मल्लीषण का 'स्याद्वादमंजरी' (13वींर्ताब्दी) और देवसूरर का 'प्रमाणनयत्तत्त्वामलोकालंकांर (11वीं ंर्ताब्दी)। ये अन्य ग्रन्थ भी पयाप्शत मित्त्व के िैं। इनमें से कई ग्रन्थों का अंग्रेजों में अनुवाद 'सेक्रेड बुतस आफ द जैनूज' नामक पुस्तकमाला में िो गया िै।

भी दोनों की अन्य सब परम्पराओं में पाए जाते ैं। बौद्धों के समान जैतनयों का भी दावा ै कक उन्ें मौयवंशरीय राजाओंका आश्रय प्राप्त था। बबिार प्रान्त का वीी त्जला जो एक के मलए पपवत्रभूमम ै, प्राय: दूसूरे के मलए भी पपवत्र ै, और दोनों के तीथस्शथान भी बबिार प्रदेर्, गुजरात, राजस्थान में आबू पवतश, एवं अन्य स्थानों में भी सवत्रश साथ-साथ ममले ुिए ैं। यहद िम इन मसद्धान्तों की अनुकूलता, संघटन, धाममकश रीतत-ररवाजों एवं परम्पराओं आहद की सूक्ष्मरूप से परस्पर तुलना करें तो अतनवायरूशप से ऐसा प्रतीत िोता ै कक दोनों में से कोई एक मत दूसूरे का सम्प्रदायरूप ै; और ककसी अंर् में दूसूरे की नकलमात्र ै। इसके अततररतत जब िम कई ऐसे उपाख्यानों पर पवचार करते ैं जो बौद्ध एवं ंब्राह्मण धम शकी परम्पराओं में एक समान पाए जाते ैं और त्जस प्रकार के सम्बन्धों का मिावीर के उपाख्यानों में अभाव ै, और जब िम पवचार करते. ैं कक बौद्धमत को अपने पक्ष में अर्ोक की राज्जय-पवज्ञत्प्तयां प्राप्त थीं, और यि कक उसी समय से अथात्श ्िमारे युग से तीसरी र्ताब्दी पूव शबौद्धधम शके पास एक ऐसा समृद्ूध साहिमय उपत्स्थत था त्जसकी कुछेक उपाधधयां िमारे समय तक भी आई ैं, जबकक दूसूरी ओर जैनैधम शके पवषय में असंहदग्ध साक्षक्षयां भी ईसा की मृमृयुके पश्चात् ्पांचवीं ंर्ताब्दी से पूव शिमें निीं ंले जातीं; और पवर्ेषेकर जब िम आगे इस पवषय पर धचन्तन करते ैं कक बौद्धों की मुख्य पपवत्र भाषा पाली भी इतनी ी प्राचीन ै त्जतने ेप्राचीन सम्राट अर्ोक के ये आज्ञापत्र ैं, और दूसूरी ओर जैतनयों की पपवत्र भाषा अद्धशमागधी एक प्राकृत बोली ै जो स्पष्ट ी अधधक अवाचशीन ै; और इन सबके साथ जब िम उन नतीजों को जो़र्तें-जो िमारे ज्ञान की वतमशान अवस्था में अतनत्श्चत अवश्य ैं जो जैनमत की आन्तररक पवर्ेषताओं में पाए जाते ैं, जैसेकक इसकी अधधक परररपतव क्रमबद्धता, बन्धनरहित पवस्तार को प्राचीनता को मसद्ध करनेके मलए ककया गया अमयन्त अधधक घोर पररश्रम तो िम बबना ककसी संकोच के यि स्वीकार कर सकतें कक उतत दोनों मतों में से बौद्धधम शका दावा युत्ततयुतत ै।636 यद्यपप कोलबुक का इसके मौमलकता ें किक जैनमत दोनों में अधधक प्राचीन ै तयोंकक वि अध्याममवाद में पवश्वास करते यि करता ै कक िरएक पदाथ शमें जीव ै।637 दोनों मत भारतीय परम्परा के पवरुद्ध जाते ैं ुिए भान्जानुसार बौद्ध एवं जैन मत दोनों ी परस्पर एक-दूसूरे के सवयशा मभन्न ैं। हिन्दू ूर्ास्त्रकारों को इस पवषय में कभी भी भ्रांतत निीं ंुिई और उनके साक्ष्य का समथनश ग्यूरीनाट जैकोबी एवं ंबुल्रि आहद अन्य कततपय पवद्वानों ने भी ककया ै। अब यि तनत्श्चतरूप से स्थापपत ककया जा चुका ै कक वधमशान स्वयंएक ऐततिामसक व्यत्तत थे,े जो गौतम बुद्ध से सवथशा मभन्न थे ेऔर जैनदर्नश भी बौद्धदर्नश से एक सवथशा स्वतंत्र पद्धतत ै। ग्यूरीनोट के वधमशान एवं ंगौतम बुद्ध की पांच मित्त्वपूण शभेदसूचक घटनाओंकी ओर अथात्श ्उनक जन्म, उनकी मााताओं की मृमृयु के सम्बन्ध में, उनके गृिमयाग के पवषय में, और ज्ञानप्रात्प्त एवं मृमृयुके सम्बन्ध में-तनदेर् हदया ै। वधमशान का जन्म वैर्ाली में 599 वष शईसापूव शके लगभग ुिआ, जबकक गौतमबुद्ध का जन्म कपपलवस्तु में लगभग 567 वष श ईसापूव शिुआ। वधमशान के माता-पपता अपनी वृद्ूधावस्थापयन्शत जीपवत रिे जबकक दूसूरी ओर गौतम बुद्ध की माता पुत्रजन्म के कुछ समय के बाद ी स्वग शमसधार गईं। वधमशान ने अपनेसगे-सम्बत्न्धयों की अनुमतत लेकर तपस्या का जीवन स्वीकार ककया, जबकक इसके पवपरीत गौतम बुद्ध अपनेपपता की इच्छा के पवरुद्ध साधु बने े

636 बाथ:श'द ररमलजन्सआफ इत्ण्डया', पृषिू 148-50।

637 कोलबुक 'ममसलेतनयस एसेज, 2. पृषिू 276।

 थे। वधमशान को तपस्या में बारि वष शलगे, जबकक गौतमबुद्ध ने छि वष शमें िी ज्ञान प्राप्त कर मलया। वधमशान

की ममृयुपावापुरी, बबिार में 527 वष शईसापूव शिुई। जबकक गौतमबुद्ध की ममृयुकार्ीनगर, उत्तर प्रदेर् में लगभग 488 वष शईसा पूव शिुई। जैकोबी ने बौद्धधम शकी अपेक्षा जैनधम शकी प्राचीनता एवं बौद्धधम शसे सवयशा पृथृतमव को ककतर्नी स्पष्ट एवं ंमभन्न-मभन्न प्रमाणों के आधार पर मसद्ध ककया िै, त्जनका िम यिां ंसंक्षेप में पिाकों की रुधच के मलए उनके पवद्वतापूण शसंवादों का उल्लेख करते िुए तनदेर् करेंगे।638 बौद्धग्रन्थों के 'तनग्गण्ि' लोग (त्जन्िें ककसी प्रकार का बंधन निीं ंिै) वधमशान के अनुयायी िैं और यहद इन्िें उससे अधधक प्राचीन न भी मानें तो तनग्गण्ि कम से कम ईसा से पूव शचौथी र्ताब्दी में वतमशान रिना चाहिए। पाली बौद्ध साहिमय का 'नातपुत्त' वधमशान िै। बौद्धों के धाममकश ग्रन्थों में हदए गए तनग्गण्िों के मसद्धान्त के उल्लेख से तनग्गण्िों एवं जैतनयों की एकाममता का समथनश िोता िै। "तनग्गण्ि नातपुत्त...सब वस्तुओंको जानता एवं देखता िै, पूणज्ञशान एवं ंश्रद्धा का दावा रखता िै, तपस्याओंद्वारा पुराने ंकमों का समूल नार् एवं तनवृपृत्तमाग शके आश्रय द्वारा नये कमों के तनरोध की मर्क्षा देता िै। जब कम शका अन्त िो जाता िै तो दुःख का भी अन्त िो जाता िै।"[639] अर्ोक के मर्लालेखों में जैन-सम्प्रदाय का उल्लेख ममलता िै।"[640] स्वयंबौद्धग्रन्थों में जैतनयों को बौद्धमत के प्रततद्वन्द्वीरूप में उल्लेख ककया गया िै। उतत आन्तररक साक्ष्य दोनों मतों के पाथतशय का समथनश करता िै। आममा एवं ंज्ञान सम्बन्धी जैन दर्नश का मसद्धान्त जैन धम शका एक इतना अधधक पवमर्ष्ट मसद्धान्त िै और िालत में कि िी निीं ंसकते। उतत दोनों दर्नशों में प्रतीयमान कम शएवं पुनजन्शम-पवषयक आधार पर कुछ मसद्ध निीं ंककया जा समाप्त भारतीय दर्नशों में समानरूप से पाए जाते िैं। उतत सब िेतुओंसे मि जैनधम शको समरधम शसे प्राचीन समझते िैं। एम. पौमसन सम्मतत िै कक जैनधम श"एक र्तत को चररखाजकों की संस्था थी त्जसका प्रादुभुावश अथवा पुनगिशन र्ातयमुतन के कुछ वष शपूव शिुआ।"[641]

कोलब्रुक के अनुसार, जैनमत एवं ंसांख्यदर्नश में बिुत-से-अंग परस्पर ममलते-जुलते िैं। ये दोनों िी प्रकृतत को अनाहद एवं ंअनन्त मानतेिैं, एवंसंसार की तनरन्तरता में पवश्वास करते िैं। एक का द्वैतवाद दूसूरे के द्वैतवाद से मभन्न निीं ंिै। भेद केवल इतना िी िै कक जिाँकाख्य भौततक जगत् ्एवं ंप्राणणयों का पवकास पुरुष एवं प्रकृतत के तत्त्वों से सम्पन्न िुआ मानते िैं, जैनमतावलम्बी इनके पवकास का कारण आद्य प्रकृतत को मानतेिैं।642 समानता केवल प्रतीयमान िै। आममा की कक्रयार्ीलता के पवषय में जैतनयों के पवचार और न्याय-वैर्ेपषक के मसद्धान्त में अधधक समानता िै अपेक्षा सांख्य-मसद्धान्त के, त्जसके अनुसार आममा केवल साक्षीमात्र िै ककन्तु स्वयंकताश निीं ंिै। न िी उनमें कुछ अधधक अनुकूलता यिां ंतक कक कारण-कायभशाव जैसे

---

638 देणखए भूममका, खण्ड 22 और 45, 'सेक्रेरेड बुतस आफ द ईस्ट'।

639 'सेक्रेरेड बुजत आफ द ईस्ट', खण्ड 22, पृषि्ठ 15 और आगे। दीघतनकाय के 'ब्रह्मजालसुत्त' पर बुद्धघोष की टीका में र्ीतजल में जीवन-सम्बन्धी पवकार का उल्लेख िै, एवं जैनों द्वारा आजीवक के इस मसद्धान्त के कक आममा में रंग या वण श िै, खण्डन का भी उल्लेख िै। 'सामंञफलसुतुत' सम्भवतः पाश्वनशाथ के चार व्रतों का वणनश करता िै। मत्ज्जझमतनकाय (56) एवं मिावग्ग (6:31) में िंमें बुद्ध द्वारा वधमशान के कुछ मष्यों के मतपररवतनश का वृतूान्त ममलता िै।

640 देणखए, पवंसेंट त्स्मथ : 'अर्ोक', पृषि्ठ 192-193।

641 'द वे टु तनवाणशपृषि्ठ 67।

642 'तत्त्वायधशधगमसत्र', (टीका), 3/6।

मित्त्वपूण शमसाद्धान्त में भी उतत दोनों का मतैतय निीं ंिै। जैनमत का अध्ययन करने वाले पवद्याथी प्राय: यि

धरानेश ेका प्रयमन करते िैं कक उतत मत एक प्रकार से उस समालोचनापटु, चतुर ककन्तु न्यायपप्रय क्षबत्रय अथात् वधमशान, मिावीर का उस चतुर एवं ंमसद्धान्तरून्य ब्राह्मण के पवरुद्ध पवद्रोि था जो अन्य सबको चतुथाश्रशम में संन्यस्त िोने ेके अधधकार से वंधचत रखता था और यज्ञ करने ेके अधधकार भी एकमात्र ब्राह्मण-जातत का िी दावा रखता था। इस प्रकार की कल्पना उधचत निीं ंिै। ब्राह्मणों नेसंन्यास आश्रम के मलए इस प्रकार का कोई दावा कभी निीं ंककया, तयोंकक द्पवजमात्र को (ब्राह्मण, क्षबत्रय, वैश्ेय को) सब आश्रमों में से गुज़रने ेका सामान्यरूप से अधधकार था। इत पवद्रोि का कारण यहद ब्राह्मणों का पृथृग्भाव िोता तो इसका नेतृमृव क्षबत्रय निीं ंअपपतु अन्य जातत के लोग करते तयोंकक इस मामले में क्षबत्रय को भी ब्राह्मण के िी समान अच्छा या बुरा समझा जाता था। िमारे पास यि मानने ेका कोई कारण निीं ंिै कक जनसाधारण के दु:खों के कारण िी जैनमत का उदय िुआ। मिाकाव्यकाल के प्रारम्भ में जो पवचार के क्षेत्र में एक सामान्य िलचल पैदा िुई यि उसी िलचल की अमभव्यत्तत के रूप में उमपन्न िुआ अतएव जैनमत के प्रादुभाशवश का कारण िमें ब्राह्मण-पवरोधी पक्षपात के रूप में गढ़ने की कोई आवश्यकता निीं ंिै। जब जीवन के सम्बन्ध में मभन्न-मभन्न मत एवं मसद्धान्त, जो मभन्न- मभन्न वगों के लोग रखतिीं, एक दूसूरे के सम्पकश में आते िैं, उस समय पवचारों का परस्या आदान-प्रदान िोना अतनवाय शिो जाता िै जो अनुभव पवश्वास के असाधारण पवकास जन्म देता िै, और जैनमत इसी प्रकार की मानमसक बेचैनी का आपवभावश िै।

उपतनषदों के असन्तुमलत रूप में प्रततपाहदत पुनजन्शम के मसद्धान्त ने यि पवचार को जनसाधारण को हदया कक इस जगत् ्की सब वस्तुओंमें आममाएं िैं। स्वभावत: जैनयमावस्यार जनसाधारण था कक प्रमयेक भौततक पदाथ-शयथा अत्न, वायु और पौधे में भी जीवाया िै। इस प्रकार के मत के आगे पिले के लोगों की यज्ञ के प्रतत साधारण रुधच निीं ंििर सकती की। इस प्रकार पवद्रोि के मलए समय अनुकूल था। जब इस पवश्वास को कक सब वस्तुएं पर्ु ुएवं ंकीट-पतंग, पौधे और पत्ते-जीवाममा से युतत िैं, पुनुजन्शम के मसद्धान्त के साथ जो़ हदया गया, तब तो जीव-हिंसा ककसी भी रूप में स्वत: भयावि प्रतीत िोनेलगी। वधमशान २ इस पवषय पर बल हदया कक मिं ककसी भी जीव को चािे खेल में, चािे मनोरंजन के मलए अथवा यज्ञ में कभी िातन निीं ंपिुंचानी चाहिए। इस पवरोध की त्स्थतत को और अधधक सुर्दढ़ करने ेके मलए जैतनयों नेईश्वर की सत्ता का तनराकरण ककया तयोंकक ईश्वर के तुष्टीकरण के मलए िी यज्ञ ककए जाते थे। जीवन में दु:ख िैं उनके मलए ईश्वर को त्जम्मेवार निीं ं ठिराया जा सकता। जीवन के दु:खों से तनवृपृत्त पाने का उपाय ढूंढ़नेके मलए जैनमत ने आन्तर एवं बाह्य तपस्या

यों मेंमििं पिुंचाजीवन एक ऐसा पवधान ककया जब िम पूणतशा प्राप्त कर लेते िैं, िम रूनूयरूप तनवाणश सत्ता में पिुंचतिैं जो गुणों एवं सम्बन्धों से रहित िै, और उस अवस्था में पुनजन्शम की कोई सम्भावना निीं ं रिती।

जैनदर्नश को अवैहदक किा जाता िै, तयोंकक यि वेदों की प्रामाणणकता को स्वीकार निींकरता। इसमलए यि अपनी दर्नश-पद्धतत को भी 'त्जन' की दैवीय प्ेरेरणा का रूप निीं दे सकता। इसका दावा केवल इतना िी िै कक यि दर्नश चूंकक यथाथतशा के अनुकूल िै इसमलए इसे स्वीकार करना चाहिए। किा जाता िै कक इसकी पवश्व-

भारतीय दर्नश -1 245 रचना सम्बन्धी योजना तकश एवं ंअनुभव के ऊपर आधश्रत ि। अपनेअध्याममर्ास्त्र में जैनी लोग वैहदक

यथाथतशा को स्वीकार करते ि यद्यपप वे उसको उपतनषदों की पद्धतत से क्रमबद्ध निीं ंरखते। प्रकृतत का पवश्लेषण करके उसे आंणपवक रचना बतलाया गया ि। पुरुषों का तनष्क्रय साक्षीरूप छुड़वाकर उन्िें सकक्रय प्रततपादन ककया गया ि। जैनदर्नश की मुख्य मुख्य पवर्ेषताएं ि-इसका प्राणणमात्र का यथाथरूशप में वगीकरण, इसका ज्ञान-सम्बन्धी मसद्धान्त, त्जसके साथ संयुतत ि इसके प्रख्यात मसद्धान्त 'स्याद्वाद्ध' एवं 'सप्तभंगी' अथात्श ्तनरूपण की सात प्रकार की पवधधयां, ं और इसका संयमप्रधान नीततर्ास्त्र अथवा आचारर्ास्त्र। इस दर्नश में अन्यान्य भारतीय पवचार-पद्धततयों की भांतत कक्रयाममक नीततर्ास्त्र का दार्तशनक कल्पना के साथ गिबंधन ककया गया ि। यथाथवशादी अध्याममपवद्या एवं साधनार्ील र्ीलाचार या नीततपवद्या तो वधमशान को अपनेपूवपुशरुषों से भी प्राप्त िो सकती थी ककन्तु उसका ज्ञान-सम्बन्धी मसद्धान्त उसका अपना ि और दर्नशर्ास्त्र के इततिास के पवद्याथी के मलए अपना एक पवर्ेषमव रखता ि।

5. ज्ञान का मसद्धान्त

जैन दार्तशनक ज्ञान के पांच प्रकारों को स्वीकार करते ि: मतत, श्रुतत, अवधध, मन पयायश एवं ंकेवल ।'[643] (1) मततज्ञान साधारण ज्ञान ि, जो इत्न्द्रय के प्रमयक्ष सम्बन्ध द्वारा प्राप्त िोता ि। इसी के अन्तगतश आते ि स्मृतृत संज्ञा अथवा प्रमयमभज्ञा अथवा पिचान और तकश अथवा प्रमयक्ष के आधार पर ककया गया आगमन अनुमान, अमभतनबोध या अनुमान, अथवा तनगमन पवधध का अनुमान ।644 मततज्ञान के कभी-कभी तीन भेद ककए जाते ि अथातश उपलत्ब्ध अथवा प्रमयक्ष ज्ञान, भावना अथवा स्मृतृत और उपयोग अथवा अथग्रशिण ।645 इत्न्द्रयों, एवं मन (त्जसे इत्न्द्रयों से मभन्न िोने ेके कारण अतनन्द्रय भी किते ि) के संयोग के द्वारा जो ज्ञान प्राप्त ककया जाता ि उसे मततज्ञान किते ि। मततज्ञान की उमपपत्त से पूव शिमें सदा कोन िोता ि। (2) श्रुतज्ञान अथवा र्ब्दा या आप्त प्रमाण वि ज्ञान ि जो लक्षणों, प्रतीका अथवा र्ब्दों द्वारा िमें प्राप्त िोता ि। जबकक मततज्ञान िमें पररचय द्वारा ममलता ि, यि ज्ञान प्राप्त िोता ि। श्रुतज्ञान भी चार प्रकार कोवषय,श भावना अथवा ध्यान देना, उपयोग अथवा अथग्रशिण, और नय अथवा वस्तुजी क श्रावये के नाना पक्ष।646' नय को यिांइसमलए दर्ायशा गया ि चूंकक धाममक सन्जों को सायन-मभन्न व्याख्याएं पववाद के मलए उपत्स्थत की जाती ि। (3) देर् और काल की दूरी हितिुए भी वस्तुओंका जो सीधा या प्रमयक्ष ज्ञान ि उसे अवधध किते ि। यि जारी असाधारण र्दत्ष्ट द्वारा अतीत्न्द्रय पवषयों का ज्ञान ि। (4) मन:पयायश, अन्य व्यत्ततयों के अधमशान एवं भूत पवचारों का साक्षात् ्ज्ञान; जैसे टेलीपैथी द्वारा दूसूरों के मन में प्रवेर् ककया जाता ि। (5) केवल अथवा पूणज्ञशान, सब पदाथों

643 उमास्वाततकेतत्त्वाथसूशत्र , 19औरसवदशर्नशसंग्रि, 5।

644 'पंचात्स्तकायसमयसार ', 41; जैनमत के तकशक्रम को जानने के मलए न्याय के ऊपर जो अध्याय ि उसे द्पवतीय खण्ड में देणखए ।

645 विी, 42।

646 विी, ,43,।

एवं उनके पररवतनशों का पूणज्ञशान प्राप्त का लेना।647 यि देर्, काल एवं पवषय की सीमा से रहित सवज्ञशता िै। पूणचेशतना के मलए सम्पूण शयथाथतशा प्रमयक्षरूप में प्रकट िै। यि ज्ञान जो इल्न्द्रयों के ऊपर तनभरश निीं ंिै और जो केवल अनुभवगम्य िी िै एवं वाणी द्वारा त्जसका वणनश निीं ंककया जा सकता, केवल ऐसे पपवत्राममाओं के मलए िी सम्भव िै जो बन्धनों से मुतत िो चुके िैं।

पिले तीन प्रकार के ज्ञानों में भ्राल्न्त की सम्भावना िै, ककन्तु पपछले दोनों में कोई दोष निीं ंिो सकता।648 ज्ञान की यथाथतशा के मलए उसमें कायक्षशमता का िोना, एवं िमें इस योग्य बनानेकी क्षमता का िोना कक िम भलाई को ग्रिण करके बुराई का मयाग कर सकें, आवश्यक िै। यथाथ शज्ञान िमें प्रमेय पदार्थों का तदनुरूप साक्षात् ्कराता िै और इसीमलए वि कक्रयाममक रूप से उपयोगी िै। पवपरीत ज्ञान िमारे सामनेवस्तुओं को ऐसे सम्बन्धों में प्रस्तुत करता िै त्जसमें वेअवत्स्थत निीं ंिैं। जब िम एक रस्सी को सांप समझ बैिते िैं तब मिारी भूल इसमें िै कक िम सांप को विाँदेखतिैं जिा ँवि निीं ंिै। पवपरीत ज्ञान सदा पवरोध के अधीन िोता िै जबकक यथाथ शज्ञान को पवरोध का कभी भय निीं ंिोता। भ्रांत ज्ञान की पवर्ेषता इसमें िै कक उसमें संर्य रिता िै, जो मतत एवंश्रुतुत दोनों पर असर रखता िै; पवपययश अथवा भूल रिती िै, अथवा समय का पवरोधी, जो अवधध में पाया जा सकता िै, एवं ंअनध्यवसाय अथवा अयथाथ शज्ञान, त्जसका कारण असावधानी एवं उदासीनता िो सकती िै। आि प्रकार के ज्ञान िैं, त्जनमें पांच सिी एवं ंतीन गलत िैं। एक समय में केवल एक िी ज्ञान सकक्रय रिता िै।'649

उस ज्ञान को प्रमयक्ष ज्ञान किते िैं जो साक्षात् ्रूप में िोता िै और यि ज्ञान परोक्ष ज्ञान किलाता िै जो प्रमयक्ष के अततररतत ककसी अन्य ज्ञान के माध्यम द्वारा प्राप्त िो । पाचाँ प्रकार के ज्ञानों में मतत और श्रुतत परोक्ष िैं और र्ेष प्रमयक्ष िैं।650 मतत अथवा साधारण ऐल्न्द्रय बोध जो िमें इल्न्द्रयों एवंमन के द्वारा प्राप्त िोता ि्ै, परीक्षा िै तयोंकक यि इल्न्द्रयों पर तनभरश करता िै।651 कुछ व्यत्तत ऐल्न्द्रय ज्ञान को प्रमयक्ष अथात् साक्षात् ्मानते िैं। दर्नश चार प्रकार का िै -र्दत्ष्टगत संवेदनाओं द्वारा िोने ेवाला, र्दत्ष्टमभन्न संवेदनाओं द्वारा िोने ेवाला, एवं ंवि जो अवधध की क्षमता के द्वारा अथवा असामान्य र्दत्ष्ट या अतील्न्द्रय पदार्थों के दर्नश की र्त्तत द्वारा िोता िै और अल्न्तम प्रकार का वि जो केवल अथवा अनन्तबोध िै, जो सीमाओंसे रहित िै और सम्पूण शयथाथसशत्ता को ग्रिण करता िै।'652

---

647 उमास्वातत के तत्त्वाथसूशत्र, 1/29 ।

648 विी, I: 31, पृष्ि 42।

649 उमास्वातत के तत्त्वाथसूशत्र, 1: 30।

650 विी, 1; 11 और 12।

651 विी, 1 14।

652 पंचात्स्तकायसमयसार, 48; मसद्धसेन हदवाकर एवं न्यायावतार, 4, को भी देणखए। किीं-किीं ंप्रमयक्ष ज्ञान दो प्रकार का किा िै-संव्याविाररक और परमाधथकश। परमाधथकश में अवधध, मनःप्रमयय और केवल, और संव्ंयाविाररक में दोनों, अथात्श ् वि जो इल्न्द्रयों के द्वारा (इल्न्द्रय-तनबन्धन) िोता िै, एवं वि जो इल्न्द्रयों द्वारा निीं िोता (अतनल्न्द्रय-तनबन्धन)। संव्याविाररक प्रमयक्ष वि िै जो िमें प्रततहदन के जीवन में िोता िै और इसीके ऊपर प्रमयक्षबोध और स्मृतत तनभरश करते िैं। 'प्रमाणमीमांसावृपृत्त' ने इसकी पररभाषा करते िुए इसे बोध की इच्छा की पूतत शकरने वाला कम शबताया िै। समीचीपः प्रवृपृत्त-

चैतन्य जीव का सारतत्त्व िै और चैतन्य की अमभव्यत्तत दो प्रकार की िै अथात्श ्दर्नश और ज्ञान।"[653] दर्नश में सूक्ष्म पववरण निीं ंरिता, ककन्तु ज्ञान में वि उपत्स्थत रिता िै। दर्नश एक साधारण बोध िै ककन्तु ज्ञान धारणाममक बोध िै। "वस्तुओंके सामान्य गुणों का वि बोध त्जसमें पवर्ेष गुणों का प्रभाव रिता िै और सूक्ष्म पववरण का ग्रिण निीं ंिोता, दर्नश किलाता िै।"[654] इसकी कई अवस्थाएं िैं, यथा (1) व्यञ्जनावग्रि, त्जसमें चेतनावधनश पदाथ शका प्रभाव इत्न्द्रयों के पररधधस्थ उपान्तों के ऊपर िोता िै और उसके द्वारा पवषयी पवषय के साथ पवर्ेष सम्पकश में आता िै; (2) अथावशग्रि, त्जसमें चेतना को उत्तेजना ममलती िै और एक संवेदना का अनुभव िोता िै और त्जसमें व्यत्तत को पवषय या प्रमेय पदाथ शका ज्ञानमात्र िोता िै; (3) ईिा, त्जसमें मन प्रमेय पवषय का पववरण जानने ेकी इच्छा करता िै एवं इसके अन्य वस्तुओं के साथ सार्दश्य और पवभेद को जानने ेकी अमभलाषा करता िै; (4) अवाय, त्जसमें वतमशान और भूतकाल की पुनः पुत्ष्ट िोती िै और प्रमेय पवषय की पिचान कक अमुक िै अमुक स्वरूप निींआिद और (5) धारणा, त्जसमें िमें यि प्रतीतत िोती िै कक संवेदनाएं िै अयों के गुणों का प्रकार् करती िैं। इसका पररणाम655' एक प्रकार का अनुभव िोता संवेदनाएं कारण िी िम आगे चलकर पदाथ शका स्मरण करने ेमें समथ शिोतीं। यि पवश्डलेषण प्रमयडक्ष ज्ञान के माध्यमजन्य स्वरूप को अमभव्यतत करता िै और िमें यि भी बतलाता िै कक पदाथ शमनोतीत यथाथतशा रखता िै। जैन योग बलपूवकश किते िैं कक चैतन्य से परे एवंउसके अततरररतत भी प्रमेय पदाथ शकी यथाथसशत्ता िै त्जसका िमें इत्न्द्रयों द्वारा बोध िोता िै एवं ंबुद्धध द्वारा ग्रिण िोता िै। पदाथों के गुण एवं सम्बन्ध अनुभव में प्रमयक्षरूप में प्राप्त िोते और केवल पवचार एवं ंकल्पना की िी उपज निीं ंिै। जाननेकी प्रकक्रया से प्रमेय पदाथ शम ेंकोई पररवतनश निीं ं िोता। ज्ञान और उसके पवषय में जो परस्पर सम्बन्ध िै वि भौततक मदराधों के सम्बन्ध में केवल बाह्य िै, यद्यपप आममचेतना के पवषय में यि सवथशा मभन्न प्रकार का िै। जीव की चेतना सदा सकक्रय रिती िै और यि कक्रयार्ीलता अपनेस्वरूप का एवं ंपदाथ शके स्वरूप का भी प्रकार् करती िै। ज्ञेय अथवा ज्ञान के योग्य पदाथों में आममा एवंअनामम अथात्श ्चेतन और ज़ दोनों िी सत्म्ममलत िैं। त्जस प्रकार प्रकार् अपनेको भी प्रकट करता िै और अन्यान्य पदाथों को भी प्रकट करता िै इसी प्रकार ज्ञान अपनी एवं अन्य सब पदाथों की अमभव्यत्तत करता िै। न्याय-वैर्ेपषक का मसद्धान्त कक ज्ञान केवल बाह्य सम्बन्धों का िी प्रकार् करता िै ककन्तु अपना

तनवृपुत्तरूषो व्यविारः संव्यविारः' केवमलन के ज्ञान में प्रमयक्ष सकल अथवा सम्पूण शिोता िै और अन्य अवस्थाओं ंमें पवकल

अथात् श ्त्रुहटयुतत िोता िै। परोक्ष भी पांचं प्रकारों में पवभतत ककया गया िै (1) स्मृत् अथवा स्मृततजन्य, अथवा उसकी स्मृतत त्जसे िमने पिले देखा व अनुभव ककया िै, जैसे ऐसे मनुष्य के पवषय में स्मरण करना त्जसे िमने पिले देखा था; (2) प्रमयमभज्ञान अथवा वस्तुओं से परस्पर सार्दश्य से उमपन्न िोता िैः जैसेिम एक नये पदाथ शको त्जसके पवषय में पिले पढ़ा था, पिचान लेतें; (3) तकश अथवा व्यत्ततयों के आधार पर दलील करना; (4) अनुमान अथात्श ्एक मध्यपद के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना और (5) आगम अथवा ककसी प्राचीन पुरुष के वचन का प्रमाण। 'प्रमाण-नयतत्त्वालंकार' में प्रमयक्ष एवं परोक्ष ज्ञान में परस्पर भेद केवल स्पष्टता के अंर् से िी िै। देणखए 2 और 3। इसका कारण यि िै कक जैतनयों के मत में बाह्य इत्न्द्रयों की चेष्टा केवल अप्रमयक्षरूप में िी प्रमयक्ष ज्ञान की उमपपत्त में सिायक िोती िै।

653 सवदशर्नशसंग्रि, 4।

654 विीं, 43

655 संस्कार ।

प्रकार् निींकरता, जैतनयों को अभीष्ट निीं ंिै। ककसी भी पदाथ शको जानने ेके साथ-साथ िी जीवाममा अपनेको भी तमकाल जानता िै। यहद यि अपनी सत्ता से अनमभज्ञ रिता तो अन्य कोई उसे यि ज्ञान न दे सकता। प्रमयेक इत्न्द्रयबोध एवं ज्ञान के काय शमें इस प्रकार का कथन उपलक्षक्षत रिता िै कक "म ैंइसे अमुक-अमुक प्रकार से जानता िंूं।" ज्ञान का उपयोग िमेर् जीवाममा द्वारा िोता िै। चेतना अचेतन या ज़-पदाथों का प्रकार् कैसे कर सकती िै, यि बबलकुल तनरथकश िै, तयोंकक ज्ञान का स्वभाव िी पदाथों को अमभव्यतत करने ेका िै।

आममचेतना के पवषय में ज्ञान या प्रमा और प्रमेय या ज्ञेय पदाथ शके मध्य में सम्बन्ध अमयन्त सत्न्नकृष्ट िै। ज्ञानी एवं ंज्ञान, अथशत्् ज्ञान के कत्ताश एवं ज्ञान, परस्पर अपवभाज्जय िैं यद्यपप उनमें भेद ककया जा सकता िै। आममचैतन्य के अन्दर ज्ञान का पवषयी या प्रमाता, ज्ञान का पवषय और स्वयंज्ञान एक िी िोस इकाई के मभन्न-मभन्न पिलू मात्र िैं। ज्ञान से पविीन कोई जीव निीं ंिै तयोंकक इसका तामपय शिोगा जीव के चैतन्य स्वरूप को िी छीन लेना और उन्िें अचेतन या ज़ द्रव्यों की कोहट में पिुंचा देना, और बबना जीवाममाओं के ज्ञान िी िो निींसकता तयोंकक इससे ज्ञान एकदम आधार-पविीन िो जाएगा।

अपनी पूण शअवस्था में जीवाममा पवर्ुद्ध ज्ञान एवं ंदर्नश या अन्तर्दत्ष्ट िै656, त्जनका एक िी समय में उदय िोता िै, अथवा ये दोनों साथ रिते िैं। एिलौककक जीवों में ज्ञान से पूव शदर्नश िोता िै।657 सम्पूण शज्ञान संर्य, पवमिो या पवपरीतता एवं ंपवधम शया अतनत्श्चतता से रहित िोता िै।658 ऐसे कम शजो दर्नश के पवपवधध प्रकारों को धुंधला बना देते िैं, दर्नशावरणीय कम शकिलाते िैं, और ऐसे कम शजो पवपवध प्रकार के ज्ञान को अस्पष्ट बना देते िैं, ज्ञानावरणीय कम शकिलाते िैं।'[659] जीवाममा में समस्त ज्ञान िै, यद्यपप उसका प्रकार् तभी िोता िै जबकक पवघ्नकारी माध्यम दूर िो जाता िै। लालसाएं एवं भावावेर् व अनुराग िी बाधक िैं त्जनके कारण जीवाममा में भौततक अंर् प्रपवष्ट िोता िै और ये जीवाममा को अपने स्वाभापवक कम शको पूण शर्त्तत के साथ सम्पन्न करने से रोकते िैं और िमारे ज्ञान को तामकामलक उपयोगी पदाथों तक िी सीममत रखते िैं, और इस प्रकार यथाथसशत्ता के वे ेपिलू त्जनमें िमारी रुधच निीं ंिोती. िमारे अपनिी वरणाममक ध्यान से तछपे रिते िैं। जब जीवाममडा ज्ञान को ढंकने वाले प्रकृतत के प्रभावों से तनमुतत िो जाती िै और स्वतन्त्रतापूवकश अपना काय श करने ेलगती िै तब यि सवज्ञशता का पात्र बनती िै और भूत, भपवष्यत एवं वतमशान के सब पदाथों का ज्ञान प्राप्त कर सकती िै। अपनेभौततक अनुभवमय जीवनों में जीवाममा की पवर्ुद्धता ज़ प्रकृतत के सम्पकश से ममलन िो जाती िै। इसे दूर करके और इसकी र्त्ततयों को नष्टड करके िम अपने ज्ञान की वृद्धध कर सकते िैं। जब पवरोधी र्त्ततयों को पूणतशया उखा़ फेंका जाता िै तब जीवाममा अपनी स्वाभापवक स्वरलिरी के अनुकूल स्पन्दन करती िै और अपनेअपररममत ज्ञान के कम शका सदुपुयोग करती िै। जीवाममा का पवमर्ष्ट गुण ज्ञान िै और उसमें जो भेद प्रदमर्तश िोते िैं वे प्रकृतत के साथ उसके सम्पकश के कारण िै।

---

656 सवदशर्नशसंग्रि,6

657 विी, 44।

658 विीं, 42।

659 इनके वगीकरण के मलए देणखए, जैनी 'आउटलाइस आफ जैतनज्जम', पृष्ि 30-31 ।

ज्ञान दो प्रकार का ि: **प्रमाण** अथात्श ् पदाथ शको उसी रूप में जानना त्जस रूप में वि ि, और नय अथाशत् ् पदाथ शका ककसी सम्बन्ध-पवर्ेष के साथ ज्ञान। नय का मसद्धान्त अथवा पृथक् पृथक् दंत्ष्टकोण युतत पदाथों का ज्ञान जैनदर्नश के तकशर्ास्त्र का एक अपना तनजी एवं पवमर्ष्ट लक्षण ि। नय एक दंत्ष्टकोण ि त्जसके आधार पर िम ककसी पदाथ शके पवषय में कोई कथन करते ि। िम अपनेदंत्ष्टकोणों की पररभाषा एवं भेद पृथृतकरण (अमूतीकरण) की प्रकक्रया द्वारा करते ि। उतत दंत्ष्टकोणों के साथ त्जन कल्पनाओं अथवा आमर्क सम्मततयों का सम्बन्ध ि वि उन अभीष्ट उद्देश्यों की उपज ि त्जन्िें लेकर िम चलते ि। इन पृथृतकरणों एवं ं लक्ष्य-पवर्ेषों पर ध्यान देनेके कारण िी ज्ञान में सापेक्षता आती ि। ककसी पवर्ेष दंत्ष्टकोण को अपनानेका तामपय शयि निीं कक िम अन्य दंत्ष्टकोणों का तनराकरण करते ि। ककसी पवर्ेष उद्देश्य को लेकर यि मत कक सूय शपृथ्वी की पररक्रमा करता ि, उतना िी अधधक कायसशाधक िो सकता ि त्जतना कक यि दूसरा मत कक पृथ्वी सूय शके चारों ओर घूमती ि। उपतनषदों में भी िमें इस पवषय की झांकी ममलती ि कक ककस प्रकार यथाथसशत्ता मिारे ज्ञान की मभन्न-मभन्न त्स्थतत में अपनेको पवपवध रूप में अमभव्यतत करती ि। बौद्धमत का बिुत-सा भ्रम उसके परम समय के अन्दर प्रवि। के सापेक्ष मसद्धान्त की अततश्योत्तत के कारण िुआ ि। जो एक पवर्ेष दंत्ष्टकोण से समय प्रतीत िोता ि वि एक अन्य दंत्ष्टकोण से समय निीं ंभी िो सकता। पवर्ेष-पवर्ेष पिलू सम्पूण शसत्ता के सवधशा अनुकूल कभी निीं ंिोते। सापेक्ष समाधान ऐसे अमूतीकरण ि त्जनके अन्तगतश यथाथसशत्ता का ध्यान िो सकता ि ककन्तु वे ंउसकी पूणरूशपेण व्याख्या निींकर सकते। जैनमत इसका आधारभूत एवं मौमलक मसद्धान्त के रूप में प्रततपादन करता ि कक समय िमारे दंत्ष्टकोणों के कारण सापेक्ष िोता ि। यथाथसशत्ता का सामान्य स्वरूप िमारे आगे नानापवध आंमर्क मतों के द्वारा आता ि।

नयों को कई प्रकार से पवभतत ककया गया ि और िम उनमें से मुख्य पवभागों को िी यिां ंलेंगे। एक योजना के अनुसार सात नय ि, त्जनमें से चार पदाथों अथवा उनके अथों के साथ सम्बद्ध ि और तीन र्ब्दों से सम्बन्ध रखते ि, और ये सभी यहद अपने-आपमें पृथक् एवं ंपूणरूशप में मलए जाएं तो िमें िमवाभास (ममथ्या आभास) िी प्रतीत िोंगे। अथ श(पवाथ शएवं ंअथ)श नयं तनम्नमलणखत ि :

(1) **नैगमनय :** इसकी व्याख्या दो प्रकार से िो सकती ि। यि किा जाता ि कक यि एक प्रयमन-पवर्ेष के प्रयोजन अथवा लक्ष्य से सम्बन्ध रखता ि जो कक बराबर और तनरंतर उसके अन्दर उपत्स्थत रिता ि। जब मि ऐसे व्यत्तत को देखतें जो अत्न, बरतन आहद ते ंजा रि ि, और िम उससे प्रश्न करते ि कक "तुम तया कर रि िो ?" तो वि किता ि- "म ैंभोजन पका रि िंूं"; तो यि नैगमनय का एक दंष्टान्त ि। यि िमें उस सामान्य प्रयोजन का बोध कराता ि जो इन सब कमों की श्रृंखला का तनयन्त्रण कर रि ि और जीवन के िेतु ु पवज्ञानपरक रूप पर बल देता ि।'[660] इसी मत को पूज्जयपाद ने अंगीकार ककया ि। मसद्धसेन इससे मभन्न मत को

स्वीकार करते ि...तािे ...ष्टकोण से ...साधारण एवं सुपवर्ेष दोनों प्रकार ि अथात्
के गुणों को जानते ि और उनके अन्दर पृथक् पृथक् भेद निीं ंकरते तो वि नैगमनय की अवस्था ि। (2) संग्रिनय सामान्य पवमर्ष्टताओं पर बल देता ि। यि वगगशत दंत्ष्टकोण ि। यद्यपप यि समय ि कक वग श

[660] देणखए, तत्त्वाथसूश त्र परटीका,1 / 33 ।

व्यत्ततयों से अततररतत कोई वास्तपवक पदाथ शर्नीं िै, ककन्तुसामान्य पवर्ेषेताओं की जांच कभी-कभी बिुत उपयोगी िोती िै। संग्रिनय दो प्रकार का िै-परसंग्रि, अथात्श ्अन्त्तम वग शपवचार जो इस लक्ष्य का ध्यान रखता िैकिक सब पदाथ शयथाथसशत्ता के अवयव िैं। अपरसंग्रि िीनतर वग शपवचार िै। अमूत शपरम त्स्थतत संग्रिनय का आभास िै। जैनमत सामान्य अथवा व्यापक एवं ंपवर्ेषे गुणों को मानता िै यद्यपप वि इन्िें सापेक्ष मानता िै। सांख्य एवं अद्वैतवेदान्त पवर्ेषों को निीं मानते, जबकक बौद्धमत सामान्य को निीं ंमानता। न्यायवैर्ेपेषक दोनों को स्वीकार करते िैं और िोस पदाथ शको सामान्य एवं पवर्ेषे दोनों के ममश्रण से तनममतश मानतेिैं। ककन्तु ु जैनमत इस भेद को सापेक्ष मानता िै जबकक न्यायवैर्ेपेषक इसे तनरपेक्ष मानतेिैं। (3) व्यविारनय प्रचमलत एवं परम्परागत र्दत्ष्टकोण िै त्जसका आधार इत्न्द्रयगम्य ज्ञान िै। िमें वस्तुओंका ज्ञान उनके समस्त रूप में िोता िैऔर िम उनकी तनजी पवर्ेषेताओं पर बल देते िैं। वस्तुओंको पवमर्ष्ट आकार-प्रकार ध्यान आकृष्ट करता िै। भौततकवाद की कल्पना, और इसके साथ िम बुिमववाद को भी जो़ सकतेिैं, इस नय के आभास िैं। (4) ऋजु-सूत्रनय व्यविारनय की अपेक्षा अधधक संकुधचत िै। यि पदाथ शकी एक समय-पवर्ेषे की अवस्था का पवचार करता िै। यि सब प्रकार के नैरन्तय शऔर साम्य को भूला देता िै। इसकी र्दत्ष्ट में यथाथ शक्षणणक िै। वस्तु वैसी िै जैसीकक वि वतमशान क्षण में िै। जैनमतावलम्बी इसे बौद्धदर्नश का पूवरूशप समझतेिैं। यि नय जिां एक ओर सत्ता के भावप्रधान और अमूत शदार्तशनक मसद्धान्त की तन:सारता की पोल खोलने में उपयोगी मसद्ध िो सकता िैविांदूसूरी ओर यि समय के तनरपेक्ष रूप के वणनश के मलए सवथशा अनुपयोगी िै। र्ेषे तीन र्ब्दनय िैं। (5) र्ब्दनय का आधार यि तथ्य कक नाम का उपयोग िमारे मन में त्जस पदाथ शका वि द्योतक िै या उससे त्जस पदाथ शका संकेत िोता िै उसे और उसके गुण, सम्बन्ध अथवा कक्रया को उपत्स्थत करनेके मलए िोता िै। प्रमयेक नाम अपना अथ शरखता िै और मभन्न-मभन्न र्ब्द भी उसी एक पदाथ शका द्योतन कर सकतेिैं। पदों और उनके अथों के बीच जो सम्बन्ध िै वि सापेक्ष िै और िम यहद इस बात को भुला दें तो िमवाभास या भ्रात्न्तयां उमपन्न िोती िैं। (6) समामभरूढ़नय पदों में उनके धामवथ शके आधार पर भेद करता िै। यि र्ब्दनय का पवतनयोग या प्रयोग िै। (7) एवंभूतनय छिे प्रकार का पवमर्ष्ट रूप िै। ककसी पदाथ शकी अमभव्यत्तत में नानापवध पिलुओंऔर श्रेणी-पवभाजन में सेकेवल एक िी पद के धामवथ शसे सूधचत िोता िै और यिी पिलू िै जो ककसी पद का वतमशान में व्यवित िोनेवाला उधचत अथ शिै। उसी पदाथ शको एक मभन्न पररत्स्थतत में मभन्न संज्ञा से युतत करना चाहिए। इन सातों नयों में प्रमयेक की सीमा उससे अधधक पवस्तृत िै त्जसमें इनका प्रयोग िोता िै। नैगम की सीमा सबसे अधधक पवस्तृत िै और एवंभूत सबसे न्यून िै। प्रमयेक नय अथवा र्दत्ष्टकोण नाना प्रकारों में से. त्जनसे पदाथ शका ज्ञान ककया जा सकता िै, केवल एक िी प्रकार को प्रस्तुत करता िै। यहद ककसी एक र्दत्ष्टकोण को िम भ्रम के कारण सम्पूण शसमय लें तो यि नयामास करता िोतनयों की सम्मतत में न्यायवैर्ेपेषक, सांख्य, अद्वैतवेदान्त एवं ंबौद्धदर्नश पद्धततया िोगा। प्रथम चार नयों को स्वीकार करते िैं और भ्रग से उन्िें सम्पूण श समय समझते िैं।यो पों के और भी भेद ककए गए िैं (1) द्रव्याधथकश पदाथ शके र्दत्ष्टकोण से, और (२) पायाधथकश पररवतनश अथवा अवस्था के र्दत्ष्टकोण मेरे कररकर इनमें से प्रमयेक (र्वभाग िैं। द्रव्याधथकशनय वस्तुओंके त्स्थर स्वरूप का पवचार करता िै जबकक पयायशाधथकश उनके पवनश्वर पिलुओंसे सम्बन्ध रखता िै।

चूंकक ये सब र्दत्ष्टकोण सापेक्ष िै, िमारे पास नयतनश्चय भी िै, अथात् श ्समय एवं ंपूण शर्दत्ष्टकोण। तनश्चयनय दो प्रकार का ि रुदु्धतनश्चय और अरुदु्धतनश्चय। रुदु्धतनश्चय प्रततबन्धरहित यथाथसशत्ता का प्रततप्रदान करता ि जबकक अरुदु्धतनश्चय प्रततबन्धयुतत सत्ता के पवषय पर पवचार करता िै।

उन व्यत्ततयों को जो दातर्शनक पवचार की श्रेणणयो की समीक्षा के रूप में पररधचत िैं, यि बतलाने की आवश्यकता निीं ंिै कक वि नय अथवा र्दत्ष्टकोण का मसद्धान्त एक तकशसम्मत मसद्धान्त िै। जैनी लोगों को छः अन्धों की पुरानी किानी को उद्धृत करनेका रौक ि त्जनमें से प्रमयेक ने एक िाथी के रीर के मभन्न-मभन्न भाग पर िाथ रखा और उसी आंमर्क अनुभव के आधार पर सम्पूण शिाथी का पववरण देनेका प्रयमन ककया। त्जस व्यत्तत नेिाथी के कान को पका उसनेयिी पवचार ककया कक वि एक पंखे के समान िै। इसी प्रकार त्जसने टांग पकी उसने कल्पना की कक वि एक बा गोलाकार खम्भा िै, आहद- आहद। केवल उसी व्यत्तत ने त्जसने समूचे े िाथी को देखा था, प्रमयक्ष अनुभव ककया कक उनमें से प्रमयेक ने समय के केवल एक िी अंर् को जाना था। प्रायः समस्त दातर्शनक पववाद र्दत्ष्टकोण के भ्रम से िी उिते िैं। प्रायः प्रश्न ककया जाता ि कक काय शअपनेउपादान कारण के समान अथवा उससे मभन्न िोता िै। समकायगशद का मत िै, त्जसे वेदान्त एवं सांख्यदर्नशों ने भी स्वीकार ककया िै, कक काय शकारण के अन्दर पूव शसे िी पवद्यमान रिता ि और कारण की उस पवर्ेष प्रकक्रया के द्वारा त्जसमें से उसे गुरना पता िै, वि केवलमात्र अमभव्यतत िो जाता िै। वैर्ेपषकों के असमकायवशाद का मत ि कक काय शएक नई वस्तु ि और पिले से पवद्यमान निीं ंथा। जैनमत इन दोनों पववादों का अन्त यि किकर करता ि कक दोनों के पवमभन्न र्दत्ष्टकोण िैं। यहद िम सोने के िार रूपी काय शको केवल पदाथ शसमझ लें तो यि विी सोना ि त्जसमें से इसका तनमाणश िुआ िै, ककन्तु यहद िम उसे िार समझें तो यि एक नया पदाथ शि और वि पदाथरूशपी सोनेमें अवश्य िी पिले से पवद्यमान निीं ंथा। प्रमयेक र्दत्ष्टकोण जो िमें ज्ञान प्राप्त कराता ै, सदा िी आंमर्क िोता ि और उस तक िम पृथृतकरण की प्रकक्रयाओं द्वारा पिुंचते िैं।

इन र्दत्ष्टकोणों का सबसे मित्त्वपूण शउपयोग तनश्चय िी स्याद्वाद एवं सप्तभङ्गी में िोता िै। यि उपयोग तनणयश करने ेके सात मभन्न-मभन्न प्रकारों में िोता िै, जो अलग-अलग और एकसाथ संयुतत िोकर स्वीकार करते िैं या तनषेध करते िैं, बबना ककसी स्वतः पवरोध के और इस प्रकार एक वस्तुपवर्ेष के नाना गणों में भेद करते िैं। जैन-कल्पना के आधार पर पण की कहिनाई दूरू िो जाती ि तयोंकक इस मत के अनुसार पदाथ श के रूप में उद्देश्य ममर पवधेच समान िैं और रूपभेद के र्दत्ष्टकोण से मभन्न भी ि ।

यि पवचार स्याद्वाद किलाता ि तयोंकक यि समस्त ज्ञान को केवल सम्भापवत रूप में िी मानता िै। प्रमयेक स्थापना सम्भव िै, 'िो सकता ि' अथवा 'स्याद' या 'र्ायद' इमयाहद रूपों में िी िमारे सामने आती िै। िम ककसी भी पदाथ शके पवषय में तनरुपाधधकया इमयाहद रूप से स्वीकृततपरक अथवा तनषेधाममक कथन निीं ंकर सकते। वस्तुओं के अन्दर जनन्त जहटलता िोने ेके कारण तनत्श्चत कुछ निीं ंिै। यथाथसशत्ता के अमयधधक जहटल स्वरूप एवं ंअतनत्श्चतता के ऊपर यि बल देता िै। यि तनरूपण की सम्भावना का तनषेध निीं ंकरता, यद्यपप यि तनरपेक्ष अथवा पवमर्ष्ट तनरूपण को स्वीकार निीं ंकरता। यथाथसशत्ता का माततर्ील स्वरूप केवल

सापेक्ष और सोपाधधक तनरूपण के साथ ि◌ी मेल खा सकता ि◌ै। प्रमयेक स्थापना केवल कुछ पवर्ेषे अवस्थाओं में अथाश्त ◌्पररकल्पत रूप में ि◌ी समय ि◌ै।

इसका मत ि◌ै कक ककसी वस्तु अथवा उसके गुणों के पवषय में कथन करने के, र्दत्ष्टकोण के रूप से, सात मभन्न-मभन्न प्रकार ि◌ैं। एक र्दत्ष्टकोण ि◌ै त्जसके अनुसार, पदाथ शअथवा उसका गुण ि◌ै (1) ि◌ै, (2) निीं ◌ंि◌ै, (3) ि◌ै और निींभी ि◌ै, (4) अतनवचशनीय ि◌ै, (5) ि◌ै और अतनवचशनीय भी निीिं, (6) निीं ◌ंि◌ै और अतनवचशनीय ि◌ै, (7) ि◌ै, निीं ◌ंभी ि◌ै और अतनवचशनीय ि◌ै।

1. स्याद् अस्स्त- अपनेउपादान, स्थान, समय और स्वरूप के र्दत्ष्टकोण से वस्तु पवद्यमान ि◌ै अथात्श ◌्अपना अत्स्तमव रखती ि◌ै। ममट्टी से बना ि◌ुआ घड़ा, मेरे कमरे में इस वतमशान क्षण में और अमुक अमुक आकार व माप का पवद्यमान ि◌ै।

2. स्याद् नास्स्त- उपादान, स्थान, समय और अन्य पदाथ शके स्वरूप के र्दत्ष्टकोण से वस्तु पवद्यमान निीं ◌ंि◌ै, अथात्श ◌्यि कुछ निीं ◌ंि◌ै। धातु से बना ि◌ुआ घड़ा, एक मभन्न स्थान में, अथवा समय में, अथवा मभन्न आकार व माप का पवद्यमान निीं ◌ंि◌ै।

3. स्याद् अस्स्त नास्स्त- उसी र्दत्ष्टकोण-चतुष्टय से अपनेव अन्य पदाथ शसे संबद्ध यि किा जा सकता ि◌ै कक वस्तुपवर्ेषे ि◌ै और निीं ◌ंि◌ै। एक पवर्ेषे अथ शमें घड़ा ि◌ै और एक दूसूरे पवर्ेषे अथ शमें घड़ा निीं ◌ंि◌ै। ि◌म यिां ◌ंकिते ि◌ैं कक वस्तुपवर्ेषे तया ि◌ै और तया निीं ◌ंि◌ै।

4. स्याद् अवक्तव्यम्– जबकक ऊपर के तीनों में ि◌म कथन करते ि◌ैं कक एक वस्तु अपने-आपमें ि◌ै और अन्य क्रम में निीं ◌ंि◌ै, यि सब कथन एकसाथ करना सम्भव निीं ◌ंि◌ै। इस अथ शमें एक वस्तु पववरण के योग्य निीिं। यद्यपप घड़ े◌में इसके अपनेरूप की उपत्स्थतत एवं ◌ंदूसूरे स्वरूप की अनुपत्स्थतत दोनों एक साथ ि◌ैं तो ि◌म उसे े◌व्यतत निीं ◌ं कर सकते।

5. स्याद् अस्स्त च अवक्तव्यम्– अपनेतनजी चतुष्टय के र्दत्ष्टकोण से और साथ ि◌ी साथ अपनेएवं अभावाममक चतुष्टय के संयोग से एक वस्तु ि◌ै और पववरण योग्य निीं ◌ंि◌ै। ि◌म यिां ◌ंएक वस्तुकी सत्ता और इसकी अतनवचशनीयता दोनों को लक्षक्षत करते ि◌ैं।

6. स्याद नास्स्त अवक्तव्यम्– अभावाममक वस्तु के चतुष्टय के र्दत्ष्टकोण से और साथ-साथ अपनेतनजी एवं ◌ं अभावाममक वस्तु के चतुष्टय के र्दत्ष्टकोण से एक वस्तु ◌ुनिीं ◌ंि◌ै और अतनवचशनीय भी ि◌ै। ि◌म यिां ◌ंपर एक वस्तु तया निीिं इसे और इसकी अतनवचशनीयता को लक्षक्षत करते ि◌ैं।

7. स्याद अस्स्त च नास्स्त च अवक्तव्यम्– अपनेतनजी चतुष्टय के एवं ◌ंअभावाममक वस्तु के र्दत्ष्टकोण से और साथ-साथ अपने े◌तनजी एवं ◌ंअभावाममक वस्तु के संयुतत चतुष्टय कुन्र्दत्ष्टकोण से भी एक वस्तु ि◌ै, निीं ◌ंभी ि◌ै

 और अतनवचशनीय भी ि◌ै। ि◌म । अतनवचशनीयता का प्रततपादन करते ि◌ैं और उसके साथ में यि तया ि◌ै और तया
एक वस्तुकी निीं ◌ंि◌ै उसका भी प्रततपादन करते ि◌ैं।'[661]

ककसी वस्तु अथवा उसके गुणुों के पवषय में कथन करनेके जो सात सम्भापवत प्रकार स्वरूप में ि◌ै.
स्वद्रव्य (अपने भौततक उपादान) में स्वक्षेत्र (अपनेस्थान) में, और स्वकाल स्वरूप समय) में वतमशान ि◌ै। और दूसूरा साध्या मामसकायाका यि कक अमुक वस्तु जयन (अपने(अथात्श ◌्अन्य आकार) में, परद्रव्य (अन्य भौततक उपादान) में, परक्षेत्र (अन्य स्थान) परस्य परकाल (अन्य समय) में वतमशान निीं ◌ंि◌ै। दूसूरा तनषेधाममक तथ्य ि◌ै। इस मसद्धान में, एवं ग्रि ि◌ै कक स्वीकृतत एवं ◌ंतनषेध दोनों परस्पर सम्बद्ध और सिचारी ि◌ै। समस्त तनगा के दो रूप ि◌ोतेिैं। सब पदाथ शिैं भी और निीं ◌ंभी ि◌ैं, अथात्श ◌्सद्असदाममक ि◌ैं।662 एक वस्तु की ि◌ै विी ि◌ै और जैसी निीं ◌ंिै वैसी निीिंि◌ै। इस मत के अनुसार प्रमयेक तनषेध का एल जो गराममक आधार ि◌ोता ि◌ै। आकार्-कुसुम के समान कल्पनाममक पवचार भी एक सकाराममक आधार रखते ि◌ैं अथात्श ◌्जैसे-आकार् और कुसुम तो दोनों पृथृक् पृथृक् वास्तपवक सत्ताएं ि◌ैं आपण उनका परस्पर-सम्बन्ध अवास्तपवक ि◌ै। यि मौमलक समय पर बल देता ि◌ै, अथात्श ◌्पवचार के मलए परस्पर भेद करना आवश्यक ि◌ै। ऐसा पदाथ शत्जसे अन्य पदाथों से मभन्न करके समझा जा सके, पवचार में निीं ◌ंआ सकता। ऐसा तनरपेक्ष पदाथ शजो अन्दर और बिार सब प्रकार के पवभेदों से रूनूय ि◌ै, यथाथ शमें पवचार का पवषय निीं ◌ंि◌ो सकता, तयोंकक सब पदाथ शजो पवचार के पवषय ि◌ैं एक अथ शमें ि◌ैं और दूसूरे अथों में निींभी ि◌ैं।

र्ंकर और रामानुज[663] दोनों ि◌ी 'सप्तभङ्गी न्याय' की इस आधार पर आलोचना करते ि◌ैं कक एक ि◌ी पदाथ शमें दो प्रकार के परस्पर पवरोधी गुण एक ि◌ी समय में उपत्स्थत निींरि सकते। रामानुज मलखता ि◌ै "भाव एवं अभाव ये दोनों परस्पर-पवरोधी गुण ककसी एक पदाथ शमें निीं ◌ंरि सकतेजैसेकक प्रकार् और अन्धकार एक जगि निीं रि सकते।" जैनी लोग यि भी स्वीकार करते ि◌ैं कक एक ि◌ी समय में और एक ि◌ी अथों में ककसी पदाथ श में परस्पर-पवरोधी गुण निीं ◌ंरि सकते। जो कुछ वे किते ि◌ैं वि यि ि◌ै कक प्रमयेक पदाथ शजहटल स्वरूप का ि◌ै अथात्श ◌्भेदों के रितेभी एकामम्यरूप में पवद्यमान ि◌ै। वास्तपवक सत्ता अपनेअन्दर भेदों को समापवष्ट रखती िै। ऐसे गुण जो भावाममक या अमूत शरूप में परस्पर पवरोधी ि◌ैं, जीवन में और अनुभव के साथ-साथ रितेिैं। वृकूष हिलता ि◌ै अथात्श ◌्उसकी र्ाखाएं हिलती ि◌ैं ककन्तुस्वयंवृकूष निीं ◌ंहिलता तयोंकक यि अपनेस्थान पर त्स्थर ि◌ै और मजबूती से भूमम में गा़ ि◌ुआ ि◌ै। ि◌मारे मलए यि आवश्यक ि◌ै कक ि◌म एक पदाथ शको स्पष्टरूप में और अन्य पदाथों से मभन्नरूप में जानें, उसकी अपनी तनजी सत्ता के रूप में एवंअन्य पदाथों के सम्बन्ध में भी उसकी सत्ता को पिचानकर रखें। दूसूरे पक्ष के पवषय में, जैसाकक वेदोन्ती किते ि◌ैं, सप्तभङ्गी न्याय की कक्रयाममक उपयोधगता कुछ निीं ◌ंि◌ै, यि उनकी एक तनजी सम्मतत ि◌ै इसमलए इस पवषय पर कुछ किने ◌ेमें समय नष्ट करना व्यथ शिै। और यि भी निीं ◌ंकिा जा सकता कक सप्तभावी न्याय जैनदर्नश के अन्य मसद्धान्तों के प्रततकूल ि◌ै।

---

661 तत्त्वाथसूशत्रूर पृषिु 14;पंचांस्तकायसमयसार, 16।

662 "स्वरूपेण सत्त्वात्,◌् पररूपेण च असत्त्वात् ◌्।"

663 वेदान्तसूत्रों पर र्ांकरभाष्य, 2/2.33 , वेदान्तसूतूरों पर रामानुज भाष्य 2 : 2, 31।

यि अनेकान्तवाद का स्वाभापवक सररणाम ि ै त्जसका तामपय शिै कक यथाथसशत्ता के अनेक रूप िैं। चूंकक यथाथसशत्ता की अनेक पररकृततयां ंिैं और वि सदा पररवतनशरी्ल ि ै इसमलए ककसी भी पदाथ शको सवदशा सब जगेक सब काल में और िर प्रकार से वतमशान रिने ेवाला निीं ंमाना जा सकता, और िमारे मलए यि असम्भव ि ै कक िम एक ऐसे किोर और अपवचमलत मत को स्वीकार िी करें।

6. जैनै तकशर्ास्त्र का मित्त्व

इससे पूव शकक िम अगले पवभाग पर आगे बढ़े, इस स्थल पर जैन तकशर्ास्त्र द्वारा प्रस्तुत कततपय आलोचनाममक पवचारों को भी उपत्स्थत कर देना अधधक उपयोगी िोगा। प्रमसंगवर् िमने जैतनयों के ज्ञानपवषयक मसद्धान्त के प्रबल पक्ष का पववरण हदया ि ै और उस पर बेदात्न्तयों द्वारा ककए गए आक्षेपों के पवरुद्ध उसका पक्षपोषण भी ककया ि।ै तो भी िमारी सम्मतत में जैन तकशर्ास्त्र िमें अद्वैतपरक आदर्वशाद की ओर ले जाता ि ै और त्जस िद तक जैनी इससे बचनेका प्रयास करते िैं उस िद तक वे ेअपनेतनजी तकश के सच्चे अनुयायी निींि। इस पवषय-सम्बन्धी अपनी आलोचना पर िम आध्यात्ममक दृत्ष्ट से अपनेसंवाद में आगे चलकर बल देंगे। आइए, यिां िम जैन तकशर्ास्त्र के गूढ़ाथ शको भली प्रकार से समझ लें।

सापेक्षता का मसद्धान्त ताककशक दृत्ष्टकोण से, बबना एक तनरपेक्ष की कल्पना के, निीं ंिि्र सकता। यि समय ि ै कक परस्पर-भेद का तनयम, त्जस पर जैन तकशर्ास्त्र अवलत्म्बत ि,ै यि भी स्वीकार करता ि ै कक पवचार के मलए भेद करना आवश्यक ि,ै ककन्तु एक ऐसा पदाथ शजो अन्यों से सवथशा मभन्न ि,ै पवचार के मलए ऐसा िी अवास्तपवक ि।ै जैसाकक वि पदाथ शजो अन्य पदाथों के साथ एकरूप ि।ै पवचार केवल भेदमात्र िी निींि किन्तु यि सम्बन्धरूप भी ि।ै प्रमयेक पदाथ शकी सत्ता अन्य पदाथों के साथ सम्बन्धरूप में और उनसे मभन्न रूप में िी सम्भव ि।ै परस्पर-भेद का तनयम परस्पर-साम्यभाव के तनयम का तनषेधाममक पक्ष ि।ै सब प्रकार के भेद में एकमव की भी पूवकशल्पना रिती ि।ै चूंकक जैतनयों के अनुसार, तकश िी यथाथसशत्ता को जानने ेकी कुंजी ि,ै यथाथसशत्ता की अत्न्तम अमभव्यत्तत एक िोस अद्वैतवाद में िी िोनी चाहिए, उसी के द्वारा सत्तामात्र की व्याख्या सम्भव ि।ै यि एक सत्ता ऐसी निीं ंिै जो अनेक का बहिष्कार करती िो अथवा अनेकमव को स्वीकार करके पवद्यमान व्यवस्था अथवा एकमव का तनषेध करती िो। जैन तकशर्ास्त्र सब प्रकार के पृथृतकरण के प्रतत पवद्रोि करता ि ै और ककसी भी यि अथवा वि, एक या अनेक आहद के ममथ्या पवभेद को स्वीकार करने ेके मलए उद्यत निीं िोता। जैनी लोग स्वीकार करते िैं कक सब पदाथ शअपने व्यापक पक्ष (जातत अथवा कारण) में एक िैं और पवमर्ष्ट (व्यत्तत अथवा काय)श पक्ष में अनेक िैं। उनके अनुसार, ये दोनों िी आंमर्क दृत्ष्टकोण िैं। सत्ताओं की अनेकता मानिुए अथों में एक सापेक्ष समय ि।ै िमें पूण शदृत्ष्टकोण तक ऊपर उिना चाहिए और उस सम्पूण श की ओर दृत्ष्ट रखनी चाहिए जो सब प्रकार के गुणों से वैभवसम्पन्न ि।ै यहद जैनदर्नश अनेकमववाद तक िी रिे जो अधधकतर केवल सापेक्ष एवं ंआंमर्क समय ि,ै और यि त्जज्ञासा न करे कक उच्चतर समय भी कोई ि-ैजो एक ऐसी एकमात्र सत्ता की ओर तनदेर् करता ि ै त्जसने ेइस पवश्व के पदाथों में व्यत्ततगत रूप धारण कर रखा ि ै जो

 एक-दूसूरे से मुख्यतः अतनवाय शरूप में ि ै और अन्तयामशी रूप में सम्बद्ध ि ैं-तो वि अपने तकश को स्वयंदूरू करके

एक सापेक्ष समय को तनरपेक्ष समय की उन्नत कोहट में पिुंचा देता ि ै।

केवल इसी प्रकार का अद्वैतपरक मसद्धान्त जैनदर्नश के सापेक्षतावाद के साथ मेल खा सकता ि ै तयोंकक सम्बन्ध त्जतने ◌भी ि ैं वे उन बाह्य पदाथों से, त्जनसे वे सम्बन्ध रखते ि ैं, सकता निीं ◌ंि ै। अथ शका प्रवेर् सत्ता के अन्दर िोता ि ै और उद्देश्य और पवधेय अथवा स्वतता और प्रमेय में एक तनकट सम्बन्ध रिता ि ै। मन और बाह्य जगत् ◌्के अन्दर का दैतभाव, मनोवैज्ञातनक स्तर पर जो कुछ भी समय इसमें िो, दूरू िो जाता ि ै जबकक िम ज्ञान के मसद्धान्त के सम्बन्ध में तकश का जो र्दत्ष्टकोण ि ै उस तक पिुंचातेि ैं। यहद दो अथातश ज्ञाता और ज्ञेय जीवाममा एवं स्वतन्त्र यथाथसशत्ता पृथक् पृथक् ि ैं तब ज्ञान सवथशा सम्भव िी निीं ◌ंिो सकता। या तो ज्ञान स्वच्छन्द एवं ◌ंतनराधार ि ै अथवा द्वैतभाव ममथ्या ि ै। ज्ञाता और ज्ञेये पृथक् सत्ताएं निीं ◌ंि ैं जो ककसी बाह्य बन्धन से बंधी िुई िों। ये द्वैत में एक और एक में दो ि ैं। यहद िम ककसी एक पद को दबा दें तो सम्पूण शएक में पवलीन िो जाता ि ै। ज्ञाता एवं ◌ंज्ञेय का भेद तो स्वतन्त्र सत्ताओं के बीच का भेद निीं ◌ंि ै ककन्तु इस प्रकार का एक

[illegible]

आवश्यकता को स्वीकार निीं ◌ंकरता त्जसमें ज्ञाता और ज्ञेय का भेद अन्ततनहशित ि ै तो इसका कारण यि ि ै कक यि सम्पूण शसमय के केवल आमर्क रूप को िी ग्रिण करता ि ै।

यहद िमें इसके सापेक्षता के मसद्धान्त की उपयुतशत व्याख्या को स्वीकार करना ि ै तो जीवाममा, जो पवमभन्न र्दत्ष्टकोणों को अंगीकार करती ि ै, केवल इत्न्द्रयगम्य आनुभपवक आममा निीं ◌ंिो सकती वरन् ◌्उससे गम्भीर कोई सत्ता िोनी चाहिए। ज्ञान केवल वैयत्ततक िी निीं िोता। यहद सत्ता-पवषयक पवश्लेषण केवल आममतनष्ि िी निीं ◌ंि ै तो िमें स्वीकार करना िोगा कक अनेक व्यत्ततयों के अन्दर एक िी आममा की कक्रयार्ीलता काम करती ि ै त्जसे िम ज्ञान के पवषय के रूप में जानते ि ैं। इसके पूव शकक ज्ञान के सम्बन्ध में कोई प्रश्न उि, इस एक आममा को पूवरूशप में तनरपेक्ष और अत्न्तम समय के रूप में मानना चाहिए त्जसके िी अन्दर ज्ञाता एवंज्ञेय के सब भेद आ जाते ि ैं। और यि आममा क्षणणक अनुभव अथवा चेतना, का अस्थायी रूप निीं ◌ंि ै।

इस तथ्य का कक िम अपनी सापेक्षता से अमभज्ञ ि ैं, अथ शिी ि ै कक िमें पूणूतशम पवचार तक पिुंचना ि ै। उस उच्चतम तनरपेक्ष र्दत्ष्टकोण से िी तनम्न कोहट की सापेक्षताओं की व्याख्या िो सकती ि ै। समस्त यथाथ श व्याख्या ऊपर से नीचेकी ओर िोती ि ै।

इसी तनरपेक्ष तत्त्व की र्दत्ष्ट से िम सापेक्ष पवचारों के मित्त्व को जाननेके मलए ककसी मानदण्ड का उपयोग कर सकेंगे और उनका मूल्यांकन कर सकेंगे। परम समय के साथ तुलना करनेपर अन्य समस्त समय सापेक्ष ििरता ि ै। समस्त ज्ञान उपलब्ध सामग्री के ऊपर उिता ि ै और अपनेसे परे का तनदेर् करता ि ै। पूणतशर और उससे भी अधधक पूण शसमय की ओर बढ़नेसे प्रमेय पदाथ शअपने प्रमयक्ष में प्रतीयमान उपत्स्थत स्वरूप को खो बैिता ि ै। जब िम तनरपेक्ष ज्ञान तक पिुंच जाते ि ैं तो ज्ञाता और ज्ञेय के मध्य का भेद स्वतः दूरू िो जाता ि ै। केवल ऐसी परम कोहट की आदर् शत्स्थतत में िी िम नीचेके पृथृतकरण की भ्रांतत को दूरू कर सकतेि ैं। तब िम

देखेंगे कक नानापवध सापेक्ष पदाथ शएक सतत प्रकक्रया में आममा के मोक्ष के मलए अपनेअन्ततम लक्ष्य की प्राप्प्त के माग शमें एक प्रकार के पाव मात्र ि ैं। ज्ञान के िरएक प्रकार को सापेक्ष के रूप में पिचानना, त्जसमें एक पदाथ शसे अन्य पदाथ शमें पिुंचना आवश्यक ि ै, िमें पववर् करता ि ै कक िम एक ऐसी पवस्तृततम यथाथसशत्ता को अंगीकार करें जो परम एवं ंस्वयं में तघरनरपेक्ष और त्जसके अन्तगतश सव सापेक्ष पदाथ शआ जाते ि ैं। ककन्तु इस परम एवं ंतनरपेक्ष सत्ता को भली प्रकार समझ लेनेका भी कोई उपाय ि ै। तनश्चय िी अपनेआमर्क मतों को एकत्र करके रख देनेमात्र से िमारे सम्मुख पाता पवजयसत्ता का भाव निींआ सकता। पवमभन्न दृत्ष्टकोणों को केवल एकत्र कर देनेसे िी िम समय के तनजी स्वरूप को चरी पा सकते। यहद िम जैन तकशर्ास्त्र के भाव का जनसे िी कम तो किना पग़ो कक पवचार के सापेक्ष पदाथों में जक़ ेररने ेके कारण िमें तनयन कमाथसशत्ता का ज्ञान निीं िी सिकता। यहद पवचार यथाथसशत्ता को ग्रिण निीं ंकर सकता तो तया और ऐसी कोई र्त्तत िो सकती ि ै जो उसको ग्रिण कर सकती ि ै ? यि प्रश्न स्पष्टरूप म ैंनिीं ंउिाया गया ि ै ककन्तु उसका उत्तर तनत्श्चतरूप से 'िां' में हदया गया ि ै। केवल ज्ञान अथवा मुततामममाओंके ज्ञान के ऊपर ध्यान देकर पवचार करने ेसे िमें प्रतीत िोगा कक जैन मसद्धान्त उपलक्षण या संकेत द्वारा अन्तदृत्शष्ट की पवधध एवंतनरपेक्ष परमसत्ता के मसद्धान्त को स्वीकार कर लेता ि ै।

जैनमत के अनुसार, ऊंचेदजे का ज्ञान, त्जसमें अनुभव में अमभव्यतत िुए सब प्रकार के रूप समत्न्वत िैं, वि ि ै जो केवमलन् ्अथवा मुतत आममाओं को िोता ि ै। यि सम्पूण शऔर तनददोष ज्ञान ि ै जो पवर्ुद्ध एवं तनदोष अवस्था में जीवाममा का पवमर्ष्ट रूप ि ै। यि तनदोष ज्ञान जो आममा का सारतत्त्व ि ै, अपने-आपको मभन्न-मभन्न प्राणणयों की पवमभन्न श्ेरेणणयों में अमभव्यतत करता ि ै त्जसका कारण प्रकृतत का बाह्य बल ि ै और त्जसके सम्पकश अथवा सिचय शसे िी कायरूशप में आममा का तनमलश ज्ञान दबा रिता ि ै। यि ज़ या चेतनार्ून्य प्रकृतत जब आममत्तत्त्व के साथ संयोग में आती ि ै, इसकी र्त्तत को प्रभाविीन कर देती ि ै- आममा एवं ंप्रकृतत के साथ बन्धन के प्रकार के पवपवध संबंधों के आधार पर। चेतना के सब मभन्न-मभन्न प्रकार प्रकृतत की पवरोधी र्त्ततयों की कायप्रशणाली पर तनभरश करते ि ैं। इनमें से एक वे ि ैं त्जनके अन्दर ये र्त्ततयां अपना पूरा जोर जमाए िुए ि ैं और इन अवस्थाओं में आममा की ज्ञान-सम्पादन-र्त्तत केवल स्पर्-शकक्रया द्वारा िी अपनी अमभव्यत्तत कर सकती ि ै, जैसे धातु आहद। दूसूरी ओर वे आकृततयाँ त्जनमें से सारी प्राकृततक र्त्ततयां िटा दी गई ि ैं और जो सवज्ञशता की पूण शप्रभा को पिुंच सकी ि ैं। उतत दोनों सीमाओंके मध्यवती नमूनों का तनणयश ज्ञान के माग शमें बाधकरूप र्त्ततयों के सवार्ां में अथवा आंमर्क रूप में पवनार् के द्वारा िो सकता ि ै। ज्ञान का, जो आममा का सारतत्त्व ि ै, ततरोभाव एवं ंअमभव्यत्तत प्रकृतत के दबाव की मात्रा के अनुसार िोती ि ै। िरेक पदाथ शपवश्वाममा में अन्ततनहशित ि ै और केवल उन कारणों के दूरू िोने ेकी अपेक्षा करता ि ै जो ज्ञान की अमभव्यत्तत में बाधक मसद्ध िोतिैं। जब बाधक दूरू िो जाते ि ैं तब आममा पूणधशारणाममक ज्ञान-स्वरूप िो जाती ि ै, जो देर् और काल की सीमाओंसे परे ि ै। उस समय आममा की उस पूण शआभा में, त्जसका सारतत्त्व चेतना ि ै, न तो कोई मानमसक आवेग पवघ्नकारक िो सकता ि ै और न िी ककसी प्रकार के स्वाथ शउसे धुंधला बना सकतिैं, और न िम यिी कि सकते ि ैं कक इस पूव शअवस्थाओं में कोई भेदक लक्षण रिते ि ैं। ज्ञान का पवषय सम्पूण शयथाथसशत्ता ि ै और ज्ञाता पवषयी पवर्ुद्ध प्रज्ञान बन गया, त्जसमें भेदकारक ककसी मयाशदा की सम्भावना निीं ंि ै। इत्न्द्रयगस्य

आनुभापवक जगत् ्के अवास्तपवक भेद भी अब उसमें पवद्यमान निीं ंरिते। संक्षेप में, भेद एक ऐसे तत्त्व के कारण िैं जो सदा निीं ंरिता, और जो सदा स्थायी िै यि आममा िै त्जसका स्वरूप चेतना िै। जैनी लोग अनेकांतवाद के मसद्धान्त का समथनश तकश द्वारा निीं ंकर सकते।

7. मनोपवज्ञान

इससे पूव शकक िम जैनदर्नश के आध्यात्ममक पवचारों को लें, िम उनके मनोवैज्ञातनक मतों का हदग्दर्नश कर लें। वे मन और रीर के द्वैत को स्वीकार करते िैं। वे ेपांच द्रव्य इत्न्द्रयों अथवा भौततक इत्न्द्रयों को भी पृथक् करके मानतीिैं, और उनके प्रततरूप पांच भावेत्न्द्रयों या ज्ञानेत्न्द्रयों की सत्ता को भी स्वीकार करते िैं।'[664] रूप का सुखानुभव करने ेवाली आंख और उसके प्रमेय पवषय के मध्य जो सामान्य घटक या अवयव िै वि रंग िै। रंग को पिचानने में, जोकक एक प्राकृततक या भौततक गुण िै, आंख की अनुकूलता िै। चूंकक इत्न्द्रयां जीव की केवल बाह्यरूप र्त्तयां अथवा साधन िैं, वे घटक जो समस्त पदाथों के सुखानुभवों को सम्भव बनातीिैं, स्वयं ं आममा के अपनेसंघटन में िी अवत्स्थत रिते िैं। इत्न्द्रयां सुखानुभव की योग्यता िैं और अनुभव-पवषयक गुण, जो बाह्यरूप में वतमशान रितीिैं, सुखानुभव के पवषय या भौततक पदाथ शिैं। स्पर् शके आि प्रकारों में मनोवैज्ञातनक पवश्लेषण के पवभाग स्पष्ट देखे जा सकतीिैं- उष्ण एवं ीत, खुरदरा और धचकना, नरम और किोर, िल्का और भारी। इसी प्रकार स्वाद के पांच भेद िैं चरपरा या तीखा, या खट्टा, कड़वा, मीिा और कषाय या कसैला; गन्ध के दो भेद िैं: सुगन्ध और दुगुन्शध; रंग के पांच भेद िैं। काला, नीला, पीला, सफेद और गुलाबी या पाटलवण।श इसी प्रकार ब्द के सात भेद िैं: षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, दैवत, तनषाद आहद। प्रमयक्ष ज्ञान इत्न्द्रय के साथ पदाथ शका सत्न्नकष शिोने ेसे उमपन्न िोता िै। यि यात्न्त्रक सत्न्नकष शमनोवैज्ञातनक प्रमयक्ष की सम्पूण शपररभाषा निीं ंिै। यि तो केवल उस आवरण को िटाने ेमें सियक िो सकता िै जो जीवाममा के ज्ञान को ढके रिता िै। प्रमाता जीवाममा ज्ञाता िै, भोतता भी िै, और कताश भी िै -अथात्श ्वि जानने ेवाला, सुखानुभव करने ेवाला और कम शकरने ेवाला िै। चेतना के तीन प्रकार बतलाए गए िैं: ज्ञान, अनुभव अथवा कमों के फलों का उपभोग665 और इच्छा।666 मानमसक प्रकक्रया और अनुभव का अमयन्त तनकट सम्बन्ध िै। साधारणतः िमें पिले र्ारीररक संवेदना िोती िै उसके बाद मानमसक कक्रया और अन्त में ज्ञान िोता िै।'[667] जीव और पुद्गल के बीच का सम्बन्ध पवषयी प्रमाता का पवषय प्रमेय के साथ सम्बन्ध िै। वि र्त्तत जो उनका परस्पर संयोग कराती िै

[664] तत्त्वाथसूशतूर, 2. 19। इसी प्रकार मन के भी दो पिलू िैं: एक भौततक और दूसरा मनोवैज्ञातनक। जब आममा की समस्त [illegible] मनोवैज्ञातनक दो प्रततरूप िैं। भौततक पवषयों या पदाथों के मनोवैज्ञातनक प्रमयक्ष की व्याख्या के मलए उपत्स्थत की गई उतत योजना एक प्रकार से तनस्सार िै। िम आममा एवं दिे के पारस्पररक सम्बन्ध की समस्या को बार-बार केवल यि

दोिराकर िल निीं कर सकते ेकक दोनों के गुण प्रमयेक इत्न्द्रय में वतमशान रिते िैं।

[665] कमफशलचेतना।

[666] विी, 39।

[667] पंचात्स्तकायसमयसार, 38।

मसद्धाममा की सवज्ञशता का तामपय शि चेतना के अन्दर पवश्व का प्रततबबम्ब, यद्यपप आममा का बन्धन में िोना आवश्यक निीं िै। परस्पर कक्रया-प्रततकक्रया जीव की इच्छाओंके ऊपर तनभरश करती िै। यि इच्छा की अधीनता और उनके कारण बन्धन जीव के मलए अतनवाय शनिीं ंिै तयोंकक इच्छा से रहित िोना सम्भव िै।

प्रमयेक जीव र्रीर और आममा की संग्रधथत रचना िै त्जसमें आममा कक्रयार्ील साझीदार िै एवं ंर्रीर तनत्ष्क्रय भागीदार िै। जैनमत पवषयीपवज्ञानवाद एवं ंभौततकवाद दोनों के दोषों का तनराकरण मन और प्रकृतत के सिाचय शको स्वीकार करके कर देती िै। ककन्तु जैनमत इस पवषय का पवचार निीं ंकरता कक आमम एवं अनामम में भेद मन के अतनवाय शस्वभाव की िी उपज िै। यि दो पदाथों के मसद्धान्त को स्पष्टरूप से स्वीकार करते िुए ज्ञान को उनसे सवथशा मभन्न दोनों के मध्य एक प्रकक्रया के रूप में मानता िै। जैनमत पवकास के ऐसे भी ककसी पवचार से अमभज्ञ निीं ंिैं, त्जसके अनुसार र्रीर अपने पवकास की उच्चतर अवस्थाओं म ेंनये गुण धारण कर दृत्ष्टकोण तक जकीर र्रीर के दैतभाव को मानकर िी स अवस्थाओं िै और मनोवैज्ञातनक दृत्ष्टकन्तु इसे सजाकर किर जाता िै। यि पारस्पररक प्रततसन्चार रिता स्वीकार निीं ंकर सकता, ककन्चेइसे समस्त कहिनाइयों के रितुिए भी समानान्तरता को को की स्वीकार करनेके मलए पववर् िोना पड़ता िै। "काममकश प्रकृतत स्वयं अपनेअतनवाय शस्वडभाव के कारण अपनेपररवतनश उमपन्न करती िै। जीव भी उसी प्रकार से अपने पवचार की अर्ुद्धअवस्थाओं ंद्वारा, जो कम शसे तनयत्न्त्रत िैं, अपने पवचारों में पररवतनश उमपन्न करता िै ।"[668] दोनों दो स्वतन्त्र श्रृंखलाएं बनातिैं जो अपने-आपमें पयाप्शत एवं पूण शिैं। इस प्रश्न के उमतडर में कक जीव को कमों के फल से तयों दु:ख भोगना चाहिए यहद वे दोनों िी परस्पर एक- दूसूरे के ऊपर तनभरश निीं ंिैं, यि समाधान ककया जाता िै कक उनके मध्य एक प्रकार का पिले से त्स्थत साम्य िै।669 संसार के अन्दर िमें भौततक र्रीर ममलतिैं जो पवर्ाल भी िैं और छोटे भी, त्जनमें से कुछ काममकश प्रकृतत के िैं त्जनकी प्रवृपत्त जीवों द्वारा आकृष्ट िोने ेकी ओर िै। अपनेसिाचय शके कारण जीव एवं काममकश प्रकृतत के परमाणु एकत्र िोतिैं। काममकश प्रकृतत का जीव के अन्दर पिैना इस तनकट की सित्स्थतत के कारण िै। यि निींकिा जा सकता कक मन ककसी कक्रयाममक प्रभाव का उपयोग करता िै। 'पञ्चात्स्तकायसमयसार' का टीकाकार इस सम्बन्ध की व्याख्या एक डडबबया के दृष्टान्त से करता िै, जो काजल के सम्पकश से काली िो जाती िै। दोनों आममतनणयशकारी माध्यम ककसी न ककसी प्रकार समानरूप से परस्पर संयुतत िो जाते िैं। चूंकक दो श्रृंखलाओं के मध्य प्रमयक्ष काय-शकारण सम्बन्ध का तनषेध ककया जाता िै इसमलए रिस्यपूण शसमानता से बढ़कर और कोई समाधान सम्भव निीं ंिै।

उतत मत को मानने ेसे ज्ञान एक रिस्य बन जाता िै। यि तनरपेक्ष समय निीं ंरिता, त्जसकी पृष्ठिभूमम में िम निींजा सकते। िम जानबूझकर एक संकुधचत दृत्ष्टकोण को अंगीकार कर लेते िैं और ज्ञाता एवं ंज्ञेय के मध्य एक पवरोध की कल्पना करते िुए मन को इस रूप में मान लेते िैं त्जसे बराबर एक अन्य वस्तु से सामना करना पड़ता िै और त्जसे िम पररत्स्थतत अथवा वातावरण के नाम से पुकारते िैं। िम उन पदाथों का प्रमयक्ष ज्ञान निींकरतेजो बाह्य िैं, ककन्तु उनकी प्रततकृततयां ंएवं धचत्र िी िमारे आगे आतिैं जो बाह्य जगत् ्का

---

668 विी,68।

669 पंचात्स्तकायसमयसार , 70-77।

प्रततनधधमव मात्र करते िैं। पवचार एवं ंयथाथसशत्ता के मध्य कभी भी अनुकूलता निीं िो सकती जब तक कक उनके अन्दर कोई सामान्य घटक या अवयव न िो। ककन्तुउस अवस्था में यि मसद्धान्त कक मन अपनेमत्न्दर के अन्दर से एक पवपरीतगुण पवश्व को तनिारता िै, सवथशा धगर जाता िै।

कि जाता िै कक आममा के आयाम िैं, और उसमें पवस्तार और संकोच की भी गुंजाइर् िै। भौततक रीर से छोटे आकार में आममा निीं िो सकती तयोंकक उस अवस्था में यि र्ारीररक प्रवृपृत्तयों को अपना करके अनुभव निीं ंकर सकती। यि जब माता के गभ शमें िोती िै तो बिुत लघु आकार की िोती िै ककन्तु धीरे-धीरे रीर के साथ पवस्तृत िोती जाती िोती िै और अन्त में जाकर यि अपनेपूण शआकार में पिुंच जाती िै। इस पृथ्वी पर के प्रमयेक जीवन के अन्त में यि भपवष्यजन्म के बीज से सम्बद्ध िोती िै आममा का रीर के जन्दा पवस्तार इसी प्रकार के अन्य प्रसरण की अवस्था के अनुरूप निीं ंिै तयोंकक आममा की बनावट बिुत सादी िै और उसके हिस्से निीं िैं। "त्जस प्रकार एक कमल जो लालमणण के रंग का िै, जब एक दूध के पात्र में रखा जाएगा तो अपनी विी रतत वण शकी आभा दूध को प्रदान कर देगा, इसी प्रकार यि अपनेतनजी रीर में त्स्थत िोकर अपनी आभा अथवा अपनेबुद्धधचैतन्य को समस्त दिे को दे देती िै।"[670] आममाएं जो संख्या में असंख्य िैं और मध्यम आकार की िैं, लोकाकार् में अथवा इस पाधथवश जगत् ्में भी देर् के असंख्य स्थलों को घेरती िैं।671 र्ंकर के अनुसार672, आममा के रीर के आकार के समान आकार वाली मानने ेका मसद्धान्त निीं ंिटिर सकता, तयोंकक रीर के द्वारा सीममत िोने ेके कारण यि भी मानना पड़ेगा कक रीर के समान आममा भी अतनमय िै यहद वि अतनमय िै तो उसका अन्त मे मोक्ष निीं िटिर सकता, तयोंकक रीर के द्वारा सीममत िोने ेके कारण यि भी मानना पड़ेगा कक रीर के समान आममा भी अतनमय िै और यहद वि अतनमय िै तो उसका अन्त में मोक्ष निीं ंिो सकता। इसके अततररतत जब एक आममा इस जन्म में एक रीर को छोड़कर आगामी जन्म में बृिद् आकार के रीर में जाएगी तो उसके माग शमें कहिनाइयां आएंगी। िम स्थूलरूप में कल्पना कर सकतेिैं कक आममा अवयवों के साथ अन्य अवयवों के संयोग से बढ़ एवं ंअवयवों को घटाकर छोटी भी िो सकती िै। नये अवयव तनरन्तर आते रिेंगे और पुरानेअवयव तनकलतेरिेंगे। इस प्रकार िमें यि कभी तनश्चय निीं ंिो सकता कक विी एक आममा बराबर रिती िै। यहद किा जाए कक कततपय आवश्यक अवयव बराबर अपररवततातश रूप में रिते िैं तो आवश्यक एवं आनुषंधगक अवयवों में भेद करना कहिन िोगा। जैनी लोग इन आपपत्तयों का समाधान दृष्टान्तों के उद्धरण द्वारा करते िैं। त्जस प्रकार एक दीपक चािे छोटे से छोटे बरतन में रखा जाए चािे एक बड़ ेकमरे में, सारे स्थान को प्रकामर्त करता िै, इसी प्रकार जीव भी मभन्न-मभन्न रीरों के आकारों के अनुकूलरूप से मसकुड़ता और फैलता िै।

---

670 पंचात्स्तकायसमयसार, 33। मिर अपने 'साइकोलॉजी' नामक ग्रन्थ में किता िै कक "आममा सारे रीर में उपत्स्थत िै, यद्यपप तनगुणश अस्था में। इसके अततररतत यि अन्य सब स्थानों पर भी उपत्स्थत िै अपने पूण शसाररूप में, यद्यपप यि सवत्रश अपने सब गुणों का उपयोग करने में समथ शभले िी न िो।"

671 मध्यमपररमाण, अथात्श ्न तो सवव्शयापक िी िै और न अनुरूप िी िै।

672 र्ांकरभाष्य वेदान्तसूत्रों पर, द्पवतीय, खंड : 2 33-36

8. तत्त्वपवद्या

आध्याममपवद्या के पवषय में जैनमत उन सब मसद्धान्तों के पवरोध में ि जो नैततक उत्तरदातयमव पर बल निीं ंदेते। मनुष्य की मुत्तत में नैततक हित िी तनणाशयक र्दत्ष्टकोण ि। ईश्वर के द्वारा सृतूष्ट की रचना के मसद्धान्तों अथवा प्रकृतत के अन्दर से अथवा असत् ्से सृतूष्ट के पवकास-सम्बन्धी मसद्धान्तों की समीक्षा इस आधार पर की गई ि कक उतत मसद्धान्त दुःख के उद्भव एवं ंउससे छुटकारे की व्याख्या निीं ंकर सकते।673 यि समझना कक एक बुद्धधसम्पन्न प्रमाता पांचं तत्त्वों के मेल से उमपन्न िोता ि, नैततक र्दत्ष्ट से उतना िी तनरथकश ि जैसे कक यि कल्पना कक सृतूष्ट का नानामव केवल एक बुद्धधसम्पन्न या मेधावी तत्त्व की बिुगुण अमभव्यत्तत ि।674 आममा को तनत्ष्क्रय मानने ्से नैततक पवभेद अपना मित्त्व खो बिैते ि ।'675 यि कथन कक आममा का अनाहद और अनन्त िोना तो अक्षुण्ण रिता ि और संसार की सब घटनाएं सत्ता के घटकों के सत्ममश्रण एवं ं पृथृतकरण के पररणाम ि, आममा के अपनेउपक्रम का िी नार् कर देगा और इस प्रकार के ककसी भी कम शके मलए आममा का नैततक उत्तरदातयमव सवथशा तनरथकश िो जाएगा।676 भाग्यवाहदयों की इस कल्पना में ककस सारी घटनाएं प्रकृतत द्वारा पिले से िी तनधारशरत ि, मनुष्य के तनजी पुरुषाथ शको कोई स्थान िी निीं ंरिता।677 नैततक मूल्यांकन के मलए यि स्वीकार करना आवश्यक ि कक प्रमयेक मनुष्य इस संसार में अपनेको बना एवं ंबबगाड़ सकता ि और यि कक आममा का एक पृथक् अत्स्तमव ि, त्जसे वि अपनेमोक्ष की अवस्था में भी अक्षुण्ण बनाए रखती ि।678 इस अध्याममपवद्या-सम्बन्धी मसद्धान्त पर पवचार करने ्के मलए पिले द्रव्य एवं उसके पयायश शके स्वभाव पर पवचार कर लेना आवश्यक ि।

जैनी इस मसद्धान्त को स्वीकार निीं ंकरते कक जीव तनमय ि एवं उसका जन्म, पररवतनश एवं ंअन्त निीं ं ि। प्रमयेक पदाथ शउमपन्न िोता ि, वतमशान रिता ि और कफर नष्ट िोता ि। द्रव्य की पररभाषा िमारे र्दत्ष्टकोण पर तनभरश करती ि। द्रव्य वि ि जो सदा रिता ि, त्जस प्रकार इस पवश्व का न आहद ि न अन्त ि। यि गुणों एवं पररवतनशों का आधार ि। प्रमयेक वस्तु त्जसका प्रादुभाुवश, त्स्थतत एवंपवनार् िोता ि, द्रव्य ि। यिी वि ि जो कुछ न कुछ व्यापार करता ि। साधारतणः वतमशान वस्तुएं अपनेद्रव्यरूप में तनमय या त्स्थर समझी जाती ि और पररवतनशर्ील पिलुओंके कारण आनुषंधगक भी ि। भौततक पदाथ शप्रकृतत के रूप में तनरन्तर पवद्यमान रिति ककन्तु ुव्यत्ततमवरूप से उनमें पररवतनश िोता ि जीव के स्वरूप में पररवतनश निीं ंिोता। जैनी लोग अतीत्न्द्रय सत्ता के पवषय में कुछ निीं ंसोचतेऔर उसी सत्ता के पवषय में सोचते ि जो अनुभव में आती ि। संसार के पदाथों में पररवतनश िोता ि, वे नये गुण ग्रिण करते ि और पुरानों का मयाग करते ि। कततपय सामान्य गुणों की

---

673 सूत्रकृतांग प्रथम ,1:1,3, 5-9 ।

674 सूत्रकृतांग प्र .,1:1,7-10, 11-12; द्पव,116, 17।

675 वि, प्र ., 1 1, 13।

676 वि, प्र .,1:1,15, द्पव, 1: 22-24।

677 वि, प्र .,1:2,1-5; प्र०, 1: 4, 8-9; द्पव, 1:32।

678 वि, प्र . 1: 3, 11।

पवद्यमानता से िम किते िैं कक नया और पुराना दोनों एक िी द्रव्य की आकृततयां ंिैं। उनके मलए भेद में एकमव के अततररतत अन्य कुछ यथाथ शर्नीं ंिै। वे ेभेदाभेद के मसद्धान्त को स्वीकार करते िैं, त्जसका अथ शै तादामम्य में भेद। द्रव्य वि िै जो अपनेगुणों और पररवतनशों में और उनके रितुिए भी अपनी त्स्थरता को र्नींखोता।
द्रव्य और गुण दोनों को पृथक् र्नीं ंककया जा सकता। पदाथ शकी पररभाषा िै वि त्जसमें अनेक गुण िों।679 यि एक गततर्ील यथाथतशा िै, एक ऐसी सत्ता जो पररवततततश िोती िै।"[680] "द्रव्य वि िै जो सब वस्तुओंके अन्दर रिने बाला सारतत्त्व िै, जो अपनेको पवपवध आकृततयों में प्रकट करता िै और त्जसकी तीन पवर्ेषताएं िैं अथात्श ्उमपपत्त, नार् एवंत्स्थतत, और त्जसका वणनश पवरोधी पदार्थों के द्वारा िो सकता िै ।"[681]

गुण द्रव्यों में उसी प्रकार अन्तगतश रितिं जैसेकक परमाणुओं के अन्दर भौततकता िै, और बबना आधार के स्वतन्त्ररूप से वे ेर्नीं ंरि सकते। मुख्य-मुख्य गुण िैं : (1) त्स्थतत, (2) उपभोग की योग्यता, (3) अनाधश्रत र्निा, (4) ज्ञान का पवषय िोना, (5) पवमर्ष्टता या साम्य अथवा सारतत्त्व, और (6) ककसी न ककसी आकृतत को धारण करनेका गुण। ये सब गुण द्रव्यों में सामान्य िैं, ककन्तु इनके अततररतत प्रमयेक द्रव्य की अपनी पवर्ेषता भी रिती िै। िमें इन गुणों में से ककसीको भी पृथक् करके उसे आधारभूत गुण का स्वर र्नीं ंदेना चाहिए। तो भी गुण द्रव्य के बबना अथवा द्रव्य गुण कक बबना र्नीं ंरि सकते।'[682] जैनी लोग न्याय के इस मसद्धान्त का कक द्रव्य और गुण में तनतांत भेद िै, खण्डन करते िैं। ककसी भी वस्तु की सत्ता अपनेगुणों को लेकर िै और गुण वस्तु ुका अंतरंग भाग िै। भेद अन्योन्याश्रयमव- सम्बन्धी िै, पवद्यमानता-सम्बन्धी र्नीं। "यहद द्रव्य अपनेगुणों से तनतांत पृथक् और ममन्न िै तब यि अनंत प्रकार के अन्य द्रव्यों में भी पररवततततश िो सकता िै, इसी प्रकार यहद गुण अपने द्रव्यों से अलग िोकर पवद्यमान रि सकतिं तो कफर ककसी द्रव्य की एकदम आवश्यकता िी र्नीं ंरि जाती।"[683] तनगुणश ब्रह्म की कल्पना और क्षणणकवाद का भी उपलक्षक्षत रूप में खण्डन ककया िै।684 द्रव्य और गुण बाह्यरूप से सम्बद्ध िो सकतिं, जैसे'देवदत्त की गाय', और आन्तररकरूप में सम्बद्ध िो सकतिं, जैसे 'लम्बे कद की गाय'। "जैसे धन और ज्ञान अपनेस्वाममयों को धनी और ज्ञानी बनातिं यद्यपप ये परस्पर-सम्बन्ध के दो मभन्न प्रकारों अथात्श ्एकता और मभन्नता को अमभव्यतत करते िैं, इसी प्रकार द्रव्य और गुणों के मध्य का सम्बन्ध तादामम्य और पवभेद के दो मभन्न-मभन्न पिलुओं को संकेत करते िैं।"[685] "द्रव्य और गुण के

679 पंचात्स्तकायसमयसार, 8; और भी देखें, 9 और 11।

680 विी, 6।

681 "अनन्तधमामशकं वस्तु", िररभद्र का 'षड्दर्नशसमुच्य', 57।

682 पंचात्स्तकायसमयसार, 13।

683 विी, 50।

684 पवर्ेष के बबना सामान्य और सामान्य के बबना पवर्ेष र्नीं ंरि सकता। मणणभद्र िररभद्र के 'षड्दर्नशसमुचुचय' पर अपनी वृपृत्त में पृषृ 46 पर एक श्लोक उद्धृत करता िै, "द्रव्यं ंपयायशपवयुतम्,् पयायशा द्रव्यवत्जतशाः तव कदा केन ककंरूपा र्दष्टमानेन केन चेतत।"

685 पंचात्स्तकायसमयसार, 53।

 बीच का सम्बन्ध एक प्रकार की समकालीन समानता, एकता, असम्भव पाथतशय और अतनवाय शसरलता का िै;

द्रव्य और गुणों की एकता परस्पर संयोग की निीं ंिै।"[686]

द्रव्य को गुणों समेत ककसी न ककसी आकृतत व अवस्था में पवद्यमान िोना चाहिए। अत्स्तमव का यि प्रकार पयायश िै और पररवतनश के अधीन िै। सोना एक द्रव्य िै त्जसके लचीलेपन और पीतवण शरूपी गुणों में पररवतनश निीं ंिोता। पयायश अथवा आकृततयों के पररवतततश िोनेपर भी गुण वतमशान रिते िैं। पयाशय अथात्श ् पररवतनश दो ककस्म के िोते िैं: (1) द्रव्य के अतनवाय शगुणों में पररवतनश। जल के रंग में पररवतनश िो सकता िै यद्यपप रंग एक तनरन्तर रिने ेवाला गुण िै।687 (2) आनुषंधगक गुणों में पररवतनश जैसे गदलापन। जल को मिेशा िी गदला निीं ंरिना िै।"[688]

समस्त सत्तामक पवश्व दो प्रकार के वगों में अथात्श ्जीव एवं अजीव या ज़ में पवमभतत िै और ये वग श बराबर रिनेवाले िैं, त्जनकी रचना निीं ंकी गई िै और सिअत्स्तमव वाले िैं ककन्तु एक-दूसूरे से स्वतन्त्र िैं। जीव भोतता िै और अजीव अथवा ज़ भोग्य िै। त्जसमें चेतना िै वि जीव िै, और त्जसमें चेतना तो निीं ंिै ककन्तु त्जसे स्पर् शकर सकते िैं, त्जसका स्वाद ले सकते िैं, त्जसे देख सकते िैं और सूंघ सकते िैं वि अजीव या ज़ िै। अजीव तीनों प्रकार की चेतना से वत्जतश िै। ये ज्ञेय (पवषय पदाथ)श िै।"[689] "जो नानापवध पदाथों को जानता िै एवं उनका प्रमडयक्ष अनुभव करता िै, सुख की इच्छा करता िै और दुखु से भय करता िै, उपकार के भाव से अथवा ककसी को नुकसान पिुंचाने ेके पवचार से कम शकरता िै और उसके फलों का उपभोग करता िै, वि जीव िै।690 जीव और अजीव से तामडपय शअिम् ्और अिमभन्न निीं ंिै। यि संसार के पदाथों का एक पवषयाधश्रत या वस्तुपरक वगीकरण िै त्जसके कारण जीव और अजीव में अन्तर िै। जानदार प्राणी आममा और रीर के संयोग से बने िैं और उनकी आममा प्रकृतत से पवरुद्धगुण िोने ेके कारण तनमय िै। अजीवों की भी मुख्यतः दो पवमभन्न श्रेणणयां िैं : एक तो वे जो अरूप या बबना आकृतत के िैं जैसे धम,श अधम,श देर्, काल, और दूसूरे वे ेजो आकृतत सम्पन्न िैं, अथात्श ्पुद्गल अथवा भौततक पदाथ।श

प्रथम अजीव द्रव्य आकार् अथवा देर् (अन्तररक्ष) िै। इसके दो पवभाग िैं- (1) लोकाकार्, वि भाग त्जसमें भौततक पदाथ शिैं और (2) उसके परे का देर् त्जसे अलोकाकार् किते िैं और जो बबलकुल रूनूय िै।691 प्रदेर् के पवन्दु ुकी पररभाषा तनम्नमलणखत प्रकार से की गई िै उस कुछ को प्रदेर् के रूप में जानो जो पुद्गल के एक अपवभाज्जय परमाणु से तघरा िुआ िै और सब अन्य कणों को जगि दे सकता िै।"[692] इस प्रकार के प्रदेर् में

---

686 विी,56।

687 सिभावी पयायश। यि पदाथ शएवं उसके गुणों के साथ-साथ वतमशान रिता िै।

688 क्रमभावी पयायश। वि अन्य पररवतनश के पश्चात् ्आता िै ।

689 पंचात्स्तकायसमयसार, 132।

690 विी, 129।

691 पंचात्स्तकायसमयसार; और भी देखें सवदशर्नशसंग्रि, 19-20 ।

692 सवदशर्नशसंग्रि, 27।

एक अवयव धम शका, एक अधम शका, एक कण समय का और प्रकृतत के ककतने िी परमाणु एक सूक्ष्म अवस्था में रि सकते िैं। देर् (आकार्) अपने-आपमें न गतत की अवस्था में िै और न िी त्स्थरता की अवस्था में।693' पदाथों के एकसाथ देर् में लटकते रिने ेसे अस्तव्यस्तता आ जाएगी। पवश्व के तनमाणश के मलए उन्िें गतत एवंत्स्थरता के ककन्िीं तनयमों में बद्ध िोना आवश्यक िै। धम शगतत का स्वभाव िै। "धम,श स्वाद, रंग, गन्ध, र्ब्द एवं सम्बन्ध आहद गुणों ते ेरहित िै। यि सारे पवश्व में व्याप्त िै, और सतत वतमशान रिता िै तयोंकक इसे पृथक् निीं ं कर सकते; यि पवस्तारसम्पन्न िै, तयोंकक देर् के साथ िी इसका भी पवस्तार िोता िै। यद्यपप यि वास्तव में एकप्रदेर्ी िै तो भी व्यविार में अनेक प्रदेर्ों वाला िै।"[694] यि अमूत शअथात्श ्अर्रीरी िै, अबाधधत और अममधश्रत िै। "चूंकक अर्रीरी रूप में इसकी अनन्त अमभव्यत्ततयां िैं, यि अगुरुलघु िै और चूंकक इसकी त्स्थरता प्रकट एवं अप्रकट रूप में पववादास्पदरूप िै, इसमलए यि एक वास्तपवक सत्ता िै। स्वयंगतत से बबना प्रभापवत िुए भी यि गतत के योग्य वस्तुओंको एवंप्रकृतत और जीवन की गतत को तनयत्न्त्रत करता िै,[695] "जैसे कक जल अपनेआप में तनश्चेष्ट एवंउदासीन रिते िुए भी मछली की गतत का तनयन्त्रण करता िै।"[696] धम शके अन्दर प्रकृतत के पवर्ेष गुण निीं ंिैं तो भी यि स्वयंपवद्यमान सत्ता िै, त्जसमें इत्न्द्रयग्राह्य गुणों का अभाव िै। यि गतत का माध्यम िै यद्यपप इसका कारण निीं ंिै। अधम शत्स्थरता का स्वभाव िै। यि भी इत्न्द्रयगुणों से पविीन िै, अर्रीरी या अमूत शिै, और लोकाकार् के समान पवस्तार वाला िै।697 उतत दोनों तत्त्वय गततर्ून्य, अभौततक, परमाणुपविीन और रचना में अखत्ण्डत िैं। धम शएवं अधम शगतत एवंत्स्थरता के उदासीन िेतु िैं। तनममत्त कारण इससे मभन्न िै, अन्यथा पदाथ शया तो सदा गततमान िी रिें या त्स्थर िी रिें। वे ेकेवल गतत और त्स्थरता के सिचारी प्रततबन्ध मात्र िी निीं अपपतु पवश्व की रचना में समस्त गततमान एवं त्स्थर पदाथों की पृष्ठभूमम में काय शकरते िुए मसद्धान्त िैं। वे पृथक पृथक् टुकड़ों के अस्तव्यस्त समुदाय को एक सुव्यवत्स्थत सम्पूण शबनाने में एकत्र जोड़नेवाले माध्यम का काम करते िैं । यि ध्यान में रखना चाहिए कक जैनदर्नश में धम शऔर अधम शसे तामपय शअच्छे और बुरे कमों से निीं ंिै, त्जनको प्रकट करनेके मलए दूसरे र्ब्द पुण्य और पाप िैं। ये वे र्त्ततयां िैं जो गतत और त्स्थरता का तनयंत्रण करती िैं। देर् धम शऔर अधम शको लेकर सब पदाथों आममाओं और प्रकृतत की भी त्स्थतत के मलए उधचत पररत्स्थतत का तनमाणश करता िै। देर् तो रिनेके मलए स्थान देता िै और धम शऔर अधम शवस्तुओं के मलए गतत या त्स्थरता सम्भव करते िैं। आधुतनक दर्नशर्ास्त्र के अनुसार ये तीनों व्यापार अथात्श ्पवद्यमान रिना, गतत करना एवं ंत्स्थरता आकार् के िी गुण बतलाए गए िैं। वे तीनों िी गुण परस्पर एक-दूसरे में समापवष्ट िैं। स्थान-पवर्ेष के दृत्ष्टकोण से ये एक िी प्रमाण एवं ंआकार के िैं, अथात्श ्ऐसी एकता रखते िैं त्जसमें पृथतकरण सम्भव निीं ंिै। व्यापारों की मभन्नता से िी उन्िें पिचाना जा सकता िै।

---

693 पंचात्स्तकायसमयसार,99और100।

694 विी, 90।

695 विी, 91।

696 विी, 85, 95; और भी देखें सवदर्शनशसंग्रि,17, और वधमशानपुराण,16; 29।

697 पंचात्स्तकायसमयसार, 94।

काल को भी कभी अधद्रशव्य समझा जाता िै। यि पवश्व की वि सवव्शयापक आकृतत िै त्जसके द्वारा संसार की समस्त गततयांसूतूरबद्ध िैं । यि एक व्यवधानपूण शपररवतनशों की श्रृंखलाओंका केवल जोड़मात्र निीं िैं किन्तु ुत्स्थरता की एक प्रकक्रया िै-भूत एवं ंवतमशान काल को धचरस्थायी बनाना िै।

काल का अत्स्तमव तो िै ककन्तु ुउसमें कायमव अथवा पवर्लता या पवस्तार निीं ंिै। एक पक्षीय िोने ेके कारण इसमें पवस्तार निीं ंिै।'[698] तनमय काल में (त्जसकी न आकृतत िै, न आहद और न अन्त िै) तथा सापेक्ष काल में (त्जसका आहद और अन्त िै तथा घण्टे, ममनट आहद के भी पररवतनश िैं) भेद ककया जाता 5/6 तनमयरूप काल को िम काल के नाम से एवं ंसापेक्ष प्रकार के काल को समय के नाम से पुकारतेिैं। काल समय का मित्त्वपूण शकारण िै। वतनश, अथवा पररवतनशों की तनरन्तरता पररणाम द्वारा अनुमान की जाती िै।699 "सापेक्ष समय का तनणयश पररवतनशों अथवा वस्तुओंके अन्दर गतत के द्वारा िोता िै। यि पररवतनश अपने-आपमें तनरपेक्ष काल के काय शिैं ।"[700] काल को चक्र अथवा पहिया या घूमनेवाला किा जाता िै। चूंकक काल की गतत से सब पदाथों की आकृतत का पवलयन सम्भव िोता िै इसीमलए काल को संिारकिताश भी किा गया िै।"[701]

अगला पवभाग पुद्गल अथवा प्रकृतत का िै, त्जस पर पवचार करना िै। "इत्न्द्रयों, इत्न्द्रयों के गोलकों, नाना प्रकार के जीवों के र्रीरों, भौततक मन एवं कमों आहद के द्वारा त्जनका प्रमयक्ष िोता िै ये सब मूत शअथवा आकृततमान पदाथ शिैं। ये सब पुद्गल िैं।"[702] "र्ब्द, संयोग, सूक्ष्मता, किोरता, आकृतत, पवभाग, अन्धकार और मूतत शत्जसमें चमक और उष्णता िै-ये सब उस पदाथ शके पररवतनश िैं त्जसे पुद्गल किते िैं।"[703] प्रकृतत एक तनमय पदाथ शिै त्जसके गुणों एवं ंइयत्ता या पररणाम का तनश्चय निीं ंिै। पवना ककन्िीं कारणों के जोड़ने या घटानेपर भी यि बढ़ या घट सकती िै। यि कोई भी आकृतत धारण कर सकती िै और नाना प्रकार के गुणों का पवकास कर सकती िै। यि र्त्तत की वािक िै जो तत्त्वरूप से गततमूलक अथवा गतत के स्वडभाव की िै । श्डि गतत पुदगल नामक पदाथ शकी िै और दो प्रकार की िै-सामान्य गतत, अथातश पररस्पन्द और पवकास अथातश पररणाम । पुद्गल पवश्व का प्रकार भौततक आधार िै। स्वयंप्रकृतत को सूक्ष्मता और दृश्यमानता की पवपवध मात्राओं के छि मभन्नड-मभन्नड प्रकारों में अवत्स्थत किा गया िै। स्पर्,श स्वाद, गन्ध, वण शऔर र्ब्द आहद गुण पुद्गल से सम्बद्ध िैं। जैतनयों का तकश िै कक आममा एवंआकार् (देर्) को छोड़कर अन्यड सब कुछ प्रकृतत की उपज िै। जो पदाथ शिमारे प्रमयक्ष में आते िैं वे िोस प्रकृतत से बनेिैं। िमारी इत्न्द्रयों की पिुंच के परे भी सूकूष्म प्रकृतत िै और यि कम शकी मभन्न-मभन्न श्रेणणयों में पररवतततश िो जाती िै।

---

698 देणखए, सवदशर्नशसंग्रि, 25। यहद िम किें कक पुद्गल का एक अणु भी प्रदेर् घेरता िै और इसमलए उसे 'काय' निीं किा जा सकता तो उसका उत्तर यि िै कक "एक अणु यद्यपप एक प्रदेर् में िै लेककन कई स्कन्दों में आने से अनेक प्रदेर् वाला िो जाता िै। इस कारण साधारण दृत्ष्टकोण से सवज्ञश इसे काय कितेिैं। (सवदशर्नशसंग्रि 26)।"

699 पंचात्स्तकायसमयसार, 23-26।

700 विी, 107, 108।

701 तुलना कीत्जए "कालोऽत्स्म", भ. गीता , 11/32 |

702 पंचात्स्तकायसमयसार, 89।

703 सवदशर्नशसंग्रि, 16।

जैन भौततक र्ास्त्र के मुख्य मसद्धान्त के अनुसार, पवश्व का ढांचा परमाणुओंसे तनममतश ि ै। भौततक पदाथ,श जो इन्द्रियों से जानेजाते ि ैं, अणुओंअथवा परमाणुओंसे तनममतश ि ैं। उनकी धारणा ि ै कक पुद्गलों का एक तनतान्त एकजातीय समिू ि ै जो मभन्नताओंऔर गुणों द्वारा तनत्श्चत नाना प्रकार के अणओं में पवभतत िो जाता ि ै, अणु का आहद, मध्य अथवा अन्त कुछ निीं ंिोता। यि अतत सूक्ष्म, तनमय एवं तनरपेक्ष परमसत्ता ि ै। इसका न तो तनमाणश िोता ि ै और न नार् िोता ि ै। यि स्वयंअमूत शि ै या आकृततपविीन ि ै यद्यपप अन्य सब मूत श पदाथों का आधार ि ै। कभी-कभी यि किा जाता ि ै कक यि आकृततमान ि ै इसमलए तयोंकक केवली अथवा सवज्ञश पुरुष इसका प्रमयक्षा ज्ञान कर सकता ि ै। अणुओंके अन्दर गुरुमव बतलाया गया ि ै। अधधक गुरुमवसम्पन्न अणु नीचेकी हदर्ा में और िल्के अणुऊपर की हदर्ा में गतत करते ि ैं। प्रमयेक अणुप्रदेर् के एक अंर् को धरता ि ै।'[704] सूक्ष्म अवस्था में असंख्य अणुएक िोस अणु के प्रदेर् को घेरते ि ैं। िर एक अणुका एक पवर्ेष प्रकार का स्वाद, रंग, गन्ध और सम्बन्ध िोता ि ै।705 उतत गुणु तनमय एवं स्थायी निीं ंि ै। भौततक पदाथों की उमपपत्त अणुओंके परस्पर संयोग से िोती ि ै तयोंकक अणुओंमें परस्पर आकषणश की र्तत रिती ि ै। दो अणुओंसे ममलकर एक संयुतत पदाथ शबनता ि ै त्जनमें से एक लसदार या धचपधचपा और दूसूरा सूखा, अथवा दोनों िी मभन्न-मभन्न श्रेणी के लसदार व सूखे िोतेि ैं। अणुओंका परस्पर संयोग उसी अवस्था में िोता ि ै जबकक वे परस्पर पवमभन्न प्रकृतत के िोतेि ैं। अणुओंके परस्पर आकषणश एवं ंअपकषणश को जैनी लोग स्वीकार करते ि ैं। अणुओंके अन्दर गतत देर्, धम शऔर अधम शके कारण िोती ि ै। उतत संयुतत पदाथ शअथवा स्कन्ध दूसूरों के साथ सम्बद्ध िोतेि ैं और वे े अन्यों के साथ। इसी प्रकार सृतूष्ट का क्रम चलता ि ै। इस प्रकार से पुद्गल दोनों प्रकार के अणुओंअथवा स्कन्धों में एवं उनके समिूों में पवद्यमान रिता ि ै। स्कन्ध युग्मसमिूों से लेकर अनन्त संयुतत पदाथ शतक पवपवध प्रकार के िोतेि ैं। प्रमयेक दृश्यमान पदाथ शएक स्कन्ध ि ै और भौततक जगत् ्सम्पूण शरूप में एक मिास्कन्ध अथवा मिान समिू ि ै। भौततक जगत् ्में जो भी पररवतनश िोतेि ैं, अणुओं के पवश्लेषण एवं संश्लेषण के िी कारण िोते ि ैं।706 िम पिले कि चुके ि ैं कक अणुसदा एक प्रकृतत के निीं ंरितेककन्तु उनके रूप में पररवतनश अथवा पररणाम िोता रिता ि ै जो नये गुणों के धारण करने ेसे िोता ि ै। इससे यि भी तनष्कष शतनकलता ि ै कक अणुमभन्न-मभन्न प्रकार के निीं ंि ै, जो मभन्न-मभन्न तत्त्वों-पृथूवी, जल, अत्न और वायु के अनुकूल िों। तत्त्वों के पवर्ेष गुणों के पवकमसत िोने के कारण अणुमभन्न-मभन्न िो जाते ि ैं और तत्त्वों का तनमाणश करते ि ैं। न्याय-वैर्ेपषक का मसद्धान्त ि ै कक अणु अनेक प्रकार के ि ैं, त्जतनेप्रकार के तत्त्व ि ैं, ककन्तु जैतनयों का पवचार ि ै कक एक जातीय अणु पवमभन्न संयोग के द्वारा मभन्न-मभन्न तत्त्वों को बनाते ि ैं। प्रारत्म्भक अणुओंमें गुणों के कारण कोई भेद िी इस पवचार को जैनी लोग स्वीकार निीं ंकरते।'[707] इस पवषय में जैनी ल्यूमसप्पस एवं डेमोकक्रटस के साथ सिमत ि ैं। अणुओंके श्रेणी-पवभाजन से तनममतश वगों की नानापवध आकृततयां ंिोती ि ैं किा गया ि ै कक अणु के

---

704 पंचात्स्तकायसमयसार ,84 ।

705 विी, 57।

706 पंचात्स्तकायसमयसार , 80-83।

707 विी, 85 ।

अन्दर ऐसी गतत का पवकास भी सम्भव ि जो अमयन्त वेगवान िो, यिां ंतक कक एक क्षण के अन्दर समस्त पवश्व की एक छोर से दूसूरे छोर तक पररक्रमा कर आए।

जैनमत के अनुसार, कम शभौततक स्वभाव का या पौद्गमलक ि। इसी आधार पर जैनी कल्पना करते िैं कक पवचार एवं भाव िमारे स्वभाव पर असर डालतिैं एवं िमारी आममाओं की प्रवृपृत्तयों को बनातिैं अथवा उनमें पररवतनश करते िैं। कम शएक आधारभूत र्त्तत ि एवं प्रकृतत सूक्ष्म आकृतत ि। कम शको अमभव्यतत करने ेयोग्य प्रकृतत सम्पूण शपवश्व के देर् को आवृत् करती ि। इसके अन्दर अच्छे एवं ंबुरे कमों के कायों को पवकमसत करने े का पवर्ेषे गुण ि। आममा वाह्य जगत् ्के सम्पकश में आकर यौधगक अथों में सूक्ष्म प्रकृतत के कणों द्वारा आच्छाहदत िो जाती ि। यिी कम शवन जाते िैं और एक र्रीर-पवर्ेषे की रचना करते िैं त्जसे कम-शर्रीर कितेिैं और जो अत्न्तम मोक्ष से पूव शआममा का साथ निीं ंछोड़ता। यि कममकश प्रकृतत आममा की ज्जयोतत में बाधक मसद्ध िोती ि। भावकम शजीवों के सत्न्नकट ि जबकक द्रव्यकम शका सम्बन्ध र्रीर के साथ ि। ये दोनों एक-दूसूरे से सम्बद्ध िैं, यद्यपप ये चेतन एवं ंअचेतन की भांतत एक-दूसूरे से पवमभन्न गुण एवं पृथृक् िैं। कम शइस प्रकार से अपना काय शकरता ि कक प्रमयेक पररवतनश जो घहटत िोता ि, एक प्रकार का धचह्न छोड़ जाता ि जो त्स्थर िोकिर भपवष्य कम शका आधार बन जाता ि। यहद वास्तपवक रूप में पवद्यमान ि और जीवों के स्वभाव में काय श करता ि। कम शकी अवस्थाएं पांच प्रकार की बताई गई िैं। इनमें से प्रमयेक अपनेअनुकूल भाव अथवा मानमसक अवस्था का तनणयश करती ि। "उमथान, दमन, अभाव, ममधश्रत तनरोध अथवा अव्यवत्स्थत पवचार के कारण जीव के पांच भाव अथवा पवचार-सम्बन्धी अवस्थाएं िैं।"[708] अत्न्तम वाला कम शद्वारा अतनयत्न्त्रत ि जबकक अन्य चार भौततक पक्ष में पररवतनशों द्वारा तनयत्न्त्रत िैं। साधारण अवस्थाओं में कम शसफल िोकर अपनेउधचत पररणामों को उमपन्न करता ि। आममा को औदतयक अवस्था में त्स्थत बताया गया ि। उधचत साधन के द्वारा कुछ समय तक के मलए कम शको अपना असर करने ेसे रोका जा सकता ि। यद्यपप इसे तनत्ष्क्रय ककया जा सकता ि तो भी राख से ढंकी िुई आग के समान उसका अत्स्तमव नष्ट निीं ंिोता। उस समय आममा का औपर्ममक अवस्था में वणनश ककया जाता ि। ककन्तुजब कम शको केवल अपना असर उमपन्न करने ेसे न रोककर उसका मूल नार् कर हदया जाए तव आमभा क्षतयक दर्ा में िोती ि, और यिी दर्ा उसे मोक्ष की ओर ले जाती ि। आममा की चौथी दर्ा भी ि अथात्श ्क्षयोपर्ममक, त्जसमें पूव शकी सब दर्ाओं ंका भी भाग रिता ि। इस दर्ा में कुछ कम शसमूल नष्ट िो जाते िैं, कुछ उदासीन िो जाते िैं एवं कुछ कक्रयार्ील रितिैं। यि दर्ा ऐसे पुरुषों की िोती ि त्जन्िं िम सज्जजन कितिैं धथकक क्षतयक एवं पर्ममक दर्ाएं केवल पुण्याममाओं की िी िोती ि।709

---

[708] पंचात्स्तकावसमयसार, 62. उदव, उपर्म, क्षय, क्षयोपर्म, पररणाम।

[709] जब कम शआममा के अन्दर प्रपवष्ट िोता ि तब यि आठ प्रकार की प्रकृततयों में पररवततततश िो जाता ि त्जनसेकामणश र्रीर पन जाता ि। इन एक प्रकार के कमों में सत्म्ममलत िैं- ज्ञानावरणीय, अथात्श ्वि जो आन्तररक ज्ञान को ढक लेता ि और त्जसके कारण नाना श्ेरेणी का ज्ञान अथवा अज्ञान उमपन्न िोता ि, दर्नशावणीय, अथात्श ्वि त्जससे यथाथ शअन्तर्दत्ष्ट पर आवरण िो जाता ि. वेदनीय, अथात्श ्वि जो आममा के आनन्दस्वरूप को ढककर सुख एवं दु:ख को उमपन्न करता ि, और मोिनीय, अथात्श ्वि जो आममा की पवश्वास-श्रद्धा, आचरण, वासनाओंएवं मनोवेगों के प्रतत समयवृपृत्त को ढककर संर्य, भ्रांतत तथा अन्यान्य मानमसक पवक्षेपों को उमपन्न करता ि। र्ेप चार एक व्यत्तत-पवर्ेष के पद के पवषय में प्रततपादन करते िैं। आयुष्क, अथात्श ्वि जो मनुष्य के एक जन्म की अवधध का तनणयश करता ि, नाम, अथात्श ्वि जो

इस प्रकार अजीव-जगत् ्में पांच वास्तपवक वस्तुए िैं त्जनमें से चार अभीततक अथवा अमूत शिैं अथातश देर्, काल, धम शएवं अधम शऔर पांचवीं वस्तु पुद्गल भौततक अथातश मूत शआकृततमान िै त्जन पदाथों के वग शसे संसार इनसे परे अपररमेय अनन्त िै त्जसे अलोक किते िैं।710

श ्जीवप्रकृतत अथवा जैन भौततकों में पदाथों से मभन्न जीवाममाएं िैं त्जन्िें जीव अथात् 'जीव' र्ब्द का प्रयोग कई अथों में िोता िै और यि जीवन, प्राणर्त्तत, आममा एवं ंचेतना आहद का द्योतक िै। जीव जीपवत अनुभव का नाम िै जोकक बाह्य जगत ॐ भौततक पदाथों से सवथशा मभन्न िै। जीव संख्या में अनन्त िैं और मभन्न-मभन्न प्रकारक िै। यथा, (1) तनमयमसद्ध अथात्श ्सदापूणरूशप, (2) मुतत अथवा त्जन्िोंने मोक्ष प्राप्त प्रकार के और (3) बद्ध, जो कम शके बन्धन में जक़ िुए िैं। दूसूरी श्रेणी के जीव र्रीर धारण निीं कोगे। उन्िोंने पवर्ुद्धता प्राप्त कर ली िै और वे पारलौकक्क दर्ा में तनवास करते िैं त्जनका साप्ताररक कायों के साथ कोई सम्बन्ध निीं ंिै। एिलौकक्क जीव भ्रांतत के मर्कार बनते िैं और वे प्रकृतत के जुए में जु िुए तनरन्तर जन्म धारण करते रिते िैं। मुतत आममाएं एकटम पपवत्र िैं और उनके अन्दर प्रकृतत का अंर् लेर्मात्र भी निीं ि। उनके मलए आममा एवं प्रकृतत के मध्य साझीदारी का नाता समाप्त िो चुका िै। वे तनरुपाधध जीव िैं जो पपवत्रता एवं ंअसीम चेतना का जीवन व्यतीत करते िैं तथा त्जन्िें अनन्त ज्ञान अनन्त दर्नश, अनन्त वीय शएवं ं अनन्त सुख प्राप्त िैं। सोपाधध जीवों का, जो जीवन के चक्र में घूम रिे िैं, कूरूर पराश्रयी प्रकृतत पीछा करती िै। अज्ञान के कारण जीव अपनेको प्रकृतत के समान समझ लेता िै। यि स्पष्ट िै कक जीवन मुततामममा के रूप में र्ुद्ध प्रमाता (ज्ञाता) की ओर तनदेर् करता िै, जो सरल एवं ंभ्रष्टता से दूरू िै। यि उपतनषदों में प्रततपाहदतआममा के अनुकूल िै जो तकशसम्मत, स्वयम्भू, अपररवतनर्ील, ज्ञाता, सब प्रकार के ज्ञानों से पूव श अवत्स्थत, अनुभव एवं ंइच्छा का स्वरूप िै। अर्ुधुच संसारी जीव एक ऐसा वग शिै त्जसका तनणयश जीवन द्वारा िोता िै। इस प्रकार का सत्न्दग्ध (द्वयथकश) प्रयोग िी जैनदर्नश के अध्याममर्ास्त्र में अनेक प्रकार की भ्रांततयों को उमपन्न करता िै। अत्न्तम मोक्ष अवस्था को छोक़र आममा बराबर प्रकृपत्त के साथ सम्बद्ध रखती िै और यि सम्बन्ध धम शके कारण िोता िै। समस्तड पररवतनर्ों के अन्दर जीवाममा एकसमान वतमशान रिती िै. तयोंकक यि र्रीर की उपज निीं ंिै। जैनी स्वीकार करते िैं कक न तो ककसी नये पदाथ शका सृजन िोता िै और न िी पुराने े

नानापवध पररत्स्थततयों अथवा ऐसे तत्त्वा को जो ममलकर मानुपषक जीवन का तनमाणश करते िैं, उमपन्न करता िै, अथात्

श ्

सामान्य एवं पवर्ेष गुणयुतत र्रीर को उमपन्न करता िै; गोत्र, अथात् श ्जो जातत, जन्मपरक वण शएवं ंएक व्यत्तत के सामात्जक पद का तनणयश करता िै, और अन्तराय, अथात्श ्जो आममा की आंतररक र्त्तत के माग शमें बाधा देता िै एवं इच्छा करतेिुए भी समकाय शकरने से रोकता िै।

कममशसद्धांत के साथ-साथ लेश्याओंका मसद्धांत िै। लेश्या छः िैं। आममा के द्वारा ग्रिीत कमसशमूि में एक अमयन्त उमकृष्ट प्रकार का वण शरिता िै त्जसे िमारी आंख निीं देख सकती। इनका नैततक आधार रिता िै। आममा की दर्ा पवर्ेष उसके अपने तनजी स्वरूप तथा उससे संयुंतत कम शके कारण िोती िै। प्रमयेक प्रकार के कम शकी अपनी पूवतशनधाररत मयादशाएं रिती िैं त्जनके अन्दर िी उसेफल देकर नष्ट िो जाना िै।

710 पंचात्स्तकायसमयसार, 3।

पदाथ शका पवनार् िोता ि ै, अपपतुकेवल तत्त्वों का एक नये रूप में सत्म्मश्रण िोता ि ै। जीव असंख्य ि ै ककन्तु समानरूप से तनमय ि ैं। उनका पवमर्ष्ट सारत्तमय चेतना ि ै जो नाष्ट तो कभी निीं ंिोती, यद्यपप बाह्य कारणों से धुंधली भले िी िो सकती ि ै। जीवों को साकार माना गया ककन्तु उनका आकार मभन्न-मभन्न अवस्थाओं में मभन्न-मभन्न िोता ि ै। समय-समय पर जैसै-जैसे र्रीरों के साथ उनका सम्बन्ध रिता ि ै उन्िीं िके आकारों के अनुसार उनके अन्दर भी संकोचन एवं ंप्रसारण िोता ि ै। जैतनयों की दृत्ष्ट में, जीवों के वगभेशद का प्रश्न बिुत मित्त्व रखता ि ै तयोंकक वे अहिंसा पर बल देते ि ैं, त्जसका तामपय यि ैकक जीवन का अपिरण निीं ंिोना चाहिए। इत्न्द्रयों की संख्या रखनेके आधार पर जीवों को पवभागों में बांटा गया ि ै। पांच इत्न्द्रय रखनेवाले जीव सबसे ऊंचेिोतेिैं, अथात्श ्त्जनके पास स्पर्,श स्वाद, गन्च, दर्नश और श्रवण के मलए पांच मभन्न-मभन्न इत्न्द्रयांिैं और सबसे मभन्न श्रेणी के जीव वे ि ैं त्जनके पास एक िी इत्न्द्रय ि ै अथाशत् ्वे केवल स्पर् शका अनुभव कर सकते िैं। इन दोनों श्रेणणयों के मध्य वे जीव ि ैं त्जनके पास क्रमर्: दो, तीन और चार इत्न्द्रयां ि ैं। उच्च श्रेणी के प्राणी अथात्श ्मनुष्य और देवता एक छिी इत्न्द्रय भी रखते ि ैं, त्जसे मन किते ि ैं, और इन्िें पववेकसम्पन्न किा जाता िै।'[711] आममा इत्न्द्रयों एवं र्रीर से सवथशा मभन्न एक चेतनस्वरूप सत्ता ि ै।712 जीवाममा अपनेगुणज्ञान से मभन्न निीं िैं और चूंकक ज्ञान के साधन मभन्न-मभन्न प्रकार के ि ैं इसमलए बुद्धधमान व्यत्ततयों ने इस पवद्यमान जगत् ्को भी नानापवध माना ि ै।713 जीवाममा को उसके अपनेज्ञान से पृथक् निीं ंकर सकते। अपवमुतत जीवाममाओं में ज्ञान एवं ंसुख भी संकुधचत अवस्थाओं में रिते ि ैं। केवल मनुष्य एवं जन्तुओंमें िी निीं ंककन्तु सौरमंडल के पदाथों से लेकर एक ओसकण तक में जीवाममा ि ै। मभन्न-मभन्न तत्त्वों में तात्त्वक जीवाममाओं का तनवास ि ै, यथा, पाधथवश जीवाममा, आग्नेय जीवाममा। ये तात्त्यक जीवाममाओं का तनवास ि ैं; यथा, पाधथवश जीवाममा, आग्नेय जीवाममा। ये तात्त्वक जीवाममाएं उमपन्न िोती ि ैं एवंमरती ि ैं और कफर उन्िीं ं अथवा उनसे मभन्न तात्त्वक र्रीरों में जन्म लेती ि ैं। ये िोस एवंसूक्ष्म िोती ि ैं। सूक्ष्म जीवाममाएं दृत्ष्टगोचर निीं ंिोतीं। वनस्पतत में एक इत्न्द्रय वाले िी जीव रिते िैं। प्रमयेक पौधा एक जीवाममा का भी र्रीर िो सकता ि ै या अनेक र्रीरधारी जीवों का भी तनवासस्थान िो सकता ि ै। यद्यपप अन्य भारतीय दार्तशनक भी वनस्पतत में जीव मानते ि ैं ककन्तु जैन पवचारकों ने इस कल्पना को एक अद्भुत रूप में पवकमसत ककया गया ि ै। ऐसे पौधे त्जनमें एक िी जीव ि ै, सदा िोस रूप वाले िोते िैं और ये संसार के ऐसे िी भागों में पाए जाते ि ैं जो वास योग्य ि ैं। परन्तु ऐसे पौधे त्जनमें से प्रमयेक में अनेक वानस्पततक जीवों की बस्ती ि ै, सूक्ष्म िो सकते िैं और इसीमलए अदृश्य ि ैं एवं संसार के समस्त भूभागों में बंटें िुए िो सकते िैं। इन सूक्ष्म पौधों को 'तनगोद' किते ि ैं। वे असंख्य जीवाममाओं से ममलकर बने िैं जो एक अमयन्त छोटे पुञ्ज के रूप में िोती ि ैं, और इनमें श्वास-प्रश्वास की कक्रया एवं आिारप्रात्प्त की कक्रया सत्म्ममलत रूप में िोती ि ै। असंख्य तनगोदों से ममलकर एक गोलाकार वृत्त बनता ि ै और संसार उनसे भरा िुआ ि ै। ये तनगोद उन जीवाममाजों द्वारा ररतत स्थानों को त्जन्िें तनवाणश प्राप्त िो जाता िै, नई जीवाममाओं को देते ि ैं। किा जाता ि ै कक एक अकेले तनगोद के अमयन्त छोटे-से भाग ने अनाहदकाल से

711 देखें पंचांत्स्तकायसमवतार , 118-126।

712 विी, 128।

713 विी. 49, और भी देणखए 58।

आज तक उन जीवाममाओं के स्थान में जो मोक्ष को प्राप्त ो गई, नई जीवाममाओं की पूतत शकी ैं। इसमलए म यि कभी आर्ा निीं ंकर सकते कक संसार ककसी समय भी जीपवत प्राणणयों से ररतत ो जाएगा।'[714] जैनकल्पना का एक पवमर्ष्ट स्वरूप ै कक जैनी अपनेमसद्धान्त के अनुसार, अंगरहित पदाथों में यथा धातुओंएवं पमथरों तक में आममा के अत्स्तमव को मानतेिैं।

आममा की त्स्थतत अपनेर्रीर की त्स्थतत के ऊपर तनभरश करती ै। अंगरहित र्रीर के अन्दर आममा की चेतना तनत्ष्क्रय रूप में रिती ै जबकक ऐत्न्द्रय र्रीर में चेतना की स्फूतत शस्पष्ट प्रतीत ोती ै। मनुष्य रूपी प्राणणयों के अन्दर चेतना कक्रयार्ील रिती ै। लोकोत्तत से तुलना कीत्जए : "सबका स्वभाव एक समान निीं िोता: मनुष्य का स्वभाव अपना ै, पर्ुओं का अपना, मछमलयों का एक दूसरा ै और पक्षक्षयों का एक अन्य ी प्रकार का।"

जीवाममा का लक्षण ै ज्ञान, और यद्यपप इसकी कोई आकृतत निीं िैतो भी यि कताश ै, एवं कमों के फलों का उपभोतता ै और र्रीर के समान आकार वाला ै।715 इसके अन्दर वास्तपवक पररवतनश ोते रितेिैं अन्यथा यि कारणरूप कताश न ोता।716 जीवाममा भावों अघवा पवचारों की उपादान कारण (कताश) ै जबकक कममकश प्रकृतत तनममत्त कारण ै।717 कुम्िार के मत्स्तष्क में पवचार ै और घड़ा उसके चैतन्य में ै और इस प्रकार असली घड़ा ममट्टीरूप सामग्री सेतनममतश ोता ै। कफर भी अपनी अनन्त आकृततयों अथवा रूपों में रिते े िुए भी जीवाममा अपनेस्वरूप अथवा व्यत्ततमव को त्स्थर रखती ै। जन्म एवं ंमृमृयुजीवाममा के केवल पयाय श भर ैं अथात्श ्जीवाममा के रूपान्तरमात्र ैं। मुतत आममा वि ै त्जसकी जीवाममा संसार में ै।718 जीवाममा के मलए पवकास की पववादास्पद प्रकक्रया के जाल में बराबर उलझे ेरिने की आवश्यकता निीं ंै। दूसरे र्ब्दों में यों किा जा सकता ै कक यि र्रीर से स्वतन्त्र भी अपनी सत्ता रख सकती ै। चेतना एक ऐसी यथाथसशत्ता ै जो प्रकृतत से स्वतन्त्र ै और ककन्िीिंअथों में भी उसकी उपज निीं ंै। यि तनमय एवं स्थायी ै त्जसका न आहद ै न अन्त ै। केवल संयुतत पदाथ शिी जुदा-जुदा ोकर नष्ट ोते ैं।

मिनेयिां ंसंक्षेप में पांच अजीव द्रव्यों एवं छटे जीव का वणनश ककया ै। इन छः में से मसवाय काल के अन्य सब अत्स्तकाय अथवा र्ूनूयस्थानीय सत्ताएं ैं, और र्ूनूयस्थानीय सम्बन्धों की सम्भावना रखती ैं। काल यथाथसशत्ता ै ककन्तु अर्ूनूयस्थानीय ै। इस प्रकार यि एक द्रव्य ै अथात् श ्ऐसा पदाथ शत्जसकी स्वतन्त्र सत्ता ै ककन्तुअत्स्तकाय निीं ै और एक पवस्तृत् पररमाण का ै। अनेक द्रव्य एक ी स्थानों में और एक-दूसरे के अन्दर प्रपवष्ट ोकर अपनेअतनवाय शस्वरूप को बबना खोए िुए गतत कर सकतेिैं। जैतनयों के छि द्रव्य वैर्ेपेषक मसद्धान्त के नौ तत्त्वों, अथात्श ्पृथूवी, वायु, प्रकार्, जल, आकार्, काल, हदर्ा, मन एवं ंआममा आहद से

714 देखेंलोकप्रकार्, 6/31औरआगे।

715 सवदशर्नशसंग्रि, 2।

716 पंचात्स्तकायसमयसार, 65।

717 विी, 64।

718 अत्स्त-वतमशान ै; काय-देर् को घेरे िुए।

 मभन्न िैं। जैनी लोग उतत नौ में से प्रथम चार तत्त्वों को प्रकृपत्त के िी अन्तगतश मान लेते िैं।

ये प्रकृतत के
सामान्य गुण िैं और मभन्न-मभन्न इत्न्द्रयों के अनुकूल िैं। आकार-पररवतनशीयता एवं पवमभन्न कणों का एकीकरण कर लेनेकी क्षमता के कारण प्रकृतत को इकाई माना गया िै। वैरे्पेषक आकार् को ब्दं का कारण मानतेिैं जबकक जैन लोग ब्दं की उमपपत्त प्रकृतत के अवयवों के अन्तगतश िुए कम्पनों से मानतेिैं।719

समस्त पवश्व का पवभाजन जीव एवं अजीव इन्िींदो वगों में िो सकता िै। छः द्रव्यों में से जीव एव पुद्गल मुख्य िैं। रे्षे सब या तो उनके व्यापारों के मूल स्रोत िैं अथवा उनकी प्रततकक्रयाओं के पररणास्यरूप िैं। जीव की प्रकृतत के अन्दर उलझन के अततररतत संसार और कुछ निीं। जीव और पुद्गल सकक्रय द्रव्य िैं अथवा तनममत्त कारण िैं जो एक स्थान से दूसूरे स्थान तक गतत करते िैं। धम शएवं अधम शगततयों को तनयत्न्त्रत करते िैं ककन्तु ुपररवतनश के न तो प्रमयक्ष कारण िैं और न िी उसकी परोक्ष अवस्थाएं िी िैं। और इसीमलए इन्िें सिक्रय-तनत्ष्क्रय द्रव्य किा जाता िै। जीव एवं ंअजीव के मध्य संयोजक की कम शिै। जीव एवं ंअजीव के साथ कमों की उमपपत्त, उनका फल देना एवं नष्ट िोना जैनमत के तत्त्व अथवा मसद्धान्त िैं।720 जीव एवं अजीव प्रधान तत्त्व िैं जो प्रायः संयुतत रितेिैं। जीव का अजीव से तनतान्त स्वतंत्र िो जाने का नाम िी मोक्ष िै। सब प्रकार के पुरुषाथ श का यिी लक्ष्य िै। और यि आदर् शकेवल कम शको रोकने अथवा मयाग देनेसे प्राप्त िो सकता िै। संवर वि िै जो रोक देता िै। इसके द्वारा िम उन द्वारों को रोक देते िैं त्जनके मागों से कम शआममा के अन्दर प्रवेर् पाता िै। तनजरशा वि िै जो पूवकृशत पापों को जमूल से नष्ट कर देती िै। इन दोनों की आवश्यकता आस्रव, अथात्श ्अन्दर की ओर प्रवाि, एवं ंबन्ध के कारण िोती िै। पवजातीय द्रव्य का आममा में प्रवेर् करने ेका नाम आस्रव िै। बन्ध वि िै जो आममा को र्रीर के साथ जकड़कर रखता िै। यि बन्ध ममथ्या पवश्वास अथवा ममथ्या दर्नश, अपवरतत या मयाग का अभाव, प्रमाद अथवा आलस्य, कषाय या मनोवेगों एवं ंमन, र्रीर और वाणी के योग के कारण िोता िै।721' ममथ्यामव से तामपय िै एक वस्तु को जैसी वि निीं वैसी समझ लेना।722 जिां ंअन्तःस्राव एवं बन्ध दुषुकमों का पररणाम िोतेिैं विांसदाचार से उनमें रुकावट और उनका मयाग िो सकता िै। बराबर िमें भाव (मानमसक) एवं द्रव्य (भौततक) में भेद हदखाई देता िै। पवचार कम शका तनणयश करते िैं।723

कममकश प्रकृतत की उपत्स्थतत के कारण िी आममा र्रीर धारण करती िै। यिी कममकश प्रकृतत िै जो जीवाममा के स्वाभापवक गुणों अथात्श ्ज्ञान एवं अन्तर्दत्शष्ट को बबगाड़ती िै। जब तक अत्न्तम स्वातंत्र्य अथात् श ् मोक्ष प्राप्त निीं ंिोता, जीवाममा प्रकृतत से पृथक् निीं ंिोती। इस प्रकार से जीवाममा में दूषण आता िै। प्रकृतत का सूक्ष्म अंर्, जो कम शमें पररवतततश िोने ेको उद्यत िोता िै, जीवाममा में प्रवेर् करता िै। जैसे प्रमयेक पवमर्ष्ट कम श ककसी-न-ककसी अच्छे, बुरे अथवा तनरपेक्ष व्यापार से उमपन्न िोता िै, ऐसे िी यि भी अपनेआवतनश में ककन्िीं

---

719 पंचात्स्तकायसमयसार, 7।

720 सात तत्त्व िैं : जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, तनजरशा और मोक्ष (तत्त्वाथसूशत्र 4)। कभी-कभी पाप और पुण्य भी उनके साथ जोड़ हदए जाते िैं और इस प्रकार िमारे सामने 9 पदाथ शिो जाते िैं। (पंचात्स्तकायसमयसार, 116; सवदशर्नशसंग्रि, 28।

721 उमास्वामी के तत्त्वाथसूशत्र 7/1।

722 असती सद्बुद्धध। अद्वैतैतवाद के आवरण व पवक्षेप जैतनयों के इस मसद्धान्त के साथ समता रखते िैं।

723 देणखए सवदशर्नशसंग्रि, 29 और आगे।

दुःखद एवं सुखद पररणामों को उमपन्न करता ि। जब कोई पवरे्ष कम शअपना प्रभाव उमपन्न करता ि तब जीवाममा उससे छूट जाती ि, और यहद यि कमों के मयाग की प्रकक्रया बबना बाधा के िो जाती ि तो प्रकृतत का समस्त दोष या कलंक नष्ट िो जाता ि। ककन्तु दुभाग्शयवर् ये मयाग एवं बंधन साथ-साथ चलते रितें और जीवाममा संसार चक्र के अन्दर भ्रमण करती रिती ि। मृमृयुके समय जीवाममा अपनेकम-शर्रीर के साथ कुछ िी क्षण में अपने नये जन्मस्थान पर पिुंच जाती ि और विांनया र्रीर धारण कर लेती ि एवं नये र्रीर के आकार के अनुसार अपनी आवश्यकतानुसार पवस्तार अथवा संकोच कर लेती ि। ऐलौककक जीवों के अपनेजन्मों के

अनुसार चार पवभाग िैं, अथाशत् ्(1) वे जो नरक में जन्म लेते िैं, (2) वे जो प्राणी जगत् ्में जन्म लेते िैं, (3) वे ेजो मनुष्य समाज में जन्म लेते िैं और (4) वे जो देवलोक में जन्म लेते िैं।'[724]

9. नीततर्ास्त्र

यहद मोक्ष प्राप्त करना ि तो तनम्नश्रेणी की प्रकृतत का उच्चतर आममा के द्वारा दमन ककया जाना आवश्यक ि। जब जीवाममा उस बोझ से मुतत िोती ि जो इसे नीचे की ओर दबाए िुए ि तो वि पवश्व के ऊपर मर्खर तक उि जाती ि जिां ंमुततामममाओंका तनवास ि। अन्तराममा में तनतान्त पररवतनश िोने ेसे िी मुत्तत का मागग खोलता ि। नीतत मनुष्य के स्वभाव में सुधार करने ेएवं ंनये कम शके तनमाणश (सदाचार) के पूरे उपकरण की आवश्यकता ि। तनवाणश का माग शबत्ररमनों अथात्श ्भगवान 'त्जन' में आस्था रखने, उनके मसद्धान्त का ज्ञान प्राप्त करने ेऔर तनदोष आचरण में से िोकर जाता ि। "तत्त्वों में या यथाथ शसत्ता में पवश्वास रखना िी यथाथ शपवश्वास ि। संर्य एवं भ्रात्न्त से रहित यथाथ शस्वरूप का जो ज्ञान ि विी यथाथ शज्ञान ि। बाह्य जगत् ्के पदाथों के प्रतत राग एवं ंद्वेष के भाव से रहित जो तटस्थता का भाव ि विी यथाथ शआचरण ि।"[725] ये तीनों एक साथ ममलकर एक माग शबनातें और तीनों पर एक साथ िी आचरण करना चाहिए। ज्ञानी एवं श्रद्धासम्पन्न व्यत्तत का पांच प्रकार का आचरण िी सदाचार या धम शि; अथाशत् ्(1) अहिंसा, त्जसका तामपय शकेवल हिंसा के मयागमात्र का भाव िी निीं ंअपपतु समस्त सृत्ष्ट के प्रतत सच्ची दयालुता का भाव रखना ि, (2) उदारता एवं ंसमयभाषण, (3) सदाचरण, जैसे आस्तेय या चोरी न करने ेका भाव, (4) वाणी, पवचार एवं ं कम शकी पपवत्रता और (5) समस्त सांसाररक स्वाथों का मयाग। ये सब धमामशमा पुरुषों के लक्षण िैं। अत्न्तम तनयम की व्याख्या को कभी-कभी पराकाष्ठा तक पिुंचा हदया जाता ि और यि पवधान ककया जाता ि कक धमामशमा पुरुषों को बबलकुल नग्न रिना चाहिए। वस्तुतः इसका तामपय शकेवल इतना िी ि कक त्जस सीमा तक मि भेदभावों के प्रतत सचेत रितें और लज्जजा का भाव भी िमारे अन्दर रिता ि तब तक िम मुत्तत से दूरू रिते ि। जैतनयों का नीततर्ास्त्र पवश्वास एवं ंकम शदोनों पर िी बल देता ि। साधारण संसारी पुरुषों एवं ंतपत्स्वयों के मलए मभन्न-मभन्न तनयमों का पवधान ि।726 ऐसे सब कम शजो मनुष्य को मानमसक र्ात्न्त देते िैं, पुण्यकम शिैं। पुण्य-अजनश के नौ प्रकार िैं, जैसे, भूखे को भोजन देना, प्यासे को जल पपलाना, गरीब को वस्त्र देना, साधुओंको

---

724 पंचात्स्तकायसमयसार , 16।

725 पंचात्स्तकायसमयसार, 115; और भी देणखए तत्त्वाथसूशत्र 1: 1।

726 तत्त्वाथसूशतूर, 7 : 20 और आगे।

आश्रय देना आहद-आहद। हिंसा अथात्श ्ककसी को दु्ख पिुंचाना बिुत बा़ पाप िै। अन्य पापों में असमयाचरण, बेईमानी, अपपवत्रता, लोभ आहद की गणना िै। क्रोध, अमभमान, छल, लालच या तृषूणा िमें संसार से जकत़े िैं, और इनके पवपरीत धैय,श नम्रता, तनश्छलता, एवं ंसन्तोष धाममकश पे्ररेरणाओं को बढ़ावा देते िैं। अन्य पाप जैसे घृणा़, कलि, ममथ्या तनन्दा, ककसी के पवरुद्ध प्रचार करना, दूसूरों को. अपर्ब्द किना, आममसंयम का अभाव, मतकारी, और ममथ्या पवश्वास इमयाहद भी वत्जतश बताए गए िैं। पाप ईश्वर के प्रतत अपराध निीं ंबत्ल्क केवल मनुष्य-समाज के प्रतत अपराध िै।

उत्तम उपासक वि िै जो मनुष्य, परु्ु–पक्षी,
सबसे एक समान पे्रेम करता िै।
सवोत्तम उपासक वि िै जो छोटे-ब़ े
समस्त पदाथों से एक समान पे्रेम करता िै।

- कॉलररज

जैतनयों का नीततर्ास्त्र या आचारपवधान बौद्धों के नीततर्ास्त्र की अपेक्षा किीं ंअधधक किोर िै। जैन नीततर्ास्त्र के अनुसार, धैय शया धृतृ सबसे ऊंचा धम शिै एवं सुख पाप का कारण िै।'[727] मनुष्य को दु्ख एवं ंसुख दोनों के प्रतत उदासीन रिने ेका प्रयमन करना चाहिए। यथाथ शमुत्तत सब प्रकार के बाह्य पदाथों से मुतत रिने ेमें िी िै। "ऐसा जीव जो बाह्य पदाथों के प्रतत इच्छा के द्वारा सुख एवंदु्ख अनुभव करता िै, अपने-आपके ऊपर तनयन्त्रण खो बैिता िै और भटक जाता िै तथा बाह्य पदाथों के पीछे दौत़ा रिता िै। उसका तनणयश दूसूरे के अधीन रिता िै।"[728] "वि जीव जो अन्यों के प्रतत सम्बन्धों एवं पवजातीय पवचारों से, अपनेप्रमयक्ष ज्ञान और अनुभव के आभ्यान्तर स्वभाव के द्वारा मुतत िोकर अपनेतनमय स्वरूप को पिचान सकता िै, किा गया िै कक उसी के आचार को आममतनणयश कि सकतेिैं।"[729] "िे मनुष्य ! तूस्वयंअपना ममत्र िै; तू तयों अपनेसे मभन्न ककसी अन्य ममत्र की अमभलाषा रखता िै ?[730] िमें तनतान्त भाग्यवाद पर भरोसा निीं ंकरना चाहिए तयोंकक यद्यपप कम शसब कुछ का तनणायशक िै, कफर भी िमारा वतमशान जीवन, जो िमारे अपनेसामथ्य शके अधीन िै, भूतकाल के कमफशलों में पररवतनश कर सकता िै। पवरे्षे पुरुषाथ शके द्वारा पूव शकमों के प्रभाव से िम बच भी सकतेिैं। और इसमें ईश्वर का कोई िस्तक्षेप भी निीं ंिै। संयमी वीर पुरुष मनमौजी ईश्वर की अत्स्थर कृपा के कारण सौभाग्यर्ाली निीं ंिैं वरन् ्उस पवश्व की व्यवस्था के कारण िैं त्जसके वे अंग िैं। समाधध का पवधान इसमलए ककया गया िै कक इसके द्वारा िमें अपनेव्रतों को पूण शकरनेके मलए बल प्राप्त िोता िै।'[731] अनुर्ासन के किोर स्वरूप का अनुमान एक गृिस्थ के जीवन के मलए पवहित ग्यारि आश्रमों और जीवाममा के चौदि

---

727 आचारांगसूतूर,'सैके्रेडबुतसआफदईस्ट ', 22, पृषूि 48; और भी देणखए पृषूि 76-77।

728 पंचात्स्तकायसमयसार, 163।

729 विी, 165।

730 'सैके्रेड बुतस आफ द ईस्ट', 22, पृषूि 33।

731 तत्त्वाथसूशतूर, 7 : 4-10।

पवकास-पवन्दुओं से ककया जा सकता िै। तपस्या के इस भयावि ओदशर्'श का पालन भारत में अनेक मिान भततों ने ककया त्जन्िोंने अपनेर्रीर तक को मयाग हदया।

जैनमत का पवमर्ष्ट स्वरूप िै अहिंसा, अथात् श ्उस सबके प्रतत पूज्जयवृद्धध एवं उन सबके भोग का मयाग त्जसमें जीव िै। उतत तनयम का अमयन्त कट्टरता के साथ पालन करनेके कारण जैतनयों में कुछेक ऐसी पवधधयां प्रचमलत िो गई त्जनका अन्य मतावलम्बी पवद्वान उपिास करनेलगे। किीं ंककसी जीव की िमया न िो जाय इस पवचार से कुछेक जैनी चलने से पूव शमाग शमें झाड़ू देते िैं, मुख पर परदा डालकर चलतिैं त्जससे कक कोई जीपवत जन्तुश्वास के साथ नाक में चला जाए, पानी को छानकर पीतिैं और रात्रि का भी मयाग करते िैं। यि समय िै कक र्ात्ब्दक अथों में अहिंसा का पालन निीं ंिो सकता। मिाभारत में किा िै: "यि संसार ऐसे जन्तुओं से भरा िै जो आंखों सेनिीं ंदेखे जा सकते, बत्ल्क तकश द्वारा िी अनुमान से जाने ंजाते िैं। जब िम अपनी पलकों को[732] [illegible] अन्य जीवन का प्राण िै।"[733] यहद इन साधारण तथ्यों को भुला हदया जाए तो जीवन लगभग असम्भव िी िो जाए। एक कट्टर जैनी के व्यविार में एक प्रकार का पवकृत भय कक किीं ंककसी भी रूप में अकस्मात् ्जीवहिंसा न िो जाए, सदा व्याप्त रिता िै।

बौद्धमत जिां एक ओर आममिमया का तनषेध करता िै, जैनमत का किना कक इससे "जीवन में वृद्धध िोती िै।" यहद तपस्या कहिन प्रतीत िो, यहद िम अपनेमनोवेगों को न रोक सकें और न तपस्या को सिन कर सकें तो ऐसी अवस्था में आममिमया का पवधान िै। कभी-कभी यि तकशसंगत माना गया िै कक बारि वष शतक तपस्या की तैयारी के बाद भी मनुष्य अपनी आममिमया कर सकता िै तयोंकक उस अवस्था में तनवाणश तनत्श्चत िै। उस युग की अन्य दार्तशनक पद्धततयों के अनुसार, जैनदर्नश ने भी त्स्त्रयों को प्रलोभन के पदाथों में पररगणणत ककया िै।734 भारतीय पवचारधारा की अन्य पद्धततयों के िी समान जैनमत भी पवश्वास करता िै कक अन्य मतावलम्बी भी केवल जैनमत के तनयमों का पालन करनेसे लक्ष्य को प्राप्त कर सकतिैं। रमनर्ेखर अपने'सम्बोधनसत्तरी' नामक ग्रन्थ की प्रारत्म्भक पंत्ततयों में किता िै: "भले िी कोई श्वेताम्बर िो या हदगम्बर, बौद्ध िो या अन्य ककसी भी मत का अनुयायी, जो कोई भी जीवाममा के असली स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लेता िै अथात्श ्प्राणणमात्र को अपनी आममा के समान समझता िै, वि मोक्ष को प्राप्त करता िै।

जैन जाततप्रथा के पवरुद्ध निीं ंिैं, जो उनके अनुसार मनुष्य के आचरण से सम्बन्ध रखती िै। "मनुष्य अपनेकमों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा र्ूद्र बन सकता िै।... जो सब प्रकार के कमों से मुतत िै उसी को िम ब्राह्मण किते िैं।735 "जैन और बौद्ध दोनों िी 'ब्राह्मण' र्ब्द को एक सम्माननीय पद समझतिैं त्जसका

---

732 र्ात्न्तपव,श 15,26।

733 1:13, 461 "जीवो जीवस्य जीवनम् ्।"

734 'सैक्रेड बुतस आफ द ईस्ट', 22: 48।

735 विी, 45: 140।

प्रयोग ऐसे व्यत्ततयों के मलए भी िो सकता िै जो जन्म से ब्राह्मण निीं ंिैं।"[736] जन्मगत जातत का ममथ्यामभमान और उसके कारण अन्य जाततयों से पृथक् रिने ेके पवचार को जैनी लोग दूपूषत ठिराते िैं। 'सूत्रकृताङ्ग' जन्मपरक अमभमान की तनन्दा करता िै और उन आठ प्रकार के अमभमानों में इसकी गणना करता िै त्जनके कारण मनुष्य पाप करता िै।"[737]

जैन संघ या समाज के चार पवभाग िैं त्जनमें मभक्षुऔर मभक्षुणणयां, तथा अन्य साधारण धमबशन्धु एवं ं धमभशगतनयांसत्म्ममलत िैं। बौद्धसंघ में सांसाररक सदस्य धाममकश पुरोहितों से मभन्न थे और दोनों एक िी समुदाय के सदस्य निीं ंिोतेथे। बौद्धों की अपेक्षा संख्या में बिुत न्यून िोने ेपर भी और धम-शप्रचार के प्रतत कोई पवर्ेष उमसाि न िोने ेपर भी जैनमत भारत में जीपवत िै जबकक बौद्धमत गायब िो गया। श्रीमती स्टीवेन्सन इस ऐततिामसक तथ्य की व्याख्या इस प्रकार करती िैं: "जैनमत का स्वरूप कुछ ऐसा था कक त्जसके कारण यहि आवश्यकता पड़े ेपर अपनेआवश्यक अंगों के ररये आपपत्त से अपनी रक्षा कर सकनेकी क्षमता रखता था। बौद्धमत के समान इसनेकभी अपनेको उस समय के प्रचमलत मतों से एकदम पृथकं निीं ंककया। इसनेसदा ब्राह्मणों को अपनेपाररवाररक पुरोहितों के स्थान में तनयुतत ककया जो इनके जन्म के समय भी सब संस्कारों के अध्यक्ष िोते थे,े और प्रायः वे िी मृमृयु एवंपववाि आहद के समय और मत्न्दरों में पूजन आहद के मलए भी धमाध्शयक्ष िोतेथे। इसके अततररतत अपनेप्रमुख चररतनायकों में जैतनयों ने हिन्दू ूदेवताओं, यथा राम एवं ंकृष्ण आहद के मलए भी कुछ स्थान सुरक्षक्षत रख मलए थे। मिावीर की संगिन- सम्बन्धी प्रततभा के कारण भी जैनमत एक उधचत' स्थान में खड़ा रिा तयोंकक जैनमत ने सवसशाधारण को भी संघ के आन्तररक भाग के रूप में स्वीकृत ककया, जबकक बुद्धमत में उनका कोई भाग न था और न उसकी व्यवस्था में उनके मलए कोई स्थान' था। इसमलए जब सारे देर् में अमयाचार के तूफान आये तव जैनमत नेसरलता के साथ हिंन्दू ूधम शके अन्दर र्रण प्राप्त कर ली और हिन्दू ूधम शने अपनेपवर्ाल हृदय से सिष शउसका स्वागत ककया, तथा पवजेताओं को जैनमत एवं उस पवर्ाल हिन्दूधूम शमें कोई मभन्नता प्रतीत न िो सकी।"[738]

कम शके भौततक दृत्ष्टकोण के कारण िी जैनी बौद्धों के पवपरीत बाह्य कम शको उसके आन्तररक उद्देश्य की अपेक्षा अधधक मित्त्व देते िैं। बौद्ध एवं ंजैनमत दोनों िी जीवन एवं ंव्यत्ततमव के मयाग के पवषय में एक मत िैं। दोनों की िी दृत्ष्ट में जीवन एक प्रकार का संकट िै त्जससे िर प्रकार से छुटकारा पाना आवश्यक िै। इन दोनों मतों के अनुसार, िमें अपने- आपको उन सब बन्धनों से मुतत करना िै जो िमें प्रकृतत के साथ जकड़कर दुःखों का कारण बनते िैं। ये दोनों िी तनधनशता एवं पपवत्र जीवन, र्ात्न्त एवं धैय शके साथ दुःख सिन को गौरवमय समझतेिैं। िॉपककंस पररिासपूवकश जैनपद्धतत का इन र्ब्दों में व्यंग्यधचत्र प्रस्तुत करता िै; "जैन सम्प्रदाय वि िै त्जसमें इन मुख्य-मुख्य बातों पर बल हदया गया िै, 'मनुष्य को परमेश्वर की सत्ता का तनषेध

---

736 विी, 22, 30।

737 कफर भी जैनी अपने धमाधशधकाररयों का चुनाव अन्यों की अपेक्षा पवमर्ष्ट पररवारों में से िी करते िैं। वे अपने समाज में जातत या वण शको व्यविार में मानते िैं।

738 'द िाटश आफ जैतनज़्म', पृष्ठ 18-19।

करना चाहिए, मनुष्य की पूजा करनी चाहिए एवं नुकसान पिुंचानेवाले कीों का भी पालन-पोषण करना चाहिए।"[739] जैनमत एवं ंबौद्धमत के नैततक पक्षों में जो अद्भुत समानताएं पाई जाती िैं उनका कारण यि िै कक दोनों ने िी इस पवषय में अपनेपवचार ब्राह्मणों द्वारा रधचत ग्रन्थों से उधार मलए िैं। "ब्राह्मण तपस्वी एक आदर् शके रूप में उनके आगे था त्जससे दोनों ने तपस्वी के जीवन की बिुत-सी मित्त्वपूण शकक्रयाएं एवं ंसंस्थाएं उधार के रूप में ग्रिण कीं।"[740]

10. ईश्वरवाद के सम्बन्ध में जैनैदर्नश का मत

असंख्य जीवों एवं ंपदाथों की परस्पर प्रततकक्रया के मसद्धान्त को स्वीकार कर जैनदर्नश इस पवश्व के पवकास को सम्भव बना देता िै। इसकी सम्मतत में जगत् ्के सृजन अथवा संिार के मलए भी ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करने ेकी कोई आवश्यकता निीं। इसके मत से "पवद्यमान पदाथों का नार् निीं ंिो सकता और न िी असत् ्से सृतृष्ट का तनमाणश सम्भव िै। जन्म अथवा पवनार् वस्तुओं के अपनेगुणों एवं ंप्रकारों के कारण िोता िै।"[741] पदाथ शिी अपनी पारस्पररक कक्रया एवं ंप्रततकक्रया से नये गुणसमिू को उमपन्न करते िैं। असत् ्से अथवा घटनाओंकी श्रृंखला द्वारा संसार की सृतृष्ट िो सकती िै- जैन इस मसद्धान्त का िैं। प्रकृतत के तनयमों का क्रमबद्ध उपज निीं ंिो सकता। ईश्वरवादी के समान पवश्व के एक स्रष्टा की धारणा बनानेका कोई आवश्यकता निीं। िमें यि समझ में निीं ंआ सकता कक ककस प्रकार एक अतनमातशा ईश्वर अचानक और तुरन्तर, एक स्रष्टा बन सकता िै। इस प्रकार की धारणा के आधार पर, ककस प्रकार की सामग्री से संसार की रचना की गयी-इस प्रश्न का उत्तर देना कहिन िोगा। संसार को बनानेसे पूव शवि ककसी-न-ककसी रूप में पवद्यमान था या निीं ं? यहद किा जाये कक यि सब ईश्वर की अनालोच्य इच्छा का ऊपर तनभरश करता रिता िै तो िमें समस्त पवज्ञान एवं दर्नश को ताक में रख देना पड़ेगा। यहद पदाथों को ईश्वर की इच्छा के िी अनुकूल काय शकरना िै तो पदाथों के पवमर्ष्ट गुणसम्पन्न िोनेका तया कारण िै ? पवमभन्न पदाथों का पवमर्ष्ट धम शसम्पन्न िोना भी आवश्यक निीं, यहद वे परस्पर-पररवततशतश निीं ंिो सकते। यहद ईश्वर की इच्छा से िी सब कुछ िोता िै तो जल जलाने का और अत्ग्न पिडक पिुंचाने का काम भी कर सकतेथे। यथाथ शमें मभन्न-मभन्न पदाथों के अपनेपवमर्ष्ट व्यापार िैं जो उनके अपने-अपने स्वभाव के अनुकूल िैं और यहद उनके वे ेव्यापार पवनष्ट िो जाएं तो उन पदाथों का भी पवनार् िो जाएगा। यहद तकश ककया जाए कक प्रमयेक पदाथ शका एक तनमातशा िोना िी चाहिए तो उस तनमातशा के मलए भी एक अन्य तनमातशा की आवश्यकता िोगी और इस प्रकार िम तनरन्तर पीछे चलते चलेंगे और इस परम्परा का किीं ं भी अन्त न िोगा। इस चक्र में से बच तनकलने ेका एक िी माग शिै कक िम एक स्वयम्भूस्रष्टा की कल्पना कर लें जो अन्य सब पदाथों का स्रष्टा िै। जैन पवचारक प्रश्न पूछता िै कक ककसी एक प्राणण पवर्ेष के मलए यि सम्भव िो सकता िै कक उसे स्वयम्भू ूएवं ंतनमय मान मलया जाए तो तयों निींअनेक पदाथों एवंप्राणणयों को िी स्वयम्भू

739 'दररमलजन्स आफ इत्ण्डया',पृष्ि 297।

740 'सैक्रेड बुतस आफ द ईस्ट', 22, पृष्ि 24।

741 पंचात्स्तकायसमयसार, 15।

एवं आधार रूप में स्वीकार कर मलया जाए। इस प्रकार जैनी अनेक पदाथों की कल्पना की स्थापना करता ि◌ै। वि किता ि◌ै कक वे सब पदाथ शअपनेको व्यतत कर सकें इसी प्रयोजन से सृतृष्ट के रूप में आ जाते ि◌ैं। जीवाममाओं से पवमर्ष्ट समस्त पवश्व मानमसक एवं ◌ंभौततक अवयवों समेत बराबर अनाहदकाल से पवद्यमान रिता आया ि◌ै जो कक बबना ककसी तनमयस्थायी देवता के ि◌स्तक्षेप और प्रकृतत की र्त्तयों द्वारा ि◌ी अनेक आवतनशों में से गुज़रि रिा ि◌ै। संसार में त्स्थत पवमभन्नताएं काल, स्वभाव, तनयतत, कम शएवं उद्यम इन पांच सिकारी दर्ााओं ◌ंके कारण ि◌ैं। बीज के अन्दर र्त्तत अन्ततनहशित ि◌ोने ◌ेपर भी इससे पूव शकक वि वृक्ूष के रूप में उहदत ि◌ो, उसे काल अथवा मौसम की, प्राकृततक वातावरण और भूमम मे बोए जानेके कम शके रूप में उधचत सियता की आवश्यकता ि◌ोती ि◌ै। इससे ककस प्रकार का वृक्ूष उमपन्न ि◌ोगा इसका तनणयश उसके स्वरूप द्वारा ि◌ोता ि◌ै।

यद्यपप संसार से मभन्न कोई ईश्वर नामक व्यत्तत निीं ◌ंि◌ै तो भी संसार के कुछेक तत्त्व जब उधचत रूप से पवकमसत ि◌ोते ि◌ैं तब वे देवता का रूप धारण कर लेते ि◌ैं। ये अिशत् ◌्किलातीं, अथाात्् ◌्सवोपरर प्रभु, ◌ु सवज्ञश आममा त्जन्िोंने समस्त दोषों पर पवजय पा ली ि◌ै। यद्यपप सृजृनाममक दैवीय र्त्तत कोई निीं ◌ंि◌ै तो भी प्रमयेक जीवाममा जब अपनी उच्चतम पूणतशा को प्राप्त ि◌ोती ि◌ै तब परमाममा अथवा सवोपरर आममा बन जाती ि◌ै।'[742] उन र्त्तयों की जो मनुष्य की आममा में तछपी पी़ रिती ि◌ै, सबसे ऊंची, सबसे अधधक श्ेरेष्ि और सबसे अधधक पूण शअमभव्यत्तत ि◌ी ईश्वर ि◌ै। सभी पूणू शमनुष्य दैवीय र्त्तसम्पन्न ि◌ैं और उनमें छोटे-ब़ ◌ेका ◌ेकोई भेद निीं,◌ं अथाात्् ◌्सब एक समान ि◌ैं।

यथाथ शमें जैनदर्नश में भत्तत का कोई स्थान निीं ◌ंि◌ै। इसके अनुसार, सब प्रकार के लगाव को समाप्त िो जाना चाहिए। वैयत्ततक पे्रेम को तपस्या की ज्जवाला में भस्मसात् ◌्कर देना चाहिए। ककन्तुमनुष्य दुबुलश ि◌ै और इसमलए मिान तीथकशरों के प्रतत भत्तत के मलए पववर् ि◌ो जाता ि◌ै, भले ि◌ी ककतना ि◌ी किोर तकश उसे रोकने का प्रयमन तयों न करे। सांसाररक जीवों की मांग एक सम्प्रदाय व मत के मलए रिती ि◌ी ि◌ै जो उनकी नैततक एवं धाममकश अवस्थाओं के अनुकूल ि◌ो। जब जैनधम शका प्रचार अपनी जन्मभूमम से दूरू-दूरू ि◌ोने ◌ेलगा तो साधारण मनुष्य की आवश्यकता उसकी धाममकश मित्त्वाकांक्षाओं को पूण शकरने के मलए प्रबल ि◌ो गई, अन्यथा अन्य देवताओं की उपासना करने ◌ेवाले लोग जैनमत में दीक्षक्षत निीं ◌ंककए जा सकतेथे। जब कृष्ण की उपासना करने वाले जैनमत में प्रपवष्ट ि◌ुए तो वाईसवें तीथकशर अररष्टनेमम और कृष्ण में एक सम्बन्ध स्थापपत ि◌ो गया। बिुत-से हिन्दू ◌ूदेवता भी आ घुसे, यिां ◌ंतक कक आज जैतनयों में भी वैष्णव और अवैष्णव दो मभन्न पवभाग पाए जाते ि◌ैं।

पुण्यों का संचय ि◌ो जानेपर मनुष्य स्वग शमें देवता के जीवन का एक न एक रूप धारण कर सकता ि◌ै। जब वि पुण्य अपना फल पूणरूशप में दे चुकता ि◌ै तब वि जीवन समाप्त ि◌ो जाता ि◌ै। देवता केवल र्रीरधारी आममाएं ि◌ैं जो मनुष्यों एवं ◌ंपर्ुओंके समान ि◌ैं। उनमें मभन्नता केवल श्ेरेणी की ि◌ी, जाततगत निीं ◌ंि◌ै। पूवजशन्म के सुकृत कमों के पुरस्कारस्वरूप ि◌ी दैवीय र्रीर एवं ◌ंसंघटना में र्त्तत एवं पूणतशा की अधधकता पाई जाती ि◌ै। मुततामममा देवताओं से ऊपर ि◌ैं। वे ◌ेकफर से जन्म निीं ◌ंलेते। उनका इस संसार के साथ और अधधक सम्बन्ध निीं

---

742 देवदूतोंकेसम्बन्धमेंप्रोफेसरऐलेतजैण्डर के मसद्धान्त से तुलना कीत्जए। 'स्पेस, टाइम ऐण्ड डीइटी', खण्ड 2, पृष्ि 346, 365 ।

रिता और न वे इसे प्रभापवत ि◌ी कर सकतिें वे न तो लक्ष्य तक पिंुचानेवाली सीधी चढ़ाई की ओर ि◌ी देखतिें और न ऐसे ◌े व्यत्ततयों को ि◌ी सिारा दे सकते ि◌ैं जो उच्चमाग शमें संघष शकर रि◌े ि◌ैं। पवख्यात जैनों को लक्ष्य करके, जो पूणतशा को पिंुच चुके ि◌ैं और इस पररवतनशर्ील एवं ◌ंदुःखमय जगत् ◌् से दूरू पिंुच गए ि◌ैं, जो प्राथनशाएं की जाती िैं उनका उत्तर वे निीं ◌ंदे सकते, और न ि◌ी प्राथनशाएं उन तक पिंुच पाती ि◌ैं, तयोंकक संसार में तया ि◌ो रिा ि◌ै इसके प्रतत वे तनतान्त उदासीन ि◌ैं और सब प्रकार के मानमसक आवेगों से मुतत ि◌ैं। ककन्तुऐसे देवता भी ि◌ैं जो सच्चे अनुर्ासन की तनगरानी रखते ि◌ैं और उस पर तनयंत्रण रखतिें।'[743] वे प्राथनशाओं को सुनुते ि◌ैं और कल्याण भी करते ि◌ैं। जिां ◌ंतक जैनों का सम्बन्ध ि◌ै, उनकी उपासना की सबसे उत्तम पवधध यि ि◌ै कक उनके आदेर्ों का पालन ककया जाए। अपनी आममा के यथाथ शस्वरूप को पिचाननेसे मोक्ष का माग शप्रर्स्त ि◌ोता ि◌ै, तीथकांरों की भत्तत से निीं।744 समाधध द्वारा अथवा 'त्जन' की आराधना से आममा अवश्य पपवत्र ि◌ोती ि◌ै। चूंकक अमयन्त सरल जैनधम शमें ररयायत अथवा क्षमा को कोई स्थान प्राप्त निीं ◌ंथा इसमलए जनसाधारण के मन को यि आकृष्ट न कर सकी, और इसीमलए अस्थायी समझौते ि◌ी ककए गए।

11. तनवाशण

तनवाणश अथवा मुत्तत आममा की रू्न्यावस्था निीं ◌ंि◌ै वरन् ◌् उस परम आनन्द में इसका प्रवेर् ि◌ै, त्जसका अन्त निीं ि◌ै। यि र्रीर से पवयोग तो ि◌ै ककन्तु सत्ता से रहित ि◌ोना निींिै। ि◌म पिले कि चुके ि◌ैं कक मुतताया सब मनोवेगों से रहित ि◌ोने ◌े के कारण जाती ि◌ै, उसका अपनेअन्य साधथयों के जीवन में कोई स्वाथ शनिीं ◌ंरिता और आचरणर्ून्य सालयता करने ◌े की रुधच रिती ि◌ै। "मुततामममा न आकार में लम्बी और न छोटी, न काली और न नीती, न कव़ी और न तीखी, न ि◌ण्डी और न गरम ि◌ोती ि◌ै। र्ीररहित, पुनजन्शमनास भी रहित, वि देखती िै, जानती ि◌ै ककन्तु उसका सार्दश्य कुछ निीं ◌ंि◌ै, त्जसके द्वारा ि◌म मुततामममा के स्वरूप को जान सके; उसका सारतत्त्वच भी आकृतत-पविीन ि◌ै; अतनयत्न्त्रत की कोई दर्ा ि◌ो सकती ि◌ै।"[745] मसद्ध अवस्था संसार की श्रृंखला का न तो कारण ि◌ै और न काय शिी। यि तनतान्त अतनयत्न्त्रत ि◌ै।746 मुततामममा के ऊपर कारण-कायभशाव का कोई वर् निीं ◌ंि◌ै। "ऐप्ता जानो कक एक साधारण र्दत्ष्टकोण से पूण शश्रद्धा, ज्ञान एवं आचरण मुत्तत के कारण ि◌ैं, ककन्तु ◌ुवस्तुतः मनुष्य की अपनी आममा इन तीनों से मुतत ि◌ै। (मुत्तत का कारण ि◌ै)।"[747] मुततामममा के पवषय में मि तनत्श्चत रूप से कुछ निींकि सकतेऔर यथाथ शमें न ि◌ी ि◌म यि जानते ि◌ैं कक मुततामममा अनेक ि◌ैं। पूणतशा की दर्ा को ि◌म इस भाववाचक रूप से वणनश करते ि◌ुए कि सकते ि◌ैं कक यि कम शएवं कामना से मुतत तनतान्त एवं परम तनश्र्ेष्टता की दर्ा ि◌ै, एक ऐसा पवश्राम ि◌ै त्जसमें न कोई पररवतनश ि◌ै और न त्जसका अन्त ि◌ी ि◌ै-एक अनुरागिीन और वणनशातीत र्ात्न्त की दर्ा। भूतकाल के कृत कम शकी र्त्तत नष्ट ि◌ो चुकी ि◌ोती ि◌ै और आममा

---

743 र्ासनाधधष्ठायिदेवताः ।

744 पंचात्स्तकायसमयसार, 176 और आगे।

745 'सेक्रेड बुतस आफ द ईस्ट', 22/52।

746 पंचात्स्तकायसमयसार, 36।

747 सवदशर्नशसंग्रि, 39,40 भी देणखए।

यद्यपप अभी पवद्यमान िै, कफर से रीरधारण का कोई अवसर उसके मलए निीीं। यद्यपप अमयन्त दृढ़तापूवकश तो निीं ंतो भी मुततामममा के सम्बन्ध में तनश्चाममक वणनश इस प्रकार से ककया गया िै कक इसमें असीम चेतना, पवर्ुद्ध धचन्तन, परम स्वातंत्र्य एवं त्स्थर आनन्द आहद गुण पवद्यमान रिते िैं।748 यि प्रमयक्ष ज्ञान प्राप्त करने ेकी सामथ्य शरखती िै, तयोंकक दर्नश और ज्ञान आममा के व्यापार िैं, इत्न्द्रयों के निीं। मुततामममा के जीवन का आरम्भ िै, अन्त निीं ंिै; जबकक एक बद्ध आममा के जीवन का आरम्भ निीं ंककन्तु अन्त िै। ये मुततामममाएं अपने ेएक समान पद के कारण परस्पर एक-दूसूरे से संयुतत िोने ेका आनन्द अनुभव करती िैं। उनके आमम रूपी द्रव्य में एक पवर्ेष र्त्त रिती िै, त्जसके द्वारा ऐसी आममाओं का सिअत्स्तमव सम्भव िो सकता िै। मुततामममा के साम्य का तनणयश प्रविारूप मधुर सम्बन्ध के द्वारा जो पपछले भौततक जीवन की आकृतत को त्स्थर रखता िै-एवं ंभूतकाल के ज्ञान द्वारा िोता िै। मोक्ष का यि आदर् शअमयन्त पूणरूशप में चौबीस तीथकांरों के जीवनों में अमभव्यतत िोता िै।

लोक अलोक के मध्य में त्स्थत िै त्जस प्रकार मनुष्य का ध् बीच में त्स्थत िोता िै, ऊपर में मसद्धर्ील िै त्जसे ंमूधाशिोना चाहिए। यि मसद्धर्ील सवज्ञश आममाओं का स्थान िै और इसे पवश्व का धाममकश चक्षु भी किा जा सकता िै। इस प्रकार मोक्ष को तनमय एवंऊपर की ओर गतत के रूप में प्रततपाहदत ककया जा सकता िै।749 मोक्ष प्राप्त िोने ेपर आममा750 अपनेपूव शकम शके बल से एवं तत्त्वों के साथ सम्बन्धों के जो इसे नीचेकी ओर बांधकर रखते थे– क्षीण िो जानेके कारण'[751] तथा बन्धन के टूट जानेसे752 और ऊपर की हदर्ा में जाने की इसकी अपनी नैसधगकश प्रवृपृत्त के कारण ऊध्वगशामी िोती िै।'[753]

12. उपसंिार

जैनमत िमारे सामने इस पवश्व के पदाथों का आनुभपवक वगीकरण प्रस्तुत करता िै। और इसीमलए जीवाममाओं की भी अनेकता को तकश से प्रततपाहदत करता िै। जैसाकक िम देख चुके िैं, तकश के पवषय में यि ज्ञान की सापेक्षता को अपना आधार मानता िै, तयोंकक यि प्रकट तथ्य िै कक संसार में पदाथों के पारस्पररक सम्बन्ध स्थायी निीीं और न स्वतन्त्र िी िैं, बत्ल्क व्याख्या के पररणाम िैं। इसके अततररतत यि कल्पना कक यथाथतशा एवं उसके अथ शको पृथक् निींककया जा सकता, अध्याममपवद्या में अनेकमववाद की निींअपपतु एकेश्वरवाद की

748 पंचात्स्तकायसमयसार, 28।

749 तनमयोध्वगशमनं मुत्ततः ।

750 पूवप्रशयोगात् ्।

751 असंगमवात् ्।

752 वन्धच्छेदात् ्।

753 तथागततपररणामात्।् देणखए, उमास्वातत के तत्त्वाथसूशत्र, 10: 8। मसद्धाममा पुरुष पांचं प्रकार के िोते िैं : (1) तीथकशर, अथवा मुततामममा, त्जन्िोंनेदेिधारी अवस्था में जैनमत का उपदेर् ककया (2) अिुंत, अथात् श ्वे पूणामशमा पुरुष जो कम-शर्ीर को मयागकर तनवाणश प्राप्त्त की प्रतीक्षा कर रिे िैं; (3) आचाय,श अथवा तपत्स्वयों के समुदायों के प्रधान; (4) उपाध्याय, अथवा अध्यापनकाय शकरनेवाले सन्त लोग, और (5) साधुवग,श त्जसमें अन्य सब आ जाते िैं। (सवदशर्नशसंग्रि, 50-54) ।

स्थापना करती ि ै। वस्तुतः जैनमत में त्जस अनेकसत्तामम क पवश्व की कल्पना की गई ि ै वि केवल सापेक्ष र्दत्ष्टकोण से ि ी ि ै, ककन्तु ुपरम सत्त्य र्निं ंि ै।

जैनमत में पवश्व को अनेक जीवों से पूण शमाना गया ि ै, जैसे कक लीब्नी़ ने भी यिी माना कक संसार प्राणी-वग शके मूलजीवों से भरपूर ि ै। "प्रकृतत के छोटे से छोटे कण में भी अनेक जीपवत प्राणी पवद्यमान ि ैं त्जन्िें जीवाममा किा जाता ि ै। भौततक प्रकृतत के प्रमयेक भाग की ि म पौधों से पूण शएक बगीचे की भांतत कल्पना कर सकतेिैं अथवा उसे मछमलयों से भरे ि ुए जलार्य के समान मान सकते ि ैं; ककन्तु प्रमयेक पौधे की प्रमयेक र्ाखा, ककसी भी जन्तुवग शका प्रमयेक सदस्य, प्रमयेक बूंद भी अपनेतरल भागों में इसी प्रकार का एक बगीचा अथवा जलार्य ि ै। और यद्यपप भूमम एवं ंवायु जो बगीचे के पौधों के अन्तगतश ि ैं अथवा जलार्य का वि जल जो मछमलयों के बीच ि ै, स्वयंभले ि ी क्रमर्: न पौधा ि ो और न मछली ि ो, उनके अन्दर भी पौधे एवं ंमछमलयां ं उपत्स्थत ि ैं-आमतौर से इतने अधधक सूक्ष्मरूप में कक ि में वे ेइत्न्द्रयगोचर र्निं ंि ो सकते। इस प्रकार इस पवश्व में कुछ भी ऊसर र्निं ंि ै, कुछ भी उमपादन में अक्षम अथवा एकदम मृत र्निं ंि ै। अव्यवस्था भी र्निं ंि ै, और ि ै भी तो केवल प्रतीत ि ोती ि ै, वास्तपवक र्निं ंि ै; ि ीक वैसे ि ी जैसे कक एक जलार्य में दूरू से ि में गतत में अस्तव्यस्तता हदखाई प़ सकती ि ै और हदखाई प़ सकते ि ैं जलार्य में मछमलयों के झुण्ड त्जसमें मछमलयों में भेद र्निंककया जा सकता।" ि म देखेंगे कक जैनमत की आध्याममर्ास्त्र-सम्बन्धी योजना लीब्नीज के जीवाणुवाद एवंबगसशांके रचनामम क पवकासवाद से ममलती-जुलती ि ै।754

सब जीपवत पदाथ शजीव ि ैं, जीव वि ि ै जो यात्न्त्रक न ि ो। यि बगसशांके जीवनतत्त्व के अनुकूल ि ै। यि अनुभवकताशभी ि ै और लीव्नी़ के स्वयंभू व्यत्तत के साथ अनुकूलता रखता ि ै। यि एक ऐसी वस्तु ि ै त्जसके मलए यात्न्त्रक व्याख्या अपयाप्शत ि ै। चंकक जनमत की उपज ि ै जबकक अधध दर्नशर्ास्त्र अपनी इसमलए ि म देखतेिैं कक इसे जीव एवं ंआममा, अजीव एवं प्रकृतत के मध्य यथाचाईया था। इसइसका पवर्द ज्ञान र्निं ंथा। जीव एक पवद्यमान वस्तु ुका पवर्ेष प्रकार ि ै। प्रकृतत के बन्धन से मुतत जीव को आममा किा गया ि ै। आममा प्राकृततक मल से रहित पवर्ुद्ध चेतक का नाम ि ै। यि सब प्रकार के देर् एवं बाह्यता से पृथक् ि ै। यि र्ुद्ुध और अपने आध्यात्ममक पद पर ऊंची उिी ि ुई, आकृततपविीन चेतनामात्र ि ै। पुद्गल चेतनारहित पवर्ुद्ुध भौततक प्रकृतत र्निं ंि ै। इसके ऊपर पिले से ि ी आममा की छाप ि ै। आममा की जीपवत सत्ता ि ै और प्रकृतत असत् ्का तनषेधामम क तत्त्व ि ै। प्रकृतत वगसशांके देर् या 'स्पेस' के साथ और सीली़ की प्रारत्म्भक प्रकृतत के साथ साम्य रखती ि ै। पुद्गल की केवल भौततकता प्रमयक्ष में आममा की पवरोधी ि ै। यि केवल भेदमात्र ि ै और इसीमलए जैन तकशर्ास्त्र की पररभाषा में अवधाथ शिै। जीव दोनों का संयोग ि ै। यि भौततक-आध्यात्ममक ि ै।'755 यि प्रकृतत के बोझ ते युतत और इसीमलए बन्धन में जकी़ ि ुई आममा ि ै। संसार के सब जीव इस तनषेधामम क

754 प्रारम्भ में जैनमत भले ि ी भौततक पवज्ञान की र्दत्ष्ट से एक असंस्कृत रूप में रिा ि ो, ककन्तुआगे चलकर जैन पवचारकों ने तनत्श्चत दार्शतनक मभपत्त पर इसको पवकमसत ककया, त्जसकी स्पष्ट व्याख्या की जा सकती ि ै और समथनश ककया जा सकता ि ै।

755 देणखए, 'आउटलाइंस आफ जैतनज्जम', पृष्ि 77।

 भौततक तत्त्व से सम्बद्ध िैं। जैनमत का पवश्वास िै कक ये तीनों-अथाशत् ्पवरुद्ुध आममा, पवरुद्ध प्रकृतत एवं
जीव जो दोनों का संयोग िै-सत् ्पदाथ शिैं, यद्यपप पिले दो िमें दृतष्टगोचर निीं ्िोते। पुद्गलस्कन्ध में भी, त्जसे मि देखते िैं, चेतना का एक अंर् िै और उसी अंर् में जीब िै त्जस अंर् में अन्य पदाथ शिैं-जिां ्तक इसके सारतत्त्व का सम्बन्ध िै। जैतनयों के जीव एवंअजीव आममा या चैतन्य एवं ्प्रकृतत या अचैतन्य के आनुभपवक पृथृतकरण निीं, अपपतु दोनों के मध्य कक्रया-प्रततकक्रया की उपज िैं। पुद्गल पर आममा की छाप िै और जीव के अन्दर भी पिले से प्रकृतत प्रपवष्ट िै। िम जीव और अजीव को सत् ्और असत् ्के साथ र्ब्द के अरुद्ुध प्रयोग के कारण एक समान मान लेते िैं। यथाथ शमें आममा एवं अनामम प्रारत्म्भक तत्त्व िैं, जो परस्पर पवरोधी तत्त्व िैं, जो एक-दूसूरे के अनुकूल निीं िो सकते। जीव में आमम का अंर् प्रधान िै और अजीव या ज़ में अनामम का अंर्। ये सम्पूण शपवश्व में दो पवमभन्न व्यवस्थाओं का प्रततततनधधमव करते िैं।

भौततक अनुभव के अनुसार, जीवों से संसार बना िुआ िै; और प्रमयेक जीव अपनेमें एक िोस इकाई िै, एक संयुतत पदाथ शि। यि अनेकों में एक िै अथवा एक में अनेक िै। दोनों के बीच का सम्बन्ध अनाहद िै। इस संसार से ये दोनों कभी पृथक् निीं ्िोते। सब जीवों का उद्देश्य, त्जसकी प्राप्त के मलए उन्िें अवश्य प्रयमन करना चाहिए, समस्त भौततक प्रकृतत का पररमयाग िै। त्जतनी भी कक्रया संसार में िै, सबके केन्द्र जीव िैं।

मिें बताया जाता िै कक इस पवश्व में आममा एवं प्रकृतत, प्रमाता और प्रमेय सवदशा साथ-साथ पाए जाते े िैं। सारे अनुभव के अन्दर िमें दोनों में परस्पर द्वन्द्ध ममलता िै, त्जसमें एक दूसूरे के ऊपर आधधपमय जमाने का प्रयमन करता िै। यि जानना आवश्यक िै कक जीब के अन्दर जो आध्यात्ममक अंर् िै उसके कारण उसकी प्रवृपृत्त ऊपर की ओर िोती िै, जबकक भौततक अंर् की प्रवृपृत्त नीचेकी ओर रिती िै। मनुष्य के र्रीर में तनवास करने ेवाला जीव प्रकृतत के द्वारा इतना अधधक बोझल िो जाता िै कक उसे पाधथवश जीवन में से गुज़रना पड़ता िै।

जीवों की कई श्रेणणयां िैं त्जनकी व्यवस्था आमम-अंर् के अनामम-अंर् के ऊपर न्यून एवं ्अधधक आधधपमय के अनुसार िोती िै। हदव्य जीवन की उच्चतम अवस्थाओं में जो देवताओं ्का स्तर िै और त्जसे पपवत्राममाओं अथवा मसद्धाममाओं से मभन्न करके समझना चाहिए त्जनके अन्दर प्रकृतत का अंर् निीं ्रि गया िैं, िमें आममा के अनामम के ऊपर आधधपमय का सबसे अधधक एवंअनामम का न्यून से न्यून अंर् ममलता िै। तनम्नतम अवस्थाओं में िमें पदाथों की पवरुद्ुध बाह्यता से अत्न्वत ऐसी वस्तुएं ममलती िैं जिां ्अनामम- अंर् अपनेऊंचे स्तर पर िै। जब िम उनसे उिकर पौधों एवं जन्तुओंमें पिुंचते िैं तो िमें आममा का अंर् अधध और अनामम-अंर् कम ममलता िै। उनके अन्दर एकता िै एवं ्सरलता िै त्जससे उनका व्यत्ततमव बनता िै। अपने वतमशान जीवन में वे ेअपनेभूतकाल को भी संजोए िैं। जब िम देवताओं के स्तर को प्राप्त करते िैं उस समय अनामम न्यूनतम अंर् में िोता िै। जीवन का सुख पवश्व के ईश्वर-सम्बन्धी मधुर सम्बन्ध तब िो जाता िै। धातुओंएवं देवताओं के मध्य में त्स्थत वस्तुओंमें आमम एवं ्अनामम के अन्दर परस्पर संघष शिोता िै। पवरुद्ध आममा एवं पवरुद्ुध प्रकृतत में िमें पृथक् रूप में धाममकश एवं अधाममकश अंर् ममलता िै; भेद इतना िी िै कक वि पवरुद्ुध रूप में अनुभव गम्य निीं ्िैं।

तया िम कि सकतें कक जीवों की अनेकता उतत कल्पना के आधार पर अध्याममपवद्या का परमसमय ैं? िमें बताया गया ि कक जीवों के अन्दर दो पवमभन्न प्रवृपृत्तयां ंकाय शकरती िैं। जो दृश्यमान जगत् ्िमारे आगे ि उसमें आमम एवंअनामम, सत् ्और असत् ्का द्वैत पवद्यमान िै। सत् ्यथाथ शै अथाशत् ्आममा अपनी सवज्ञशता के साथ िै; असत् ्वि तत्त्व ि जो आममा की सवज्ञशता के ऊपर आवरण बनकर जीवन को मयाहशदत कर देता िै।

अपनेअन्तःस्थ स्वरूप में अथात्श ्अपनेसवज्ञशता के उमत्तुिए रूप में आममा समस्त पवश्व को छा लेती िै, ककन्तु ुजीव का एक बबन्दु ुके रूप में िास िो जाता िै, त्जसमें पवश्व प्रततबबत्म्बत िोता ि जैसेकक एक केन्द्र में। व्यत्ततमव का मूल असत् ्िै। यि एक प्रकार का तनषेधाममक तत्त्व ि जो जीव को स्वाथों का एक पृथक् केन्द्र बनाता िै, जो सवज्ञश आममा की एक पररममत अमभव्यत्तत ि एवं ंमनोवैज्ञातनक व्यवस्था में एक सत्ता िै। र्रीर अपूणतशा की एक श्रेणी ि और वि आममा को एक आधारबबन्दु ुया दृत्ष्टकोण देता िै। पवपवध प्रकार के जीव जैसे धातुएं, पौधे, जन्तु, मनुष्य एवं ंदेवता मभन्न-मभन्न िैं, तयोंकक उनके र्रीर मभन्न-मभन्न िैं। पररणाम यि तनकलता ि कक यद्यपप उनके अन्दर तनवास करने ेवाली आममा विी ि लेककन प्रकृततरूप तनषेधाममक तत्त्व के कारण अनुभव वि नानाव्यत्ततमव िोता िै। "जीव का पृथृतमव एवं व्यत्ततमव व्यविार अथवा अनुभव के दृत्ष्टकोण से िी िै। यथाथ शमें समस्त जीवों का सारतत्त्व चेतना िै।"[756] आममाओं का अनेकमव एक सापेक्ष पवचार ि जो यथाथसशत्ता उस समय प्रस्तुत करती ि जब िम संवेदना, भावना एवं ंबद्धता पर बल देते िैं, मानो यथाथसशत्ता के विी यथाथ शक्षण िों। जैतनयों के ज्ञानपवषयक मसद्धान्त में िमें एक आनुभपवक केन्द्र से ऊपर उिकर एक ताककशक पवषयी या प्रमाता तक पिुंचने ेको पववर् िोना पड़ता िै। पवषयी एक इस प्रकार का स्थायी तथ्य ि कक समस्त संसार इसी के मलए बना िै।757 जब अपूण शपृथृतकरण के द्वारा धचन्तन के कारण विी पवषयी न्यून िोकर एक पररममत मन तक पिुंचता िै, जो वैररक यंत्र द्वारा तनयंबत्रत ि और जो देर्-काल में बद्ध िै, तभी जीवों की स्वतंत्रता का भाये िमारे सम्मुख आता िै। दूसूरे ब्दों में, यहद िम र्ंकर की पवख्यात पररभाषा का प्रयोग करें िम िमारे सम्मुख जीयों की अनेकता तभी तक ि जब तक कक िम पवषयी को स्वयंपवषय या प्रमेय अथात्श ्एक आलोच्य पवषय मानतेरिें, अन्यथा निीं। यहद िम पवचारधारा के संकेतों का अनुसरण करें और पवषयी (आममा) को संवेदना एवं भावना के स्थान र्रीर-सम्बन्ध से छुड़ा सकें एवं ंपवषय-पदाथ शके साथ के सब प्रकार के सम्पकश से स्वतंत्र कर सकें, तो िम देखेंगे कक यथाथ शमें पवषयी केवल एक िी िै। जैनमत ने इस उन्नत अवस्था के तत्त्व को समझने ेका प्रयल बबल्कुल भी निीं ंककया और न इस आदर् शकी ओर िी दृत्ष्टपात ककया, और यि भी समय ि कक इस प्रकार का उच्च पवचार िमारे इस स्तर पर ि भी कहिन। मानवीय पवचार के मलए आदर् शएवंवास्तपवक के मध्य एक दीवार खड़ी िो गई िै। अपनी पररममत र्त्तत अथवा अल्पज्ञता के कारण िमें एकदेर्ी अथवा अंर्पररणामी को लेकर चलनेके मलए पववर् िोना पड़ता िै, त्जससे िम अपनेको

मुतत निींकर सकते।

---

756 सवदशर्नशसंग्रि, 3,7 और। 8

757 वॉसनतयेट सेतुलना कीत्जए "यि तनपववशाद रूप से स्वीकार ककया जाता ि कक ज्ञान की कक्रया में आममा सवव्शयापी िै। यि संसार में आती ि जो इसकी अपनी सत्ता सेमभन्न प्रकार का ि और यिां ंयि त्जस ककसी के सम्पकश में आती ि उसेअन्य आममाओं ंके साथ सामान्य रूप से ग्रिण कर लेती ि और इस प्रकार के ग्रिण में वि अपने-आपमें पूण शनिीं ंरिती और न तनकरणक्षम इकाई िी रि जाती िै।" ('धगफड शलेतचस'श, दूसूरी माला, अध्याय 2)।

जैनदर्नश ने परमसत्ता के एकमव पर भी पवचार ककया ि ै और उतत पवचार के पवरुद्ध वि इस प्रकार से तकश करता ि ै: 'यहद सब प्राणणयों में केवल एक ि ी सामान्य आममा ि ोती तो वे एक-दूसूरे को कैसे जान सकतेथे, और उनका अनुभव भी मभन्न-मभन्न प्रकार का निीं ं ि ो सकता था, और इस प्रकार ब्राह्मण, क्षबत्रय, वैश्य और रूदूर, कीट, पतंग और सरीसृपृ योतन के मभन्न-मभन्न प्राणी निीं ं ि ो सकतेथे। सब या तो मनुष्य ि ोतेअथवा देवता ि ोते। इसके अततररतत उन व्यत्ततयों में जो दूपूषत जीवन व्यतीत करते ि ैं एवंउनमें जो इस संसार में साधु आचरण करते ि ैं, कोई भेद भी न रिता।"[758] मनोवैज्ञातनक एवंसांसाररक अनुभव के स्तर पर जीवाममाओं के अनेकमव का तनषेध करने ेकी कोई आवश्यकता निीं, ं जिांकक कममों के फल का उपभोग करने ेका ि ी प्रश्न उिता ि ै। जिां ंपर मन यांबत्रक अवस्थाओं में बद्ध ि ै विांजीवों की अनेकता का एक अथ शअवश्य ि ै, ककन्तु मिारा प्रश्न यि ि ै कक तया ि म इस अल्पत्तत वाले जीव को परम समय मान सकते ि ैं ? यहद यि पररममत त्तत आममा की एक अतनवाय शअवस्था ि ोती, ऐसी कक त्जसे मनुष्य कभी भी दूरू न कर सकता, तब तो जीवों की अनेकता यथाथ शिै, ककन्तु जैतनयों का पवश्वास ि ै कक पररममतता आनुषंधगक ि ै, स्थायी निीं ंि ै; इस अथ शमें कक यि आममा का सारतत्त्व निीं ंि ै और उस मुतत अवस्था में यि उन सब मयादशाओं से सवथशा मुतत ि ो जाती ि ै। ऐसी अवस्था में यहद ि म आममा की आनुषधगक अनेकता को ि ी समय की अंततम अमभव्यत्तत भी समझ लें तो यि पवचार तकशसम्मत न ि ोगा। अध्याममपवद्या सम्बन्धी पववाद का यि एक सवसशम्मत एवं ंसामान्य तनयम ि ै कक जो प्रारम्भ में निीं ंथा और अंत में भी न रिेगा, उसकी वतमशान प्रकक्रया में भी यथाथसशत्ता स्वीकार निीं ंकी जा सकती।759 अनेकता वास्तपवक एवं पवद्यमान तो मानी जा सकती ि ै ककन्तु उसकी यथाथतशा को निीं ंमाना जा सकता।

आममा की अनेकता के मसद्धान्त का समथनश ि मारे मलए तब तक सम्भव निीं ंि ो सकता जब तक कक इस पवषय का प्रततपादन न ि ो कक परमाथदशर्ा में भी मभन्नता का कोई आधार ि ो सकता ि ै। मुततावस्था की संगतत पृथक् व्यत्ततमव के साथ कभी निीं ंबैि सकती, तयोंकक आममा के पृथक् अत्स्तमव के माग शमें बाह्य पदाथ शएवं र्ारीररक बंधन सदा ि ी वाधक रिेंगे तो मुत्तत ककसकी ि ोगी? आममगा के पृथृतमव में ि ी भ्रांतत एवं ंपाप सम्भव ि ै, और मुत्तत इसी पृथृकमव के पवनार् का नाम ि ै।

अध्याममर्ास्त्र की दृत्ष्ट में, अद्वैत एवं द्वैत के प्रश्न का तनणयश इस संसार में दोनों प्रकार की प्रवृपृत्त्तयों के परस्पर सम्बन्ध के ऊपर तनभरश करता ि ै। जैन मूलस्रोत के प्रश्न पर जाते ि ी निीं। ि मारे पास भी उनके परमाथसशत्ता सम्बन्धी पवचार तक पिुंचने ेका कोई साधन निीं ंि ै। और सवपशवश्वाततयीं त्तत के जो मनमौजी एकमात्र सत्ताममक र्ासक ि ो-मसद्धान्त का जैनी लोग खण्डन करते ि ैं। यहद ि म यि किें कक जैनमत ईश्वर, प्रकृतत एवं आममा तीनों को उसी के स्वरूप मानता ि ै तो ि मारे कथन में कुछ भी ममथ्या न ि ोगा। ईश्वर कोई मभन्न सत्ता निीं, आममा की अपनी अखण्डता के अततररतत ईश्वर कोई अन्य सत्ता निीं ंि ै। यहद इससे मभन्न ककसी प्रकार की कल्पना ईश्वर के पवषय में की जाएगी तो उससे ईश्वर र्ांत अथवा पररममत िो रिेगा। मनुष्य का मन अपने को अन्य सवसे पृथक् समझ लेता ि ै, इसीमलए वि पररममत स्वरूप ि ै; ककन्तु यहद ि म ऐसे मन की

---

758 सूत्रकृतांग, 2 : 7,48और 51;औरभी देणखए ,1 : 1,1 ।

759 "आदावन्तेच यन्नात्स्त वतमशानेऽपप तत्तथा। ,,

कल्पना करें जो सीमाओंमें बद्ध न िो, पर अपनेको स्वयं में पूणतशा के साथ प्रस्तुत कर सकें, तब सीमाएं भी, जो मानवी अनुभव का पवमर्ष्ट रूप िैं, ततरोहित िो जाएंगी। तनमयचेतना का अनुभव मनुष्य के सामथ्य शके अन्तगतश िै। अपनी र्त्तत के द्वारा िम समस्त सीममत आकृततयों से परे पिुंच सकतिैं। ज्ञान में धारणा के मूलतत्त्व के साथ एकता रखकर, जो सब मनों के साथ स्थापपत करती िै, िम मनोवैज्ञातनक जीवामगा से ऊपर उिते िैं, जो अन्य सबसे पृथृक् िै। देर् एवंकाल से तनयंबत्रत मन के ऊपर उिकर िम ऐसे मन में पिुंचते िैं त्जसके द्वारा देर् एवं ंकाल के संबंध उमपन्न िोतिैं। अनंत सत्ता सांत के अन्दर तनहित िै। यिी कारण िै कक सीममत आममा सदा िी अपनी सीममतता को भंग करने ेके मलए संघष शकरती रिती िै और पूणतशम स्वतन्त्रता अथात्श ्मोक्ष को प्राप्त करने ेका प्रयमन करती िै, और जब मुत्तत प्राप्त िो गई तो सब प्रकार की पवजय प्राप्त िो जाती िै। इस प्रकार की आममा के अततररतत जीवों की अन्य कोई व्यवस्था निीं ंिै।

आध्यात्ममक एवं ंभौततक प्रवृपृत्तयों के बीच, त्जनके संघष शका इस संसार में अनुभव िोता िै, परस्पर तया सम्वन्ध िै? तया वे ेभेद एक िी पूण शके अन्दर िैं? वे एक दूसूरे के प्रतत अच्छी तरि से अनुकूल प्रतीत िोतिैं, त्जससे पूणतशा के प्रतत प्रगतत में सियता प्राप्त िोती िै। यद्यपप वेएक-दूसूरे के परस्पर पवरोधी िैं, परन्तु वे उस एकता के पवरोधी प्रतीत निीं ंिोते, तयोंकक यि एकता पवरोधधयों का एक संश्लेपण िै। ऐसी घटनाओंपर बल देकर जैन मसद्धान्त को िित् ्एक पूण शसवव्शयापक की सत्ता की और आना िी िोगा जो मभन्न भी िैं और संयुतत भी िै। इस प्रकार के मत में न तो पवर्ुद्ुध आध्यात्ममक िी और न िी पवर्ुद्ुध भीततक कुछ रि जाता िै। इन दोनों का पृथृतकरण केवल तकशर्ास्त्र के िी मलए िै। यथाथसशत्ता केवल एक िी पूण शिी-पवर्ुद्ुध आममा एवं ंपवर्ुद्ुध प्रकृतत त्जसके पृथृतकरण मात्र िै। ने एक िी सवव्शयापक की आवश्यकताएं िैं जो एक-दूसूरे के पवरोधी ककन्तु एक िी पूणसशत्ता के पृथृक् न ककए जा सकनेवाले अवयव िैं। यि सवव्शयापक ब्रह्म िी पवश्व के जीवन में अपनेको अमभव्यतत कर रिा िै। परस्पर पवरोधधयों का संघष शभी यथाथसशत्ता की सब श्रेणियों में वतमशान िै यद्यपप परमाथसशत्ता के समत्ष्टरूप में उन सब संघषों का अन्त िो जाता िै। यहद जैन तकश के अनुसार, पवचार को िी परम पदाथ शमान मलया जाए और यथाथसशत्ता का भी मुख्य स्वरूप विीं माना जाए जो तकश से तनणीत िोता िै, तब पररणाम एक समत्ष्टरूप एकेश्वरवाद या अद्वैतवाद िी तनकलेगा। पवर्ुद्ुध आममा केवल एक भावाममक परमाथसशत्ता िै, त्जसे ककसी के पवरुद्ध संघष शनिीं ंकरना िै, जो कक्रयार्ून्य िै, आध्यात्ममक र्त्तत िै, एक गततपविीन प्राणी िै और केवल र्ून्यमात्र िी िै। तो भी असंगत रूप में जैनमत आममा की ऐसी अवस्था का प्रततपादन करता िै जो प्रकृतत से सवथशा पृथृक् िै त्जसकी गतत बरावर ऊपर की ओर िै एवं नीचेकी ओर आने ेकी उसमें गुंजाइर् निीं ंिै। कुमाररल भट्ट का कंिना िै कक मसद्धाममाओं की यथाथतशा को ताककशक िेतु के आधार पर प्रमाणणत निीं ंककया जा सकता। "िमें कोई भी सवज्ञश प्राणी इस संसार में हदखलाई निींदेता और न िी उसकी यथाथसशत्ता अनुमान द्वारा स्थापपत की जा सकती िै।"[760] जैनी लोग अपनी कल्पना के आधार के मलए आममा के तनजी स्वरूप के ऊपर तनभरश करते िैं, त्जसकी अमभव्यत्तत बाधाओं के दूरू िोतिी स्वयंिी जाती िैं। कुमाररल भी स्वीकार करता िै कक आममा के अन्दर एक स्वाभापवक योग्यता िै, त्जससे वि सब वस्तुओंको ग्रिण कर

760

सवदशर्नशसंग्रिपृष्ठ 41-42

सकती िै, और ऐसे साधन भी िैं त्जनके द्वारा आममा की यि योग्यता पवकमसत की जा सकती िै। यहद िम जैनदर्नश के इस पिलू पर बल दें और यि स्मरण रखें कक केवली व्यत्तत में अन्तर्दत्शष्ट द्वारा ज्ञान िोता िै जो पवचार से ऊंची श्रेणी का िै तो िम ऐसे एकेश्वरवाद (अद्वैत) में पिुंच जाते िैं जो परमाथरूशप और अपररममत िै, त्जसके कारण िम संघष शमें जुटे संसार को, जिां ंपर सब पदाथ शयथाथतशा एवं ंरूनूयता के मध्य में िी घूमते रिते िैं, अयथाथ शसमझ सकेंगे। संसार को िम उसी अवस्था में यथाथ शसमझ सकतिैं जबकक िम पवर्ुद्ध आममा के उच्चतम पक्ष की ओर से एकदम आंख बन्द कर लें। यहद िम इस तथ्य को समझ लें तो अनामम भी केवल आममा का दूसूरा अंर् िै, उसका कुछ प्रततबबम्ब िै, यद्यपप वि ठीक आममपक्ष के समान निीं ंिै और ऐसी वस्तु ु िै त्जसे अन्त में जाकर िमें अवश्य ममथ्या के रूप में जानना िै। ऐसी अवस्था में संसार को िम समझ सकेंगे कक

यि ुईनएकमप्रवीबलमस्रतनैमासश् ्निीं ंिै। इस प्रकार िमें र्ंकर द्वारा प्रततपाहदत प्रकार के वेदान्त की ओर आना िी िोगा। एक बात तो बबल्कुल स्पष्ट िै, आधे रास्तेमें िी ठिर जानेके कारण जैनमत एक अनेकांतवादी यथाथतशा का प्रततपादन कर सका िै।

उद्धृ ग्रन्थ

- सैक्रेड बुतस आफ द ईस्ट', खंड 22 और 45। '
- 'इन्साइतलोपीडडया आफ ररमलजन एण्ड ऐधथतस', खंड 7 में जैकोबी के 'जैतनज़्म ऐण्ड द जैन ऐटममक थ्योरी' सम्बन्धी लेख।
- उमास्वातत: तत्त्वाथसूशत्र ('सैक्रेड बुतस आफ द जैन्स')।
- नेमीचन्द्र : द्रव्संग्रि ('सेक्रेड बुतस आफ द जैन्स')।
- कुन्दकुन्दाचाय श: पंचात्स्तकायसमयसार ('सैक्रेड बुतस आफ व जैन्स')।
- जैनी : 'आउ 'आउटलाइंस आफ जैतनज्जम' ।
- ममसे् स्टीवेन्सन : 'द िाटश आफ जैतनज्जम'।
- बरोडडया : 'हिस्री ऐण्ड मलटरेचर आफ जैतनश्म' ।
- सवदशर्नशसंग्रि, अध्याय 3।

सातवां अध्याय

प्रारत्म्भक बौद्धमत का नैतैतक आदर्वशाद

प्रारत्म्भक बौद्धमत-बौद्ध पवचारधारा का पवकास-साहिमय-बुद्ध का जीवनवृतूत और व्यत्ततमव-तामकामलक पररत्स्थततयां युद्ध और उपतनषदें-दुःख-दुःख के कारण-पररवतनशर्ील जगत् ्जीवाममा नागसेन का

आममपवषयक मसद्धान्त- मनोपवज्ञान-प्रतीमयसमुमपाद, या आधश्रत उमपपत्त का मसद्धान्त नीततर्ास्त्र-कम शएवं पुनजन्शम-तनवाणश ईश्वर के सम्बन्ध में बुद्ध के पवचार-कम शके संकेत-कक्रयाममक धम-शज्ञानपवषयक मसद्धान्त बौद्धधम शऔर उपतनषदें- बौद्धधम शऔर सांख्यदर्नश- बौद्धधम शकी सफलता।

1. प्रारत्म्भक बौद्धमत

इसमें कोई सन्दिे निीं ंकक प्रारत्म्भक बौद्धदर्नश दर्नशर्ास्त्र के इततिास में अमयन्त मौमलक िोने ेके कारण अपना एक पवर्ेष स्थान रखता िै। अपनेमूलभूत पवचारों एवं साररूप में यि उन्नीसवीं र्ताब्दी के उन्नत वैज्ञातनक पवचारों के साथ अद्भुत रूप में ममलता-जुलता िै। जमनशी का आधुतनक तनरार्ावादपरक दर्नश, त्जसका प्रततपादन र्ोपनिावर एवं ंिाटशमान ने ककया िै, प्रारत्म्भक बौद्धदर्नश की पुनरावृपृत्त-मात्र िै। उतत मसद्धान्त के पवषय में कभी- कभी किा जाता िै कक यि 'बौद्धमत से भी कुछ अधधक असंस्कृत एवं प्राकृत' िै। जिां ंतक यथाथसशत्ता के गमयाममक पवचार का सम्बन्ध िै, बौद्धदर्नश ने बगसशां ंके रचनाममक पवकास से बिुत पूव शइस सम्बन्ध में एक सुन्दर रूप में भपवष्यवाणी कर दी थी। प्राचीन बौद्धधम शएक ऐसे दर्नश की रूपरेखा को प्रस्तुत करता िै जो वतमशानकाल की कक्रयाममक मांगों की पूतत शके मलए सवथशा अनुकूल िै, और धाममकश पवश्वास और भौततक पवज्ञान के मध्य में जो पवरोध प्रतीत िोता िै उसमें परस्पर समन्वय स्थापपत करने में पूणतशया सिायक िै। उतत पवषय को िम पवर्दरूप में देख सकेंगे, बर्ते कक िम प्राचीन बौद्धधम शके मसद्धान्तों पर ध्यान देने तक िी अपनेको तनयममत रख सकें और उसके परवती पवकास की उन पवमभन्न पौराणणक ममथ्या कल्पनाओं पर अधधक वल न दें जो आहदम उपदेर्ों और स्वयं उसके संस्थापक बुद्ध भगवान के आसपास एकत्र िो गई िैं।

2. बौद्ध पवचारधारा का पवकास

बौद्ध पवचारधारा में भारत में भी एक िार वष शसे कुछ अधधक समय तक तनरन्तर पवकास हदखाई देता िै। जैसाकक रीज डेपेवड्स का किना िै : "ज्जयों-ज्जयों र्ताब्दयांगु ज़रती गई, बौद्धधम शकी प्रायः प्रमयेक पुस्तक में स्वल्प मात्रा में पररवतनश िोता चला गया।" बुद्ध की मृमयु के पश्चात् ्दूसूरी र्ताब्दी में बौद्धधम शके मसद्धान्तों में कम से कम अिार परवतनश को स्पष्टरूप से ममलते िैं।'[761] पवचारों के राज्जय में जीवन का अथ शिै पररवतनश। सम्पूण शपवकास को िम इसी एक युग के अन्दर निीं ंडाल सकते। जिां ंएक ओर प्राचीन बौद्धधम शएवं उसके िीनयान और मिायान सम्प्रदाय इसी युग में आते िैं विांबौद्ध पवचारधारा के चार सम्प्रदाय िमें इसके भी परे ले जाते िैं। इस युग के पवषय में मलखते िुए िमारा पवचार िै कक बौद्ध सम्प्रदायों का उल्लेख करना भी उधचत िी िोगा तयोंकक इस युग के अन्त तक वेपयाप्शत मात्रा में पवकमसत िो गए थे।

---

761 रीजडेपेवड्स-'दसेतट्सआफवबुद्धधस्ट्स', जनलश आफ द रायल्स एमर्याहटक सोसाइटी ,1891 ।

3. साहिमय

प्रारत्म्भक बौद्धधम शका वृत्ूतान्त जानने के मलए िमें पपटकों पर तनभरश करना िोगा, त्जनका अथ शिोता िै नैततक तनयमों को पपटाररयां। इन पपटकों में प्रततपाहदत पवचार स्वयं बुद्ध द्वारा उपहदष्ट भले िी न िों तो भी उनके लगभग तनकटतम रूप में िैं जो आज िमें प्राप्य िैं। प्राचीन भारतीय बौद्ध इन्िींको बुद्ध भगवान के उपदेर् एवंआचरण के रूप में मानतिैं। त्जस काल में पपटक संग्ृीत करके लेखबद्ध ककए गए तब त्जन मसद्धान्तों को बुद्ध के उपदेर्ों के रूप में जनसाधारण में मान्यता प्राप्त थी उन सबका वृतृान्त िमें पपटकों में ममलता िै। बिुत सम्भव िै, ईसा से 241 वष शपूव शइन पपटकों का संग्रि िुआ और ये पूणू शरूप में आए। और इसी समय तीसरी पररषद् का आयोजन िुआ। आज जो सामग्री िमें उपलब्ध िै उसमें तन:सन्दिे ये सबसे अधधक प्राचीन एवंसबसे अधधक प्रामाणणक लेख िैं।

बौद्धधम शकी परवती परम्पराओं के अनुसार, गौतम की मृमृयुके थो़े समय पश्चात् ्िी, अथवा यों किना अधधक उपयुतत िोगा कक 'अतनमयता रूपी वायु के द्वारा जब वि ज्ञानदीप बुझा हदया गया' तब, बुद्ध के अनुयातययों के अन्दर मसद्धान्त के पवषय में कुछ पववाद उि़ख िुए। उन पवषयों का तनणयश करने के मलए मगध के समीप राजगृि में एक पररषद् बुलाई गई। जब सब मभतखुलोग एकत्र िो गए तो बुद्ध के मर्ष्यों में सबसे अधधक पवद्वान काश्यप से किा गया कक वि अमभधम्मपपटक में प्रततपाहदत अध्याममपवद्या-पवषयक पवचारों का पाि करे। इसी प्रकार जो बुद्ध के उस समय में वतमशान मर्ष्यों में सबसे पुराना मर्ष्य था उससे किा गया कक वि पवनयपपटक में ममलने वाले अनुर्ासन के तनयमों एवंउपतनयमों को पढ़कर सुनाए। और अन्त में बुद्ध के पप्रय मर्ष्य आनन्द से किा गया कक वि सुत्तपपटक को पढ़कर सुनाए, त्जसमें बुद्ध के द्वारा प्रचार के समय में वणणतश कितनयों एवं छोटे-छोटे दृष्टान्तों का संग्रि िै। एक दीघकशाल तक बुद्धध की मर्क्षा का प्रचार तनयमपूवकश मर्क्षकों एवं मर्ष्यों द्वारा िी क्रमागत रूप में िोता रिा और उस मर्क्षा को केवल ईस्वी सन् 80 के बाद िी लंका के राजा वत्तमामतन के र्ासनकाल में लेखबद्ध ककया गया। "पुराने समय में अमयन्त पवद्वान मभतखु तीनों पपटकों एवं उनके ऊपर की गई टीकाओं को भी मौणखक प्रचार द्वारा िी आगामी सन्तततत तक पिुंचातेथे, ककन्तु चूंकक उन्िोंनेअनुभव ककया कक जनता प्राचीन मर्क्षा से पीछे िटती जा रिी िै इसमलए मभतखु लोग एकत्र िुए और इस पवचार से कक समय मसद्धान्त त्स्थर रि सकें, उन्िोंने उन मसद्धान्तों को पुस्तक के रूप में मलख डाला।"[762] पाली की धाममकश व्यवस्था के तीन पवभाग िैं- (1) सुत्त अथवा कितनयां, (2) पवनय अथवा अनुर्ासन, (3) अमभधम्म अथवा मसद्धान्त। पिले सुत्तपपटक के पांच पवभाग िैं, त्जन्िें तनकाय किते िैं। इनमें से पिले चार में मुख्यरूप से युद्ध के सुत्त अथवा व्याख्यान िैं। ये वाताशअथवा संवाद के रूप में िैं। ये त्जन मसद्धान्तों को समझानेकी कोमर्र् करते िैं उनमें परस्पर कोई मतभेद निीं िै।763 संवादों की इस पपटारी अथवा

---

762 मिावर्, अध्याय 33।

763 पांच पवभाग तनम्नमलणखत िैं-

(क) दीघतनकाय लम्बेभाषणों का संग्रि िै त्जसमें चौंतीस सुप्त िैं त्जनमें से प्रमयेक बुद्ध धम शके मसद्धान्तों के ककसी न ककसी पववाद-पवषय का प्रततपादन करता िै। इनमें से पिला िै ब्रह्मजालसुतु्त, दूसरा वामञ्ञफलसुत्त (तपस्वी जीवन के

भारतीय दर्नश -1 287 सुत्तपपटक के पवषय में री डेपेवड्स का किना ि: "दार्तशनक अन्तर्दत्शष्ट की गिराई में एवं ·स्थान-स्थान पर

स्वीकृत सुकरात की प्रश्नाममक पवधध में, व्यापक सहदच्छा एवं उच्च भावना में, और उस काल के अमयधधक सुसंस्कृत पवचारों की साक्षी उपत्स्थत करने ेमें ये संवाद बराबर पिाक को प्लेटो के संवादों का स्मरण करातिें। यि तनत्श्चत ि कक ज्जयोंिी इस पपटक को भली प्रकार समझकर इसका अनुवाद ककया जाएगा, गौतम के संवादों का यि संग्रि िमारे दार्तशनक सम्प्रदायों एवं ंइततिास में प्लेटो के संवादों के समान स्तर पर िी रखा जा सकेगा।"

पवनयपपटक में धाममकश अनुर्ासन के पवषय में प्रततपादन और मभक्षु-जीवन की साधना के मलए तनयमों, एवं उपतनयमों का पवधान ि। इसके तीन मुख्य पवभाग िैं, त्जनमें से दो के कफर उपपवभाग िैं। (1) सुत्तपवभंग- इसके पवभाग िैं, (क) पारात्जक और (ख) पाधचपत्तय। (2) खण्डक-त्जसके पवभाग िैं : (क) मिावग्ण, (ख) चुल्लवग्ग। (3) पररवार। तीसरे अमभधम्मपपटक में[764] मनोवैज्ञातनक नीततर्ास्त्र का प्रततपादन ककया ि

पुरस्कार जन्मपरक जातत के पवषय में बुद्ध के तया पवचार थे के पवषय में)। अम्बट्सुित्त इसका प्रततपादन करता ि।

कूटदन्तसुत्त ब्राह्मण-धम शएवं बौद्धधम शके परस्पर सम्बन्ध के पवषय का प्रततपादन करता ि। तेपवज्जसुत्त ब्राह्मण संस्कृतत एवं बौद्ध आदर्ों में परस्पर पवरोध को प्रदमर्तश करता ि। मितनदानसुत्त में कारण-काय-शसम्बन्ध का प्रततपादन ि। मिसगालोवादसुत्त में बौद्धगृिस्थों के कत्तव्शय बतलाए गए िैं। मिापररतनब्बानसुत्त में बुद्ध के अत्न्तम हदनों का वृत्तान्त हदया गया ि।

(ख) मत्ज्झमतनकाय में साधारण लम्बाई के भाषणों का संग्रि ि। इसमें लगभग 152 उपदेर्, एवं संवाद िैं त्जनमें बौद्धधम श के सब पववाद-पवषय आ गये िैं।

(ग) संयुत्ततनकाय में संयुतत भाषणों का संग्रि ि। प्रमसद्ध धम्मचतकपवत्तनसुत्त भी इसे अन्तगतश ि, अथात्

श ्धमचशक्र को

गतत देने के सम्बन्ध में भाषण। इसे साधारणतः वाराणसी के उपदेर् के नाम hat pi पुकारा जाता ि और पवनयपपटक में भी यि पाया जाता ि।

(घ) अंगुत्तरतनकाय में 2,300 सुत्तों से कुछ अधधक िैं और 11 पवभागों में बंटे िैं। इनका क्रम ऐसा रखा गया ि कक पिले में उन चीजों का वणनश ि जो एक प्रकार की िैं, दूसरे में उन चीजों का वणनश ि जो दो प्रकार की िैं, इमयाहद। (ङ) खुद्दकतनकाय छोटे-छोटे टुकड़ों का संग्रि ि। इसमें 15 पवभाग 5 / (1) खुद्दकपाि,(2) धम्मपद, (3) उदान, (4) इततवृत्तक, (5) सुत्ततनपात, (6) पवमानवमयु, (7) पेतवमयु, (8) बेरगाचा, (9) थेरीगाया, (10) जातक, (11) तनदेस, (12) पहटसमभदामग्न, (13) अपदान, (14) बुद्धवंर्, (15) कररयापपटक। धेरगाथा और थेरीगाथा दोनों काव्य की दत्ष्ट से अमयन्त श्रेष्ि और मानवीय दत्ष्ट से सम्पन्न िैं। मोक्ष और आनन्द-सम्बन्धी उनके गीत संघ के उन सदस्यों द्वारा रधचत बताए जाते िैं िैं त्जन्िें बुद्ध के जीवनकाल में िी अिशत्ता, पूण शर्ात्न्त एवं अतनवचशनीय आनन्द की आस्था, प्राप्त िो गई थी। जातकों में जनश्रुतत पर आधाररत गौतम के पूवजशन्मों का इततिास हदया गया ि। यि लोकसाहिमय के पवद्याधथयशों के मलए अमयन्त मित्त्वपूण शि। घ ि। धम्मपद ('सैक्रेड बुतस आफ द ईस्ट', खंड 10) में बुद्ध के मसद्धान्तों का सार हदया गया ि। ऐसे व्यत्तत त्जनमें तीनों पपटकों के अध्याय के मलए आवश्यक धैय शया क्षमता का अभाव ि, बौद्धधम शके नीततर्ास्त्र के सारस्वरूप इसी ग्रन्य को पढ़ते िैं।

[764] अमभधम्म का अनुवाद अंग्रेजी में साधारणतया 'मेटाकफत़्तस' (अध्याममपवद्या) ककया जाता ि; परन्तु मूल पाली ब्दं ि मिसद्धान्त का उत्तम प्रततपादन कर पाता ि।

 और प्रकरणवर् अध्याममपवद्या एवं ंदर्नशर्ास्त्र का भी प्रततपादन िै। इसके सात उपपवभाग

िैं- (1)

धम्मसंगणी, त्जसका तनमाशण ईसा के पश्चात् ्चतुथ शर्ताब्दी के पूवाधश शमें अथवा मध्य में िुआ बताया जाता िै, (२) पवभंग, (3) कथावत्तु,ु (4) पुग्गलपतत, (5) धातु, (6) यमक, और (7) पिान। यि पाली धमर्शास्त्र िै जो थेरवाद के नाम से पवख्यात मसद्धान्त का प्रततपादत करता िै, तयोंकक उनका संग्रि पिली पररषद् में थेराओंअथवा

बुजुगों स्थपवरों द्वारा िुआ था।765

कभी-कभी मममलन्दपञ्िअथवा 'राजा मममलन्द के प्रश्न' को, जो बौद्धमर्क्षक एवं कुर्ल नैयातयक

नागसेन तथा यूनानी राजा मेनाण्डर'[766] (मममलन्द) के बीच िुए संवाद के रूप में िै, पाली धमर्शास्त्र के अन्दर सत्ममलत ककया जाता िै; जैसेकक स्याम में। यूनानी राजा मेनाण्डर ने लगभग 125 से 95 ईसा पूव शतक

मसन्धुप्रदेर् एवंगंगा की घाटी में र्ासन ककया । इस ग्रन्थ का लंकाद्वीप में बिुत अधधक उपयोग िोता िै और

विांयि सवमशान्य प्रामाणणक ग्रन्थ माना जाता िै।767 यि ईसाई युग के प्रारम्भ के लगभग या उसके पश्चात् ्

ककसी समय मलखा गया। िम इसे बुद्ध की मर्क्षाओंका सार-संग्रि निीं ंमान सकते। उतत पववाद बुद्ध की

मृमयु के लगभग चार सौ वष शपश्चात् ्िुआ प्रतीत िोता िै और िमारे सामने ंबौद्धमत के उस स्वरूप को प्रस्तुत करता िै जोकक बुद्ध के काल के बिुत पीछे जाकर प्रचमलत रूप में आया। 'राजा मममलन्द के प्रश्न', री़ डेपेवड्स के अनुसार, "भारतीय गद्य-सादिमय की अमयुमकृष्ट कृतत िै और साहित्मयक र्दत्ष्ट से अपनी श्रे्णी की सवोत्तम पुस्तक िै, जैसी आज तक ककसी भी देर् में निीं ंमलखी गई िोगी।" बुद्धघोष इसको पाली-पपटकों के बाद सबसे अधधक प्रामाणणक ग्रन्थ मानता िै। जिां ंएक ओर पालीपपटक बुद्ध की मर्क्षाओंके, अधधकांर् में, अनुरूप माने जा सकते िैं, विां'मममलन्दप्रश्न' में, िमें ऐसा प्रतीत िोता िै कक, बौद्ध मर्क्षाओं की नकाराममक व्याख्या अधधक िै। नागसेन बौद्धमत का तनषेधाममक िंवाद के रूप में प्रततपादन करता िै जो आममा, परमाममा एवं मुततामममाओं के भपवष्य-जीवन आहद सब मसद्धान्तों को अस्वीकार करता िै। वि सम्पूणरूशप से एक िेतुवादी िै त्जसने ंर्दढ़ता के साथ वैज्ञातनक पद्धतत को स्वीकार करके ऐसे सब िंधमी पवश्वासों को त्जनका ताना-बाना धमामशमाओं ने िीकनतर पिलुओंको तछपाए रखनेके उद्देश्य से समय की प्रततमा के इदश-धगदश बना रखा था, एकदम पवर्ीण शकर हदया। इस बात को अनुभव करके कक समय के त्जज्ञासु को अवश्य स्वयंसमयमय िोना चाहिए, उसने अपना मत प्रकट ककया कक वे िंधमी पवश्वास त्जनका पवधान धम शमें िै, मनुष्य-जातत को दु:खों से छुटकारा निींहदला सकते। िो सकता िै कक प्रमयक्ष में अपूण शसामग्री के आधार पर बुद्ध ने अपना तनणयश रोककर रखा िो। नागसेन ने बुद्ध की इस सावधानी में सन्दिे प्रकट ककया और कमर कसकर सबका तनषेध कर हदया। उसके अनुसार, ककसी मत के पवषय में साक्ष्य का अभाव उस पर अपवश्वास करनेके मलए पयाप्शत कारण िै। अपूव शसाक्ष्य के ऊपर पवश्वास करना भयंकर भूल िी निीं,ं पाप िै। बुद्ुध की प्रवृपृत्त ऐसी अवस्था में तनणयश को रोक रखने की थी ककन्तु नागसेन का संर्ोधन स्पष्ट खण्डन करनेमें िै। बुद्ध के पवचारों का किोर तकश के साथ प्रततपादन करते िुए उसनेअनजाने ंउतत पवचारों की अपयाप्शतता को प्रकार् में ला हदया।

---

765 देखेंओल्डनबग श: 'दीपवंर्', पृषि् । 27

766 'सैक्रेड बुतस आफ द ईस्ट', खंड 35 और 36।

767 'सैक्रेड बुतस आफ द ईस्ट', 35, पृषि् । 16

एक बुद्धघोष का 'पवसुद्धधमग्ग' एक पीछे का ग्रन्य ि (ईसा के 400 वष शपश्चात्)्, त्जसका तनमाणश ब्राह्मण नेककया था त्जसने ेबौद्धधम शस्वीकार कर मलया था। यि िीनयान के अिशत् ्आदर् शका प्रततपादन करता ै और प्राचीन मसद्धान्त का पवकास करता िै। बुद्धघोष पिला बौद्ध टीकाकार िै। उसका 'अमयसामलनी' ग्रंथ 'धम्मसंगणी' पर बिुमूल्य टीका िै। बुद्धघोष के काल से बिुत अधधक समय पश्चात् ्तक भी थेरवाद पवकमसत निीं ंिो पाया। दार्तशनक निीं, तो भी ऐततिामसक मित्त्व के अन्य पाली ग्रन्थ ये िैं-दीपवंर् (चौथी र्ताब्दी ईसा के पश्चात्)् और मिावंर् (पांचवी र्ताब्दी ईसा के पश्चात्)्। िम इस अध्याय में प्राचीन बुद्धधम शके पवषय में मलखिुए पपटकों एवं ंकट्टर पवचारवाली टीकाओं तक िी अपनेको सीममत रखेंगे। 'राजा मममलन्द के प्रश्नों' का भी उपयोग करेंगे ककन्तु ुएक पवमर्ष्ट सीमा के अन्दर। अवाचशीन ग्रन्थों का भी जिां ंउपयोग ककया जाएगा, िम इस बात का ध्यान रखेंगे कक ऐसा कोई पवचार आगे न आए जो प्राचीन लेखों में न ममलता िो।

4. बुद्ध का जीवनवृतूत और व्यत्ततमव

उपतनषदों की ओर से जब िम प्राचीन बौद्धमत की ओर आते िैं तो िम ऐसे ग्रन्थों में से तनकलकर त्जनके तनमातशा एक से अधधक पवचारक थे,े एक ऐसे तनत्श्चत मत की ओर आते िैं त्जसकी स्थापना केवल एक व्यत्तत-पवर्ेष के द्वारा िुई थी। उपतनषदों में िमें एक प्रकार के वातावरण का आश्चयजशनक अध्ययन ममलता ै जिबकक बौद्धधम शमें मनुष्य के जीवन में पवचार की िोस अमभव्यत्तत देखने को ममलती िै। उस काल के संसार में पवचारधारा की जीवन के साथ एकता ने एक प्रकार का अद्भुत काय शककया। प्राचीन बौद्धमत की सफलता का कारण बुद्ध का जीवन और अपना तनजी पवमर्ष्ट व्यत्ततमव िी था। यि कल्पना करते समय कोई भी मनुष्य अवश्य आश्चयचशककत िोगा जब उसे यि ज्ञात िोगा कक ईसा से छः सौ वष शपूवू शभारत में एक अद्पवतीय राजकुमार ने जन्म मलया जो धाममकश मयाग, उच्च आदर्वशाद, जीवन की कुलीनता एवं मनुष्यमात्र के प्रतत प्ेरेम में अपनेपिले और बाद के लोगों में अद्पवतीय था। पररव्राजक के रूप में प्रचारक गौतम अपनेअनुयातययों में और उनके द्वारा समस्त संसार में बुद्ध'[768] के नाम से पवख्यात िै, त्जसका अथ शिै जानने ेवाला, त्जसे ज्ञान का प्रकार् ममल गया िै। ईसा से लगभग 567 वष शपूव शउसने ेजन्म मलया। उसका अपना नाम मसद्धाथ शथा, त्जसका तामपय शउस व्यत्तत से िै त्जसने ेअपना उद्देश्य पूण शकर मलया िो। उसका घर का नाम गौतम, उसके पपता का नाम रुदुधोदन एवं ंमाता का नाम माया था। वि र्ातयवंर् के राज्जय का उत्तराधधकारी था। कपपलवस्तु ुमें, जो र्ातयों की राजधानी थी, उसका पालन-पोषण रुदुधोदन की दूसूरी पमनी मियापती द्वारा िुआ तयोंकक गौतम की माता उसके जन्म के सात हदन बाद िी मर गई थी। किा जाता िै कक उसनेएक ररश्तेकी बहिन यर्ोधरा के साथ पववाि ककया, त्जससे उसे एक पुत्र उमपन्न िुआ और त्जसका नाम रािुल रखा गया और जो बाद में उसका मर्ष्य बना। बिुत बचपन से िी इस अतनवचशनीय संसार के बोझ और इसके रिस्य ने प्रबलरूप में उसकी आममा पर दवाव डाला। इस जीवन के क्षणभंग्रता एवं ंअतनत्श्चतता ने उसकी आममा में प्रवलरूप में खलबली मचा दी

768 बुद्धकाअथशिैप्रकार्देनेवालाऔर भारत में यि एक सामान्य संज्ञा िै, जो अनेक व्यत्ततयों के मलए उपयुतत िोता ै।

और उसे इस पवषय का अच्छी तरि ज्ञान िो गया कक लाखों मनुष्य अज्ञानरूपी प्रथाकार के गिरे गड्ढे में धगरकर पापपूण शजीवन बबतातेिुए नार् को प्राप्त िोते िैं। वे चार अटनाएं त्जर्न्िें गौतम ने कपपलवस्तु ुके माग शपर देखा था-अथात्श ्एक वृद्ूध मनुष्य जो वषों के बोझ से झुक गया था, एक बीमार व्यत्तत जो बुखार में तप रिा था, एक मृत व्यत्तत की कार् त्जसके पीछे र्ोक मनाने वाले रोतेिुए और अपनेकेर्ों को नोचते िुए जा रिे थे ेतथा एक मभक्षुक साधु-इस हदर्ा का तनदेर् करती िै कक संसार के दु:खमय रूप ने गौतम के भावुकु मन में एक प्रकार की उग्र पीा़ उमपन्न कर दी थी।'[769] दु:ख के ये र्दश्य उसके अन्दर उमस बोझ के प्रतत चेतना को जगाने ेके मलए पयाप्शत थेजो अज्ञातनयों को अनन्तकाल से दबाता रिा िै, यिां ंतक कक मनुष्य का उत्तम से उत्तम प्रयमन भी उस पर काबू निीं ंपा सका और जो मनुष्य-जातत के पवनार् का कारण बना िुआ था दु:ख के व्यत्ततगत र्दष्टान्त बुद्ध के मलए एक पवश्वमात्र की समस्या बन गए। उसकी अन्तराममा पवचमलत िो उिी। और उसे जीवन भयावि लगनेलगा।

इत्न्द्रवगम्य पदाथों के खोखलेपन ने उसके ऊपर यिां ंतक असर ककया कक उसनेतनमय में ध्यान लगाने एवं अपने साथ िी समस्त मनुष्य-समुदाय को जीवन की िीनता तथा पवषवासत्तत की भ्रात्न्तयों से छुटकारा हदलानेका साधन ढूंढ़ तनकालने के मलए सब प्रकार के आराम, र्त्तत एवं राजभवन की धन-संपदा का मयाग कर हदया। उन हदनों समय के अन्वेषक मानमसक अर्ात्न्त से बार-बार पीड़त िोने ेपर उद्पवग्न िोकर पयटशक वैरागी बन जाते थे। प्रकार् की खोज करने ेवाले को भी अपनी खोज प्रारम्भ करने ेके मलए संसार के बहढ़या पदाथों को मयाग देना आवश्यक था। इस प्राचीन प्रथा के अनुसार, बुद्ध ने घर का मयाग कर हदया और एक तपस्वी का जीवन स्वीकार कर मलया। उसनेअपनिेाट-बाट को उतार फेंका, पीले वस्त्र धारण कर मलए, और प्रकार् एवं र्ात्न्त की खोज में मभक्षावृपत्त आरम्भ करके ग्राम-ग्राम एवं नगर-नगर में चतकर लगाना आरम्भ कर हदया। उसनेइतना बा़ मयाग केवल उन्तीस वष शकी अवस्था में ककया।770 उसनेदार्तशनक पवचार के द्वारा आध्यात्ममक पवश्वास की प्रात्प्त के मलए प्रयमन ककया और कुछ समय केवल पवचारों के िी अज्ञात समुद्रों में मानमसक यात्रा की, ककन्तु ुउसे अधधक सफलता निीं ंममली। सूक्ष्म तकशर्ास्त्र मानमसक अर्ात्न्त का उधचत उपचार निींिै। दूसूरे साधन र्ारीररक तपस्याओंके थे। गौतम अपने पांच श्रद्धालु ुममत्रों के साथ उरुवेला के जंगलों में एकान्त प्रवेर् में गया और विांउसनेउपवास एवं तपस्या के उन्माद में आकर आममा की र्ात्न्त के

---

769 मरणर्ीलता के यल नेइसी प्रकार सेजाज शसडैं को भी प्रेरणा दी थी कक उसनेभी संसार के दु:ख पर धचन्तन ककया, "जब उदासी, अभाव, तनरार्ा एवं दु:खकातर वाणी, त्जससे ेसंसार-भरपूर िै, मेरे सामने आये, जब मेरा धचन्तन केवल अपने िी भपवष्य तक तनयममत न रिकर उस संसार-भर की ओर झुका त्जसका म ैंकेवल अंर्मात्र िूं, तब मेरी अपनी तनरार्ा का पवस्तार सारी सृत्ष्ट तक फैल गया और मरणर्ीलता का तनयम मेरे आगे आगे आया एक ऐसेभयावि रूप में कक मेरा तकश एकदम हिल गया।"-डब्ल्यू एरा. मलली के 'मैनी मैन्न्स' में उद्धृत 'मिापदानसुत्तन्त। रीज डेपेवड्स का 'डायलॉग्स आफ बुद्ध', खंड 2 भी देणखए।

770 प्रचमलत ककंवदन्ती इस घटना का बलपूवकश वणनश करती िै। यि किा जाता िै कक यि मध्यराबत्र में उिा, अपनी पमनी के कमरे के द्वार तक गया और उसे एक िाथ अपने बच्चे के मसर पर रखे िुए सोते ेदेखा। उसकी इच्छामरुई कक अत्न्तम बार अपने बच्चे को छाती से लगा ले ककन्तु इस भय ने कक इस प्रकार बच्चे की युवती माँ जाग जाएगी, उसेऐसा करने से रोक हदया। वि वापस लौट आया और प्रकार् की खोज में रात के अन्धकार में भाग तनकला।

मलए ऐसी िी अन्यान्य अमयन्त कटोर प्रकृतत के र्ारीररक यन्त्रणाओं के अधीन अपनेको कर हदया। उसे इससे े कोई र्ात्न्त निींममली, तयोंकक समय अभी भी पिले की तरि बिुत दूरू था। वि तनरार्ोन्मत्त िोने ेलगा और एक रात धककर मूतछशत िो गया और भूख के कारण लगभग मरनेलगा। समय अभी भी समस्या था और जीवन एक प्रश्नधचह्न था।

पूरे छः वष शकी किोर तपस्या की साधना के पश्चात् ्बुद्ध को उतत पद्धतत की तनष्फलता का तनश्चय िो गया। धन-सम्पदा का खोखलापन, मभन्न-मभन्न सम्प्रदायों का ज्ञान, और तपस्वी जीवन की किोरता इन सबको उसने तुलुा में रखकर तोला और तो भी ये सब उसे िल्के प्रतीत िुए। संयम का इत्न्द्रयतनग्रि द्वारा पपवत्र िो गए र्रीर के साथ, एवं पवनय के कारण सुसंस्कृत िो गए मन से एवं एकान्तवास के द्वारा सवथशा अनुकूल िो गए हृदय के साथ उसनेवन्य प्रदेर् में ज्ञान की खोज की। इसके अनन्तर वि संसार में परमामा की सृत्ृष्ट की ओर मुा इस आर्ा से कक सम्भवतः सूयोदय से एवं सूय शकी आभा और प्रकृतत व जीवन के ऐश्वय शसे उसे कुछ समय की मर्क्षा ममल सके। वि ध्यान एवं ्प्राथनशा में लग गया। ककंवदत्न्तयों में उन वृतान्तों का वणनश ममलता िै कक ककस प्रकार मार या कामदेव ने बुद्ध का ध्यान बंटाकर कभी प्रबल आक्रमणों द्वारा, कभी आकषकश प्रलोभन के साधन से उसे अपनेउद्देश्य से पथभ्रष्ट करने ेके नाना प्रयमन ककए। मार को सफलता निीं ्ममली। बोधधवृकृष के नीचेघास के बबछौने ेपर बैि िुए गौतम पूव शहदर्ा की ओर मुंि ककए िुए था, दृढ़ और अचल, अपने ेमन को एक पवर्ेष प्रयोजन में लगाए िुए- "म ैंअपनेइस आसन से तब निींहिलूंगा जब तक कक म ैंसवोपरर एवं परम (तनरपेक्ष) ज्ञात को प्राप्त न कर लूं।" उसनेउसी वृकृष के नीचेसात सप्तािा गुजारे। "जय मन ककसी मित्त्वपूण श एवं उलझी िुई समस्या में ग्रस्त िो तो वि आगे तो बढ़ता िै, र्नैः र्नैः पग उिाकर अपनी त्स्थतत को सुदृढ़ बना लेता िै; ककन्तु जो उपलत्ब्धयां उसे उस समय तक प्राप्त िुईं, उनका बिुत अल्पमात्रा में िी भान िो सकता िै जबकक अचानक िीात् ्प्रकट िुए हदव्य प्रकार् के प्रभाव से वि अपनी पवजय को ग्रिण कर सकता िै। इस प्रकार प्रतीत िोता िै कक गौतम के साथ भी ऐसा िी िुआ।"[771] अपनी गम्भीर ध्यानावत्स्थत मुद्राओं ्में से एक मुद्रा में जबकक वि उस वृकृष के नीचेपवश्राम कर रिा था, त्जसे उसके भतत अनुयातययों ने बोधधनन्द का नाम हदया अथात्श ्बुद्धध का पिी एक नवीन ज्ञान उसके मन में प्रस्फुहटत िुआ। अपनी खोज की वस्तु उसके अधधकार में आ गई।

तब वषों की तनरन्तर खोज और ध्यान के पश्चात् ्उन्िोंनेअपनेको इस पवर्ेष उद्देश्य से भरपूर अनुभव ककया कक उन्िेंसिवदशास्थायी आनन्दाततरेक की प्रात्प्त के माग शका प्रचार पवनार्ोन्मुख जनों में करना चाहिए। उन्िोंने चार आयसशमयों एवं ्आि प्रकार के माग शके धमाचशरण का प्रचार व्याकुल संसार को ककया। अध्याममर्ास्त्र के सूक्ष्म मसद्धान्तों में न जाकर उन्िोंने नीततर्ास्त्र के माग शका प्रचार ककया, त्जससे कक वे पापपूण शएवं तनत्न्दत जीवन से जनसाधारण की रक्षा कर सकें। अपनी र्ान्त एवं पवनीत मुखमुद्रा के कारण, अपनेजीवन के सौन्दय शएवं ्गररमा के कारण, मनुष्यमात्र के प्रतत अपनेप्रेम की सचाई एवं उमंग के कारण और अपनेपववेक एवं ्ज्ञानपूण शसंवाद तथा अद्भुत वततृमवर्त्तत के कारण उन्िोंने ेस्त्री-पुरुषों के हृदयों पर एक

---

[771] वेल्स : 'दआउटलाइंसआफहिस्री',पृष्ि 207।

समान पवजय प्राप्त कर ली। अपनेपांच तपस्वी ममत्रों की उन्िोंने ेअपनेसबसे प्रथम मर्ष्यों के रूप में चुना। इन पांच मर्ष्यों को उन्िोंने ेअपने'धमचशक्रप्रवतनश का प्रथम उपदेर् हदया। उन्िोंनेउनके उपदेर् को ग्रिण ककया और वे बौद्धसंघ रूपी संस्था के सबसे पिले सदस्य बने। मर्ष्यों की संख्या नैः नैः बढ़ती चली गई। नये धम शके वैधाराथ शधमप्रशचारकों को सब हदर्ाओंमें भेजा गया। बौद्धधम शमें दीक्षक्षत िोने ेवाले सबसे प्राचीन और सबसे अधधक प्रख्यात राजगृि के दो तपस्वी साररपुत्त और मौद्गलायन थे, त्जन्िोंनेप्रारत्म्भक पांच मर्ष्यों में से अस्साजी नामक अन्यतम मर्ष्य से समय को ग्रिण ककया। बुद्ध ने स्वयं ंइनको अपनेसंघ में प्रपवष्ट ककया। अन्य प्रमसद्ध मर्ष्य, त्जन्िोंनेबौद्धधम शके इततिास में एक मित्त्वपूण शस्थान की पूतत शकी, इस प्रकार थे-उपामल, त्जसने ेबुद्ध की मृमृयु के उपरान्त संगहित िुई पिली पररषद् के समक्ष पवनयपपटक का पाि ककया; काश्यप, जो पररषद् का अध्यक्ष था और अपनेसमय का प्रमुख बौद्ध था तयोंकक यि किा जाता िै कक उसके आगमन की प्रतीक्षा में िी बुद्ध के र्रीर का दािकमसंशस्कार कुछ समय के मलए रोक हदया गया था; और आनन्द, बुद्ध का चचेरा भाई और सबसे पप्रय मर्ष्य, जो कोमल भावनाओं के साथ बुद्ध के ऊपर सदा तनगरानी रखता था और सब प्रकार की सावधानी बरतता था और बुद्ध की मृमृयुके समय भी सबसे अधधक उनके समीप था। सिस्रों व्यत्ततयों ने उनके अनुयातययों में अपनी गणना कराई। अनेक ब्राह्मण मर्क्षकों ने भी बौद्धधम शमें दीक्षा ली।

घेरबर्षोंसेवष शपश्चात् ्जब बुद्ध अपनेपपता के दरबार में गए तब भी उनका उद्देश्य यि था कक वे े अपनेमाता, पपता, पमनी व पुत्र सबको अपनेधम शमें दीक्षक्षत िो नेके मलए आमत्न्त्रत करें, त्जन्िोंने े बौद्ध मभक्षुणणयों की संस्था बनाई।

लगभग चालीस वष शतक धमप्रशचारक का जीवन व्यतीत करनेके पश्चात् ्जब उन्िोंने ेयि जनुभव ककया कक अब इस र्रीर को मयागकर पररतनवाणश'[772] प्राप्त करने ेका समय समीप आ रिा िै तो उन्िोंने ेअपनेअत्न्तम कुछ घण्टे आनन्द को एवं ंएकत्र मभक्षुओंको उधचत तनदेर् एवं आदेर् देनेमें व्यतीत ककए। सुभद्र नामक एक पयटशक तपस्वी ने भी अत्न्तम समय में उनके उपदेर्ों को सुना और वि स्वयंबुद्ध द्वारा दीक्षक्षत िुआ उनका अत्न्तम मर्ष्य था। बुद्ध ने अपनेमर्ष्यों को आदेर् हदया कक वे अपनी र्ंकाओं और कहिनाइयों को कि डालें त्जससे कक वे उन्िें दूर कर सकें। सब मौन रिे। तब उस मिाभाग नेअपनेधमबंशधुओंको सम्बोधन करके किा : " और अब िे मेरे बंधुओं, म ैंतुमसे पवदा िोता िंूं; मनुष्य के अवयव क्षणभंगुर िैं; पुरुषाथ शके साथ अपने मोक्ष का माग शप्रर्स्त करो।"[773] किा जाता िै कक उनका देिान्त अस्सी वष शकी आयुमें िुआ। मिान बुद्ध सदा के मलए पूव शकी एक अद्भुत आममा के उदािरणस्वरूप रिेंगे, त्जसमें भावनामयुर्ात्न्त, पवचारमग्न नम्रता एवं कोमल,

---

772 तनवाणश की प्रात्प्त एवं उसका उपभोग केवल जीवन के अन्दर िी सम्भव िोता िै, पररतनवाणश की प्रात्प्त केवल मृमृयुपर िी िोती िै, त्जस समय र्ारीररक जीवन का अन्त िो जाता िै। देणखए पररतनव्वानसुत्त', सैक्रेड बुतस आफ द ईस्ट, 11। '

773 मिापररतनव्वानसुत्त, 6 : 1। प्लेटो के 'फीिो' के अनुसार दर्नशर्ास्त्र मृमृयु के ध्यान का दूसरा नाम िै। मारकस औरेमलयस से तुलना कीत्जए: "सब कुछ अन्त में दुगुन्शध देने वाला और फेंकने लायक िो जाता िै....सब वस्तुएं एक समान िैं- पररधचत, अस्थायी और अनुधचत ...ममट्टी िमार ढंक लेगी; तव अपने आवतनश में पररवतततश िो जाएगी, तब पररवतनश का पररणाम, तब पररणाम का पररणास्टी और इस प्रकार अनन्तकाल तक चलता रिेगा। पररवतनश एवं पवपवधता की लिरें साथ-साथ उमड़ती िुई आती िैं और विी उन पर गम्भीरतापूवकश पवचार करता िै जो सब मरणधमा शवस्तुओं को घृणा की दृत्ष्ट से देखेगा।" एडपवन बेवन के 'िेलेतनज्जम' ऐण्ड कक्रत्श्चएतनटी', पृष्ि 185 में उद्धृत ।

र्ान्त और अन्तस्थल तक पिुंचने ेवाला पे्रेम-इन सबकी एक साथ इझलक ममलती थी। उन्िें मभन्न-मभन्न नामों से भी पुकारा जाता िै, यथा र्ातयमुतन, एवंतथागत अथात् श ्जो समय तक पिुंच गया िै।

त्जन घटनाओं का यिां ंवणनश ककया गया िै उन्िें प्रामाणणक माना जा सकता िै। ककतनी िी अन्य ऐसी घटनाएं भी िैं त्जनका वणनश 'लमलतपवस्तर'[774] एवं 'जातक कथाओं में आया िै जो न्यूनाधधक रूप में ककंवदन्तयों में।[775] बुद्ध की जीवनी िमें इस बात की न भूलना चाहिए कक उन बौद्धग्रन्थों का तनमाणश वृतूतान्त' ममलता िै, उन घटनाओं के घटने के दो सौ वष शके पश्चात् ्िुआ, इसमलए इसमें कुछ ऑश्चय शन िोना चाहिए कक उनमें बिुत- सा अंर् ककंवदत्न्तयों का िै त्जनके साथ प्रामाणणकता का भी कुछ अंर् सत्ममलत िो सकता िै।'[776] उनके अनुयातययों की आढय भावनाओंने भी उनके जीवन को असंख्य ककंवदत्न्तयों से अलंकृत कर हदया। इन घटनाओंसे मिान मर्क्षक के वास्तपवक जीवन का वणनश तो इतना निीं ंिोता त्जतना कक इस बात का पता लगता िै कक ककस प्रकार उन्िोंनेअपने अनुयातययों के हृदयों और कल्पनार्त्त को प्रभापवत ककया।'[777]

5. तामकामलक पररत्स्थततयां

प्रमयेक पवचार-पद्धतत अपने अन्दर अपनेसमय की प्रवृपृत्तयों को धारण करती िै एवं उन्िें प्रिकट करती िै और इसमलए उसे िीकिीक तभी समझा जा सकता िै जबकक िम उस र्दत्ष्टकोण को पिले ग्रिण कर लें त्जससे वि संसार की व्याख्या करती िै, और साथ में उस स्वाभापवक पे्रेरणा को भी समझने ेका प्रयमन करें त्जसके कारण उतत पवचारपद्धतत सम्भव िो सकी। उस प्रचमलत साहिमय के द्वारा जो पीछे से मलणखत रूप में भी आ गया, िम समय की उन पररत्स्थततयों का अनुमान सिजरूप में कर सकतिैं त्जनके अन्दर बुद्ध भगवान

---

774 एडपवन आरनॉल्ड की काव्य-पुस्तक 'लाइट आफ एमर्या'।

775 तनदानकथा, खण्ड 1, जातक एवं ंअश्वघोष का बुद्धचररत।

776 बुद्ध के जीवन का सबसे प्रारत्म्भक वृतूतान्त 'मिापदानसुतुतन्त', दीघतनकाय, संवाद संख्या 14, में िै। किा जाता िै कक इसमें बुद्ध का आममचररत्र िै।

777 यि तो माना जा सकता िै कक बुद्ध के पवषय में जो प्रचमलत वृतूतान्त ममलता िै उसका अधधकांर् ककंवदत्न्तयों के आधार पर िो, ककन्तु िम यि स्वीकार करने के मलए उद्यत निीं िैं, जैसाकक आधुतनक समय में प्राय: किा जाता िै कक यि सब ककंवदत्न्तयों का िी स्वरूप िै। िमारा तामपय शउस कल्पना से िै जो एम. सेनाटश द्वारा प्रचमलत िुई और अन्य कुछ लोगों ने उसको बढ़ावा हदया, अथात्श ्बुद्ध की कथा एक ममथ्या कल्पना िै त्जसका आगे चलकर एक धम शसे सम्बन्ध िो गया और यि धम शस्वभाव सेउन्नतत कर गया। एम. सेनाटश का किना िै कक िमें बुद्ध की कथा में सूयू शकी एक ममथ्या कल्पना ममलती िै त्जसके साथ ककतनी िी अनेक पवषमांग प्रवृपृत्तयां ंआकर पीछे से जु गई। िम इस धारणा को स्वीकार करनेके मलए उद्यत निीं िैं। बुद्ध की कथा के साथ त्जतनी घटनाओं ंका सम्बन्ध िै वे स्वाभापवक िैं और वास्तपवक परम्पराओं ंसे सम्बद्ध िैं। िमें पुस्तकों की पिले से उपत्स्थतत की गवािी ममलती िैं। बुद्ध का धम शकभी समझ में निीं ंआ सकता जब तक कक िम उसेएक वास्तपवक मेधावी पुरुष का काय शन मानें, त्जसे आध्यात्ममक स्फूतत शपर पूरा अधधकार था। एम. सेनाटश स्वयं ंभी बुद्ध को एक मर्क्षक के रूप में तो मानते िैं, ककन्तुसमझतेिैं कक उनके जीवन में सूय शकी ममथ्या कल्पना जो़ दी गई िै। बुद्ध के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाएं कभी ममध्या निीं िो सकती।

 ने जन्म मलया। उस समय भारत में कोई एकच्छत्र साम्राज्जय निीं ंथा ककन्तुपवरे्षे-पवरे्षे गणजाततयों और गोत्रों
के र्ासक राजा लोग थे,े जो अपनेपृथृक् छोटे-छोटे राज्जय बनाने के मलए प्रयमनर्ील थे। नाना प्रकार की स्थानीय भाषाओं का प्रयोग िोता था और संस्कृत सामान्य प्राप्त िो चुकी थी। ऐसे रीतत-ररवाज और सामात्जक तनयम त्जन्िें पीछे से मनुस्मृतृत में धाममकश तनयमों का स्थान हदया गया, उस समय प्रचमलत थे ेयद्यपप उनके अन्दर वि किोरता अभी निीं ंथी जो बाद में उनमें प्रपवष्ट िो गई। प्रमसद्ध छः दार्तशनक सम्प्रदायों का अमोरला पवकास निींिुआ था, यद्यपप उस प्रकार की कल्पना का भाव त्जसके कारण उतत मर्नपद्धततयों की रचना आगे जाकर सम्भव िो सकी, उस समय अपना काम कर रिी थी। वैततक जीवन में मर्थथलता आ गई थी, तयोंकक अध्याममपवद्या की सूक्ष्म समस्याओंएवं ंपारमाधथकश संवादों ने जनसाधारण की र्त्तत को खपा रखा था।

उस समय समस्त वातावरण परस्पर पवरोधी मन्तव्यों एवं कल्पनाओंके एक रार्ीभूत एवं पुंजं से पररपूण शथा, त्जसे ककसी ने अंगीकार ककया तो दूसूरे ने उसे माननेसे तनषेध ककया, और जो व्यत्ततयों के साथ बदलता था एवं ंवैयत्ततक आचरण, भावनाओं एवं उनके तनमातशाओं की आन्तररक इच्छाओं को प्रततबबत्म्बत करतांथा। उस समय ऐसे कोई मान्य समय एवं मसद्धान्त निीं ंथेत्जन्िें सब लोग एकमत िोकर स्वीकार कर सकें, ककन्तुमात्र द्रावक पवचार एवं ंअन्तःपे्रेरणाएं ममलती थीं। उस समय में जगत् ्एवंआममा की तनमयता, अतनमयता, अथवा दोनों में से एक भी निीं,ं समय तथा आभास की पिचान, एक परलोक की वास्तपवकता, मृमृयु के पश्चात् ्भी आममा का अत्स्तमव एवं ंइच्छा के स्वातन्त्र्य आहद के पवषय में संवाद अपनी पूण शपवकमसत अवस्था में आ गए थे। कुछेक पवचारक मन और आममा को एक िी मानतेथे,े जबकक अन्य उसमें परस्पर-भेद मानतेथे। कुछ परमेश्वर को सवोपरर मानते ेथे तो अन्य ऐसे भी थेजो मनुष्य को िी सवोपरर स्वीकार करते थे। कुछ का तकश था कक िम इस पवषय में कुछ निीं ंजानते; दूसूरे कुछ व्यत्तत अपनेश्रोताओंको बी़-बी़ आर्ाओं और पवश्वास के साथ तनश्चय हदलाकर सन्तुष्ट करने ेका प्रयमन करते थे। कुछ पररष्कृत अध्याममपवद्या-सम्बन्धी कल्पनाओं के तनमाणश में व्यस्त थे;े इसके पवपरीत, दूसूरी ओर ये भी थे जो उतत कल्पनाओंके खण्डन में उतना िी पररश्रम कर रिे थे। उस काल में वैहदक परम्परा से एकदम तनरपेक्ष अनेक कल्पनाओंने जन्म

मलया। उस काल में िमें तनग्गणमिमलतें जो अपनेको सब बन्धनों से मुतत किते ेथे;े श्रमण ममलतें अथात् ऐसे तपस्वी जो ब्राह्मणों से मभन्न थे,े और जो संसार को मयाग देने में िी आममा के मलए र्ान्ततलाभ मानतेथे; ऐसे भी थे ेजो आममतनयन्त्रण के मलए दीघकशाल तक अन्नग्रिण को मयाग देते थे; ऐसे भी थे ेत्जन्िोंने आध्यात्ममक साधना के मलए संसारतनवृपृत्त के मलए प्रयमन ककया था, तथा नैयातयक, पवतकशवादी, भौततकवादी एवं संर्यवादी सभी तरि के लोग। इसके अततररतत ऐसे भी थे ेजो अपनेआममामभमान के कारण अपनेसे बढ़कर ककसी को ज्ञानी निीं ंसमझतेथे ेजैसे सच्चक, जो धृषृटता के साथ यिां ंतक कि गया कक "ऐसा कोई भी श्रमण, ब्राह्मण, मर्क्षक, आचाय शअथवा ककसी संप्रदाय-पवरे्ष का मुणखया भले िी वि अपनेको पपवत्राममा, सवोपरर बुद्ध िी तयों न कि-निीं ंिै जो यहद र्ास्त्राथ शमें मेरे सामने ेआने ेका सािस करे तो लड़खड़ा न जाए, कांपनेन लगे और उसे भय के मारे पसीना न छूटने ेलगे। और यहद म ैंएक ज़ड़ के खम्भे पर भी अपनी वाणी का

प्रिार करूं तो वि भी लख़ ा जाए और उसे भी कंपकंपी आने ेलगे, कफर मनुष्य का तो किना िी तया।"[778] यि कल्पनाओं की अस्तव्यस्तता का काल था जो असंगत परमाथपशवद्याओं एवं अतनत्श्चत पवतण्डावादों और वातकलिों से भरपूर था।'[779]

इस प्रकार अध्याममपवद्या की ओर प्रवृपृत्त रखनेवाले लोगों को समृदूध कल्पनार्त्तत देर्, काल एवं तनमयता आहद के प्रश्नों का समाधान करते िुए अपना मन बिलाती री, और उर्न्िनिदर्नशर्ास्त्र की अमयन्त श्रेेष् किला को एक अमयन्त सामान्य रूप दे हदया। ककन्तु मिान समय अस्पष्ट एवं रिस्यमय आध्यात्ममक ज्ञान के पीछे तछपे प़ ेरि। ये वे ेलोग िैं जो कल्पनापरक साहिमय के माग शमें से स्फुहटत िोतिुेए समय को निीं ग्रिण कर सकते। एक- दूसूरे के ऊपर आक्रमण करते िुए श्रद्धोन्माद ने, परस्पर पवसंवादी या असंगत र्ास्त्रपद्धततयों ने, एवं ममथ्या पवश्वास के ज्जवारभाटे ने ममलकर बुद्ध के हृदय पर एक अजीब असर डाला और वे इस पररणाम पर पिुंचे ेकक अध्याममपवद्या-सम्बन्धी ये सब पवचार मनुष्य को र्ान्त दे सकने ेमें असमथ शिैं। पारलौकिकक कल्पनाओंके सूक्ष्म पवभेदों से अथवा अपवराम प्रश्नाममक प्रवृपृत्त से, या दार्तशनक सम्प्रदायों के जहटल वाद-पववादों के द्वारा तकश को सूक्ष्म और पररमात्जतश करने ेसे आममा को मोक्ष की प्रात्प्त निीं ंिो सकती। तनणयशरूून्य पवचार भले िी मनुष्य के मत्स्तष्क पर कोई कुप्रभाव उमपन्न न करे, उसके नैततक हित के मलए तो अवश्य िी िातनकर मसद्ध िोता िै। पवचार के क्षेत्र की अव्यवस्था से नैततक क्षेत्र में भी अव्यवस्था आती िै। इसमलए बुद्ध ने परलोकर्ास्त्र-सम्बन्धी वादपववादों को, त्जनसे कोई भी लाभ उर्न्िें प्रतीत निीं ंिुआ, एकदम िी छो़ देना उधचत समझा। बौद्धधम शमें अध्याममपवद्या वा परलोकर्ास्त्र का जो भी पवषय िमें ममलता िै, वि मौमलक 'धम्म' निीं ंिै, अपपतु उसमें पीछे से जो़ा गया िै, अथात्श ्अमभधम्म780 िै। बौद्धधम शअतनवायरूशप से मनोपवज्ञान, तकशर्ास्त्र एवं नीततर्ास्त्र का समुच्चय िै। उसमें अध्याममर्ास्त्र सत्न्नपवष्ट निीं ंिै।

भारत जैसे पवस्तृतृ भूभाग में देवताओं की कल्पना करनेमें मनुष्य की अद्भुत क्षमता और बिुदेववाद के प्रतत दुदुशमनीय मानमसक प्ेरेरणा को स्वच्छन्द कायक्षेशत्र ममला। उस समय देवी-देवताओं और प्ेरेताममाओंका र्ासन जनसाधारण के मन पर था, त्जनमें नुकसान पिुंचाने ेऔर तंग करने ेकी र्त्तत थी, अथवा प्रसन्न िोकर वरदान देनेएवं ंगौरवात्न्वत कर देनेकी भी र्त्तत थी। अधधकांर् लोग वैहदकधम शको बिुत ऊंची श्रद्धा से देखतेथे,े त्जसमें तरि-तरि के सम्प्रदायों, कक्रयाकलापों, कमकशाण्डों और धाममकश अनुष्िानों की भरमार थी। िीक यूरोप के उन मूततपूशजकों की भांतत जो धनवान िोने ेकी अमभलाषा को लेकर अत्ग्नदेवता को मस्तक नवाते थे ेऔर अपनी गृिसामग्री का दसवां हिस्सा अपणश करते थे,े बीमारी से छुटकारा पाने के मलए एस्कूलापपअस नामक देवता को मुगा शचढ़ातेथे,े वे लोग देवताओंको प्रसन्न करनेमें लगे रितेथे। यिां ंतक कक एकेश्वरवाहदयों का परमेश्वर भी अधधकतर मनुष्यों के िी समान एक देवता था, यद्यपप वि वीर प्रकृतत का था; और यहद उसे

---

778 ओल्डनवग:श 'बुद्ध', पृषिृ 70।

779 गौतम बुद्ध के समय में प्रचमलत 62 कल्पनाओं ंका, त्जनका 'ब्रह्मजालसुत्त' में उल्लेख िै, री डेपेवड्स ने अपने 'अमेररकन लेतचस शऑन बुद्धधज्जम' नामक ग्रंथं में पवश्लेषण ककया िै।

780 'अमभ', परे, 'धम्म', भौततक पवज्ञान। मेधम्नों का आगे चलकर अमभधम्न में पवश्लेषण ककया गया िै। अरस्तू से तुलना कीत्जए। देणखए अमथतामलनी: प्रारत्म्भक संवाद ।

स्वतन्त्र छो़ हदया जाए तो वि बिुत दयालु रिता था। पर यहद कोई उसकी अवेिलना करे तो कुरुद्ध िो जाने वाला था, और क्रोध र्ान्त िो जानेपर क्षमार्ील भी था। उस एकमात्र परमेश्वर का अपनेउपासकों के साथ सम्बन्ध मामलक और दास का सा था। वि प्रततर्ोध के स्वभाव वाला युद्धदेवता, िमारे साथ जैसा चािता था व्यविार करता था और युद्ध में िमें र्त्रुओंका सामना करनेका आदेर् देता था। वि संसार के अन्दर आवश्यकता से अधधक दखल देता था। धूमकेतु उसके कोप के प्रतीक थे,े जोकक पापपूण शसंसार को चेतावनी देने के तनमममत्त प्रेपेषत ककए गए थे। यहद चेतावनी की अवेिलना की जाती तो वि जनसंख्या के दर्ांर् का संिार करने के वास्तेमिामारी भेज सकता था। चममकार उस समय के मलए साधारण सर्ाना थी। यद्यपप उपतनषदों के द्वारा एक व्यापक तनयम की कल्पना तो की जा चुकी थी हिन्तु वि एक जागररत पवश्वास के रूप में निीं ंआई थी, और किोर एकेश्वरवाद का ररणाम यि िुआ कक कुछ उत्तरदातयत्त्व परमेश्वर के ऊपर डाल हदया जाता था। यहद िम बुरे िोतो उत्तरदायी विी परमेश्वर िै, यहद अच्छे िैं तो भी विी उत्तरदायी िै। या तो केवल मन की मौज से अथवा पूवपुशरुप के ककसी पापकम शद्वारा अपमान ककए जानेके कारण उसने मनुष्य-जातत के अधधकांर् भाग को तनरार्ा एवं दु:ख का जीवन बबताने की व्यवस्था की िै।

"प्रमयेक पापकम शपरमाममा के तनयम का उल्लंघन िै और उसको प्रसन्न करनेका एकमात्र उपाय पश्चात्ताप करना एवं ंधूल में लोटना िै। पाप करना परमेश्वर के प्रतत अपराध करना िै, इसमलए परमेश्वर को सन्तुष्ट करना िी िोगा। लोग पाप के स्वाभापवक पररणामों के प्रतत उदासीन रितेथे,े यद्यपप मौमलक रूप से कम शके प्रतत तनष्िा हदखाई जाती थी। जब मनुष्यों के कायकशलाप के ऊपर एक कूरूद्ध परमेश्वर का वज्र लटकता रिता था। पररणाम यि िुआ कक धम शको जीवन से अलग समझा जाता था और परमेश्वर एवं संसार एक-दूसूरे के पवपरीत थे।

हिंसाममक और कूरूर यज्ञों ने, त्जनके द्वारा परमेश्वर की पूजा की जाती थी, बुद्ध के अन्तःकरण पर आघात ककया। परमाममा के पवषय में ममथ्या पवश्वास के कारण मनुष्य के नैततक जीवन को भारी क्षतत पिुंची। बिुत-से अच्छे व्यत्तत भी इस ममथ्या पवश्वास से कक यि दैवीय आज्ञा िै, बिुत-सा र्ैतान का काम कर बैिते िैं। इस संसार में आचारर्ास्त्र एवंधम शको एक-दूसूरे के अन्दर ममधश्रत कर देनेके कारण ककतनी बुराई िुई-इसका अनुमान लगाना कहिन निीं िै। धम शके नाम पर ऐसे अनेके मत मनुष्यों के जीवन में घुस गए थे ेऔर इस प्रकार िावी िो चुके थे ेकक धाममकश प्रेरणा की रीं-सिी धचंगारी को भी बुझा देना चािते थे, इस त्स्थतत ने बुद्ध के मन पर भारी चोट पिुंचाई।

इस कल्पना के आधार पर संर्यवाहदयों के मलए सदाचारी िोना आवश्यक निीं। जब सदाचार या नैततकता का आधार दैवीय आज्ञा को माना जायगा, त्जसकी प्रेरणा भी एक अद्भुत रूप से दी गई िो, तो प्रमयेक वैज्ञातनक खोज एवं ंपवचार का पवकास नीतत के ऐसे आधार को पवनष्ट कर देगा। दुबुलश पवश्वास वाला व्यत्तत सदाचारनीतत की आज्ञाओंकी अवेिलना कर दे तो कोई आश्चय शनिीं।

ल्यूक्रेरेमर्यस के समान बुद्ध ने भी अनुभव ककया कक यहद प्राकृततक तनयम दैवीय र्त्तत में पवश्वास के ऊपर पवजय प्राप्त कर सकें तो संसार अधधक सुखी रिेगा। एक ऐसे धम शके प्रचार द्वारा जो यि घोषणा कर सके कक प्रमयेक मनुष्य पुरोहितों की मध्यस्थता के बबना अथवा देवी-देवताओंमें पवश्वास ककए बबना भी अपनेमलए मोक्ष प्राप्त कर सकता ि ै, तो वि मानवीय स्वभाव के प्रतत प्रततष्ठा को बढ़ाकर नैततकता की भावना को भी उन्नत करेगा। "इस प्रकार की कल्पना करना कक कोई दूसूरा िमारे सुखु एवं दुुःख का कारण िो सकता ि ै, एक मूखतशापूण शपवचार ि ै।"[781] बुद्ध के प्रचार के उपरान्त प्राकृततक तनयम की त्स्थरता एवं व्यापकता के अन्दर पवश्वास नेएक प्रकार से भारतीय आममा की स्वाभापवक अन्त:प्रेरणा कर रूप ले मलया।

मि आगे चलकर देखेंगे कक, बुद्ध के अनुसार, इस र्दश्यमान जगत् को अपनी व्याख्या के मलए ककसी परमेश्वर की आवश्यकता नििीं। कम शका मसद्धान्त उसकी व्याख्या करने के मलए पयाप्शत ि ै। एक उच्चसत्ता की त्स्थतत के संकेत तो िैं ककन्तु यि तकश द्वारा मसद्ध करने का पवषय निीं ि ै। बुद्ध उपतनषद् की कल्पना का समथनश करते िुए सटें पाल के तनणयश का पूवकशल्पना करते िैं, जब वे किते िैं: "आश्चय शिै कक ईश्वर के पववेक, एवं ज्ञान की पवपुल रामर् इतनी अगाध िै; एवं उसके तनणयशों की भी खोज निीं की जा सकती; उसकी काय शकरने की पद्धतत का भी पता निीं ममल सकता।"[782]

जन-साधारण को तो उपतनषदों के ज्ञान का कुछ भी पता न था। इसमलए उनकी मर्क्षाएं तुच्छ ममथ्या पवश्वास की अस्त-व्यस्त अवस्था में ममलकर खो गईं।783 ऐसे भी लोग थे त्जनका किना था कक तपस्या के द्वारा देवताओं को अपनी इच्छा के अनुकूल झुकाया जा सकता ि ै। एक तपस्वी के साथ बुद्ध के संवाद में भोजन-संबंधी बाईस प्रकार के आमम-तनयन्त्रणों और वस्त्र-सम्बन्धी तेरि प्रकार के आमम-तनयन्त्रणों का पववरण ममलता ि ै। ममथ्या पवश्वास की बबरशता ने मयाग के सौन्दय शको ममलन कर हदया, अथवा यों किना

---

781 बोधधचयावशतार।

782 'रोमन्स' 11: 33।

783 लमलतपवस्तर नामक ग्रंथं में उस समय के भारत की अवस्था का जबकक बुद्ध नेअपने धम शका प्रचार ककया, इस प्रकार वणनश ि ै 'जब रातय उरुवेला में था तो उसने तपश्चया शकी, उन सब पवपवध पवधधयों पर पवचार ककया त्जनका आश्रय लोग उस समय प्राय: लेतेथे और जो तपश्चयाएंश उनकी सम्मतत में सब प्रकार की पवषयासत्तत से मन को ऊपर उिाती थीं। 'उसके मन में पवचार आया कक म ैं यिां इस जम्बू द्वीप में उमपन्न िुआ िूं, ऐसे लोगों के बीच त्जनके आगे ततधथकशाओंअथवा समय के प्रकार्कों सेतघरे रिने के कारण बौद्धधक मुत्तत की कोई आर्ा निीं रि गई िै, और यि ऐसा समय िै जबकक उनकी अन्ततनहशित र्त्ततयां पवषयासककत रूपी मगर की पकड़ में पड़ जाने के कारण वक्र गतत में आ गई िैं। वे व्यत्तत मूख िैं जो अपने-आपको मभन्न-मभन्न प्रकार की तपस्याओं एवं प्रायत्श्चतों से पपवत्र करने और उन्िें बार-बार अपने मत्स्तष्क में जमाने का प्रयमन करतेिैं। उनमें से ककतने िी ऐसे िैं जो अपने मंत्रों का अथ शभी निीं समझ सकते; कुछेक अपने िाथों को चाटतेिैं; कुछेक अमयन्त ममलन िैं, कुछेक तो एकदम मंत्रों का भी ज्ञान निीं रखते, कुछ अन्य धमस्रशोतों की खोज में इधर-उधर भटकते िैं, कुछ ऐसे भी िैं जो गाय, हिरण, घोड़े, सूअर, बन्दर अथवा िाथी आहद की पूजा करतेिैं। एक जगि भूमम पर पालथी मलए प्रयल करने वाले लोग भी िैं। कई अपनी तपश्चयाश की मारे बैिकर मिानता के साधना के मलए धुएं एं एवं एवं अत्ग्न को भी तनगलने का प्रयमन करते िैं तथा सूय शकी ओर ताकते रिकर, पंचात्ग्नपूजा करके, एक पांव के सिारे खड़े िोकर अथवा एक भुजा बराबर ऊपर करके, एवं घुटनों को हिलाते रिकर कष्ट सिन करते िैं।... कुछ लोग ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, पवष्णु, देवी एवं कुमार को नमस्कार करने में िी अपना गौरव समझते िैं।'..."

चाहिए कक ग्रस मलया। वस्तुतः वे ◌ेलोग त्जन्िोंने ◌ेआममा को ऊंचा उिानेका प्रयमन ककया, अपनेको परुुओंकी कोहट में नीचे धगराने लगे। साधारण जन ऐसे कक्रया-कलापों में एवंअनुष्िानों में फंसे िुए थे ◌ेत्जनका पवधान ऐसे व्यत्ततयों ने बताया जो अपनेअन्धभततों द्वारा हदए गए भोजन पर पलते थे ◌ेऔर त्जन्िें बुद्ध "प्रवंचक एवं नाममात्र के पपवत्र ब्दं उच्चारण करके वृपृत्त कमाने वाले तनकम्मे, आलसी, र्कुन-अपर्कुन बतानेवाले, भूत-प्ेरेत झाड़ने ◌ेवाले ओझा, िमेर्ा अधधकाधधक िगनेवाले आहद के नाम से पुकारते िैं।"[784] देर्-भर में सवत्रश ऐसे ◌े पुरोहित-समाज का धम शके क्षेत्र में आधधपमय था, जो दैवीय र्तत का प्रतततनधध िोने का झूिा दावा भरता था। बुद्ध के मन में ऐसे सच्चेब्राह्मण के मलए जो ब्रह्म के सन्देर्ि के रूप में यि कि सकता िै कक "मुझे ◌ेसौना था चांदी कुछ निीं चाहिए, न में इनसे ककसी प्रकार का सम्पकश रखता िंूं।" िाहदशक प्रर्ंसा का भाव था। ककन्तुजब यिी सन्देर्ि पुरोहित बन गया और सोना-चांदी इकट्िा करने ◌ेलगा तब वि आध्यात्ममक उपिार के रूप में ममली िुई अपनी र्तत एवं प्रततष्िा को खो बैिा और एक लंगड़े ◌ेमनुष्य को यि किकर सिारा देनेमें अक्षम िो गया कक "उिो और चलो !" उसनेआत्ममक रोग के रोधगयों को आध्यात्ममक जीवन में दीक्षा देकर उनकी पवककमसा करना तो छोड़ हदया और अमभमानपूवकश यि घोषणा करनेलगा कक वि देवताओं का पवश्वासपात्र िै, और तनधनश अभावग्रस्तों को सम्बोधन करके यों किने ◌ेलगा कक "िे पुत्र, परमेश्वर के मलए यज्ञ करो और मुझे दक्षक्षणा दो और तुम्िारे सब पाप उसके विााँ क्षमा िो जाएंगे।" धन-दौलत के द्वारा मोक्ष प्राप्त करने ◌ेकी पद्धतत मानवीय हृदय के अन्तस्तल की आवश्यकताओंका समाधान निीं ◌ंकर सकती। जनसाधारण की र्दत्ष्ट में तनयममत कमकशाण्ड के पालन, भजन-कीतनश, तमपश्चयाशएवं ◌ंप्रायत्श्चत्त, नाना प्रकार की रुदुधधयों एवं जीवन के सब क्षेत्रों में लागू िोने ◌ेवाली तनषेधाज्ञाओं में िी धम शरि गया था। बुद्ध ने ऐसे सब ममथ्या पवश्वासों को त्जन्िें साधारण जन धाममकश तनयमों का अंग माननेके अभ्यस्त से िो गए थे,◌े बबलकुल खोखला पाया। यि देखकर कक मनुष्यों को तनरथकश पवषयों के मलए मूख शबनाया जा रिा िै, उन्िोंनेममथ्या पवश्वासों एवं ◌ंतकशीनता के पवरुद्ध अपनी वाणी को प्रबल ककया और अपनेमष्यों को आदेर् हदया कक वे ◌ेतुच्छ बातों के मर्ाकार बननेसे परे रिकर संसार के धाममकश तनयमों का अध्ययन करें। उन्िोंने ◌ेदेवताओं की हदव्यता का खण्डन ककया और वेदों की प्रामाणणकता पर भी कुिाराघात ककया।

बुद्ध ने गुण-दोष-पववेचन एवं ◌ंप्रकार् के युग में जबकक पुरानेपवश्वासों का तो मूलोच्छेदन िो गया िो और परमाथपशवद्या-सम्बन्धी कल्पनाएं भी स्वप्न में देखी गई आकृततयों की भांतत ततरोधान को प्राप्त िो रिी िों, अतनवायरूशप से घुस जानेवाले दोषों का भी गम्भीरतापूवकश अध्ययन ककया। मनुष्यों की आममा में बेचैनी थी और वे पवध्वंसकारी मतभेदों से परेर्ान िोकर पुराने ◌ेपवश्वास उखड़ जाने ◌ेसे ककसी उत्तम मसद्धान्त की खोज में लगे थे। उस युग की इसी खोज का प्रततबबम्ब िमें प्राचीन बौद्धधम शमें देखने को ममलता िै। बुद्ध ने समय के प्रतत हृदय में उिनेवाली स्वाभापवक अमभलाषा की ओर संकेत ककया और किा कक विी मर्व और सुन्दर िै।

नाना सम्प्रदायों के एकाएक धगर जानेऔर पवपवध पद्धततयों के भी खत्ण्डत िो जानेपर बुद्ध का यि कतव्यश था कक वे नये मसरे से नीततर्ास्त्र का तनमाणश एक सुर्दढ़ मभपत्त के ऊपर करते। जैसे यूनान देर् में प्लेटो

---

784 री़ डेपे वड्स - "बुद्धधस्टइत्ण्डया',पृष्ि 215, और भी देणखए 'डायलॉग्स आफ द बुद्ध' ।

एवं अरस्तूकी मित्तर एवं ंअधधक पूण शअध्याममपवद्या- सम्बन्धी दर्नश-पद्धततयों के पश्चात् ्स्टोइक एवं एपपतयूररयन लोगों की नैततक कल्पनाएं आ गई, िीक वैसे िी प्राचीन भारत में भी िुआ। जब दर्नशर्ास्त्र की नींवें हिल गईं तो पवचारकों का ध्यान आचरण-सम्बन्धी मसद्धान्तों की ओर गया। यहद नीततर्ास्त्र का तनमाणश अध्याममर्ास्त्र अथवा परमाथ शपवद्या जैसी बालू की अत्स्थर नींव के आधार पर ककया जायगा तो उसका गिरना अतनत्श्चत िै। बुद्ध उसका तनमाणश तथ्यों की सुर्दढ़ चट्टान के आधार पर करना चािते थे। प्राचीन बौद्धधम श परमेश्वर की पूजा से मनुष्यों का ध्यान िटाकर, मनुष्य-समाज की सेवा की ओर करने ेके अपनेप्रयमन में प्रमयक्षवाद के साथ सार्दश्य रखता िै। बुद्ध की पवर्ेष इच्छा पवश्व के नये ढंग पर कोई व्याख्या करने की ओर इतनी निींथी त्जतनी कक कतव्शय- कम शकी भावना के प्रतत जनसाधारण की प्रवृपृत्त उमपन्न करने ेकी थी। एक ऐसे धम शप्रवतनश का श्रेय उन्िींको िै जो रूहढ़यों, पुरोहितों के आधधपमय, एवं ंयज्ञ-याग-सम्बन्धी तनरथकश कक्रया-कलाप से सवथशा मुतत था और जो हृदय के आन्तररक पररवतनश और आममसंस्कृतत पर अधधक बल देता था। उन्िोंने ेस्पष्ट घोषणा की कक संहदग्ध रूहढ़यों के स्वीकार करने ेएवंएक कूरूद्ध ईश्वर के क्रोध को र्ान्त करने ेके उद्देश्य से ककए गए पापकमों से मोक्ष निीं ंममल सकता। अपपतु चररत्र को तनदोष करके पुण्यकमों में प्रवृत्त िोने े से िी मोक्षलाभ िो सकता िै। उनके अनुसार, नैततक तनयम ककसी पवमर्ष्ट मत्स्तष्क का आकत्स्मक आपवष्कार निीं ंिै और न िी ककसी संहदग्ध ईश्वरीय प्रेरणा द्वारा प्राप्त रूहढ़ िै, अपपतु वस्तुओंकी यथाथतशा की अमभव्यत्तत मात्र िै। बुद्ध के अनुसार, समय के अज्ञान के कारण िी संसार में सब प्रकार के दुःखों की सृत्ष्ट िुई ि। किोर तपस्या के नैततक मित्त्व का प्रततवाद करना, प्रचमलत धम शका खण्डन करना, वैहदक प्रथावाद को घृणा की र्दत्ष्ट देखना, संक्षेप में दर्नशर्ास्त्र को धम शका रूप देना यि एक मिान कल्पनाममक सािमसक काय शिै त्जसके सािस का िम सिी-सिी मूल्यांकन निीं ंकर सकते। प्राचीन बौद्धधम शकी मर्क्षाओं में िमें तीन सुस्पष्ट

पवर्ेषताएं ममलती िैं, अथात्-एक प्रकार की नैततक तमपरता, परमाथपशवद्या-सम्बन्धी प्रवृपृत्त का अभाव एवं अध्याममर्ास्त्र-सम्बन्धी कल्पना के प्रतत अरूधच अथवा उससे पवमुखता ।

बुद्ध को अलौककक सत्ता की भावना एवं ममथ्या पवश्वास के पवचारों के ह्रास का भी ध्यान रखना पड़ा। ऐसे काल में जबकक आममत्जज्ञासा एवं ंआममपरीक्षा के साथ-साथ मनुष्यों नेडअधधक तीक्ष्ण र्दत्ष्ट के साथ उस सबको त्जसे अभी तक पवना ककसी पवचार के स्वीकार कर मलया गया था, देखना प्रारम्भ कर हदया िो, यि असम्भव था कक पवश्वास को बबना आलोचना के छोड़ हदया जाता। जब गम्भीर पवचारकों ने आममा की सत्ता को कल्पनामात्र वतलाकर एवं ंअमरमव को भ्रात्न्तमात्र किकर उनका तनराकरण कर हदया िो, तब उनकी यथाथतशा का प्रदर्नश करनेसे कोई लाभ न था। बुद्ध ने समीक्षक भावना को ग्रिण तो ककया ककन्तु उसकी मयाशदा भी बांध देना उधचत समझा। उनकी पवचारपद्धतत संर्यवाद, उपेक्षावाद एवंवातचापल्य की उस भावना के जो भौततकवाहदयों की रिी िै, सवथशा पवपरीत थी; तो भी वे युग के प्रकार् का संग्रि करके उस पर ध्यान देते िैं और परम्परागत पवश्वासों के अन्दर प्रपवष्ट िोकर उनकी सूक्ष्म आलोचना को िमारे सामने प्रस्तुत करते िैं। अन्ततोगमवा पवचारपद्धततयां एवं ंउनका कक्रयाममक प्रयोग एक प्रकार की व्यविाररक कल्पनाएं िी तो िैं, त्जनके द्वारा परवती काल के मनुष्य अपनी मित्त्वकांक्षाओं को पूण शकरने ेका प्रयमन करते िैं और बढ़ते िुए ज्ञान एवं उन्नततर्ील आन्तररक प्रेरणा में सामंजस्य स्थापपत करते िैं। वातावरण में पररवतनश िो गया, और

 ज्ञान में भी वृद्ूधध िो गई। संर्यवाद की भावना ने अपना काय शआरम्भ कर हदया। परम्परागत धम शके ऊपर से
आस्था उि गई। पववेकी पवद्वान औधंक पवस्तृत कल्पनाओंके तनमाणश में तनमग्न थे,े त्जनके आधार पर जीवनयापन सफल िो सके एवं ंत्जनके द्वारा मनुष्य की स्वाभापवक मित्त्वकांक्षाओं को, त्जन्िें उत्च्छन्न निीं ं ककया जा सकता, अनुभवों से प्राप्त सामग्री के साथ सामंजस्य में लाया जा सके। बुद्ध ऐसे काल के प्रततततनधध वतता बनकर आगे आए। प्रचमलत ममथ्या पवश्वासों के पवरुद्ध जो प्रततकक्रया अपण स्थान जनता में बना रिी थी उसनेबुद्ध के मन को बिुत प्रभापवत ककया। बुद्ध ने केवल घटनाओं के उस प्रवाि में गतत ला दी जो पिले से िी आगे बढ़ता चला आ रिा था। उन्िोंने ेअपनेपुर् की भावना को लक्ष्य ककया और पववेकी पुरुषों की सत्न्दग्ध एवं क्रमपवीन भावनाओं को वाणी प्रदान की, त्जससे वे प्रकटरूप में जनता के आगे आ सकें। वे एक साथ िी सन्देर्ि भपवष्यद्रष्टा एवं समय की नैततक प्रवृपृत्त के व्याख्याकार थे। िेगल ककती प्रततभार्ाली व्यत्तत का उसके युग के साथ तया सम्बन्ध िोता िै इसकी तुलना ऐसे व्यत्तत के साथ करता िै जो ककसी मिराबदार छत में अत्न्तम पमथर उसमें दृढ़ता लानेकात्तत लगाता िै। एक इमारत को बनाकर खड़ा करने ेमें अनेक िाथ मदद करते िैं ककन्तु इसका श्ेरेय उसी व्यत्तत को प्राप्त िोता िै जो उसे पूणतशा तक पिुंचाकर तनत्श्चतता एवं ंसुर्दढ़ता प्रदान करता िै। बुद्ध का िाथ इसी प्रकार के एक मिान कलाकार का िाथ था जो अपनेसमय के भारत का मिानतम पवचारक था। बुद्ध का सम्बन्ध अपनेपूववशती पवचारकों के साथ वैसा िी था जैसाकक सुकरात का अपनेपूववशती सोकफस्टों या प्राचीन यूनान के दर्नशर्ास्त्र के वेतनभोगी एवंपवतण्डावादी अध्यापकों के साथ था। जिा ाँएक ओर उसकी पवचारपद्धतत प्रचमलत समीक्षा की लिर की अमभव्यत्तत मात्र थी, विांदूसूरी ओर उसका उद्देश्य उस लिर को प्रततकूल हदर्ा में मोड़कर यथाथसशत्ता के आध्यात्ममक अथों में (धाममकश अथों में निीं)ं समय पवचार को सुर्दढ़ करना भी था। अमरमव एवं ंईश्वर के अत्स्तमव पर भले िी पवश्वास न ककया जा सके, ककन्तुतो भी कत्तव्शय धम शकी मांग परम समय अवश्य िै।

मि बुद्ध को िेतुवादी निीं ंकि सकते तयोंकक िेतुवाद या मुत्ततवाद की पररभाषा में 'धाममकश पवश्वासों को नष्ट करने के मलए तकश के प्रयोग के प्रतत जो मानमसक प्रवृपृत्त िै विी आती िै।"[785] बुद्ुध ने अपनेकाय शका प्रारम्भ केवल खण्डनाममक इच्छा को लेकर निीं ंप्रारम्भ ककया, न िी वे ेतनषेधाममक पररणामों पर पिुंचे। एक तनरपेक्ष समय का त्जज्ञासु िोनेके कारण उन्िोंनेअपनेमन के अन्दर ककसी प्रकार के पक्षपात को पिले से स्थान निीं ंहदया। तो भी वे ेइन अथों में िेतुवादी थे ेकक वे ेयथाथसशत्ता का अध्ययन एवं अनुभव, बबना ककसी अलौककक ईश्वर प्ेरेरणा को स्वीकार ककए, करना चािते थे। इस पवषय में बुद्ध आधुतनक वैज्ञातनकों के साथ एकमत िैं, त्जनकी सम्मतत में प्राकृततक घटनाओंकी व्याख्या में ककसी अलौककक सत्ता के िस्तक्षेप का प्रवेर् न िोना चाहिए। बुद्ध की सम्मतत में वस्तुएं एवं ंघटनाएं इस प्रकार र्दढ़रूप में सम्बद्ध िैं कक वे पवश्व की व्यवस्था में चममकारों के िस्तक्षेप को एवं ंमानमसक जीवन में ककसी जादू ूके िस्तक्षेप को ककसी प्रकार भी सिन निीं ंकर सकतेथे।

---

785 वेन : 'हिस्रीआफइंत्ग्लर्ेश्नमलज़्म इन द नाइनटींथं सचेंुयुअरी,' खण्ड I, पृषृ 4।

इस बात को अच्छी तरि से अनुभव करके कक ऐसे समय में जबकक सब प्रकार के पवश्वासों के ऊपर से श्रद्धा उि चुकी िो, श्रद्धा के ऊपर बल देनेसे कोई लाभ निीं िो सकता था, उन्िोंने तकश और प्रमयक्ष अनुभव पर अधधक भरोसा ककया और अपनेमत की ओर जनसाधारण को झुकाने के मलए केवल तकशबल का िी प्रयोग ककया। वे एक ऐसे धम शकी स्थापना करना चािते थे जो 'पवर्ुद्ध तकश की मयादशा के अन्दर आ सके', और इस प्रकार से उन्िोंनेममथ्या पवश्वास एवं संर्यवाद दोनों का िी मूलोच्छेदन कर हदया। उन्िोंने कभी भी अपनेको पैगम्बर की श्रेणी में पररगणणत कराना उधचत निीं समझा। वे एक नैयैातयक िैं, जो अपनेप्रततद्वन्द्पवयों को तकश के द्वारा मुक्तत के माग शमें ले जाना चािते िैं। वे अपनेअनुयातययों के सामने उस अनुभव को प्रस्तुत करते िैं त्जसमें से वे स्वयंगुज़रकर आए िैं, और उन्िें प्रेरणा देते िैं कक वे अपनी ओर से भी उनके पवचारों एवं त्जन पररणामों पर वे पिुंचे िैं उनकी यथाथतशा की परीक्षा कर लें। "उनके मसद्धान्त का आधार ककंवदन्ती निीं िै अपपतु इसका आर्य िै कक 'आओ और देखो' ।"[786] "बुद्ध मनुष्यों को मोक्ष हदलानेका काय शनिीं करते वरन् उस पद्धतत का उपदेर् देते िैं त्जसपर चलकर वे अपने-आप मोक्ष प्राप्त कर सकतेिैं, त्जस प्रकार उन्िोंने स्वयंको मोक्ष प्राप्त कराया। मनुष्य उनके समय-प्रचार से आकृष्ट िोतेिैं, इसमलए निीं कक बुद्ध ने ऐसा किा िै, ककन्तु उनकी वाणी से जागृतृत प्राप्त करके उनके मों के प्रकार् में, जो कुछ वे उपदेर् करते िैं उनका वैयक्ततक ज्ञान उदय िोता िै।"[787] उनकी पद्धतत मनोवैज्ञातनक पवश्लेषण की पद्धतत िै। उन्िोंने अपने-आपको सब प्रकार की अनुधचत कल्पनाओंसे उन्मुतत रखनेएवं अनुभव की कच्ची सामग्री के द्वारा तनमाणशकाय शकरने का प्रयमन ककया। इसी प्रकार दुःख के आतुर मनुष्य जातत के अन्दर अपनेपवचारों के यथाथ शएवं पक्षपातपविीन तनष्कषों की अमभव्यक्तत द्वारा आध्यात्ममक उन्नतत का मंत्र फूंका। "यहद मनुष्य वस्तुओंको उसी रूप में देखे त्जस रूप में वे िैं तो वि आभासों के पीछे छोड़ना स्वयंबन्द कर देगा और जो मिान श्रेयस्कर यथाथसशत्ता िै उसी से धचपट जाएगा।" इस प्रकार अध्याममर्ास्त्र-सम्वन्धी कल्पनाओंको एक ओर रखकर वे अनुभव में आने वाले इस जगत् में कानून और व्यवस्था का र्ासन ढूंढ़ लेते िैं। उनके मत में बुद्धध की र्क्तत अनुभव के क्षेत्र तक िी सीममत िै और वि इसके मलए तनयमों को स्वयंखोज लेती िै।

6. बुद्ध और उपतनषदें

आन्तररक संघष शके रिस्योद्घाटन के मलए एवं आममा के अनुभवों को जाननेके मलए बुद्ध को भारतीय प्रकृष्ट प्रततभा के ग्रंथ उपतनषदें उपलब्ध थीं। प्राचीन बौद्धमत अपने-आपमें तनतान्त मौमलक मसद्धान्त निीं िै। भारतीय पवचारधारा के पवकास में यि कोई अद्भुत लीला या असाधारण वस्तु निीं िै। बुद्ध ने अपनेसमय अथवा अपने देर् के धाममकश पवचारों से पूणरूशपेण सम्वन्ध-पवच्छेद निींककया। अपनेसमय के परम्परागत एवं पवधधपरायण धम शके प्रतत प्रकट पवद्रोि करना एक बात िै एवं उसकी पृष्ठभूमम में वतमशान जीपवत प्रेरणा को सवथशा मयाग देना दूसरी बात िै। बुद्ध स्वयं स्वीकार करते िैं कक आममसंस्कृतत के प्रयमन द्वारा त्जस धम शकी

786 संयुत्ततनकाय, 3।

787 ओल्डनवग:श 'बुद्ध' ।

उन्ोंने ेखोज की ै वि एक प्राचीन माग शि, वि आयमशाग शि और तनमय धम शि। बुद्ध ने ककसी नये धम शकी स्थापना निीं ंकी अपपतुपुराने ी आदर् शकी खोज की ै। यि एक पुरानी मान्य परम्परा थी त्जसे समय की मांग के अनुकूल बनाया गया था। अपनी कल्पना के पवकास के मलए बुद्ध को, केवल उपतनषदों से, वैहदक धम शके बिुदेववाद एवं धम शके साथ'जो असंगत समझौतेककए गए थे ेउन्ें तनकाल देनेकी आवश्यकता थी; और ऐसे सवातशतर्यी परमतत्त्व को त्जसकी अनुभूतत पवचार के द्वारा निीं ो सकती और नीततर्ास्त्र के मलए जो अनावश्यक था, दूरू िटा देना था; ककंवा उपतनषदों के नैततक सावभशौमवाद पर अधधक बल देना था। िम सिास के साथ कल्पना कर सकतें कक प्राचीन बौद्धमत उपतनषदों के पवचार की नये दृत्ष्टकोण से पुनरावृपृत्तमात्र ै। री् डेपेवड्स का किना ै : "गौतम का जन्म व पालन-पोषण, जीवनयापन एवं मृमृयुएक हिन्दू ूके रूप में िुई। गौतम के अध्याममर्ास्त्र एवंअन्यान्य मसद्धान्तों में ऐसा अधधक कुछ भी निीं ंै जो ककसी न ककसी कट्टर सनातन धम शके ग्रंथों में न ममल सके, और उसके अधधकांर् नैततक मसद्धान्त प्राचीन अथवा अवाचशीन हिंदू ू पुस्तकों से समानता रखते ैं। गौतम में त्जस प्रकार की मौमलकता थी, ीक उसी प्रकार की पिले से पवद्यमान थी, उसे उसने उसी प्रकार से स्वीकार ककया, उसे बढ़ाया, अधधक श्रेेष्ि बनाया एवं ंउसे क्रमबद्ध ककया त्जसके पवषय में पिले भी अन्य पवचारकों के द्वारा अच्छी प्रकार किा गया था, और ीक वैसे ी जैसे कक उसने औधचमय एवंन्याय के मसद्धान्तों को ताककशक पररणामों तक पिुंचानेके मलए प्रयमन ककया। पिले भी कततपय प्रमुख हिन्दू ूपवचारकों ने उन्ें स्वीकार ककया था। उसके एवं अन्य मर्क्षकों के मध्य भेद मुख्यरूप से यि था कक बुद्ध में अगाध तमपरता एवं ंलोककल्याण का भाव सावजशतनक सेवा के रूप में पवद्यमान था।"[788] "यि तनत्श्चत ै कक बौद्धधम शने दायभाग के रूप में ब्राह्मणधम शसे न केवल अनेक मित्त्वपूण शरूहढ़यों को ी मलया, ककन्तु जो एक इततिासज्ञ के मलए कुछ कम मित्त्व की वस्तुनिीं ंअपनी धाममकश पवचार की स्वाभापवक प्रवृपृत्त एवं मनोभाव भी उतत धम शसे ग्रिण ककए जोकक वाणी द्वारा प्रकट करने ेकी अपेक्षा धचन्तन द्वारा अधधक समझ में आ सकता ै।"[789] कमकशाण्ड के प्रतत घृणा उनमें और उपतनषदों में एक समान ै। र्ेषे आय-शभारत के साथ-साथ बुद्ध भी कम शके मसद्धान्त को और मोक्षप्रात्प्त की सम्भावना को स्वीकार करते ैं। यि कक दु:ख इस भौततक जीवन की एक अतनवाय शघटना ै, भारतीय पवचारधारा के सभी सम्प्रदाय-त्जनमें उपतनषदें भी सत्म्ममलत ैं- स्वीकार करते ैं। बुद्ध स्वयं भी इस बात से अनमभज्ञ थे कक उनके मसद्धान्त और उपतनषदों के मसद्धान्त में कोई असंगतत ै। ये अनुभव करते थे ेकक उन्ें उपतनषदों एवं उनके अनुयातययों की सिानुभूतत एवं समथनश प्राप्त ै। वे ब्राह्मणों एवं बौद्ध मभक्षुओंको एक ी श्रेेणी में रखते ेथे ेऔर बौद्ध अिशतों एवं ंसाधुओंके सम्बन्ध में भी 'ब्राह्मण'ब्द का व्यविार ब़ ेसम्मान व प्रततष्ा के साथ करते थे। बौद्धधम शकम से कम अपनी प्रारत्म्भक दर्ा मेंतोअवश्य ी हिन्दूधम शकी एक र्ाखामात्र था। "बौद्धधम शप्राचीन सनातनधम शके ी दायरे में बा़ और समृद्धिुआ।"[790] प्राचीन बौद्धधम शकी इस समीक्षा में िम यि दर्ानेश का प्रयमन करेंगे कक ककस प्रकार उपतनषदोंकी भावना ी बराबर बौद्धधम शके जीवन-स्रोत के रूप में रिी ै।

---

788 बुद्धधज़्मपृष्ि 83-84।

789 ओल्डनबग:श 'बुद्ध' पृष्ि 53।

790 री् डेपेवड्स : बुद्धधज़्म 85।

7. दु:ख

अपनेधाममकश जीवन के अनुभव से बुद्ध को चार आयसशमयों के पवषय में तनश्चय ि◌ो गया-अथात्श ◌्यि कक दु:ख पवद्यमान ि◌ै, इसका कारण (समुदय) भी पवद्यमान ि◌ै, कक इसे दूरू ककया जा सकता ि◌ै (तनरोध), और यि कक इसमें सफलता प्राप्त करने ◌ेका भी माग शि◌ै।

पिला आयसशमय ि◌ै कक दु:ख की तनरंकुर्ता। जीवन दु:खमय ि◌ै। "अब दु:ख के पवषय में आयसशमय यि ि◌ै। जीवन दु:खदायी ि◌ै, क्षीणता दु:खदायी ि◌ै, रोग दु:खदायी ि◌ै, मुमयु दु:खदायी ि◌ै, अपप्रय के साथ संयोग दु:खदायी ि◌ै, पप्रय का पवयोग दु:खदायी ि◌ै और कोई उमकट आकांक्षा त्जसकी पूतत शन ि◌ो सके वि भी दु:खदायी ि◌ै। संक्षेप में पांचों ि◌ी समत्ष्ट791-रूप में, जो आसत्तत से उमपन्न ि◌ोते ि◌ैं, दु:खदायी ि◌ै।"[792] बुद्ध के समय में तीव्र बुद्ध वाले एवं गम्भीर भावना वाले व्यत्तत पूछतेथे ◌ेकक इस उकता देनेवाले जीवन चक्र का आर्य तया ि◌ै। और बुद्ध इन लोगों को सम्बोधन करते ि◌ुए जो छुटकारे के माग शकी अमभलाषा रखते थे,◌े किते ◌ेथे कक तनवाणश का आश्रय लेना, जिां ◌ंदुषुट लोग कष्ट देना छो़ देते ि◌ैं और थकावट भी समाप्त ि◌ो जाती ि◌ै। दु:ख पर बार-बार बल देना केवल वौद्धधम शमें नि◌ीं ◌ंि◌ै यद्यपप बुद्ध ने इसके ऊपर आवश्यकता से अधधक बल हदया ि◌ै। पवचारधारा के सम्पूण शइततिास में दूसूरे ककसी ने मनुष्य-जीवन के दु:ख का इतनेअधधक कृष्णरूप में, और न ि◌ी इतनी गिन भावना के साथ वणनश ककया त्जतना कक बुद्ध ने ककया ि◌ै। पवषाद, त्जसकी पूवछशाया उपतनषदों में पाई जाती ि◌ै, बौद्धधम शमें मुख्य स्थान ग्रिण कर लेता ि◌ै। सम्भवतः तपत्स्वयों के आदर्ों ने अथात्श ◌्बबना ककसी तकश के तनधनशता को ऊंचा स्थान देने, आमममयाग की श्रे्ष्िता एवंमयाग के आवेर् ने बुद्धध के मन पर एक प्रकार से जादू ◌ूका सा असर ककया। इस संसार से छुटकारा पाने के मलए जनसाधारण की इच्छा को जागररत करनेके मलए उन्िोंने ◌ेसंसार के कृष्णपक्ष को कुछ अधधक बढ़ाकर जनता के समक्ष रतखा। भले ि◌ी ि◌म आराम और सुख के पवस्तार के मलए एवं ◌ंसब प्रकार के सामात्जक अन्याय को दबा देने के मलए अपनी र्तत के अनुसार पूरा प्रयल तयों न कर लें तो भी मनुष्य को सन्तोष नि◌ीं ◌ंि◌ोगा। बुद्ध अन्त में किते ि◌ैं कक मनुष्यजन्म दु:ख ि◌ै, अपने व्यत्ततमव की रक्षा के मलए संघष शकरना दु:खदायी ि◌ै, एवं ◌ंभाग्य के उतार-चढ़ाव भयावि ि◌ैं।'[793] धम्मपद में ऐसा

---

791 र्रीर, मनोवेग, प्रमयक्ष ज्ञान, इच्छा और तकश।

792 'फाउण्डेर्न आफ द ककंगडम आफ राइटसनेस', पृष्ि, 5।

793 बुद्ध ने किा: "प्राणणयों की संसांर रूपी मियात्रा अनाहदकाल से चल रिी ि◌ै। ऐसे ककसी उद्गमस्थल का पता नि◌ीं ि◌ै जिांसे चलकर प्राणी अज्ञान की भूल भुलैयै में फंसकर और अपने अत्स्तमव की तृषूणा के बन्धनों में बंधकर इधर-उधर भटकते ◌ेकफरते ि◌ैं। ि◌े मभक्षुओं, बताओ कक चार मिासागरों में जो बल ि◌ै वि अधधक ि◌ै या तुम्िारे उन आंसुओंका जल अधधक ि◌ै त्जन्िें तुमने अपनी इस दीघ शयात्रा में इधर-उधर भटकते ि◌ुए बिाया ि◌ै, और इसमलए बिाया ि◌ै कक जो तुम्िें हिस्से में ममला ि◌ै उससे तुम्िें घृणा ि◌ै और जो तुम्िें पप्रय ि◌ै वि तुम्िारे हिस्सेमें नि◌ीं ◌ंआया? माता की मृमयु, भाई की मृमयु, सम्बन्धों की िातन, सम्पदा की ि◌ातन, इन सबका तुम युगों से अनुभव करतेआ रिे ि◌ो, और जब युगों से तुमने इनका अनुभव ककया ि◌ै तो

 किा गया िै "न तो आकार् में, न समुद्र के अन्तस्तल में और न पवतश की कन्दराओं ंमें संसार में किीं ंभी ऐसा

स्थान निीं ममलेगा जिां ंमृमृयु के आक्रमण से बचकर तनवास ककया जा सके।" ब्र ेसे बा़ आचरणरूर भी और कला की मिानतम कृतत भी एक न एक हदन अवश्य िी मृमृयुका ग्रास बनेगी। सब पदाथ शनष्ट िोनेवाले िैं। मिारे स्वप्न, िमारी आऱाएं, िमारे भय और िमारी इच्छाएं सब भुला दी जाएंगी जैसेकक कभी रिी िी न िों। मिान कल्प गुऱतेजाएंगे, और कभी न समाप्त िोने ेवाली पीहढ़यां भी ऱीघ्रता के साथ गुऱ जाएंगी। मृमृयुकी सावभशौततक र्त्तत का कोई सामना निीं ंकर सकता। मृमृयुजीवन का तनयम िै। सब मानवीय वस्तुओंकी क्षणभंगुरता िी पवषाद का उद्गम िै, त्जसके अधीन अधधकांर् व्यत्तत िैं। िमारा मन अपनेलक्ष्य के सारतत्त्व को निीं ंपक़ सकता और न िमारे जीवनों में ऐसे पदाथों की प्रात्प्त िो सकती िै त्जनका आभास मन को स्वप्न में िोता िै। समस्त इच्छापूतत शके साथ दुःख लगा िुआ िै। मनुष्य के स्वभाव में जो दुःख िै और त्जसके साथ अनाहदकाल से कामना सम्बद्ध िै और जो पिले िी से इतना अभाव उमपन्न कर देता िै कक इससे पूव शकक मनुष्य उसकी पूतत शके मलए र्त्तत प्राप्त कर सके, िमें अतनवाय शरूप से यि अनुभव कराता िै कक जीवन एक अमभऱाप िै। पवचार की घोर यन्त्रणा से व्यधथत िोकर, आकत्स्मक घटना से धोखा खाकर, प्रकृतत की र्त्ततयों से िारकर, कतव्शय के स्थूल बोझ से, मृमृयु के भय से और आने ेवाले जीवनों की भयानक कल्पना से, जिां ंकफर जन्म का दुःखान्त नाटक दोिराया जाएगा, मनुष्य बबना आक्रन्दन ककए निीं ंरि सकता कक "अच्छा िो, म ैं छुटकारा पा जाऊं, मुझे ेमरनेदो"। इस संसार के सब दुःखों से छुटकारा पाने का इलाज इस संसार को छो़ देना िी िै।

पववेकी व्यत्तत के मलए क्षणभंगुरता का वणनशातीत पवषाद एवं धमाचशरण की दयनीय तनष्फलता स्पष्ट लक्षक्षत िोनेवाले समय िैं। कांट अपने'पापक्षयवाद या ईश्वरन्यायवाद में सब दार्तशनक पद्धततयों की असफलता' नामक एक लेख (1791) में लीब्नी़ के आऱावाद के खण्डन में प्रश्न पूछता िै "तया कोई पववेकी पुरुष त्जसनेबिुत दीघकशाल तक जीवन व्यतीत ककया िो एवं मानवीय जीवन के मित्त्व पर भी ध्यान हदया िो, कफर से जीवन के नगण्य नाटक मे प्रपवष्ट िोना पसन्द करेगा ? म ैंयि निीं ंकिता कक उन्िींअवस्थाओं में, ककन्तु ुककन्िीं भी अन्य अवस्थाओं में तया यि जीवन में स्वेच्छापूवकश प्रपवष्ट िोना पसन्द करेगा ?" मिान दार्तशनकों की उदासी एवं ंतीव्र सन्ताप उनके पवचार के िी पररणाम िैं। जो अनुभव तो करते िैं ककन्तु अधधक धचन्तन निीं करते, उनसे किीं ंअच्छी त्स्थतत में िैं।

मिें बाध्य िोकर किना प़ता िै कक बुद्धध वस्तुओंके अन्धकारमय पक्ष के ऊपर आवश्यकता से अधधक बल देते िैं। बौद्धधम शके अनुसार, जीवन में सिास एवं पवश्वास का अभाव प्रतीत िोता िै। दुःख के ऊपर जो इस मत में इतना अधधक बल हदया गया िै वि यहद ममथ्या निींतो समय भी निीं ंिै। सुख की अपेक्षा जीवन में दुःख अधधक िै यि धारणा तो िीक िै। नीमरे् ेने जब यि किा था तब उसके मन में बुद्ुध का िी जीवन सम्मुख

~~और भी आंसू तुमने बिाए िैं, इस मिायात्रा में इधर-उधर भटकते िुए, कष्ट सिन करतेिुए और रोतेिुए तुमने जो आंसू ू~~ बिार िैं, और इसमलए बिाए िैं कक जो तुम्िें हिस्से में ममला िै उससे तुम्िें घृणा िै और जो तुम्िें पप्रय थी वि तुम्िारे हिस्सेमें निीं आया, तुम्िारे ये आंसू चारों मिासागरों के जल से अधधक िैं।" संयुत्ततनकाय, ओल्डनबग:श 'बुद्ध' पृष्ि 216-217।

भारतीय दर्नश -1 305 था। "वे एक रोगी को देखर्तें, अथवा एक जीण शवृद्ध पुरुष को देखते िैं, अथवा एक मृतक के र्व को देखर्तें,
और तुरन्त कि उिते िैं कक जीवन ममथ्या िै।" यि न भूलना चाहिए कक जीवन के मित्त्व का भाव भी क्षणभंगुरता के िी कारण िमारे मन में उिता िै। यहद युवावस्था का सौन्दय शएवं वृद्धावस्था की गररमा क्षणभंगुर िैं तो जन्म के समय प्रसव की पीड़ा और मृमृयुका परमदुःख भी तो क्षणभंगुर िैं। बौद्धमत में इस प्रकार की प्रवृपृत्त पाई जाती िै कक जो अंधधयारा िै उसे और काला कर दो और जो स्लेटी रंग िै उसे काला कर दो। बौद्धमतावलत्म्बयों की र्दत्ष्ट, मसद्धान्तरूप से, केवल जीवन के तीक्ष्ण, कटु एवं ंदुःखमय अंर्ों तक िी पवर्ेषरूप से सीममत रिती िै।

ककन्तु इस आधार पर कक प्रमयेक धाममकश सम्प्रदाय जीवन के दुःख का अततश्योत्त्त के साथ वणनश करता िै, बौद्धधम शबुद्ध के पवचारक्रम को न्याय िििरा सकता िै, तयोंकक धम शका लक्ष्य पाप एवं दुःख से छुटकारा हदलाना िै। यहद संसार सुखमय िो जाए तो धम शकी कोई आवश्यकता िी न रि जाएगी। िम ककस प्रकार इस संसार से बचकर तनकल सकर्तें त्जसमें मृमृयुअवश्यम्भावी िै-यिी प्रश्न िै जो उपतनषदों ने ककया था, और अब बुद्ध भी उसी प्रश्न को द्पवगुणणत बल के साथ पूछते िैं। किउपतनषद् में (1: 1.26) ब्राह्मण नधचकेता ने यम से प्रश्न ककया : "तू ूअपनेमकानों को अपनेपास रख, और नाच और गानेको भी अपनेमलए रख। जब िम तुझे ेसामने देखते िैं तो तया िम इन पदाथों को लेकर सुखी िो सकते िैं ?" बौद्धधमावशलम्बी प्रश्न करता िै: "चूंकक संसार तो सदा िी जल रिा िै इसमलए िंसी-खुर्ी व सुख संसार में कैसे रि सकर्तें ? तू ूजो चारों ओर अन्धकार से तघरा िुआ िै, तयों निीं ंप्रकार् की खोज करता ? यि र्रीर जो रोगों से भरा िै एवं ंनश्वर िै, नष्ट िो जाता िै; यि भ्रष्टाचार का पुंज भी टुक़े-टुक़ िोकर पवनष्ट िो जाएगा। जीवन तन:सन्दिे अन्त में मृमृयु को प्राप्त िोता िै।"[794]

तनरार्ावाद का तामपय शयहद यि मलया जाये कक संसार में ऐसा जीवन जीनेके योग्य निीं िै जब तक कक यि पपवत्र एवंअनासतत न िो, तब तो बौद्धधम शअवश्य तनरार्ावादी िै। यहद तनरार्ावाद से तामपय शयि िो कक इस सांसाररक जीवन का नार् कर देना चाहिए तयोंकक उसके परे आनन्द िै तब भी बौद्धधम शतनरार्ावादी िै। ककन्तु ुयि ययाथ शमें वास्तपवक तनरार्ावाद निीं ंिै। उस पद्धतत को िम तनरार्ावाद कि सकर्तें यहद वि समस्त आर्ा को बुझाकर िंडा कर दे और कफर घोषणा करे कक यि सांसाररक जीवन तो उकता देनेवाला िै िी, इसके परे भी कोई आनन्द निीं ंिै। बौद्धधम शके कुछ स्वरूप ऐसी घोषणा करते िैं और उन्िेंतनरार्ावादी किना न्यायसंगत िोगा। ककन्तु जिां तक बुद्ध की आरत्म्भक मर्क्षाओं का सम्बन्ध िै, वे ऐसी निीं ंिैं। यि समय िै कक बौद्धधम शजीवन को यन्त्रणाओं की अन्त न िोने ेवाली परम्परा के रूप में जानता िै ककन्तु वि नैततक अनुर्ासन की मोक्षदातयनी र्त्तत में भी पवश्वास रखता िै, और उसका पवश्वास िै कक मानवीय स्वरूप को पूणतशा तक भी पिुंचाया जा सकता िै। इसके अततररतत यद्यपप बुद्ध के मन को सृतूष्ट के अन्दर पवद्यमान दुःख का बोझ असह्य िै, कफर भी उसे यि तनष्प्रयोजन निींप्रतीत िोता। सब प्रकार की इच्छाओंका मयाग परम पुरुषाथ शके द्वारा करनेकी इच्छा भी साथ-साथ पवद्यमान िै। प्रमयेक मनुष्य को अपना बोझ अपने-आप संभालना िै और

794

धम्मपद , 11 146, 148।

प्रमयेक हृदय अपनी कटुता को जानता िै, और तो भी इसके द्वारा समस्त अच्छाई बढ़ती िै और विी प्रगतत आगे चलकर पूणतशा को प्राप्त िो जाती िै। यि संसार सारे दुुःख के रिते िुए भी सच्चररत्रता के पवकास के अनुकूल प्रतीत िोता िै। बुद्धध जीवन की तनरथकशता का उपदेर् निीं देते और न िी उसके पवनार् का उपदेर् देते िैं, केवल इसमलए कक मृमृयु अतनवाय शिै। उनका मसद्धान्त तनरार्ा का मसद्धान्त निीं ंिै। वे िमें बुराई के पवरुद्ध पवद्रोि करने ेका आदेर् देते िैं और एक तनमलश जीवन प्राप्त करने ेकी प्ेरेरणा देते िैं, जो अिशत् ्की व्यवस्था िै।

8. दुुःख के कारण

दुुःख के कारण तया िै, इस दूसूरे प्रश्न का उत्तर देनेके मलए बौद्धमत को मनोवैज्ञातनक पवश्लेषण एवं अध्याममपवद्या-पवषयक कल्पनाओं का आश्रय लेना पा़। "दुुःख के आहदकारण के पवषय में यि आयसशमय िै यथाथ शमें प्रबल तृषूणा िी िै त्जसके कारण बार-बार जन्म िोता िै और उसी के साथ इत्न्द्रयसुख आते िैं त्जनकी पूतत शजिां-तिां से की जाती िै-अथात्श ्इत्न्द्रयों की तृतृप्त के मलए प्रबल लालसा अथवा सुखसमृद्ृधध की प्रबल लालसा िी दुुःख का कारण िै।"[795]

उपतनषदों ने पिले िी दुुःख के कारण की ओर तनदेर् कर हदया िै। उनके अनुसार जो स्थायी (तनमय) िै वि आनन्दमय िै और क्षणभंगुर (अतनमय एवं अस्थायी) दुुःखदायी िै, "यो वै भूमा तदमृतृम्,् अन्यदातम्श।्" तनमय एवं अपररवतनशर्ील िी समय या यथाथ,श स्वतन्त्र और सुखमय िै, ककन्तु यि संसार जो जन्म, जरा एवं मृमृयु से युतत िै, दुुःख के अधीन िै। अनामम में यथाथ शनिीं ंममल सकता, तयोंकक अनामम उमपपत्त और रोग के अधीन िै। तनमय को उमपपत्त िै। रोग निीं ंव्याप सकते। चूंकक सब वस्तुएं अस्थायी िैं इसीमलए दुुःख िै। उमपन्न िोने साथ िी सब वस्तुएं लुप्त िो जाती िैं। कारण कायभशाव का तनयम समस्त सत्ता को तनिानेके साधा िै, जो तनरन्तर प्रकट िोने,े उमपन्न िोने ेऔर गुऱ जानेकी अवस्था में िै। "िे राजन् ्। कान बस्तुएं ऐसी िैं जो तुम्िें इस संसार में निीं ंममल सकतीं- अथात् श ्वि वस्तु जो सचेतन अथवा अचेतन अवस्था में िो लेककन जो क्षय एवं ं मृमृयु के अधीन न िो, तुम्िें निीं ंममलेगी; ऐसा गुण, ऐत्न्द्रय अथवा अनैत्न्द्रय, जो अस्थायी न िो, तुम्िें निीं ममलेगा, और उच्चतम अथों में सत् ्नाम की ऐसी कोई बस्तु निीं त्जसे िम सत्–्स्वरूप कि सकें।"[796] "और वि जो अस्थायी िै, िे मभक्षुओं, वि दुुःखदायी िै अथवा सुखदायी ?" "दुुःखदायी िै प्रभो।"[797] दुुःख ऐसी वस्तु िै जो क्षणभंगुरता से युतत िै। इच्छाएं िी दुुःख को जन्म देती िैं, तयोंकक िम ऐसी वस्तु की इच्छा करते िैं जो अस्थायी िै, पररवतनशर्ील िै एवं ंनार्वान िै। इत्च्छत वस्तु की क्षणभंगुरता िी तनरार्ा एवं र्ोक-सन्ताप का कारण िै। समस्त सुख भी क्षणभंगुर िैं। बौद्धमत की मूलूभूत स्थापना अथात्श ्जीवन दुुःख िै, रूहढ़-परम्परा के रूप में उपतनषदों से ग्रिण की गई िै।

---

795 फाउण्डेर्ेन आफ द ककंग्डम आफराइटसनेस', पृषठ्ृ 6।

796 मममलन्द, 4 : 7, 12; और भी देणखए, मभतखुनीसंयुंत्त; धम्मपद 5:47-48; और ओल्डनबग श: बुद्ध', पृषठ्ृ 218-219।

797 देखें मत्ज्जडामतनकाय, 3 : 19; बुद्धयोष : अमयसामलनी, पृषठ्ृ 74।

बुद्ध की स्थापना ि ै कक इस संसार में कुछ भी तनमय या स्थायी निीं ंि ै और यहद कोई वस्तु ऐसी ि ै त्जसे तनमय किा जा सकता ि ै तो वि आममा ि ी ि ै; तब इस संसार में आममा की कोई सत्ता निीं ंि ै। ि ेरेक वस्तु अनामम ी। "सब कुछ अस्थायी ि ै, र्रीर, मनोवेग, प्रमयक्ष ज्ञान, संस्कार एवंचेतना, ये सभी दु:ख ि ैं। ये सब अनामम ि ैं।" इनमें से एक भी सारमय निीं ंि ै। ये सभी आभासमात्र ि ैं और सारतत्त्व अथवा यथाथतशा से रू्न्य ि ैं। त्जसे ि म आममा समझे ि ुए ि ैं वि भी तन:सार आभासमात्र का एक अनुक्रम ि ै और इतना तुच्छ ि ै कक उसके मलए संघष श करना व्यथ शि ै। यहद मनुष्य उनके मलए झगडतेि ैं तो वि अज्ञान के कारण ि ै। "ककसकी सत्ता के आधार पर जरा-जीणतशा एवं मृमयु आ उपत्स्थत ि ोती ि ैं और ककसके ऊपर ये तनभरश ि ैं ? जन्म ि ोने ेपर ि ी जरावस्था एवं ंमृमयुभी सम्भव ि ो सकती ि ैं और इसमलए जन्म के ऊपर ि ी ये तनभरश ि ैं।... अज्ञान के दूर ि ो जानेपर पवचार भी र्ान्त ि ो जाते ि ैं और अज्ञान के पवनार् ि ो जानेपर उनका भी हदतर् ि ो जाता ि ै, पवचारों के नार् ि ो जानेपर बोध या ग्रिण का भी नार् ि ो जाता ि ै।"[798] अज्ञान ि ी मुख्य कारण ि ै त्जससे ममथ्या इच्छा उमपन्न ि ोती ि ै। ज्ञान की प्रात्प्त पर दु:ख का अन्त ि ो जाता ि ै। अज्ञान एवं ममथ्या इच्छा एक ि ी घटना के कल्पनाममक एवं ंकक्रयाममक दो पाश्व शि ैं। ममथ्या इच्छा का सारिीन अमूतरूशप ि ी अज्ञान ि ै और अज्ञान को मूतरूशप में ग्रिण करने ेसे ि ी ममथ्या इच्छा उमपन्न ि ोती ि ै। वास्तपवक जीवन में दोनों एक ि ैं। सामान्यत: अन्य सब भारतीय पवचारकों के ि ी समान बौद्ध लोगों के मत में भी ज्ञान और इच्छा परस्पर में इस प्रकार तनकटरूप से सम्बन्द्ध ि ैं कक दोनों में कोई भेद निीं ंककया जाता। एक ि ी र्ब्द 'चेतना' का उपयोग पवचारने एवं ंइच्छा करने ेके अथों में ककया जाता ि ै। जैसाकक ि म आगे चलकर देखेंगे, पवचार या तकश के अभ्यास को हृदय एवं इच्छा को पपवत्र करने ेके प्राथममक उपक्रम के रूप में मलया जाता ि ै। समय के प्रतत अज्ञान समस्त जीवन की प्राग्भूत अवस्था ि ै। तयोंकक एक स्पष्ट, तीक्ष्ण एवं आलोचनाममक र्दत्ष्ट ि मेें यि अनुभव करानेके मलए पयाप्शत ि ै कक इस संसार में पमनी अथवा सन्तान, ख्यातत अथवा प्रततष्ठा, प्रेम अथवा लक्ष्मी कोई भी वस्तु ऐसी निींजो प्राप्त करने ेके योग्य ि ो। "तयोंकक ये सब यहद इनमें मलप्त ि ुआ जाए तो, उद्देश्य तक निीं ंपिुंचा सकते।"[799]

गततवाद का प्रततपादन करने वाले एक अद्भुत दर्नश का आपवभावश आज से 2500 वष शपिले बुद्ध के द्वारा ि ुआ। यि वि दर्नश ि ै त्जसकी ि मारे सामने आधुतनक पवज्ञान की खोजों एवं ंआधुतनक सिसी पवचारकों के द्वारा कफर से पुनरावृपृत्त ि ो रिी ि ै। प्रकृतत के पवषय में पवद्युतचुम्बक-सम्बन्धी मसद्धान्त ने भौततक सत्ता के स्वरूप-सम्बन्धी सामान्य भाव के अन्दर क्रात्न्त उमपन्न कर दी ि ै। प्रकृतत अब त्स्थर एवं गततिीन पदाथ शने समझी जाकर एक ज्जयोततमयश र्त्ति के रूप में स्वीकार की जाती ि ै। इसी के सर्दर् मनोवैज्ञातनक जगत् ्में भी पररवतनश आ गया ि ै और एम. वगसशांद्वारा मलणखत एक आधुतनक पुस्तक 'माइंड एनजी' (मन:र्त्ति) का नाम मानमसक सत्ता के मसद्धान्त में पररवतनश का तनदेर् करता ि ै। पदाथों की क्षणणकता एवं ंतनरन्तर पवकक्रया और वस्तुओंमें पररवतनश से प्रभापवत ि ोकर बुद्ध ने पररवतनश के दार्तशनक मसद्धान्त का प्रततपादन ककया। वे पदाथों को, आममाओं को, स्वयंभू: (मूल) जीवों को तथा अन्यान्य सब पदाथों को र्त्ततयों, गततयों, पररणामों एवं ं प्रकक्रयाओं के रूप में पररणत करते ि ैं और इस प्रकार यथाथसर्त्ता के गमयाममक पवचार को स्वीकार करते ि ैं।

798 लमलतपवस्तर।

799 मत्ज्जझमतनकाय32।

जीवन पररणतत की अमभव्यत्क्ततयों एवं ततरोभावों की परम्परा के अततररतत कुछ निीं ि।800 यि पररणतत का एक प्रकार का प्रभाव ि।'[801] इत्न्द्रयगम्य एवं पवज्ञानगम्य जगत् क्षण-क्षण में बदलता रिा ि। यि एक प्रकार का

जन्म व मृमृयु का तनरन्तर चक्र ि। सत् की अवधध चािे जो भी िो-अथाात् ऐसी क्षणणक जैसी कक बबजली की चमक िोती ि अथवा इतनी दीघा शत्ततनी सिस्राब्दी िोती ि, ककन्तु ि यि सब तनमााणप्रकक्रया या पररणतत िी। प्रमयेक वस्तु में पररवतानशि िोता ि। बौद्धधमा शके सब संप्रदाय इस पवषय में सिमत ि कक तया मानवीय और तया दैवीय ऐसी कोई वस्तु निीं जो स्थायी िो। पररणतत के तनरन्तर प्रविा को, त्जसे संसार किते िैं, दर्ानेश के मलए बुद्ध िमारे सामने अत्ग्न'[802] के सम्बन्ध में एक संवाद प्रस्तुत करते िैं।'[803]

"सदा से संसार के बाद संसार तरंग के रूप मे आगे बढ़ रिे िैं,

सृत्ष्ट से लेकर प्रलयकाल तक,

त्जस प्रकार एक नदी के ऊपर पानी के बुलबुले,

उिते, चमकते, फूटते और पवलीन िो जाते िैं।"[804]

यद्यपप अत्ग्न की ज्जवाला प्रकटरूप में अपररवतानशत अथाात् एक समान प्रतीत िोती ि लेककन प्रमयेक क्षण में वि एक अन्य ज्जवाला ि, विी निीं ि। नदी की धारा अपने बिाव में एक समान प्रविा को त्स्थर रखती प्रतीत िोती ि, यद्यपप प्रततक्षण नया जल चला आ रिा िोता ि। जो कुछ हदखाई देता ि वि तनरन्तर पररणतत अथवा क्रममात्र ि-यिी सोवधम शका मुख्य तथ्य ि। परम सत्ता इस जगत् में ककसी की भी सम्पपत्त निीं ि। "यि संसम्भव ि कक जो उमपन्न िुआ ि वि मृमृयुको प्राप्त न िो।"[805] "त्जसका आरम्भ ि उसका पवनार् भी अवश्यम्भावी ि।"[806] जो उमपन्न िुआ ि उसकी मृमृयुआवश्यक ि और इसमें कोई पररवतानश निीं िो सकता। इसमें भेद केवल अवधध की मात्रा में िो सकता ि। कुछ ऐसे ि जो बरसों तक चल सकतिैं और अन्य केवल थो़े समय तक िी रि सकतिैं। पररवतानश यथाथसशत्ता का भूल तत्त्व अथवा उपादान ि। इस संसार में न तो कुछ स्थातयमव िी ि और न िी तादामय ि। यि केवल र्तत का संक्रमण मात्र ि। सम्भव ि कक चेतना एवं समस्त भौततक पदाथों की प्रतीयमान क्षणभंगुरता पर धचन्तन करने से यि पवचार उदय िुआ। अबाधधत पररवतानश िमारे चेतनामय जीवन का स्वरूप ि। चेतन जगत् िमारे अपनेमन का प्रततबबम्बमात्र ि। प्रमयेक एकाकी घटना श्रृंखला में एक की़ ि और पवकास का एक अस्थायी रूप ि, और पवपवध श्रृंखलाएं ममलकर एक

800 पातुभावो-उप्पादो।

801 "सब वस्तुएं एक प्रविा की दर्ा में िैं।" "यथाथसशत्ता बेचैनी की एक अवस्था ि।" िेरा-त्तलटस- 'फ्रैगमेंट्म', 46 और 84।

802 तुलना कीत्जए, िेरात्तलटस "यि संसार अनाहदकाल से एक जीपवत अत्ग्नज्जयाला के समान ि।" बुद्ध एवं िेरात्तलटस दोनों िी अध्यात्ममकर्ास्त्र के पररणतत के मसद्धान्त को दर्ानेश के मलए अत्ग्न का उपयोग करतिैं, जो तत्त्वों में सबसे अधधक पररणामर्ील एवं चंचलप्रकृतत ि।

803 मिावग्ग1 121।

804 रे्ली : ली : 'िेलास' ।

805 अमभधमकशोर् व्याख्या ।

806 मिावग्ग, 1/23।

सम्पूण शका तनमाणश करती िैं त्जसे 'धम-श धातु' अथवा आत्ममक पवश्व किते िैं। बुद्ध यिां ंभी स्वणणमश मध्यमाग श का िी आश्रय लेते िैं। "िे कच्चान, यि संसार साधारणतया एक द्वैत या द्वय के ऊपर चलता िै त्जसका स्वरूप िै 'यि िै' एवं 'यि निीं'। ककन्तु िे कच्चान, जो कोई समय एवं ंपववेक के द्वारा देखता िै कक संसार में पदाथ श ककस प्रकार उमपन्न िोते िैं उसकी दृत्ष्ट में 'यि निीं' का भाव निींउपजता ।...जो कोई, िे कच्चान, समय और पववेक के द्वारा देखता िै कक संसार में वस्तुएं ककस प्रकार से पवलीन िो जाती िैं उसकी दृत्ष्ट में 'यि िै' का भाव इस जगत् ्में निीं ंरिता ।...िर वस्तु पवद्यमान िै' यि एक मसरे की उत्तत िै। िे कच्चान, और 'िरेक वस्तु निीं ंिै'

यि उसके पवपरीत दूसूरे मसरे की उत्तत िै। समय इन दोनों के मध्य का माग शिै।"[807] यि एक तनमाणश त्जसका न आहद िै, न अन्त िै। ऐसा कोई स्थायी क्षण निीं ंिै जबकक तनमाणश-कक्रया सत् ्की अवस्था को प्राप्त करती िै। जब िम इसका नाम और रूप के गुणों द्वारा ध्यान करेंगे तब तक तो उतने समय में यि बदलकर कुछ और िो जाती िै।'[808]

इस परमाथ-शप्रवाि के अन्दर िम वस्तुओंके पवषय में मसवा प्रकक्रयाओंके ककस प्रकार से पवचारने का उपक्रम करते िैं? और कोई साधन निीं ंिै। और क्रमागत घटनाओंकी ओर से िम आंखें बन्द कर लेते िैं। यि एक अस्वाभापवक पवचारपद्धतत िै त्जससे कक पररवतनश के प्रवाि में पवभाग वन जाते िैं और उन्िीं िी िम वस्तु किते िैं। पदाथों का तादामम्य (साम्य अथवा सामंजस्य) का भाव असत् ्िै। अवस्थाओं और सम्बन्धों द्वारा िी िम एक त्स्थर प्रतीत िोने ेवाले पवश्व का तनमाणश करते िैं। संसार को समझनेके मलए िमें नाना प्रकार के सम्बन्धों का प्रयोग करना पड़ता िै; यथा, पदाथ शऔर उसका गुण, सम्पूण शएवं उसका भाग, कारण और काय-शयि सब परस्पर-सम्बन्ध िै। सापेक्षता-सम्बन्धी जिन मुख्य पवचार, त्जन्िें िम अज्ञानवर् तनरपेक्ष अथवा पवरुद्ध समझ लेते िैं, ये िैं- प्रारम्भ एवं ंअन्त, त्स्थतत एवं ंसमात्प्त, एकमव एवं ंबिुल्य, आना और जाना। यिां ंतक कक सत्ता एवंअभाव भी परस्पर एक दूसूरे के आधश्रत िैं तयोंकक एक िी सम्भावना दूसूरे के बबना िो िी निीं ंसकती। ये सब सम्बन्ध आनुषंधगक या आकत्स्मक िैं, ककन्तु जरूरी निीं ंिैं। जैसाकक कांट ने किा, अपने-आपमें समय

निीं ्इस संसार में केवल आनुभववक संसार में अपना।काय शकरते िैं, अथात्[809] जब तक िम इन सीममत एवं सापेक्ष पवचारों को तनरपेक्षरूप से समय समझतेरिेंगे, िम अज्ञान के वर् में रिेंगे, और यि अज्ञान िी जीवन के दुःख का कारण िै। वस्तुओंकी यथाथतशा का ज्ञान िोने ेपर िमें यि प्रतीत िोगा कक तनरन्तर िो रिे पररवतनशों से उमपन्न पृथक् पृथक् पदाथों को तनमय एवं वास्तपवक या यथाथ शमानना ककतना असंगत एवं पववेकर्ून्य िै। जीवन स्वयंकोई वस्तु निीं ंऔर न िी ककसी वस्तु की दर्ापवर्ेष का नाम िै, वरन् ्एक तनरन्तर गतत अथवा पररवतनश का नाम िै। यिी वीजरूप में फ्ांसीसी दार्तशनक बगसशांका पवचार िै।

---

807 संयुत्ततनकाय। ओल्डनवग श: 'बुद्ध', पृष्ठ 249।

808 देणखए, संयुत्ततनकाय, 22: 90,16।

809 बुद्धघोष के अनुसार, काल का भाव "ककसी न ककसी घटना के द्वारा उमपन्न िुआ िै और प्रयोगमात्र से आया िै।" अमयसामलनी, अंग्रेजी अनुवाद, पृष्ठ 78।

पदाथों का सारूप्य केवल तनमाणश काय शके सातमय का ि◌◌ी दूसूरा नाम ि◌◌ै। बच्चा, लक़ा, युवक, अधे़ एवं ◌ं वृद्ध-सब एक ि◌◌ी ि◌◌ैं। बीज और वृकूष भी एक ि◌◌ैं। ि◌◌ार वष शपुराना वटवृकूष अपनेवीजसमेत विी एक पौधा ि◌◌ै त्जसका उसी बीज में से पवकास ि◌◌ुआ ि◌◌ै। यि तनरन्तरता या क्रममकता ि◌◌ी ि◌◌ै त्जसके कारण एक अबाधधत सारूप्य प्रतीत ि◌◌ोता ि◌◌ै। यद्यपप ि◌◌मारे रीरों के तत्त्व एवं ◌ंि◌◌मारी आममाओं की रचनाओं में तनरन्तर क्षण-क्षण में पररवतनश ि◌◌ोता रिता ि◌◌ै तो भी ि◌◌म कि सकतेि◌◌ैं कक यि विी पुरानी वस्तु ि◌◌ै या विी पिले वाला मनुष्य ि◌◌ै। एक वस्तु केवल अवस्थाओं की एक श्रृंखला ि◌◌ै त्जसमें पिली की़ दूसूरी का कारण ि◌◌ोती ि◌◌ै, तयोंकक ये सब कड़यां एक िी रूप में प्रतीत ि◌◌ोती ि◌◌ैं। प्रतीत ि◌◌ोने ◌ेवाला वस्तुओंका प्रमयेक क्षण का सारूप्य क्षणों का सात्तमय ि◌◌ी ि◌◌ै, त्जसे ि◌◌म सदा पररवतततश ि◌◌ोतेिुए सारूप्य की तनरन्तरता के नाम से कि सकते ि◌◌ैं। यि संसार अनेक घटनाओंसे ममलकर बना ि◌◌ै, जो सदा ि◌◌ी पररवतततश ि◌◌ोती रिती ि◌◌ैं; ि◌◌रेक घटना श्वास के साथ नये मसरे से बनती ि◌◌ै और दूसूरे ि◌◌ी क्षण में पवनष्ट ि◌◌ोती ि◌◌ै, और तुरन्त ि◌◌ी दूसूरा घटना-समि◌ू उनका स्थान ग्रिण कर लेता ि◌◌ै। इस द्रुतुगामी पुवानुशपरक्रम के पररणामस्वरूप द्रष्टा धोखे में आकर पवश्वास करने ◌ेलगता ि◌◌ै कक पवश्व की सत्ता त्स्थर ि◌◌ै-त्जस प्रकार एक उज्जज्जवल छ़ी जब चारों तरफ घुमाई जाती ि◌◌ै तो एक पूरूा चतकर-सा बना ि◌◌ुआ प्रतीत ि◌◌ोता ि◌◌ै। एक उपयोगी परम्परा के कारण ि◌◌में व्यत्तत को नाम व रूप प्रदान करना ि◌◌ोता ि◌◌ै। नाम व रूप का सारूप्य इस बात का प्रमाण निीं ◌ंि◌◌ै कक उनकी आन्तररक वास्तपवकता में भी सारूप्य ि◌◌ै। इसके अततररतत ि◌◌में स्वभावतः एक प्रकार के त्स्थर र्दत्ष्टकोण की कल्पना करने ◌ेके मलए भी बाध्य ि◌◌ोना पत़ा ि◌◌ै, ककन्तु यि पृथतकरण केवल पवचारगत ि◌◌ी ि◌◌ै। ि◌◌म किते ि◌◌ैं, "यि वषाशिो रिी ि◌◌ै," जबकक 'यि' नाम की कोई वस्तु ि◌◌ी निीं ◌ंि◌◌ै। गतत के अततररतत और ककसी पृथक वस्तु की सत्ता निीं ◌ंि◌◌ै, केवल कम शिी ि◌◌ै-पररणतत के अततररतत और कुछ निीं।

ककसी त्स्थर आधार के बबना भी संसार की अपवत्च्छन्नता की व्याख्या के मलए बुद्ध कारणकायभशाव के तनयम की घोषणा करते ि◌◌ुए इसे ि◌◌ी उतत अपवत्च्छन्नता का आधार बताते ि◌◌ैं। कारणकायभशाव का व्यापक तनयम एवं इसका स्वाभापवक पररणाम, अथात् श ◌्अनाहदकाल से तनमाणश काय शकी अपवत्च्छन्नता, भारतीय पवचारधारा को बौद्धमत की मुख्य देन ि◌◌ै। पररवतनश ि◌◌ी अत्स्तमव ि◌◌ै। यि एक-दूसूरे के पीछे क्रम से आने ◌ेवाली दर्ाओं ◌ंकी श्रृंखला ि◌◌ै। उमपाद (उमपपत्त), त्स्थतत, जरा (पवकास) एवं तनरोध (नार्) - सब पररवतनशों की ओर ि◌◌ी संकेत करते िैं। "यि समय जानो कक जो कुछ पवद्यमान ि◌◌ै सब कारणों एवं ◌ंअवस्थाओं से ि◌◌ी प्रादुभूतश ि◌◌ुआ ि◌◌ै और ि◌◌र ि◌◌ालत में अत्स्थर ि◌◌ै।" त्जस ककसी का भी कारण वतमशान ि◌◌ै वि अवश्य नष्ट ि◌◌ोगा।" चािे कोई भी तयों न ि◌◌ो, जो उमपन्न िुआ ि◌◌ै, इस सांसाररक रूप में आया ि◌◌ै एवं ◌ंसंगहित ि◌◌ै, वि अपनेअन्दर आवश्यक पवलयन का भाव रखे ि◌◌ुए ि◌◌ै।" "सब संयुतत पदाथों को अवश्य ि◌◌ी पुराना ि◌◌ोना ि◌◌ोगा।" ि◌◌रेक पदाथ शअवयवी या अंगयुतत ि◌◌ै और इसी की सत्ता मात्र पररवतनशों की तनरन्तरता ि◌◌ै, त्जनमें से प्रमयेक का तनणयश अपनी पूव शसे त्स्थत अवस्थाओं के कारण ि◌◌ोता िै। वस्तु ◌ुकेवल एक र्तत, एक कारण एवं एक अवस्था का ि◌◌ी नाम ि◌◌ै। इसी को धम शकिते ि◌◌ैं। "म ◌ैंतुम्िें धम शका उपदेर् दूंगा," बुद्ध किते ि◌◌ैं, "वि यहद उपत्स्थत ि◌◌ै तो इसका तनमाणश ि◌◌ोता ि◌◌ै। उसी के उदय ि◌◌ोने ◌ेसे इसका भी प्रादुभावश ि◌◌ोता ि◌◌ै। ककन्तु यहद धम शअनुपत्स्थत ि◌◌ै तो इसका तनमाणश शभी न ि◌◌ोगा; उसके अन्त ि◌◌ो जानेसे

इसका भी अन्त ि◌ो जाता ि◌ै।810 बुद्ध की र्दष्ट में भी उपतनषदों के ि◌ी समान समस्त संसार कारणों द्वारा तनयत्न्त्रत ि◌ै। जैसे उपतनषदों का किना ि◌ै कक वस्तुओंकी अपनी त्स्थतत, त्जस रूप में हदखाई देती ि◌ै, कुछ निीं ि◌ै, वरन् ◌्वे कारणों की श्रृंखला की उपज ि◌ैं त्जनका न आहद ि◌ै और न अन्त ि◌ै; वैसे ि◌ी बुद्ध का किना ि◌ै कक वस्तुएं अवस्थाओं की उपज ि◌ैं। उपतनषदों का भी प्राचीन बौद्धमत के समान इस पवषय में मत स्पष्ट ि◌ै कक इस

सदागतत पररवतनश एवं ◌ंअनाहद तनमाणप्रवाशमें मनुष्य के मलए त्स्थर पवश्राम का कोई स्थान निीं ◌ंि◌ै।

वस्तुओंके भौततक साम्राज्जय में त्जसे सत समझ सकतेिैं वि केवल 'पहटच्चसमुप्पाद' (प्रतीमयसमुमपाद) ि◌ै, त्जसका अथ शि◌ै कक एक वस्तु की उमपपत्त दूसूरी के ऊपर तनभरश करती ि◌ै। कायककशारण-सम्बन्धमस्वयंसिद्धि स्वतःपररवतनशरीॢल अथवा पररणततरीॢल ि◌ै। ककसी वस्तु का तत्त्व अथात् अन्ततनहशित सम्बन्ध का तनयम ि◌ै। सत् ◌् नामक ऐसा कोई पदाथ शनिीं ◌ंि◌ै जो पररवतततश ि◌ोता ि◌ो। पररवतनश ि◌ी स्वयंमें एक व्यवस्था का नाम ि◌ै। जैसे न्यायदर्नश में किा गया ि◌ै कक एक वस्तु दूसूरी वस्तु का कारण ि◌ोती ि◌ै, मि ऐसा निीं ◌ंकि सकते। तयोंकक एक वस्तु जैसी ि◌ै वैसी ि◌ै, और वि अन्य वस्तु निीं ◌ंि◌ो सकती। त्जस प्रकार संसार की प्रकक्रया चेतनारूप उमपपत्त से सम्बद्ध ि◌ै, इसी प्रकार कायकशारण-सम्बन्ध की र्त्तत का भी सम्वन्ध आन्तररक पे्रेरणा के साथ ि◌ै। ऐत्न्द्रय पवकास सब प्रकार के तनमाणशकाय शका नमूना ि◌ै। भूतकाल गततमान प्रवाि में ि◌ी णखंचंकर आता ि◌ै। बाह्य कारण माननेके माग शमें सबसे बी़ कहिनाई इस कारण से आती ि◌ै कक बाह्य जगत् ◌्में ि◌मारा ज्ञान घटनाओं ◌ंके सम्बन्धों तक ि◌ी सीममत रिता ि◌ै। ककन्तु ि◌म अपनी आन्तररक चेतना में जानते ि◌ैं कक ि◌मारी इच्छा ि◌ी कमों की तनणायशक ि◌ै। विी र्त्तत बराबर काय शकरती ि◌ै। जमनश दार्तशनक र्◌ोपनिावर इसे इच्छा के नाम से पुकारता ि◌ै एवं बुद्ध इसे ि◌ी कम शकिता ि◌ै। यिी एक वास्तपवक सत्ता ि◌ै, स्वयं में एक वस्तुिै त्जसका पररणाम समस्त जगत् ◌्ि◌ै। बाह्य संसार में कायकशारण-सम्बन्ध एक समान पूववशती बनता ि◌ै। यहद एक कारण पवद्यमान ि◌ै तो दूसूरा उमपन्न ि◌ो जाएगा। आधुतनक दर्नशर्ास्त्र के सब प्रयमनों के रितेभी कायकशारण के तनयम की पररभाषा इससे अधधक उपयुतत र्ब्दों में निीं ◌ंकी जा सकी। भौततकपवज्ञान के काल शपपयसनश जैसे पवद्वान किते ि◌ैं कक कायकशारण-सम्बन्ध के स्थान में परस्पर-सम्बन्ध के प्रवग शको रखना िोकि ि◌ोगा। कारण एवं काय शतनरन्तर ि◌ो रिी प्रकक्रया की पूववशती एवंपश्चाद्यती त्स्थततयों को ि◌ी दर्तत ि◌ैं। ि◌म पटनाओं के क्रम की व्याख्या कारणकाय-शसम्बन्ध के तनयम के द्वारा ि◌ी करते ि◌ैं, ककन्तु यि निीं ◌ंबतलाते कक ये घटनाएं ि◌ोती तयों ि◌ैं। अत्न्तम कारण भले ि◌ी अध्याममर्ास्त्र के क्षेत्र का पवषय ि◌ो ककन्तु गौण अथवा आनुषधगक कारणों तक तो ि◌मारे अपनेसिी तनरीक्षण की सीमा ि◌ै ि◌ी। बौद्धधम शका उद्देश्य दार्तशनक व्याख्या न ि◌ोकर वैज्ञातनक तनरूपण ि◌ै। इस प्रकार बुद्ध ककसी भी पदाथ शकी प्रस्तुत अवस्था को लेकर उसके कारण का उत्तर, उसकी उमपपत्त की अवस्थाओं का वणनश करके, आधुतनक पवज्ञान की र्दष्ट से भी देता ि◌ै।

कायकशारण-सम्बन्धी पवकास को गततयों को यात्न्त्रक परम्परा के रूप में ि◌ी न समझा जाना चाहिए तयोंकक उस अवस्था में संसार की प्रकक्रया पवलोप एवं नवीन सृजृन की श्रृंखला बन जाएगी, ककन्तु यि एक अवस्था के द्वारा दूसूरी अवस्था का तनमाणश ि◌ै, अथवा यों किें कक अपवरत रूप से ि◌ो रिे स्पन्दन की सूचना ि◌ै।

---

810 मत्ज्जझमतनकाय् 2/32।

यि भूतकाल से वतमशान का तनणयश करना ि। बौद्धधम शअतनमय कारणकायभशाव में पवश्वास करता ि त्जसमें कक एक अवस्था अपनी कारणर्त्तत को ककसी नये कण से संक्रान्त करती ि। कारणकाय शसम्बन्ध का उदिारण ि,

जैसे बीज वृक्ष के रूप में वृक्ष बन जाता ि, जिां कक एक पदाथ शअथात् बीज का िोना दूसरे पदाथ शअथात् आवश्यक ि। समस्त जीवन र्त्तत ि। यद्यपप िम र्त्तत की कायपशद्धतत को कभी निीं देख सकतेलेककन यि पवद्यमान ि और अपनी चेतना में िम इसकी उपत्स्थतत को अनुभव करते िैं। संसार की प्रकक्रया का स्वरूप एवं स्वयंभूत पवकास का ि। यि अनवरत रूप से एक-दूसरे के पीछे आती िुई घटनाओंकी माला-सी प्रतीत िोती ि जबकक यि एक अपवत्च्छन्न पवकास ि, त्जसकी तुलना अपवभाज्जय मधुर संगीतलिरी से की जा सकती ि। भूतकाल की वतमशान के साथ संसतत िो जानेकी प्रवृपृत्त रिती ि, त्जसका पवच्छेद पिले एवं पीछे के नैरन्तय शमें िमारे प्राकृततक व्यविार में िोता ि। तब जीवन केवल एक के बाद दूसरे के रूप में आ जाता ि, और जैसा नागसेन किता ि, कारणकायभशाव केवल तारतम्य का रूप ले लेता ि।

अत्स्थरता के मसद्धान्त को, त्जसे उपतनषदों एवं प्राचीन बौद्धमत दोनों ने समान रूप से स्वीकार ककया था, परवती बौद्धमत ने पवकमसत करके क्षणणकवाद के रूप में ला हदया। ककन्तु यि किना कक वस्तुएं अतनमय अथवा अत्स्थर िैं एक बात ि, और उन्िें क्षिणणक नाम देना दूसूरी बात ि। इन दोनों में भेद ि। बुद्ध का मत ि कक केवल चेतना क्षणणक ि, वस्तुएं क्षणणक निीं िैं, तयोंकक वे किते िैं: "यि प्रमयक्ष ि कक रीर एक वष श तक अथवा सौ वषों तक एवं उससे भी अधधक समय तक रिता ि। ककन्तु वि वस्तु त्जसे मन, बुद्धध या प्रज्ञा एवं चेतना किा जाता ि, हदन-रात एक प्रकार के चक्र के रूप में पररवततततश िोती रिती ि।"[811] बुद्ध का आर्य इससे यि हदखलाने का था कक रीर, मन आहद यथाथ शआममा के रूप निीं िैं। वे स्थायी भी निीं िैं। वस्तुओंको साधारणतः जब अस्थायी किा जाता ि, तो उससे तामपय शक्षणणकता से निीं िोता। बुद्ध जब मन के पवषय में किते िैं, केवल उसी समय वे ज्जवाला के दृष्टान्त का प्रयोग करते िैं। त्जस प्रकार एक दीपमर्खा ज्जवालाओं का तांता ि त्जसमें से प्रमयेक क्षणमात्र के मलए िी िरती ि, धचत्त की प्रकक्रया भी िीक उसी प्रकार की ि। वे मानमसक प्रकक्रयाओं के क्षणणक स्वरूप में एवं अमानमसक सत्ता के अस्थायी स्वरूप में स्पष्ट भेद का वणनश करते िैं। जब इस क्षणणक स्वरूप को अन्य समस्त अत्स्तत्वमात्र तक पवस्तृत कर हदया जाता ि तो यिी क्षणणकवाद किलाता ि। अवाचशीन बौद्धों के मत में सभी कुछ क्षणणक ि। उसका तकश ि कक स्थायी सत्ता स्वतः पवरोधी ि। अत्स्तमव का अथ शि कायक्षशमता संधधया 'अथकशक्रयाकाररत्त्य' । अत्स्तमव संसार के पदाथों की व्यवस्था में ककसी प्रकार का पररवतनश करने की क्षमता का नाम ि। बीज में अत्स्तमव ि, तयोंकक इससे अंकुर उमपन्न िोता ि। लेककन स्थायी पदाथों में पररवतनश लानेकी यि र्त्तत निीं िो सकती। यहद वस्तुओं में भूत, वतमशान और भपवष्य काल में पररवतनश न िोता तो वे मभन्न-मभन्न समयों में ममन्न-मभन्न प्रकार के काय शकैसे करतीं? यहद किा जाए कक संभाव्य र्त्तत तो स्थायी ि और यि वास्तपवक रूप में आ जाती ि जब अन्य कई र्त िैं पूरी िो जाती िैं, तो उसका उत्तर यि ि कक त्जसके अन्दर ककसी काय शको करने की र्त्तत िोती ि यि उसे कर देता ि और यहद निीं करता

[811] संयुत्त, 2 : 96। बुद्ध इतने तनत्श्चत रूप में निीं किते त्जतना कक वगसशां किता ि कक दोनों अथाश् चेतना एवं प्रकृतत के मध्य भेद केवल उनकी प्रसारणशील वास्तनाय की तरी, प्रवाक और सुस्वसमनक सामंजस्य और मतशा के प्रमाण का िी तो समझाने कक उसमें र्त्तत निीं ि। यहद अवस्थाओं के कारण पररवतनश िोना ि तब उन अवस्थाओं का िी केवल

अत्स्तमव ि ै और स्थायी वस्तुओंका अत्स्तमव निीं ंिै। यहद अत्स्तमव से तामपय शकायकशारणभाव की कायक्षशमता ै तिब जो सत् ्पदाथ र्शीं वे क्षणणक िैं। "यथाथ शमें एक जीपवत प्राणी के जीवन की अवधध बिुत िी संक्षक्षप्त ि ै,

अथात्जब तक पवचार रिता ि ै वि तभी तक रिती ि ै। जैसेकक एक रथ का पहिया घूमने ेके समय िाल के एक पवन्दुपुवरे्षे पर िी घूमता ि ै और िरनेके समय भी एक िी पवरे्षे पवन्दु ुपर ि रता ि ै, िीक उसी प्रकार एक जीपवत प्राणी का जीवन केवल पवचार के रिने ेके समय तक िी रिता ि ै। ज्जयोंिी वि पवचार समाप्त िुआ, जीपवत प्राणी भी समाप्त िुआ कि जाता ि ै।"[812] क्षणणकता के इस मत के अनुसार, जो बिुत प्रारत्म्भक काल में िी बौद्धधम शमें समा गया, गतत के स्वरूप को ग्रिण करना कहिन ि ै। जब एक र्रीर गतत करता प्रतीत िोता ि ै तो िोता यि ि ै कक वि तनरन्तर नये-नये रूप में आता रिता ि ै। प्रमयेक क्षण में वि कफर से उमपन्न िोता ि ै, त्जस प्रकार कक अत्न की ज्जवाला जो सदा िी नई िोती रिती ि ै और कभी क्षणमात्र के मलए भी एकसमान निीं ंरिती। प्रकृतत एक अप्रततित स्पन्दन ि ै एवं एक प्रकार का अनन्त पवकास ि ै जो केवल कायकशारण के तनयम की सुर्दढ़ श्रृंखला में चारों ओर से जका िुआ ि ै। यि तनरन्तर एवंपूण र्शी, एकाकी और अपवभाज्जय ि ै। जो कोई घटना घहटत िोती वि सत्–मांत्र के संपूण शचक्र में कम्पन पैदा कर देती ि ै, और इसी का नाम अपवरत पररवतनश ै। आममा से र्नूय इस पवश्वरूपी यंत्र में बौद्धधम शएक अनाहद पवश्वव्यापक तनयम अथवा सुव्यवत्स्थत पद्धतत का अनुभव करता ि ै। यि एक "पवर्ाल भंवरजाल या भूलभुलैयां ंि ै, ककन्तु बबना योजना के निीं ंि ै।"[813] पवश्व-व्यवस्था का चक्र चलता रिता ि ै। "बबना ककसी कत्ताश के और बबना ऐसे प्रारम्भ के त्जसका िमें ज्ञान िो और जो तनरन्तर रूप में कारण एवं ंकाय शकी श्रृंखला के स्वभाव के कारण पवद्यमान रिता ि ै।"[814]

पाली भाषा में पवश्व की व्यवस्था को तनयम का नाम हदया गया ि ै, अथवा इसे तनरन्तर गतत की पद्धतत भी कि सकतेिैं। बुद्धघोष के समय (पांचवीं र्ताब्दी ईसा के पश्चात्) ्से कुछ पूव शऔर पपटकों के संग्रि के पश्चात् ्पांच प्रकार की पवमभन्न व्यवस्थाएं बनाई गई, त्जनका नाम क्रमर्: इस प्रकार ि ै-कम्मतनयम अथवा कम शएवंउसके पररणाम की व्यवस्था, उतुतनयम अथात् श ्भौततक एवं तनजीव या ज़ की व्यवस्था; बीजतनयम अथवा वनस्पतत की व्यवस्था, ऐत्न्द्रय व्यवस्था; धचत्ततनयम अथात् श ्चेतनामय जीव की व्यवस्था; धम्मतनयम अथवा आदर् शकी व्यवस्था अथात्श ्आदर् शनमूना उमपन्न करने ेकी व्यवस्था। यि कम्मतनयम ि ै जो यि घोपषत करता ि ै कक अच्छे एवं बुरे कमों का पररणाम क्रमर्: उधचत एवं अनुधचत िोता ि ै। यि इस सावभशौम समय को प्रदमर्तश करता ि ै कक पवरे्षे पवरे्षे कम शचािे र्ारीररक िों चािे मानमसक, अन्त में करने वाले एवं उनके साधथयों को दु:ख देते िैं जबकक अन्य प्रकार के कम शदोनों को सुख पिुंचातेिैं। कम्मतनयम काय शके क्रम एवं ंपररणाम पर बल देता ि ै।

जीवनमय एवं ंगततयुतत यि मिान पवश्व जो सवदशा कक्रयमाण अवस्था में पररवतनशर्ील अवस्था में ि ै बढ़ता ि ै और प्रयमनर्ील ि ै, कफर भी अपनेकेन्द्र में एक तनयम को धारण करता ि ै। प्राचीन बौद्धधम शएवं ंवगसशां ं

---

812 पवसुद्धधमग्गअ्ध्याय। 8

813 पोप।

814 वृद्धघोष : पवसुदुधधमग्ग ,17।

के मत में यि मुख्य भेद ि। बगसशांके मत में जीवन का तामपय शि तनयम का अभाव, जबकक बुद्ध के मत में सम्पूण शजीवन सामान्य तनयम का एक र्दष्टान्त ि। जीव एवं तनयम के सम्बन्ध में बौद्धधम शका पवचार, भौततक पवज्ञान के आपवष्कारों पर उज्जज्जवल प्रकार् डालता ि और मनुष्य की गम्भीरतम मनोभावनाओंको साथकश बनाता ि। एक व्यवस्था की तनत्श्चतता उस भयावि दु:ख के भार को जीवन में से ओि लेती ि जो मानव-आममा के ऊपर दु:ख के कारण छाया िुआ ि, और भपवष्य को इस प्रकार आर्ापय बनाती ि। तयोंकक कोई भी व्यत्तत यहद वि प्रयमन करे तो संघष शएवं दु:ख से, जो जीवन के साथ-साथ िैं, परे पिुंचने की सामथ्य शरखता ि।

बौद्धधम शऔर उपतनषदों में जो मौमलक मतभेद प्रतीत िोता ि वि अध्याममर्ास्त्र द्वारा प्रततपाहदत एक ऐसी तनपवकशार और तनपवकशल्प सत्ता के पवषय में ि जो मनुष्य की भी यथाथ शआममा ि। यिां िमें यि तनणयश करना ि कक तया इस पवश्व की रचना र्ून्य या असत् से िुई ि और यि कक तया अन्त में यि र्ून्य में िी पररणत िो जाएगा। यि समय ि कक बुद्ध को जीवन के प्रविा में एवं संसार के चक्र में यथाथतशा का कोई केन्द्र अथवा स्थातयमव का कोई मसद्धान्त हदखलाई निींहदया, ककन्तु इससे यि पररणाम न तनकालना चाहिए कक संसार में र्त्तयों की िलचल के अततररतत और कुछ यथाथ शसत् ि िी निीं। मित्त्वपूण शप्रश्न उस एक आहदकरण के पवषय में ि जो प्रारम्भ में में इस चक्र को गतत में लाता ि। ककसने प्रेरणा दी ? यहद मन एक प्रविा ि और भौततक संसार दूसरा प्रविा ि तो सम्पूणरूशप कोई ऐसी सत्ता भी ि या निींत्जसमें ये दोनों िी समवेत िों ? यहद िमारा ध्यान इस अनुभवाममक जगत् तक िी सीममत िो तो िम निीं कि सकते कक संसार ककस पर अवत्स्थत ि–िाथी कछुए के ऊपर या कछुआ िाथी के ऊपर, एवं संसार का कारणकायसशम्बन्ध ईश्वर की रचना ि अथवा ककसी सारतत्त्व का पवकास, अथवा यि अपनेअन्दर से प्राकृततक रूप में िुई अमभव्यत्तत ि ? बुद्ध केवल घटनाओंको िी स्वीकार करते िैं। वस्तुएं पररवततशतिोती िैं। संसार में सत् कुछ निीं ककन्तुमात्र कक्रयमाण िी ि। इस त्स्थतत में सवोपरर यथाथसशत्ता पररवतनश का तनयम ि, और यि कारणकाय शका तनयम ि। युद्ध अन्तम कारण एवं आकत्स्मकता के पवषय में मौन िैं। पवश्व में आवश्यकता का र्ासन ि। अव्यवस्था भी निीं ि एवं मनमौजीपन का िस्तक्षेप भी निीं ि। ओल्डनवग शब्राह्मण एवं बौद्ध पवचारों के परस्पर मतभेद की व्याख्या इन

बर्क्रमेंकोसात् ि क ब्राह्मणों की कल्पना के अनुसार, समस्त तनमाणश जबकक बौद्धों की कल्पना सब प्रतीयमान सत् में कक्रयमाण का िी ज्ञान प्राप्त करती ि। संक्षेप में जिां ब्राह्मणधम शमें कारणकाय शके तनयम के बबना सत्त्व ि विांगौमयधम शमें कारणकाय-शतनयम ि बबना सत्त्व के।"[815] यि व्याख्या उन हदनों िी पद्धततयों के प्रमुख स्वरूपों के पवषय में अततर्योत्ततपूण शि जो मौमलक मसद्धान्तों में परस्पर सातत्यों के प्रपाणण भेद मभन्न-मभन्न पावों पर बल देनेके पवषय में ि। तयोंकक उपतनषदों में एवं बुद्ध के मत में भी, दोनों में एक समान, "यि पवश्व एक जीपवत इकाई (पूण)श ि जो बलयबद्ध एवं आमर्क मृमृयुको छोक़र प्रकटस्वरूप पदाथों एवं सुस्पष्ट भेदों के रूप में अपनेको पवभतत िोने देने से तनषेध करता ि।"[816] यि एक अपवभतत गतत ि। उपतनषदें केवल सत् को कक्रयमाण के बबना यथाथरूशप में ग्रिण निीं करतीं। उन्िोंने कक्रयमाण को भ्रान्तरूप निीं माना ि। ओल्डनबग शभी स्वीकार करता ि कक उपतनषदों के पवचारकों ने सत् के

---

815 बुद्ध',पृष्ठ 251 ।

816 ब्रैडले।

एक पक्ष को समस्त कक्रयमाण में देखा। कक्रयमाण जगत् ्को वे अवस्थाओंकी एक असम्बद्ध श्रृंखला निीं ं मानते। ि सकता ि, यि आभासमात्र ि परन्तु तो भी यथाथसशत्ता का ि आभास । उपतनषदें िमारा ध्यान इस पवषय की ओर आकृष्ट करती िुई कक प्रवाि के पीछे एक त्स्थर तत्त्व ि, एकमात्र पररवतनश के पवचार को एक तरफ िटा देती िैं। पररवतनश पवरेषे पररणामों में एक प्रकार के िेर-फेर व अदल-बदल ि अथवा एक त्स्थर तत्त्व के अन्दर आनुषंधगक घटना ि। जबकक पूण शइकाई स्वयंअपररवतनशरील ि, पररवतनश उसी पूण शइकाई के पवमभन्न पिलुओंके सापेक्ष पररणाम िैं। और यि क्रमबद्ध पवकास की अवस्थाएं तनयमों में आबद्ध िैं। बुद्ध यि निीं किते ेकक पररवतनशमात्र में एक कोई त्स्थर सत्ता भी ि त्जसमें पररवतनश िोता ि और न ि वे ेयि किते िैं कक पररवतनश ि तनमय त्स्थर ि जैसेकक उनके कुछ अनुयातययों ने उनके कथन की व्याख्या की ि। वस्तुओंके सत् ् की ओर से वे ेउदासीन िैं, और जो पवकास में िमारे कक्रयाममक प्रयोजनों से सम्बन्ध रखता ि केवल उसी को यथाथ शमानते िैं। ककन्तु यहद िम नागसेन के साथ सिमत िोकर यि भी मान लें कक िमारे आगे तो केवल एक श्रृंखला व मसलमसला ि ि तो िम बबना आगे यि प्रश्न ककए निीं ंरूक सकते कक यहद प्रमयेक वस्तु तनयत्न्त्रत ि तो तया अतनयत्न्त्रत भी कुछ ि ? बबना इसके कारणकाय शसम्बन्ध का तनयम स्वयंअपना पवरोधी ि जाएगा। यहद प्रमयेक घटना दूसूरी घटना के साथ उसके पयाप्शत कारण के रूप में सम्बद्ध ि और वि कफर अन्य घटना के साथ सम्बद्ध ि तो इस प्रकार से िमें ककसी के मलए भी पयाप्शत स्वतन्त्र कारण न ममलेगा। िमें ककसी न ककसी प्रकार कारण श्रृंखला से परे जाकर ककसी ऐसे सत् ्पदाथ शका आश्रय ढूंढना िोगा जो अपना कारण आप ि अथात्श ् स्वयम्भू ि और सब प्रकार के पररतवनशों के रितेुए भी अपनेमें अपररवततश रि। जब िम ऐसा कथन करते िैं कक क्षणभंगुर को िम क्षणभंगुर के रूप में जानते िैं तो िम इसे तनमय का पवरोधी बतलाते िैं और इस प्रकार के

इस सत्, अथवा स्थायी के पवरोधी, की यथाथसशत्ता का प्रश्न स्वभावतः उिता ि। या तो िम उस तनरपेक्ष सत्ता को बढ़नेवाला तत्त्व करके स्वीकार करें, अथवा िमें अवश्य स्वीकार करना िोगा कक कोई एक तनमयत्तत्त्व ि जो अपनेको अमभव्यतत करता ि और समस्त पररवतनश की प्रकक्रया के अन्दर अपनेअत्स्तमव एवं व्यत्ततमव को भी त्स्थर रखता ि। िर िालत में सत् ्अथवा एकरूपता का मसद्धान्त मानना ि पड़ता ि।

अरस्तू के मत में समस्त पररवतनश के मलए एकरूपता को स्वीकार करना आवश्यक ि। समस्त पररवतनश के अन्दर कुछ स्थायी अवश्य रिना चाहिए त्जसके अन्दर पररवतनश सम्भव ि सके। बबना स्थायी तत्त्व को स्वीकार ककए पररवतनश ि सके यि िमें सम्भव प्रतीत निीींिता। यिी समय मसद्धान्त िमें कांट ि 'सेकण्ड एनालॉजी आफ ऐतसपीररयसें' नामक पुस्तक में ममलता ि। "बबना त्स्थर सत्ता के, काल के सम्बन्ध सम्भव निीं।" 'क' के पीछे 'ख' के आने ेका तामपय शयि ि कक इससे पूव शकक 'ख' प्रारम्भ ि, 'क' समाप्त ि चुका। उनके बीच का सम्बन्ध, त्जसे िम अनुक्रम के नाम से पुकारतेिैं, न तो 'क' के मलए और न 'ख' के मलए ि रि सकता ि, ककन्तु ककसी ऐसी वस्तु के मलए अवश्य रि सकता ि जो दोनों के मलए एक समान उपत्स्थत ि। यहद एक-दूसूरे के पीछे आने ेवाली घटनाओंके अततररतत इस संसार में और कुछ न ि- अथात्श ्'ख' के प्रारम्भ िोने ेसे पूव श'क' का पवलोप ि जाना, एवं इससे पूव शकक 'ग' का प्रारम्भ ि, 'ख' का पवलुप्त ि जाना आहद-आहद तो इस प्रकार कोई मसलमसला निीं ंबि सकता। ककसी भी मसलमसले का सम्भव िोना उपलक्षक्षत करता ि कक एक सापेक्ष त्स्थर तत्त्व अवश्य ि। कोई न कोई तत्त्व ऐसा अवश्य िोना चाहिए जो स्वयंतो श्रृंखला के अन्तगतश न ि

ककन्तु िो त्स्थर, और त्जसके अन्दर पवलोप िोने ेकी श्रृंखला की प्रमयेक घटना घट सके और जो उस की़ को दूसूरी की़ के साथ जो़ सके। यहद िम यि मान लें कक प्रमयेक पररवतनश एक सापेक्ष स्थायी तत्त्व की ओर संकेत करता िै तो भी प्रमयेक वस्तु के सापेक्ष स्थातयमव की सम्भावना एक तनरपेक्ष स्थातयमव को उपलक्षक्षत करती िै। मि सम्पूण शव्यवस्था को केवल सम्बन्धों के एक पवस्तृतृ जाल के रूप में पररणत निीं ंकर सकते, जो केवल सम्बन्धों का िी एक पुंजमात्र िो, और त्जसके साथ सम्बन्ध िैं वि स्वयंमें कुछ भी न िो। यि एक प्रकार से पक्षी के बबना उ़न िै। परस्पर सम्बन्धों के कारण सूक्ष्मता समाप्त निींिो जाती। बुद्ध केवल अनुभवाममक संसार तक िी अपने ध्यान को रखनेके कारण सत् ्को एक असत्–प्रकक्रया के रूप में देखतेिैं। इसी मत को आधुतनक दर्नशर्ास्त्र में फ्ांसीसी दातर्शनक बगसशांने प्रचमलत ककया, अथात्श ्घटनाओंकी यथाथतशा संक्रमण अथवा कक्रयमण में तनहित िै, ककन्तु दुष्ुट पदाथों के अन्दर निीं। अपवद्या के कारण िी भ्रात्न्त से िमें वस्तुएं त्स्थर हदखाई देती िैं। ज्ञान िमें अन्तर्दत्शष्ट प्रदान करता िै त्जसके द्वारा िमें वस्तुओंकी अत्स्थरता समझ में आ सकती िै ककन्तु तो भी पररवतनश अपना स्वतन्त्र अत्स्तमव रखते िैं और कारण काय-शसम्बन्धी अन्ततनहशित तनयम के र्ासन में अपना काय शकरते िैं।

यहद िम क्षणणकता के पवचार को स्वीकार करें तो िमें कारणकाय-शसम्बन्धी एवं ंनैरन्तय शऔर उसके साथ स्थातयमव एवं ंएकरूपता को भी स्वीकार करना िोगा, अन्यथा संसार उच्छृंखल त्तियों का नग्ननृमृय मात्र रि जायगा और कफर उसको समझने ेके सब प्रयमन छो़ देने प़ेंगे। र्ंकर ने ऐसे कारणकाय शसम्बन्ध त्जससे स्थातयमव का संकेत ममलता िै, एवं ं। क्षणणकता के मसद्धान्त के बीच परस्पर असंगतत को इस प्रकार दर्ायशा िै: "बौद्धों के मत में प्रमयेक वस्तु की क्षणणक सत्ता िै। इस प्रकार जब दूसूरा क्षण प्रारम्भ िोता िै वि वस्तु जो पिले क्षण में वतमशान थी, पवलोप िो जाती िै और एक सवथशा नवीन वस्तु उमपन्न िोती िै। इसे प्रकार से आप इस धारणा को कक पिली वस्तु दूसूरी आगे आने ेवाली वस्तु का कारण िै अथवा यि कक दूसूरी वस्तु का काय शिै, पुष्ट निीं ंकर सकते। पिली वस्तु क्षणणकता की कल्पना के अनुसार समाप्त िो चुकती िै जबकक पीछे आने ेवाला क्षण प्रारम्भ िोता िै; इसका तामपय शयि िुआ कक पिली वस्तु अपनी सत्ता को खो चुकी िोती िै जबकक आगामी क्षण की वस्तु उमपन्न िोती िै और इसमलए पिली वस्तु नेदूसूरी वस्तु को उमपन्न ककया ऐसा निीं ंकिा जा सकता, तयोंकक अभाव (असत्)् भाव (सत्)् का कारण निीं ंिो सकता।"[817] इस तनदोष आपपत्त से बाद के काल के ककतनेिी बौद्ध भी818 सिमत िैं और उनका किना भी यिी िै कक समस्त पररवतनशों की ति में एक स्थायी तत्त्व िै। श्री सोजन किते िैं: "प्रमयेक वस्तु का अधधष्िान तनमय एवंस्थायी िै। जो कुछ क्षण-क्षण में पररवततततश िोता िै वि वस्तु की अवस्था या रूप िै इसमलए यि किना भूल िै कक, बौद्धधम शके अनुसार, पिले क्षण की वस्तु ु नष्ट िो चुकती िै जबकक दूसूरा क्षण प्रारम्भ िोता िै।"[819]

---

817 वेदान्तसूत्र अ़ध्याय 2:11औरआगे।

818 उदिारण के रूप में, सवात्शस्तवादी।

819 'मसस्टम्स आफ बुद्धधत्स्टक थॉट', पृष्ठ :34।

बुद्ध ने उपतनषदों के पवचारकों के समान इस सापेक्ष कक्रयमाण जगत् ्तक ि◌ी अपनेध्यान को सीममत रखनेके कारण, एक ऐसे सावभशौम और पवश्वव्यापी सवामशमरूप सत्ता की, जो प्रमयेक मानव-हृदय में धक्रन पैदा कर रिी ि◌ै और जो संसार का केन्द्र ि◌ै, स्थापना र्नीं ◌ंकी। केवल इसीमलए कक वि ज्ञान की पिुंच के बािर ि◌ै, ि◌म तनरपेक्ष परमसत्ता का तनषेध र्नीं ◌ंकर सकते। यहद यि सब जो कुछ ि◌ै तनयत्न्त्रत ि◌ै तो अवस्थाओं के रे्षे ि◌ो जाने पर सब रू्नूय ि◌ो जाएगा। ओल्डनबग शकिता ि◌ै: "सोपाधधक पदाथ शका धचन्तन केवल अन्य सोपाधधक के द्वारा तनयत्न्त्रत रूप में ि◌ी ककया जा सकता ि◌ै। यहद ि◌म केवल ताककशक पररणाम का एकमात्र अनुसरण करें तो जीवन की इस कल्पना के आधार पर यि सोचना असम्भव ि◌ोगा कक उपाधधयों की श्रृंखला समाप्त ि◌ो जानेपर मसवाय रू्नूय आकार् के और भी कुछ रि सकेगा।"[820] उपतनषदों के साथ सिमत ि◌ोकर बुद्ध मानतेि◌ैं कक संसार का स्वरूप जो ि◌मारी बुद्धध में आममा ि◌ै, अपनी सोपाधधक या सापेक्ष सत्ता ि◌ी रखता ि◌ै। ि◌मारी बुद्धध या प्रज्ञा ि◌में बाधधत करती ि◌ै कक ि◌म एक तनरुपाधधक सत् ्की स्थापना करें त्जसके कारण समस्त अनुभव की श्रृंखला सम्भव िोती ि◌ै। और यि इष्ट वस्तु सत् ्उन श्रृंखलाओंमें से कोई कड़ी न ि◌ोनी चाहिए। आकत्स्मकता एवं ◌ंतनभरशता के तनयम से सवथशा मुतत ि◌ोने ◌ेके मलए इसे आनुभपवक उपाधध र्नीं ◌ंि◌ोना चाहिए। तो भी ि◌म इसे आनुभपवक श्रृंखला से सवथशा पृथृक् र्नीं ◌ंकर सकतेतयोंकक उस अवस्था में उतत सत्रूपू उपाधध अयथाथ शमसद्ध ि◌ोगी। प्रमयेक वस्तु ि◌ै और र्नीं ◌ंभी ि◌ै ऐसी ि◌में प्रतीत ि◌ोती ि◌ै; यि एक ि◌ी समय में सत् ्एवंकक्रयमाण दोनों ि◌ै। प्रमयेक घटना ि◌में अपने से परे ककसी पूवूवशती पवद्यमान आकृतत में से गुर्ने ◌ेके मलए बाधधत करती ि◌ै त्जसके अन्दर से तमसमान इस घटना का प्रादुभुावश ि◌ुआ ि◌ै। यि कल्पना कक प्रमयेक पवद्यमान वस्तुि◌ै और र्नीं ◌ंभी ि◌ै, यथा ि◌ै एवं ◌ंअयथाथ शभी ि◌ै, कक्रयमाण-पवषयक आदर्वशाद द्वारा प्रस्तुत ि◌ै त्जसके अनुसार कक्रयमाण केवल सत् ्का पवकास ि◌ै। बुद्ध के उपदेर्ों की मुख्य प्रवृपृत्त यिी ि◌ै। दो पवरोधी गुणों की मध्यस्थता से ि◌ी सब पदाथों की सत्ता ि◌ै और जिांतक इस संसार का सम्बन्ध ि◌ै, ि◌म इसमें से सत् ्एवंकक्रयमाण को पृथृक् पृथृक् र्नीं ◌ंकर सकते। यहद ि◌म दोनों में से ककसी एक को भी पृथृक् करने ◌ेका प्रयमन करें और उसके अकेले पृथृक्स्वरूप का तनणयश करें तो कफर समस्त कल्पना का भवन धगर पड़ेगा और अपनेपीछे अभावाममक रू्न्य को छोड़ जाएगा। आनुभपवक सत् ्एक मध्यस्थ वस्तु ि◌ै जो पवकास ि◌ै और असत् ्से सत् ्की ओर गतत ि◌ै त्जसे कक्रयमाण कितेि◌ैं। बुद्ध ऐसे तकश की तनष्फलता को खूब समझतेि◌ैं जो इत्न्द्रयगम्य पदाथों एवं ◌ंपवचार को इस रूप में प्रततपादन करता ि◌ै कक वे तनयत एवं स्थायी वस्तुएं ि◌ैं जो अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखती ि◌ैं जबकक वस्तुतः एक तनमय यथाथसशत्ता की प्रकक्रया के, अमभव्यत्तत की हदर्ा में, पवपवध रूप ि◌ैं। तनरपेक्ष परम समय के प्रतत बुद्ध का मौन धारण यि संकेत करता ि◌ै कक उनके मत में तनमयतत्त्व घटनाओंकी व्याख्या के मलए उपलब्ध र्नीं ◌ंि◌ै। अनुभव ि◌ी सब कुछ ि◌ै त्जसका ि◌में ज्ञान ि◌ोता ि◌ै और तनरपेक्ष उस अनुभव से परे का पवषय ि◌ै। ऐसे पवषय कों जो सदा ि◌ी ि◌में चतकर में डाल दे, ग्रिण करनेके मलए प्रयमन करना तनष्फल ि◌ै और उसके मलए अपना समय नष्ट करना उधचत र्नीं। मानव ज्ञान की सापेक्षता की सिी-सिी व्याख्या ि◌में यि स्वीकार करने ◌ेको बाध्य करती ि◌ै कक ककसी स्थायी तत्त्व की पवद्यमानता को मसद्ध करना असम्भव ि◌ै। यद्यपप बौद्धधम शऔर उपतनषदें दोनों ि◌ी पदाथ शको तनरपेक्ष सत्ता को तनरन्तर पररवतततश ि◌ोने ◌ेवाली श्रृंखला के पररणाम के रूप में देखने से तनषेध करते ि◌ैं, कफर भी दोनों में अधधक

820 ओल्डनबग श: बुद्ध',पृषृ 277

 से अधधक भेद यि ि कक जि ाँएक ओर उपतनषदें पररवतनश अथवा कक्रयमाण से परे एवं

ˈउससेपृथृक् एक

यथाथसशत्ता की घोषणा करती ि वािाँबौद्धधम शइस प्रश्न पर अपना तनणयश देना स्थधगत रखता ि। ककन्तुककसी प्रकार भी इस अस्वीकृततपरक त्स्थतत को परम सत्ता का तनषेध न समझ लेना चाहिए। यि सोचना असम्भव ि कक बुद्ध संसार की इस दौ में ककसी भी स्थायी सत्ता को स्वीकार न करते िों और न ऐसे िी ककसी पवश्रामस्थल को स्वीकार करते िों जि ाँपिुंचकर इस पवश्व की िलचल से उद्पवग्न मनुष्य का हृदय र्ात्न्त प्राप्त कर सके। बुद्ध ने भले िी तनरपेक्ष परमसत्ता के प्रश्न पर कुछ उत्तर देनेसे तनषेध ककया िो जो आनुभपवक जगत् ्के पवमभन्न वगों से पृथृक् एवं ंपरे ि, ऐसा प्रतीत िोता ि कक उन्िेंइस पवषय में सन्दिे बबलकुल निींथा। "ि मभक्षुओ, एक ऐसी सत्ता ि जो अजन्मा, अनाहद, स्वयंभू, केवल एवंपवरुद्ध स्वरूप ि तयोंकक ऐसी सत्ता न िोती तो जन्म, तनमाणश और संयोग-पवयोग आहद के अधीन इस जगत् ्से छुटकारा कैसे सम्भव िोता।"[821] बुद्ध एक ऐसी तात्त्वकी यथाथसशत्ता में आस्था रखते थे जोकक दृश्यमान जगत् ्के चंचल एवं आभासस्वरूप पदाथों की पृष्ठभूमम में सदा त्स्थर रिती ि।

9. पररवतनशर्ील जगत् ्

यथाथ शसवांइससंसारकेप्रतितितिमहुष्यकी प्रधान प्रवृपृत्त पवश्व को एक तनरन्तर प्रवाि के रूप में प्रस्तुत करने ेकी ओर ि जो 'तनस्सत्त' अथात्श ्स्वयंमें असत् ्ि, एवं ं'तनज्जजीव' अथात्श ् आममपविीन ि। वि जो कुछ भी ि 'धम्म' ि अथात्श ्अवस्थाओं का वगीकरण मात्र ि। यि अयथाथ शतो ि, ककन्तु असत् ्निीं। तो भी प्राचीन बौद्धदर्नश में ऐसे वातय पाए जाते िैं जो संसार की एक पवरुद्ध पवषयी पवज्ञानपरक व्याख्या का समथनश करते िैं। पदाथों से भरपूर संसार जीवाममा रूपी पवषयी द्वारा तनयत्न्त्रत ि। यि िम सबके अन्दर ि। "म ैंतुम्िें बताता िूं कक यि र्रीर िी, जोकक ममय शी, चारिाथ भर लम्बा ि, ककन्तुसचेत ि एवं बुद्धधसम्पन्न ि, और इस र्रीर की वृद्धध व िास एवं ंवि प्रकक्रया िी जो र्रीर को अवसान की ओर अग्रसर करती ि, वस्तुतः जगत् ्ि।"[822] बुद्ध ऐसे एक मभक्षु को जो इस प्रश्न को लेकर बेचैन ि, कक मोक्ष के पश्चात् ्तया रिता ि, बतलाते िैं: "इस प्रश्न को इस प्रकार से रखना चाहिए-'किांअब आगे को पृथृवी निीं ंि, न जल ि न अत्ग्न ि न वायु ि; किां ंपर जाकर लम्बा और छोटा, पवर्ाल एवं'लघु, अच्छा एवं ंबुरा सब एक में पवलीन िो जाते िैं ? कि ाँजाकर प्रमाता एवं प्रमेय पूणरूशप से तनःर्ेष िोकर पवलोप िो जाते िैं ?' इसका उत्तर ि- 'चेतना के कम शपविीन िो जानेसे एवं ंतनःर्ेष िो जानेसे सब कुछ पवलोप िो जाता ि।'[823] प्रमाता या पवषयी के ऊपर िी संसार त्स्थत ि; उसके साथ िी वि प्रादुभूतश िोता ि और उसी के साथ पवलुप्त िो जाता ि। इस आनुभपवक संसार की सब सामग्री ऐसी ि जैसी सामग्री से िमारे स्वप्न बनते िैं। संसार की सब समय घटनाएं

---

821 उदान, 8: 3।

822 र्ी डेपेवड्स : 'डायलॉग्स आफ द बुद्ध', पृष्ठ 279। यि भी सुझाया गया ि कक त्जन्िेंज्ञान का प्रकार् ममल गया ि उनके मलए संसार का अत्स्तमव निीं ि।

823 दिाल्के : 'बुद्धधस्ट एसे', पृष्ठ 310।

मनोभावों की श्रृंखला मात्र िैं। िम निींजानते कक वे वस्तुएं त्जनका वणनश िमारे पवचारों द्वारा िोता िै, िैं या निीं। संसार का चक्र कम शकी र्त्त का पररणाम िै और अज्ञान के कारण िै। ऐसे भी वातय िैं त्जनमें इस व्याख्या का समथनश पाया जाता िै कक संसार का पववरण एक िी यथाथसशत्ता के व्यत्ततगत रूप में िुआ

पररवतनश

िै, त्जस सत्ता में स्वयंन कोई ब्यौरा िै और न िी व्यत्ततमव िै। ये वेअकृततयां ंिैं त्जर्न्ें सत्ता धारण करती िै जब ये ज्ञान का पवषय बनती िैं। जबकक प्रथम मत संसार को एक स्वप्न के रूप में पररणत कर देता िै एवंप्रवाि के पीछे अभावाममक रू्नूय की िी स्थापना करता िै, पपछला मत ज्ञानगम्य संसार को एक अनुभवातीत सत्ता के आभास मात्र के रूप में ला पटकता िै।824 पपछला मत अधधकतर कांट के मत के अनुकूल िै जबकक पिला अधधकतर बकशले के मत के समान िै। िम यि भी किते िैं कक पपछली व्याख्या र्ोपनिावर की कल्पना से ममलती िै, त्जसके अनुसार आध्यात्ममक मसद्धान्त िै 'जीपवत रिनेकी इच्छा,' और समस्त भौततक पदाथ शएवं मनुष्य उसी एक जीपवत रिने ेकी इच्छा के पवषय िैं। कभी-कभी यि भी प्रततपादन ककया जाता िै कक िमारी अपूणतशा, त्जसे अज्ञान किा जाता िै, तनरन्तर पवश्व-रचना-सम्बन्धी प्रकक्रया को पवभतत करके व्यत्ततयों एवं पृथक् पृथक् वस्तुओंमें पररणत कर देती िै। ऐसे कथनों की भी कमी निीं ंिै त्जनके अनुसार संयुतत पदाथ शज्ञान के उदय िोनेपर ततरोहित िो जाते िैं, और पीछे आहदम तत्त्वों का तथ्य िी रि जाता िै। लीब्नीज का मत िै कक सरल पदाथ शस्थायी िोतेिैं, और संयुतत पदाथों का पवलीन िो जाना अवश्यम्भावी िै। प्राचीन बौद्धमत की कल्पना में भी यिी बात पाई जाती िै। वि आममा को भी एक संयुतत पदाथ शमानता िै और इसीमलए आममा को भी पवलय के अधीन मानता िै। सरल एवं अपवनार्ी तत्त्व मुख्यतः ये िैं-पृथ्वी, जल, प्रकार् और वायु त्जनमें वैभापषक लोग एक और तत्त्व, अथात्श ्आकार्, को भी जो़ देते िैं। कई वातयों में तनरपेक्ष आकार् को भी यथाथसशत्ता माना गया िै, जैसेकक मभक्षुआनन्द की इस त्जज्ञासा के उत्तर में कक भूचालों का कारण तया िै, बुद्ध का किना था कक "िे आनन्द, यि मिान पृथ्वी जल पर आधश्रत िै, जलवायु के ऊपर आधश्रत िै और वायु आकार् में आधश्रत िै।"[825] "श्रद्धेय नागसेन, इस संसार में ऐसे प्राणी पाए जाते िैं जो कम शके द्वारा इस जन्म में आए िैं और दूसूरे ऐसे िैं जो ककसी कारण के पररणामस्वरूप िैं, और ऐसे भी िैं जो अनुकूल अवसर पाकर उमपन्न िोते िैं। मुझे ेबताओ कक तया कोई ऐसी वस्तु िै जो इन तीनों में से एक भी श्रेणी के अन्दर न आ सकती िो ?" "िां,ं ऐसी दो वस्तुएं िैं-आकार् (देर्) एवं ंतनवाणश ।826 बुद्ध ने कक्रयमाण जगत् ्की कोई स्पष्ट व्याख्या िमारे सामने

निीं ंरखी िै। तनःसन्देि नाना प्रकार के सुझाव जिां–तिां हदए गए िैं और परवती बौद्ध सम्प्रदायों ने उनकी एकपक्षीय व्याख्याएं कर डाली िैं। नागसेन ने अधधकरणतनष्ि (अन्तःसृतूष्टपवषयक) पवचारपद्धतत को िी अपना आलम्ब बनाया िै। उसके मत में एक वस्तु अपनेपवमर्ष्ट गुणों के सत्म्मश्रण के अततररतत और कुछ निीं ंिै। र्रीर के अंदर अस्थायी मनोभावों के अततररतत और कुछ सार निीं ंिै। वस्तुएं केवल संवेदनाओं के सत्म्मश्रणों के मानमसक प्रतीकमात्र िैं। चारों सम्प्रदायों में से एक का तो यिां ंतक किना िै कक प्रकृतत और कुछ निीं,ं केवल मन के प्रमयक्ष ज्ञानपवषय का एक कत्ल्पत खेल िै। दूसरे का किना िै कक मन िी सब कुछ िै। एक

824 'कथावस्थ' में (औङ्ग एवं ममसे् डेपवड्स द्वारा 'पाइंट्स आफ कण्रोवसी' की र्ीषकश देकर अनुवाहदत) तनरुपाधधक यथाथसशत्ताओं ंमें आकार्, तनवाणश और चार आयसशमयों का उल्लेख ककया गया िै।

825 दीपतनकाय, 207।

826 मममलन्द, 4।

तीसरा सम्प्रदाय रू्न्यवाद का िी प्रततपादन करता िै और आग्रिपूवकश किता िै कक संसार न यथाथ शिै, न कत्ल्पत िै और न िी दोनों प्रकार का िै एवं ंऐसा भी निीं ंकक दोनों में से एक भी न िो। बुद्ध ने अनुभव ककया कक बाह्य सत्ता की समस्या का समाधान करना उनका काम निीं ंिै। उनके मलए इतना कि देना िी पयाप्शत था कक कक्रयमाण के प्रवाि के मध्यं में मनुष्य अपनेको तन:सिाय पाता िै त्जस प्रवाि को न तो वि रोक सकता िै और न त्जसका तनयन्त्रण िी कर सकता िै, और यि कक जब तक उसके अन्दर जीवन की तृष्णा बनी रिेगी, वि संसार की अगाध अन्धकारमय गिराइयों के अन्दर इधर से उधर झटके खाता रिेगा, और यि कक इस अर्ान्त संसार में र्ात्न्त प्राप्त करने ेकी कोई सम्भावना निीं। "उन व्यत्ततयों के मलए जो जलती िुई आग के बीच फंसे िैं, आगे के पवषय को लेकर पववाद करने ेका अवसर निींिोता अपपतुउसमें से छुटकारा पाने का प्रश्न उनके सामने िोता िै।"[827]

10. जीवाममा

र्रीर और मन का द्वैतभाव कक्रयमाण का िी एक अंग िै, यि सम्पूण शइकाई के दो भेदक पक्ष िैं, तयोंकक सब वस्तुएं एक-दूसूरे के साथ एक िी तनरन्तर पवकास के मभन्न-मभन्न पिलू िोनेके रूप में सम्बद्ध िैं। जीवन तनमय अवश्य िै ककन्तु वि सदा िी चेतना के साथ जुा िुआ निीं िै। इस पवश्व में ककसी भी पववाद-पवषय पर ऐसे िी सम्बन्ध की दृत्ष्ट से पवचार ककया जा सकता िै जो एक वस्तु का अन्य सब गततमान वस्तुओंके साथ िै, और जब इस प्रकार का सम्बन्ध पवषय चेतना से भी युतत िो तो उसे िी िम जीवाममा किते िैं। समय के प्रमयक्ष ज्ञान के मलए पवषयीतनष् किेन्द्रों का िोना आवश्यक िै।

पवषयी या प्रमाता मनुष्य का आनुभपवक जीवन िै जो बढ़ता िै और पररवतनश के भी अधीन िै। उपतनषदें बलपूवकश घोषणा करती िैं कक मनुष्य की यथाथ शआममा र्रीर अथवा मानमसक जीवन से पृथक् िै तो भी िै। मानमसक प्रकियाओं को मनुष्य अप्राकृततक गुणों के संयोग से िी जीवाममा का तनमाणश रिक वस्तु की भांतत एक संत्श्लष्ट अथवा संयुंतत पदाथ शिै। बौद्ध इसे संसं्कार किते िैं, जो एक संगिन िै। सब आममाओं में, बबना ककसी अपवाद के, उनको बनानेवाले भागों में परस्पर सम्बन्ध िमेर्ा पररवततत्श िोता रिता िै। वि एक-दूसूरे के पीछे आने ेवाले दो क्षणों में कभी एक-सा निींरिता, ककन्तु अनन्त अवस्थाओंमें एक समान चलता रिता िै।828 र्रीर और मन दोनों में तनरन्तर पररवतनश िो रिा िै ककन्तु मन के अन्दर र्रीर को क्षणभंगुरता अधधक स्पष्ट और प्रवाि अधधक वेगवान रूप में देखे जा सकतिैं इसमलए यहद िम ककसी के पवषय में त्स्थरता की बात करें तो यि मन की अपेक्षा अधधकतर र्रीर के पवषय में िी िोगी।829

---

827 मत्ज्जझमतनकाय, खण्ड 1, पृष्ठ 28।

828 देखें, मितनद्रेस, पृष्ठ 117; पवसुदु्धधमग्ग, 8; वारेन : 'बुद्धधश्म इन रांसलेर्न्स', पृष्ठ 150।

829 संयुत्ततनकाय, 2 : 94 और 95। 'िीनयान अमभधममशिापवभाषार्ास्त्र' नामक मिाग्रन्थय के अनुसार चौबीस घण्टे के एक हदन में छः अरब, चालीस करो़, तनन्नानवे िार, नौ सौ अस्सी क्षण िोते िैं, तथा पांचों स्कन्ध प्रततक्षण बारम्बार उमपन्न और नष्ट िोतेिैं। (देखें, यमकामी सोजेन 'मसस्टम्स आफ बुद्धधत्स्टक थॉट', पृष्ठ 11)।

सत् ्की जीवाममता एक अस्थायी अवस्था ि ै जो सदा बढ़ती रिती ि ै। री़ डेपेवड्स का किना ि ै । "परस्पर संयोग के बबना जीवाममा बन निीं ंसकती, एवं ंसंयोग कक डेपेवइस का के सम्भव निीं ंिो सकता; कक्रयमाण बबना एक मभन्न कक्रयमाण के सम्भव निीं ंि ै, और बबना पवभाग िुए मभन्न कक्रयमाण सम्भव निीं ंिो सकता; यि एक ततरोभाव ि ै जो आगे-पीछे कभी न कभी अवश्य पूण शिोगा।'[830] यि एक र्ाश्वत एवं ं अपवत्च्छन्न प्रकक्रया ि ै त्जसमें स्थायी कुछ निीं ंि ै। नाम और रूप कुछ भी स्थायी निीं ंि ै।'[831] वाराणसी में इपषपतन नामक स्थान के पांच तपत्स्वयों को, त्जनका मुणखया कौत्ण्डन्य था, आममा के अभाव पर दूसूरा उपदेर् हदया गया था। "यि र्रीर तनमय आममा निीं ंि ै तयोंकक यि नष्ट िोनेवाला ि ै, और न िी भावना, प्रमयक्ष, मनोवृपृत्त और बुद्धध सब ममलकर आममा का तनमाणश कर सकते ि ैं, तयोंकक यहद ऐसा िोता तो यि भी कभी सम्भव न िोता कक चेतना भी उसी तरि नार् की ओर प्रवृतृत िोती ।" "िमारे रूप, भावना, प्रमयक्ष, मनोवृपृत्त और बुद्धध ये सब क्षणणक ि ैं और इसमलए अशे्रेय ि ैं और स्थायी एवं ंशे्रेयस्कर निीं ंि ैं। वि जो क्षणणक ि ै, अशे्रेय ि ै और पररवतनश के अधीन ि ै, तनमय आममा निीं ंिो सकता। इसमलए समस्त भौततक रूपों के पवषय में चािे वे जैसे भी िों, भूत, वतमशान और भपवष्यत् ्पवषयीतनष्ि अथवा पवषयतनष्ि, दूरू अथवा समीप, ऊंचेया नीचे, यिी धारणा रखनी चाहिए कक "यि मेरा निीं, ं यि म ैं निीं ंिूं ूं, यि मेरी तनमय आममा निीं ंि ै।"[832] वेदल्लसुत्त में धम्महदन्न किता ि ै "अज्ञानी एवं ंपवधमी मनुष्य आममा को दिेधारी मानता ि ै अथवा ऐसा पदाथ शत्जसका र्रीर िो, यहद यि निीं ंतो वि आममा को भावना का रूप समझता ि ै, अथवा ऐसा कोई पदाथ शत्जसमें भावना िो अथवा भावना िी आममा में िो।" इस तकश की पुनुरावृपृत्त अन्य स्कन्धों के साथ भी की गई ि ै। आममा अथवा पुद्गल, अथवा सत्त्व (जीपवत प्राणी) अथवा जीव इनमें से एक भी स्थायी निीं ंि ै। िमें मनुष्य के अन्दर ऐसी ककसी अपररवतनशर्ील वस्तु एवं तनमयतत्त्व का ज्ञान प्राप्त निीं ंि ै।'[833] केवल कारणों एवं कायों की श्रृंखलाएं िी िमारे सामने ि ैं। मनुष्य पांच स्कन्धों से ममलकर बना िुआ एक संयुतत पदाथ शप्रतीत िोता ि ै। उपतनषदों में वणणतश नामरूप के आधार पर

िी स्कन्धों की कल्पना पवकमसत की गई ि ै। यिां ंिमारा प्रततपाद्य पवषय यि ि ै कक समुमपादक तत्त्वों अ**थात्**्रूप (प्राकृततक, भौततक) और नाम (मानमसक) के अततररतत िमारे पास और कुछ प्रतीत निींिीिता।

सुरंगमसुत्त में आनन्द का स्थान र्रीर के अन्दर अथवा उसके बिार एवं ंइत्न्द्रयों के पीछे आहद बताने के प्रयमनों पर पववाद ककया गया ि ै।834 िम स्थायी आममा की खोज व्यथ शमें िी मत्स्तष्क के अन्दर, इत्न्द्रयों के अवर्ेषों में अथवा व्यत्ततमव को बनानेवाले अवययों में करने ेलगतिैं। आममा नाम की एक असम्बद्ध र्त्तत की स्थापना, बौद्धों के मत में, कम शके तनयम के पवरुद्ध जाती प्रतीत िोती ि ै, तयोंकक साधारण लोग आममा को डडब्बे के अन्दर बन्द एक जीपवत जन्तु ुके समान मानतिैं, जो सब प्रकार की चेष्टाओंका मुख्य रूप में कत्र्ता ि ै।

830 'द ररमलजस मसस्टम्स आफ द वल्ड'श, पृष्ि 142।

831 मिावग्ग, 16:38 और आगे।

832 मिावग्ग, 1 21।

833 देणखए, संयुत्ततनकाय, 4:54 ।

834 पत्श्चमी देर्ों के मनोपवज्ञानर्ास्त्र के पवद्वान इस प्रकार के प्रवल्लों में रत रिते ि ैं कक वे आममा का 6 स्थान तनदेर् र्रीर के अन्दर, मेरुदण्ड के अन्दर, मत्स्तष्क में, अथवा ऐसे िी ककसी बबन्दुपुवर्ेषे में कर सकें।

 श्रीमती री़ डेपेवड्स के ब्दों में: "बौद्धधम शका 'अत्ता' के पवपक्ष में तकश मुख्य रूप से और बराबर

ी आममा के
पवचार के पवरुद्ध प्रततपाहदत ककया गया ि, जो न केवल तनरन्तर अपररवतनशरी्ल, आनन्दमय, पुनजन्शम लेने वाला आनुभपवक जगत् ्से ऊपर एक सत् ्ि ककन्तु ऐसा सत् ्भी ि कक त्जसके अन्दर परम आममा अथाशत्

पवश्वाममा भी तनहित ि, त्जसके र्ारीररक एवं मानमसक अवयव भी िैं और जो आदेर् देता ि।"[835] ककन्तु ु उपतनषदों में प्रततपाहदत आममा पुनजन्शम प्राप्त करने ेवाली आममा निीं ंि। उपतनषदों का एक अन्य भ्रमाममक पवचार, त्जसका बुद्ध ने खण्डन ककया ि, वि ि त्जसके अनुसार आममा को सब प्रकार के भेदों से रहित एक अमूत शएकता के रूप में माना गया ि। यहद यि ऐसा ि तो तनश्चय िी यि अभावाममक ि, जैसाकक बिुत समय पूव शइन्द्र ने किा था।

एक और कारण त्जसने ेबुद्ध को आममा के पवषय में मौन रिने ेकी प्ेरेरणा दी, यि था कक उन्िें पवश्वास था कक साधारण आममा को स्वीकार करने की जो मूल प्रवृपृत्त ि विी सब आत्ममक पाप की तछपी िुई ज़ ि। जीवाममा सम्बन्धी अिंकार का जो प्रचमलत भ्रान्त पवचार ि वे ेउसका खण्डन करते िैं और आममा की यथाथतशा को अस्वीकार करते िैं। आममा के पवषय में त्जतने ेअसमय पवचार िैं उन सबका वे ेप्रततवाद करते िैं। वे पदाथ श त्जनके साथ िम अपनेको एकरूप बनातिैं, समय आममा निीं ंिैं। "बंधुओं, चूंकक न तो आममा को और न िी आममा से सम्बन्ध रखनेवाली ककसी अन्य वस्तुको वस्तुतः और यथाथ शमें स्वीकार ककया जा सकता ि, यि धमद्रशििी त्स्थतत निीं ंि, त्जसके मत में 'यि संसार ि और यि आममा ि और म ैंभपवष्य में भी बना रिूंगा, स्थायी, अपररवतनशरी्ल एवं ंतनमय और ऐसे स्वरूप का त्जसमें कोई पररवतनश निीं ंि, म ैंअनन्त काल तक बना रिूंगा।' ि बन्धुओं, तया यि केवल मूखो का मसद्धान्त निीं ंि ?"[836] जीवाममा की तनरन्तरता के िी असमय पवचार का बुद्ध ने तनराकरण ककया ि। िम दो क्षणों में भी एक साथ एक समान निीं ंरितेतब कफर ककस जीवाममा की तनरन्तर सत्ता की िम अमभलाषा करते िैं?"[837] बुद्ध उस सवचेशतनवाद का खण्डन करते िैं जो प्रमयेक पदाथ शमें जीवाममा को घुसाना चािता ि। वे एक ऐसे अज्ञात अधधष्िान का तनषेध करते िैं त्जसे कुछ लोग गुणों के आधार के रूप में प्रततपाहदत करते िैं तयोंकक उसका स्वरूप िमसे तछपा िुआ ि। बुद्ध ने इस तनरथकश, रिस्यमय, अज्ञात एवं ंअज्ञेये पदाथ शका तनषेध ककया ि, और यि िीक िी ि। कभी-कभी तनवाणशप्राप्त आममा को भी मनुष्य के िी सादृश्य का भाव दे हदया जाता ि। अपनेप्रारत्म्भक भ्रमणों में बुद्ध एक प्रमसद्ध सन्त आलार कालम के पास पिुंचकर उसके मर्ष्य बन जाते िैं और उसी से ध्यान के क्रमबद्ध पवभागों की मर्क्षा लेते िैं। आलार नेउन्िें इस मत की मर्क्षा दी कक जीवाममा जब अपनेको नष्ट कर देती ि तो मुतत िो जाती ि-तनवाणश प्राप्त कर लेती ि। "अपनेको अपने-आपसे नष्ट करने ेके बाद वि देखता ि कक कुछ निीं ंरिता और इसीमलए उसे रू्न्यवादी किा गया ि; तब पपंज़ ेसे मुतत िुए पक्षी के समान रीर से तनकलने ेके बाद आममा को मुतत घोपषत कर हदया जाता ि; यि वि सवोपरर ब्रह्म ि जो तनरन्तर या तनमय ि और पवभेदक लक्षणों से रहित ि त्जसे ऐसे ज्ञानी जो यथाथतशा का ज्ञान रखते िैं, मोक्ष किते िैं।" बुद्ध ने इस मसद्धान्त पर इस आधार पर

835 बुद्धधस्टसाइकोलॉजी', पृषि्31।

836 मत्ज्झमतनकाय, 1: 138। तुलना कीत्जए, भगवद्गीता, 3/27 ।

837 देखें, इंगे: 'प्रोसीडडंग्ंस आफ द अररस्टोटमलयन सोसायटी', खण्ड 19, पृषि् 284

 आपपत्त की कक मुततामममा भी तो एक आममा ि ै, चिो जो भी अवस्था यि प्राप्त कर ले यि पुनजन्शम के अधीन
रिगी जबकक "िमारे लक्ष्य की परम प्रात्प्त िरएक वस्तु के मयाग से िी िो सकती िै।"

बुद्ध िमें स्पष्ट रूप में यि तो बताते िैं कक तया वस्तु आममा निीं ंिै, ककन्तु आममा तया िै इसका भावाममक वणनश एकदम निीं करते। ककन्तु बुद्ध के पवषय में यि सोचना भी कक बुद्ध आममा को बबलकुल िी निीं ंमानते, एक असमय धारणा िै। "तब पररव्राजक ममक्षुवच्चगोत्त ने मिान आममा (अथात्श ्बुद्ध) से किा, 'िे पूज्जय गौतम, प्रकृतत ककस प्रकार त्स्थत िै, तया अि अथात्श ्आममा िै ?' उसके इस प्रश्न पर मिान बुद्ध मौन रि गए। 'तब कफर िे पूज्जय गौतम, अनामम निीं ंिै ?' और इस पर भी मिान बुद्ध ने मौन साध मलया। तब पररव्राजक मभक्षुवच्चोत्त अपनेस्थान से उि और चला गया। ककन्तु पूज्जय आनन्द ने मिान बुद्ध से किा, "िे भगवन्,् आपनेपररव्राजक मभक्षुवच्चगोत्त के प्रश्नों का उत्तर तयों निीं ंहदया ?' 'जब पररव्राजक मभक्षुवच्चगोत्त ने मुझसे पूछा तो, िे आनन्द, यहद म ैंयि उत्तर देता कक आममा (अि) िै, तो उससे उन श्रमणों एवं ब्राह्मणों के मसद्धान्त का समथनश िोता जो त्स्थरता में पवश्वास करते िैं। और यहद म ैंउत्तर में किता कक आममा निीं ंिै, तब उन श्रमणों एवं ब्राह्मणों के मसद्धान्त का समथनश िोता जो रूनूयवाद में पवश्वास करते िैं।" इस संवाद के पवषय में ओल्डनबग शकिता िै "यहद बुद्ध आममा का तनषेध करने ेसे बचतेिैं तो इसमलए कक एक दुबुलशाममा श्रोता के मन में आघात न पिुंचे। आममा के अत्स्तमव एवं ंतनषेध सम्बन्धी प्रश्न से बचनेके द्वारा यि उत्तर ममल गया कक आममा निींिै तयोंकक बौद्ध उपदेर्ों में पूवावशयव (प्रततज्ञा) की प्रवृपत्त साधारणतः इधर की ओर िी िै।"[838] िम इस पवचार से सिमत निीं ंिैं कक बुद्ध ने जान-बूझकर समय को गुप्त रखा। यहद ओल्डनबग शका किना सिी माना जाए तो तनवाणश का अथ शिोगा रूनूयता, त्जसका खण्डन स्वयं बुद्ध िी करते िैं। तनवाणश िास िोकर रूनूय िो जाना निीं ंिै, ककन्तु यि प्रविा का तनषेध िै और आममा का अपने यथाथ शस्वरूप में लौट आना िै। इस सबका तकशसंगत पररणाम यि िुआ कक कुछ िै अवश्य, भले िी यि अनुभवगम्य आममा न िो। यिी त्स्थतत बुद्ध के इस कथन के भी अनूकूल िोगी कक आममा न तो विी िै जो स्कन्ध िै और न िी उनसे सवथशा मभन्न िै। यि केवल मन एवं रीर का सत्म्मश्रण निींिै और न िी यि तनमय पदाथ शिै जोकक पररवतनश के पवप्लवों से तनमुतशत िो ।839 भार एवं भारविी के पववाद से यि प्रततपाहदत ककया गया िै कक स्कन्ध जो भारस्थानी िैं एवं पुद्गल जो भारविी िै, दोनों मभन्न-मभन्न वस्तुएं िैं। यहद वे ेएक िी िोतेतो उनके बीच में भेद करने ेकी आवश्यकता न िोती। "िे मभक्षुओं, म ैंतुम्िें भार एवं ंभारविी का तनदेर् करता िंूं : पांचों अवस्थाएं भार िैं और पुद्गल भारविी िै-ऐसा व्यत्तत जो यि समझता िै कक आममा निीं िै, भूल में िै।"[840] जन्म ग्रिण करने ेका तामपय शिै भार ग्रिण करना ि;ै एवं जीवन के पररमयाग का तामपय शिै आनन्द अथवा तनवाणश प्राप्त करना।

---

838 बुद्ध',पृष्ि273 ।

839 पुग्गलपंञ्जपत्त में िमें आममा की स्वरूप-सम्बन्धी तीन मुख्य कल्पनाओं पर पववाद ममलता िै : र्ाश्वतवाद, त्जसके अनुसार आममा का अत्स्तमव यथाथ शमें इस लोक और परलोक में भी िै; उच्छेदवाद अथात्श ्आममा यथाथ शमें केवल इसी जीवन में रिती िै; और तीसरी कल्पना यि कक आममा न इस जीवन में और न अन्य जन्म में रिती िै।

840 वारेन : 'बुद्धधज्जम इन रांसलेन्स', पृष्ि 161, सवामशभसमयसूत्र, त्जसका उद्धरण उद्योतकर के 2. न्यायवाततकश (3:1, 1) में हदया गया िै।

बुद्ध इस तथ्य पर बल देते ि◌ैं कक जब ि◌म घटनाओंकी पृष्ठिभूमम में एक स्थायी आममा के पवषय में कथन करते ि◌ैं तो ि◌म अपनेअनुभव से ऊपर उिते ि◌ैं। उपतनषदों के साथ इस पवषय में सिमत ि◌ोतेिुए भी कक उमपपत्त, रोग एवं ◌ंदुःख से पूणू शसंसार आममा का यथाथ शआश्रयस्थान निीं ◌ंि◌ै, बुद्ध उस आममा के पवषय में त्जसका प्रततपादन उपतनषदों में ककया गया ि◌ै, सवथशा मौन ि◌ैं। वे ◌ेइसकी सत्ता को न तो स्वीकार करते ि◌ैं और न िी इसका तनषेध करते ि◌ैं। तयोंकक जब तक ि◌म रुषुक तकश का आश्रय मलए रिंगे, ि◌म जीवाममा की यथाथसशत्ता को मसद्ध न कर सकेंगे। अज्ञेय आममा, त्जसे ि◌मारे अिं की पृष्ठिभूमम में पवद्यमान बताया जाता ि◌ै, एक अततस श रिस्य ि◌ै। कुछ किते ि◌ैं यि ि◌ै, और दूसूरों के मलए भी छुट्टी ि◌ै कक वे इसका तनषेध कर दें। बुद्ध का अनुरोध ि◌ै कक ि◌ममें ऐसी सूक्ष्म दत्ष्ट ि◌ोनी चाहिए कक ि◌म दर्नशर्ास्त्र की मयादशाओं का ि◌ीकिीक पववेचन कर सकें। यथाथ शमनोपवज्ञान तभी सम्भव ि◌ो सकता ि◌ै जबकक ि◌म पिले आममा के अत्स्तमव के पक्ष एवं ◌ंअभाव के सम्बन्ध में पवद्यमान आध्यात्ममक पक्षपातों को दूरू कर दें। उन्नीसवीं र्ताब्दी के मध्य के मनोवैज्ञातनकों ने मनोवैज्ञातनक समस्याओं के सम्बन्ध में बुद्ध के दत्ष्टकोण से पववाद उिनेका प्रयमन ककया, ि◌ीक उसी प्रकार से जैसेकक एक भौततक पवज्ञानवेत्ता एवं ◌ंप्राणणपवज्ञानर्ास्त्र का पवद्वान बबना प्रकृतत एवं जीवन की पररभाषा ककए अपनी पवषयवस्तु का प्रततपादत करते ि◌ैं। बुद्ध अपना सन्तोष आत्ममक अनुभव के पववरण से िी कर लेते ि◌ैं और आममा के पवषय में ककसी प्रकार की कल्पना की स्थापना करने ◌ेका सािस निीं ◌ंकरते। पववेकर्ील मनोवैज्ञातनक आममा के स्वरूप एवं ◌ंइसकी सान्तता अथवा अनन्तता आहद की व्याख्या करने ◌ेका प्रयमन करते ि◌ैं।841 बुद्ध को ऐसा प्रतीत ि◌ुआ कक एक आममा की स्थापना करना व्याख्याममक दत्ष्टकोण से परे पग उिाना

---

841 ि◌मारे समय के एक मिान मनोवैज्ञातनक प्राध्यापक स्टाउट ने इन दोनों प्रकार की त्स्थततयों के अन्तर का इस प्रकार प्रततपादन ककया ि◌ै "सब लोगों ने स्पष्ट या उपलक्षक्षत रूप से इस तथ्य को माना ि◌ै कक ककसी व्यत्ततपवर्ेष के मानस के जीवन-इततिास में प्रवेर् करने वाले बिुपवध और सतत पररवतनर्शील अनुभव ककसी न ककसी अथ शमें उस आममा या अिं के अधधकार में ि◌ोते ि◌ैं जो उनके पूरे पवपययशों के दौरान एक और समानरूप में त्स्थत रिता ि◌ै। परन्तु जब ि◌म उस आमम की संगतत और उसके स्वरूप की प्रकृतत का तथा उस तनत्श्चत अथ शका त्जसमें उसके अनुभव उसके साथ सम्बद्ध ि◌ोते ि◌ैं, अन्वेषण आरम्भ करतेिं तो मतों के मूलभूत अन्तर से ि◌मारा सामना ि◌ोता ि◌ै। एक तरफ तो यि प्रततपाहदत ककया जाता ि◌ै कक त्जस प्रकार एक बत्रकोण की, या ककसी राग की अथवा ककसी जीव की संघटना की संगतत या उसका एकमव उसके पवमभन्न अंगों के परस्पर सम्बन्ध या समन्वय के पवर्ेष ढंग में िी तनहित ि◌ोता ि◌ै ताकक इन पवर्ेष प्रकार के ममधश्रत रूप का तनमाणश ि◌ो सके, ि◌ीक उसी प्रकार त्जसे ि◌म एक पवमर्ष मानस किते िैं उसकी संगतत भी केवल उस पवमर्ष ढंग में िी तनहित ि◌ोती ि◌ै त्जसमें उसके अनुभव एक-दूसूरे से सम्बद्ध रिते ि◌ैं। इस प्रकार जब ि◌म यि किते िैं कक कोई इच्छा या लालसा ककसी पवमर्ष व्यत्तत की इच्छा या लालसा ि◌ोती ि◌ै तो ि◌मारा तामपय शकेवल यि ि◌ोता ि◌ै कक यि अनुभवों की एक सुसम्बद्ध सम्पूणतशा में उसके घटकों में एक घटक के रूप में प्रपवष्ट ि◌ै, और इन अनुभवों में एक प्रकार की संगतत और अपवत्च्छन्नता बनी रिती ि◌ै, जो केवल अनुभवों को िी उपलब्ध ि◌ै, भौततक वस्तुओं को निीं।◌ं इस मसद्धान्त के पवपरीत, ोखक लोगों द्वारा यि किा जाता ि◌ै कक तरूप पवषय केवल अनुभव का एकीकृत ममश्रण मात्र निीं ि◌ै बत्ल्क एक स्पष्ट तत्त्व ि◌ै त्जससे उन्िें अपनी संगतत प्राप्त ि◌ोती ि◌ै, एक ऐसी वस्तुप्राप्त ि◌ोती ि◌ै जो उनके बीच बराबर वतमशान रिती ि◌ै और जो उन्िें परस्पर आबद्ध रखती ि◌ै। इन लेखकों के अनुसार, यि किना समय का पवपयासश ि◌ै कक बिुपवध अनुभव अपने पारस्पररक एकीकरण के कारण एक अकेले आमम या स्व का तनमाणश करतेिं। इसके पवपरीत, एक अकेले आममा को एकसमान केंद्र मानकर उसके साथ अपने सम्बन्ध के माध्यम से िी वे परस्पर एकताबद्ध रिते ि◌ैं। इन दो परस्पर पवरोधी मसद्धांतों में से म ◌ैंपिले को िी स्वीकार करना आवश्यक समझता ि◌ूं◌ू, और दूसूरे को अस्वीकार करता ि◌ूं◌ू।

 िोगा। त्जसे िम जानते िैं वि अनुभवाममक आममा िै। बुद्ध समझते िैं कक इसके अततररतत भी कुछ िै। वे ेयि
स्वीकार करनेके मलए कभी इच्छुक निीं िैं कक आममा केवल तमवों का सत्म्मश्रणमात्र िै ककन्तु इसके अततररतत वे आममा के अन्य ककसी स्वरूप की कल्पना करने ेसे भी तनषेध करते िैं।

उपतनषदें आममा के एक आवरण के बाद दूसूरे आवरण को दूरू करती िुई अन्त में सब वस्तुओंकी आधारभूमम तक पिुंचती िैं। इस प्रकक्रया के अन्त में वे सावभशौम व्यापक आममा की उपलत्ब्ध करती िैं जोकक इन सब सान्त वस्तुओंमें से एक भी निीं ंिैं, यद्यपप उन सबकी आधारभूमम िै। बुद्ध का भी वस्तुतः यिी मत िै, यद्यपप तनत्श्चत रूप से वे ेइसको किते ेनिीं ंिैं। वे ेउन अस्थायी तत्त्वों के अमरमव का तनषेध करते िैं जो सत्म्मधश्रत अनुभवगम्य आममा का तनमाणश करते िैं। वे उपतनषदों में वणणतंश उस दर्नशर्ास्त्र असंगत अथवा अध्याममपवद्या- सम्बन्धी मत का तनषेध करते िैं त्जसके अनुसार आममा को अंगुष्ठमात्र, अथातश ्अंगूठे के आकार का, बताया गया िै और त्जसके पवषय में किा गया िै कक मृमृयु के समय वि मनुष्य के कपाल की सत्न्ध के मध्य से एक सूक्ष्म तछद्र के माग शसे र्रीर के बािर िो जाती िै। वे यि स्वीकार करनेकी भी अनुमतत दे देते िैं

कक प्रमाता (पवषयी) ंकवल अनन्य जीवसत्ता िै, अथाशत् िमारे अन्ततनरशीक्षण से उसका ग्रिण निीं िो सकता तो भी िमें उसे स्वीकार करना आवश्यक िै, तयोंकक यि प्रमाता या पवषयी िी िै जो अन्य सबको देखता िै। बबना उसके िम अनुभवगम्य आममा की भी व्याख्या निीं ंकर सकते। पवचारों की श्रृंखला, समूि, पुंज एवं संग्रि ये सब आलंकाररक भाषा के र्ब्द िैं और इनको एकत्र करने ेवाला पृथक् एक कत्ताश िोना चाहिए। बबना इस अन्ततनहशित तत्त्व के मनुष्य का जीवन अव्याख्येय रि जाएगा। इसीमलए बुद्ध बराबर आममा की यथाथतशा का तनषेध करते िैं। प्राचीन बौद्ध पवचारकों ने आममा के प्रश्न पर बुद्ध की इस अतनत्श्चत भामसत िोने ेवाली प्रवृपृत्त को लक्ष्य ककया और कई ने यि मत प्रकट ककया कक उपयोधगता का पवचार करके बुद्ध ने आममा के अत्स्तमव एवं अभाव दोनों का िी उपदेर् हदया िै।

नागाजुनश 'प्रज्ञापारममतासूत्र' पर की गई अपनी टीका में किता िै : "तथागत कभी तो उपदेर् देते थे कक आममा का अत्स्तमव िै और कभी ऐसा भी किते ेथे ेकक निीं। जब उन्िोंने यि उपदेर् हदया कक आममा का अत्स्तमव िै और उसे क्रमानुसार वतमशान एवं भपवष्य जन्मों में अपनेकमों के अनुसार दुःख एवं सुख का फलोपभोग करना िै तो इसका उद्देश्य जनसाधारण को उच्छेदवाद की नात्स्तकता के गड्ढे में धगरनेसे बचाना िोता था। और जब वे ेयि उपदेर् करते थे ेकक आममा निीं ंिै-इन अथों में कक उसे स्रष्टा व द्रष्टा अथवा एक ऐसा तनतान्त स्वतन्त्रकताश, पांचों स्कन्धों के पुंज को जो परम्परागत नाम हदया गया िै उसके अततररतत, माना जाए तो उस समय उनका उद्देश्य यि िोता था कक जनसाधारण को उसकी प्रततपक्षी 'र्ाश्वतवाद' सम्बन्धी नात्स्तकता के गड्ढे में धगरनेसे बचाया जा सके। तो कफर उतत दोनों मतों में से कौन-सा समय िै ? तनःसन्देि आममा के तनषेध का मसद्धान्त। यि मसद्धान्त त्जसे समझना इतना कहिन िै, कक बुद्ुध के अनुसार, इसे ऐसे व्यत्ततयों क श्रवणगोचर न िोना चाहिए त्जनकी बुद्धध मन्द िै और त्जनके अन्दर अभी पुण्य की ज़ उन्नत

मुझेआममा की संगततउसके अनुभवोंकेपूणशसंश्लेषकीसंगततसेअपवभेद्यप्रतीतिोतीिै। "(' सम फंडामेंटल प्वाइंट्स इन व ब्यूरी आफ नॉलेज', पृष्ठ 6)।

 निीं ंिुई िै। और ऐसा तयों ? इसमलए कक ऐसे व्यत्तत अनामम के मसद्धान्त को सुनकर तनत्श्चतरूप से
उच्छेदवाद की नात्स्तकता में फंस जाते। बुद्ध ने दोनों मभन्न-मभन्न मसद्धान्त का उपदेर् दो मभन्न-मभन्न उद्देश्यों को लक्ष्य करके हदया। उन्िोंने ेअपनेश्रोताओंको आमया के अत्स्तमव का उपदेर् हदया जबकक वे उन्िें परम्परागत मसद्धान्त का उपदेर् देना चािते थे। और अनामम का उपदेर् हदया जबकक वे ेअतीत्न्द्रय मसद्धान्त उन्िें देना चािते थे।"[842]

11. नागसेन का आममपवषयक मसद्धान्त

'जब िम बुद्ध के अपनेउपदेर्ों से िटकर उतत उपदेर्ों की नागसेन एवं बुद्धघोष द्वारा की गई व्याख्याओं पर आते िैं तो िमें बुद्ध की प्राचीन मर्क्षाओं की नात्स्तकवादपरता एवं बुद्ध के मौन पर तनषेधाममक रंग का आभास ममलता िै। बौद्ध-पवचारधारा रूपी र्ाखा को मूल वृक्ष के तनेसे उखाड़कर पववेक की एक तनतान्त पवरुद्ध भूमम में बोया गया। कक्रयमाण- सम्बन्धी दर्नशपद्धतत के ताककशक पररणाम बड़ी कहिनाई से तनकाले गए िैं। प्रमयक्षवाद-सम्बन्धी मसद्धान्तों को, जो िमें ह्यूम का स्मरण करातेिैं, बड़े ेकौर्ल एवं प्रततभा के साथ पवकमसत ककया गया िै। बुद्ध ने मनोपवज्ञान को मौमलक अनुर्ासन का स्थान हदया, त्जसके द्वारा िी अध्याममर्ास्त्र-सम्बन्धी समस्याओं तक पिुंचा जाना चाहिए। उनके अनुसार, िमारा ध्यान अध्याममर्ास्त्र के कल्पनाममक मत की ओर से िटकर मनोवैज्ञातनक तनरीक्षण के मानवीय मत की ओर प्रेररत िोना चाहिए। मनुष्य की चेतना प्रकटरूप में उदय िोतेएवं पवलुप्त िोतेपवचारों की क्रीड़ाभूमम िै। अपनी दृत्ष्ट को तनरन्तर िोते िुए पररवतनशों एवं पवचारों और चेतना की गतत पर गड़ाए िुए ककंवा मनोवैज्ञातनक तनरीक्षण की यथाथ शपद्धतत पर आग्रि करते िुए नागसेन तनमय आममा का तो इसे अवैध अमूतरूशप (अभावाममक) बताकर तनषेध कर देता िै और मानवीय आममा को भी एक ऐसे संयुतत पदाथ शके रूप में, जोकक केवल अपवत्च्छन्न ऐततिामसक नैरन्तय शको प्रदमर्तश करता िै, स्वीकार करता िै। इसमलए नागसेन में आममा के अभाव की तनषेधाममक त्स्थतत स्पष्ट रूप में प्रततपाहदत िै। वि यिां ंतक भी कि जाता िै कक उसका अपना नाम नागसेन भी यिी बतलाता िै कक संसार में स्थायी कुछ निीं ंिै।843 वस्तुएं कुछ निीं ंिैं केवल नाममात्र िैं और सम्भवतः केवल भावमात्र िी िैं। रथ का नाम भी वैसा िी िै जैसाकक नागसेन िै। गुणों के अततररतत उनकी पृष्ठभूमम में

---

842 इसी प्रकार धमपशालाचाय शका 'पवज्ञानमात्रर्ास्त्र' की टीका में किना िै "आममा (अि) एवं धमों (आनुभपवक जगत्) ्की सत्ता पपवत्र तनयमों में केवल थोड़े ेसमय के मलए कल्पना की गई िै, ककन्तु इस अथ शमें निीं कक उनका स्थायी स्वभाव व िै।" नागाजुनश के ने भी 'माध्यममकर्ास्त्र' की अपनी टीका में किा िै कक प्रमुख मर्ष्यों में से अन्यतम आयदेशव "बौद्धजन अपनी सवज्ञशता में सब जीपवत प्राणणयों के स्वभाव का तनरीक्षण करते िैं और मभन्न-मभन्न प्रकार से धाममकश तनयमपवधान का प्रचार करते िैं-कभी आममा के अत्स्तमव को स्वीकार करतेिुए और कभी तनषेध भी करते िुए। बुद्धध की त्तियों के पयाप्शतरूप में पवकमसत िुए बबना कोई तनवाणश को प्राप्त निीं ंकर सकता, और न िी यि जान सकता िै कक पाप तयों निीं ं करना चाहिए। ऐसे िी व्यत्ततयों के मलए जो इस त्स्थतत तक निीं पिुंचे िैं, बौद्ध आममा के अत्स्तमव का उपदेर् देतेिैं ।"
(देणखए, यमकामी सोजेन : 'मसस्टम्स आफ बुद्धधत्स्टक थॉट', पृष्ठ 19-20।
843 मममलन्द, 2/1, 1।

 उससे अधधक यथाथ शवस्तु और कुछ र्निीं चेतना की तामकामलक प्रमयक्ष में आने ेवाली सामग्री इस पवषय की
साक्षी र्निींदे सकती कक ऐसा भी कोई एकमव ि ै त्जसकी िम कल्पना कर सकतेिैं।

"और मममलन्द ने प्रश्न पूछना प्रारम्भ ककया, 'ि े भगवन्,् िम आपको कैसे जान सकतेिैं, और आपका तया नाम ि ै?"

" 'ि े राजन्,् मुझे ेलोग नागसेन नाम से जानते ि ैं और इसी नाम से मेरे सब धमभशाई मुझे ेसम्बोधन करते ि ैं तो भी यि साधारणतः एक पवहदत ब्द ि ै, एक ऐसी संज्ञा ि ै जो साधारण प्रयोग में आती ि ै। तयोंकक ऐसी कोई स्थायी आममा र्निीं ि ै त्जसका प्रकृतत से कोई सम्बन्ध िो।'

"तब मममलन्द योनकस आहद अन्य बौद्ध बन्धुओंके पास गवािी के मलए गया। 'यि नागसेन किता ि ै कक उसके नाम से ककसी एक स्थायी आममा का संकेत र्निीं ंिोता। तया उसकी यि बात स्वीकार करने ेयोग्य िो सकती ि ै?" और कफर नागसेन की ओर मुड़कर उसनेकिा, 'यहद प्रकृतत के अततररतत कोई स्थायी जीवाममा इस रीर के अन्दर र्निीं ंि ै तो कृपा कर बताइए वि कौन ि ै जो आप सब संघं के सदस्यों को यि पोर्ाक, भोजन, रिने ेका स्थान एवं ंरोधगयों को आवश्यक सामग्री देता ि ै ? और इन वस्तुओंकी प्रात्प्त के पश्चात् ्उपभोग करने वाला वि कौन ि ै ? धाममकश जीवन बबताने वाला भी कौन ि ै? और वि कौन ि ै जो अपनेको समाधध के मलए प्रेररत करता ि ै ? और वि कौन ि ै जो परमश्रेष्ठ पद अिशत्त्व के तनवाणश को प्राप्त करता ि ै ? और वि कौन ि ै जो जीपवत प्राणणयों का संिार करता ि ै? और वि कौन ि ै जो सांसाररक वासनाओं का पापमय जीवन व्यतीत करता ि ै, जो असमयभाषण करता ि ै, जो मद्य का सेवन करता ि ै? और वि कौन ि ै जो उन पांच पापों में से त्जनका फल इसी जीवन में ममलता ि ै ककसी एक पाप को करता ि ै? यहद तुम्िारी बात मानी जाए तो पुण्य एवं पाप कुछ न रिेगा, न तो अच्छे व बुरे कमों का करने ेवाला और न करानेवाला िी रिेगा, अच्छे और बुरे कमों का पररणाम एवंफल भी न रिेगा। ि े पूज्जयवर नागसेन, यहद िम यि सोचें कक तुम्िें कोई मनुष्य मारे तो कोई िमया न िोगी, तो पररणाम यि तनकलता ि ै कक तुम्िारी संघ व्यवस्था में न तो कोई वास्तपवक अध्यक्ष ि ै और न िी उपदेर्क ि ै, और यि कक तुम्िारी दीक्षा एवं ंपवधान सब रू्नय, अप्रमाणणत एवं अमान्य ि ै। तुम किते िो कक तुम्िारे संघ के भाई तुम्िें नागसेन करके सम्बोधधत करनेके आदी ि ैं, तो वि नागसेन तया ि ै? तया तुम्िारा तामपय यि ि ै कक केर् नागसेन ि ै ?'

" ि े मिाराज, म ैंयि र्निीं ंकिता।'

" 'या सम्भवतः रीर पर के बाल

" 'तनश्चयपूवकश र्निीं।'

" 'अथवा तया नाखून, दांत, मवचा, मांस, स्नायुजाल, अथवा मत्स्तष्क, अथवा इनमें से कोई एक अथवा ये सब, तया ये नागसेन ि ैं?"

'और इनमें से प्रमयेक के मलए उसनेकिा कक र्निीं।

" 'तो तया ये स्कन्ध परस्पर संयुतत िोकर नागसेन िैं?

" 'र्निीं, ं राजन्। ्'

" 'तो तया पांच स्कन्धों के अततररतत ऐसी कोई वस्तु िै जो नागसेन िै

" 'और तब भी उसनेयिी उत्तर हदया कक र्निीं।'

" 'तब इस प्रकार से तया म ैंकि सकता िंू कक मुझे ेतो कोई नागसेन र्निीं ंममला। नागसेन केवल एक तनरथकश ब्दं िै। तब कफर यि नागसेन, त्जसे िम अपनेसामने देखर्तेिैं, कौन िै ?'
'और आदरणीय नागसेन ने राजा मममलन्द से पूछा, 'श्रीमान्, ् यिां ंआप पैदल चलकर आए या रथ में सवार िोकर ?'

" 'म ैंपैदल र्निीं आया, म ैंरथ में सवार िोकर आया िंू"

'तब जब आप रथ पर िै। तया इस डण्डे ेका नाम रथ िै ?' आए िैं तो मुझे ेबताइए कक यि रथ तया वस्तु

" 'मनैं ेयि र्निीं किा ।'

" 'तया यि धुरा रथ िै ?'

" 'तनत्श्चय िी र्निीं।'

" 'तया ये पहिये, या यि ढांचा, अथवा रत्स्सयां, जुआ, या पहियों के आरे, अथवा अंकुर्, तया ये सब रथ िैं ?'

" 'और इन सबके मलए भी उसनेकिा कक र्निीं।

" 'तो तया रथ के ये सब हिस्से रथ िैं?'

" 'भगवन्, ् र्निीं।'

'तो तया इन सबके अततररतत और कोई वस्तु िै जो रथ िै ?'

" और तब भी उसनेउत्तर हदया कक र्निीं।

" 'तब इस प्रकार तया म ैंयि कि सकता िंूं कक मुझे ेतो कोई रथ हदखाई निीं ंदेता। रथ केवल एक तनरथकश ब्दं िै। तब कफर वि रथ कौन-सा िै त्जसमें बैिकर आप यिां आए िैं?' और तब उसनेयोनकस एवं ंसंघ के अन्य सदस्यों को गवािी के मलए बुलाया और किा, 'राजा मममलन्द जो यिां ंिैं किते िैं कक ये रथ में सवार िोकर यिांआए िैं। परन्तुजब इनसे किा गया कक बताइए वि रथ तया िै तो जो कुछ इन्िोंनेदावे के साथ किा, ये उसकी िीक-िीक स्थापना न कर सके। तया तनःसन्दे इनकी बात मानी जा सकती िै?"

" 'और, मममलन्द ने किा, 'िे भगवन्,् मनैं ेकुछ भी असमय निीं ंकिा िै। डंडा, धुरा, पहिये और समूचा ढांचा, रस्से और जुआ, आरे एवं ंअंकुर् ये सब ममलाकर साधारण बोलचाल की भाषा में 'रथ' के नाम से पुकारे जाते िैं।

'बिुत सुन्दर। आप श्रीमान् ्ने अब िीक तरि से रथ के अमभप्राय को ग्रिण ककया। िीक इसी प्रकार उन सब वस्तुओं के पवषय में िै त्जनके मलए आपनेमुझसे अभी प्रश्न ककया था, अथात्श ्बत्तीस प्रकार की ऐत्न्द्रय प्रवृपृत्त जो मनुष्य-र्रीर में िै और पांच अवयवसत् ्के-इनके कारण िी साधारण बोलचाल की भाषा में मुझे े 'नागसेन' किते िैं। तयोंकक मिाराज, िमारी बहिन वागीरा ने परम श्ेरेष्ि बुद्ध की उपत्स्थतत में किा था कक जैसे अपनेमभन्न-मभन्न भागों के एकसाथ त्स्थत िोने ेकी दर्ा में रथ ब्दं का प्रयोग िोता िै, इसी प्रकार जब स्कन्ध पवधमान रिते िैं तब िम उसे सत् ्किते िैं।"[844]

आममा के प्रश्न पर बुद्ध के मौन साध जाने ेके कारण नागसेन ने तनषेधीममक अनुमान का पररणाम तनकाला कक आममा निीं ंिै। 'आमम' ब्दं को तो एकदम िी छोड़ हदया गया िै और केवल आममाओं की अवस्थाओं के पवषय में िी किा गया िै। आममा पवचारों की यया का नाम िै। आममा की मभन्न-मभन्न अवस्थाओं में एक सामान्य रूप रिता िै चारों की धारा अमूत शभाव को जो सब अवस्थाओं में सामान्य व्यापक तत्त्व िै, आममा कि देते िैं। यहद यि तकश ककया जाए कक आममा की चेतना नामक कोई एक पदाथ शिै अथवा आममा का आन्तररक प्रमयक्ष िोता िै तो बौद्धों का उत्तर यि िै कक मनोपवज्ञान की दृत्ष्ट से यि असम्भव िै। जैसे कक िम जब रथ आहद पदार्थों का प्रततपादन करते िैं तब िम गुणों की पृष्िभूमम में तनहित एक वस्तु की कल्पना कर लेते िैं। इसी प्रकार िम अनुधचत रूप से मानमसक अवस्थाओं की पृष्िभूमम में तनहित एक आममा की कल्पना कर लेते िैं। जब िम आममा के पवचार का पवश्लेषण करते िैं तो तत्त्व यि तनकलता िै कक कुछ गुण एक साथ उपत्स्थत रिते िैं चूंकक र्रीर गुणों के एक क्रम का नाम िै इसी प्रकार आममा भी उन सब अवस्थाओं के एकत्र पुंज का नाम िै त्जनके कारण िमारा मानमसक अत्स्तमव िै।'[845] गुणों के बबना आममा की सत्ता निीं,ं जैसेदोनों

844 मममलन्द, 2/1.1।

845 बकशले के अनुसार, "पवचारों की पवद्यमानता िी आममा को बनाती िै,यद्यपप उसके परवती मत का यि भाव निीं था। ('वतस'श, खण्ड 4, पृष्ि 4341)

ओर के ककनारों के बबना नदी का अत्स्तमव र्नीं ◌ंिै केवल पानी और रेत िी रिेगा, और पहियों, डण्डों, धुरे एवं पूरे ढांचे के बबना रथ भी न रिेगा।846

पवचारों एवं ◌ंपदाथों के बीच के भेद को नागसेन स्वीकार करता िै। वि स्वीकार करता िै कक िरएक व्यत्तत में नाम और रूप, मन और र्रीर िै। जैसे र्रीर स्थायी पदाथ र्नीं ◌ंिै ऐसे िी मन भी स्थायी पदाथ र्नीं ◌ंिै। पवचार एवं अवस्थाएं तथा पररवतनर् आते-जाते रिते िैं, िमें कुछ समय के मलए आकृष्ट करते िैं, िमारा ध्यान लगाए रिते िैं और उसके पश्चात् ◌्बबलुप्त िो जाते िैं। िम अनुमान करते िैं कक कोई स्थायी आममा िै जो मिारी सब अवस्थाओंको बांधकर रखती िै और उन सबको सुरक्षक्षत रखती िै ककन्तु यि धारणा वास्तपवक अनुभव •के आधार पर युत्ततयुतत र्नीं ◌ंजंचती। ह्यूम की िी पद्धतत से वि भी तकर् करता िै कक िम अपनेतकर् के अनुभव में ककिीं ◌ंभी आममा के पवचार के अनुकूल कुछ र्नीं ◌ंपाते। िम ककसी वस्तु को सरल संयोगरहित एवं तनरन्तर र्नीं ◌ंपाते। कोई भी पवचार त्जसका तदनुरूप प्रभाव र्नीं, अवास्तपवक िै। वस्तुएं विी िैं जैसाकक उनका ज्ञान िोता िै। "अपनी ओर से जब म ◌ैंअमयन्त घतनष्ठ रूप में उसके अन्दर प्रवेर् करता िि ◌ंू◌ू त्जसे म ◌ैं'म'◌ै किता िि ◌ंू◌ू, म ◌ैंककसी न ककसी बोध (अनुभव) पर-गमी अथवा र्ीत के, प्रकार् अथवा छाया के, प्ेम अथवा घृणा के, दुःख अथवा सुख के बोध पर जाकर अटक जाता िि ◌ंू◌ू। म ◌ैंककसी समय भी अपने-आपको बबना ककसी बोध के र्नीं ◌ंपकड़ सकता। और न िी ककसी वस्तु का बोध के अततररतत तनरीक्षण कर सकता िि ◌ंू◌ू। जब मेरे बोध ककसी समय मुझसे दूरू कर हदए जाते िैं, जैसेकक प्रगाढ़ तनद्रा में, तब तक म ◌ैंअपने पवषय में अनमभज्ञ रिता िि ◌ंू◌ू और वस्तुतः किा जा सकता िै कक म ◌ैंर्नीं ◌ंिि ◌ंू◌ू। और यहद मेरे बोध मृमयुद्वारा दूरू कर हदए जाएं और उस समय न म ◌ैंसोच सकूं, न अनुभव कर सकें, न देख सकूं, न प्ेम कर सकें, न ककसी से घृणा कर सकें, तो इस र्रीर के पवलयन िोने ◌ेके पश्चात् ◌्मुझे ◌ेपूणरूर्प से र्ून्य िो जाना चाहिए और न म ◌ैंउस समय इसी पवषय का पवचार कर सकता िि ◌ंू◌ू कक मुझे ◌े पूण र्अभाव के मलए और ककसकी आवश्यकता िो सकती िै। यहद कोई व्यत्तत गम्भीरतापूवकर् और पक्षपातपविीन िोकर यि समझता िै कक उसकी अपने-आपके पवषय में बबलकुल मभन्न प्रकार की धारणा िै तो म ◌ैंमानता िि ◌ंू◌ू कक म ◌ैंऐसे व्यत्तत के साथ अधधक तकर् र्नीं कर सकता। अधधक से अधधक जो म ◌ैंउसे अनुज्ञा दे सकता िि ◌ंू◌ू वि यि िै कक वि भी मेरी िी भांतत ठीक पवचार रखता िोगा और इस पवर्ेष पवषय में िमारा दोनों का परस्पर मतभेद िै। सम्भव िै, वि ककसी साधारण तत्त्व का अनुभव करता िो और उसे िी उसनेअपने-आपको मान मलया िो, यद्यपप मुझे ◌ेतनश्चय िै कक मेरे अन्दर ऐसा कोई तत्त्व र्नीं ◌ंिै। ककन्तुइस प्रकार के अध्याममर्ात्स्त्रयों को छोड़कर म ◌ैंअन्य सब मनुष्यों के पवषय में तो सािसपूण र्कि सकता िि ◌ंू◌ू कक वे मभन्न-मभन्न बोधों के सर्गृीत पुंजों के अततररतत और कुछ र्नीं ◌ंिै, जो अधचन्मय वेग के साथ एक-दूसूरे के पश्चात् ◌्क्रमबद्ध रूप में आते रिते िैं और एक तनरन्तर प्रवाि एवं ◌ंगतत में िैं। अपने अनुभवों में पररवतनर् ककए बबना िमारे और उनके र्दृत्ष्टकोण में भेद अवश्य रिेगा। िमारा पवचार िमारी र्दृत्ष्ट की अपेक्षा और भी अधधक पररवतनर्शील िै

846 बोधधसत्त्व ने एक तीथयर्ात्री सेपूछा: "तया तुम जंगल की सुगंध से सुगंधधत गंगाजल पपयोगे?" तीथयर्ात्री ने इन र्ब्दों में उत्तर हदया, "गंगा तया िै? तया रेत का नाम गंगा िै? तया जल का नाम गंगा िै? तया नीचे के ककनारे का नाम गंगा िै? तया अगले ककनारे का नाम गंगा िै ?" बोधधसत्त्व ने उत्तर हदया, "यहद तुम पानी, रेत- इधर के और उधर के दोनों ककनारों को तनकाल दो तो कफर तुम्िें गंगा किां ममलेगी ?" (जातक कथाएं, संख्या 244:)

और ◌िमारी अन्य सब इन्द्रियां एवं ◌ानमसक र्त्तयां जैसे संकल्प, इच्छा आहद इस पररवतनश में भाग लेते ◌िैं, और न ◌िी आममा की कोई एक र्त्त ऐसी ◌िै जो सम्भवतः एक क्षण के मलए भी अपररवततततश रिती ◌िो।"[847] और कुछ ◌िी आगे चलकर ह्यूम मलखता ◌िै: "◌िम त्जसे मन किते ◌िैं वि मभन्न-मभन्न प्रमयक्ष अनुभवों के समिू एवं ◌ं पुंज ◌िैं जो कुछ सम्बन्धों के द्वारा परस्पर संयुतत ◌िैं और यद्यपप अयथाथरूशप में ◌िी तयों न ◌िों, त्जनके पवषय में यि कल्पना की जाती ◌िै कक वे ◌ेएक प्रकार की अकृबत्रमता एवं सारूप्य के गुणों से युतत ◌िैं।" ह्यूम के अनुसार, नागसेन भी अपनी बुद्धध के अनुसार सब प्रकार की पररभाषाओं को अथिशीन समझता ◌िै और इसी से सूक्ष्म आममा के अत्स्तमव से भी तनषेध करने ◌ेके मलए बाधधत ◌िै, त्जसकी सत्ता का आर्य उसकी र्दत्ष्ट में असम्भव ◌िै। त्जसका ◌िमें अनुभव निीं ◌ं◌िोता वि यथाथ शनिीं◌ीं। यि ◌िम जानते ◌िैं कक संसार में दुःख ◌िै ककन्तुयि निीं कक कोई पवषयी भी ◌िै, त्जसे दुःख ◌िोता ◌िै।848 नागसेन ◌िीक किता ◌िै कक वि आममा नामक पदाथ शको निीं ◌ंजानता, त्जसके अन्तगतश गुण रिते◌िैं। जैसाकक डेकोटश मानता ◌िै, यि लॉक का अज्ञात समथनश ◌िै। ◌िमारे सामने इसका कोई पवचार और निीं ◌ं◌िै। ◌िमें इसकी कोई व्याख्या करनेकी आवश्यकता निीं ◌ं◌िै कक उन गुणों के साथ इसका तया सम्बन्ध ◌िै त्जन्िें धारण करते ◌िुए इसकी कल्पना की जाती ◌िै। आधुतनक मनोपवज्ञान ने मनोपवज्ञान की पररभाषा की, त्जसे पिले-पिल लांजे ◌ेने बबना आममा के प्रचमलत भाषा के प्रयोग में आने ◌ेवाला बनाया। और उसका मत ◌िै कक संवेदनाओं, मानमसक आवेगों एवं भावनाओं के एकत्रीभूत पुंज को ◌िी आममा का नाम दे हदया गया ◌िै। पवमलयम जेम्स के पवचार में आममा र्बद केवल एक आलंकाररक भाषा ◌िै और इस प्रकार की यथाथ श वस्तु कोई निीं ◌िै। "आममा र्बद ककसी की व्याख्या निीं ◌ंकर सकता और न कोई तनत्श्चत भाव ◌िी दे सकता ◌िै, इसके पीछे आनेवाले पवचार ◌िी केवल बोधगम्य पदाथ शिैं।" कुछ यथाथवशाती जोकक दार्तशनक समस्याओंका समाधान वैज्ञातनक ढंग से करते ◌िैं और प्राचीन बौद्धकाल के ◌िैं, आमया की कल्पना को निीं ◌ंस्वीकार करते।'[849] एक ऐसे आभ्यन्तर तत्त्व का पवचार जो बाता प्रततकक्रयाओंसे मभन्न ◌िै ककन्तु उनके साथ रिस्यपूण शभाव से सम्बद्ध ◌िैं, केवल ममथ्या पवश्वासमात्र ◌िै। समस्त अनुभवाततररतत व्याख्याममक सारतत्त्वों को पृथक् कर हदया गया ◌िै। ऐसी अवस्था में आममा केवल एक जाततगत पवचार ◌िै त्जससे तामपय शमानमसक अवस्थाओं का संकलन ◌ै। यि चैतनामय पवचारतत्त्वों का कुल जो◌़ ◌िै।'[850] नागसेन पूणरूशप से ताककशक ◌िै। यहद प्लेटो के सर्दर् यि न

---

847 ह्यूम : 'वतस'श, खण्ड 1, पृष्ि 3 और आगे।

848 एम. टेन का किना ◌िै कक "अि के अन्दर अपनी घटनाओं ◌ंकी श्रृंखलाओं के अततररतत और कुछ निीं ◌ं◌िै।" वाल्तेयर के अनुसार, "आममा ◌िमारे ज्ञान एवं अनुभव में आने वाले कायों के अज्ञात तत्त्व के मलए एक संहदग्ध एवं अतनत्श्चत पररणाम ◌ै त्जसे साधारणतः जीवन का आहदकारण अथवा स्वयंकारण ◌िी मान मलया गया ◌िै।"

849 पेरो : कफलासाकफकल टेण्डसी◌़', पृष्ि 271 और आगे।

850 पवसुद्धधमग्ग में किा गया ◌िै: "◌िीक त्जस प्रकार रथ र्बद केवल धुरा, पहिये एवं उसके अन्यान्य अवयवों के मलए व्यविार में आता ◌िै और त्जन्िें एक-दूसरे के साथ ममलकर पवर्ेष सम्बन्ध में रखा गया ◌िै, ककन्तुजब ◌िम उन अवयवों का एक-एक करके तनरीक्षण करतेिैं तो। ◌िमें प्रतीत ◌िोता ◌िै कक यथाथ शअथों में कोई भी उनमें रथ निीं ◌िै, त्जस प्रकार मकान, मुट्िी, बांसुरी, सेना, नगर, वृक्ष आहद पवर्ेष पवर्ेष वस्तुओंके संग्रि को, त्जन्िें पवर्ेष ढंग से रखा गया ◌िै, सुधचत करनेके मलए किने के ढंग ◌िैं, ◌िीक उसी प्रकार जीपवत प्राणी एवं 'अि' केवल र्ारीररक एवं अर्ीरी अवयवों के सत्म्मश्रण को सूधचत करने के मलए प्रयुतत ◌िोने वाले र्बद ◌िै।"

 मानें कक प्रमयेक व्यत्ततगत पदाथ श(जैसे रथ) के पीछे एक प्रकार का व्यापक भाव तछपा रिता ै, िमें यि सोचने
की आवश्यकता निीं ंकक पदाथों के ममश्रण से तनममतश मनुष्य की पृष्ठिभूमम में भी कोई आममा ि।ै

यहद िमारी अनुभूतत को पवश्व का मापक समझा जाए तो अनुभव प्रमयेक क्षण की संवेदना बन जायगा। आममा भी क्षणणक प्रमयक्ष अनुभव के अतततररतत और कुछ न रिेगी। आममा का जीवन या त्जसे िम प्रचमलत भाषा में मन किते ि,ैं केवल तभी तक रिता िै जब तक कक अपवभाज्जय और क्षणणक चेतना रिती ि।ै पवमलयम जेम्स के अनुसार वतमशान क्षण की स्फूतत शिी यथाथ शपवषयी या प्रमाता ि।ै "चेतना को एक नदी की धारा के समान समझ सकतिै...त्जन वस्तुओंका एकसाथ ज्ञान िोता िै वेउस धारा की पृथक् पृथक् एकाकी लिरों में िी जानी जाती ि।ैं" यथाथ शपवषयी "त्स्थर रिनेवाली सत्ता निीं ंि;ै प्रमयेक पवषयी केवल क्षण-भर रिता ि।ै इसका स्थान तुरन्त दूसूरा ले लेता िै जो कफर इसका काम करता ि,ै अथात्श ्जो एकमव जारी रखनेमें माध्यम का काम करता ि।ै पवषयी कुछ समय के मलए अपनेपूववशती को जान लेता िै और ग्रिण कर लेता िै और इस कक्रया के द्वारा अपने पूववशती के ग्रिण ककए ज्ञान को खपा लेता ि।ै"[851] आममा ताककशक र्दत्ष्ट से चेतना की क्षणणक अवस्था का रूप धारण कर लेती ि।ै प्रमयेक चेतनापूण शव्यापार, त्जतेमन किते ि,ैं ककसी तनमय मनरूपी उमपादन या मूलतत्त्व का पररणमन (रूपान्तर) अथवा ककसी आममा का आभास निीं ंि,ै ककन्तु एक बिुत उच्चकोहट का सत्ममश्रण िै जो सदा पररवतततश िोकर नये-नये समुच्यों को जन्म देता ि।ै इस मत के आधार पर अनुभव के सापेक्ष स्थातयमव एवं एकमव की व्याख्या निींकर सकते। बद्रेण्ड रसल का किना िै कक दो अनुभवों के मध्य में ऐसा एक अनुभवमसद्ध सम्बन्ध िै जो उसी व्यत्तत के अनुभवों को बनाता िै और इसमलए िम व्यत्तत को भी केवल उन अनुभवों की श्रृंखंला िी समझ ले सकतिैं त्जनके बीच में यि सम्बन्ध ि,ै और इस प्रकार उसके आध्यात्ममक अत्स्तमव का सवथशा तनराकरण कर सकतिैं। तनरन्तरता तो िै ककन्तुएकरूपता निीं ंि।ै दो पूवापशर क्षणों की चेतना कोई वास्तपवक एकरूपता निीं ंरखती। पूवक्षशण में जो अनुभव िुआ वि तो एकदम समाप्त िोकर बीत गया, और िमारे पवचार िोतिी करते िमारे अनुभव णखसकते जाते ि।ैं प्रमयेक अवस्था अपने-आपमें एक पृथक व्यत्ष्ट जो क्षणमात्र के मलए प्रकट िोती िै और तुरन्त िी पवलुप्त िो जाती ि,ै एवं ंअपना स्थान दूसूरी अवस्था के मलए खाली कर देती िै और दूसूरी अवस्था की भी यिी िालत िोती ि।ै प्रभावों के रार्ीभूत िोने ेके कारण प्रभावों में तनरन्तरता उमपन्न िोती िै जैसेकक असंख्य छात्र छोटे पवन्दुओंके समिू से एक पररधध की तनरन्तरता लक्षक्षत िोती ि।ै रसल का मत िै कक िममें से प्रमयेक एक मनुष्य निीं ंअपपतु ुमनुष्यों की अनन्त श्रृंखला ि,ै त्जनमें से प्रमयेक देवल क्षणमात्र के मलए रिता ि।ै चेतना की क्रममक अवस्थाओं में िम मभन्न-मभन्न प्राणी ि,ै यिां ंतक कक उनके अन्दर की तनरन्तरता को भी लक्ष्य करना कहिन ि।ै एक अया की उपत्स्थतत में दूसूरी अटल रूप में नष्ट िोकर बीत गई। यिांतक कक भूतकाल भी वतमशानकाल को कैसे तनयत्न्त्रत कर सकता ै?'[852] मानमसक अवस्थाओं की तनरन्तरता के ऊपर बल देना और उसके साथ क्षणभंगुरता का भी प्रततपादन

---

851 'पप्रंमंसपल्स आफ साइकोलॉजी' ।

852 श्री ओग नेअतनरुद्ध के अमभधम्ममथसंगि' नामक ग्रन्थ के अनुवाद के प्रारम्भ में भूममका के रूप में जो तनबन्ध जोा़ ै उसिम अतनरुद्ध के द्वारा की गई स्मृतत के व्यापार की व्याख्या का सारांर् इन र्ब्दों में हदया गया िै "प्रमयेक मानमसक अवस्था सम्बन्ध (पञ्चच) की कम से कम चार पवमभन्न प्रणामलयों में आगे आने वाली अवस्था के साथ सम्बद्ध रिती ि,ै

 करना ये दोनों पक्ष परम्पर असंगत प्रतीत िोतेिैं। कममशसद्धान्त में तनहित भूतकाल की वतमशान में त्स्थतत की
भी व्याख्या निीं ंकी जा सकती ।

रिस्यपूण शआममा समाप्त िोने ेका नाम निींलेती। तयोंकक पवना इसे स्वीकार ककए प्रमयक्ष ज्ञान एवं स्मरण दोनों िी असम्भव िो जाएंगे। इसके अततररतत िम प्रमयक्ष अनुभव की भी सिी-सिी पररभाषा निीं ंकर सकतेऔर न यिी जान सकते िैं कक चेतना में तनरन्तरता िै। यहद मन केवल पूवापशर अनुभवों का िी नाम िै जो प्रमयक्ष ज्ञान करने ेवाला पृथृक् कोई न रिेगा। एक अनुभव स्वयं दूसूरे अनुभव का ज्ञान निीं ंकर सकता। आधुतनक पवचारधारा को कांट की सबसे बड़ी देन यि मसद्धान्त िै कक आनुभपवक चेतना के मभन्न- मभन्न प्रकारों को एक केन्द्रीय आममचेतना से सम्बद्ध िोना चाहिए। यिी मसद्धान्त समस्त ज्ञान का आधार िै चािे वि िमारे अपनेसम्बन्ध में िो अथवा अन्य व्यत्ष्टयों का अथवा एक तनयम में बद्ध संसारमात्र का िी ज्ञान तयों न िो। ज्ञान स्वयंउपलक्षक्षत करता िै कक तनरन्तर भावनाओं का एक ऐसे पवषयों के द्वारा तनणयश ककया जाना आवश्यक िै जो स्वयंउस पूवानुशपरक्रम का अंग न िो। आममा के द्वारा यहद संश्लेषण काय शसम्पाहदत न िो तो अनुभव केवल एक असम्बद्ध काव्य िी रिेगा, वि कभी ज्ञान का रूप ग्रिण निीं ंकर सकता ऐसा अनुभव त्जसके अन्दर एक के बाद दूसूरी भावना आती रिे, पदाथ शका अनुभव कभी निीं ंिो सकता। आदर्वशाद के इस केन्द्रीयभूत तथ्य का प्रततपादन असंहदग्ध एवं ंस्पष्ट र्ब्दों में कांट से भी र्ताब्दियों पूव शमिान भारतीय दार्तशनक र्ंकर ने ककया था। र्ंकर ने अपनेवेदान्तसूत्रों के भाष्य (2:2, 18-32) में क्षणणकवाद के मसद्धान्त की समीक्षा की िै। उसका तकश िै कक िमारी चेतना क्षणणक कभी निींिो सकती तयोंकक इसका एक तनमयस्थायी व्यत्तत (ब्रह्म) के साथ सम्बन्ध िै। यहद एक व्यत्तत पवद्यमान निींरिता तो अमभज्ञा (पिचान) एवं घटनाओं का स्मरण समझ में निीं ंआ सकता। यहद यि किा जाए कक इन आनुभपवक घटनाओं के मलए स्थायी व्यत्तत की कल्पना करनेकी आवश्यकता निीं ंतयोंकक जो कुछ एक क्षण में िोता िै उसकी दूसूरे क्षण में याद िो सकती िैजैसेकक िमनेजो कुछ कल ककया था आज भी उसका स्मरण िोता िै, इस पर र्ंकर का किना िै कक उस अवस्था में िमारे तनणयश िमेर्ा िी रिेंगे। "मुझे ेस्मरण िै कक ककसी ने कल कुछ ककया था," केवल ऐसा िी कथन ककया जा सकता िै ककन्तु घटनाओं को पवमर्ष्ट रूप निीं ंहदया जा सकता। इसी प्रकार "म ैंस्मरण करता िंूं कक मनैं ेएक पवर्ेष काय शकल ककया था," यि किा जा सकता िै कक सारूप्य की चेतना भ्रात्न्तयुतत िै तयोंकक कल के

अथातश अनन्तर (सत्न्नकटता), समनन्तर (सामीप्य), ना त्स्थ (अभाव) और अपवगत (असमजस)। इस चार गुना सि-सम्वन्ध का तामपय शयि समझा जाता िै कक प्रमयेक अतीत अवस्था आगेआने वाली अवस्था का उपकार (सेवा) करती िै। दूसूरे र्ब्दों में, प्रमयेक अवस्था समात्प्त पर अपनी सम्पूण शर्त्तत (पञ्चयसपत्त) को आगे आने वाली अवस्था के मलए छोड़ जाती िै। इस प्रकार िरएक पीछे जाने वाली अवस्था अपने से पूववशततनशी अवस्था की समस्त क्षमता को अपपतुउससे भी अधधक को, धारण ककये िुए िै। इस प्रकार की व्यवस्था में मनस्तत्त्व अथवा प्रमयमभज्ञा पिचान एवं साक्षामकार (संज्ञ्ज) का तत्त्व प्रमयेक मानमसक अवस्था में स्मृतत के व्यापार में भाग लेता िै, त्जसमें अतीत की सामग्री भी सत्ममममलत रिती िै। यिी अनुकूल पररत्स्थतत के रिते िुए प्रमयमभज्ञा किलाती िै और इसका स्वरूप मौमलक पदाथ शकी प्रततकृतत अथवा मूलभूत पवचार कर पुन प्रवतनश िै और एक पवर्ेष अन्तर्दत्ष्ट अथवा धचंतंन के द्वारा जाने गये पवर्ेष लक्षण भी इनके साथ िी रिते ेिैं। और इस प्रकार पवषयी (ज्ञाता जीवाममा) उस प्रततकृतत को पूवाकृशतत के रूप में और उस पवचार को मूल पदाथ शप्रततरूप के रूप में, त्जसका ज्ञान अन्तर्दत्ष्ट अथवा धचंतंन के द्वारा िुआ िै, मानने लगता िै।" पृष्ठ 14।

एक क्षणणक अनुभव में और उसी प्रकार के आज के क्षणणक अनुभव में एक ऐसी समानता िै त्जसे िम भूल से आनुभपवक चेतना के समानरूप समझ लेते िैं। ककन्तु इस प्रकार का तकश हटक निींसकता तयोंकक यहद दो वस्तुएं िमारे सामने न िों तो िम सार्दश्य का तनणयश निींकर सकते। और यहद क्षणणकता का मसद्धान्त समय मान मलया जाए तो िम दो वस्तुओंकी सत्ता निीं ंमान सकते। इसमलए पररणाम यि तनकला कक िमें अनुभव करने ेवाली चेतनर्त्त का स्थातयमव अवश्य िी स्वीकार करना चाहिए तयोंकक अन्य कोई ऐसा माग शनिीं ंिै त्जसके द्वारा पिले की अमभज्ञा और वतमशान का अनुभव दोनों एकसाथ रि सकें और दोनों की परस्पर तुलना की जा सके, एवंसारूप्यपवषयक तनणयश सम्भव िो सके। यहद वतमशान में भूतकाल की अमभज्ञा करनी िै तो अमभज्ञा करनेवाले कत्ताश का स्थातयमव भी आवश्यक िै। यहद इस प्रकार की अमभज्ञा को भी सार्दश्य के ऊपर आधाररत किा जाए तो भी सार्दश्य की पिचान को स्वयंभी पदाथ शके सार्दश्य की आवश्यकता िोगी। इसके अततररतत िम यि भी निीं ंमान सकतेकक सार्दश्य-पवषयक तनणयश िी अन्य सब पवषय की व्याख्या कर देगा। जब म ैंकिता िंूं कक म ैंत्जस मनुष्य से कल ममला था उसे ेपिचानता िंूं तो इसका अथ शयि निीं ंिोता कक मेरी पिचान कल की पिचान के सर्दर् िै अपपतु इसका अथ शयि िै कक दोनों पिचान के पवषय या लक्षक्षत पदाथ शएक सर्दर् िैं। केवल सार्दश्य िी अमभज्ञा के अनुभव की व्याख्या के मलए पयाप्शत निीं ंिै। इसके अततररतत िमें अपने ऊपर िी सन्दिे करने ेकी कोई सम्भावना निीं। यहद म ैंइस पवषय में भी सन्दिे प्रकट करूं कक तया जो म ैंआज देखता िंूं वि विी िै त्जसे मनैं ेकल देखा था तो भी इस पवषय में तो तब भी सन्दिे निीं ंप्रकट करता कक म ैंजो आज ककसी पदाथ शको देख रिा िंूं विी िंूं या निीं ंत्जसने ेकल उसे देखा था। इस प्रकार से र्ंकर क्षणणकता के मत के पवरोध में तकश करता िै त्जसे द्रष्टा पवषयी के पवषय में भी लागू ककया गया िै, और र्दढ़तापूवकश किता िै कक बबना ककसी प्रमाता या पवषयी के ककसी प्रकार का भी घटनाओंका संश्लेषण, ज्ञान अथवा अमभज्ञा सम्भव निीं िीसकती।'[853]

नागसेन ने ज्ञान का प्रश्न कभी निीं ंउिाया और इसीमलए उतत प्रश्नों को यि दाल सका। अन्यथा वि अवश्य इस पवषय को अनुभव कर सकता था कक प्रमाता और प्रमेय अथात् ्ज्ञाता एवं ंज्ञेय दोनों पररभाषाएं, त्जनके मध्य में ज्ञान का सम्बन्ध त्स्थत िै, उस एक िी वस्तु के मलए उपयोग में निीं ंआ सकतीं।

12. मनोपवज्ञान

आममा की अध्याममर्ास्त्र-सम्बन्धी यथाथतशा के पवषय में कोई भी मत तयों न िो. बौद्ध लोग सामूहिक रूप से मनुष्य के जीवन की व्याख्या, बबना ककसी एक स्थायी आममा को माने, करने ेका प्रयमन करते. िैं, तयोंकक यहद इस व्याख्या का कोई (आध्यात्ममक) अथ िो भी, तथापप वि इतना गूढ़ अथवा रिस्यमय िोगा कक वि िमारे मलए ककसी प्रयोजन का निीं ंिै। अब िमें बौद्धों द्वारा ककए गए आममा के पवश्लेषण का तनरीक्षण करना िै। "जब कोई व्यत्तत 'म'ै किता िै तो वि जो करता िै वि यि िै कक या तो वि सब स्कन्धों के पवषय में

853 वेदांतसत्रोंपरभाष्य , 2/2, 25 |

सामूहिक रूप से किता ि अथवा ककसी एक स्कन्ध के पवषय में किता ि एवं स्वयंअपनेको भ्रम में डालता ि या बिकाता ि कक वि किने ेवाला म ैि ि ंूि ।"[854] ऐसा सत् ्जो सत्ता के रूप में आता ि एक ऐसा सत्मश्रण ि जो स्कन्धों अथवा पुंजों से ममलकर बना ि और यि स्कन्ध मनुष्य-जातत के सम्बन्ध में पांच ि तथा दूसूरों में और भी कम िैं। मन के अन्दर एक पवर्ेष पद्धतत का एकामय ि ।"[855] यि मानमसक र्त्तयों का सत्मश्रण ि।

व्यत्ततमव के अवयवों का भेद दो मुख्य पवभागों अथातश ्नाम और रूप में ककया गया ि। उपतनषदों में भी आनुभपवक आममा की रचना ऐसी िी प्रततपाहदत की गयी ि। इन दो भेदों अथाशत् ्नाम व रूप के द्वारा िी ब्रह्मरूपी तनपवकशल्प सत् ्पदाथजशगत् ्में छाया िुआ ि। नाम मानमसक एवं रूप भौततक घटकों के अनुकूल िोता ैं।856 र्रीर और मन को परस्पर एक- दूसूरे के ऊपर तनभरश माना गया ि, "जो कुछ िोस ि वि रूप की आकृतत ि, और जो सूक्ष्म ि वि 'नाम' ि। दोनों एक-दूसूरे से सम्बद्ध िैं और इसीमलए दोनों ममलकर जगत् ्की सृतूष्ट करते ैं। त्जस प्रकार मुगी के अण्डे ेमें मुगी का तछलका अण्डे ेके द्रव्य से पृथक् निीं ंरिता और वे ेदोनों साथ िी रिते ैं, तयोंकक दोनों एक-दूसूरे के ऊपर तनभरश िैं, िीक इसी प्रकार यहद नाम न िोता तो रूप (आकृतत) भी न िोता। उस अमभव्यत्तत में जो कुछ नाम से तामपय िै उसके साथ जो रूप से तामपय िै घतनष्ठिपूिवकश सम्बद्ध ि। ये दोनों एक साथ िी उमपन्न िोते ैं। और यि अनन्त समय से उनका स्वभाव ि।'[857] अन्य भारतीय मनोवैज्ञातनकों की भांतत बौद्ध भी मन अथवा मानस को भौततक अथवा ऐत्न्द्रय िी मानते िैं।

बाह्य एवं ंआभ्यान्तर के बीच अथवा पवषयी एवं ंपवषय के बीच भेद के सम्बन्ध में यि उद्धरण उपयुतत िोगा "वे कौन-सी अवस्थाएं िैं जो अज्जज्झत (अथातश वैयकक काय में यि एवं ंआभ्यन्तर) िैं ?- जो इस अथवा अमुक प्राणी से, आममा से, व्यत्तत अथवा स्वयंअपनेसे सम्बद्ध िैं और वैयत्ततक किी जाती िैं. ऐसी कौन-सी वे अवस्थाएं िैं जावं (अवैयत्ततक, पवषयतनष्ि और बाह्य) िैं ?-वे ेअवस्थाएं जो इस अथवा अमुक प्राणी, एवं व्यत्ततयों के मलए जो आममा, व्यत्तत अथवा स्वयंअपने से सम्बद्ध एवं व्यत्तत-पवर्ेष के मलए किी जा सकती िैं।" ये सब धम िै अथवा मानमसक प्रदर्नश िैं, एवं,ं लॉक के अनुसार, वे ेपवचार िैं- प्रमयक्ष तामकामलक ज्ञान का पवषय चािे जो कुछ भी िो, पवचार िो अथवा बांध िो। मनुष्य का व्यत्ततमव, त्जसमें रूप और नाम, र्रीर एवं मन सत्ममलत िैं, किा जाता ि कक मानमसक अवस्थाओं का समुच्चय ि। धमसंशगवी के पिले खण्ड में उन मानमसक अवस्थाओं अथवा धमों के पवषय में, जो मन के स्वरूप अथवा नाम को अमभव्यतत करते िैं,

---

854 संयुत्ततनकाय, 3: 130।

855 डॉतटर मैतैड्ङ्गल ने मलखा ि 'िम मन की पररभाषा बिुत कुछ इस प्रकार कर सकते िैं कक मन, मानमसक अथवा कायलशायक र्त्तयों की एक सुव्यवत्स्थत संतित का नाम ि।" (साइकोलॉजी)।

856 इसे रूप इसमलए किा जाता ि कक यि प्रकट करके हदखाता ि- रूपयतत (संयुंत्ततनकाय, 3: 86) 1 जो अपने-आपको इत्न्द्रयों के मलए प्रकामर्त कर देता ि उसे रूप किते ैं। इसका प्रयोग प्रकृतत और प्राकृततक गुणों, प्रमयक्ष पदाथों और त्जन्िें श्रीमती रीज डेपेवइस 'सूक्ष्मीकृत प्रकृतत के किती िैं. िैं, उनके मलए भी िोता ि। देणखए, उसके सम्पादकीय क्षेत्र' नोट को जो बुद्धघोष की अमयसामलनी (अंग्रेजी अनुवाद) में ि। और भी देणखए पारेन बुद्धधज्जम इन रांसलेन्र्ा, पृष्ठि 184 और आगे, जिांइसे चार तत्त्वों, र्रीर, इत्न्द्रयों और मनोवेगों में भी सत्ममलत ककया गया ि।

857 ममममलन्द, 2, 8।

 अथात्श ्आन्तररक इत्न्द्रय की अवस्थाओं के पवषय में पवचार ककया गया ि◌ै। दूसूरे खण्ड में

रूप अथवा बाह्यजगत् ्

की अमभव्यत्तत करने ेवाली अवस्थाएं, जो बाह्य इत्न्द्रय की उपज ि◌ैं, दी गई ि◌ैं। धम शएक व्यापक पररभाषा ि◌ै त्जसके द्वारा बाह्य एवं ंआभ्यन्तर इत्न्द्रयों के कुल पदाथों का ग्रिण ि◌ोता ि◌ै। सांसाररक घटनाओं का दो श्रेेणणयों में पवभाग ककया गया ि◌ै: (1) रूपपणो-वे त्जनका रूप ि◌ै अथात्श ्चार तत्त्व और उनकी धातुएं, (2) अरूपपणो-त्जनकी कोई आकृतत (रूप), प्रकार अथवा चेतना के पिलू निीं ंि◌ैं, यथा, मनोवेगों के स्कन्ध, प्रमयक्ष ज्ञान, संश्लेषण एवं ंबुद्धध। रूप से तामपय शि वि पवस्तृत पवश्व जो दृश्यमान ि◌ै एवं ंमानमसक जगत् ्से सवथशा मभन्न ि◌ै, वि बाह्यजगत् ्जो अदृश्य मन-अरूपपणो से सवथशा मभन्न ि◌ै। नैः-नैः इससे अमभप्राय उन सब लोगों का मलया जानेलगा त्जनके अन्दर िमारा पुनजन्शम ि◌ोना सम्भव ि◌ै, तयोंकक वे भी दृत्ष्ट का पवषय बन सकतिैं। मिारे मलए यि लक्षक्षत करना ि◌ी उधचत ि◌ोगा कक प्राचीन बौद्ध पवचारकों ने अधधक गिराई में जाकर खोज करने े की ओर ततनक भी ध्यान निीं ंहदया, तयोंकक उनकी प्रधान रूधच का पवषय नीततर्ास्त्र था। वे बाह्य जगत् ्के स्वरूप की व्याख्या अपनिी जीवन के भौततक आधार पर करते थे।

मानमसक नाम में धचत्त, हृदय अथवा भाववेर्, पवज्ञान अथवा चेतना एवं मानस आते ि◌ैं। नामरूप

अथात्श्पांच स्कन्धों के भी पवभाग ि◌ैं (1) रूप, प्राकृततक गुण, (2) वेदना; (3) संज्ञा, प्रमयक्षज्ञान; (4) संस्कार अथवा मानमसक वृपृत्तयां ंएवं ंइच्छा; (5) पवज्ञान अथवा तकश । इन पररभाषाओं का प्रयोग ककसी पवर्ेष तनत्श्चत अथबशोधन के साथ निीं ंककया गया ि◌ै। इनके द्वारा आममा के ममधश्रत वगीकरण का तनमाणश ि◌ोता ि◌ै। चेतना अथवा इच्छा के अनेक सम-तनममत्त कारण ि◌ैं। संस्कार के अन्तगतश पवपवध प्रकार की अनेक प्रवृपृत्तयां,ं बौद्धधक, प्रेेम- सम्बन्धी एवं ंऐेत्च्छक आती ि◌ैं और उसका पवर्ेष काय शि सबका समन्वय या संश्लेषण करना। पवज्ञान से तामपय शउस प्रज्ञा (ज्ञान एवं ंबुद्धध) से ि◌ै जो अमूत शभावाममक मूल तत्त्वों को भी ग्रिण करती ि◌ै।'[858] यि इत्न्द्रय-सम्बन्ध के द्वारा तनयत्न्त्रत निीं ंि◌ै जबकक भावनाएं, प्रमयक्षानुभव एवं धचत्तवृपृत्तयां ंतनयत्न्त्रत ि◌ैं।

उतत योजना जो आन्तररक पवश्लेषण की र्ीत को एक पयाप्शत मात्रा में पवकमसत रूप में प्रदमर्तश करती ि◌ै. मौमलक तत्त्वों में आधुतनक काल के मनोपवज्ञान के साथ पूण शसमता रखती ि◌ै। उतत योजना स्थूल रूप से र्रीर एवं मन के परस्पर भेद को एवं ंव्यडत्तत के भौततक (र्ारीररक) एवं ंआत्ममक पक्षों के भी भेद को पृथक् पृथक् तनदेर् करती ि◌ै । मनोवैज्ञातनक और भौततक की इस मनुष्य रूपी सत्ममलत रचना में वि भाग जो अपेक्षाकृत स्थायी ि◌ै, र्रीर ि◌ै, अथवा त्जसे रूपकाय किंगे और अस्थायी भाग मन ि◌ै। मानमसक पक्ष में प्रमयक्ष ज्ञान, कल्पनाममक भाव, मनोभाव अथवा अनुराग एवं इच्छा आहद ि◌ैं। प्रथम तीन को संज्ञा, वेदना एवं ंपवज्ञान नाम से भी किा जा सकता ि◌ै। वेदना एक भावनामय प्रततकक्रया ि◌ै।'[859] यि मानमसक अनुभव ि◌ै, अमभज्ञता एवं

---

858 इसके 89 उपपवभाग ि◌ैं, और इसके अन्तगतश उस सबकी चेतना आती ि◌ै त्जसका संक्रमण चक्षु,ु कान, नामसका, त्जिा एवं ं मवचा इंहद्रयों द्वारा एवं छिी इंहद्रय मन के द्वारा ि◌ोता ि◌ै, एवं अच्छे-बुरे अथवा न बुरे न अच्छे के बीच में भेद ककया जाता ि◌ै। इस समत्ष्ट के साथ अपने उपपवभागों को ममलाकर जो संख्या में कुल 193 ि◌ोते ि◌ैं व्यत्तत के सभी तत्त्व प्राकृततक, बौद्धधक एवं नैततक आ जाते ि◌ैं। देणखए र्ी ि◌ेपवड्स कृत' बुद्धधज्जम', पृष्ि 90-93, अतनरुद्ध, 'कम्पेत्ण्डयम आफ

कफलासफी', 'पाली टेतस्ड सीरी', पृष्ि 16, 88।

859 मममलन्द, 2: 3, 10। बुद्धघोष की अमथसामलनी भी देखें, अंग्रेेज़ी अनुवाद, पृष्ि 54।

सुख ि ै और इसके तीन गुण ि ैं अथात्श ्सुखकारी, दु:खद और तटस्थ या उदासीन, जो इन्द्रियगम्य पदार्थों के साथ संतनकष शमें आने ेसे जान्न ि ोतीं और स्वयंतणि (तृष्णा) अथात्श ्उमकट अमभलाषा को उमपन्न करते ि ैं। सामान्य सम्बन्धों और सब प्रकार के इन्द्रिययोमपन्न अथवा मानमसक प्रमयक्षों का ज्ञान संज्ञा ि ै।860 यिाँ ंिमें स्पष्ट प्रतीतत ि ोती ि ै। अनुभवों की श्रृंखला त्जसे 'धचत्तसन्तान' किते ि ैं, बबना ककसी व्यवधान के तनरन्तर क्रममक अत्स्तमवों में चलती रिती ि ै। चेतना का पवषय इन्द्रियगम्य पदाथ शअथवा पवचार सम्बन्धी कुछ भी ि ो सकता ि ै।

बुद्धघोप के अनुसार, चेतना पिले अपनेपदाथ शके सम्पकश में आती ि ै, और उसके पश्चात् ्प्रमयक्ष ज्ञान, भावना एवं ंइच्छा आहद उदय ि ोतीं। ककन्तु एकाममक चेतनावस्या को भावना एवंप्रमयक्षानुभव आहद के अनुकूल नाना प्रकार की आनुक्रममक श्ेरेणणयों में बांट देना सम्भव निीं। "एक सम्पूण शचेतना के अन्दर यि निीं कि जा सकता कक अमुक पिले आता ि ै एवं ंअमुक उसके पश्चात् ्आता ि ै।"[861] यि जान लेना रुधचकर ि ोगा कक बुद्धघोष के अनुसार, वेदना अथवा भावना अपने-आपमें अमयन्त पूण शअमभज्ञा एवं पदाथ शका उपयोग ि ै।862

अब ि म यिां ंप्राचीन बौद्धों के इन्द्रिय-प्रमयक्ष-सम्बन्धी मसद्धान्त का प्रततपादन करते ि ैं। एक नीले रंग की प्रततमा का र्दत्ष्टपवषयक ज्ञान तब उमपन्न ि ोता ि ै जबकक नीला रंग, जो उसमें पवद्यमान ि ै, एवं चक्षु ु इन्द्रिय परस्पर ममलतीं। कभी-कभी ि ेतु,ु कारण अथवा उपाधध के अन्दर भेद ककया जाता ि ै, जबकक र्दत्ष्टगत ज्ञान जो आंख एवं ंपदाथ शक कारण ि ै-नीला रंग-यि कि जाता ि ै कक पूव शज्ञान के कारण ि ोता ि ै, इन्द्रियों के पवषय पांच प्रकार के ि ैं। र्दत्ष्ट, र्ब्द, गन्ध, स्वाद एवं ंस्पर्।श बुद्धघोष ने इन्ि ें दो पवभागों में पवभतत ककया ि ै, अथात्श्असम्पत्तरूप, अथवा वे पवषय त्जनके ग्रिण में रीररेन्द्रियांपदाथों के पवषयगत उद्भव के तनकट सम्पकश में निीं ंआती, जैसे-देखना और सुनना, तथा सम्पत्तरूप, वे पवषय जो केवल स्पर् शके ि ी पररवतततश रूप ि ैं, जैसे गन्ध एवं स्वाद आहद। डेमोक्रटस ने कुल इन्द्रियगम्य ज्ञान को स्पर् शअथवा अस्पर् शका ि ी पवकमसत रूप माना ि ै। पांच प्रकार के पवषयों को 'पंचकमणश' कि गया ि ै। जब इन्द्रिय एवं ंपदाथ श(पवषय) परस्पर सम्पकश में आते ि ैं

---

860 मममलन्द, 2/3 11।

861 अमथसामलनी, पृष्ठ 143-144।

862 वेदना में "(1) पवर्ेष लक्षण के रूप में अनुभव करना, (2) कायरूशप में सुखानुभव, (3) मानमसक सुखों की प्रवृत्त्त अमभव्यत्ततरूप में और (4) तनवृत्त्त (र्ान्तता) तामकामलक ि ेतुके रूप में रिते ि ैं। (1) जीवन की चारों श्ेरेणणयों में वेदना नाम की कोई वस्तु ऐसी निीं ि ै त्जसमें अनुभव का पवर्ेष लक्षण न रिता ि ो। (2) यहद यि कि जाए कक पदाथपशवषय सुखानुभव का काय शकेवल सुखदायक वेदना में ि ी ि ोता ि ै तो ि म उस सम्मतत का तनषेध करके किेंगे कक चािे सुखमय वेदना ि ो, अथवा दु:खदायी ककंवा उदासीन ि ो, पवषय के अनुभव का काय शसबमें रिता ि ै। पदाथ शके रस के अनुभव के पवषय में र्ेष सम्बद्ध अवस्थाएं उसका अनुभव केवल आंमर्क रूप में करती ि ैं, सम्पकश का काय शकेवल स्पर् शका ि ै, प्रमयक्ष का काय श केवल ध्यान देने का, इच्छार्त्तत का काय शकेवल समन्वय करने का तथा चेतना का काय शकेवल बोध करने का ि ै। ककन्तु वेदना ि ी अकेली अपने तनयन्त्रण, कोर्ल (दक्षता) तथा उमकष शके कारण पदाथ शके रस का अनुभव करती ि ै...इसीमलए यि कि गया ि ै कक अनुभव इसका काय शि ै। (3) वेदना की केवल उपत्स्थतत का ि ी उल्लेख ककया जाता ि ै, उसकी अमभव्यत्तत को चैतमसक गुण का रस ग्रिण करने की मर्ाबासी का और चूंकक प्रर्ान्त अवस्था में रिकर ि ी रीर आनन्द अचया सुख का अनुभव करता ि ै, वेदना का तामकामलक ि ेतु तनवृत्त्त (र्ान्तता) ि ै। (अमयसामलनी, पृष्ठ 145-1461)

तो संवेदना उमपन्न िोती िै। वस्तुतः चेतना का प्रविा केवल इत्न्द्रय के पदाथ शके साथ िुए आकत्स्मक सम्पकश के कारण तनष्पन्न मानमसक अवस्थाओं का पररणाम मात्र िै। 'फस्सा' अथवा सम्पकश उसी प्रकार िोता िै जैसेकक दो मेढ़े परस्पर अपनेसींगों को टकरातेिैं। आंख एक ओर िै और पदाथ श(पवषय) दूसूरी ओर िै और सम्पकश दोनों का मेल िै ।"[863] धम्मसंगणी का मत िै कक बाह्य घटनाएं आभ्यन्तर अथवा वैयत्ततक रूप के इत्न्द्रय से टकराने े अथवा पररवतनश से उमपन्न िोती िै। अन्य भी कई ऐसे मत िैं त्जनके अनुसार आख एवंपदाथ शएक-दूसूरे के मलए प्रततवन्ध स्वरूप िैं-अथथात्श ्दोनों को एक-दूसूरे को अपेक्षा रिती िै। आंख के अभाव में दृश्यमान जगत् ्का भी अत्स्तमव निीं और बबना जगत् ्के देखने वाली आंख का भी अत्स्तमव निीं।864

---

863 मममलन्द, 2 3, 9, देणखए, मत्ज्जझम भी, 1:3।

864 श्रीमती रीज डेपेवड्स धम्मसंगणी में हदए गए इत्न्द्रय-प्रमयक्ष का संक्षक्षप्त पववरण तनम्न प्रकार से देती िैं:

(अ) इत्न्द्रयां ं

प्रथमतः- एक सामान्य कथन प्रमयेक इत्न्द्रय के पवषय में क्रम से (क) प्रकृतत (अथात्श ्चार तत्त्वों) के पवषय में, (ख) वैयत्ततक संघटन के पवषय में और इसकी अदृश्यता एवं इसके संघात की र्तत के पवषय में।
द्पवतीयतः - प्रमयेक अवस्था में ऐत्न्द्रय प्रकक्रया का पवश्लेषण तनम्न प्रकार से

(क) एक वैयत्ततक साधन अथवा ऐसा उपकरण जो संघात की प्रततकक्रया के योग्य िो, स्वय निीं। (ख) एक टकरानेवाली आकृतत अथवा ऐसी आकृतत जो एक पवर्ेष प्रकार के संघष शको उमपन्न करने वाली िो।
(ग) 'क' और 'ख' में परस्पर संघात । (घ) मानमसक अपवत्च्छन्नता के पररणामस्वरूप पररवतनश, अथात्श ्पिले सम्पकश (एक पवर्ेष प्रकार का), तब आनन्ददायक
पररणाम या वौद्धधक पररणाम अथवा सम्भवतः दोनों िी। प्रमयेक अवस्था में पररवतनश को दो बार कि जाता िै, एवं वल हदया जाता िै परस्पर संघष शके ऊपर, पिले तो त्जससे ेपररवतनश िोता िै उस पर, कफर उसके बाद ध्यान कक पवषयवस्तु का
तनमाणश करने वाले उस व्यत्तत की पररवतततश चेतना पर, त्जस पर प्रभाव पड़ा।
(आ) इत्न्द्रयों के पवषय (पदाथ)श प्रथमतः, एक सामान्य कथन प्रकृतत के स्थान पर प्रमयेक के इत्न्द्रयगम्य पदाथ शके सम्बन्ध में, कुछ पवर्ेष प्रकारों का वणनश करतेिुए और इसकी अदृश्यता को स्वीकार करतेिुए-दृश्य पदाथों तथा संघष शउमपन्न करने वाली र्तत को छोड़कर। द्पवतीयतः, 'अ' के अन्तगतश उत्ल्लणखत प्रमयेक मामले में ऐत्न्द्रय प्रकक्रया का पवश्लेषण, परन्तु जैसे इत्न्द्रयगम्य पदाथ शकी दृत्ष्ट से, इस भांतत-
(क) ककसी आकृतत या इत्न्द्रयगम्य पदाथ शका स्वरूप, जो वैयत्ततक संघटन के ककसी पवर्ेष उपकरण पर संघात पिंुचाने में सक्षम िो।
(ख) उस उपकरण का संपात।

पवचार-पवषयक पदाथ शभी पांच श्रेणी के ि ै (1) 'धचत्त' अथवा मन, (2) चेतमसम् ्अथवा मानमसक गुण (धम)श; (3) 'पसादरूप', र्रीर के संवेदनर्रील गुण और 'सुतमरूप र्रीर के सूक्ष्म गुण; (4) 'पञ्जतत, नाम, पवचार, भाव एवं ंप्रमययः और (5) 'तनवांण। यि ि ै धम्मारम्मण, जिां ंधम्म से तामपय शमानमसक साक्षामकार से ि ै। इत्न्द्रयानुभव ककस प्रकार अथ शएवं ंपवचार सम्बन्धी ज्ञान के रूप में पररणत िो जाता ि ै इसका कोई तनत्श्चत क्रम निीं ंबताया गया। यि किा जाता ि ै कक मन त्जसे प्राकृततक या भौततक इत्न्द्रय माना गया ि ै संवेदनाओं के

अन्दर जो बौद्धधक सोचतो एवं संभावनाओं का निर्माण करते। धचत्त, जो वस्तु एवं पवचार दोनों िी ि ै, संवेदनाओं को लेकर चेतना के एक र्ततर्ाली प्रवाि में पररणत कर देता ि ै। अपवधम्मपपटक के सातवें खंड में पमयाना अथवा सम्बन्धों के पवषय का प्रततपादन ि ै। बौद्ध पवचारक जानता ि ै कक ककस प्रकार प्रमयेक चेतना पवषयी एवं ंपवषय का सम्बन्धमात्र ि ै। इन सब प्रकक्रयाओंके अन्दर िम पवज्ञान की कक्रयार्रीलता की कल्पना करते ि ैं त्जसका पवमर्ष्ट काय शपिचान करना ि ै'[865] और यि तनतान्त बौद्धधक प्रततकक्रया ि ै।

'प्रयास' (मानमसक प्रकक्रया) अथवा आधुतनक मनोपवज्ञान की 'इच्छार्तत' का सिज में बौद्धपवश्लेषण के अन्दर पता ममलना कहिन ि ै। यद्यपप यि प्रमयमभज्ञा अथवा अनुराग के समान एक बबलकुल मूलभूत एवं परम वस्तुि ै। बौद्ध मसद्धान्त में इच्छा चेतना का सबसे अधधक प्रधान पक्ष ि ै एवं मानव-जीवन का आधारभूत तत्त्व ि ै। यि सोचने के मलए िमारे पास कोई आधार निीं ंि ै कक बौद्ध मनोपवज्ञानर्ास्त्र में इच्छा पांचों स्कन्धों के एकत्रीकरण का पररणामस्वरूप ि ै। िम कि सकतेिैं कक पवज्ञान, वेदना और संस्कार बिुत कुछ ज्ञान, भावना एवं इच्छा के सदृर् ि ैं। चाइल्डस शने अपने कोर् में आधुतनक प्रयास के अनुरूप धारणाओंको संस्कारों की िी श्रेणी में पररगणणत ककया ि ै। उनके अन्तगतश 'छन्दों' अथशात् ्इच्छा एवं 'वीयश'म् ् अथशात् ्प्रयमन भी सत्म्ममलत ि ैं। इसमें वीयम् श ्से, श्रीमती रीज डेपेवड्स के अनुसार, अन्य सब र्ततयों को सिायता ममलती ि ै। अरस्तू में िम देखतेिैं कक इच्छा र्तत द्वारा प्रेररत प्रयमन वुभुक्षा, रजोवृपृत्त, चुनाव एवं ंइच्छा में एक मित्त्वपूण शतत्त्व ि ै। श्रीमती री् डेपेवड्स की सम्मतत में यद्यपप ऐसे स्पष्ट रूप में पवकमसत मनोपवज्ञान के संकेत निीं ंपाए जाते े त्जसमें बुभुक्षा, इच्छा एवं चुनाव में सुचारुरूप से भेद प्रदमर्तश ककया गया िो, तो भी िमें इच्छा की मनोवैज्ञातनक घटना एवं इसके नैततक तनणयश के मध्य मुख्य पवभाजक मयादशाएं अवश्य ममलती ि ैं। उनके पवचार से "पपटकों में ऐसे पाररभापषक र्ब्दों के प्रयोगों में जो इच्छा के द्योतक ि ैं, उनके मनोवैज्ञातनक अमभप्राय एवं ंनैततक व

(ग) इंहद्रयगम्य पदाथ शकी प्रततकक्रया वा पूरक संपात। (घ) मानमसक अपवतछन्नता के पररणामस्वरूप पररवतनश, अथात्श्पिले् सम्पकश (एक पवर्ेष प्रकार

का), तब आनन्ददायक पररणाम, या चौद्धधक पररणाम अथवा सम्भवतः दोनों िी। प्रमयेक अवस्था में पररवतनश को दो बार किा गया ि ै और परस्पर संघष शपर बल हदया गया ि ै, पिले तो त्जससे पररवतनश िोता ि ै उस पर, कफर उसके बाद ध्यान की पवषयवस्तुका तनमाणश करनेवाली उस पररवतततश चेतना पर जो इस प्रकार प्रभापवत िुई ि ै।

[865] मममलन्द, 2 : 3, 12 ।

धाममकश संकेततत अथों में परस्पर भेद पयाप्शत मात्रा में ममलता ि◌ै। उदिारण के मलए, धम्मसंगणी में दो समानान्तर स्थलों पर वि परभापषक ब्दं जो सबसे उत्तमरूप में पवरुद्ध एवं ◌ंसरल प्रयास अथवा त्तंत की चेतना के भाव को प्रकट करता ि◌ै अथात्श ◌्'वीयम्श'◌्, तथा इसके और सब पयायशवाची सूत्र चेतना के (समभावपूरक) पाररभापषक ब्दं-जैसे प्रयमन करना, चेष्टा करना, एवं ◌ंउद्योग, उमसाि (धुन) प्रक्षक्षण्डता, पौरुष एवं प्रततरो्धत्तंत, तनरन्तर चेष्टा, दृढ़ इच्छा एवं संघष शतथा ककसी बोझ को उमकट इच्छा के साथ स्वीकार करना-मन की अवस्था एवं ◌ंस्वभाव दोनों के पवषय में यि जतलानेके मलए प्रयुतत ि◌ुए ि◌ैं कक कौन-सा नैततक दृष्ट से सुकृत ि◌ै एवंकौन-सा नैततक दृष्ट से दुष्कृत ि◌ै। इसमलए मनोवैज्ञातनक गततपवधध के मलए ऐसे सब पाररभापषक ब्दों के प्रयुतत ि◌ोने ◌ेपर जब बौद्धधम शने कोई दोष निीं ◌ंदेखा तो ि◌में भी तयों देखना चाहिए। दूसूरी और जब कभी पपवत्र धमपुशस्तकें इच्छा सम्बन्धी पाररभापषक ब्दों के द्वारा नैततक मूल्यांकन का बोध कराना चािती ि◌ैं तब या तो स्पष्ट एवं ◌ंपवमर्ष्ट ब्दों का व्यवििार ककया जाता ि◌ै अथवा इच्छा त्तंत के द्योतक पाररभापषक ब्दं को स्पष्टरूप से पवरे्पेषत या सप्रततबन्ध कर हदया जाता ि◌ै जैसेपवपरीत इच्छाओंके पवषय में अथवा इच्छा की दूपूषत या पवकृत अवस्था के पवषय में वणनश करने ◌ेके समय आवश्यकता अथवा इच्छा या आकांक्षा उमकट अमभलाषा या तृष्णा (तण्िा)बन जाती ि◌ै, इच्छा वा छन्दो के मलए ि◌में कामना (छान्दोरागो) ब्दं का प्रयोग ममलता ि◌ै, ्ारीररक कामनाओंके मलए 'कामरागो', ऐंहद्रय सुख के मलए 'नत्न्दरागो' अथवा कोई न कोई पवरे्षणसहित बातय, रूप की इच्छा के मलए 'रूपछन्दो' आहद-आहद।"[866] प्रमयेक पदाथ शको इच्छा का रूपान्तर बताया गया ि◌ै। आधुतनक मनोपवज्ञान समस्त मानमसक जीवन के भावनाममक एवं प्रयोजनाममक स्वरूप पर बल देता ि◌ै। कभी तो प्रयास या मानमसक प्रकक्रया का सम्बन्ध केवल पवचाराममक ि◌ोता ि◌ै और कभी कक्रयाममक या व्यवििाररक ि◌ोता ि◌ै। प्रोफेसर अलेतजेण्डर के ब्दों में, "मन की पवचाराममक कक्रयाएं ि◌ोती ि◌ैं कक वे बबना ककसी पररवतनश के मन के आगे पदाथ शके तनरन्तर अत्स्तमव को बनाए रखनेमें सिायक साधन रूप मसद्ध ि◌ोती ि◌ैं। व्यावििाररक कक्रयाएं वे ि◌ैं जो पदाथों में पररवतनश उमपन्न करती ि◌ैं।" "संज्ञान (बोध अथवा अनुभूतत) एवं मानमसक प्रकक्रया इन दोनों की प्रमयेक मनोपवकृतत (अथवा दु:साध्य उन्माद) में पृथृक् पृथृक् पिचानेजा सकने वाले अवयव निीं ◌ंि◌ैं। ककन्तु मानमसक प्रकक्रया की प्रमयेक ककस्म दो पवमभन्न आकृततयां ◌ंधारण करती ि◌ै, पवचाराममक अथवा कक्रयाममक, और यि मानमसक प्रकक्रया के मभन्न-मभन्न सम्बन्धों के अनुसार ि◌ोती ि◌ै।"[867] साधारणतः कल्पनाममक पवचार कक्रया में पररणत ि◌ो जाता ि◌ै। संज्ञान अथवा अनुभव मुख्य रूप में कक्रयाममक िोतेिैं। बौद्ध मनोपवज्ञान सिी माग शपर ि◌ै जबकक 'प्रतीमयसमुमपाद' को मसद्धान्त में यि प्रततपादन करता ि◌ै कक प्रमयक्ष ज्ञान या अनुभव इच्छाओंको उते्तेजना देते ि◌ैं। ऐसा पदाथ शत्जसके प्रतत मानमसक कक्रया पे्रेररत ि◌ोती ि◌ै तो उसका भान ि◌ोता ि◌ै, या उसका दर्नश के द्वारा साक्षात् ◌्ज्ञान ि◌ोता ि◌ै; उसकी मूतत शमन में बन जाती ि◌ै, उसकी स्मृतृत द्वारा अनुभव ि◌ोगा अथवा वि पवचार का पवषय ि◌ोगा। संज्ञान एवं ◌ंइच्छा मानमसक प्रकक्रया के कल्पनाममक एवं ◌ंकक्रयाममक रूप बन जाते ि◌ैं। भौततक मनोपवज्ञान ज्ञानेत्न्द्रय-सम्बन्धी चालक पेर्ी (चेष्टावि नाड़ी) के चक्र या पररभ्रमण को इकाई मानता ि◌ै। इसमें से अन्तमुखशी या भीतर ले जाने वाला भाग अनुभूतत के

---

866 'जनलश आफद रॉयल एमर्याहटक सोसाइटी ', 1898, पृष्ठ 49।

867 'बब्रहटर् जनलश आफ साइकोलॉजी', 1911, पृष्ठ244।

अनुकूल िै एवं तनमामशी (अपविी नी़ि) मानमसक प्रकक्रया के अनुकूल िै। समस्त प्रकक्रया िै एक िी, और ये दोनों
इसमें अवयवों या घटकों के रूप में मभन्न-मभन्न ककए जा सकते िैं। जिां ंसमस्त मानमसक जीवन मानमसक कक्रया या प्रवास से सम्बन्ध रखता िै, इच्छा लक्ष्य की ओर कक्रयाममक पीछा करती िुई हदखाई देगी, और इसे आदर् शसे यथाथतशा में पररवतततश कर देगी। यिां ंपर भी कक्रयाममक पक्ष की प्रधानता िै। पवचाराममक अनुभूतत उदय िोती िै जबकक कक्रयाममक अमभव्यत्तत रुक जाती िै अथवा उसके अन्तगतश रिती िै। केवल धचन्तन का सुखानुभव भी मानमसक प्रकक्रया का पवकास िै त्जसमें कक्रयाममक प्रयोजन अपने-आपमें सुखानुभव िै। इसके अततररतत संवेदना मानमसक कक्रया से स्वतन्त्र भी तो निींि। यि सब कक्रयाओंमें सिचारी भाव से पवद्यमान रिती िै। प्रोफेसर स्काउट ने मानमसक अवस्थाओं के पुराने ेबत्रभागी वगीकरण को मयागकर प्राचीन द्पवभतत मनोपवश्लेषण को िी अंगीकार ककया िै, और भावाममक एवं प्रयासाममक अवयवों को एकत्र करके उसे अनुभूतत के अवयवों का नाम न देकर अमभरुधच की संज्ञा दी िै। यहद िम बोध (संज्ञान) के पृथृतमव को दूरू करके इसे मानमसक प्रकक्रया का एक पक्ष बना दें तब िमें पवहदत िोगा कक बौद्धमत का मानमसक प्रततकक्रया पर वल देना जो विी मानमसक जीवन का प्रधान तथ्य िै।

यद्यपप सवोपरर आममा के अत्स्तमव को निीं ंमाना गया िै तो भी उसका स्थान एम.पूसी'[868] के अनुसार, पवज्ञान ने ले मलया िै। वि सत्ता जो एक जीवन के पश्चात् ्दूसूरे जीवन में जाती िै, 'पवज्ञान' िै।'[869] 'पवज्ञानसन्तान' अथात्श ्उसकी अखण्ड गतत अथवा अपवत्च्छन्नता का वणनश ककया गया िै। यि एक स्थायी, अपररवतनशरी्ल एवं ंदूसूरे जन्म में संक्रमण करने ेवाली सत्ता निीं ंिै कक‍न्तुएक वैयत्ततक और क्षणणक चेतना िै, अवस्थाओं का एक तनयममत श्रे्णीबद्ध अमभयान िै। पवज्ञान की श्रृंखला वेदना से मभन्न िै एवं ंअपने-आपमें पूण शतथा भौततक प्रकक्रयाओंसे स्वतन्त्र िै।

बौद्धधम शके मनोपवज्ञान को सिकाररतावादी रूप में वणनश करना सबसे उत्तम िोगा, तयोंकक धमों का प्रमयेक वग शया पूववशती घटनाएं, जो चेतना में उनके प्रकट िोने ेके पवषय hat 7 तनणायशक िोती िैं, पवर्ेषे-पवर्ेषे तनयमों के अनुसार िी खोजी जाती िैं और अपने-अपनेसमय के अनुकूल व्याख्याएं प्रस्तुत की जाती िैं। इस प्रश्न के उत्तर में कक पवर्ेषे प्रभावों से पवर्ेषे पवचार तयों उमपन्न िोते िैं, नागसेन उत्तर देता िै, "इसीमलए तयोंकक उनकी प्रवृपृत्त ऐसी िै और तयोंकक वे एक द्वार िैं एवं तयोंकक उनका स्वभाव ऐसा िै और तयोंकक वे एक सिकारी संघ िैं।" प्रवृपृत्त अथवा ढाल की त्जन र्ब्दों में व्याख्या की गई िै उनसे िमें आधुतनक भौततक मनोपवज्ञान एवं इसके स्नायुमण्डल-सम्बन्धी स्वभाव के तनयमों का स्मरण िोता िै। "जब वषाशिोती िै तो पानी किां ंजाता िै ?" "यि उधर की ओर िी जाएगा त्जधर भूमम का ढाल िोगा।" "और यहद दूसूरी बार वषाशिोगी तो पानी ककस ओर जाएगा ?" "यि भी उधर िी जाएगा त्जधर पिला पानी गया था।"[870] डातटर मैकडूगल ने मलखा िै: "यि मानने े के मलए िमारे पास पयाप्शत प्रमाण िैं कक मानमसक अन्त:पे्ररणा का माग शस्नायुजाल की श्रृंखला में से गुजरता

---

868 जनलश एमर्याहटक',1902,यिमत सम्भवत: पपटकों 1 की अपेक्षा अवाचशीन िै।

869 वारेन : 'बुद्धधज्जम इन रांसलेन्र्स', पृषि़् 207।

870 2/3, 7।

ुआि उस श्रृंखला को न्यूनाधधक रूप में स्थायी रूप में इस प्रकार पररवतततश कर देता ि ै कक आगे के मलए उसमें अन्तःपे्रेरणा के माग शको बाधा देनेकी र्तत बुित ि ी न्यून ि ो जाती ि ै।" वि माग शत्जसके द्वारा तनकास ि ोता ि ै, झायुमण्डल के स्वभाव के तनयमों के अनुसार बुित ि ी तनम्न शे्रेणी के अवरोध र्ततवाला ि ा जाता ि ै।'[871]
बौद्धधम शकी उतत व्याख्या तनश्चय ि ी एक मनोवैज्ञातनक अन्तर्दत्शष्ट से तनकाला ि ो एवं ककसी मत्स्तष्क की रचना और उसकी र्ारीररकी के अध्ययन का पररणाम निीं ंि ै तयोंकक सम्भवतः धचककमसार्ास्त्र के इन पवज्ञानों का उस समय किीं ंपता निीं ंथा। प्रमयमभज्ञा की दर्ाओं ंका भी वणनश ककया गया ि ै।

मानमसक अवस्याओंकी समयावधध के पवषय में किा गया ि ै कक चेतना की प्रमयेक अवस्था के तीन रूप ि ैःउमपपत्त (उप्पाद), पवकास (धथतत) एवं ंपवनार् (भंग)। इन तीनों में से प्रमयेक समय के अमयन्त सूक्ष्म पवभाग के अधीन ि ै त्जसे एक क्षण किते ि ैं। तीनों क्षणों का आधार, त्जसमें चेतना की एक अवस्था उमपन्न ि ोती ि ै, त्स्थत रिती ि ै एवं पवनष्ट ि ोती ि ै, धचत्तक्षण किलाती ि ै। कई बौद्धों की सम्मपत्त ऐसी भी ि ै कक ऐसा एक क्षण भी निीं ंि ै त्जसमें चेतना की अवस्था त्स्थर रिती ि ो। यि केवल उमपन्न ि ोती ि ै एवं ंक्षीण ि ो जाती ि ै, और इसके मलए कोई त्स्थर अवधध निीं ंबना सकते, भले ि ी यि ककतनी ि ी सूक्ष्म तयों न ि ो। पवसुद्धधमग्ग में किा ि ैः "पवचार के एक पवगत क्षण का प्राणी जीपवत रिा ि ै ककन्तु यि अब निीं ंि ै और न ि ी यि रिेगा। भपवष्य के क्षण का प्राणी जीपवत रिेगा, ककन्तु ुवि भूतकाल में जीपवत निीं ंरिा, न वि वतमशान में जीपवत ि ै। पवचार के वतमशान क्षण का प्राणी जीपवत ि ै ककन्तु यि भूतकाल में निीं ंथा और न ि ी भपवष्य में रिेगा।"[872]

प्रमयेक चेतन अवस्था को सत् ्की धारा में बाधक बतलाया गया ि ै जो उपचेतन अथवा सुप्तचेतन जीवन का प्रवाि ि ै। बौद्ध मनोपवज्ञान ने सुप्तचेतन अवस्था को स्वीकार ककया ि ै। इते'पवधधमुत्त' अथात् श ् प्रकक्रया से मुतत किा गया ि ै और यि 'पवधधधचत्त' अथात्श ्जागररत चेतना से मभन्नरूप ि ै। दोनों के बीच में उन्ि पवभतत करने ेवाली चेतना की ड्योढ़ी ि ै त्जसे मनोद्वार अथवा मन का द्वार किते ि ैं। यि उस स्थान पर अवत्स्थत ि ै जिांकक सरल सत् ्की धारा अथवा भवांग कट जाती ि ै अथवा रुक जाती ि ै। भावांग'[873] सुप्तचेतन (उपचेतन) सत्ता का नाम ि ै अथवा यों किना अधधक ठीक ि ोगा कक वि सत्ता जो जागररत अवस्था की चेतना से स्वतन्त्र ि ै।874

---

871 'कफत्ओलात्जकल साइकोलॉजी', पृष्ठ 125-26।

872 वारेन : 'बुद्धधज्जम इन रांसलेन्र्स', पृष्ठ 150 ।

873 'भव, सत्, ् 'अंग', भाग। भवांग से तामपय शऐत्न्द्रय सत्ता एवं सुप्तचेतन मत्ता दोनों से ि ै। सब कुछ जीपवत ि ै यद्यपप कुछ अवस्थाओं ंचेतना ि ोती ि ै। में ि में और अन्यों में निीं ि ोती।

874 भवांग के उन्नीस प्रकार के भेद बताए गए ि ैं। उनमें से दस कामलोक में सम्भव ि ैं, पांच रूपलोक में, और चार अरूपलोक में। श्रीमती र्ी डेपेवड्स के अनुसार, "चेतना केवल मानमसक स्पन्दनों की पवच्छेदयुतत श्रृंखला ि ै, त्जसका सम्बन्ध एक जीपवत संगिन के साथ ि ै जो जीवन की एक अल्पकामलक अवधध के अन्दर ज्ञान प्राप्त करने का पूरा प्रयमन करती ि ै।" ('बुद्धधस्ट साइकोलॉजी' पृष्ठ 16।) भवांग पवषयी या प्रमाता के र्दत्ष्टकोण से एक अवचेतन सत्ता ि ै यद्यपप पवषय या र्ेन पदाथ शके र्दत्ष्टकोण से इसे कभी-कभी तनवाणश के अथों में मलया जाता ि ै।

एक सुसंगत प्रमयक्ष ज्ञानवाद का मसद्धान्त इस पवषय की व्याख्या निीं ंकर सकता कक ककस प्रकार समसर्दर् प्रभाव पवस्तृत एवं पररष्कृत िोकर सामान्य मसद्धान्तों अथवा कल्पनाओंमें पररणत िो जाते िैं एवं नानामव में, एकमव का पररज्ञान तयों और कैसे सम्भव िोता िै। बौद्धधम शका मनोपवज्ञान िमारे सम्मुख मानमसक अवस्थाओं के पवश्लेषण को प्रस्तुत करता िै ककन्तु ध्यान एवं ंइच्छा आहद की प्रकक्रया में ककसी पवषयी को माननेकी आवश्यकता का प्रश्न निींउिता। भावनाओं एवं सम्बन्धों के पवषय में तो यि किता िै ककन्तु यि निींपूछता कक संयुतत करने ेवाली एक चेतनार्त्तत के तया वे पृथक् भी रि सकतीं? बौद्धों के मत में कक्रयार्ीलता का पवषयी (प्रमाता) ऐेन्द्रिय एवं ंमानमसक धचत्तवृपृत्तयों एवं ंकमों का कुल जो़ िी िै। "नाम एवं ंरूप के द्वारा िी काय शककए जाते िैं।" और यि तनत्श्चत रूप में एक सदा बदलने वाला संयुतत रूप िै। िमें यिां ंतक किा जाता िै कक परस्पर सम्पकश का अनुभव करने ेवाला कौन िै यि मत पूछो"[875] परन्तु केवल इसी पवषय में त्जज्ञासा करो कक उनका सम्पकश करने ेका कारण तया िै। िमारा व्यत्ततमव का भाव एक भ्रात्न्त िै। तो भी िम

किसे पिंचमानी ि। बुद्धघोष ने इसकी इस प्रकार िै अथवा तनवाणश
व्याख्या की िै "िीक जैसे सत् ्के उन घटकों (अवयवों) के पवषय में त्जन्िें वृकूष का नाम हदया जाता िै, ज्जयोंिि ककसी समय फल तनकलता िै तब यि किा जाता िै कक 'वृकूष में फल लगा िै' अथवा यि कक 'वृकूष फल गया िै' इसी प्रकार उन वगों के पवषय में भी िै त्जन्िें देवता या मनुष्य का नाम हदया जाता िै, जब ककसी समय जाकर सुख अथवा दु:ख का फलभोग िोने ेलगता िै तब यि किा जाता िै कक अमुक देवता या अमुक मनुष्य सुखी या दु:खी िै।"[876] यद्यपप वतमशानकाल की आममा भूतकाल की आममा निींिि सकती, यि िै भूतकाल का िी पररणाम अथात्श ्यि उस श्रृंखला में से आई िै। 877

आममा-सम्बन्धी पवचार अपने ेअन्दर पयाशप्त अथ शसंजोए िुए िै त्जससे कक पुनजन्शम साथकश िोता िै। कहिनाई यिी िै कक यहद स्थायी आममा नामक कोई वस्तु निीं ंिै तब दण्ड का कुछ अथ शिी निीं ंरिता। दण्ड के भोगने के समय व्यत्तत विी पूवसशत्ता निीं ंिै त्जसनेकक पाप ककया था। ककन्तुपयाप्शत मात्रा में तादामम्य अवश्य िै जो दण्ड को न्याय्य ििरा सके। आध्यात्ममक सत्ता दण्ड की न्याय्यता के मलए भले िी निीं,ं तो भी व्यत्तत भी ककन्िींअसंबद्ध घटनाओंका अस्तव्यस्त क्रम निीं ंिै, अपपतु एक जीपवत मानमसक ग्रत्न्थ िै, जो भौततक, आत्ममक एवं नैततक कारणों एवं कायों की एक श्रृंखला िै। राजा नेनागसेन से पूछा: "वि जो जन्म लेता िै तया उसी रूप में पवद्यमान रिता िै अथवा अन्य बन जाता िै?" "न तो विी रिता िै और न अन्य िी िो जाता िै।" "मुझे ेकोई दृष्टान्त देकर समझाओ।" "अच्छा, िे राजन्,् तुम तया सोचते िो। तुम एक समय एक मर्दु ुके रूप में थे ेजो एक कोमल पदाथ शिै और आकार में भी छोटा िै अपनी पिी के बल लेटे िुए, तया तुम अब जो बढ़कर िो

875 देणखए संयुत्ततनकाय, 2: 13।

876 वारेन : 'बुद्धधस्म इन रांसलेर्न्स', पृषि् 241।

877 "िे राजन्,् जब कोई मनुष्य एक बत्ती जलाता िै तो तया यि वत्ती रात भर निीं जलेगी ?" "िााँ, वि तनश्चय िी रात भर जलेगी।" "तो िे मिान राजन्,् राबत्र के पिले प्रिर में ज्जवाला िै तया दूसूरे प्रिर में भी विी ज्जवाला रिती िै?" "निीं ंभगवन्,् ककन्तु प्रकार् रात भर उसी सामग्री से जुा रिकर जलता िै।" "िे मिान राजन्,् इसी प्रकार से वस्तुओंके घटकों की श्रृंखला भी जुी िुई िै। एक घटक सदा उमपन्न िोता िै और दूसूरा सवधशा पवरत िोकर नष्ट िो जाता िै। आहद एवं अन्त से रहित यि पररवतनश चलता रिता िै।" " (मममलन्द ।)

 गए विी मर्दु ुथे? े" "र्निीं, ं वि बच्चा और था, म ैंअन्य िंूंू।" "यहद तुम वि मर्दु ुनिीं थि,

तो इसका पररणाम यि

तनकला कक तुम्िारे माता-पपता व मर्क्षक भी कोई निीं ंरिे।"[878] कफर से जन्म ग्रिण करनेवाला मनुष्य, वि मृत मनुष्य निीं िै और तो भी उससे मभन्न भी निीं ंिै। वि उदय िोता िै उसी के अन्दर से िै। प्रमयेक हदन िम नवीन िैं यद्यपप बबलकुल नवीन निीं ंआयत रिने ेवाली एक तनरन्तरता िै, एवं ंउसके संग तनरन्तर रिने ेवाला पररवतनश भी िै बुद्धघोष करता िै। "यहद तनरन्तर रिने ेवाली के संग तनरन्तर सिन समानता मान जाए तब उदिारण के मलए खट्टी मलाई दूध के अंदर से कैसे संपंन्न िो सकती िै यहद दोनों में तनतान्त भेद िै तो दूध साधारण अवस्थडा में खट्टी मलाई कैसे उमपन्न कर सकता िै। इसमलए न तो तनतान्त तादामम्य िी िै और न िी तनतान्त भेद िै। पूण शवस्तु एक प्रकार की श्रृंखला िै। सब प्रकार के कक्रयाममक प्रयोजनों की दृत्ष्ट से नई सृत्ष्ट पुरानी के बाद इतनी तामकामलक िोती िै कक इस उसी का तनरन्तरक्रम मान मलया जा सकता िै। कम शमें तनरन्तरता िै। पुनजन्शम एक नया जन्म िै। यिां ंतक कक उपतनषदों में भी एक अद्भुत, सदा बढ़नेवाली एवं ंअस्थायी आममा िी वि िै जो इस संसार में इतस्ततः भ्रमण करती िै एवं ंप्रततकाराममक न्याय का पवषय िै। पुनजन्शम के मलए इस अटल जिं की आवश्यकता िै। अस्थातयमव के भाव एवं ंकारणकाय शके तनयम के अन्दर से िी एक कक्रयार्ील आममा का पवचार उहदत िोता िै। प्रमयेक अनुभव जैसे-जैसे उहदत िोता िै और गुज़रता िै, मिं

दूसूरे अनुभव को प्राप्त कराता िै, अथवा दूसूरे अनुभव में क्षण में, अथवा जीवन के रूप में पररणत िो जाता िै और इसी में समस्त भूतकाल का समन्वय िो जाता िै। एम. बगसशां ंके स्मृतृत-सम्बन्धी मसद्धान्त का सुझाव देनेवाले र्ब्दों में बौद्ध लोग तकश करते िैं कक स्मृतृत नामक कोई मभन्न पदाथ शनिीं ंिै तयोंकक सम्पूण शभूतकाल, एक उमपादक प्रभाव अथवा र्त्तत के रूप में जो बराबर पीछा करता आता िै, वतमशानकाल के अन्तगतश िै एवं ं उसमें समापवष्ट िै। "त्जस सबका िमनेअनुभव ककया िै, त्जसे प्राप्त ककया िै, एवं बचपन से त्जसकी इच्छा की िै वि सब यिा ाँउपत्स्थत िै, वतमशान क्षण को तदनुकूल बनाता िुआ जो इसमें पवलीन िोता जाता िै एवं ंचेतना के

द्वार पर अन्दर स्थान पाना चािता िै ककन्तु जो इसे बािर िी छो़ देता िै।"[879] भूतकाल वतमशानकाल में दांत गा़ता िै और इस पर अपना धचह्न छो़ देता िै।

13. प्रतीमयसमुमपाद, या आधश्रत उमपपत्त का मसद्धान्त

इस दु:खमय जीवन की उमपपत्त एवं ंइसके अन्त की व्याख्या प्रतीमयसमुमपाद के मसद्धान्त द्वारा की गई िै। "उस समय राबत्र के प्रथम जागरण में मिाभाग ने मन को कारण- कायभशाव की श्रृंखला की अनुलोम एवं प्रततलोम व्यवस्था के ऊपर त्स्थर ककया 'अपवद्या से संस्कारों की उमपपत्त िोती िै, संस्कारों से चेतना का जन्म िोता िै, चेतना से नाम एवं ंरूप की सृत्ष्ट िोती िै, नाम और रूप से छः इत्न्द्रयां ंअथात्श ्आंख, कान, नाक, त्जह्वा, र्रीर अथवा मवचा और मन में छः पवषयों का जन्म िोता िै, छः पवषयों से सम्पकश उमपन्न िोता िै, सम्पकश से संवेदना, संवेदना से तृष्णा या उमकट अमभलाषा, तृष्णा से आसत्तत, आसत्तत से िोना या कक्रयमाणता और िोने े

---

878 मममलन्द।

879 'कक्रयेहटव इवोल्यूर्न', पृष्ठ 5।

से जन्म, जन्म से जरा एवं ंमृमृयु, र्ोक, रोदन, दुःख, पवषाद एवं तनरार्ा आहद उमपन्न िोतेिं। इस प्रकार इस समस्त दुःख समुच्चय का तनदान िै। आगे चलकर अपवद्या के पवनार् से, त्जससे तामपय शवासना का तनतान्त अभाव िै, संस्कारों का पवनार् िोता िै; संस्कारों के नार् से चेतना का नार् िोता िै, चेतना के नार् से नाम और रूप नष्ट िोतेिं; नाम और रूप के पवनार् से छः पवषयों का पवनार् िोता िै, छः पवषयों के पवनार् से सम्पकश भी नष्ट िो जाता िै। सम्पकश के पवनार् से संवेदना का नार् िोता िै; संवेदना के नार् से तृष्णा का नार् िोता िै; तृष्णा के पवनार् से आसत्तत का नार् िोता िै. संवेदना के नष्ट िोनेसे िोने ेया कक्रयमाणता का नार् िोता िै. िोने ेके नार् से जन्म का नार् िोता िै, एवं ंजन्म के नष्ट िो जानेपर जरा, मृमृयु, र्ोक, पवलाप, दुखु, पवषाद एवं तनरार्ा सबका नार् िो जाता िै। इस प्रकार सम्पूण शदुःख समुच्चय की तनवृपृत्त िोती िै।880 वारेन का पवचार िै: "यि समस्त तनयम अपनी वतमशान आकृतत में पृथृक् पृथृक् टुकों को ममलाकर, जो बुद्ध के समय में प्रचमलत थे,े यिां ंरख हदया िै।" इसका आधार ये समय िैं कक मनुष्य जन्म के चक्र के साथ आबद्ध िै और उसके मलए यि सम्भव िै कक यि अपनेको कायकशारणभाव के संक्रमणर्ील रूप को रोककर इन बन्धनों से स्वतन्त्र कर सकता िै। उतत कारणकायभशाव के चक्र-सम्बन्धी मसद्धान्त के साथ िी ममलते-जुलते एकमत की ओर उपतनषदों में भी संकेत ककया गया िै।881 इस कारणकायभशाव रूपी चक्र में कभी-कभी भूतकाल के जीवन, वतमशान एवं भपवष्य के जीवन के घटकों के कारण भेद ककया जाता िै, तयोंकक तीनों कालों के कमों का प्रभाव एक-दूसूरे के ऊपर िोता िै।882

---

880 मिावग्ग,1: 1,1-3,'सैके्रेडबुतसआफ द ईस्ट', 18, एवं मममलन्द भी देखें, 2/3.।

881 िाि बन्धन प्राणधारक वायु, वाणी, त्जल्िा, आंखं, कान, मन, िाथ और मवचा, एवं उसके सिायक, जो उपतनषदों में बताए गए िैं (बृिदारण्यक, 3: 2)-इस मसद्धान्त का आधार समझे ेजा सकते िैं। श्वेताश्वर उपतनषद् में ब्रह्मचक्र का उल्लेख ममलता िै । प्राचीन बौद्धधम शमें इसी के मलए 'भवचक्र' र्ब्द का प्रयोग ककया गया िै त्जसका अथ शिै जीवन का चक्र।

882 तनम्न तामलका इस भेद को दर्ातशी िै। देखें, मत्ज्झमतनकाय, 140, मिापदानसुत्तन्त, 2।

क) जो पूवजशन्म के कारण िैं:

- अपवद्या, अथवा अज्ञान ।
- संस्कार, अथवा पूवप्रशवृपृत्तयां ं।

(ख) जो वतमशान जीवन के कारण िै :

- पवज्ञान, अथवा अपने पवषय की चेतना।
- नामरूप, अथवा मन एवंर्रीर।
- षडायतन, अथवा इत्न्द्रया।
- स्पर्,श अथवा सम्पकश ।
- वेदना ।
- तणा (तृष्णा), अथवा उमकट लालसा।
- उपादान, अथवा आसत्तत ।
- भव, अथवा अत्स्तमव ।

(ग) जो भपवष्यजीवन के कारण िैं:

- जरा-मरण।

जीपवत रिने ेकी आकांक्षा िी िमारे जीवन की आधारमभपत्त िै। इसका तनषेध िी िमारी मुत्तत िै। जन्म लेना िी मनुष्य के मलए सबसे बा़ पाप िै, जैसाकक र्ोपनिावर को 'काल्डरन' को उद्धृत् करने ेका र्ौक िै। यिी एक सरल समय िै, कारणकायभशाव की श्रृंखला में त्जसका परररष्कार ककया गया िै। इसी में इस दूसूरे मिान समय का कक दु:ख का कारण इच्छा िै, समावेर् िो जाता िै एवं यिी जीवन की सब दर्ाओं का संक्षेप में वणनश कर देता ै। तनदान बारि क्रमबद्ध कारण िैं, त्जनमें से प्रमयेक एक-दूसूरे के मलए प्रततबन्ध अथवा उपाधध बनता िै। प्रथम तनदान अपवद्या को छोक़र और अंततम तनदान जरा-मरण को भी छोक़र र्ेष सब तनदान दसकम श किलातेिैं। प्राचीन बौद्धधम शमें इनकी गणना पदाथों या तमवों में न की जाकर, इन्िेंसित् ्के रूप में समझा गया ै। तनदानों की संख्या अथवा व्यवस्था के पवषय में कोई त्स्थरता या तनत्श्चत तनयम निीं ंिै। प्रतीमयसमुमपाद एवं तनदानों के मसद्धान्तों में िम देखतेिैं कक ऐसी पररभाषाओं की श्रृंखला बन गई िै जो समस्त चेतनामय जगत् ्में पारस्पररक सम्बन्ध एवं ंपारस्पररक तनभरशता को व्यतत करती िै।

इस श्रृंखला की पिली की़ अपवद्या अथाशत् ्अज्ञान िै। अि (म)ं का ममथ्याभाव व्यत्तत का मुख्य आधार िै। यि कम शका अनुचर या विाक भी िै एवं ंउसका जनक भी िै। व्यत्ततमव अपवद्या और कम शकी उपज ै, जैसे कक अत्नज्जयाला आग की एक धचंगारी भी िै और उसको बढ़ानेवाला ईंधन भी। अपवद्या के कारण जीवन का स्वरूप, जो कक दु:खमय िै, तछपा रिता िै।'[883] अपवद्या अथात्श ्अज्ञान पर जो बल हदया गया िै वि केवल बौद्धधम शमें िी पाया जाता िै ऐसी बात निीं ंिै। पवर्प बटलर का किना िै "पदाथ शजैसे िैं, िैं, और उनके पररणाम भी विी िोंगे जो िोने िैं, तब तयों िम अपनेको धोखे में रखें ?" पर िोता यि िै कक िम प्रततहदन अपने को धोखा देते िैं। बुद्ध िमें आदेर् देते िैं कक िम समय घटनाओं को वैसे देखें त्जस रूप में वे िैं, और जो उनका आर्य िै उसे समझें। जो यथाथ शनिीं ंउसे यथाथ शसमझना अज्ञान या अपवद्या िै और इसी से जीवन के प्रतत मोि उमपन्न िोता िै। यि िमें जीवन धारण करने ेएवं संसार का सुखोपभोग करने ेके मलए प्ेरररत करता िै। जीवन की लालसा को बुद्ध ने नीच, मूखूतशापूण,श नैततक बन्धन एवं ंमानमसक उन्मादों में से अन्यतम माना िै। यहद मनुष्य को एिलौकिकक जीवन के दु:ख से छुटकारा पाना िै तो ममथ्या इच्छा को समूल नष्ट करना िोगा एवं जीपवत रिने े की उमंग का दमन करना िोगा। प्राचीन बौद्ध धम शके मत में अज्ञान िी अिंकार अथवा अिंभाव का कारण िै। इसी के कारण एक व्यत्तत को यि अनुभव िोने ेलगता िै कक वि अन्य सब जगत् ्से पृथृक् िै त्जसका संसार की व्यवस्था से कोई सम्बन्ध निीं ै। िम अपनेछोटे-से जीवन में आसतत रितेिैं इसे तनरन्तर बनाए रखनेके मलए प्राणपण से चेष्टा करते िैं और अनन्तकाल तक बराबर इसे घसीटे चलते िैं।884 व्यत्तत का जीवन एक पाप ै और इच्छा उसकी वाह्य अमभव्यत्तत िै। मनुष्य दु:खी इसीमलए िै तयोंकक वि जीवन धारण ककए िुए िै।

जातत, अथवा पुनजन्शम ।

883 इस संसार में अथात्श ्इस भूतल पर कभी ककसी को दु:ख तब तक निीं िुआ जब तक कक वि पिले अज्ञान के बन्धन में निीं फंसा।" (कारलाइल : 'लैटर-डे ेपैम्फलेट्स'।)

884 "मनुष्य इस तथ्य को र्दत्ष्ट से ओझल कर देते िैं कक वे कोई। 2. पृथृक् सत्ता निीं ंरखते, जैसेकक समुद्र की लिर के झाग का युलबुला लिर से पृथृक कोई अत्स्तमव निीं ंरखता, और जैसेकक जीपवत प्राणी में एक कोर्ाणु र्ारीररक गिन से पृथृक् निीं िै, त्जसका वि एक अर्मात्र िै।" (रीज डेपेवड्त 'द ररमलजस मसस्टेम्स आफ द वल्ड'श, पृषृ 144।)

समस्त दु:ख की उमपपत्त जीवन धारण करना िै। अज्ञान की र्त्तत इतनी मिान िै कक अमयन्त दु:ख के रिते िुए भी लोग जीवन में आसत्तत रखते िुए पाए जाते िैं।

श्रृंखला की दूसूरी की़ संस्कार िै। संस्कार र्ब्द त्जस धातुसे बनता िै उसका अथ शि व्यवत्स्थत करना अथवा क्रम में रखना। यि पदाथ शका भी द्योतक िै एवं ंतनमाण शकी प्रकक्रया का भी। यि इस पवषय का द्योतन करता िै कक ककस प्रकार सब वस्तुएं जो तनममतश िोती िैं, तनमाणश काय शमें अपना अत्स्तमव रखती िैं एवंसमस्त सत् ्कक्रयमाण िैं। संस्कार के वाची र्ब्द िैं संश्लेषण अथवा अनुकूलीकरण। कम शके अथ शमें भी संस्कार र्ब्द प्रयुतत िोता िै; कम शर्ुभु अथवा अर्ुभु-र्ुभु कमों के मलए पुरस्कार ममलता िै एवं अर्ुभु कमों के मलए दण्ड ममलता िै, चािे इस जन्म में चािे अगले जन्म में। पवस्तृत अथों में यि इच्छार्त्तत अथवा आत्ममक र्त्तत को भी द्योततत करता िै, जो नये जीवन के तनणायशक िैं। मत्ज्झमतनकाय में िम अग्रमलणखत वातय पाते िैं "मेरे मर्षो, िोता यि िै कक एक मभक्षुत्जसमें श्रद्धा िै, धाममकशता िै, मसद्धान्त का ज्ञान िै, मयाग (तनवृपृत्त) का भाव िै, बुद्धिध िै, अपने-आपमें इस प्रकार पवचार करता िै। "तया जब मेरा र्रीर ममृयु के कारण अपनेतत्त्वों में पवलीन िो जाएगा तो में ककसी र्त्ततर्ाली राजपररवार में पुनजन्शम प्राप्त कर सकूंगा ?' यि इस पवचार को मन में स्थान देता िै उस पर मनन करता िै, और इसी पवचार को बराबर अपने ेधचत्त में संजोए रखता िै। इस प्रकार के संस्कारों एवं आन्तररक दर्ाओं के कारण, त्जन्िें उसनेअन्दर स्थान हदया एवं पुष्ट ककया िै, उसी प्रकार के भपवष्यजन्म की उसे प्रात्प्त िोती िै। मर्षो, यि प्रवेर्माग शि त्जसके द्वारा उसे ेअपनी इच्छानुसार पुनजन्शम प्राप्त िोता िै।" पवचार की श्रृंखला की पुनुरावृपृत्त मभन्न-मभन्न वग शके मनुष्यों एवं ंदेवताओं के सम्बन्ध में तदनुसार िोती रिती िै जब तक कक उसका प्रयोग तनवाणशकी उच्चतम अवस्था के मलए निीं ंिोता। संस्कारों का प्रयोग अन्य सब संस्कारों की तनवृपृत्त अथवा ज्ञान एवं ंमोक्ष की प्रात्प्त के मलए भी िो सकता िै।

कारणकाय-शसम्बन्धी बन्धन में तीसरा पवषय िै चेतना, त्जससे नाम और रूप उमपन्न िोते िैं। िे आनन्द, "यहद चेतना गभ शमें प्रवेर् न करे तो तया गभ शमें नाम और रूप उमपन्न िो सकते िैं?" "निीं, ं भगवन्।्" "और िे आनन्द, यहद चेत्तना को गभ शमें प्रवेर् करने के पश्चात् ्भी अपना स्थान छो़ना प़ ेतो तया नाम और रूप का अत्स्तमव इस जन्म में रि सकता िै ?" "निीं ंभगवन्!्" "इसी प्रकार, िे आनन्द, यहद चेतना लके़ या लक़ी के अन्दर से उसकी र्ैर्ैवावस्था में िी गायब िो जाए तो तया कफर भी नाम और रूप में पवकास, वृद्धिध और प्रगतत िोगी ?" "निीं ंभगवन्।्"[885] ममृयु में जबकक अन्य तत्त्व यथा र्रीर, भावनाएं एवं प्रमयक्षानुभव सब पवलोप िो जाते िैं, पवज्ञान अथवा चेतना कफर भी त्स्थर रिती िै और यिी पुराने ेऔर नये जीवन को संयुतत करने ेवाली की़ िै। इसका पूणरूशप में तभी ततरोभाव िोता िै जब िम तनवाणशप्राप्त करते िैं। यि चेतना िी ऐसा घटक िै जो पुराने ेप्राणी की ममृयु िो जानेपर नये प्राणी के जीवन का मूलतत्त्व बनता िै। यि मूलतत्त्व गभ श में उस सामग्री को खोज लेता िै त्जससे नये प्राणी का जन्म िोता िै। यहद चेतना को उधचत सामग्री प्राप्त निीं िोती तो यि पवकमसत निीं ंिो सकती। "यहद िे आनन्द, चेतना को अपनेआधारस्वरूप नाम एवंरूप की

885 मिातनदानसुत्त।

उमपादक सामग्री प्राप्त निीं ंिोती तो तया तब भी जन्म, जरा एवं मृमृयु, जो दुुःख के उद्भवरूप एवं पवकास-रूप िैं, क्रमर्: अपनेको व्यतत करेंगे?" "निीं ंभगवन्, ् वे निीं ंकरेंगे।"[886]

पदाथों से पूण शसंसार चेतनस्वरूप पवषयी के अपरपक्ष में िै। यहद पवषयी न िो तो पवषय भी न रिेगा। जैसाकक िम देख चुके िैं, छिों इत्न्द्रयों की कायर्शत्तत उस संसार के ऊपर तनभरश करती िै जो उन प्रभावों से उद्भूत िोता िै जो इत्न्द्रयों के पदाथों के सम्पकश में आनेसे उमपन्न िोतीं। प्रभावों का उदय िी जन्म, उसकी समात्प्त एवंमृमृयु िै। चेतना एवं ंनामरूप यि दोनों िी परस्पर एक-दूसूरे के ऊपर तनभरश िैं। उन्िीं ंसे छः क्षेत्र-आंख, कान, नाक, त्जह्वा, र्रीर एवं ंमानस उमपन्न िोतीं। उन्िीं से उन इत्न्द्रयों का पवकास िोता िै जो बाह्य जगत् ्के साथ और उसके पदाथों के मध्य सम्बन्ध के मलए आवश्यक िैं, यथा आकृततयां, ं र्ब्द, रंग, स्वाद, स्पर्,श योग्यता एवं ंपवचार आहद। पवचार भी मन के आगे पदाथरूशप में त्स्थत बताए जाते िैं, ठीक वैसे िी जैसेकक र्दश्यमान र्रीर आंखों के आगे त्स्थत रिते िैं। कभी-कभी यि किा जाता िै कक आंख देखने की उपज िै और कान सुनने ंकी।

संवेदना से तणि (तृषूणा) अथात्ु ्उमकट अमभलाषा उमपन्न िोती िै त्जससे िमें एक जन्म से दूसूरे जन्म में जाना पड़ता िै। यिी जीवन और दुुःख का प्रवल कारण िै, िमें जन्म धारण करने ंकी प्रबल तृषूणा थी इसीमलए िमनेयि जीवन धारण ककया िै। िम सुख की आकांक्षा करते िैं इसीमलए दुुःख भी ममलता िै। "त्जसे तृषूणा ने आक्रान्त करके अपनी अधीनता में कर रखा िै तृषूणा ने उस घृणृणत वस्तु ने जो संसार के अन्दर अपना पवषय दमन करती िै-उसका दुुःख बढ़ता िी जाएगा, जैसेकक घास र्ीघ्रता से बढ़ती जाती िै। ककन्तुजो इस तृषूणा को अपनेवर् में रखता िै, दुुःख उससे दूरू भाग जाता िै, जैसेकक कमल के पुष्पों में से पानी झर जाता िै, उन्िें मलप्त वकाएजबची।[887] "ुई "त्जैसे प्रकार वृक्ष का जिनकी मीहीं ंिुई िै अथात् कफर नये मसरे से पवर्ाल रूप में बढ़ सकता िै, इसी प्रकार यहद तृषूणा की उत्ेतेजना पूणरूशप से निीं ंमरी िै तो दुुःख सदा िी नये मसरे से फूट पगो।"[888] तणि अथवा तृषूणा अपनेबत्रगुणरूप में दुुःख का कारण िै।889

तृषूणा से आसत्तत अथवा उपादान उमपन्न िोता िै। तृषूणा की ज्जवाला उपादान रूपी ईंधन से धचपटी रिती िै। यि जिां ंकिीं ंभी जाएगी, अत्ग्नज्जवाला का ईंधन इससे धचपटा रिेगा। तृषूणा के क्षय का नाम िी मोक्ष िै और वस्तुओं के प्रतत आसत्तत बन्धन िै। इस धचपटने की समात्प्त िोने ंपर िी आममा पापमय जीवन से छुटकारा पा सकती िै।

---

886 मिापदानसुत्ुत एवं ंसंयुत्ततनकाय्।।

887 धम्मपद, 5 : 335 ।

888 धम्मपद, 5/338 I

889 देणखए मिावग्ग, 1/1, 2।

जीवन के साथ धचपटने ेके िी 'भव' का तनमाणश िोता िै। इसे िी चन्द्रकीतत शने कम शकी संज्ञा दी िै, त्जससे पुनजन्शम िोता िै ।'[890] भव से जन्म िोता िै, जन्म से वृद्धावस्था और मृमृयु, पीा़, पवलाप, दुःख, धचन्ता एवं तनरार्ा उमपन्न िोती िै।

यि सारी योजना रूहढ़रूप प्रतीत िोती िै। इसका उद्देश्य इस पवषय को दर्ानेश ेका प्रतीत िोता िै कक अिपवषयक चेतना (अथवा पवज्ञान) एक तनमयस्वरूप आममा के अन्दर निीं ंरिती िै ककन्तु यि एक प्रकार की तनरन्तर प्रतीतत िै जो कारणकायसशम्बन्ध से उमपन्न िोती िै। यि उस प्रश्न का पवस्तृत रूप िै जोकक दूसूरे व तीसरे समयों में अथात्श ्दुःख के उद्गमस्थान एवं ंउसके पवनार् में तनहित िै। इससे पूव शकक इस जन्म की पीा़ को दूरू ककया जा सके, इस सम्पूण शजीवन की तनःसारता का यथाथ शज्ञान प्राप्त कर लेना आवश्यक िै। व्यत्ततमव, त्जससे िम धचपटे िुए िैं, केवल एक रूप या आकृतत िै, एक सारिीन प्रतीततमात्र िै जो अज्ञान के कारण िै और
विी इसका स्रष्टा भी िै एवं ंमूलू कारण भी िै। व्यत्ततमव के भाव की उपत्स्थतत िी इस बात का संकेत करती िै कक अज्ञान भी उपत्स्थत िै व्यत्तत िी दुःख का तनमाणश करता िो यि प्रश्न निीं ंिै, तयोंकक वि स्वयंदुःख का एक
रूप िै। अिभाव का पवचार, जो भ्रात्न्त को जन्म देता िै, स्वयंएक भ्रात्न्त िै। व्यत्ततमव रोग का लक्षण और स्वयंरोग दोनों िी िै। उपतनषदों के अनुसार, व्यात्तत का जीवनवृत्त चलता रिता िै जब तक कक बुद्धि में अज्ञान की मात्रा एवं आममा में कृतत्व िै। 'धथयोलॉत्जया जमतशनका' में किा गया िै "नरक में आममेच्छा िी प्रबल रिती िै," और यि आममेच्छा िी अपवद्या िै जो अपना वास्तपवक रूप धारण ककए रिती िै। यिी कारण भी िै और उमपन्न वस्तु भी िै, दूसूरे को भ्रम में डालने ेवाली और स्वयं ंभी भ्रान्त िै। अज्ञान एवं व्यत्ततमव दोनों परस्पर एक-दूसूरे के ऊपर तनभरश िैं। व्यत्ततमव का अथ शिै सीममत करना, और सीममत करना िी अज्ञान िै। अज्ञान का नार् केवल अज्ञान की सम्भावना के नार् से िी िो सकता िै, अथातश अत्ततल के नार् से। समस्त संसार अज्ञान का मर्कार िै और इसीमलए इसे दुःख िोता िै। राजा से लेकर मभखारी तक, एवं ंभूमम पर रेंगने ेवाले कीट से लेकर
स्वग शके ज्जयोततष्मान देग तक सबको दुःख िै। "पांच वस्तुएं िैं त्जनको न कोई श्रमण और न िी कोई ब्राह्मण, व देवता, न मार और न ब्राह्मण िी और न पवश्व का अन्य कोई प्राणी सम्भव कर सकता िै अथात्श,् जो रोगाधीन िै उसे रोग न व्यापे, जो मृमृयु के अधीन िै वि मृमृयु को प्राप्त न िो जो क्षीणता के अधीन िै वि क्षीणता को प्राप्त न िी और वि जो मवनमर के योग्य िैं वि पवनष्ट न िो।"[891] अपवद्या से उमपन्न व्यत्ततमव िी सम्पूण शजीवन की कठिन समस्या िै। इस चक्र का प्रारम्भ जीवन से िै, मूलभूत प्रतीत निीं।
इसी सारी योजना का आधार अपवद्या िै ककन्तु िमें यि निीं बताया गया कक वि अपवद्या कैसे उमपन्न ंिोता। िमें इसके कारण का पता निीं ंममलता। इसका किीं ंअन्त अवश्य िै अथवा यि एक ऐसी सत्ता िै त्जसको समझ सकना कहिन िै त्जसे िमें बबना अधधक सोचे-समझे ेस्वीकार कर लेना पगो। बुद्ध की दृत्ष्ट में प्रमयेक जीपवत प्राणी जो गतत करता िै और अपना वैयत्ततक अत्स्तमव प्रदमर्तश करता िै, अपवद्या की िी र्तत से करता िै। स्वयं जीवन इसकी गवािी देता िै कक अपवद्या

890 पुनभवशजनकककम।श माध्यममक वृपृत्त।

891 अंगुत्तरतनकाय, 2; ओल्डनबग,श 'बुद्ध', पृषृ 217।

उपत्स्थत िै। जब िम घी् के लटकनेको झूलते िुए देखते िैं तो िम अनुमान करते िैं कक अवश्य ककसी ने उसका संचालन ककया िै। िम अनुमान करते िैं कक अपवद्या िी समस्त जीवन की पूववशती आवश्यक अवस्था िै। इसके पूव शकुछ निींिै। तयोंकक संसार की प्रकक्रया का कोई आरम्भ निींिै। ऐसा प्रतीत िोता िै कक बुद्ध अज्ञान को तनमय समझते थे। कारणकायसशम्बन्ध की श्रृंखला में इसे सबसे पिला स्थान हदया जाता िै, तयोंकक इसके द्वारा िी इच्छा उमपन्न िोती िै और उस इच्छा के द्वारा जीवन का अत्स्तमव िै। जब िम यि पूछतेिैं कक वि तया वस्तु िै त्जसके पवषय में िमें अज्ञान िै तो आहदम बौद्धधम शका उत्तर िै कक िम उि के यथाथ शस्वरूप से अनमभज्ञ िै एवंचार आयसशमयों से भी अनमभज्ञ िैं। वतमशान जीवन का कारण इससे पूव शका जन्म िै त्जसमें चार आयसशमयों का ज्ञान प्राप्त निीं ककया गया था। उपतनषदों में भी सब दु:खों का कारण अपवद्या िी बताया गया िै और इस अज्ञान का रूप, उनके अनुसार, जीवाममा के पवश्वाममा के साथ मूलभूत तादामम्य का अज्ञान िै त्जसके

कारण अिंकार उमपन्न िोता िै। दोनों में िी अथाशत् बौद्धधम शएवं उपतनषदों में यि अिंकार का भाव अपवधा का पररणाम िै, दोनों के िी मत में रक्षक ज्ञान का अभाव िी कारण िै, जो समय को िमसे तछपाए रखता िै।

बुद्ध का मत िै कक अज्ञान परमसत्ता के रूप में कोई वस्तुनिीं िै। वि अपनेको नष्ट करने के मलए इस जीवन के नाटक में उत्तरती िै। अज्ञान की उदय-सम्बन्धी समस्या से जानबूझकर बचा गया िै ऐसा प्रतीत िोता िै। तयोंकक िम इसका कारण निीं बता सकते। िम इसे यथाथ शनिींकि सकते, तयोंकक इसका प्रमयाख्यान िो सकता िै। और न िी यि अयथाथ िै, तयोंकक उस अवस्था में वि ककसी वस्तु को उमपन्न निीं कर सकती। ककन्तु बौद्धधम शककसी प्रकार के सौजन्य अथवा नम्रता के कारण अपवद्या को कारण निीं मानता। उसकी दृत्ष्ट में यिी वस्तुतः समस्त जीवन का कारण िै। सम्भवतः उपतनषदों की कल्पना अधधक समय िै। इस नानारूप जगत् में यथाथतशा को गुप्त रखनेकी र्तत िै, पवर्ेषतः जबकक वि यथाथसशत्ता इस जगत के द्वारा अमभव्यतत िो रिी िै। यि र्तत िी केन्द्रीय वल िै, जो असत् िै, और यथाथसशत्ता को बाह्यरूप में व्यतत िोने के मलए बाध्य करता य व्याख्या तब तक सम्भव निीं िो सकती जब तक कक िम एक केन्द्रीभूत यथाथसशत्ता की स्थापना न करें। जब तक िम इस प्रकार के एक प्रधान सत् को िम स्वीकार न कर लें, अपवद्या का स्वरूप एवं उसका आहद-उद्भव-दोनों का िी समाधान निीं िो सकेगा। ककन्तु बौद्धधम शके अन्तगतश प्रमयेक पवषय उपतनषद् की कल्पना के अनुकूल िै। अपवद्या तनतान्त अनुपयोगी निीं िै। यि अपनेसे छुटकारा पाने की सम्भावना के मलए गुंजायर् रखती िै। यहद तनमाणश ततरोधान से कुछ अधधक िै, और समय भी चलती-कफरती छाया से अधधक िै, तब व्यत्ततमव तनतान्त असत् निीं िै ककन्तु सत् एवं असत् का एक सत्म्मश्रण िै, एवं अपवद्या भी ममथ्यामव का नाम निींककन्तु ज्ञान का अभावमात्र िै। जब यि दूर िो जाती िै तो समय र्ेष रि जाता िै। अवाचशीन बौद्ध लेखकों का अश्वघोष के समान किना िै कक 'तथता' से िी अपवद्या उमपन्न िो जाती िै एवं वैयत्ततक इच्छा का उदय भी सावभशौमक इच्छा से िोता िै। वसुबन्धु इस समस्या का समाधान यो करता िै कक सब व्यत्तत एक िी सावभशौम मन के अपूण शप्रततबबम्ब िैं। इस प्रकार अपवद्या उस परमसत्ता की वि र्तत िै जो पवश्व के भीतर से व्यत्ततगत जीवन की श्रृंखला को उमपन्न करती िै। यि यथाथसशत्ता के िी अन्दर पवद्यमान तनषेधाममक तत्त्व िै। िमारी सीममत बुद्धध इसकी ति में इससे अधधक और प्रवेर् निींकर सकती। बौद्धधम शका आध्यात्ममक

 ्रास्त्र उसी अवस्था में सन्तोषप्रद एवं ◌ंबुद्धधगम्य ि◌ो सकता ि◌ै जबकक इसके अन्दर परम आदर्वशाद के द्वारा
पूणतशा लाई जा सके।

14. नीततर्ास्त्र

"प्रतीक्षा करने ◌ेवालों के मलए रात लम्बी ि◌ोती ि◌ै,
तलान्त पधथक के मलए माग शलम्बा ि◌ोता ि◌ै-
जो समय के प्रकार् को निीं ◌ंदेखता उसके मलए बारम्बार
जन्म-मरण के शृ्रंखला की पी़ा बिुत लम्बी ि◌ोती ि◌ै।"

ऊपर बौद्धधम शकी एक लोकोत्तत दी गई ि◌ै।'[892] इस संसार में ि◌मारा मनुष्य-जीवन एक अनजाने ◌ेदेर् की यात्रा ि◌ै त्जसकी अवधध को एक यथाथ शज्ञानी पुरुष कभी भी अधधक लम्बा करना निीं ◌ंचािेगा। बुद्ध ि◌में आन्तररक द्वन्द्व में से, जो मानव-जीवन का एक पवमर्ष्ट लक्षण ि◌ै, तनकालनेका माग शदर्ातेर्िैं। बुद्ध के उपदेर्ों का लक्ष्य दुःख से छुटकारा पाना ि◌ै। नैततक जीवन का उद्देश्य इस पवस्तृत असाधु-जीवन से बच तनकलना ि◌ै। अपने-आपको पवनष्ट करने ◌ेमें ि◌ी मोक्ष ि◌ै। तनवाणश तो उच्चतम लक्ष्य ि◌ै एवं ◌ंआचरण की ऐसी सब पवधधयां ◌ंजो ि◌में तनत्श्चत रूप में तनवाणश की ओर ले जाती ि◌ैं अथवा पुनजन्शम का नार् करती ि◌ैं, र्ुभ (पुण्य) ि◌ैं, और उनके पवपरीत सब कम शअर्ुभ (पाप) ि◌ैं। साधारण लौककक मूल्यांकन के मानदण्डों में पररवतनश करना आवश्यक ि◌ै।

बौद्धधम शमें मनोपवज्ञान को नीततर्ास्त्र का आधार माना गया ि◌ै।893 प्रमयेक दर्नश पद्धतत एवं नीततर्ास्त्र के तनदोष ि◌ोने ◌ेके मलए आवश्यक ि◌ै कक उसका मनोवैज्ञातनक पवश्लेषण तनदोष ि◌ो। बौद्धधम शके मनोपवज्ञान का नीततर्ास्त्र के हित के मलए ि◌ी पयाप्शत पररकार तनदोष गया ि◌ै। बौद्धधम शद्वारा प्रततपाहदत आममसंयम एवंइच्छार्त्तत के पररमाजनश आहद के मलए एक ऐसे मसद्धान्त की आवश्यकता ि◌ै त्जसमें बताया गया ि◌ो कक संवेदनाएं ककस प्रकार उमपन्न ि◌ोती ि◌ैं एवं उनके प्रतत ध्यान का पवकास कैसे ि◌ोता ि◌ै। बौद्धधम श मानव के नैततक व्यत्ततमव का पवश्लेषण करता ि◌ै और उसमें से नैततक कारणकायभशाव के मसद्धान्त को खात तनकालता ि◌ै जो उनकी वृद्धध के मलए अपना काय शकर रिा ि◌ै। आममयाद के तनषेध में थी उसका एक नैततक उद्देश्य ि◌ै। बौद्ध मसद्धान्त के अनुसार, इच्छार्त्तत मनुष्य के पास एक ऐसी पवमर्ष्ट देन ि◌ै त्जसके कारण ि◌ी उसे ि◌म नैततक प्राणी किते ि◌ैं। कममशसद्धान्त अथवा नैततक कारणकायभशाव दर्ाशता ि◌ै कक इच्छार्त्तत ि◌ी समस्त जीवन का कारण ि◌ै। कांट के अनुसार, बुद्ध भी किते ि◌ैं कक एकमात्र वस्तु जो संसार में परम मित्त्व रखती ि◌ै वि सहदच्छा ि◌ै, अथात्श ◌्ऐसी इच्छा त्जसका तनणयश स्वतन्त्रतापूवकश नैततक तनयम के द्वारा ि◌ुआ ि◌ो।

---

892 ओल्डनबग श: 'एमर्ैंटइंडडया', पृष्ठ 94।

893 माहटशन्यू का यि किना गलत ि◌ै कक "मनोवैज्ञातनक नैततकर्ास्त्र के तनयम ईसाई धम शकी ि◌ी अपनी एकमात्र पवर्ेषता ि◌ै।" ('टाइम्स आफ एधथकल ब्योरी', खंड 1, पृष्ठ 141)

केवल मनुष्य िी सदाचरण के प्रतत इच्छा को प्ेरेररत करने ेके योग्य िोता िै। व्यत्ततमव नष्ट िो जाता िै जब इच्छा के र्ान्त िो जानेसेकम शभी समाप्त िो जाता िै। कम शसमाप्त तब िोता िै जबकक पदार्थों के द्वारा सुखानुभव प्राप्त करना समाप्त िो जाता िै। इस सुखानुभव का अन्त तब िोता िै जबकक मनुष्य जीवन की क्षणणकता को पिचान लेता िै। िमें आममा के ममश्रण को भंग करनेका प्रयमन करना चाहिए त्जससे कक नई आममाओं को आगे तनमाणश न िो सके। पुनजन्शम की श्रृंखला से त्राण पाना एवं अनन्त आनन्दमय जीवन की प्रात्प्त बौद्धधम शका लक्ष्य िै और यिी लक्ष्य अनेकों भारतीय एवं ंभारतीयेतर धमपशद्धततयों का भी िै। आरकफयत का अनुयायी भ्रातृमृण्डल बार-बार जन्म लेनेके कष्टदायक चक्र से छुटकारा पाने के मलए लालातयत रिता था, इसी प्रकार प्लेटो भी एक ऐसी आनन्दपूण शअवस्था में पवश्वास रखता था त्जसमें िम सदा के मलए समय एवं पुण्य तथा सौन्दय शके मूलभूत आदर् शका धचन्तन कर सकें।

कम शदो प्रकार का िै-बौद्धधक एवं ंऐेत्च्छक। इसके अन्दर दोनों गुण िैं, तयोंकक यि एक मानमसक प्रवृपृत्त िै जो काय शको उमपन्न करती िै। मनोवैज्ञातनक दृत्ष्ट से प्रमयेक कम शके तीन पिलू िैं: (1) ऐेत्च्छक तैयारी, (2) कम शका अपना रूप, और (3) वि त्जसे कम शका पृष्ठिूभाग किा जाता िै, अथात्श ्खेद अथवा सन्ताप की भावना जो कम शके बाद आती िै। पिले प्रवृपृत्त अथवा संकल्प का स्थान िै। यि अपनेआपमें कम शतो निीं ंिै ककन्तुअथिशीन भी निीं ंिै। इसके अततररतत प्रमयेक चुनाव एवं प्रमयेक कम शका एक वास्तपवक मित्त्व वा मूल्य िोता िै जो काल की दृत्ष्ट से तो अस्थायी अवश्य िै ककन्तु अपनी पवर्ेषेता के कारण स्थायी िै। कुछ कम शऐसे िैं त्जनका फल तुरन्त ममलता िै, दूसूरे कुछ ऐसे िै त्जनका फल कालान्तर में ममलता िै, सम्भवतः अगले जन्म में ममले। कमों के दो भेद िैं (1) ऐसे जो तनदोष िैं अथात्श ्'आस्रों' से मुतत िै एवं (2) वे ेजो दूपूषत िैं अथात्श ्आस्रवों से युतत िैं। तनदोष कम शवे िैं जो वासना, इच्छा एवं ंअज्ञान से मुतत िै और उनके फलभोग का कोई प्रश्न निीं ंउिता, एवं ंजो नये जन्म में प्रवृतूत करने ेकी अपेक्षा उसकी सम्भावना को भी नष्ट कर देते िैं। ऐसे कम शतनवाणश प्रात्प्त के माग श को तैयार करते िैं। चार आयसशमयों के ऊपर ध्यान करना, त्जसके द्वारा कोई व्यत्तत अिशत्त्व के माग शमें प्रपवष्ट िोने ेका प्रयमन करता िै, एक तनदोष कम शिै और यि पुण्य एवं पाप के पररणामों से ऊपर िै। इस दृत्ष्टकोण से अन्य सब कम शदोषपूण शिैं और इन दोषपूण शकमों में अच्छे या बुरे का भेद ककया जाता िै, त्जनका पवमर्ष लक्षण यि िै कक उनके साथ एक न एक प्रकार का फलभोग, पुरस्कार अथवा दण्डभोग, इस जन्म में अथवा जन्मान्तर में लगा िुआ िै। इस पवषय में मभन्न-मभन्न प्रकार के दृत्ष्टकोण स्वीकार ककए गए िैं। र्ुभ (पुण्य) कम शवे िैं जो वासनाओं, इच्छाओंएवं ंअिं की भ्रान्त भावनाओं के ऊपर िमें पवजय प्राप्त करने ेका मागप्रशदर्नश करते िैं। अर्ुभ (पाप) कम शवे िैं जो िमें दुःखदायी दण्डभोग की ओर ले जाते िैं। इसके अततररतत र्ुभ कम शवे िैं जो भपवष्य-जीवन या लोकोत्तर-जीवन में सुखप्रात्प्त के उद्देश्य को लेकर ककए जाते िैं, इसी प्रकार अर्ुभ कम शवे िैं जो इसी जन्म में सुख की अमभलाषा को ध्यान में रखकर ककए जाते िैं। पूव शप्रकार के कम शइच्छा का नार् करके अन्य कमों के पुरस्कारों को भी समाप्त करते िैं। प्रतीत िोता िै कक उनका अत्न्तम फल तनवाणश अथवा मोक्ष िै। र्ुभ कम शवे िैं त्जनका उद्देश्य दूसूरों का कल्याण करना िै। अर्ुभ कम शवे िैं त्जनका लक्ष्य केवल स्वाथमशसद्ध िै। ये मभन्न-मभन्न मानदण्ड एक-दूसूरे के अनुकूल िैं। ऐसे कम शजो िमें वासना पर पवजय-प्रात्प्त अथवा इस जन्म के पश्चात् ्वास्तपवक अथों में एक धाममकश जीवन की ओर ले जाते िैं, वे िैं त्जनका लक्ष्य पवश्व का

कल्याण िै। उन कमों के ये तीन पवमर्ष लक्षण िैं अथात् श ्लोभ का अभाव, ममसर या द्वेष का अभाव, एवं ं भ्रात्न्त या मोि का अभाव। अरुभु कम,श त्जनका लक्ष्य स्वाथमशसद्धध और सांसाररक सुख िै और जो जन्म बन्धन की ओर ले जाते िैं, ममथ्या दृत्ष्ट, पवषयवासना एवं पवद्वेष से उपजते िैं।"[894] नैततक पाप का कारण अज्ञान अथवा वस्तुओं के मूल्य एवं ंप्रकृतत के पवषय में ममथ्या पवचार रखना िै।

बुद्ध ने त्जस जीवनपद्धतत का प्रततपादन ककया वि अमयन्त पवषयभोग और आममतनयन्त्रण की पराकाष्ठा दोनों से रहित िै, अथात् श ्एक मध्यम माग शिै। बुद्ध छः वष शकी कठोर तपस्या के पश्चात् ्इस पररणाम पर पिुंचेकक "ऐसा व्यत्तत त्जसने ेतपस्या से कृर् िोकर अपना बल खो हदया िो वि समय के माग शका अवलम्बन निींकर सकता।" "दो प्रकार की पराकाष्ठाएँ िैं, और दोनों का िी अनुसरण जीवन-यात्रा में प्रवृत्त व्यत्तत को मयाग देना चाहिए अथात्श ्एक ओर बराबर वासनाओंएवंइत्न्द्रयों के सुखभोगों में मलप्त रिना, और दूसूरी ओर अपनेर्रीर को यातना एवं ंकष्ट देनेमें रत रखना जोकक दु:खदायी िै, अधम िै एवं ककसी प्रयोजन का निीं ंिै। तथागत ने इन दोनों के बीच एक मध्यमाग शको खोज तनकाला िै। यि ऐसा माग शिै जो आंखें खोल देता िै और पववेकर्त्तत प्रदान करता िै, अथवा जो र्ांतत, उच्चतम ज्ञान की प्रात्प्त के मलए अन्तर्दत्शष्ट एवं ंअन्त में तनवाणश की ओर िमें ले जाता िै। यथाथ शमें यिी आिसूत्री आयमशाग शिै, अथात्श ्सम्यक् दृत्ष्ट, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाक्, सम्यक् कमाशन्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृतत और सम्यक् समाधध ।"[895] इस अष्टमाग शमें बौद्धधम-शप्रततपाहदत नैततक जीवन का सार तनहित िै।

सम्यक् दृत्ष्ट अथवा समय पवश्वास का स्थान पिला िै। जो कुछ िम करते िैं वि िमारे पवचार का प्रततपवत्म्बत रूप िै। दूपूषत कम शदूपूषत पवचारों या पवश्वासों का पररणाम िैं। अधधकतर िम यि निीं ंसोचते कक आममा के घटक तत्त्व मृमृयु के समय ममट्टी में ममल जाएंगे, और इसमलए व्यत्ततमव में मलप्त रिते िैं। भ्रात्न्तमय पवचारों को दूरू करनेके मलए सम्यक् ज्ञान आवश्यक िै। बौद्ध मनोपवज्ञानर्ास्त्र में इच्छा एवं बुद्धध का सिचय शिै।

सम्यक् संकल्प सम्यक् दृत्ष्ट की िी उपज िै। "यि मयाग के मलए प्रबल इच्छा िै; सबके साथ ममलकर पे्रेमपूवकश जीवन बबताने की आर्ा (संकल्प) िै. एवं ंयथाथ शमनुष्य जातत के तनमाणश की मित्त्वकांक्षा िै।896 पृथृतता के पवचार को मयागकर मित्त्वाकांक्षी व्यत्तत सम्पूण शजगत के मलए काय शकरता िै। संकल्प यथाथ शिोना चाहिए। मिायान के अनुसार दृढसंकल्प व मित्त्वाकांक्षी व्यत्तत को इस प्रकार का कथन करने ेका सामथ्य शिोना चाहिए 'मुझे ेप्राणणमात्र के भार को अपनेऊपर लेना िै।"[897]

---

894 देखेंवारेनबुद्धधज्जमइन रांसलेर्न', पृष्ठ 216-218।

895 धमचशक्रप्रवतनश-सम्बन्धी प्रचम प्रवचन ।

896 सुत्तपवभंग।

897 कजद्वजसुतुत।

सम्यक् संकल्पों अथवा मित्त्वाकांक्षाओं को अवयव अपने कमों में पररणत करना चाहिए। उनकी अमभव्यत्तत सम्यक् वाणी, सम्यक् कम शएवं ंसम्यक जीवन में िोनी िी चाहिए। "सम्यक् वाक् का अथ शि ै असमय से दूरू रिना, ककसी की चुगली करने ेसे अपन को बचाना, किोर भाषा के प्रयोग से बचना, एवं तनरथकश वातालशाप से दूरू रिना।"

सम्यक् कम शतनःस्वाथ शकम शका नाम िै। प्रथावाद अथवा रीततवन्धन, प्राथनशा, उपासना, कमकशाण्ड, वर्ीकरण एवं जादू–टोना ककंवा मनुष्य अथवा पर्ु ुकी बमल हदए जाने वाले यज्ञ-योग आहद में बुद्ध का कोई पवश्वास निीं ंथा। "धम शपर आरूढ़ पुरुष के प्रतत श्रद्धांजमल अपपतश करना सौ वष शतक अत्नपूजा करते रिने ेसे किीं ंश्रेेष्ि िै।" एक बार जब एक ब्राह्मण ने बुद्ध से किा कक बिुक नदी में स्नान करने ेवाले के पाप धुल जाते िैं तो बुद्ध ने उत्तर में किा कक "बिुक एवं ंअधधक एक मूख शके पाप धोकर उसे पपवत्र निीं ंबना सकती, भले िी यि उसमें बार-बार और सदा कक मलए स्नान करता रिे। कोई नदी पापी, ममलनहृदय एवं ंबार-बार पापकम शकरने ेवाले को पपवत्राममा निीं ंबना सकती। पपवत्राममा व्यत्तत के मलए सदा िी फग्गू का पधचत्र मास रिता िै। पपवत्राममा के मलए सदा िी उपवास िै। र्ुभ कम शकरने ेवाले मनुष्य के मलए सदा िी व्रत रिता िै। इस धम शमें स्नान करो, िे ब्राह्मण । प्राणणमात्र के प्रतत दयालु बनो। यहद तुम कभी असमयभाषण निीं ंकरते, यहद तुम ककसी प्राणी का वध निीं ंकरते, यहद तुम्िें दान हदया जाए तो उसे स्वीकार निींकरते एवंअपररग्रि में िी अपनेको सुरक्षक्षत समझते िो तो गया जाकर तुम्िें तया लाभ िोगा? तुम्िारे मलए सभी जल गया के जल के समान पपवत्र िैं।'[898] अर्ोक किता िै "ममथ्या पवश्वासों से पूण शकमकशाण्ड निीं, ं अपपतु सेवकों एवंअनुजीपवयों के प्रतत करुणा का भाव रखना, सम्मान के योग्य व्यत्ततयों के प्रतत सम्मान प्रदमर्तश करना, आममसंयम त्जसके साथ प्राणणमात्र के प्रतत व्यविार में दया का भाव रिे, और इसी प्रकार के अन्य धाममकश कम शवास्तव में ऐसे िैं त्जन्िें कमकशाण्ड के स्थान पर सवत्रश ककया जाना चाहिए।" "पपवत्र तनयम तो अल्प मित्त्व के िैं ककन्तु ुध्यान या समाधध िी सवोत्तम िै।"[899] वुद्ध ने उस समय के प्रचमलत प्रथावाद के पवरुद्ध प्रमयक्षरूप में तो संग्राम निीं ंछेड़ा, ककन्तुउसमें नैततक भावों का प्रवेर् कराके उन प्रथाओंका मूलोच्छेदन करने ेका प्रयमन ककया। "क्रोध, मद्यसेवन, छल, ईष्या,श ये सब अपपवत्र कम शिैं, मांसभक्षण निीं।"[900] इसके अलावा, "जो भ्रांततयों से मुतत निीं ंिुआ उसे मद्यपान का मयाग करना, नग्न रिना, मसर मुंडाना, मोटे कपड़ ेपिनना, पुरोहितों को दान देना, देवताओं को बमल चढ़ाना आहद आहद कम शकभी पपवत्र निीं ंकर सकते।" बुद्ध ऐसे कुत्मसत एवं ंवीभमस व्यत्ततयों की पूजा के पवरुद्ध थे ेजो पवकृत तपस्या एवं ंसाधना का रूप धारण ककए रितीं। तपस्या की अस्वाभापवक पवधधयों को दूपूषत ििरानेमें उन्िोंने ेबिुत तकशसंगत उपायों का आश्रय मलया।

---

898 लक्ष्मीनरसु 'एससें आफ बुद्धधज्जम', पृष्ि 230।

899 अर्ोकस्तम्भ पर मलखा िुआ आदेर्, संख्या 7।

900 तुलना कीत्जए: "वि वस्तु जो मनुष्य के अन्दर प्रवेर् करती िै, उसेभ्रष्ट निीं ंकरती, ककन्तु जो बािर आती िै यि भ्रष्ट करती िै।"

बौद्धधम शआर्य की पपवत्रता और जीवन में पवनयर्ीलता पर पवर्ेष बल देता िै। उन पारममताओं (सद्गुणों) में जो िमें तनयाशण-प्रात्प्त में सियक िैं, र्ील का स्थान मित्त्वपूण शिै। र्ील अथवा सदाचार एवं ंदान अथवा दाक्षक्षण्य के मध्य जो भेद िै वि तनत्ष्क्रय (तनवृपृत्त) एवं सकक्रय (प्रवृपृत्त) के मध्य के भेद के समान िै। र्ील से तामपय शिै अहिंसा जैसे तनयमों का पालन करना। दाम से उपलक्षक्षत िोता िै स्वाथमशयाग एवं ंअसिायों की सियता करना। यि सब प्राणणयों की भलाई एवं लाभ के मलए जीवन िै। दान के पवषय में एक आदर् शप्रवृपृत्त का प्रततपादन युआन च्वांग की कथा द्वारा इस प्रकार ककया जाता िै: त्जस समय समुद्री डाकुओंद्वारा पक़ ेजाकर उसकी बमल देवी दुगा शको चढ़ाई जानेवाली थी तो उसनेसोचा कक "तयों न म ैंलौटकर इसी लोक में कफर से जन्म लें और म ैंइन लोगों को धम शमें दीक्षक्षत करके मर्क्षा दूं कक ये अपने दुष्कुमों का मयाग करके दूसूरों की भलाई करना सीखें, और इस प्रकार म ैंसंसार के कोने-कोनेमें धम शका प्रचार करके समस्त जगत् ्को पवश्रात्न्त प्रदान करूं।"

सम्यूक कम शसे सम्यक् जीवन बनता िै कक त्जसमें झूि, िगना, धोखा देना एवं चालाकी (कानूनी चालाकी) को कोई स्थान निीं। यिांतक आचरण पर बल हदया गया िै, ककन्तुआन्तररक र्ुद्धध पर भी ध्यान देना आवश्यक िै। समस्त पुरुषाथ शका लक्ष्य दु:ख के कारणों को दूरू करना िी िै। इसके मलए आममतनष्ि पपवत्रता की आवश्यकता िै। अत्न्तम तीन माग,श अथात्श ्सम्यक् व्यायाम (पुरुषाथ)श, सम्यक् स्मृतृत (पवचार) एवं सम्यक् समाधध (र्ान्तधचत्तता), इसी के सम्बन्ध में प्रततपादन करते िैं।

सम्यक् पुरुषाथ शवासनाओंको वर् में करना िै, त्जससे कक कुप्रवृपृत्तयों का उदय न िो। दुष्कुम शको अन्दर आने ेसे रोकना एवं ंमानमसक संयम व एकाग्रता के द्वारा सुकम शको सुर्दढ़ करना िी इसका अमभप्राय िै। यहद िम ककसी ऐसे कुपवचार को बिार तनकालना चािते िैं जो बार-बार मन में आता िै तो उसके मलए ये पांच उपाय बताए िैं (1) ककसी अच्छे पवचार का ध्यान करो, (2) बुरे पवचार के कक्रयाममक रूप धारण करने ेके जो पररणाम िो सकते िैं उसके भय का र्दढ़ता के साथ सामना करो, (3) बुरे पवचार से एकदम ध्यान िटा लो, (4) इसके पूववशती का पवश्लेषण करो और उससे उमपन्न जो प्ेरेरणा िै उसका नार् कर दो, तथा (5) र्ारीररक तनाव के बल प्रयोग द्वारा मन को वर् में करो और इस प्रकार कुपवचार को मन में बार-बार आनेसे रोको। अर्ुभु भावना के द्वारा अथात्श ् बार-बार अर्ुभु पवषय का धचन्तन करने ेसे िमारे अन्दर उस सबके प्रतत जो कलुपषत या भ्रष्ट िै, एक प्रकार की अरुधच उमपन्न िो जाती िै। "िे भगवन, तया आपनेइघर से गुज़रती िुई एक महिला को देखा िै?" और उस स्थपवर नेउत्तर हदया, "जो व्यत्तत इघर से गुज़ा िै वि पुरुष िै अथवा महिला, म ैंनिीं ंकि सकता। म ैंकेवल इतना जानता िंूं कक एक िड्डयों का ढांचा इस माग शसे चला जा रिा था।"[901] सम्यक् पुरुषाथ शके ज्ञान के बबना

---

901 एम. पूसींने यथाथ शअन्तर्दत्ष्ट की र्त्त को बौद्धधक ज्ञान से मभन्न बतलातेिुए इस प्रकार प्रततपादन ककया िै : "जो कोई दु:ख के समय को समझता िै कक उसके चार प्रकार के पिलू िैं वि असंस्कृत पवचारों की असमयता को पिचान लेगा और यि भी अनुभव कर सकेगा कक सुख एवं जीवन अस्थायी एवं अन्त में दु:खदायी िै। ककन्तु वि सुख की प्रात्प्त के मलए जो अपनी आन्तररक इच्छा िै एवं जीवन के प्रतत जो तृष्णा िै उसेनष्ट करेगा। ककन्तु त्जसे प्राप्त करना िै वि जीवन के दु:खों के पवषय की, र्रीर की अर्ुद्धता अर्ु की, तया सवरूशन्यता की इस सीमा तक गम्भीरतम एवं प्रभावोमपादक भावना िै कक एक तपस्वी एक महिला को उसके असली रूप में देख सके, अथात्श ्िड्डयों के एक ढांचेंके रूप में त्जसमें स्नायुजल भी िै,

प्रकार् र्नीं िो सकता, और केवल इसके द्वारा िी िम क्रोध, ईर्ष्यां, अमभमान एवं ंपवषयासत्तत का नार् कर सकतेिं।

सम्यक् पुरुषाथ शको सम्यक् पवचार से पृथक् र्नीं ंककया जा सकता। मानमसक चचलता से बचनेके मलए उस मन को जो क्रीा़ करता िै एवं ंइतस्ततः भटकता िै, वर् में करना आवश्यक िै।[902] बौद्धधम शके र्दत्ष्टकोण से, यूरोप के स्टोइक सम्प्रदाय वालों की भांतंत मनोवेग "नैततक स्वास्थ्य की असफलता एवं ंपवघ्न िैं और यहद उर्न्ें उद्दाम छो़ हदया जाय तो ये आममा के मलए एक प्रकार के जीणरशोग का रूप धारण कर लेते िैं।" ये सब प्रकार के स्वस्थ पुरुषाथ शका नार् कर देते िैं। यिां ंतक कक धाममकश अमभमान भी नैततक उन्नतत में बाधा पिुंचाता िै। "जो कोई पपवत्राममा िै और अपनेको पपवत्राममा समझनेलगता िै और इस प्रकार के पवचार से उसे े सुख का अनुभव िोता िै कक वि पपवत्राममा िै तो वि अपपवत्राममा िो जाता िै, और एक अपपवत्र पवचार लेकर मृमृयु को प्राप्त िोता िै। इसके पवरुद्ध, जो अपपवत्र िै और यि अनुभव करता िै कक वि अपपवत्र िै एवंपपवत्र बननेके मलए पुरुषायं ंकरता िै वि एक पपवत्र पवचार लेकर मृमृयुको प्राप्त िोता िै।" "धम शमन के ऊपर तनभरश करता िै और ज्ञान धमाचशरण के ऊपर िै।"[903]

जबकक पांच स्कन्धों से मनुष्यरूपी प्राणी के स्वरूप की सम्पूण शव्याख्या िोती बतलाई गई िै, पवर्ेषेकर िीनंतक जिां ंतक उसे अनुभवाममक संसार की एक इकाई माना जा सके, इस मत में िमें थोा़-सा पररवतनश ममलता िै जबकक िम वौद्धधम शके द्वारा आन्तररक ज्ञान पर बल देनेकी ओर मुते़ िैं, त्जसको प्रज्ञा नाम से पुकारा जाता िै। स्कन्धों के ऊपर आधाररत ज्ञान की कल्पना को संवेदनावाद के नाम से किा जाता िै। प्रज्ञा का पवचार इसमें पररवतनश करने ेको िमें बाध्य करता िै। मानव-मन की उच्चतम कक्रयार्ीलता का नाम िी प्रज्ञा िै, और धाममकश र्दत्ष्ट से इसका अमयन्त मित्त्व िै। तनःसन्दिे पाली धमर्शास्त्र में एवं ंपवतुद्धधमग्ग में प्रज्ञा को भी स्कन्धों में िी की श्रेणी में लानेका प्रयमन ककया गया िै। सुत्तपपटक में इसे पवज्ञान के साथ जोा़ गया िै। अमभधम्म में इसे संस्कारों के अन्तगतश रखा गया िै। कथावत्तु ुने इसके सम्बन्ध में एक पवधमी मत का खण्डन ककया िै, त्जसनेप्रज्ञा का एक प्रकार, हदव्यचक्षुश, किकर इतेरूपस्कन्ध के अन्तगतश रखा िै। बुद्धघोष के समय में संज्ञा, पवज्ञान एवं ंप्रज्ञा द्वारा मानव-अन्तर्दत्ष्ट के सरल एवं ंजहटल रूपों का बोध िोता था। यि सबसे अधधक युत्ततपूण शव्याख्या िै। स्कन्ध आनुभपवक र्दत्ष्टकोण को दर्ातेशिैं और व्यत्तत के उस ज्ञान के ऊपर बल देते िैं जबकक वि अपनेएक मभन्न अत्स्तमव में पवश्वास करता िै। ककन्तुजब वैयत्ततक स्वरूप पूण शपवश्व के साथ एकमव में पररणत िो जाता िै, आनुभपवक ज्ञान का स्थान प्रज्ञा ले लेती िै। असंस्कृत व्यत्तत पवज्ञान को बढ़ाते िैं जबकक धम-शसंस्कारापन्न व्यत्तत प्रज्ञा को पवकमसत करते िैं। इत्न्द्रयबोध से यथाथ शअन्तर्दत्ष्ट की हदर्ा में

मांस भी िै और जो पवषयासत्तत की बनी िुई भ्रांततरूप िै। तभी मन प्रेम, पवद्वेष एवं अन्य सब प्रकार की वासनाओं ंसे भी मुतत िो सकेगा।

- 'रांजेतर्न्स आफ द वड शइण्टरनेर्नल कांग्रेस आफ ररलीजन्स', खंड 2, पृष्ठ 41।

902 तत्रतत्राममभनत्न्दनो।

903 "धचत्ताधीनो धमो धमाधशीनो बोधधः ।"

क्रममक एवं र्नैः र्नैः उन्नतत िोती िै। दोनों परस्पर-पृथृक् एवंएक-दूसूरे से स्वतन्त्र निीं िं िै, परन्तु प्रज्ञा पूवकशधथत पवज्ञान का िी पवस्तार िै। प्रज्ञा पवकमसत िोते–िोतेअन्त में बोधध, अथाशत्ज्ञान के प्रकार्, के रूप में पररणत िो जाती िै।

इत्न्द्रयों के दमन से निीं िंअपपतु उनके प्रमर्क्षण से, त्जससे कक वे समय को अनुभव कर सकें, मन सुसंस्कृत िोता िै। इत्न्द्रयभावनास्त में बुद्ध पारार्य शके एक मर्ष्य से पूछतेिैं कक उसका गुरु ककस प्रकार के इत्न्द्रय-संस्कार की मर्क्षा देता िै। उसनेउत्तर में किा कक इत्न्द्रयों को ऐसी सीमा तक प्रमर्क्षक्षत ककया जाता िै कक अन्त में वे अपनेपवषय भोगरूप काय शको िो जाती िैं। आंख ककसी पदाथ शको करता िै। बुद्ध प्रमयुत्तर में किते िैं कक इसका तामपय शतो यि िुआ कक अन्धे व बिरे की इत्न्द्रयां सबसे अधधक संस्कृत िैं। एक यथाथ श इत्न्द्रय-संस्कृतत का तामपय शइत्न्द्रयों के इस इततर के प्रमर्क्षण से िै त्जससे इत्न्द्रयचेतना के सभी रूपों में परस्पर भेद ककया जा सकस एवं िंउनका सिी-सिी मूल्यांकन भी ककया जा सके। धाममकश अन्तर्दत्शष्ट वौद्धधक पवज्ञान का इत्न्द्रयप्रमयक्ष ज्ञान का पवस्तृतृ एवं िंपवकमसत रूप िै। इससे यि प्रतीत िोता िै कक बुद्ध एक घरमाथरूशप यथाथसशत्ता के अत्स्तमव को स्वीकार करते िैं, त्जसका िम प्रज्ञा की अवस्था में अन्तध्यान करते िैं। "िे साररपुत्र, तू सौम्य, तनमलशचररत्र एवं कात्न्तमान हदखाई देता िै, तू. किां िंसे आ रिा िै?" "िे आनन्द, म िैं एकान्त में पवचारमग्नता के परमािाद में था...और अन्त में बाह्य जगत् क्के प्रमयक्ष से ऊपर उिकर बोध के अनन्त क्षेत्र में पिुंच गया और यि भी अन्त में र्ून्यूता में पवलीन िो गया... तव अन्तर्दत्शष्ट प्राप्त िुई, और म िैं एक हदव्य र्दत्ष्ट के द्वारा संसार के माग शको, मनुष्यों की प्रवृपृत्तयों को, और उनके भूत, वतमशान एवं भपवष्यत् क्को भी स्पष्टरूप में लक्ष्य करने में समथ शिो सका। और यि सब मेरे अन्दर उदय िुआ, गुर्र भी गया ककन्तु क्षणमात्र को भी मन में आममामभमान का भाव अथवा यि पवचार कक यि सब मेरी कृतत िै, निीं िंसमा सका।" इस प्रकार की अन्तर्दत्शष्ट के आधार पर एक अतीत्न्द्रय परमाथसशत्ता-पवषयक दर्नशपद्धतत का पवकास करना केवल उपतनषदों के िी वर् का पवषय था। बुद्ध इसमें संकोच कर गए तयोंकक एक क्रमबद्ध दर्नश को अभी आगामी समय की प्रतीक्षा करनी थी। बुद्ध तो िमारे सम्मुख केवल र्दत्ष्टकोणों की श्रृंखलाओंएवं सूक्ष्म मनोवैज्ञातनक अनुभवों को िी प्रस्तुत करते िैं।

जबकक पिले की त्स्थतत प्रज्ञा अथवा अन्तर्दत्शष्ट की िै, इसके आगे की सीढ़ी ध्यान की िै; त्जसका पररणाम र्ान्त मुद्रा अथवा समाधध िै। उच्चतम श्रेणी के धचन्तन का नाम ध्यान िै, और बौद्ध धम शमें प्राथनशा-उपासना का स्थान इस ध्यान ने िी मलया िै। प्राचीन बौद्धधम शके इस पवर्ेषे पिलूको िीनयान सम्प्रदाय में अधधक पररष्कृत रूप हदया गया िै। ध्यान की चार सीहढ़यां िंिैं। पिली सीढ़ी प्रसन्नता एवं आह्लाद िै जो एकान्त जीवन के द्वारा प्राप्त िोतेिैं, त्जनके साथ-साथ अन्तर्दत्शष्ट, धचन्तन, गूढ़ पवचार एवंत्जज्ञासा भी आते िैं एवं इत्न्द्रयभोग के पवचार सेये सवथशा उन्मुतत िैं। दूसूरी सीढ़ी उल्लास की, प्रर्ान्त एवं गम्भीर मानमसक र्ात्न्त की िै, और यि चेतनामय धचन्तन से रहित िै। तीसरी सीढ़ी वासनाओंएवं पक्षपातों का अभाव िै, जिां आममममिो सवथशा र्ान्त िो जाता िै। और चौथी सीढ़ी आममसयंम एवं पूण शर्ान्तमुद्रा की िै, त्जसमें न कोई धचन्ता िै और न आह्लाद, तयोंकक जो आह्लाद एवं धचन्ता को उमपन्न करते िैं उन्िें एक ओर छोड़ हदया जाता

ीा।'[904] ध्यान एक प्रकार से मन को सब पवद्यमान वस्तुओंके साथ समता में लानेका सतत प्रयास ि ै। यि अिंकार के भाव को दूरू करने ेके मलए एक र्दढ़ तनश्चयपूण शपुरुषाथ शिं, त्जससे समयमय जीवन में मनुष्य अपनिो लीन कर सके। बौद्धसंघ के सदस्यों के दैतनक जीवन का मुख्य भाग ध्यान व अभ्यास करवा ि ै। हृदय एवं मन को प्रमर्क्षक्षत करने ेकी पवधधयां उस समय के प्रचमलत मतों से उधार के रूप में ले ली गई ि ैं। ि में अपनेअन्दर मैत्री, करुणा, मुहदता एवं ंउपेक्षा की भावनाओंको साधना करनेका आदेर् हदया गया ि ै। ये चार सवोत्तम मनोवृपृत्तयांअथवा त् बतलाए गए ि ैं। पे्रेम एवं सिानुभूतत आहद भावनाओं को समस्त मनुष्य जातत के प्रतत रिी अपपतु चेतनप्राणण मात्र के प्रतत पवस्तृत करने ेके ये क्रमबद्ध प्रयास ि ैं। ध्यान के पाली पवषयों एवं परमानन्ददायक चार धचत्तवृपृत्तयों को मसद्ध कर लेनेसे वासना क्षीण ि ो जा सकती ि ै और ि म इत्न्द्रयों के र्ासन से ऊपर उि सकतिें। उच्चतम सत्ता का ध्यान करने ेमें जीवन बबताने में ि में पुनः समय की प्रात्प्त ि ो सकती ि ै। ककन्तु ुइस प्रश्न को पूछने ेके मलए ि म बाध्य ि ैं कक वि कौन-सा पदाथ शया पवषय ि ै त्जसके ऊपर आध्यात्ममक धचन्तन अथवा ध्यान को केत्न्द्रत करना ि ै।

बौद्धधम शमें भगवमकृपा अथवा छूट का कोई स्थान निींि। विांकेवल आममपवकास को ि ी स्थान ि ै। मनुष्य अपने पुरुषाथ शएवं ंआममतनयन्त्रण के द्वारा ि ी ऐसा बल अथवा सामथ्य शएवं ंगुण प्राप्त कर सकता ि ै त्जसके द्वारा वि सब वस्तुओंसे स्वतन्त्र ि ोका आममतनभरश रि सकता ि ै। यहद मनुष्य अपनेऊपर पवजय प्राप्त कर ले तो उसके पवरुद्ध कोई भी प्रततपक्षी प्रबल निीं ंि ो सकता। त्जसने अपनेऊपर पवजय प्राप्त कर ली उसकी इस पवजय को कोई देवता भी पराजय में पररणत निीं ंकर सकता।'[905] चूंकक बुद्ध की मनुष्यमात्र के प्रतत पे्रेम एवं मानमसक तनयन्त्रण की मांग बबना ककसी धाममकश आदेर् की भावना के ि ै, ऐसे भी व्यत्तत ि ैं त्जनका किना ि ै कक बुद्ध ओगस्त कोम्ते की ि ी भांतत ऐहिकंवाद के प्रवतकश थे,े ि ालांकक वे उससे 2000 वष शपूव शउमपन्न ि ुए थे।

बौद्धधम शके ध्यान एवं ंयोग सम्बन्धी दोनों ि ी मसद्धान्त इस बात पर बल देते ि ैं कक मानमसक प्रमर्क्षण के मलए र्ारीररक एवं ंस्वास्थ्य-सम्बन्धी अवस्थाओं का अनुकूल ि ोना भी आवश्यक ि ै। र्रीर को वर् में करना ज्ञान की प्रात्प्त के मलए एक तैयारी ि ै। तपस्या के स्थान पर मनोवैज्ञातनक साधनाएं तनहदशष्ट ि ैं जो धाममकश अन्तर्दत्शष्ट की ओर ि में ले जाती ि ैं। धाममकश अपकषणश की ऐसी कक्रयाएं त्जनके द्वारा एक व्यत्तत अपनी र्त्ततयों को बाह्य जगद् से ि टा लेता ि ै और तब अिंभाव की भावना के र्ान्त ि ोने ेका अनुभव करता ि ै, सामान्यरुप से सब योग-सम्बन्धी कल्पनाओंमें पाई जाती ि ैं। ध्यान की चार अवस्थाओं में ि मे आनुभपवक

---

904 चाइल्डस शईसी' पवचार को इस प्रकार प्रस्तुत करता ि ै : "एक पुरोहित अपनेमन को एक अकेले पवचार पर केत्न्द्रत करता ीा। धीरे-धीरे उसकी आममा एक अलौककक अिाव एवं सौम्यता से पररपूण शिो जाती ि ै, ककन्तु उसका मन अब भी ध्यान के मलए चुनिुए पवषय की त्जज्ञासा प्रकट करता ि ै; यि प्रथम ज्ञान ि ै। इसके पश्चात् ्उसी पवषय पर पवचार को हटकाए ि ुए वि अपने मन को तकश एवं त्जज्ञासा से ि टाता ि ै, ककन्तु आह्लाद एवं सौम्यभाव अब भी रिता ि ै और यि द्पवतीय ज्ञान ि ै। इसके आगेअपने पवचार को पूववशत् ्हटका रिने देकर वि अपने को आनद से उन्मुतत कर लेता ि ै और तृतीय ज्ञान को प्राप्त करता ि ै और यि अवस्था र्ान्त सौम्यता की ि ै। सबसे अन्त में यि चौथेज्ञान पर पिुंचता ि ै त्जसमें कक मन उन्नत एवं पपवत्र ि ोकर सुखु और दुःख दोनों प्रकार की भावनाओं ंसे उदासीन ि ो जाता ि ै।"

- डडतर्नरी, पृषृ 189।

905 धम्मपद, 105।

जगत् ्के बुिमव के अन्दर से एक प्रगततर्ील एवं पवधधपूवकश अपकषणश प्राप्त िोता िै। ध्यान कोई तनरुद्देश्य अलीक कल्पना निीं ंिै अपपतु वि इत्न्द्रयों के माग शको रोककर एक प्रकार का तनत्श्चत अभ्यास िै, त्जससे मन की त्तत उन्नतावस्था को पिुंचती िै। एम. पूतों का किना िै : "मन को जब एक बार ममट्टी के बरतन या ऐसे िी ककसी अन्य पदाथ शपर केंहद्रत करके एकाग्र कर मलया जाता िै तो उसके पश्चात् ्क्रमर्: उस पदाथ शके प्रमययों एवं सन्नी-पवभाग आहद को छो़ हदया जाता िै। अिादप्राप्त व्यत्तत एक धचन्तन की अवस्था से प्रारम्भ करता िै, त्जसके साथ तकश एवं धचन्तन भी संलग्न रिते िैं, वि इच्छा, पाप, कतव्शयपवमूढ़ता, चंचलता एवं ंप्रसन्नता, तथा आनन्द-पवषयक भावना को मयाग देता िै। यि प्रकृतत पवषयक भावों, सम्पकश, परस्परपवभेद आहद के भी परे जाता िै और रून्य आकार् म ेंध्यान लगाकर एवं पदाथपशविीन ज्ञान के द्वारा तथा अभावाममता में ध्यान को केत्न्द्रत कर एक ऐसी अवस्था में पिुंच जाता िै जिां ंन चेतना िै, न चेतना का अभाव िै, और अन्त में आकर वि अनुभव एवं पवचार के सवथशा ततरोभाव से अमभन्न िो जाता िै। मनोवैज्ञातनक जीवन में यि एक ऐसी र्ान्त अवस्था िै जो पूण शसम्मोितनद्रा अथवा योगतनद्रा के समान िै।"[906] िम यि बात अधधक सिी-सिी एवं ंतनत्श्चन्तापूवकश निीं ंकि सकतेकक इससे अधधक मानमसक स्वातन्त्र्य एवं कल्पना की पवर्दता इत्न्द्रयानुभवों को रोकने से, अथवा बाह्य इत्न्द्रयों की त्ततयों को सम्मोिनत्तत द्वारा क्षीण करके, प्राप्त ककए जा सकते िैं या निीं। आधुतनक पवज्ञान इस पवषय में अब भी अपनी र्ैर्वावस्था में िी िै। बौद्धधम शका र्ेष समस्त भारतीय पवचारकों के समान इस पवषय में ऐसा िी पवश्वास था और अब तक भी ऐसा पवश्वास त्स्थर िै। भारत में साधारणतः यि स्वीकार ककया जाता िै कक मानमसक अवस्थाओं का तनयन्त्रण िोने ेपर जब इत्न्द्रयों के अनुभव पवरत िो जाते िैं तो अनुभवाममक आममा तनम्न श्रेणी में पिुंच जाती िै और पवश्वाममा की आभा प्रकट िोती िै।

यौधगक कक्रयाओं के आदर् शमभन्न-मभन्न आध्याममक र्ास्त्रों में मभन्न-मभन्न िैं। उपतनषदों में इसे ब्रह्म के साथ योग अथवा ब्रह्म के साक्षामकार के रूप में प्रततपाहदत ककया गया िै। पतंजमल के योगदर्नश में यि समय का अन्तरवेक्षण िै। बौद्धधम शमें इसका नाम बोधधसत्त्व की प्राप्त्त अथवा जगत् ्की तनःसारता का ज्ञान िै।

बुद्ध िर समाधध-अवस्था को आवश्यक रूप से प्रर्स्त निीं ंसमझतेथे। इसका लक्ष्य समय िोना **थाहिइह्छ्च्याआर्थात्** का पवनार्। बुद्ध ने इस बात का अनुभव ककया कक ककतने िी व्यत्तत ऐसे थे ेजो अलौककक त्ततयों की प्राप्त्त के मलए िी योग की कक्रयाओं ंका अभ्यास करते थे। बुद्ध ने इस प्रकार के आचरण में संर्ोधन ककया और ऐसे व्यत्ततयों से किा कक ऐसी त्ततयां भी केवल धमाचशरण और पववेक या दूरूदमर्तशा द्वारा प्राप्त की जा सकती िैं।907 बुद्ध ने अपनेमर्ष्यों को चममकारप्रदर्नश से मना कर रखा था। अलौककक त्ततयों की प्राप्त्त से मनुष्य ककसी धाममकश लाभ की प्राप्त्त का पात्र निीं ंबन जाता। बौद्धधम शके योगपवद्या-सम्बन्धी मसद्धान्तों का स्पष्टरूप ततब्बत के लामा लोगों के धम शमें देखा जा सकता िै।

अष्टांधगक माग शको भी चार पावों में पवभतत ककया गया िै, त्जनमें से प्रमयेक उन दस वन्धनों को तो़नेके मलए िै जो मनुष्य को इस संसार के साथ जक़ िुए िैं। इनमें से सबसे पिला बन्धन एक र्रीरी आममा

---

906 दवेटु तनवाणश',पृष्ठ 164।

907 देणखए आखंखेयसुत्त, 'सैक्रेड बुतस आफ द ईस्ट', खंड11।

की भ्रांतत (समकायर्दत्ष्ट) ि◌ै, जो समस्त अिभाव की ज़ ि◌ै। यि समझ लेना कक तनमय आममा कुछ निीं ◌ंि◌ै, और यि पवचार कक यि जो हदखाई देत्ता ि◌ै केवल स्कन्धों का पुंजमात्र ि◌ै, ि◌में प्रलोभन देकर आममतनरतत या सुखात्तत्तत एवंसंर्यवाद के माग शमें ढकेलता ि◌ै। इससे ि◌में अपने को बचाना ि◌ै। दूसूरी बाधा ि◌ै 'संर्य' अथवा पवधचककमसाः यि तनकम्मेपन अथवा बुराई को ढंकने ◌ेवाला आवरण ि◌ै। ि◌में पपवत्रता के पवचार पवधधरर जानेवाले कमकशाण्ड के कक्रयाकलापों में से भी अपना पवश्वास ििा लेना चाहिए। से ककए, पद्धतत एवं ◌ंकमकशाण्ड सम्पादन मिें का पता भाव की मना करनेमें सियक निीं ◌ंि◌ोते। ऐसा व्यत्तत जो अिभाव की भ्रांतत से मुतत ि◌ो गया ि◌ै. और जो बुद्ध एवं ◌ंउसके मसद्धान्तों में संर्य रखनेसे और आनुष्ठातनक कक्रया-कलापों में पवश्वास रखनेसे भी मुतत ि◌ो गया ि◌ै, वि कल्याण-माग शके प्रथम पाव में प्रवेर् कर गया ऐसा किा जाता ि◌ै। उसे स्रोतामपन्न संज्ञा दी जाती ि◌ै, त्जसका तामपय शयि ि◌ै कक वि चारा में प्रपवष्ट ि◌ो गया। इस अवस्था के पवषय में धम्मपद में किा ि◌ै "पपवत्र जीवन का यि प्रथम पगरूपी पुरस्कार भूमण्डल के सम्राटपद से भी उत्तम, स्वगप्रशात्प्त से भी श्रेष्ठ एवं तव लोकों की प्रभुता से भी ऊपर ि◌ै।"[908] अगली दो बाधाएंत्जन पर पवजय पाना ि◌ै, वे ि◌ैं-काम, एवं प्रततघ या द्रोिभाव। इन पर पवजय प्राप्त करके वि कल्याणमाग शके दूसूरे पाव पर पिुंच जाता ि◌ै। वि सकृदागामी ि◌ो

जाता ि◌ै, अथात्श ◌्जो मानव-जगत् ◌्में केवल एक बार ि◌ी जन्म लेगा। अपूणतशाएं कुछ न्यून ि◌ो जाती ि◌ैं यद्यपप सवथशा नष्ट निीं ◌ंि◌ोतीं। ऐसे व्यत्तत जो र्ारीररक दोषों अथात्श ◌्कामवासना, क्रोध एवं ◌ंऊपरी तक़-भक़ का ि◌ास करने ◌ेमें समथ शिो सकें, एक ि◌ी बार अत्न्तम मोक्ष से पूव शइस संसार में लौटकर आते ि◌ैं। जब इन दोनों बाबाओं का भी सवथशा पवनार् ि◌ो जाता ि◌ै तब मनुष्य अनागामी ि◌ो जाता ि◌ै। यद्यपप वि सब प्रकार की भ्रांतत से मुतत निीं ◌ं िुआ ि◌ै, तो भी पीछे लौटने ◌ेका कोई अवसर अब उसके जीवन में निीं ◌ंआएगा। ऐसी बाधाएं, त्जन पर अभी भी पवजय प्राप्त करनी ि◌ै, वे ि◌ैं-इस लोक एवं परलोक के भौततक एवंअभौततक सुखों की प्रात्प्त के प्रतत राग या उमकट इच्छा, मान (अमभमान) एवं ◌ंऔद्धमय, तथा वस्तुओंके यथाथरूशप का अज्ञान। जब ये वन्धन खुल जाते ि◌ैं तो वि अपने लक्ष्य पर पिुंच जाता ि◌ै एवं ◌ंअिशत्909 (यथाथ शमें योग) बन जाता ि◌ै और तनवाणश के परमानन्द को प्राप्त कर लेता ि◌ै। उसके दु◌ुःख के कारण समाप्त ि◌ो गए एवं ◌ंअरुदुधताएं घुल गईं। वि अब पुनजन्शम के बन्धन से मुतत ि◌ै। अिशत् ◌्की अवस्था आनन्दपूण शपपवत्रीकरण की अवस्था ि◌ै। तनवाणश बौद्धधम शका लक्ष्य ि◌ै, और

[illegible]र्ेतनवाणश

अिशत् ◌्कफर भी मनुष्य ि◌ी ि◌ै। केवल मृमृयु के साथ ि◌ी उसका जीवन र्ेष ि◌ोता ि◌ै। तब जीवनरूपी दीपक का तेल बबखर गया और जीवन का बीज भी मुरझा गया। वि इस सृतृष्ट से पवलोप ि◌ो जाता ि◌ै और पररतनवाणश को प्राप्त करता ि◌ै-इसे ि◌ी सत् ◌्के अवयवों का पवनार् किा जाता ि◌ै।'[910]

बौद्धधम शका नैततक जीवन सामात्जक ि◌ोनेकी अपेक्षा वैयत्ततक अधधक ि◌ै। ि◌में अपनेजीवन में बुद्ध के उदािरण का अनुकरण करना ि◌ै। परम्परागत एवं ◌ंप्रामाणणकता पर बल निीं ◌ंहदया गया ि◌ै। जब आनन्द ने

---

908 धम्मपद, 178।

909 अिशत् ◌्एक सामान्य र्ब्द ि◌ै त्जसका व्यविार बुद्ध से पूव शके काल में भी ऐसे ि◌र एक व्यत्तत के मलए ि◌ोता था त्जसने अपने धम शका आदर् शप्राप्त कर मलया ि◌ो।

910 देणखए 'द ररमलजस मसस्टम्स आफ द वल्ड'श, पृष्ठ 148-149।

 बुद्ध से प्रश्न ककया कक संघरूपी संस्था के मलए आपके तया आदेर् िैं तो बुद्ध ने उत्तर हदया :

"तुम अपनेमलए
अपने-आप दीपक बनो। तुम स्थय िी अपना र्रणस्थान भी बनो, ककसी बाह्य र्रण का आश्रय मत लो; समय को िी दीपक के रूप में दृढ़ता के साथ पक़ ेरिो, समय को िी दृढ़ता के साथ र्रणरूप में पकक़र रखो, अपने अततररतत और ककसीकी और र्रण पाने के प्रयोजन से मत ताको।"

आचरण के सम्बन्ध में स्थूलरूप से कल्याणकारी एवं कृत्मसत या र्ुभ अथवा अर्ुभ इस प्रकार को दो और ककया िै। कल्याणकारी आचरण तन:स्वाथभशाव के अगवा अनुभ और यि प्ेरम एवं ंकरुणा के रूप में प्रकट िोता िै, जबकक दूसूरे की ज़ अिकार िै ज श्रीणामस्वरूप दुभुावशनापरक कम शआहद िोते िैं। दस प्रकार के पापों से बचे [illegible] पाप अथात्
अथात् मभध्याभाषण, चुगली करना, गाली बकना एवं तनरथकश वातालशाप, तथा तीन पाप त्जनका मन से संबंध िै अथात्श ्लोलुपता, घृणा एवं ंभ्रांततपूण शपवचार। पापमय आवरण का दूसूरा भी वगगीकरण िै। पवषयभोग, पुनजन्शम की अमभलाषा, अज्ञान, अध्याममपवषयक का अटकलबाजी-पापमव आचरण के थे चार प्रकार िैं। कभी-कभी सबको एक सरल तनयम में साररूप में रख हदया जाता िै जो प्रकटरूप में तनषेधाममक िै, परन्तु िै पवध्याममक, जैसे, ककसी जीवधारी की िमया मत करो, चोरी मत करो, व्यमभचार मत करो, ममथ्या भाषण न करो, मादक द्रव्यों का सेवन न करो। ये तनयम पांच मभन्न दर्ाओंमें आममसंयम की आवश्यकता पर बल देते े ैं। पवध्याममक रूप में इनका आर्य इस प्रकार िै-क्रोध को वर् में करो, सांसाररक सम्पपत्त की इच्छा का दमन करो, र्ारीररक पवषय-भोग की कामना को वर् में रखो, कावरता एवंदुष्ट भावना का दमन करो, (तयोंकक यिी असमयव्यविार का मुख्य कारण िै), और दूपूषत उते्तेजना की उमकट अमभलाषा का दमन करो। इस आममसंयम का पररणाम यि िोगा कक अपनेको और दूसूरों को भी सुखु ममलेगा एवं ंपवध्याममक सद्गुण का पवकास िोगा। क्रोध के संयम से सज्जजनता की वृद्धि िोती िै, लोभ के संवरण से दाक्षक्षण्य का प्रसार िोता िै. पवषयभोग की भावना का दमन कर लेनेपर प्ेरम में पपवत्रता का समावेर् िोता िै। ककसी- ककसी स्थान पर आदर् शसद्गुण संख्या में दस बताए गए िैं; यथा, दान या दाक्षक्षण्य, आचरण की पपवत्रता, धैय शएवं सहिष्णुता, कमिशता, ध्यान, बुद्धि, समसाधनों का उपयोग, दृढ़संकल्प, र्त एवं ज्ञान। ककसी-ककसी स्थान पर मर्क्षा-सम्बन्धी नैततक अनुर्ासन को तीन तनयमों में अथात्श ्नैततकता, संस्कृतत एवं ंअन्तर्दत्शष्ट आहद के रूप में प्रततपाहदत ककया गया ै। 'मममलन्द' में िम देखतैं कक धाममकश जीवन के ये अंग बताये गए िैं-सदाचरण, तनरन्तर उद्योग, ध्यान, जागरूकता एवंपववेक या दूरूदमर्तशा।'[911] उपतनषदों में प्रततपाहदत कतव्शयकमों के पवधान एवं ंप्राचीन बौद्धधम श के पवधान में मूलतत्त्व-सम्बन्धी कोई भेद निीं ंिै।912

अब िम नैततक जीवन के प्ेरेरक भाव एवं ंदैवीय प्ेरेरणा की ओर आते िैं। दु:ख से बचना एवंसुख की खोज समस्त आचरण का स्रोत िै। तनमाणश उमकृष्ट कोहट का सुख अथवा आनन्द िै। आधुतनक आनन्दमागी किते िैं

---

911 2:1, 7-15।

912 आममघात अनुधचत िै, तयोंकक जीवन को नष्ट करने से आममा की अिंकार-पवषयक भ्रांतत का तनराकरण निीं िो सकता।

कक जीवन के पवस्तार में ि ी सुख प्राप्त ि ोता ि ै। बौद्धों का दावा ि ै कक स्वाथपशरता एवं अज्ञान की दर्ाओं ं के पवलयन के कारण ि ी बार-बार जन्म ि ोता ि ै। बुद्ध जो अवस्था मनुष्य के सम्मुख प्रस्तुत करते ि ैं वि एक अनन्त मोक्ष की अवस्था ि ै, त्जसकी प्रात्प्त ज्ञान, सदाचरण एवं की़ साधना के संकीण शमाग शके अन्त में पिुंचने पर ि ोती ि ै। बुद्ध की र्दत्ष्ट में धन-सम्पपत्त, पवजय अथवा र्त्त बिुत तुच्छ उद्देश्य ि ैं। मन के पवक्षोभ से ि ी मनुष्य की प्रवृपृत्त तुच्छ हितों की ओर ि ोती ि ै। इस प्रकार का क्षोभ इस संसार में एक साधारण बात ि ै। तीनों लोकों में मुझे े एक भी ऐसा जीपवत प्राणी निीं ं ममला जो अपनेव्यत्ततमव की अन्य सबके ऊपर व रखता ि ो।"[913] स्वाथपशरता अपूण शज्ञान के कारण उमपन्न ि ोती ि ै और इसी का पररणाम व्यत्ततमव के बन्धनों का पवक्षोभ ि ै। तनःस्वाथ शभाव समय के यथाथज्ञशान का पररणाम ि ै। आममा की पवषयीतनष्ति के दमन से एवं ं सावभशौम चेतना के पवकास से यथाथ शकल्याण की प्रात्प्त ि ो सकती ि ै। यि एक उच्चश्रेणी की स्वाथपशरता ि ै जो ि में इस बात को तनदेर् करती ि ै कक ि में अपनी स्वाथपशरक उमकट अमभलाषा का मयाग कर देना चाहिए। दूसूरों के दुःखों के प्रतत करुणा का भाव परोपकाररता के भाव की प्ेरेरणा से ि ी उमपन्न ि ोता ि ै। दुखु में ि म सब एकसमान साथी ि ैं और सब एक ि ी सामान्य दण्डव्यवस्था के अधीन ि ैं। देवलोक एवं ममयंलोक के समस्त प्राणी, यिां ं तक कक जो 'भव' की श्रेणी में ि मसे भी नीचिैं वे भी, नैततक पूणतशा के तनयम के अधीन ि ैं। समस्त जीवन-दैवीय, मानवीय एवं ं पर्ुओंका भी अपने-अपनेक्षेत्र में नैततक कारण-काय-शभाव के तनयम की श्रृंखला से एकसाथ संबद्ध ि ै। यिी

प्रकृतत-सम्बन्धी लोकहितकारी संघटन ि ै जो बौद्धधम शकी पृष्ठभूमम का तनमाणश करता ि ै, एवं ं अन्यत्र किीं ककसी ने इसे इतने पवर्दरूप मे निीं ं पिचाना। मनुष्य के स्वभाव का तनमाणश त्जस सामग्री से ि ुआ ि ै वि पूणरूशप से अिभाव से युतत निीं ं ि ै। तनःस्वाथ शआचरण अप्राकृततक निीं ं ि ै। ि में यि न सोचना चाहिए कक अिभावपरक कम शिी एकमात्र बौद्धधक कम शिै। यि कथन करना कक प्रमयेक व्यत्तत दूसूरे से बाह्य ि ै, एक अधसशमय ि ै। सब प्राणणयों के अन्दर एक मौमलक एवं ं ऐत्न्द्रय संघटन ि ै। यि एकमव में बांधनेवाली चेतना का पवकास या ज्ञान की पूणतशा, र्ात्न्त एवं ं आह्लाद की प्रात्प्त ि ी तनवाणश ि ै। सावभशौममक चेतना के रूप में पवस्तार ि ी स्वतन्त्रता ि ै अथात्श ् अपनी भावनाओं एवं ं सिानुभूतत के क्षेत्र को पवश्वमात्र के मलए अमयन्त पवस्तृत बनाना ि ी मोक्ष ि ै। "प्रमयेक मर्ष्य अपनेमन को संसार के चतुथार्ं तक प्ेरेम के पवचारों को पवस्तृत ि ोने े के मलए अपणश कर देता ि ै और इसी प्रकार दूसूरा मर्ष्य भी, और इस प्रकार समस्त पवस्तृत संसार के अन्दर प्ेरेम के पवचारों का प्रसार ि ो सकता ि ै।"[914] वस्तुतः बौद्धधम शकी नैततकता में अलौककक प्रामाणणकता के मलए कोई स्थान निीं ि ै तो भी साधारण मनुष्य के मलए मृमृयु के पश्चात् ् स्वग-शप्रात्प्त की आर्ा के मलए स्थान पूववशत् ् सुरक्षक्षत रखा गया ि ै।

सदाचार या धाममकश गुणों के प्रततबन्धों को बाह्य वस्तुओं से कोई मतलब निीं। राजा ि ो या रंक, धम श का पवधान सबके मलए एक समान ि ै, तयोंकक सभी एक समान अपूण शिै। जीवन यथाथ शएवं सात्त्वक ि ोना चाहिए। बौद्धधम शकेवल कतव्शयकम शकरने पर ि ी इतना बल निींदेता त्जतना कक समस्त जीवन में पररवतनश लानेकी आवश्यकता पर बल देता ि ै। सुलेमान के समान जो व्यत्तत अपनी ख्यातत से पूरी तरि सत्ज्जजत ि ै,

---

913 संयुत्त,1।

914 ि ासुदुस्सनसुतुतन्त

रींर से भी तेजेस्वी ि एवं ंबुदुधध में भी पवर्ाल ि, वि वस्तुतः मिन निीं ंि। नम्रता, दाक्षक्षण्य एवं ंपे्रम के बबना जीवन अपने अन्तस्तल में मृमृयु के समान ि।

बौद्धधम शके नीततर्ास्त्र पर बार-बार बुद्धधवाद का दोषारोपण ककया जाता ि। इसमें सन्दिे निींकक इसमें ज्ञान पर बल हदया गया ि, तयोंकक अज्ञान को िी दुुःख और तलेर् का मूल कारण बताया गया ि। यि केवल समयतनष्ठा िी ि जो मन के अन्दर सुधार ला सकती ि। त्जस मन में समय के पववेक का प्रकार् ि विां स्वाथपशरक इच्छा का उद्भव असम्भव ि। इसमलए मुततामम को 'बुद्ध' संज्ञा दी गई ि, त्जसका अथ शि ज्ञानवान।915 सदाचार िी धमामशमा पुरुष के मलए ज्ञान का काय शकरता ि। ककन्तु साथ-साथ युद्ध यि भी मानते िैंकक इस ज्ञान के द्वारा िी रींर का पवलय निीं ंिो सकता तयोंकक रींर कम शके कारण बना ि कक रास जान प्रपवश्व में नये कमों को रोकनेमें समथ शिो सकता ि। िमें इस पवषय की ओर भी ध्यान देना चाहिए कक ज्ञान से बुद्ध का अमभप्राय केवल बौद्धधक एवं ंर्ास्त्रों के अध्ययन मात्र से निीं ंथा। इस ज्ञान से अमभप्राय परमाथपशवद्या सम्बन्धी रूहढ़गत मसद्धान्तों अथवा दीक्षोप्राप्त व्यत्ततयों के मलए जो गुह्य पवषय बताए जाते िैं उनसे पररचत िो जानेसे भी निीं ंथा, बत्ल्क ऐसे ज्ञान से अमभप्राय ि त्जसके मलए नैततकता एक आवश्यक प्रततबन्ध या र्त शि। यि एक समय से पूण शजीवन ि त्जसे िम वासनाओं एवं मानमसक पे्ररेणा के कलुपषत प्रभाव से आममा को तनमलश करके िी प्राप्त कर सकतिैं। ज्ञान कोई ऐसा पदाथ शनिीं ंि त्जसे िम अपनेमत्स्तष्क के ककसी एक कोनेमें अलग संभालकर रख सकें बत्ल्क यि वि पदाथ शि जोकक िमारे समस्त जीवन में प्रवेर् िोता िै, िमारे मनोवेग इसके रंग में रंत्जत िोतिैं, जो िमारी आममा को आश्रयस्थान बना लेता ि एवं यि िमारे इतना सत्न्नकट ि जैसेकक स्वयंजीवन िो। यि पूण शप्रभुमव रखने वाली एक ऐसी र्त्तत ि जो बुद्धध के द्वारा सारे व्यत्ततमव को एक पवर्ेष ढांचेमें ढालती ि, मनोवेगों को तनयममत करती ि एवं इच्छा पर भी तनयन्त्रण रखती िै। तेपवज्जजसुत्त'[916] में इस पवषय का सम्यक् प्रततपादन ककया गया ि कक मसद्धान्त-सम्बन्धी पवश्वास िी ज्ञान निीं ंि। इस प्रश्न के उत्तर में कक 'मुझे ेदुुःख से छुटकारा पाने ेके मलए तया करना चाहिए ?' बुद्ध भी उपतनषदों की िी र्ैली में कित िैं कक स्वाथपशरता पर पवजय पाने में िी मुत्तत ि, तयोंकक कल्पना की र्दत्ष्ट से स्वाथपशरता अिकार की भ्रांतत ि और कक्रयाममक रूप में यि आममा की उमकट अमभलाषा ि। बुद्ध बार-बार यिी दिोरातिैं कक समय की प्रात्प्त तनम्नमलणखत आवश्यक र्तों के ऊपर तनभरश करती ि (1) श्रद्धा917 (2) दर्नश अथवा र्दत्ष्ट । केवल पवश्वास अथवा श्रद्धा िी पयाप्शत निीं ंि, तयोंकक अन्य व्यत्ततयों के प्रामाणणक लेखों के आधार पर प्राप्त ककए गए समय िमारे मन के मलए कफर भी बाह्य िैं और इसीमलए िमारे जीवन के वे ेअंग निीं ंबन सकते। "देखो

915 "इस पवषय में ब्राह्मणधम शकी कल्पना ने बौद्धधम शकी पूवकशल्पना, पवचार के क्षेत्र में निीं अपपतु भाषापवन्यास के क्षेत्र् में भी की थी... तयोंकक र्तपथ ब्राह्मण में ऐसेव्यत्तत के मलए त्जसने आममा को जान मलया ि, 'मुतत' र्ब्द का प्रयोग ककया गया ि एवं ंविां ज्ञान के मलए जो र्ब्द प्रयोग ककया गया ि यि 'प्रततबुद्ध' ि, त्जसका अथ शभी जागररत िोना, अथात् विी र्ब्द त्जसका व्यविार बौद्धधमी तनरन्तर करतिैं, जिां किीं वे इसका वणनश करते िैं कक ककस प्रकार बुद्ध ने पपवत्र क्षण में अश्वमथ वृक्ष के नीचे समय का ज्ञान प्राप्त ककया था अथवा समय का सन्देर् जगत् ्को देने के मलए वे जागररत िुए थे। यि विी र्ब्द ि त्जसमें सेबुद्ध अथात्श ्ज्ञाता, जागररत आहद की उमपपत्त िुई ि।" (ओल्डनबग:श 'बुद्ध', पृष्ि 521)

916 3:1, 2।

917 मत्ज्जझम, 1: 71।

िमिभक्षुओ, तया तुम किना चािते िो कक चूाँकक िम अपनेगुरु को आदर की दत्ष्ट से देखते िैं इसीमलए उस आदर के कारण िी िम उसके अमुक-अमुक वचन पर पवश्वास करते िैं? तुम्िेंऐसा न किना चाहिए तयोंकक तया त्जसे तुमने ेस्वयं अपनी आंखों से देखा अथवा अपनी बुद्धध से तोला वि समय न िोगा ?[918] (3) भावना अथवा अनुर्ीलन। यि ध्यान का अथवा बार-बार समय के पवषय में पवचार करने ेका नाम िै जब तक कक िम उसके साथ तादामम्य उमपन्न करके उसे अपनेजीवन में पूणतशया घटा न लें। अनुर्ासनपवीन व्यत्तत उच्चतम जीवन में प्रवेर् निींकर सकता, और कफर भी समय का प्रमयक्ष साक्षामकार िी मानव-जीवन का मुकुट िै, त्जसके धारण करते िी कफर कोई ममथ्या पवश्वास निीं ंहटक सकता। अरस्तु ुअपने नीततर्ास्त्र के अन्त में ध्यान पर िी आकर रुकता िै. त्जसे वि परम सद्गुण किता िै. यद्यपप उससे सम्बद्ध अन्य सद्गुणों का भी यि तनधध मानने सककन इस पवषय सवेक्षण करखर्तिें कक पवना पे्रम एवं ंपरोपकार भाव के प्रज्ञा सम्भव निीं ंिै, अथवा यहि सायचा भी िो तो फलवती तो िो िी निींसकती। कक्रयाममक रूप में सदाचरण धारण ककए बबना केवल समाधध में बैिकर ध्यान करने ेमात्र से िी पूणतशा प्राप्त निीं ंिो सकती।'[919]

दूसूरा आपेक्ष जो बौद्धधम शके नीततर्ास्त्र पर ककया जाता िै, वि यि िै कक यि मयागमय जीवन की मर्क्षा देता िै। यहद इच्छा के दमन का नाम िी मयागी जीवन िै तब तो बौद्धधम शअवश्य मयागमय िै। इच्छा िी जीवनीरूपी। इसप्रभावकाकमीतउद्देश्यासे के एवंबबना पवश्राम के चलते जाना इसके स्वभाव में िै। यि भी र्ान्त निीं ंिोती। तनम्न शे्रेणी के जीवधारी में यि केवल असंस्कृत पे्ररेणा िै, उमकट अमभलाषा अथवा तणि (तृषूणा) िै, जबकक पववेकपूण शतणि िी इच्छा िै। तणि का पवलोप इच्छा के मूलोच्छेद िो जानेसे िी सम्भव िै। और इसे कक्रयार्ील इच्छार्त्तत अथवा 'छन्द' के द्वारा िी मसद्ध ककया जा सकता िै। बुद्ध केवल तनष्कमणशयता का समथनश निीं ंकरते, तयोंकक उनके मत में अनुधचत इच्छाओंका दमन तनत्ष्क्रयता अथवा मौन के द्वारा सम्पन्न निीं ंिो सकता अपपतु ुप्रबल इच्छा और प्रयोजन को लेकर िी िो सकता िै।

बुद्ध का आग्रि इस पर निीं ंिै कक इच्छार्त्तत का सवथशा नार् कर हदया जाय अथवा संसार से िी पवमुख िो जाया जाए, ककन्तु उनका आग्रि यि िै कक इच्छार्त्तत के साथ घोर युद्ध करके पाप को कक्रयाममक द्वन्द्व में पछाड़ हदया जाए। "यहद कोई समालोचक बौद्धनीततर्ास्त्र में अधधकतर एिलौककक प्रवृपृत्तयों को ढूंढ़ना चािे तो उसे एक बौद्धपतत (साधु) ु की बािर से हदखने ेवाली प्रर्ान्त चाल-ढाल के नीचेएवं ंसाहिमय और कला के क्षेत्र में स्पष्ट लक्षक्षत िोगा कक वामसल्य व अनुराग से युतत मनोभाव एवं इच्छा र्त्तत सवथशा तनष्क्रय निीं ंिो गए और न तनकालकर दूरू िी कर हदए गए िैं अपपतु पवस्तृतृरूप में इनको प्रगाढ़ श्रद्धा एवं ंउन्नत आर्ा के अधीन कर हदया गया िै। तयोंकक कोई भी मसद्धान्त ऐसा निींिै, यिां ंतक कक प्लेटो का दर्नश भी इसका अपवाद निींिै, जो इसी वतमशान जीवन में पूणतशा को प्राप्त करने ेकी बृित्तर सम्भावनाओं को देख सका िो। और न िी कोई ऐसी धाममकश पद्धतत िै, और ईसाई धम शभी इसमें अपवादस्वरूप निीं ंिै कक त्जसमें मानव-पे्रम के

---

918 मत्ज्जझम् 1।

919 धम्मपद ,183 ।

पवकास में िी तनम्नश्रेणी की भावनाओं से भी ऊपर उिनैकी सम्भावना को स्थान हदया गया िो ।"[920] बुद्ध का आदेर् कभी भी भावना एवं ंइच्छा को सवथशा दबा देनेकी ओर निींथा अपपतु उनका आदेर् था कक िमें समस्त सृतृष्ट के प्रतत यथाथ शप्रेम को बढ़ाना चाहिए। इस उज्जजवल भावना से समस्त सृतृष्ट को भर देना चाहिए त्जसमें एक अपार सहदच्छा का प्रवाि जारी िो सके। "िमारे मन में आममपवश्वास डगमगानेन पाए, िम कोई व्यथ शएवं तनकृष्ट वाणी मंुि सेे न तनकालें, िम बराबर नम्र एवं ंदयाल रिें, अपने हृदय में प्रेम को स्थान देकर पवद्वेष की गुप्त भावना से भी रूनूय रखें; और िम सदा अपनेतनकट रिने ेवाले व्यक्तत के प्रतत प्रेममय पवचार की ककरणें पवस्तृत करते िुए और उसके द्वारा समस्त संसार में एक प्रेम की लिर को दौ़ाते िुए मनुष्यमात्र को मिान और पवद्वेषभाव एवं कटु व्यविार से सवथशा रहित कर दें।"[921] जातकग्रन्थों में जो कथाएं आती िैं उनमें बुद्ध के पूवजशन्मडों में हदखाएं गए प्रेम एवं ंकरुणा के भावों के अनेक दृष्टांत हदए गए िैं।'[922] बुद्ध का मसद्धान्त पवषयभोग एवं ंमयाग तपस्या के बीच के मसद्धान्त िै, और इसीमलए उन्िोंने ेसो़ देनेका आदेर् हदया। वे िमें इच्छा को एकदम दबा देनेका निीं,ं अपपतु उसकी हदर्ा को मो़ देनेमात्र का आदेर् देते िैं। यिी पररणाम िम बौद्धधम शके संवेदनापवषयक कस्लेषण के सम्बन्ध में तनकाल सकते िैं। चेतना की अवस्था अपने-आपमें कभी अच्छी निींधचत्ती ककन्तु ुअपनेअत्न्तम पररणाम के द्वारा िी अच्छी या बुरी कि़ी जाती िै। यहद पररणाम कल्याणकारी िै तो िमें सुख ममलता िै, ककन्तु यहद अतनष्टकारी िै तो दु़ःख ममलता िै, और यहद दोनों में से एक
भी निीं ंतो िमें समर्दत्ष्टपरक अनुभव िोता िै। सब प्राणणयों का लक्ष्य वाल्याण की ओर िोता िै, यद्यपप वे अधधकतर सापेक्ष कल्याण से िी सन्तुष्ट रि जाते िैं। ऐसे व्यक्तत कुछ चुने िुए िी िैं जो परमकल्याण अथवा अनन्तसुख की प्रात्प्त के मलए मित्त्वाकांक्षा रखते पाए जाते िैं। बुद्ध िमें तनम्नस्तर पर जीवन-तनवाश की इच्छा को दबानेका आदेर् देते िैं एवं ंप्रेरणा करते िैं कक िम भली प्रकार जीते रिने ेकी इच्छा को उन्नत करके परम र्ांतत को प्राप्त करने ेका प्रयमन करें। यहद उन्िोंनेर्ांत रिने ेकी प्रर्ंसा की िै तो भी इसमलए कक उससे मन को एकाग्र करने ेमें सिायता ममलती िै। इच्छार्त्तत को दबाना निीं ंअपपतु ुवर् में रखना िै। इच्छा को तनयन्त्रण एवं अनुर्ासन में रखे बबना संसार में कोई भी मिान काय शसम्पन्न निीं ंिो सकता। जब एक युवक राजकुमार ने बुद्ध से पूछा कक आपके मसद्धान्त में तनष्णात िोनेके मलए ककतने ेसमय की आवश्यकता िै तो बुद्ध ने तनदेर् ककया कक त्जतना कक घुसवारी सीखने में। यिां ंभी इस प्रश्न का उत्तर इसके ऊपर तनभरश करता िै कक पांच प्रकार की अवस्थाएं उपत्स्थत िों अथात्श ुआममपवश्वास, स्वास्थ्य, गुण, र्त्तत एवं बुद्धधमत्ता ।923

---

920 श्रीमती रीज डेपेवडूस 'जनलश आफ रायल एमर्याहटक सोसाइटी'; 1898, पृष्ि 55।

921 मत्ज्जझमतनकाय, 21।

922 तारनाथ रधचत 'हिस्टरी आफ इंडडयन बुद्धधज़्म' में एक आयसंशघ नाम के बौद्धमभक्षु ुकी किानी आती िै त्जसने एक कुत्ते को लोगों का रास्ता रोककर भौंकते िुए देखा, त्जसके र्रीर का नीचे का हिस्सा कीड़ों नेखाकर छलनी कर हदया था। दयाद्रश िोकर आयसंशघ ने अपने-आपमें सोचा कक "यहद में इस कुत्ते का इन कीड़ों से न छुड़ाऊंगा तो यि गरीब जानवर मर जाएगा और यहद में कीड़ों को उसके र्रीर से उतारकर परे फेंक दूंगा तो वे पवना आिार के मर जाएंगे।" इसमलए उसने अपने र्रीर से कुछ मांसं काटा और उस पर कीड़ों को रख हदया।

923 मत्ज्जझम, 65।

मिं इच्छामात्र को निीं ंअपपतु केवल अनुधचत इच्छाओंको िी सब प्रकार की कहिन साधना के द्वारा र्ान्त रखने का आदेर् हदया गया िै।924 "म ैंमयाग, तपस्या के प्रचार के साथ- साथ हृदयगत अन्य सब पापों को भी भस्मसात् ्कर देनेका प्रचार करता िंूं। केवल विी सच्चा तपस्वी िै जो इस प्रकार का आचरण करता िै।" इसके अततररतत बुद्ध के मयागमय अनुर्ासन में मन के अततररतत क्षेत्र का भी ध्यान रखा गया िै, केवल र्रीर की बाह्य उपलत्ब्धयों का िी निीं। वस्तुतः बुद्ध र्रीर के प्रतत पूरा ध्यान देनेका आदेर् देते िैं, केवल उसमें मलप्त िो जानेका िी तनषेध करते िैं। "तया कभी तुम्िारे ऊपर युद्धभूमम में बाण का प्रिार िुआ िै ?" "िां ं भगवन्,् मुझे ेबाण लगा िै।" "और तया उसका ़ख्म पर मरिम लगाकर एक मिीन कप़ ेकी पट्टी से बांधा गया था?" "िां ंभगवन्,् ऐसा िी िुआ था।" "तया तुमने ेउस ़ख्म से प्रेेम ककया था ?" "निीं।" "िीक इसी प्रकार से तपस्वी लोग अपनेर्रीर में आसत्तत निीं रखते, और उसके अन्दर आसत्तत न रखते िुए भी र्रीर को धारण करते िैं. इसमलए कक धाममकश जीवन में र्रीररूपी साधन को लेकर आगे बढ़ सकें।"[925]

बुद्ध ने मभक्षओंके मलए भी समुधचत वस्त्र धारण करने,े तनयममत भोजन करने ेतथा आवासस्थान एवं धचककमसा की व्यवस्था की अनुमतत प्रदान की िै। वे जानते थे ेकक र्ारीररक कष्ट मन की र्ात्तत के मलए िातनकारक िै, त्जसकी आवश्यकता दार्तशनक सयों को ममझनेकुमलए िै। बुद्ध ने तपस्या के साधनों में पररष्कार ककया एवं ंसमय तथा अमृत तपस्वी जीवनेके तनप्पद ककया। उन्िोंने ेकततपय कुत्मसत प्रकार की तपस्याओं की मित्ता को भी र्दपषत में भी भेद्यहद चाकू को उसके फल की ओर से पक़ा जाएगा तो यि िाथ काट लेगा। इसी उसायात ममथ्या प्रकार की तपस्या मनुष्य को नीचेधगराती िै। उसकी र्दत्ष्ट में तपस्या का प्रकार जीवन के बन्धनों को काटना निीं ंथा ककन्तु अिंकार या अिंभाव का मूलोच्छेदन था। तपस्वी वि निीं ंिै जो र्रीर को दण्ड देता िै ककन्तु वि िै जो अपनी आममा को र्ुद्ध करता िै। ऐसे पवषयों से जो िमारी इच्छाओंको

थथाःप्रसाकारेरकिैंधचसाएं, घनः सम्पपत्त की छलना, तथा बाह्य पदार्थों की उमकट लालसा' आहद से, अपनेको छु़ा लेने ेका नाम िी तपस्या िै। उपतनषदों में आता िै कक नधचकेता ने उस ब्रह्म को जानने के मलए जो ममृयु से परे िै एवं ंजीवन में पवद्यमान िै, आग्रि रखते िुए संसार के क्षणणक सुखों को स्वीकार करने े से तनषेध कर हदया। प्रमयेक स्वस्थ जीवन के मलए मयाग पर बल देना आवश्यक िै। अब गौतमी मभक्षुणी ने बुद्ध से किा कक मुझे ेधम शके सारतत्त्व का उपदेर् कीत्जए तो बुद्ध ने किा कक "ऐसी कोई भी मर्क्षा त्जसके पवषय में तू तनश्चयपूवकश कि सकती िै कक यि र्ात्न्त के माग शपर ले जानेकी अपेक्षा वासना की ओर ले जाती िै, नम्रता की ओर न ले जाकर अमभमान की ओर ले जाती िै, न्यूनतम की अपेक्षा अधधकाधधक की चाि की ओर ले जाती िै, एकान्त की अपेक्षा लोकसमाज में रमे रिने ेकी ओर ले जाती िै, तनष्कपट पुरुषाथ शकी अपेक्षा तनष्कमणशयता की ओर ले जाती िै, एक ऐसे मन की अपेक्षा त्जसे सन्तुष्ट करना सरल िो, ऐसे मन की ओर ले जाती िै त्जसे सन्तुष्ट करना कहिन िो तो िे गौतमी, ऐसी मर्क्षा धममर्क्षा निीं िै।"[926] एकान्त में ध्यान करना िी आध्यात्ममक र्ात्न्त एवं ंअनासत्तत प्राप्त करने ेका एकमात्र साधन िै।

---

924 मिापररतनव्वानसुत्त,7।

925 मममलन्द, पृष्ि 73।

926 दिालके : 'बुद्धधस्ट एसेज', पृष्ि 215।

बौद्धधम शके मलए अपनेदेर् के भूतकाल को सवथशा भुला देना सम्भव र्निीं ंथा। बुित पूव शके वैहदक समय से लेकर भारतवष शमें मयाग एवं तपस्या की भावना वाले व्यत्तत पवद्यमान रिे िैं त्जन्िोंने सांसाररक त्म्मेदाररयों से अपनेको सवथशा पृथृक् करके स्वतन्त्र पवचरण करने के माग शको अपनाया था। उपतनषदों में मिनेदेखा कक ककस प्रकार परब्रह्म के पे्रेम में ककतने िी व्यत्ततयों ने "सन्तानोमपपत्त की कामना को मयाग हदया, धन-सम्पपत्त के संचय के मलए चेष्टा करनी छो़ दी, सांसाररक सुखोपभोग की खोज को भी ततलांजमल दे दी, और पररव्राजक बनकर घर से तनकल प़।े" ब्राह्मण-धमर्शास्त्र के तनयम-पवधान के अनुसार, इन संन्यासाश्रम ग्रिण करनेवालों को अधधकार हदया गया था कक वे ेअपनेको सांसाररक कत्तव्शयों से पृथक् एवं ंधाममकश अनुष्ठानों से मुतत रख सकतेिैं। भारत में यि पुरुष आदर् शतपस्वी था त्जसके आगे तया राजा और तया एक ककसान सब समानरूप से मस्तक झुकाते ेथे,े जो राजमाग शपर, गमलयों में एक घर से दूसूरे घर बबना कुछ किे, चुपचाप मौनरूप में, िाथ में मभक्षा-पात्र लेकर चलता था। जैकोबी इन मभक्षुओं के पवषय में कितेिैं: "इसमें कोई सन्देि निीं ंकक ऐसे मभक्षुओंके मलए जो तनयम बनाए गए थे ेउन्िें देखकर यि स्पष्ट प्रतीत िोता िै कक समाज में ईसा पूव शलगभग आिवीं र्ताब्दी में इनके मलए एक पवमर्ष्ट स्थान था।" बौद्धमभक्षु ऐसे िी पररव्राजक िैं त्जन्िोंने दान में ममले मभक्षान्न के ऊपर जीवन-तनवाि करते िुए, एवं ंतनथनशता का व्रत लेकर बुद्ध के पपवत्र सन्देर् को सवत्रश फैलाने के मलए अपना जीवन अपपतश कर हदया। तन:सन्देि बुद्ध यि कभी आर्ा निीं ंकरते थे ेकक सब मनुष्य तपस्वी बन जाएं। बुद्ध ने मनुष्यों को दो श्रे्रेणणयों में पवभतत ककया िै एक वे जो अब भी संसार एवं ंउसके जीवन में आसतत िैं; इनको उन्िोंने ेउपासक अथवा साधारण मनुष्य किा िै। और दूसूरे वे ेजो आममतनयन्त्रण द्वारा सांसाररक जीवन से मुतुत िो चुके िैं; इन्िें श्रमण अथवा तपस्वी किा गया िै।'[927] सांसाररक सद्गुणों के मलए उनके मन में मिान आदर था तो भी उनका पवश्वास था कक सांसाररक कत्तव्शयों का पालन प्रमयक्षरूप में मोक्ष के मलए सिायक निीं ंिै। "गृिस्थ-जीवन अनेक प्रकार की बाधाओं से पररपूण शिै-एक ऐसा माग शत्जसे वासनाओं ने दूपूषत कर हदया िै। वायुकी भांतत स्वच्छन्द उसका जीवन िै त्जसनेसब सांसाररक वस्तुओंका मयाग कर हदया िो। ऐसे व्यत्तत के मलए जो घर पर रिता िै, पूण शरूप में उच्चतर एवं ंपपवत्र और उज्जज्जवल जीवन-तनवाि करना ककतना कहिन िै। इसमलए तयों न म ैंअपनेकेर् व दाढ़ी मुंडाकर और भगवेवस्त्र धारण करके गृिस्थ-

र्ीवनपररमयागकरकेगृिवविीनदर्ा में िो जाऊं।''''[928] ककन्तुइस पवषय में सवत्रश एक समान पवचार निीं ंपाया जाता तयोंकक, मत्ज्जझमतनकाय के अनुसार, मनुष्य बबना मभक्षुबने भी तनवाणश प्राप्त कर सकता िै। यद्यपप बुद्ध ने कुछेक अस्वास्थ्यकर तपस्या की कक्रयाओं ंको दूपूषत ििराया िै, यि आश्चय शकी बात िै कक बौद्धसंघ के अनुयातययों के मलए जो तनयन्त्रण का पवधान ककया गया िै वि ब्राह्मणों द्वारा रधचत ग्रन्थों में वणणतश तपस्या के पवधान से भी किींअधधक किोर िै। यद्यपप वचन अथवा कल्पना के रूप में तो बुद्ध अवश्य यि स्वीकार करते िैं कक बबना किोर तपस्या के भी मोक्ष प्राप्त ककया जा सकता िै तो भी कक्रयाममक र्दष्ट से उनके अनुसार, लगभग सबके मलए किोर तपस्था आवश्यक िै।

---

927 तुलनाकीत्जएसटेंफ्ांमससकीमभन्न-मभन्न आश्रम-व्यवस्थाओं ंके साथ।

928 तेपवज्जसुतुत, 1/47

पूणतशा के जीवन को प्राप्त करनेके मलए बुद्ध के मर्ष्य त्जस संस्था में सत्म्ममलत िोते िैं ऐसे बौद्धों के भ्रातृमण्डल का नाम संघ िै। यि एक धाममकश संस्था िै त्जसमें कुछ पवर्ेषे व्रत लेने पर और बौद्धधम शको स्वीकार करनेपर िी सदस्यों को प्रपवष्ट ककया जाता िै। बबना ककसी अपवाद के यि सबके मलए खुला िै। प्रारम्भ में तो बुद्ध ने त्स्त्रयों के प्रतत प्रततकूल पवचार प्रकट ककए ककन्तु जब आनन्द ने प्रश्न ककया कक स्त्री की उपत्स्थतत में पुरुष को कैसा आचरण करना चाहिए तो बुद्ध ने उत्तर में कि़ा "उसकी ओर देखने से बचो... यहद देखना आवश्यक िो तो उसके साथ भाषण मत करो; और यहद बोलना भी आवश्यक जान प़ेतो बिुत चौकन्ने रिो।"[929] जब राजा रुद्ुधोधन की पवधवा रानी ने वानप्रस्थाश्रम का जीवन बबताने का तनश्चय ककया, और एवं अन्य पांच सौ राजाओंकी पत्मनयों समेत दीक्षा लेनेबुद्ध के पास आई तो बुद्ध ने तीन बार मना ककया तयोंकक उनकी सम्मतत में उनको प्रपवष्ट करने ेसे संघ में सत्म्ममलत िुए अन्य ककतने िी व्यत्ततयों के मन डावांडोल िो सकतेथे। कफर जब वे ेअपनेघायल पैरों एवं ंधूलधूसररत वस्त्रों के साथ आईं तो आनन्द ने पूछा : "तया बौद्धों का जन्म इस संसार में केवल परुषों के िी लाभ के मलए िुआ िै? तनश्चय िी त्स्त्रयों को भी लाभ पिुंचाने ेके मलए िुआ िै।" इसके पश्चात उर्न्ेंसंघ में प्रपवष्ट कर हदया गया। चूंकक सांसाररक दु्ःख सब पर एक समान असर रखते िैं, इसमलए उनसे छुटकारा पाने का माग शभी जो उसे स्वीकार करना पसन्द करें। इन चारों, एवं उन लोगों को त्जनका प्रवेर् उनके वतमशाना अधधकारी में बाधक मसद्ध िोगा दुराचाररयोंओं,ं ऋणणयों और दासों, तथा त्जनके माता-पपता आज्ञा न दें, एवं ंबच्चों केवल इर्न्ेंिी प्रवेर् से वधचत रखा गया था। संघ मभक्षुओंएवं पररव्राजकों का एक सुसंगहित इर्न्ेंमण्डल िै। ब्राह्मणधमानुशयायी तपत्स्वयों का इस प्रकार का कोई सुसंगहित मण्डल अथवा संघ निीं ंथा। दीक्षक्षत करने ेके इस प्रकार के प्रयमन के कारण, जो जानबूझकर बौद्धों ने अंगीकार ककया था, इस प्रकार का सुव्यवत्स्थत काय शसम्भव िो सका। बीद्धमभक्षु को बचान या दण्ड देनेका अधधकार निीं ंहदया गया िै। उसका काम चममकार-प्रदर्नश करना निीं ंिै और न िी वि परमेश्वर एवं ंमनुष्य के बीच में एक माध्यम का काम करता िै, बत्ल्क वि केवल मनुष्य-समाज का नेता िै। संघ के अन्दर साधारण गिृस्थ एवं साधु दोनों प्रकार के सदस्य सत्म्ममलत िैं। गिृस्थ सदस्यों को मसद्धान्त को मानना िोता िै, जबकक मभक्षुका काम प्रचार करने ेका िै। बौद्धसंघ के तनयमों में ब्राह्मणधम शके पवधानों का िी अनुकरण ककया गया था. यद्यपप प्रचार के प्रयोजन के मलए उर्न्ेंअपनेअनुकूल बना मलया गया था। बुद्ध का अपने मर्ष्य के साथ अथवा एक बौद्ध मभक्षु का अपनेअनुयातययों के साथ ऐसा िी सम्बन्ध था जैसाकक मर्क्षक एवं पवद्याधथयशों के मध्य िोता िै।

जन्मपरक जातत की मान्यता के पवषय में बुद्ध का तया रूख था इस पवषय में बिुत अधधक ममथ्या कल्पनाएं ममलती िैं। वे इस संस्था का पवरोध तो निीं ंकरते, ककन्तु इस पवषय में उपतनषदों के र्दत्ष्टकोण को अपनातेिैं। एक ब्राह्मण, अथवा मनुष्य-समाज का नेता, जन्म के कारण ब्राह्मण इतनेअधधक अंर् में निीं माना जा सकता त्जतना कक अपनेआचरण के कारण। बुद्ध के समय में जातत-पांतत की पद्धतत बिुत अस्त-व्यस्त दर्ा में थी, त्जसमें जन्म के आधार पर िी भेद ककया जाता था, गुणों के कारण निीं। "वि ब्राह्मण त्जसने

929 िपिररतनव्वानसुत्त , 5/23 |

सब पापकमों को मयाग हदया ि◌ै, जो अमभमान से रहित ि◌ै, अऱ्ीच से रहित ि◌ै, आममसंयमी ि◌ै, और ज्ञान का धनी ि◌ै, त्जसनेपपवत्र जीवन के कत्तव्यों को पूरा ककया ि◌ै, केवल ऐसा ि◌ी ब्राह्मण वस्तुतु: न्यायपूवकक्ष अपनेको ब्राह्मण किने ◌ेका अधधकारी ि◌ै। ककन्तु जो क्रोध का मर्कार ि◌ो जाता ि◌ै एवं ◌ंघृणृा का भाव रखता ि◌ै, जो दुरुाममा और दम्भी ि◌ै, और जो अरुुद्ध पवचार रखता ि◌ै एवं ◌ंप्रवचक ि◌ै-ऐसे व्यत्तत का बहिष्कार करना चाहिए, इसी प्रकार त्जसके अन्दर जीवधाररयों के प्रतत करुणा का भाव निीं ◌ंवि भी बहिष्कृत ि◌ोने ◌ेके योग्य ि◌ै।" "न तो जन्म से कोई ब्राह्मण ि◌ै और न जन्म से ि◌ी कोई रूदू्रः अपनेकमों से ि◌ी मनुष्य ब्राह्मण एवं ◌ंरूदू्र ि◌ोता ि◌ै।"[930] पूणतशा प्राप्त करनेकी र्तत सब मनुष्यों में ि◌ोती ि◌ै। बुद्ध स्वयंउस ज्ञान की पूणतशा का एक दृष्टांत ि◌ै त्जस तक कोई भी पुरुष ध्यान एवं आममतनयन्त्रण के द्वारा पिुंच सकता ि◌ै। यि सोचना बेकार ि◌ै कक कुछ मनुष्यों को भूममदासवग शके रूप में और कुत्मसत बनेरिने ◌ेके मलए बनाया गया ि◌ै एवंअन्यों को धमामशमा और ज्ञानवान बने रिने ◌ेका वरदान ममला ि◌ुआ ि◌ै। इसमलए संघ-व्यवस्था में सब जाततयों के व्यत्ततयों को लेनेका पवधान था। कोई भी व्यत्तत बौद्धधम शग्रिण कर सकता था और संघ का सदस्य ि◌ोकर ऊंचे-से-ऊंचा पद प्राप्त कर सकता था। इस प्रकार बुद्ध ने जन्मपरक जातत के भाव का मूलोच्छेदन ककया, त्जसके कारण आगे चलकर अनेक अमानुपषक घटनाएं ि◌ोने ◌ेलगी थीं। ककन्तु ब्राह्मणधम शके मलए भी यि पवचार किीं ◌ंबािर से निीं ◌ंआया था, तयोंकक यि भी संन्यासी के पद को जन्मपरक जातत से ऊपर मानता था। ि◌म यि निीं कि सकतेकक बुद्ध ने जातत-भेद को एकदम उड़ा हदया, तयोंकक बौद्धधम शआमभजामय ि◌ी ि◌ै। यि ऐसी जहटलताओं से भरा ि◌ै त्जन्िें केवल पवद्वान पुरुष ि◌ी समझ सकतेिैं, और बुद्ध के मन में बराबर श्रमण एवं ब्राह्मण ि◌ी रितेथे।◌े उनके प्रथम दीक्षक्षत मर्ष्यों में ब्राह्मण, पुरोहित एवं ◌ंवाराणसी के धनी घरानों के युवक थे। ि◌म यि भी निीं ◌ंकि सकतेकक बुद्ध ने कोई सामात्जक क्रांतत उमपन्न की। तयोंकक यिां ◌ंतक कक ब्राह्मण-पररवार में जन्म लेना भी, बुद्ध के मत में, पुण्य के पुरस्कार का ि◌ी पररणाम ि◌ै।'[931] वे एक धाममकश सुधारक अवश्य थे ◌ेतयोंकक उन्िोंने ◌ेतनधनश एवं तनम्नश्ऱेणी के व्यत्ततयों के मलए भी ईश्वर के राज्जय में स्थान प्राप्त करा हदया। "आज तक भी जो यि पवचार प्रचमलत पाया जाता ि◌ै कक बौद्धमत एवं ◌ंजैनमत सुधारक आन्दोलन थे ◌ेऔर पवर्ेषेकर उतत दोनों मतों ने जन्मपरक जातत के अमयाचार के पवरुद्ध पवद्रोि ककया, पवलकुल भ्रममूलक ि◌ै। इन मतों का पवरोध केवल इस पवषय में था कक केवल ब्राह्मण ि◌ी एकमात्र तपस्वी ि◌ो सकता ि◌ै, ककन्तु जन्मपरक जातत अपनेपूवरूशप में उनके क्षेत्रों से बािर पवद्यमान थी और उसे इन दोनों मतों ने भी मान्यता प्रदान की थी। और इन दोनों सम्प्रदायों के अपनेअन्दर भी यद्यपप किने ◌ेके वास्तेतो वे ◌ेसबके मलए खुले थे ◌ेलेककन प्रारम्भ में प्रवेर् कक्रयाममक रूप में ऊंचे ◌े वषों तक ि◌ी पररममत था। उतत दोनों सम्प्रदायों का व्यविार ब्राह्मणों की पुरोहित-संस्था के प्रतत कैसा रिा इस पवषय में जानने ◌ेके मलए यि बात भी पवर्ेषे ध्यान देनेके योग्य ि◌ै कक धाममकश पवषयों में उनके गृिस्थ अनुयायी और पवषयों में भले ि◌ी उनसे आदेर् ग्रिण करते ि◌ों, ककन्तु जन्म, पववाि एवं मृमृयुआहद के संस्कारों में उन्िें पुराने ◌ेब्राह्मण पुरोहितों का ि◌ी आश्रय लेना पड़ता था।"[932] बुद्ध कोई सामात्जक सुधारक निीं ◌ंथे। उन्िोंने

---

930 देणखए वसलसुतु्तवासेट्सुितु्त,औरधम्मपद, अध्याय 26।

931 देणखए ि◌ाडी : 'मैन्युएल आफ बुद्धधज़्म', पृषृ्ठ 446।

932 िॉिनल : कैल्कटा ररव्यू, 1898, पृषृ्ठ 320।

प्रगाढ़रूप में अनुभव ककया कक दुःख का स्वाथपशरता के साथ गिबन्धन िै और इसमलए उन्ोंने एक नैततक एवं मानमसक अनुर्ासन का उपदेर् हदया त्जससे कक इस आममप्रवंचना का ज़-मूल से उच्छेदन ककया जा सके।

"बुद्ध का पूरा उमसाि दूसूरे लोक के प्रतत था। इस लोक के आधधपमय के मलए कोई उद्दीप्त, उमसाि उनके मन मे निीं ंथा, त्जसकी आवश्यकता एक समाजसुधारक या राष्ट्र के नेता को िो सकती िै। उस प्रकार के उमसाि को बुद्ध ने कभी जाना िी निीं, ं और बबना उस प्रकार के उमसाि के कोई भी अपने-आपको दमलतों का उद्धारकता श तथा अमयाचार करने ेवालों के पवरुद्ध एक वीर रूप में प्रततत्ष्ठत निीं ंकर सकता। राष्ट्र एवं ंसमाज की इस प्रकार के क्षेत्र में कोई धचन्ता न थी। बुद्ध ने उधर ध्यान निींहदया। ऐसे धमामशमा पुरुष का त्जसने मभक्षु का बाना धारण कर संसार को मयाग हदया िै, संसार की धचन्ताओंमें अथवा उसके कायकशलाप में कोई भाग निीं ंिै। जन्मपरक जातत का उसके मलए कोई मित्त्व निीं ंिै, तयोंकक प्रमयेक सांसाररक पवषय उसके मलए अब ककसी प्रयोजन का निींरि गया। ककन्तु ुउसके मन में यि कभी निीं ंआता कक उसे जगत् ्के नार् के मलए अपनेप्रभाव का प्रयोग करना चाहिए, अथवा उन व्यत्ततयों के मलए जो सांसाररक तनयमों में कुछ मर्धथलता लानेका प्रयमन

करता चाहिए।"[933] व्यत्ततयोंपके पवचार के क्षेत्र में उपतनषदों एवं बौद्धधम शदोनों ने िी जन्मपरक पवरुद्ध पवरोध प्रकट ककया। दोनों ने िी गरीब एवं साधारण व्यत्तत के मलए भी ऊंचे-से-ऊंचा आध्यात्ममक पद प्राप्त करनेका माग शखोल हदया, ककन्तु दोनों में से ककसी ने भी वैहदक संस्थाओंएवं ंकक्रयाओं का उच्छेदन निीं ककया, यद्यपप इस पवषय में बौद्धधम शब्राह्मण धम शकी अपेक्षा अधधक सफल रिा। ककन्तु समाज-सुधार की प्रबल भावना उस समय के उत्तम से उत्तम पवचारक के भी मन में कभी निी आई। लोकतन्त्र समाज-सुधार की आधुतनक प्रेरणा िै।

मि पिले कि चुके िैं कक युद्ध ने घरेलू संस्कारों एवं रीतत-ररवाजों में कोई बाधा निीं ंडाली, जो वैहदक तनयमों के अनुसार वैसे िी चलते रिे।'[934] जिां ंतक मसद्धान्त के पवषय में वेदों की प्रामाणणकता का सम्बन्ध िै, युद्ध ने उसे सवथशा अस्वीकार ककया। एक िी श्वास में उन्ोंनेसमस्त सामान्य अथवा गुह्य मसद्धान्तों को, जो प्रचमलत थे,े िुकरा हदया। "िे मर्ष्यो, ऐसी तीन वस्तुएं िैं त्जनका स्पष्टवाहदता से निीं ंगुप्तता से सम्बन्ध िै- त्स्त्रयां, ं पुरोहिताई एवं ंममथ्या मसद्धान्त।"[935] "मनैं ेसमय का प्रचार करनेमें कभी सामान्य एवं दीक्षक्षत व्यत्ततयों के मलए गुह्यागुह्य मसद्धान्तों में कोई भेद निीं ंरखा िै, तयोंकक समय के पवषय में, िे आनन्द, तथागत नेएक ऐसे मर्क्षक के समान जो कुछ न कुछ तछपाकर रखता िै, कभी अपनी मुट्ठी बन्द निीं ंरखी।"[936] बुद्ध स्वयं भी वेदों के तनन्दक थे। उन्ोंने ेवेदों के उस भाग का स्पष्ट रूप में पवरोध ककया जो यज्ञों में पर्ुहिंसा का पवधान करता था। कम से कम गीतगोपवन्द के प्रणेता जयदेव, एवं भत्ततर्तक के त्जसे बुद्धर्तक भी कित िैं- रचतयता रामचन्द्र भारती का यिी मत िै।

---

933 ओल्डनवग श: 'बुद्ध', पृष्ठ 153-154।

934 देणखए भण्डारकर 'ए पीप इनटू द अली हिस्टरी आफ इत्ण्डया' ।

935 अंगुत्तरतनकाय ।

936 मिापररतनब्यानसुत्त ।

15. कम शएवं पुनजन्शम

कम शका पवधान किीं ंबिार से आरोपपत निीं ंककया गया िै बत्ल्क यि िमारी अपनी िी प्रकृतत में काय श करता िै। मानमसक आदतों का तनमाणश, बुराई की ओर बढ़ती िुई प्रवृपृत्त, आवृपृत्त का र्दढ़ िोता जानेवाला प्रभाव जो आममा की सर्तत स्वतन्त्रता की ज़ खोखली करता िै, िम चािे इसे जानें या न जानें ये सब कमपशवधान के अन्तगतश समझे ेजाते िैं। िम अपनेकमों के फल भोगने से वच निीं सकते। भूतकाल वास्तपवक अथों में वतमशान एवं ंभपवष्यत् ्को जन्म देता िै। यि कमपशवधान का िी मसद्धान्त िै जो मानवीय सम्बन्धों में न्याय करता िै। "यि कमों में भेद के कारण िै कक त्जससे सब मनुष्य एक समान निीं ंिैं। ककन्तु कुछ मनुष्य दीघजशीवी िोतेिैं तो कुछ अल्पजीवी, कुछ स्वस्थ िोतेिैं तो कुछ रोगी रिते िैं- आहद-आहद।"[937] इस व्याख्या के पवना मनुष्य अपने-आपको घोर अन्याय का मर्कार िोतेिुए अनुभव करेंगे। दु:ख भोगने वाले की भी यि इस रूप में सिायता करता िै कक वि अनुभव करता िै कक दु:ख भोगने से वि एक पुराना ऋण उतार रिा िै। और सुखी पुरुष को भी यि नम्र बनाता िै तयोंकक यि कफर अच्छे काय शकरेगा, त्जससे कक वि कफर सुखभोग के योग्य िो सके। जब एक पीड़त मर्ष्य बुद्ध के पास अपनेफटे िुए माथेको लेकर और ज़्ख्मों से खून बिाते िुए आया तो बुद्ध ने उससे किा: "इसे ऐसा िी रिने ेदो। िे अिशत्.्..तुम अब अपने कमों के फल को भोग रिे िो, त्जसके मलए अन्यथा तुम्िें पापमोचनस्थान में र्ताब्दियां लग जातीं।" कमपशवधान वैयत्ततक उत्तरदातयमव पर एवं ंभपवष्य जीवन की यथाथतशा पर बल देता िै। यि इस बात को मानता िै कक पाप का फल पापी की सामात्जक त्स्थतत के ऊपर तनभरश करता िै। यहद कोई दुबुलश मनवाला मनुष्य, त्जसका नैततक आचरण भी दुबुलश िै, कोई बुरा काम करता िै तो वि नरक में जाता िै। यहद कोई सज्जजन पुरूप कोई बुरा काम करता िै तो वि इसी जीवन में थोड़ा-सा दु:ख पाकर िी बच सकता िै। "यि इस प्रकार िै कक यहद कोई मनुष्य पानी के एक प्याले में नमक का एक ढेला डाल दे तो पानी नमकीन िो जाएगा और पीने के योग्य न रिेगा। ककन्तु यहद उसी नमक के ढेले को गंगा में डाला जाए तो गंगा का पानी प्रमयक्ष रूप में जरा भी दूपूषत न िोगा।"[938]

कम शका मसद्धान्त बौद्धधम शसे बिुत पुराना िै, यद्यपप इसकी युत्ततयुततता पररणतत के दर्नश में ममलती िै। कारणों एवं ंकायों की एक लम्बी श्रृंखला में मनुष्य केवल अस्थायी कड़यों के समान िै जिनकोई भी की् रे्षे कड़यों से पृथृक् निीं ंिै। ककसी भी व्यत्तत का इततिास उसके इस जन्म से िी प्रारम्भ निीं ंिोता िै बत्ल्क युगों से बन रिा िोता िै।

जब कम शको िी सवोपरर मसद्धान्त यिां ंतक कक देवताओं एवं ंमनुष्यों से भी ऊपर मान मलया जाता िै, तब मनुष्य की चेष्टा एवं ंप्रेरणा का किीं ंस्थान-तनदेर् करना कहिन िो जाता िै। यहद उस सबका जो िो रिा िै या िोगा, तनणायशक कम शिी िै तो यि समझना कहिन िो जाता िै कक मनुष्य जो करता िै उस पर पवचार तयों ककया शजाए। उसे कमपशवधान के अनुकूल काय शकरना िी पड़ेगा इसके अततररतत उसके पास और कोई चारा निीं।

---

937 मममलन्द।देणखएमत्ज्जझम, 3 203, और बुद्धघोप अमयसामलनी, पृष्ठ 88।

938 अंगुत्तरतनकाय, 1/249

 मोक्ष घटनाक्रम के मलए मौन स्वीकृतत देनेका िी दूसूरा नाम िै। पवचारधारा के इततिास में इस प्रकार का भाव बार-बार उिता िै। यूनानी पवद्वानों की सम्मतत में, तनयतत की अपररवतनशरीलता ऐसी िै जो मनुष्य एवं देवताओं से भी ऊंची िै और त्जसमें पुरुषाथ शअथवा प्राथनशा द्वारा कोई पररतवतशन निीं ंलाया जा सकता। विी भयावि भाग्य (देव) कात्ल्वन के धाममकश पवश्वास में भी प्रकट िोता िै एवं ंइस्लामधम शमें यिी ककस्मत किलाता ि।ै ककसी व्यत्तत को भी इस पवषय का पता निीं ंिो सकता, यिां ंतक कक बुद्ध से भी निीं ंपता लग सकता कक उनके भाग्य में पिले से तया िै अथवा यि कक तया उन्िोंने पयाप्शत मात्रा में पुण्यकाय शककया िै त्जससे वे योग्य बन सके। िम स्वीकार करते िैं कक बुद्ध ने कमस्शवातन्त्र्य के पवषय में कोई स्पष्ट उत्तर निीं ंहदया िै, वरन् ्इसे कल्पना का पवषय बनाकर यों िी छोड़ हदया िै। कफर भी उनकी पद्धतत में स्वतन्त्र कम शकी संभावना के मलए गुंजाइर् िै एवं समस्त कमपशवधान के ऊपर पवजय प्राप्त करनेकी भी गुंजाइर् िै।939 अन्यथा उन्िोंने ेत्तत-भर प्रयमन करने एवं ंघृणा और ममथ्याज्ञान के पवरुद्ध संघष शकरनेपर जो बार-बार बल हदया िै उसकी संगतत कमस्शवातन्त्र्य के तनषेध के साथ निीं ंिो सकती। उनकी योजनाओं में पश्चात्ताप या प्रायत्श्चत, अथात्श ्संवेग का स्थान िै। तनम्नमलणखत सुझाव िमें इस योग्य बना सकते िैं कक िम कमस्शवातन्त्र्य एवंकमपशवधान का परस्पर समन्वय कर सकें। तनत्श्चत पररणाम के समथनश में आधुतनक पवचारधारा में भी मुख्य तकश कारणकायभशाव से िी आता िै। बौद्धधम शके अनुसार, कम शएक यात्न्त्रक मसद्धान्त निींि विरन् ्स्वरूप में ऐत्न्द्रय िै। आममा बढ़ती िै और पवस्तृत िोती िै। यिां ंआममा निीं ंिै अपपतु एक पवकमसत िोती िुई चेतना िै, जो अवस्थाओं की श्रृंखला में पवस्तृत िो जा सकती िै। यद्यपप वतमशानकाल का तनणयश भूतकाल से िोता िै, भपवष्य कफर भी िमारे आगे चुनाव के क्षेत्र के रूप में खुला िै त्जसे िम स्वेच्छा की प्रेरणा के ऊपर तनभरश कर सकतिैं। और भूतकाल द्वारा वतमशान का तनणयश भी केवल यात्न्त्रक के ऊपर तनभरश िम बतलाता िै कक भूतकाल और वतमशान के मध्य तारतम्य िै और यि कक वतमशानकाल भूतकाल के साथ अनुकूलता रखता िै। इसका अथ शयि निीं ंकक वतमशानकाल भूतकाल की िी सम्भव उपज िै। "िे पुरोहितों। यहद कोई किता िै कक मनुष्य को अपनेकमों का फल अवश्य िी भोगना पड़ेगा तब ऐसी अवस्था में कोई धाममकश जीवन निीं ंरि सकता, और न िी कोई अवसर दु्:ख के सवथशा पवनार् के मलए उपत्स्थत िो सकता िै। ककन्तु िे पुरोहितों। यहद कोई मनुष्य ऐसा किता िै कक मनुष्य को अपनेकमों के अनुकूल िी पुरस्कार ममलता िै तो उस अवस्था में धाममकश जीवन की सम्भावना िै और दु्:ख के सवयशा पवनार् का भी अवसर प्राप्त िो सकता िै।'[940] कमपशवधान की यात्न्त्रक ममथ्या व्याख्या का नीततर्ास्त्र एवं धम शके साथ पवरोध िै, यथाथ शव्याख्या का निीं।

इस समस्या में सारी कहिनाई बुद्ध के र्दत्ष्टकोण के मनोपवज्ञानयुतत और तकशसम्मत िोने ेके कारण िै। आममा का पवश्लेषण करके उसे गुणों, प्रवृपृत्तयों एवं धचत्तवृपृत्तयों का पुंजं बनाना मनोपवज्ञान के मलए बबलकुल युत्ततयुतत िो सकता िै, त्जसका उद्देश्य भी पररममत िो। मनोपवज्ञान के आगे, जो मानमसक अनुभवों के उद्भव एवं वृद्धधि के कारण का पता लगाकर उनके मध्य कारणकायसशम्बन्ध की स्थापना करता िै, एक तनयतत का पवचार हटक सकता िै। ककन्तु विींतनयतत-सम्बन्धी पवचार आममा की सत्म्मलन रूपी रचना की िीकि–ीक

---

939 देणखएमममलन्द् 4/839-41 ।

940 अंगुत्तरतनकाय, 3: 99।

व्याख्या कभी निीं ंकर सकता। यहद िम पवषयीतनष्अिवयव पर बल न दें त्जस मसद्धान्त के कारण की मानमसक तथ्य िो सकते िैं तो िमारी आममा के स्वरूप की व्याख्या ममथ्या िोगी। जब िम आममा को उसके तत्त्वों से पृथक् कर देते िैं तो यि केवल ताककशक दृत्ष्ट से एक अमूतभशावाममक पदाथ शरि जाता िै जो िमारी कक्रयाओं ंका तनणायशक निीं ंिो सकता। िमारी सम्पूण शआममा ककसी भी क्षण में िमारी कक्रया की प्रमाता (पवषयी) िैऔर इसमें अपनेभूतकाल को अततक्रमण करने ेकी योग्यता िै। तत्त्वपविीन आममा एक तनगुणश एवं ंऊसर भूमम की भांतत िै, तयोंकक ये तत्त्व िी तो िैं जो आममा के सिारे के बबना तनयतत को पूणतशा प्रदान करते िैं, चूंकक संति या राशिीभूत आममस्वातन्त्र्य एक तथ्य िै। यि कथन कक बबना कारण के कुछ निींिोता, इस मत के साथ कक आममा की वतमशान अवस्था का कारण बन सकती िै, असंगत निींिै। बौद्धधम शका पवरोध केवल अतनयततवाद के इस अवैज्ञातनक मत के साथ िै जो यि किता िै कक मनुष्य के काय शउसके उद्देश्यों से िी संचामलत निीं ंिोते और त्जसके अनुसार स्वतन्त्र इच्छार्त्तत एक ऐसी अपररममत र्त्तत िै जो ककसी न ककसी प्रकार से मन के सुव्यवत्स्थत काय-शसम्पादन में बाधा देती िै। इस संसार में यात्न्त्रक पवधान से भी ऊपर कुछ िै, यद्यपप व्यत्ततगत पवचारों एवं ंइच्छाओंका एक सम्पूण शप्राकृततक इततिास भी िै। इस प्राकृततक प्रकक्रया की व्यवस्था एवं आत्ममक वृद्धध को कम शस्वीकार करता िै। पुरुषाथ शके उत्तरदातयमव को दूरू करने ेअथवा पुरुषाथ शको अयथाथ श ठिरानेका अमभप्राय: निीं ंिै, तयोंकक बबना पुरुषाथ शके कोई बड़ा काम सम्पन्न निींिो सकता।

यि बताया गया िै कक उच्चतम अवस्था प्राप्त कर लेने पर कफर कम शका कोई असर निीं ंरिता। भूतकाल के सब कम शअपनेफलों समेत सदा के मलए पवलुप्त िो जाते िैं। मोक्ष की अवस्था भले एवं ंबुरे दोनों से परे िै। प्राय: यि किा जाता िै कक नैततकता या सदाचार का सवातशतरिायी मित्त्व कुछ निींरि जाता, तयोंकक परम आनन्द की प्रात्प्त में नैततक कम शबाधक िो सकतेिैं, कारण कक उनका पुरस्कार भी अतनवायरूशप में ममलना तनत्श्चत िै, और इस प्रकार उन्िीं ंके कारण जीवन का चक्र बराबर बना रिेगा। इसमलए इस जीवन से छुटकारा पाने के मलए पुण्य एवं ंपाप दोनों िी प्रकार के कमों से दूरू रिना िोगा। समस्त नैततक आचरण अत्न्तम लक्ष्य के मलए तैयारी िै। अब आदर् शप्राप्त िो गया तो संघष शभी समाप्त िो जाता िै। कफर भपवष्य जीवन में ककसी काय श का फल ममलनेको निीं ंिै। यि उपतनषद् का मसद्धान्त िै कक मुततामममा पुरुष जो भी काय शकरता िै वि अनासत्तत के भाव सेकरता िै। सब प्रकार के कम शअपना फल निींदेते, वरन् ्ऐसे िी कमों का फल ममलता िै जो स्वाथपशरक इच्छा को लेकर ककए जाते िैं। इसमलए मोक्ष की उच्चतम दशा नैततक तनयमों एवं कमपशवधान के कायक्षेशत्र से भी परे िै। कफर भी नैततकता या सदाचार का एक प्रकार का ऐत्न्द्रय सम्बन्ध अत्न्तम लक्ष्य के साथ िै।

घूणमशान चक्र उन जीवनों की श्रृंखला का प्रतीक िै त्जनका तनणयश कमों के मसद्धान्त के आधार पर िोता िै। पुराने ेजीवन का पवलय िी नये जीवन का तनमाणश िै। मृमृयु केवल ज्जवालाओं में पल रि जन्म का एक रूप िै, इसके अततररतत और कुछ निीं। जीवन-भर पररवतनश िोतेरितेिैं। जन्म एवं ंमृमृयुमौमलक पररवतनश िैं, त्जन्िें िमने नाम दे हदया िै। जब उन कायों का पुंज त्जनका फल इस जन्म में ममलने को िै, समाप्त िो जाता िै तो मृमृयु आती िै। जीवन का चक्र िमारे सम्मुख नये अवसर उपत्स्थत करता िै, त्जनमें यहद िम चािें तो अपने

भाग्य को उन्नत कर सकतिैं। इस जीवन के चक्र में केवल मनुष्य िी निीं ंअपपतु ुसमस्त जीपवत प्राणी सत्ममलत िैं जो तनरन्तर ऊंचेचढ़ते एवं ंनीचेधगरतेररितैं।

ब्राह्मण या पौराणणक धम शकी कल्पना का अनुसरण करते िुए बुद्ध दुराममा व्यत्ततयों के मलए नरक एवं अन्य अपूण शव्यत्ततयों के पुनजन्शम की व्यवस्था करते िैं। स्वग शकी कल्पना को उन्िोंने ेस्वीकार ककया िै। "मृमृयु के पश्चात्, ् रीर के पवलय िो जानेपर सुकृत आचरण वाले व्यत्तत का जन्म स्वग शमें ककसी सुखी अवस्था में िोता िै।"[941] ककसी-ककसी स्थान पर ऐसा भी िोता िै कक पुनजन्शम िोने ेसे पूव शस्वग शएवं नरक में कुछ-कुछ अस्थायी रूप में रिना िोता िै। आहदबौद्धधम शने जातकों के द्वारा पुनजन्शम के भावों को प्रचाररत ककया त्जनमें वणनश ककया गया कक ककस प्रकार पूवजशन्मों में बुद्ध ने आमममयाग के अनेक कमों द्वारा अपने-आपको पाप के साथ संघष शकरते िुए, बोधधवृक्ष के नीचे, अत्न्तम पवजय के मलए सन्नद्ध ककया था। यि किा जाता िै कक यहद िम अलौककक त्तयों का पवकास कर सकें तो िम भी अपने प्रमयेक पूवजशन्मों की अनन्त श्रृंखला का साक्षामकार कर सकतिैं।

बौद्धधम शमें आममा के दिेान्तरगमन का कोई स्थान निीं िै और न िी एक जीवन से दूसूरे जीवन में जानेका कोई पवधान िै। जब मनुष्य मर जाता िै तब उसका भौततक रीर, जो उसके भौततक जीवन का आधार िै, तिछन्न-मभन्न िोकर पवलय को प्राप्त िो जाता िै एवं उसका भौततक जीवन समाप्त िो जाता िै। नए जीवन में आने ेवाला व्यत्तत वि निीं ंिै जो मर गया था ककन्तु दूसूरा िी िै, तयोंकक आममा तो िै निीं ंजो दूसूरे रीर में प्रवेर् करे। यि केवल चररत्र िी िै जो बराबर रिता िै।942 मृमृयुकी घटना द्वारा जो दो जन्मों में पृथृकता आती िै उनके मध्य में कम शकी तनरन्तरता ककस पवर्ेष पवधध के द्वारा त्स्थर रिती िै, इस पवषय का कोई भी समाधान बौद्धधम शमें निीं ंककया गया। बौद्धधम शकेवल इसे मान लेता िै कक कम शकी तनरन्तरता रिती िै। िमें बताया जाता िै कक पूवाानुशपर जीवन प्राकृतत कारणकायभशाव की श्रृंखला सेजुा रिता िै। र्ेष बचा िुआ कमस्शवरूप एक नये व्यत्ततमव का तनमाणश करता श्रृंखला अपनेआप ऐसे जीवन की अवस्था की ओर आकपषतश िो जाता िै कक त्जसके वि योग्य िै। यि भी किा जाता िै कक कम शके सामथ्य शके कारण मरते िुए मनुष्य की चेतना एक ऐसी श्रृंखला को उमपन्न करती िै अथवा प्रारंभ करती िै त्जसके साथ एक सूक्ष्म रीर भी सम्पूतत रिता िै, त्जसका अत्न्तम भाग ककसी न ककसी गभार्शय में जाकर अपना स्थान बना लेता िै।'[943] इस पवषय का कक उसे ककसके गभ शमें जाना िै, अवयव साधारणतः वि अन्त समय का पवचार रिता िै जोकक मरते िुए व्यत्तत के नैततक एवं बौद्धधक जीवन का सारतत्त्व िोता िै। यि वि त्तत िै जो मरनेके समय नया जन्म ग्रिण करने ेकी इच्छा िै। केवल यि कम शअथवा कमों से उमपन्न िोने ेवाली त्तत िी आवश्यक निींअपपतु उपादान का िोना भी आवश्यक िै, त्जसका आर्य जीवन में मलप्त रिना िै। चूंकक जीवन एक प्रकार की सत्ममधश्रत सत्ता िै, इसमलए पृथृक् पृथृक् अवयव यहद एक साथ सत्ममधश्रत न िों तो जीवन न बन सकेगा। एक कायकशारी त्तत का रिना भी

---

941 मिापररतनव्वान,1/24 ।

942 देणखए अमभधमकशोष, 3/24 |

943 देणखए पूसीं–'द वे टु तनवाणश', पृष्ठ-84 ।

आवश्यक ि जो मभन्न-मभन्न अवयवों को कफर से एकसाथ एकत्र कर सके। इसी आकषणश-र्त्तत के दवाब से, त्जसे उपादान किा जाता ि, एक नया सत्म्मश्रण तैयार िोता ि। बबना इसके कम शभी कुछ नर्ीिकर सकता। कम श एक सूचना देने वाला तत्त्व ि, जो अपनेमलए उधचत सामग्री की प्रतीक्षा करता रिता ि।

"तयोंकक जब ककसी जीवन में कोई व्यत्तत मृमृयुके आधार पर पिुंचता ि, चािे प्राकृततक घटनाक्रम से िो चािे हिंसा द्वारा िो; और जब असह्य एवंमरणान्तक पीड़ाओं के एकत्र समुदाय के कारण र्रीर के सब ब़ े व छोटे सदस्य मर्धथल प़कर एवं ंजोड़ों एवं ंस्नायुजल में मुक़र अलग िोने ेलगते िैं; और यि र्रीर धूप में प़ े ताड़पत्र के समान र्नै:- र्नै: सूखने ेलगता ि; और आंख आहद अन्य सब इत्न्द्रयांभी काम करना बन्द कर देती िैं; और संवेदनर्त्तत ककंवा सोचनेकी र्त्तत और जैवर्त्तत सब अपनेअत्न्तम आश्रयस्थान हृदय के अन्दर आ जाती िैं-तब उस अत्न्तम र्रणाश्रय अथात्श ्हृदय में तनवास करनेवाली चेतना, त्जसे क्षमता भी किा सकते िैं, कम शके बल से पवद्यमान रिती ि। यि कम शउस वस्तु ुको त्जसके ऊपर यि तनभरश करता ि, अपने ेअन्दर समवेत एवं त्स्थर रखता ि, और इससे पूव शके वे ेकम शभी सत्म्ममलत रिते िैं जो अधधक मित्त्व के िैं, और बार-बार अभ्यास में आए िोंगे तथा इस समय अधधक सत्न्नकट िैं, अथवा यिी कम शअपना अथवा नवीन जीवन की आकृतत का पूवाभशास देता िोगा त्जसमें अभी जाना ि, और इसी पवषय को लक्ष्य में रखनेके कारण चेतना अपना अत्स्तमव त्स्थर रखती ि।

"चूंकक चेतना अभी भी पवद्यमान ि यिां ंतक कक इच्छा एवं अज्ञान अभी भी दूर निीं ंिुए और उद्देश्य का अर्ुभु भाग अभी भी अज्ञान के कारण तछपा िुआ ि, इच्छा के द्वारा चेतना का झुकाव जीवन रूपी लक्ष्य की ओर करा हदया जाता ि; और कम शजो चेतना के साथ-साथ िी आ गया, इसे उतत उद्देश्य की ओर अग्रसर करता ि। यि चेतना उस श्रृंखला के अन्दर रितेिुए त्जसका झुकाव इच्छा के कारण उतत उद्देश्य की ओर ि और त्जसे कम शने इसकी ओर अग्रसर ककया ि, एक खाई के ऊंचे ेककनारे पर के वृकूष से लटकती रस्सी के सिारे झूलने वाले मनुष्य के समान अपनेपिले पवहित स्थान को छोड़ती ि और र्दश्यमान पदार्थों के ऊपर तनभरश करती िुई अपनी त्स्थतत को संभाले रिती ि एवं ंकम शद्वारा तनममतश अन्य ककसी पवहित स्थान पर प्रकामर्त िोती भी ि और निींभी िोती। यिां ंपर चूंकक पिली साना अब निींरिी, इसमलए किा जाता ि कक अमुक मनुष्य अब इस संसार में निीं ंरिा और परवतींचेतना चूंकक नये जीवन में कफर से उमपन्न िोती ि इसमलए उसे िम पुनजन्शम करने ेलगतेिैं। ककन्तु यि समझ लेना चाहिए कक यि परवतींचेतना नये जीवन में पूवूचशतना म ेंनिीं ंआई, और यि कक यि केवल पूवजशन्म में वतमशान कारण से िी अथाह्य ्कम शअथवा समता एवं ंझुकाव (नया जन्म लेनेकी प्रवृपृत्त) से िी वतमशान जीवन में प्रकट िुई ि। 944

---

944 बुद्धघोप का पवसुद्धधमग्ण, अध्याय 17; देणखए वारेन 'बुद्धधज्जम इन रांसलेन्र्स', पृषृ 238-239। मध्यकाल के बौद्धधम शके मनोपवज्ञान ने पुनजन्शम अथवा गभधशारण, या पततसधध, की व्याख्या का जो प्रयास ककया ि उसके उदािरक के मलए िम पािकों से किेंगे कक वे श्री ऑग के अनुरुद्धकृत अमभधम्ममथसंग्रि के अनुवाद और पवर्ेषकर उसके प्रस्तावनारूप तनबन्ध को देखें।

जीवन की मभन्न-मभन्न योतनयों का वणनश ककया गया िै, अथात्श ्एक ओर पर्ु,ु पे्रेतामममा एवं ं मनुष्ययोतन और दूसूरी ओर देवता तथा नरक के प्राणी अथवा दानव।945 दूसूरे पवभाग की योतनयां ंआभास या छाया मात्र िैं, और उनकी जन्मपवषयक चेतना िी असंगहित प्रकृतत के अन्दर से अपनेर्रीर का तनमाणश कर सकती िै। पर्ु, पे्रेताममा और मनुष्य की योतनयों के मलए जीवनधारण-सम्बन्धी चेतना के मलए पवर्ेषे भौततक अवस्थाओं का पवद्यमान रिना आवश्यक िै और यहद मृमृयुके क्षण में वे अवस्थाएं उमपन्न न िो सकीं तव मृमृयुसमय की चेतना नये जन्म की चेतना के रूप में तुरन्त आगे निीं ंचल सकती। ऐसे व्यत्तत के मलए गन्धवयशोतन में एक अल्पकामलक मध्यवती जन्म में िोने ेका पवधान बनाया गया िै। यि गन्धव शएक दिेपविीन आममा के समान यथासम्भव र्ीघ्र िी गभाधशान-सम्बन्धी घटकों की सियता से उपयुतत भ्रूण का तनमाणश कर देता िै।

तनरन्तरता का कारण-काय-शसम्बन्धी समाधान िी पुनजन्शम का भी समाधान कर देता िै। त्जस व्यत्तत ने नया जन्म धारण ककया िै वि मृत मनुष्य के कम शका उत्तराधधकारी िै, ककन्तु तो भी िै वि एक नया प्राणी। स्थायी साम्यता न रिने ेपर भी अभावाममक पवच्छेद भी तो निीं। नया प्राणी वि िै जो उसे उसके कमों ने बनाया िै। कम शके अनुजीवन के इस मसद्धान्त की चचाशउपतनषद् में भी बृिदारण्यक उपतनषद् में आतभशाग और याज्ञवल्तय के मध्य िुए संवाद में आती िै।

बौद्धधम शकी मुख्य प्रवृपृत्त तो कम शको अनुजीवी घटक बतानेकी िै ककन्तुऐसे संकेत भी ममलतेिैं त्जनसे प्रकट िोता िै कक पवज्ञान का भी यिी काय शबताया गया िै, अथाशत् ्पवज्ञान के कारण पुनजन्शम िोता िै। "िम आज जो कुछ भी िैं, अपनेपवचारों के पररणामस्वरूप िैं।" पवज्ञान को वास्तपवक अथों में "िमारी आममा का सारतत्त्व बताया गया िै।"[946] यि कथन केवल यि बतानेके मलए िै कक पवज्ञान और कम शमें ककतना घतनष्ि सम्बन्ध िै और इसी प्रकार पवचार और इच्छार्त्तत में भी। व्यत्ततमय के पवनार् के साथ-साथ दु:ख समाप्त िो जाता िै। कम शके िी कारण जीवन की प्रकक्रया तनरन्तर चलती रिती िै। इसमलए जब कम शपूणतशया अपनेफल दे चुकता िै तो जीवन का भी अन्त िो जाता िै।

16. तनवाशण

"अब िम दुखु के ममधारणरूप आयसशमय का प्रततपादन करेंगे। यथाथ शमें यि मृमृयिी िै तयोंकक इस अवस्था में कोई वासना र्ेषे निीं ंरिती, यि एक उमकट अमभसीधा रुपी तृष्णा का मयाग िै-उससे पवरहित िो जाना एवं उससे मुत्तत पा जाना, तभी इसके आगे उस पास न फटकने देनेका िी नाम तनवाणि।" बुद्ध ने कभी तनवाणश्वास्तपवक स्वरूप के सम्बन्ध हदया। उन्िोंने ेअनुभव ककया कक में ककसी प्रद्या मानन्द अथवा ईर्कृपा

---

945 देणखएऔंगं एवं र्ीडेपेवड्स कम्पेडडयमआफ कफलासफी', पृष्ि137-139।

946 यि जानने योग्य पवषय िै कक ह्यूम के मत में भी वैयत्ततक समता केवल परस्पर सम्बद्ध पवचारों की श्रृंखला के साथ पवचारधारा की धीर एवं ंअबाधधत प्रगतत से िी उमपन्न िोती िै।

के रिस्यों का उद्‌डघाटन' ने िीकर मनुष्यों को उसका का उद्देर्‌अनुभव कराना िी था। उनके सम्मुख सबसे मुख्य पवषय, त्जसके अन्दर सब कुछ आ साक्षात अनखमय जीवन की समस्या को िल करना था। 'तनवाशण' र्ब्द का अथ शिी बुझ जाना अथवा िंडा िोना। वुझ जानेसे पवलोप िो जानेका संकेत िै। िंडा िो जानेका तामपय शिी संबंधा रूनूयभाव निीं बत्ल्क केवल ऊष्णतामय बासना का नष्ट िो जाना। "मन का मुतत िो जाना ऐसा िी िै जैसाकक एक ज्जयाला का बुझ जाना।"[947] तनवाणश से उपलक्षक्षत जीवन के इन पवधधतनषेधाममक, एक िी परम या तनरपेक्ष अवस्था के दो मभन्न-मभन्न पक्षों को केवल समझा जा सकता िै, ककन्तु पवचारधारा की पररभाषा में इसकी सिी-

सिी पररभाषा निीं दी जा सकती। िर िालत में बौद्धधम शके अनुसार, तनवाणश का स्वरूप ईश्वर की कृपा से उसका सिचय शनिीं िै तयोंकक उसका तामपय शिोगा कक जीपवत रिनेकी इच्छा बराबर बनी रि। अनेक वातयों से यिी ध्वतनत िोता िै कक बुद्ध का आर्य केवल ममथ्या इच्छा का पवनार्‌ करना था, जीवनमात्र का पवनार्‌ करने से निीं था। कामवासना, घृणा एवं अज्ञान के नार्‌ का नाम िी तनवाणशिै। तनवाणश के केवल इन्िीं अथों में िम पतीस वष शकी अवस्था में बुद्ध की बोधध या समयज्ञान की प्रात्प्त का आर्य भली प्रकार समझ सकते िैं, तयोंकक उन्िोंने अपने जीवन के र्ेष पतीलीस वष शकक्रयाममक रूप से प्रचार करने एवं प्राणणमात्र का उपकार करने में व्यतीत ककए। किीं–किीं दो प्रकार के तनवाणशों में भेद ककया गया िै: (1) उपाधध- र्ेष, त्जसमें मनुष्य की केवल वासनाएं िी लुप्त िोती िैं, और (2) अनुपाधधर्ेष, त्जसमें पूरा अत्स्तमव पवलुप्त िो जाता िै। धचल्डस शके अनुसार, पिले प्रकार का तनवाणश पूणतशा प्राप्त सन्तपुरुष को उपलक्षक्षत करता िै त्जसमें कक पांचों स्कन्ध अब भी उपत्स्थत िैं, यद्यपप वि इच्छार्त्त जो िमें जन्मधारण करने की ओर आकृष्ट करती िै, लुप्त िो जाती िै। दूसूरे प्रकार के तनवाणश में सन्तपुरुष की ममृयु के पश्चात्‌ एवं ममृयु के पररणामस्वरूप समस्त अत्स्तमव का िी लोप िो जाता िै। ऐसा प्रतीत िोता िै कक यिांउन दो प्रकार के मुततामम पुरुषों के भेद को दर्ायशा गया िै त्जनमें से एक जीवन्मुतत िैं अथात्श मुतत िोतेिुए भी जीवन धारण करते िैं, एवं दूसूरे वे िैं त्जनका सांसाररक जीवन समाप्त िो गया िै। जब कभी यि किा जाता िै कक मनुष्य को इसी जन्म में तनवाणश की प्रात्प्त िो सकती िै उससे तामपय शउपाधधर्ेष तनवाणश से िी िोता िै। अिेत्त्व का नाम िी पररतनवाणश िै तयोंकक अिेत्‌ इस क्षणभंगुर संसार से ततरोधान िो जाता िै। उपाधधर्ेष एवं अनुपाधधर्ेष का भेद इस प्रकार तनवाणश एवं पररतनवाणश के बीच में जो भेद िै, उसके अनुकूल िै, त्जसका तामपय शनार्‌ िोना एवं तनतान्तस्वरूप में नष्ट िो जाना िै।'[948] इस प्रश्न पर र्ब्द 'र्ब्द का भी कोई सुतनत्श्चत अथ शव्यविार के मलए निीं हदया जा सकता।949 यिां तक कक 'पररतनवाणश आर्य तनतान्डत अभाव निीं मलया जा सकता। इससे तामपय शकेवल अत्स्तमव की तनतान्त पुणतशा से िै। "मिामम बुद्ध ने अत्न्तम मोक्ष का आर्य यि बताया िै कक यि चेतना तनदोष अवस्थडाओं के प्रवाि के अततररतत और कुछ निीं िै।"[950] ककसी भी प्रकार के दबाव एवं संघष शसे मुतत यि एक प्रकार का मानमसक पवश्राम िै।

---

947 दीघतनकाय, 2: 15, देणखए मत्ज्जझम 72 भी, जिांबुद्ध तनवाणश की तुलना उस बुझती िुई अत्ग्नज्जयाला से करतेिैं त्जसके सामने न तो कोई सूखी घास और न कोई काष्ि िी जलाने के मलए र्ेष रि गया िै। श्वेताश्वतर उपतनषद्‌ (4 : 19) में परमामम को ऐसी अत्ग्न किा गया िै त्जसका ईधन तन:र्ेष िो गया िै।- देणखए नृमृसंिोत्तरतापनीय उपतनषद्‌, 2।

948 मममलंद, 2/2.4 I

949 देणखए ओल्डनबग श: 'एतसकससश ऑन तनवाणश', 3।

950 सवमशसद्धान्तसारसंग्रि, 2: 4, 21।

दुवुासशनापरक प्रवृत्तयों के दमन के साथ-साथ तुरंत आध्यात्ममक उन्नतत भी िोने ेलगती ि ै। तनवाणश जो आध्यात्ममक संघष शकी समात्प्त एवं ंमसद्धध ि ै, एक तनत्श्चत परमानन्द की अवस्था ि ै। यि पूणतशाप्रात्प्त का लक्ष्य ि ै एवं रूनूयता का अगाध गन शर्नीं ंि ै। अपनेअन्दर के समस्त व्यत्ततमवभाव को पवनष्ट कर देनेसे िी मि सम्पूण शपवश्व के साथ संयुतत िो सकर्तें एवं उस मिान प्रयोजन के आन्तररक अंग बन सकर्तें। उस अवस्था में पूणतशा का अथ शिोता ि ै उन समस्त पदाथों के साथ एक िोना जो ि ैं, या कभी रि ि ैं, या रिंगे। सत् ् पदाथों के क्षक्षततज का पवस्तार उस अवस्था में यथाथ शपरमसत्ता तक िो जाता ि ै। यि एक ऐसा जीवन ि ै जो अिभाव से पिीन एक अनन्त जीवन ि ै, जो "पवश्वास, र्ात्न्त, प्रर्ात्न्त, परम आनन्द, सुख, मृदुतुता, पपवत्रता एवं प्रमयग्रता (ताप़ेन) से पररपूण शि।"[951] मममलन्द में ऐसे स्थल आते ि ैं त्जनमें इस पवषय का संकेत ककया गया ि ै कक पररतनवाशण के पश्चात् ्बुद्ध के जीवन का अन्त िो गया था। "मिाभाग इस प्रकार के अन्त को प्राप्त िुए त्जस प्रकार के अन्त में अन्य व्यत्ततमव को प्राप्त करने ेका मूलमात्र र्ेष निीं ंरिता। मिाभाग का अन्त िो चुका ि ै और इसमलए उनके पवषय में यि निीं ंकिा जा सकता कक वे यिाँ या विाँ। ककन्तु मसद्धान्त रूपी र्रीर के रूप में उनका तनदेर् अब भी अवश्य ककया जा सकता ि ै।"[952] िम बुद्ध की तो पूजा निीं ंकर सकतेतयोंकक वे अब इस संसार में निीं ंि ैं और इसीमलए िम उनके पपवत्र अवर्ेषों और मसद्धान्तों की िी पूजा कर सकर्तें।953

नागसेन ने तनवाणश के पवचार को अभावाममक अथवा सब प्रकार की चेष्टा से पवरहित (धचत्तवृपृत्ततनरोध) एवं सब प्रकार के भाव (भावतनरोध) के रूप में िी वणनश ककया ि ै। तो भी िमें ऐसा प्रतीत िोता ि ै कक कततपय प्राचीन बौद्धों की र्दत्ष्ट में तनवाणश का अथ शि समय की पूणतशा, अनन्त परसुख (कैवल्य) अथात्श ्सांसाररक सुखों एवं ं दुःखों से बिुत ऊंचेपद का परम आनन्द। "ि े वच्छ, तथागत जब इस प्रकार से भौततकता की कोहट से मुतत िो जाता ि ै तो बिुत गम्भीर, अपररमेय, एवं अगाध समुद्र के समान िो जाता ि ै।" मभक्षुणी खेमा कोसल के पसेनदी को पवश्वास हदलाती ि ै कक मृमृयु ने तथागत को पांचों स्कन्धों के आनुभपवक जीवन से मुतत कर हदया। साररपुत्त यमक को इस प्रकार का धमद्रिोिी पवचार प्रकट करने ेके मलए बुराभला किता ि ै कक त्जस मभक्षुके अन्दर से पाप तनकल गया ि ै वि मर भी सकता ि ै। मैतसमूलर एवं ंधचल्डस शतनवाशण-पवषयक त्जतने ेभी स्थल ि ैं उनका पवधधपूवकश अनुसंधान करने के पश्चात् ्इस पररणाम पर पिुंचर्तें कक "एक भी स्थल ऐसा निीं ंपाया जाता [illegible]

इसमलए यि स्पष्ट ि ै कक व्यत्ततमय अथवा एवं यथाथ शसद् का भाव कफर भी रिता ि ै। जैसे इन्द्रधनुष तथ्य या घटना िोता ि ै को सत्ममश्रण ि ै, इसी प्रकार व्यत्ततमव भी सत् ्एवं ंअसत् ्का ममश्रण ि ै। धगरती िुई वैषा शबूंद 'रूप'

ि ै एवंप्रकार् की पंत्तत 'नाम' ि ै, और उनके परस्पर एक-दूसूरे को कार से उमपन्न पदाथ शका नाम 'भाव' या इन्द्रधनुष ि ै जो भासमात्र व भ्रांतत ि ै। ककन्तु उसका आचार कुछ यथाथसशत्ता अवश्य ि ै और यि तनमय ि ै। "संसार मेरे ऊपर तनभरश करता ि ै तयोंकक म ैंजाननेवाला िंूू और उसका ज्ञान प्राप्त करता िंूू, इस प्रकार वि मुझसे पृथृक ि ै। केवल रूप या आकृतत का िी ज्ञान िो सकता ि ै, उसका निीं ंत्जसके ऊपर यि आधाररत ि ै। कफर ककसके

951 मममलन्द, 2: 2, 9; 3: 4, 6; 2: 1,6।

952 मममलन्द, 3: 5, 10। इससेउस पवचार स्मरण िोता ि ै जो जाज शइमलयट के 'तवायर इनपवत्जबल', अथवा मेटरमलंक के 'ब्ल्यू बड'श में भावी सन्ततत की स्तुतत में आता ि ै।

953 4/1 देणखए संयुत्त, 1, भी।

ज्ञान के द्वारा संसार का मयाग ककया जाए-अथात्श ्केवल उसके रूप का िी। आकृतत के रूप में िी यि उमपन्न िोता िै और नष्ट िो जाता िै, तया यि सत् ्िै, और सत् ्का अन्त िोना आवश्यक िै। वि त्जसके ऊपर रूप का आधार िै विी मूलभूत सत् ्िै, तथा वि कभी भी और किीं ंभी असत् ्में पररवतततश निीं ंिो सकता; और जो तनमय िै उसका कभी भी और किीं भी अन्त निीं िो सकता।"[954] तनवाणश आममा की तनमय अवस्था िै, तयोंकक वि संस्कार निीं,ि और न िी ऐसी वस्तुओंके एकत्रीकरण से बना िै जो अस्थायी िै। यि तनरन्तर रिता िै, केवल इसकी अमभव्यत्ततयों में पररवतनश िोता िै। यिी वि िै जो स्कन्धों की पृष्ठभूमम में पवद्यमान िै जबकक स्कन्ध जन्म एवंक्षीणता के अधीन िै। पररणतत की भ्रांतत का आधार तनवाणश की यथाथसशत्ता िै। बुद्ध इसकी पररभाषा करने ्की चेष्टा निीं ंकरते, तयोंकक यि सबका मौमलक तत्त्व िै, और इसीमलए अवणनशीय िै। यि किा जाता िै कक तनवांण की अवस्था में, त्जसकी तुलना प्रगाढ़ तनद्रा के साथ की जाती िै, आममा अपनेव्यत्ततमव को खो बैिती िै एवं प्रमेयरूपी सम्पूण शपवश्व में पवलीन िो जाती िै। बाद के मिायानग्रंथों में त्जस मत पर पवर्ेष बल हदया गया िै वि यि िै कक जो कुछ िै वि भवांग िै अथात्श ्सत्−्रूप का प्रवाि िै। अज्ञान की वायु इसके ऊपर से बिती िै और इसके प्रवाि को चंचल बना देती िै और इस प्रकार से इस जीवन रूपी समुद्र में कम्पन उमपन्न करती िै। प्रसुप्त आममा जागररत िो उिती िै, और इसका प्रर्ान्त अबाधधतमाग शरुक जाता िै। यि प्रबुद्ध िो उिती िै, पवचार करती िै, एक व्यत्ततमव का तनमाणश करती िै और अपनेको सत् ्के प्रवाि से पृथक् कर लेती िै। सुषुत्प्त की अवस्था में ये अवरोध तछन्न-मभन्न िो जाते िैं। तनवाणश कफर से सत् ्की धारा में आ जानेऔर अबाधधत प्रवाि का रूप धारण कर लेनेका नाम िै। त्जस प्रकार सोते िुए मनुष्य को कोई भी पवचारधारा क्षुब्ध निीं ंकर सकती, इसी प्रकार तनवाणश में िमें र्ात्न्तमय पवश्राम ममलता िै। तनवाशण न तो र्ून्यरूप िै और न िी जीवन िै, त्जसका पवचार मन में आ सके, ककन्तु यि अनन्त यथाथसशत्ता के साथ ऐतय का भाव स्थापपत कर लेनेका नाम िै, त्जसे बुद्ध प्रमयक्षरूप में स्वीकार निीं ंकरते। चूंकक यि मानव के पवचारक्षेत्र से परे का पवषय िै, अतएव िम तनषेधाममक र्ब्दों द्वारा िी उसका वणनश कर सकतेिैं। यि एक ऐसी अवस्था िै जो पवषयी एवं पवषय के परस्पर सम्बन्ध से अतीत िै। इसमें आममचेतना की प्रतीतत निीं ंकी जा सकती। यि कक्रयार्ीलता की एक ऐसी अवस्था िै जो कारणकायभशाव के अधीन निीं ंिै, तयोंकक यि उपाधधपविीन स्वातन्त्र्य या मोक्ष िै।955 यि एक यथाथ शऔर दृढ़ अवस्था िै यद्यपप देर् और काल से जकडे िुए संसार में पवद्यमान निीं ंिै। मभक्षुओंएवं ंमभक्षुणणयों के स्तोत्रग्रन्थ अगाध आिाद के कौर्लपूण शवणनशों से भरे पड़ े त्जनमें तनवाशण का अमर आनन्द ममलता िै और जो वाणी का पवषय निीं िो से भरे पड़ िैं ना एक ऐसी अवस्था में प्रवेर् करती िै जिांपर सब सापेक्ष जीवन आकर व्यात्ततगत वेतन िैं। यि एक मौन अतीत िै। एक अथ शमें यि आममपवलोप िै और दूसूकर पवलीन िो जातन्त्र्य िै। त्जस प्रकार सूय शके उज्जयत प्रकार् में तारा अस्त िो जाता िै अथवा जल से पविीन बादल ग्रीष्म ऋतु के आकार् में तछन्न-मभन्न िो जाता िै, इसी उपमा से इसे समझा पव सकता िै। बुद्ध के अनुसार, यि सोचना कक

तनवाणश्र्ून्यता का नाम िै, एक प्रकार का दूपूषत धमद्रशिो िै।'[956]

---

954 दिालके बुद्धधस्टएसे',पृष्ि258।

955 तुलना कीत्जए: "र्ून्यतातनममत्तप्रणणहितम्। ् "

956 संयुत्त, 3: 109।

यद्यपप तनवाशण की अवस्था को उच्चतम कक्रयारी्लता का उपलक्षण वताया गया ि◌ै, तो श्री इसे मुख्यरूप से तनषेधाममक रूप में तनत्ष्क्रय ि◌ी समझा जाता ि◌ै। आजकल के युग में जबकक यि संसार कोलािल, संघष शव उते्तेजनामय जीवन से पररपूण शि◌ै, ऐसे व्यत्ततयों को जो जीवन से ऊब गए ि◌ैं, पूणावशस्था को स्वच्छन्दतावादी ि◌ोने ◌ेकी अपेक्षा अधधक पवश्रामपूण शएवं ऐसी दर्ा में प्रस्तुत करना वांछनीय ि◌ै जो र्ात्न्त एवं सुख, तनस्तब्धता एवं ◌ंनीरवता, तथा पवश्रात्न्त एवं नवीन स्फूतत शसे पूण शि◌ै। जीवन-मरण का तनरन्तर प्रवाि इतना प्रवल ि◌ै कक तनवाणश का, अथवा ऐसी अवस्था का त्जसमें कि जाता ि◌ै कक वि प्रवाि रुक जाता ि◌ै, एक स्वगीय मुत्तत के रूप में स्वागत ककया जाता ि◌ै।

उपतनषद् के पवचारकों के ि◌ी समान बुद्ध ने भी तनवाणश प्राप्त पुरुषों की दर्ा के पवषय में ककसी प्रकार की धारणापवर्ेष को स्थान देनेसे तनषेध ककया ि◌ै, तयोंकक वि ज्ञान का पवषय निीं ◌ंि◌ै। तो भी उपतनषदों के माग श का अवलम्बन करके वे इसका पवध्याममक एवंतनषेधाममक दोनों ि◌ी प्रकार का वणनश करते ि◌ैं। 'तेपवज्जजसुत्त' में वे इसे ब्रह्मा के साथ युतत ि◌ोने ◌ेतक का नाम देते ि◌ैं। चूंकक इस प्रकार का वणनश उस मत के साथ संगतत निीं ◌ंरख सकता जो बुद्ध को एक तनषेधाममक पवचारक बतलाता ि◌ै और जो इस संसार में एवं मनुष्य में ककसी स्थायी तनयम से तनषेध करता ि◌ै, री् डेपेवड्स किते ि◌ैं: "ब्रह्मा के साथ पवश्वप्रेम के अभ्यास द्वारा संसग शि◌ोने ◌ेकी आर्ा हदलाने में सम्भवतः अधधकतर भाव यि था कक वौद्धपररभाषा में 'ब्रह्मा के साथ संसग'श एक पृथृरूप में ब्रह्मा के साथ क्षणणक सिचय शि◌ै, जो नवीन प्राणी ि◌ै और जो चेतनारूप में पूवप्रशाणी के समान निीं ◌ंि◌ै। यि बबलकुल सम्भव ि◌ै कक मतानुज्ञा की व्याख्या सुत्त के इस भाग में भी व्याप्त ि◌ो गई ि◌ो और यि कक 3/1 का आर्य इस प्रकार का समझा जाए कक "यि पवश्वप्रेम ि◌ी एकमात्र उपाय ि◌ै उस प्रकार के संसग शका, अपनेतनजी ब्रह्मा के साथ त्जसकी तुम आकांक्षा रखते ि◌ो।' ककन्तुबुद्ध का इस प्रकार की एक पवधमी सम्मतत के आगे झुकना पवर्ेषकर समय की अपनी व्याख्या के अन्त में संभव निीं ◌ंि◌ै।"[957] री् डेपेवड्स भूल जाते ि◌ैं कक यि कथन

बुद्ध के अनुसार पवधममतशा निीं ◌ंि◌ै। यहद ि◌म तनवाणश का एक पवध्याममक अवस्था में तनरूपण करें तो ि◌में अवश्य ि◌ी एक स्थायी सत्ता को स्वीकार करना पगे़ा। तकशर्ास्त्र बी् का्ई से काम लेता ि◌ै। बुद्ध को एक स्थायी तत्त्व से बाधधत ि◌ोकर स्वीकार करना ि◌ी पा्- "ि◌े मर्ष्यो, कोई सत्ता ि◌ै जो अजन्मा ि◌ै, उमपन्न निींकी जा सकती, बनाई निीं ◌ंगई, न ममधश्रतरूप ि◌ै। ि◌े मर्ष्यो, यहद इस प्रकार की कोई अजन्मा सत्ता न ि◌ोती तो त्जसने ◌े जन्म मलया ि◌ै उसके छुटकारे का माग शभी कोई निीं ◌ंि◌ो सकता था।958 यि भी स्पडष्टड ि◌ै कक आममा को कुछेक स्कन्धों का बना ि◌ुआ बतलानेसे भी वि परम एवं ◌ंतनरपेक्ष या तनपवकशल्प सत्ता निीं ◌ंि◌ो सकती। यहद आममा को केवल दि◌े एवं मन, तथा गुणों एवं ◌ंकक्रयाओं ◌ं का ि◌ी सत्म्मश्रण मान मलया जाए तो जब सब पवनार् को प्राप्त ि◌ो जाते ि◌ैं तब ऐसी कोई सत्ता निीं ◌ंबचेगी त्जसे कक मुतत ि◌ोना ि◌ै। ि◌म अपनी इच्छाओंको नष्ट कर देते ि◌ैं. अपने कमों को भस्मसात् ◌्कर देते ि◌ैं एवं ◌ंइस प्रकार सदा के मलए खो जाते ि◌ैं। इस प्रकार मोक्ष (स्वातन्त्र्य) र्ून्यरूप रि जाएगा। ककन्तु 'तनवाणश' का जीवन कालाबाधधत जीवन ि◌ै और इसीमलए बुद्ध को एक अकालपुरुष या आममा की सत्ता को स्वीकार करना ि◌ी ि◌ोगा। सम्पूण शजीवन की पृषि्भूमम में एक ऐसी सत्ता ि◌ै जो उपाधधरहित ि◌ै, एवं

---

957 इण्रोडतर्न टु तेपवज्जजसुत्त : सेक्रे्रेडबुतसआफदईस्ट',खण्ड 11 पृषि् 161।

958 उदान, 8/3 और इततवुत्तक , 43।

समस्त अनुभवाममक गुणों से ऊपर ि‍ै, जो ककसी काय शको जन्म निीं देती और न स्वयंककसी अन्य कारण का ि‍ी काय शि‍ै। "तनवाशण के पवषय में ि‍म यि निीं ंकि सकतेकक यि उमपन्न ि‍ुआ ि‍ै, अथवा यि कक यि उमपन्न निीं ंि‍ुआ, अथवा यि कक यि उमपन्न ि‍ो सकता ि‍ै, और यि कक यि भूत, भपवष्यत् ्या वतमशान ि‍ै।959 तनवाशण उस समकामलकता का नाम ि‍ै जो ि‍रेक तारतम्य का आधार ि‍ै। मूतरूशप काल अमूत शतनमय में अपनी सत्ता को खो बैिता ि‍ै। यि संसार का पररवतनशरील स्वरूप त्स्थर रिने वाली यथाथसशत्ता को आवरण कर लेता ि‍ै। बुद्ध-प्रततपाहदत तनवाणश के स्वरूप को पूणतशा प्रदान करने ेके मलए केवल इसी प्रकार के मत की आवश्यकता ि‍ै। इसी प्रकार के गूढ़ पवषयों की व्याख्या करने ेके मलए बुद्ध ने जान बूझकर प्रयास निीं ंककया, यद्यपप वे ेइन्िें यथाथरूशप में स्वीकार करते थे,े तयोंकक ये सांसाररक जीवन एवं ऐहिलौककक उन्नतत में पवर्ेष सियक मसद्ध निीं ंि‍ोते। मालुतयापुत्त के प्रश्नों के सम्बन्ध में जो उपदेर् बुद्ध ने हदए उनके अनुसार, कक वे ऐसी ि‍ी समस्याओं के सम्बन्ध में संवाद करेंगे जो र्ांतत, पपवत्रता एवं ज्ञान की उन्नतत में सियक ि‍ों अन्य के प्रतत निीं, उन्िोंने अत्न्तम लक्ष्य-सम्बन्धी प्रश्नों की आज्ञा एकदम निीं ंदी। ककन्तु जान-बूझकर तनषेध करने ेअथवा ऐसी मौमलक समस्या के सम्बन्ध में टाल-मटोल करने ेवाला उत्तर देनेसे इस प्रकार की समस्या को उिाने की स्वाभापवक प्रवृपृत्त को सदा के मलए दबा तो निीं ंहदया जा सकता। यि मनुष्य के मन की एक सिज अन्तःप्ेरेरणा ि‍ै जो इस समस्या को सम्मुख लाकर खा़ कर देती ि‍ै। और चूंकक बुद्ध इस समस्या का कोई र्ास्त्रसम्मत समाधान प्रस्तुत करनेमें असफल रिे, तब मभन्न-मभन्न सम्प्रदायों ने उनकी इस प्रवृपृत्त के कारण मभन्न-मभन्न प्रकार के

तनष्कष शतनकाल मलए। कततपय पवद्वानों ने तनवाणशको र्ून्यता के रूप में वणनश ककया, अथात्श ्एक प्रकार की ररतता एवं ंअभाव। बबर्प पवंगांण्डेटे कितेिैं कक "बौद्धधम शका यि पवधान एक अव्याख्येय एवं ंर्ोचनीय अव्यवत्स्थतधचत्तता के साथ जनसाधारण को उनके नैततक पुरुषाथों के मलए पुरस्कारस्वरूप एक अगाध र्ून्यता की खाई की ओर तनदेर् करता ि‍ै।" श्रीमती री़ डेपेवड्स के अनुसार, "बौद्धधम शका तनवाणश केवलमात्र अभावाममक पवलोप ि‍ै।" ओल्डनबग शका झुकाव एक तनषेधाममक मत की ओर ि‍ै।'[960] दिालके भी स्थान-स्थान पर ऐसा ि‍ी मलखते ि‍ैं। एक स्थान पर वे ेमलखते ि‍ैं: "केवल बौद्धधम शमें ि‍ी दु:ख से छुटकारा पाने का भाव एक पवर्ुद्ध तनषेधाममक रूप में पाया जाता ि‍ै और यि स्वगीय आनन्द के रूप में पवध्याममक निीं ि‍ै।"[961] इन लेखकों के मत में तनवाणश एक प्रकार की अभावराबत्र ि‍ै, यि ऐसा अन्धकार ि‍ै त्जसं ंसब प्रकार का प्रकार् अस्त ि‍ो जाता ि‍ै। बुद्ध के मसद्धान्त का इस प्रकार का तनतान्त एकपक्षीय अध्ययन नया निीं। इस प्रकार की घोषणा करने ेके पश्चात् ्कक मुततामममा की दर्ा अधचन्तनीय ि‍ै, बुद्ध आगे कि‍ते ि‍ैं "इस प्रकार की मर्क्षा देते समय एवं इस प्रकार की व्याख्या करते समय मुझ पर कुछ व्यत्ततयों ने भूल से बबना ककसी कारण के अनुधचतरूप से एवं असमयरूप से दोषारोपण ककया ि‍ै।... 'श्रमण गौतम एक नात्स्तक ि‍ै, वि उपदेर् देता ि‍ै कक यथाथसशत्ता का नार् िो जाता ि‍ै, वि र्ून्यरूप में पररणत ि‍ोकर मृमृयु को प्राप्त ि‍ो जाती ि‍ै, आहद-आहद ।' मुझपर ऐसे आरोप लगाए जाते ि‍ैं जो म ैंनिीं ंि‍ंि‍ूं, एवं ंजो मेरा मसद्धान्त भी निीं ंि‍ैं।"[962] यि भी अमयन्त आश्चय शका पवषय ि‍ै कक दूसरी ओर

---

959 मममलन्द।

960 देणखए 'बुद्ध', पृषि् 273।

961 'बुद्धधस्ट एसे़', पृषि् 48।

962 मत्ज्जझम, 22।

ऐसे भी लोग िैं जो बौद्ध धम शमें प्रततपाहदत तनवाणश के स्वरूप को प्रमयक्ष में आनन्ददायक समझतेिुए बुद्ध के ऊपर नात्स्तकता का दोषारोपण करते िैं। इसमलए यि स्पष्ट िै कक बिुत प्रारंमभक अवस्था में िी बुद्ध के भाषणों

को लेकर दो पवमभन्न पक्ष उमपन्न िो गए थे। बुद्ध का अपना तनजी मत सम्भवतः यि रिा कक तनवाणश पूणतशा की एक ऐसी दर्ा िै त्जसे िम सोच निीं सकते, और यहद इसका वणनश करनेको िमें बाध्य िोना िी प़ेतो सबसे उत्तम यि िोगा कक िम इसकी अतनवचशनीयता का तनषेधाममक कथन के द्वारा एवं इसके तत्त्व की समृद्धधर्ामलता का पवध्याममक गुणपवधान के द्वारा वणनश करनेका प्रयमन करें, ककन्तु ुबराबर िी इस बात का ध्यान बना रिना चाहिए कक इस प्रकार के वणनश केवल तनकटतमता को िी दर्ातेशैं एवं सम्पूण शनिीं िो सकते।

17. ईश्वर के सम्बन्ध में बुद्ध के पवचार

बुद्ध के आपवभावश के समय में जो धम शउस समय प्रचमलत था उसके अनुसार मनुष्यों एवं देवताओं में आदान-प्रदान की पद्धतत सवोपरर थी। उपतनषद्-प्रततपाहदत ब्रह्म तो उन्नत एवं श्रेष्ठ था िी, ककन्तु साथ-साथ असंख्य देवता, अन्तररक्ष के ज्जयोततष्क पपण्ड एवं ककतने िी भौततक तत्त्व, पौधे, पर्ुु, पवतश तथा नहदयों को भी मान्यता दी गई थी। उद्दाम कल्पना की छूट के बलं, पर संसार का सम्भवतः कोई भी पदाथ शदेवमव की कल्पना से निीं बचा, और यिां तक कक इसे भी अपयाप्शत समझकर उसी धगनती में पवकट रूप वाले दानव, छायारूप प्रेतामममा एवं ककतने िी काल्पतनक प्रतीक भी उनके साथ जो़ हदए गए। इसमें सन्दिे निीं कक जिांतक पवचार के क्षेत्र का सम्बन्ध था, उपतनषदों ने इन सबको तछन्न-मभन्न कर हदया, ककन्तु कक्रया-कलापों में इनका आधधपमय कफर भी बना रिा। इस प्रकार ऐसे व्यत्ततयों की कमी निींथी त्जन्िोंने देवताओं को संसार का स्रष्टा एवं समस्त पवश्व का र्ासक बना डाला और उन्िें यिां तक र्त्तत दे दी कक वे मनुष्य की तनयतत को भी अच्छा या बुरा बना सकतेथे। बुद्ध ने अनुभव ककया कक देवताओं के इस प्रकार के भय को दूरू करने,े एवं भपवष्य की सम्भाव्य यन्त्रणाओंको, अथवा मनुष्य-स्वभाव के भ्रष्टाचार को, त्जसका झुकाव चापलूसी एवं स्तुतत द्वारा देवताओं के प्रसाद को खरीद लेनेकी ओर था, िटा देने का एकमात्र उपाय यिी िो सकता था कक सब देवताओं की कल्पना को िी सदा के मलए समाप्त कर हदया जाए। 'आहदकारण' का भाव िमें अपनी नैततक प्रगतत में सिायक निीं िो सकता। इससे तनष्क्रमणशयता एवं अनुत्तरदातयता रूपी दुगुणशों को प्रोमसािन ममलता िै। यहद ईश्वर की सत्ता िै तो उसे जो कार भी संसार में िोता िै, अच्छा अथवा बुरा, उस सबका एकमात्र कारण मानना प़ेगा और उस अवस्था में मनुष्य की अपनी स्वतन्त्रता कुछ भी न रिी। यहद वि दुश्चुडररत्रता से घृणा करता िै और पाप का स्रष्टा िोना स्वीकार निीं करता, तब वि सावभशौम कताश कैसे िुआ? िम आर्ा करते िैं कक ईश्वर िमें क्षमा कर देगा।'[963] यहद ईर्कृपा सवर्शत्ततमान िै, यहद इसके द्वारा एक पापी भी क्षणमात्र में मिाममडा बन सकता िै, तब स्वडभावत: िमें धाममकश जीवन एवं चररत्रतनमाणश के प्रतत उदासीन रखने का प्रलोभन घेरता िै। चररत्रतनमाणश भी उस अवस्था में सवथशा तनरथकश मसद्ध िोगा। पुण्य एवं पाप का फल स्वग शएवं नरक के रूप में ममलता िै। यहद

963 "गुरमामममामुझेक्षमाकरदेगातयोंकक यि उसका काम िै।" िाइन।

पापाचार का तामपय शकेवल नरक में जाना िी िै तो नरक तो अभी बिुत दूरू िै, जब जाना पगे़ा तब देखा जाएगा, अभी तो प्रमयक्ष में सुख िी ममलता िै। बुद्ध ने उतत प्रचमलत मत का पवरोध ककया और यि घोषणा की कक पुण्य एवं सुख तथा पाप एवं दु:ख स्वभावतः परस्पर-सम्बद्ध िैं।964 दार्तशनक कल्पना का अतनत्श्चत स्वरूप तो एक ओर िै त्जसके कारण अनेक प्रकार की कल्पनाएं करने ेका प्रलोभन मनुष्य के सामने रिता िै, ककन्तु दूसूरी ओर कक्रयाममक भरोसा जो जनसाधारण के मनों में घर ककये िुए था और त्जसके कारण वे अपनेपुरुषाथ शके ऊपर तनभरश न करके सारी त्म्मेदारी देवताओं के ऊपर िी छो़ िुए थे। ऐसी अवस्था में बुद्ध ने अधधक उधचत यिी समझा कक अपनेउपदेर् के मलए इसी संसार तक सीममत रिना अधधक उपयुतत िोगा। सिी वैज्ञातनक रीतत का आश्रय लेने पर न तो बबजली की घटना में ककसी देवता का िाथ हदखाई देता िै और न िी अंतररक्ष में किींदेवदूतों का पता ममलता िै। इस प्रकार घटनाओं की प्राकृततक व्याख्या से धाममकश भ्रांततयां पवलुप्त िो गईं। एक र्रीरधारी ईश्वर की कल्पना, उतत प्रकार की प्राकृततक व्याख्या के अनुसार, असंगत िी प्रतीत िुई। कम शके पवधान के अनुसार, िमें ररयायत अथवा छूट, मन की मौज एवंतनरंकुर्ता-सम्बन्धी सब कल्पनाओं को ततलांजमल दे देना आवश्यक िै। इस कमपशवधान के सम्मुख ईश्वर का वैभैव एवं ेदैव का प्रभाव सब फीके प़ जाते िैं। कम शकी प्ेरेरणा के बबना मसर का एक बाल भी टूटकर निीं ेधगर सकता और न िी एक पमथर िी भूमम पर धगर सकता िै। इसमलए एक ऐसे ईश्वर का िोना न िोना समान िै जो न तो अपनेको कमपशवधान के अनुकूल बना सकता िै और न िी उसे बदल सकता िै, न कम शको उमपन्न कर सकता िै और न उसमें पररवतनश कर सकता िै।

इसके अततररतत एक प्ेरेमस्वरूप ईश्वर की सत्ता में पवश्वास करनेसे इस जीवन की अनेक हृदयपवदारक घटनाओंकी व्याख्या भी सरलतापूवकश निीं ेकी जा सकती। संसार में जो दु:ख िै उसका कारण कम-शपवधान को स्वीकार करनेपर िी समझ में आ सकता िै, अन्यथा निीं। कम शका मसद्धान्त चेतन जगत्, ् नरक के तनवामसयों, पर्ुओं, भूत-प्ेरेतों, मनुष्यों एवं ेदेवताओं आहद सबके पवषय में पूण शव्याख्या कर सकता िै। कम शसे ऊपर कुछ निीं। यद्यपप बुद्ध, इन्द्र, वरूण इमयाहद देवताओं की सत्ता को भी स्वीकार करते िैं, तो भी संसार की व्याख्या में उनका कोई स्थान निीं ेिै। जन्म-मरण के चक्र में देवता आहद भी आते िैं ककन्तुगम्भीर नैततक कम-शपवधान के

बीच में ककसी प्रकार का िस्तक्षेप निीं ेकर सकते।965 िमारे जीवन की तनमाणशकारी दैवीय सत्ता कोई निीं ेिै। मनुष्य अपने कमों से जन्म धारण करता िै। कम शके िी अनुसार उसे वैसे माता-पपता ममलतेिैं। "मेरा कम शिी मेरी तनधध िै। यिी मेरा दायभाग िै यिी मुझ्ुे ेयथोधचत मांकी कोख में धारण करता िै।.. मेरी जातत का तनधारशण भी इसी से िोता िै... यिी मेरा र्रणस्थल िै । सनातन-धममयशों के इस मत का कक जगत् ्का स्रष्टा एक सवोपरर देिधारी ईश्वर िै एवं ेभौततकवाहदयों के इस स्वभववादी मत का कक इस संसार का पवकास वस्तुओंके स्वतन्त्र अन्तरतनहित स्वभाव के कारण िोता िै, बौद्ध धमावशलम्बी खण्डन करते िैं। संसार की नानापवधता कमों के कारण िै।966' कम शिी फल के रूप में प्राधान्य प्राप्त करते िैं। वे प्राकृततक पदाथों का तनमाणशएवं ेउनकी व्यवस्था करते िैं, जैसा-जैसा त्जसका फल ममलने को िोता िै। यहद ककसी मनुष्य की तनयतत में सूयदेशवता बनना िै तो

964 देखेंअंगुत्तरतनकाय, 6, 1।

965 देणखए, 'डायलॉग्स आफ युद्ध', 1। पृष्ठ 280 और आगे, 302।

966 "कमजंश लोकवैधचत्र्यम्"्, अमभधमकर्ोष, 4/1।

 यिी निंकक वि केवल जन्म धारण करेगा, उसे ेएक स्थान-पवर्ेषे भी ममलेगा एवंहदव्य राज-भवन, एवं ं

दोलायमान रथ आहद-आहद भी प्राप्त िोगा, और यि प्राधान्य अथवा अधधपतत का पद उसको कमफशल के रूप में ममला िै।967 पवश्वरचना के आहदकाल में भी समस्त प्राकृततक पवश्व का तनमाणश कमों की अधधपततरूप र्ात्तत के द्वारा िी िुआ, त्जसका सुखोपभोग भपवष्य के तनवामसयों को ममला। संसार का यि भाजन-भाण्ड या आश्रय, त्जसे भोजन-लोक किते िैं, सब जीपवत प्राणणयों के कमों के आधधपमय का फल िै और इसे सत्त्वलोक किते िैं।

ईश्वर की सत्ता के समथनश में जो प्राचीनकाल से परम्परागत तकश उपत्स्थत ककए जाते थे, प्राचीन बौद्धधम शके अनुयातययों ने उन सबका खण्डन ककया। यि प्रमाण कक जैसे एक घी अपनेबनानेवाले घीसाज का संकेत करती िै इसी प्रकार यि संसार इसके बनानेवाले एक ईश्वर का संकेत करता िै, उन्िें अपप्रय प्रतीत िोता िै। िमें ककसी चेतन कारण को मानने ेकी आवश्यकता निीं। जैसेकक एक बीज पवकमसत िोकर अंकुर बन जाता िै एवं ंअंकुर वृक्ष की र्ाखा के रूप में पररणत िो जाता िै, इसी प्रकार बबना ककसी पवचारर्त्तसम्पन्न कारण अथवा बबना ककसी र्ासक दैव के उमपपत्त सम्भव िै। पवचार एवं ंपदाथ शभी मुखकर एवं ंअसुखकर संवेदनाओं के समान िी कमों के फल िैं। मममलन्द कम शद्वारा तनधारशरत जीवनचक्र की तुलना एक ऐसे चक्र से करता िै जो अपनी िी पररधध में घूमता िै, अयवा त्जस प्रकार अण्डे ेसे मुगी और मुगी से अण्डे ेका जन्म िोता िै, यि चक्र एक-दूसूरे के ऊपर तनभरश करता िै अथात्श ्अन्योन्याधश्रत िै। आंख, कान, र्रीर और आममा बाह्य जगत् ् के सम्पकश में आते िैं त्जनसे संवेदना, इच्छा, कम शआहद उमपन्न िोतीं और क्रम से कफर इन्िीं ंके फलस्वरूप आंख, कान, र्रीर और आममा उमपन्न िोते िैं त्जससे नया प्राणी उमपन्न िोता िै। यिी न्यायतनष्ठ अथवा औधचमय का तनरन्तरस्थायी पवधान िै। िम इसके प्रवाि को निींबदल सकते। बुद्ध जो मुत्ततदाता से अधधक एक मर्क के रूप में िमारे सम्मुख अपनेको प्रकट करते िैं, िमें समय का तनरीक्षण करने ेमें सिायता देते िैं। वे े ऐसे ककसी संसार के स्रष्टा की कल्पना निीं ंकरते त्जसने ेयुगों पूव शइस संसार की श्रृंखला का प्रारम्भ ककया िो। संसार के प्रवाि का कारण, उनकी सम्मतत में, स्वयंसंसार के अततररतत और कुछ निीं ंिै। बुद्ध की दृत्ष्ट में सृत्ष्टपवद्या-सम्बन्धी तकश में कोई बल निीं ंिै। यहद िम इतना जान सकें कक घटनाएं कैसे िोती िैं तो पयाप्शत िै। िमें संसार की व्यवस्था की पृष्ठभूमम में जानेकी आवश्यकता निीं। यद्यपप पूव शमें तया अवस्थाएं रिींयि जानना भी परमसमय निीं ंिै, तो भी मनुष्य के आगे इससे अधधक और कुछ क्षेत्र भी तो खुला निीं ंिै। एक ऐसे आहदकारण को स्वीकार

करना त्जसका कारण अन्य कुछ न िो, एक स्वत. पवरोधी कल्पना िी हदखती िै। प्रमयेडक कारण को ककसी अन्य कारण का काय शमानने ेकी आवश्यकता, और त्जसका कारण कफर अपनेसे पिला काय शिै, कारण रहित कारण की कल्पना को तनतान्त अधचन्तनीय बना देता िै। इसी प्रकार संसार की अपूणतशा के कारण उद्देश्यवाद का तकश भी त्स्थर निीं ंरि सकता। यि संसार एक प्रकार की सुकत्ल्पत कपट-योजना िै, जो केवल दुःख देनेके मलए की गई प्रतीत िोती िै। इस कष्टदायक योजना से बढ़कर और कोई योजना इतने पररष्कृत रूप में एवं सुलझे िुए ढंग की र्ायद निीं िो सकती थी। एक ऐसा स्रष्टा त्जसे अपने में पूण शकिा जाता िै, ऐसे अपूण शसंसार का रचतयता

967 अधधपततफल ।

 श ्कमों

का पवधान-जो तनश्चयाममक तकश पर आधश्रत िै, वस्तुसमय िै। त्स्पनोा़ के समान बुद्ध का भी यिी मत प्रतीत कैसे िो सकता िै। इसमलए कोई परोपकारी अथवा मनमौजी ईश्वर निीं ंिै ककन्तु एक ऐसा पवधान-अथात िोता िै कक संसार न अच्छा िै न बुरा िै न तो हृदयपविीन िै और न िी पववेकरून्य िै, न पूण शिै और न िी

सुन्दर

िै। यि मनुष्य के अपनेमानवीकरण के स्वभाव के कारण िी िै जो पवश्व-रचना की प्रकक्रया को मनुष्य की सी रचना के रूप में देखता िै। प्रकृतत ऐसे ककन्िीं तनयमों का र्ासन स्वीकार निीं ंकरती जो बिार से उसके ऊपर थोपे जाएं। िमें प्रकृतत के अन्दर केवल आवश्यकताएं िी काय शकरती प्रतीत िोती िैं।'[968]

---

[968] अनाथपपण्डक के साथ वातालशाप करतेसमय किा जाता िै कक बुद्ध ने उतत प्रश्न पर इस प्रकार तकश ककया : "यहद संसार को ईश्वर ने बनाया िोता तो उसमें ककसी प्रकार का पररवतनश अथवा उसका पवनार् निीं िोना चाहिए था, न दु:ख एवं पवपपत्त िी िोनी चाहिए थी, उधचत-अनुधचत का भेद भी तयों िोना चाहिए- यि देखते िुए कक रुद्ध अथवा अरुद्ध जो कुछ भी िै, सब आता तो उसी ईश्वर से िै। यहद दु:ख और सुख एवं पे्रम और घृणा, जो सब प्राणीमात्र को व्यापते िैं, ये भी ईश्वर के िी काय शिैं तो उसे भी दु:ख और सुख, पे्रम और घृणा व्यापनी चाहिए, और उस अवस्था में कफर वि पूण शकैसे रि सकता िै? यहद ईश्वर िी कता शिै, और सब प्राणणयों को मौनभाव से उस कताश की र्त्त के अधीन रिना िै तो कफर धमकशाय शकरनेसे तया लाभ? तब तो उधचत एवं अनुधचत सब एकसमान िोंगे, तयोंकक सब कम शउसी के बनाए िुए िैं और इसमलए उनके कता श की तनगाि में भी एकसमान िी माने जाने चाहिए। ककन्तु यहद किा जाए कक दु:ख और र्ोक का कुछ अन्य कारण िै तो ऐसी भी एक वस्तुिुई त्जसका कारण ईश्वर निीं िै। तो तयों निीं कफर सभी को बबना कारण के मान मलया जाए? इसके अततररतत यहद ईश्वर कताश िै तो वि या तो तनष्प्रयोजन काय शकरता िै अथवा ककसी प्रयोजन को लेकर काय शकरता िै। यहद ककसी प्रयोजन को लेकर काय शकरता िै तो वि पूण शनिीं ंिुआ तयोंकक प्रयोजन अभाव का द्योतक िै, और जिां अभाव िै विां ंपूणतशा निीं िो सकती। यहद बबना ककसी प्रयोजन के काय शकरता िै तो ऐसा या तो कोई पागल िी कर सकता िै या कफर मातृसूतन से दूधू पीने वाला बच्चा िी कर सकता िै, ज्ञानसम्पन्न व्यत्तत निीं कर सकता। इसके अततररतत यहद ईश्वर िी कता शिै तो तयों निीं लोग श्रद्धा व आदर भाव से उसके आगे झुक जाएं? उन्िें आवश्यकता के दबाव में पक़र उसके आगे मभक्षायाचना करने की तयों आवश्यकता िोनी चाहिए और तयों लोग एक से अधधक देवताओं ंकी पूजा करें ? इस प्रकार पववेकपूण शतकश के आधार पर ईश्वर के अत्स्तमव का पवचार ममथ्या मसद्ध िोता िै, और समस्त पवरोधी कथनों की तनस्सारता को जनसाधारण के आगे रख देना चाहिए" (अश्वघोष का बुद्धधचररत्र)। "यहद, जैसाकक ईश्वरवादी किते िैं, ईश्वर इतना मिान िै कक मनुष्यों के मलए उसका ज्ञान प्राप्त करना कहिन िै तो उसके गुण भी िमारे पवचार के क्षेत्र से बिार के पवषय िुए और इसमलए न तो िम उसे जान और न िी उसमें कतृमशवगुण का आधान कर सकते िैं" (बोधधचयवशतार)। अनाथपपण्डक पूछता िै कक यहद संसार को ईश्वर ने बनाया निीं तो तया यि भी निीं माना जा सकता कक यि समस्त जीपवत संसार उस तनरपेक्ष, परमसत्ता की अमभव्यत्तत िै जो अनुपाधधक िै, अज्ञेय िै ककन्तु इस सब भासमान संसार की पृष्ठिभूमम में िै? "मिावग्ग बुद्ध ने उत्तर हदया, 'यहद तनरपेक्ष परमसत्ता से तुम्िारा आर्य ऐसी सत्ता से िै जो इन सब ज्ञात पदाथों के सम्बन्ध से परे िै तो उसकी सत्ता की ककसी भी तकश (िेतुपवद्यार्ास्त्र) द्वारा मसद्ध निीं ककया जा सकता। िम कैसे जान सकते िैं कक ऐसा पदाथ शत्जसका अन्य पदाथों से कोई भी सम्बन्ध निीं ंिै, पवद्यमान िै ? समस्त पवश्व, जैसा िम इसे जानते िैं, सम्बन्धों के द्वारा तनममतश व्यवस्था िै : असम्यदुद्ध कोई भी पदाथ शिमारे ज्ञान का पवषय निीं िै। जो स्वयं ंककसी के ऊपर तनभरश निीं ंकरता और ककसी सेसम्बद्ध निीं ंिै, कैसे उस पवश्व को उमपन्न कर सकता िै जिां सब पदाथ श अपनी त्स्थतत के मलए एक-दूसूरे से सम्बद्ध िैं? कफर यि तनरपेक्ष परम एक िै या अनेक िैं यहद एक िै तो यि कैसे मभन्न-मभन्न पदाथों का कारण िो सकता िै, त्जन्िें िम जानते िैं कक ममन्न-मभन्न कारणों से उमपन्न िोते िै?ं यहद तनरपेक्ष परम भी अनेक िैं और पदाथों के िी समान अनेक िैं तो यि उन पदाथों के कारण कैसे िो सकते िैं जो सब एक-दूसूरे से सम्बद्ध िैं? यहद तनरपेक्ष परम सव पदाथों में व्याप्त िै और समस्त आकार् में भी व्याप्त िै तो यि उनका तनमातशा निीं िो सकता तयोंकक कफर बनाई जाने के मलए कोई वस्तु िी पृथकूरूप में निीं रि जाती। इसके अततररतत यहद वि तनरपेक्ष परम तनगुणश िै तो उससे उमपन्न िोने वाले समस्त पदाथ शभी गुणरहित िोने चाहिए। ककन्तुवस्तुतः वे िैं सब गुणसहित । इसमलए तनरपेक्ष परम उनका कारण निीं ंिो सकता। यहद उसे गुणों से मभन्न माना जाए तो वि तनरन्तर उनका तनमाणश करते िुए एवं अपने

18. कम शके संकेत

इस यन्त्रवत् ्संसार की तलेर्मय अनुभूतत ि◌ी इससे छुटकारा पाने के मलए एक उमकट अमभलाषा उमपन्न करती ि◌ै। यि तनरार्ाजनक र्दत्ष्टकोण तब तक अतनवायरूशप से बना ि◌ी रिेगा, जब तक कक पूवकशधथत तथ्य वतमशान रिेंगे। आध्यात्ममक नात्स्तकता के अपनेर्दत्ष्टकोण के कारण बुद्ध उपतनषदों के पवचार पर बल नि◌ीं ◌ंदे सकते थे। उपतनषदों के मत म ◌ैंतो संसार एक प्रकार की दैवीय योजना ि◌ै त्जसका तनमाणश मनुष्य की आममा के पवकास

के मलए ि◌ुआ ि◌ै। बबना आध्यात्ममक पृष्ठिूमम के समस्त पवचार पववाद-पवषय से सवथशा र्ूनूय प्रततत ि◌िाि ि◌ै, अन्यथा यि◌ी किना पड1 ◌ेगा कक समस्त जीवन प्रयोजन पवि◌ीन ि◌ै । ककंतु ◌ुकम शकी आवश्यकता एवं आममा की यथाथतशा एक ि◌ी समय को अमभव्यतत करने ◌ेके दो मभन्न-मभन्न माग शि◌ैं। पवर्ेषे चममकारों के साथ तो कम शकी संगतत नि◌ीं ◌ंबैिती, ककन्तु आत्ममक कक्रयार्ीलता के साथ-साथ यि बराबर चल सकता ि◌ै। कम शकेवल एक मनमौजी ईश्वर की स्वीकृतत में ि◌ी बाधा उपत्स्थत करता ि◌ै जो सवत्रश पवद्यमान नि◌ीं ◌ंि◌ै और सदा पवद्यमान नि◌ीं ◌ंि◌ै, ककन्तु कि◌ीं–कि◌ीं ि◌ै एवं वि भी कभी-कभी। अमूतरूशप बुद्धध, जो मानमसक पवचार की रूपरेखाओं एवं धारणाओं के बीच गतत करती ि◌ै, संसार के मूतरूशप अत्स्तमव को भी सामान्य पररभाषाओं में प्रस्तुत करती ि◌ै। उपतनषदों में भी ब्रह्म का इस प्रकार का अमूत शतनरूपण ि◌ै त्जसका जीवन एव चेतना के मूतरूशप अत्स्तमव के साथ कोई वास्ता नि◌ीं। वि असीम सत्ता र्दत्ष्टत्त्त एवंपवचार के क्षेत्र से भी परे ि◌ै। इस प्रकार का एक अतीत्न्द्रय भाव, त्जसे ि◌म उदासीन रूप में एक अनन्त र्ून्य भी कि सकतिे◌ं, अथवा एक ऐसी यथाथसशत्ता

को उनके द्वारा व्यतत करतिेुए कैसे माना जा सकता ि◌ै? कफर यहद तनरपेक्ष परम अपररवतनशर्ील ि◌ै तो समस्त पदाथ शभी अपररवतनशर्ील ि◌ोने चाहिए तयोंकक काय शस्वरूप में कारण से मभन्न नि◌ीं ि◌ो सकता। ककन्तुसंसार के सब पदाथ शपररवततततश भी। ि◌ोते ि◌ै एवं क्षीण भी ि◌ोते ि◌ैं। तब कफर तनरपेक्ष परम कैसे अपररवतनशर्ील ि◌ो सकता ि◌ै? इसके अततररतत यहद तनरपेक्ष परम ि◌ी सवपशदाथों में व्याप्त ि◌ै तो कफर ि◌में छुटकारा ककससे पाना ि◌ै जो ि◌म मोक्ष के मलए चेष्टा करें? तयोंकक उस अवस्था में उतत तनरपेक्ष ि◌मारे अपने ि◌ी अन्दर उपत्स्थत ि◌ै और ि◌में उसके द्वारा बनाए गए सब द्ुःख-तलेर् को धैय शके साथ सिन करना चाहिए" (अश्वघोषरधचत युद्ध-चररत्र)। 'सवमशसद्धान्तसारसंग्रि' में ि◌में अवाचशीन बौद्ध धम शद्वारा प्रस्तुत सब तकश, जो ईश्वरवादी न्याय एवं वैर्ेपषक दर्नशों के पवरुद्ध हदए जा सकतिे◌ं, ममलते ि◌ैं, यया : (1) ि◌म तकश द्वारा ईश्वर के कतृमशव को नि◌ीं मसद्ध कर सकते।◌े (2) यहद यि◌ी सब संसार का स्वामी ि◌ै तो अधमयुशतत कायों को करने में भी मनुष्यों को वि◌ी प्रेरणा देता ि◌ै। (3) यहद धमग्रशन्थों के मलए उसी की प्रामाणणकता ि◌ै तो कफर उसकी परस्पर-असंगंत भापा कैसे प्रामाणणक ि◌ो सकती ि◌ै? (4) यहद उसे धमामशमा पुरुषों का प्रततततनधधमवरूप माना जाए तब वि असीम व अनन्त नि◌ीं ◌ंऔर ि◌ै। (5)) सृतूष्ट की रचना में उसका कोई प्रयोजन अथवा अपना स्वाथ शि◌ै न ि◌ी सम्पूण शसत् ्अथवा नि◌ीं?◌ं यहद ि◌ै तो वि अपूण शि◌ै और यहद नि◌ीं तो कफर वि तयों अपना समय नष्ट करता ि◌ै एवं तयों सृतूष्टरचना का कष्ट उिाता ि◌ै? तया वि ऐसा भी काम करता ि◌ै त्जससे कुछ लाभ नि◌ीं?◌ं यहद यि सब उसका मनोरंजन मात्र ि◌ै तो तया वि बच्चा ि◌ै? (6) ईश्वर की सत्ता मानने से मनुष्य असमथ शि◌ो जाता ि◌ै तयोंकक लाचार ि◌ोकर उसे ईश्वर की प्रेरणा से स्वग शया नरक में जाना पड़ता ि◌ै। (7) यि सुझाव देने से तया लाभ कक मनुष्यों को केवल भगवान की मजी से कष्ट ममलता ि◌ै। (8) यहद वि वरदान देने के मलए स्वतन्त्र ि◌ै तो वि दुराचाररयों एवं दुष्टामामाओंको भी वर दे सकता ि◌ै और सदाचाररयों को भी नरक में भेजने के मलए स्वतन्त्र ि◌ै? (9) यहद वि प्रमयेक व्यत्तत के कमों के अनुसार ि◌ी उन्िेंपाररतोपषक देता ि◌ै तब मनुष्य भी उसी के समान भगवान ि◌ो गए तयोंकक जब पाररतोपषक के पवषय में उसे पूरी स्वतन्त्रता न रिी तो उसेमनुष्यमात्र का अधधपतत ि◌ी तयों किा जाए? (4: 23-38)1 यि बात लक्ष्य करनेयोग्य ि◌ै कक उतत तीनों ग्रन्य, त्जनका यिां ◌ंउल्लेख ककया गया ि◌ै, अवाचशीन बौद्धकाल के ि◌ैं।

त्जसकी वाणी द्वारा व्याख्या निीं ंिो सकती, नामरहित रू्नूय जो अवणनशीय (अतनदेश्यम्)्, अतनवचनीय एवं आममपवडीन (अनामम्यम्)्, आधाररहित (अतनलयनम्)् िै, जीवन के मलए सवथशा अनुपयुतत िै। इसमलए बुद्ध ने किा कक यि अध्याममर्ात्स्त्रयों की ममथ्या कल्पना िै (ब्रह्मजालसुत, 1:26)। ऐसे काल में जबकक जन साधारण परब्रह्म के आह्लादकार रूप को पिचाननेके मलए त्जस नैततक र्त्त की आवश्यकता िै उसे खो रिे थे,े इस प्रकार की चेतावनी की बिुत आवश्यकता थी। अधधक से अधधक यिी िो सकता था कक चूंकक ऐसी असीम र्त्त की यथाथतशा को प्रमाणणत करना दुष्कर काय शथा, िम इसे एक खुले प्रश्न के रूप में िी छो़ देते। बुद्ध का आदेर् मिें यि िै कक जिा ाँज्ञान असम्भव िो तो तनणयश को स्थधगत रख देना चाहिए। यहद सापेक्षता पवचार का एक आवश्यक अंग िै तो ईश्वर-सम्बन्धी पवचार के मलए भी सापेक्षता तयों न लागू िो? इसमलए परमसत्ता के

पववरण-सम्बन्धी प्रयास को छोक़र िमें प्रमयक् अथात् श ्वास्तपवक, के प्रतत ध्यान देना चाहिए, एवं ंपराक् अथात्श ्इत्न्द्रयातीत, के प्रतत निीं। अनुभवाममक प्रविा का िमें तनत्श्चत ज्ञान प्राप्त िै। घटनाओं के कारण-कायभशाव सम्बन्ध पर जोर देनेके कारण िी ऐसा प्रतीत िोता िै कक वि ऐसे मत का समथकश िै त्जसके अनुसार इस पुरातन तट पविीन एवं ंरूपमय समुद्र के पीछे, त्जसके रूप समझ में आ न सकने ेवाले तरीके से पररवततततश िोतेरिते िैं, तनरपेक्ष कोई परमाममसत्ता निीं ंिै-एक ऐसा अज्ञात ईश्वर जो अपनेप्रबल जादू ूअथवा माया से समस्त ब्रह्माण्ड को नाना रूपों से ढालता रिता िै तो भी उपतनषदों की स्पष्ट मर्क्षा, त्जसे स्वीकार करने ेसे बुद्ध ने किींभी तनषेध निीं ककया िै, बुद्ध के मसद्धान्त में पूणतशा लानेके मलए आवश्यक िै।'[969] उपतनषद् एवं बौद्धधम शदोनों के िी अनुसार, मनुष्य के भाग्य में िी बेचैन रिना, सनकी स्वभाव िोना एवं ंदुखी रिना िै। ककन्तु ु यि दुःख िी सब कुछ निीं ंिै । उपतनषदों का तकश िै कक संसार का असमयाभास, अव्यवत्स्थतधचत्तता,

इसकी दुःखान्तता िी आममा के अत्स्तमव की साक्षी िैं। यिी सब तो मनुष्य की अन्ततनहशित आध्यात्ममक र्त्त को प्रोमसाहित करती िैं कक वि इन सब पर पवजय प्राप्त करे। पवरोध वस्तुओंके अन्तस्थल में िै, तयोंकक संसार आध्यात्ममक िै। बुद्ध स्वीकार करते िैं कक िमें पाप-वासनाओंपर पवजय प्राप्त करनी चाहिए, त्जससे िमें आममा का सुख ममल सके। यि सोचना भ्रांततजनक िै कक नीचेदजेकी वासनाएं एवं अव्यवत्स्थत धचत्तता िी पवश्व के केन्द्र में सब कुछ िैं, और इनके अततररतत और कुछ निीं। बुद्ध यि स्वीकार करनेके मलए तैयार िैं कक धैय शधाममकशता, सािस एवं ंसमय की मौमलक र्त्त का सारतत्त्व िै। यहद िम इस दैवीय प्रबन्ध के एक भी अतनवाय शघटक या तत्त्व के पवषय में अततर्योत्तत करें, तब िमारा सुझाव संसार को ईश्वर पविीन मानने ेकी ओर िोगा। यहद सम्पूण शपवश्व पर िम ध्यान दें तो िमें पता लग जाएगा कक िम पवश्वाममा की उस ध़कन एवं स्वरलिरी को ग्रिण करते िैं जो इस अव्यवत्स्थत हदखाई देनेवाली प्रकृतत के अन्दर भी जारी िै। बबना इस प्रकार की एक धारणा के इस संसार में प्रयोजन या उद्देश्य की झलक निींममल सकती। यि मसद्धान्त भी कक संसार उच्च श्रे्णी की नैततकता एवं गिन ज्ञान-प्राप्ति की ओर गतत कर रिा िै, अपना मित्त्व खो बैठेगा। तनश्चय िी बुद्ध जगत् ्को उद्देश्यरू्नूय एवं ंतकश-रहित निीं ंमानते। यि ऐसी पररणतत निीं ंिै त्जसका कोई लक्ष्य या

[969] ऐसा एक भी स्थल निीं ंिै जिां पर बौद्धग्रन्थों नेउपतनषदों के ब्रह्म का उल्लेख ककया िो, यिां ंतक कक पववाद के उद्देश्य से भी निीं ककया। "पवश्वाममा के रूप में बौद्धों ने किींभी ब्राह्म का तनदेर् निीं ककया िै, एवं इसे न तो पवपरीत मत का न अपने तनजी मत का अवयव माना िै यद्यपप किीं– किीं ंऔर बार-बार ईश्वर ब्रह्मा की चचाशअवश्य की िै।" (ओल्डनवग:श 'बुद्ध')।

उद्देश्य न िो, एवं ंकेवल ब्दं तथा ऋतु आहद का भीषण प्रकोप िो, त्जससे कुछ तामपय शनिीं ंतनकलता। इस प्रकार का मत रखनेसे समस्त आदर्वशाद का अन्त िी िो जाएगा। बुद्ध ने खूब गिरी तनगिा से इस पवषय का तनरीक्षण ककया और अनुभव ककया कक घटनाओं के क्रम में एक गिन पवधान काय शकरता हदखाई देता िै। क्षणणक घटनाओंसे पूण शयि संसार एक पवर्ेष पवचार की यथाथतशा को प्रततबबत्म्बत करता िै, त्जसे चािो कम शकिं या औधचमय का पवधान किं। इस पवधान का पवरोधी और कोई पवधा निीं। इस बाह्य मित्त्व की पृष्ठभूमम को मानेबबना यि संसार का सारा तमार्ा केवल मायाजाल या छायाधचत्र िी रि जायेगा। कम शका अनुर्ासन मनुष्य को पपवत्र बनानेके मलए एवं उपचार के रूप में िै। इसकी कक्रयाममकता मौमलक पवधान को सर्तत बनाती िै। अब यि मनुष्य का काम रि जाता िै कक वि अपनेजीवन की व्यवस्था ऐसी करे कक वि उतत मत के साथ साम्य त्स्थर कर सके। संसार सदा से न्यायतनष्िा या औधचमय के द्वारा र्ामसत िोता आया िै, अब भी र्ामसत िो रिा िै एवं भपवष्य में भी इसी से र्ामसत िोता रिेगा। र्रीरधारी स्रष्टा के पवषय में तो बुद्ध का प्रततवाद भले िी िै ककन्तु उतत पवचार के सम्बन्ध में उन्िें भी आपपत्त निीं तयोंकक यि एक तनमय मसद्धान्त िै। बुद्ध यि कभी निीं ंकिेंगे कक कम शका मसद्धान्त एक ऐसी र्तत िै त्जसमें मानमसक र्तत का तनतान्त अभाव िै। ऐसा तत्त्व पववेकर्तत से रहित निीं ंिो सकता जो पवद्युदणुओं(आयनों) की रचना करता िो एवं ऋणाममक पवद्युदणुओं (इलेतरोनों) का तनमाणश करता िो, जो परमाणुओंको एकत्र करके अणु एवं ंअणुओं ंसे नाना लोकों की रचना करता िै। ऐसा िमें किीं ंकुछ निीं ंममलता कक बुद्ध ने एक तनमय, स्वयं में त्स्थत, आममा की यथाथतशा का तनषेध ककया िो, जो पवश्व का कक्रयार्ील मत्स्तष्क िै। जबकक िम ईश्वर के सम्बन्ध में इससे अधधक और कुछ निीं जान सकते कक वि एक परम (तनपवकशल्प एवं तनरपेक्ष) पवधान िै, िम इस सापेक्षतापूण शजगत् ्में पयाप्शतरूप में प्रमयक्ष अनुभव कर सकतेिैं और िम यि स्वीकार करने ेके मलए बाध्य िोतेिैं कक एक अर्दश्य आममा िै। यि पवधान एक दैवीय मत्स्तष्क की अमभव्यत्तत मात्र िै, यहद िम ईश्वर ज्ञानपवषयक पररभाषा का प्रयोग करने ेका अधधकार रखते िों।

कम शका पवधान ईश्वर के अत्स्तमव का पवरोध केवल उसी िालत में कर सकता िै जबकक ईश्वर की कल्पना से तामपय शस्वेच्छापूवकश िस्तक्षेप एवं पवधान व व्यवस्था के अततक्रमण का आ जाता िै, अन्यथा निीं,ं तयोंकक ईश्वर की इस प्रकार की चेष्टा अप्राकृततक िोगी । केवल बच्चे एवंअसभ्य अमर्क्षित लोग िी ऐसे ईश्वर में आस्था रख सकतेिैं जो सृत्ष्टक्रम में अनावश्यक िस्तक्षेप करनेवाला िो। तनरथकश िस्तक्षेप को अस्वीकार करने ेसे तामपय शएक सवोपरर आममा की यथाथसशत्ता से तनषेध करना निीं िै। तयोंकक एक ऐसी व्यवस्था का भाव जो प्राकृतत एवं नैततक िो, आममा के परम कतृमशव का अततक्रमण निीं ंकरता। केवल इसमलए कक िम आत्ममक र्तत के उद्भव एवं ंत्स्थरता के केन्द्र का ज्ञान पूरा-पूरा निीं ंउपलब्ध निीं ंकर सकते, िमें उसकी सत्ता से िी तनषेध करनेकी आवश्यकता निीं। नैततक पवधान की परमाथतशा को भी, त्जसे बुद्ध भी स्वीकार करते िैं, एक केन्द्रीमत आममा की आवश्यकता िै त्जसके पवषय में वे ेमौन िैं। िमारे इस पवश्वास का आधार कक घटनाएं एवं पूव शतनधारशरत तकशसम्मत पवधान के अनुसार सम्पन्न िोती रिेंगी और भपवष्य में वस्तुओंके अन्दर ऐसी कोई अस्तव्यस्तता भी न आएगी त्जसकी व्याख्या न की जा सके. पवश्व में व्यापक आध्यात्ममक पवधान िी तो िै। बुद्ध के प्रतत तनतान्त पवपरीत धारणा रखने ेपर भी यि िमें अवश्य िी किना पड़ेगा कक बुद्ध ने एक ऐसे

प्रचमलत ककस्म के धम शका उच्छेद ककया जो अधधकतर कायर पुरुषों के भय एवं ंर्त्तत की पूजा पर आधश्रत था, और ऐसे धम शको सुर्दढ़ ककया जो न्यायतनष्ठाि के ऊपर भरोसा रखता था। वे पवश्व को धाममकश मानतेिं, केवल यन्त्रवत् ्निीं, त्जसे वे धमकशाय की संज्ञा देते िैं और त्जसमें जीवन की धड़कन अनुभव की जा सकती िै। इस सब जीपवत एवं जंगम जगत् ्का ताना और बाना धम शिी िै। प्रमयेक प्राकृततक कारण उसी आममा की अमभव्यत्तत िै जो इस सब की पृष्ठिभूमम में काय शकर रिी िै। संसार के धाममकश आधार के सम्बन्ध में संर्य करना अनासत्तत की भावना से जो आचरण ककया जाता िै उसके साथ मेल निीं ंखा सकता। बुद्ध पर इस प्रकार की पवरोधाभासपूणू शत्स्थतत का आरोप लगाना िीक निीं ंिै।

19. कक्रयाममक धम श

मनुष्य के अन्तःकरण में जो धम-शसम्बन्धी सिज आन्तररक प्रे्रेरणा िै उसके मलए ईश्वर की आवश्यकता िै और इसमलए बौद्धधम शसरीखे कक्रयाममक धम शमें बुद्ध के अमयन्त तमपरता के साथ सावधानी बरततेरिनेपर भी उन्िेंएक देवता का रूप दे िी हदया गया। तयोंकक जब साररपुत्त ने उनसे किा: "मेरा ऐसा पवश्वास िै और म ैंऐसा सोचता िंूं कक न तो कोई मभक्षुऔर न कोई ब्रह्मा िी कभी आपसे अधधक मिान एवं अधधक बुद्धधमान िुआ िै, न िोगा," तब बुद्ध ने उत्तर हदया कक "तुम्िारे ये र्ब्द बित ब्र ेएवं ंसािसपूण शिैं। देखो, तुम परमाह्लाद के वर्ीभूत िोकर यि गा गए िो। अच्छा बताओ, तया तुमने ेउन सब बुद्धों के पवषय में ज्ञान प्राप्त ककया िै जो अतीतकाल में िो गए िैं ?" "निीं,ं प्रभो।" "तया तुमने ेउन सब वुद्धों के पवषय में जानकारी प्राप्त कर ली िै जो आगे िोंगे?" "निीं,ं प्रभो।" "ककन्तु कम-से-कम तुम मुझे ेजानते िो, मेरे चररत्र को जानते िो, मेरे मन को जानतेिो और मेरी बुद्धध, मेरे जीवन एवंमोक्ष को जानते िो ?" "निीं,ं प्रभो ।" "तुम देखतेिो कक तुम अतीतकाल के एवं ंभपवष्यत् ्के पूज्जय बुद्धों के पवषय में कुछ निीं ंजानते, तब कफर तुमने े इतना सािस पूण शकथन कैसा ककया ?"[970] तो भी मनुष्य की प्रकृतत ऐसी िै कक उसे दबाकर निीं ंरखा जा सकता। िमें उस बुद्ध का अनुकरण करना िै जो संसार की आंख (लोकचक्षु) और िमारा आदर् शिै, वि जो िमारे मलए पूणतशा के माग शका प्रकार् करता िै, जो अपनेको एक त्जज्ञासुसे अधधक और कुछ निीं ंमानता एवं ंत्जसने े समयमाग शकी खोज की िै और अन्यों के मलए भी यि सम्भव बना हदया कक वे उसके पदधचह्नों पर चल सकें, यिीं एकमात्र िमारा र्रणस्थान िै एवं ंजनसाधारण के देवता के समान िै।'[971]

---

970 मिापररतनव्वानसुत्त ।

971 तुलना कीत्जए: "इसी प्रकार िे ब्राह्मण, उन सब प्राणणयों के पवषय में भी िै तो अज्ञान में रिते िैं और बन्द िैं जैसेकक एक जीव अण्डे ेके अन्दर बन्द रिता िै। मनैं सबसे पिले अज्ञानरूपी अण्डे ेके ऊपर के तछलके को तोड़ हदया िै और अकेले िी इस संसार में उन्नत सावभशौममक बुद्धमव प्राप्त ककया िै। इस प्रकार िे ब्राह्मण, म ैंसबसे पुरातन एवं प्राणणयों में सबसे श्रेष्ठ िंूं।" (ओल्डनबग श: 'बुद्ध', पृष्ठ 325)। बुद्ध केवल एक मागदशर्कश िै।

द्वारा
बुद्ध प्रचमलत ईश्वर ज्ञान के स्वरूप को स्वीकार कर लेते िैं जोकक िमें दूसूरे लोकों के तनमाणश सान्मवना प्रदान करता िै, तयोंकक उन्िोंनेब्रह्मा आहद अन्य देवताओं के अंत्स्तमव को स्वीकार कर मलया।"[972]

भेद केवल इतना िै कक बुद्ध के मान्य देवता सब मरणधमाश िैं। बुद्ध पवश्व के आहदकारण एक स्रष्टा एवं कम शके ऊपर तनयन्त्रण करने ेवाले ईश्वर की सत्ता का तनषेध करते िैं, ककन्तु प्रचमलत पवश्वासों को मान लेते िैं एवं मनुष्यों और देवताओं के बीच पारस्पररक सम्बन्ध के पवषय में भी किते िैं। वे ऐसी धाममकश कक्रयाओं को भी स्वीकार कर लेते िैं जो िमें आकृततयुतत एवं आकृततपविीन तनम्नतर लोकों में जन्म ग्रिण करने ेमें सियता प्रदान करती िैं। बौद्धधम शकी प्रततष्ठा की बढ़ानेके पवचार से कभी-कभी यि भी सुझाया गया िै कक ब्रह्म एवं र्क्र (इन्द्र) ने भी बौद्धधम शमें दीक्षा ग्रिण की। इस प्रकार उन्िें भी मनुष्यों के समान िी ज्ञानप्रात्प्त की आवश्यकता रिती िै। यि सब ब्राह्मण या पौराणणक धम शकी परम्परा के अनुसार िै, त्जसमें यि किा जाता िै कक देवताओं को भी दैवीय स्तर पर पिुंचने ेके मलए पपवत्राचरण, यज्ञ-याग एवं तपस्या की आवश्यकता िोती िै। दैवीय आनन्दों के भोग लेनेके बाद जब उनका सत्ञ्चत पुण्य क्षय को प्राप्त िो जाता िै तब वे अन्य रूप धारण कर लेते िैं। ऐसी कथाएं आती िैं त्जनमें देवताओं को जीवन एवं ंर्त्तत की प्रात्प्त के मलए संघष शकरते िुए वणनश ककया गया िै। वे ेअपनी प्रततष्ठा एवं ंआधधपमय के मलए भी संघष शकरते िैं। जब दैवीय पद के नए उम्मीदवार अपनी तपस्याओं एवं ंपुण्यों का पयाप्शत पुञ्ज संग्रि कर लेते िैं जो उन्िें देवमव के योग्य बनातेिैं तब पुराने े देवता उनके माग शमें बाधाएंउपत्स्थत करते िैं।"[973] बौद्धधम शमें पुरानेदेवताओं को नये मसद्धान्त के अनुकूल बनाकर स्वीकार कर मलया गया िै ककन्तु उन्िें तनवाणशप्रात्प्त का लक्ष्य रखने वाले मभक्षुके अधीन माना गया िै। "ब्रह्मा को भी अपवद्या व्याप जाती िै, पवष्णु को भी मिान माया नेवर्ीभूत कर मलया त्जसमें भेद करना कहिन िै। र्ंकर ने अमयन्त आसत्तत के कारण पावतशी को अपनेर्रीर में संयुतत रूप में रखा, ककन्तुइस संसार में यि मिामुतन बुद्ध भगवान अपवद्या से रहित िै, त्जसे न माया व्यापती िै, और त्जसमें पवषयार्त्तत तो नाममात्र को निीं ंिै।"[974]

20. ज्ञान-पवषय मसद्धान्त

---

972 देणखए मिागोपवन्दसुत्त एवंतेपवंज्जसुत्त ।

973 मेनका एवं पवश्वाममत्र की गाथा जैसी गाथाएंइस तथ्य के दृष्टान्त िैं।

974 रामचन्द्रकृत भत्ततर्तक, 3।

बौद्धधम शके ज्ञान-पवषयक मसद्धान्त का प्रततपादन करते समय िम देखतेिं कक भौततकवादी के पवपरीत बौद्ध प्रमयडक्ष के अततररतडत अनुमान-प्रमाण को भी स्वडीकार करता िै ।'[975] यद्यपप बौद्धदर्नश के अनुमान प्रमाण एवं ंन्यायदर्नश के अनुमान में भेद िै, बौद्ध मत में केवल कारण एवं ंकाय शके मध्य सम्बन्ध स्थापपत ककया जा सकता िै जबकक नैयातयक अन्य प्रकार के भी सतत सािचय शके दृष्टान्तों को अनुमान के अन्तगतश स्वीकार करता िै। बौद्धदर्नश के अनुसार, िम काय शसे कारण का अनुमान कर सकतेिं, ककन्तु न्याय दर्नश के अनुसार कारण सै काय शको अनुमान करने ंके अततररतत लक्षणों के द्वारा उपलक्षक्षत वस्तुओंकी सत्ता का भी अनुमान कर सकतेिं। यि भेद पररणतत के बौद्ध मसद्धान्त के कारण िै। यद्यपप आगमनाममक अनुमान द्वारा प्राप्त सामान्य व्यापक मसद्धान्त, त्जनका आधार वस्तुओंके सािचय शके ऊपर िै, सवधशा यथाथ श निीं ंभी िो सकते, कारणकायमशसद्धान्त के आधार पर प्राप्त अनुमानज्ञान बराबर सिी िोता िै। सींग रखनेवाले सब पर्ुओं के खुर फटे िोतेिं, यि एक आनुभपवक सामान्य अनुमान िै जो अनुभव की सीमा के अन्दर सिी तनकलता देखा गया िै, यद्यपप यि तनतान्त रूप से समय निींभी िो सकता िै। ककन्तुधुएं को देखकर अत्ग्न की उपत्स्थतत का अनुमान करना ऐसा िै त्जससे तनषेध निीं ंककया जा सकता, तयोंकक यहद इस प्रकार के समय का तनषेध करनेलगें तो जीवन िी असम्भव िो जाएगा।

दो घटनाओंके बीच िम कारणकाय शसम्बन्ध कैसे स्थापपत कर सकतेिं? प्राचीन बौद्ध का किना िै कक यहद 'क' 'ख' से पूव शउपत्स्थत रिता िै और 'क' के लुप्त िो जानेपर 'ख' का भी लोप िो जाता िै और र्ेष सब अवस्थाएं विी रिें, तो मानना चाहिए कक 'क' 'ख' का कारण िै। यि व्यततरेक-प्रणाली ('मेथेड आफ डडफरेंस') किलाती िै। आधुतनक बौद्ध इसी मसद्धान्त को पररष्कृत करते िुए कारण के तामकामलक पूववशती अवयवों पर बल देते िैं। वे इस पर भी बल देते िैं कक िमें पूरी सावधानी बरतनी चाहिए कक अन्य पररत्स्थततयों में भी कोई पररवतनश िोना चाहिए। इस प्रकार वे ंकारणकाय शसम्बन्धी अनुमान के पूण शमसद्धान्त को पांच भागों में पवभतत करते िैं और इसीसे इसे 'पञ्चकारणी' की संज्ञा दी गई िै: (1) प्रथम भाग में िमें न तो कारण और न िी काय शका प्रमयक्ष िोता िै; (2) दूसूरे भाग में कारण प्रकट िोता िै; (3) तीसरे भाग में काय शप्रकट िोता िै; (4) कारण पवलुप्त िो जाता िै; (5) और काय शभी पवलुप्त िो जाता िै। तनःसन्दिे सि-अत्स्तमव पवषयक सम्बन्धों की भी स्थापना की जा सकती िै जैसेकक जातततयों एवं उपजातततयों के मध्य सि-अत्स्तमव का सम्बन्ध देखा जाता िै यद्यपप इसका प्रकार दूसूरा िी िै। यहद सािचय शके एक पवर्ेष स्वरूप के, अन्य कततपय स्वरूपों के साथ, कुछेक दृष्टांतों पर दृत्ष्टपात करें, और यहद उनमें से एक को कभी बबना दूसूरे के साथ के न देखा िो, तो िमें दोनों के बीच एक मौमलक तादामम्य का सन्दिे अवश्य िोगा। और यहद सन्दिे पुष्ट िो जाता िै और तादामम्य भी स्थापपत िो जाता िै तो सामान्य अनुमान पररणामतः तनकाला जा सकता िै। यहद िम एक पदाथ शको जानते िैं कक वि बत्रकोण िै तो िम उसे आकृतत का नाम अवश्य दे सकतेिं, तयोंकक पवमर्ष में सामान्य रूप का उपत्स्थत रिना आवश्यक िै िी, तयोंकक यहद यि आकृतत न िोती तो बत्रकोण भी न िो सकता। इसी प्रकार बौद्धों के अनुसार

[975] देणखए सवमशसद्धान्तसारसंग्रि, 34, 4, 18-22। ऐसा प्रतीत िोता िै कक प्राचीन बौद्धधम शनेउपमान और आप्त प्रमाणों को भी स्वीकार ककया था। मैत्रेये नेउपमान को और हदङ्नाग नेआप्तप्रमाण को छो़ हदया। देणखए, 'जनलश आफ द रायल एमर्याहटक सोसाइटी आफ बंगाल', 1905, पृष्ठ 179।

 कारणकाय-शसम्बन्धी पूवानुशपरक्रमों में और जातत-उपजातत-सम्बन्धी सिअत्स्तमव अथवा सिाचय शके र्दष्टान्तों
में सामान्य अनुमान का तनयम पाया जाता िै।

मि तनश्चयपूवकश निीं ंकि सकतेकक समय-सम्बन्धी उतत तनयम बुद्ध को अमभमत थे ेया निीं। जीवन के प्रतत तनरारा्पूण शर्दत्ष्टकोण, संसार, स्वग शएवं ंनरक इमयाहद की समस्त कल्पनाएं िीक उसी रूप में बुद्ध ने ले ली िैं जो उनके समय में प्रचमलत थीं। इससे केवल यिी स्पडष्टड िोता िै कक यथाथतशा की व्याख्या तनतान्त मौमलक रूप की िोने पर कक भी जनसाधारण के मन में प्रपवष्ट भूतकाल के संस्कारों को एकदम निीं उा् सकती। यहद िम बुद्ध के मसद्धान्त में के इस अंर् को त्जसे उन्िोंने ेबबना तकश द्वारा पवश्लेषण ककए अंगीकार कर मलया, तनकाल दें तो िम अनुभव करेंगे कक उनके दर्नश का र्ेषे भाग न्यूनाधधक रूप में संगत िी िै। उन्िोंने ेजगत् ्के आहदकारण एवं ंअत्न्तम लक्ष्य पर पवचार करने ेसे तनषेध ककया। उन्िें वास्तपवक जीवन से िी तामपय िै, परम यथाथसशत्ता से निीं। एक ऐसे ब्राह्मण को जो संसार की तनमयता अथवा अतनमयता से सम्बत्न्धत दार्तशनक तथ्यों के ऊिापोि में िी तनमग्न िै, बुद्ध ने किा कक मुझे ेकल्पनाओं से कुछ वास्ता निीं। बुद्ध की पद्धतत दर्नश-पद्धतत न िोकर एक प्रकार का यान या सवारी िै, यि एक कक्रयामक पद्धतत िै जो मोक्ष प्राप्त कराती िै।'[976] बुद्ध अनुभव का पवश्लेषण करते िैं, उसके यथाथ शस्वरूप में भेद करते िैं। चूंकक बौद्ध पवचारक पवश्लेषणामक पद्धतत को लेकर चलते िैं इसमलए उन्िें कभी-कभी पवभाज्जयवादी के नाम से भी पुकारा जाता िै। बुद्ध अपनेध्यान को इस संसार तक िी सीममत रखते िैं और देवताओं को एकदम निीं ंछूते, इसी प्रकार देवताओं से भी यिी आर्ा करते िैं कक वे भी उनके ध्यान में पवघ्न निीं ंडालेंगे। इत्न्द्रयातीत यथाथसशत्ताओं ं के प्रतत भािपूवकश नात्स्तकवाद का िी रुख बनाये िुए िैं, तयोंकक एकमात्र इसी प्रकार के मत की आनुभपवक तथ्यों, ताककशक पररणामों एवं ंनैततक तनयमों के साथ संगतत बि सकती िै। ककसी भी पवषय का उन्िोंने ेसवथशा तनराकरण निीं ककया अपपतु पृष्ट्भूमम को खुला छो् हदया िै, त्जस पर कोई भी मसद्धान्त-सम्बन्धी पुनरशचना की जा सकती िै। िमें इस पवषय को पवर्ेषे ध्यानपूवकश लक्ष्य करना िै कक इसका अथ शयि निीं ंिै कक बुद्ध संर्यवादी थे,े जो तनषेध में िी समस्या का िल पाते िैं। उनके कथन का एकमात्र तत्त्व यि िै कक पूणतशा के लक्ष्य के सम्बन्ध में वाद- पववाद ककए बबना पिले िम अपनेको पूण शबना लें। अध्याममर्ास्त्र-सम्बन्धी मसद्धान्तों के प्रतत वेइतनेउदासीन न थे। उनके प्रारत्म्भक अनुयातययों में बिुत-से ब्राह्मणमत या पौराणणक मत को मानने े वाले भी पाये जाते िैं। ब्रह्मजालसुत िमें ऐसे भी मशष्यों का पररचय देता िै जो प्रकटरूप से बौद्धमत के पवरुद्ध भाषण करते थे। बुद्ध के उपदेर् अपनेब्राह्मण एवं बौद्ध अनुयातययों के मलए एक साथ िी िोतेथे। जब तक िम इस संसार में िैं, िम सांसाररक िैं, और इसमलए बुद्ध का किना िै कक जो अव्याख्येय िै उसकी व्याख्या करने ेके सब प्रकार के प्रयमनों को छो् देना चाहिए और अध्याममपवद्या-सम्बन्धी समस्याओं के पववादों में निीं ं पड़ना चाहिए। इस प्रकार के पववादों को वे े'बुद्धध का प्रेमालाप' कितेथे। पवधममयशों को फुसलाने ेके मलए न तो उन्िोंने ेकभी पववर् ककया और न ऐसा कोई चममकार िी हदखाया। उनकी सम्मतत में आंतररक प्रेरणा िी िमें समय का माग शहदखलाती िै, और इस प्रकार उन्िोंने अपने मशष्यों को प्रेम एवं ंदान सम्बन्धी कमों में िी तनरत

976 मत्ज्जझमतनकाय ।

रिने ेका उपदेर् हदया। दार्तशनक ज्ञान निीं ंअपपतु केवल र्ात्न्त िी आममा को पपवत्र करती िै। नैततक जीवन के द्वारा जब अगाध प्रकार् उमपन्न िोगा तभी िमें यथाथ शज्ञान की प्रात्प्त िो सकती िै, और इसमलए अपनी दुबुलश बुद्धध के द्वारा उसकी पिले से िी धारणा तयों बना लें ?

इस तथ्य पर पवर्ेषे रूप से ध्यान आकृष्ट िोता िै कक बुद्ध मौन साधकर ऐसे सब प्रश्नों को जो अध्याममर्ास्त्र से सम्बन्ध रखतिैं, टाल देते िैं, इस आधार पर कक नैततक दत्ष्ट से उनका कोई मित्त्व निीं। बुद्ध के मौन में कौन-सा वास्तपवक गम्भीर आर्य तछपा िै? तया वे समय को जानते थे और तब भी जान-बूझकर उसे प्रकामर्त करने ेसे इन्कार करते थे? तया वे ेतनषेधाममक रूहढ़वादी थे,े त्जन्िोंनेआममा एवं ईश्वर के अत्स्तमव का सवथशा तनषेध ककया ? अथवा तया वे इस प्रकार के पववादों को तनष्फल समझतेथे?े अथवा तया उनका पवचार यि था कक इस प्रकार की कल्पनाममक प्रवृपृत्त एक प्रकार की दुबुलशता िै त्जसे प्रोमसाहित करना उधचत निींिै? बौद्धधम शका अध्ययन करनेवाले अनेक पवद्याथी सोचते िैं कक बुद्ध ने ईश्वर एवं आममा के भाव को सवथशा िी उड़ा हदया और यि कक त्जतना अभी तक िमें बताया गया िै उनसे किीं ंअधधक तनत्श्चतरूप में वे नात्स्तक या अनीश्वरवादी थे। इस प्रकार की तनषेधाममक व्याख्या का समथनश नागसेन, बुद्धघोष, एवं ंउन हिन्दू ूपवचारकों ने भी ककया िै त्जन्िोंनेइस पद्धतत की समीक्षा की िै, यि भली-भांतत पवहदत िै। और न िम इस पवषय का िी तनषेध कर सकतिैं कक बौद्धधम शने बिुत प्रारत्म्भक अवस्था में िी अपना तादाममय तनषेधाममक अध्याममर्ास्त्र के साथ स्थापपत कर मलया। ककन्तु िमारा किना यि िै कक स्वयंबुद्ध ने इस प्रकार के तनषेधाममक मत का किीं ंभी आश्रय निींमलया िै, ककन्तु उनके प्रारत्म्भक अनुयायी जब इन समस्याओं पर पवचार करते थे ेऔर बुद्ध उत्तर में मौन साध लेते थे तो उनके इस प्रकार के मौन से िी ऐसी व्याख्याओंकी सृतूष्ट िुई प्रतीत िोती िै। ककन्तु बुद्ध का इस प्रकार का मौनधारण या तो परमसमय के पवषय में अज्ञान का द्योतक िो सकता िै, अथवा मोक्ष के माग शकी ओर जो सबके मलए खुला था, संकेत करना भी िो सकता िै, तयोंकक उनके मत में आध्यात्ममक पवषयों की ओर झुकाव न रिने पर भी मोक्षप्रात्प्त सम्भव िै। इसमलए बुद्ध के मौन के नाना प्रकार के अथ शलगाए जा सकतिैं, यथा, (1) यि नात्स्तकता के भाव को प्रकट करनेवाला था; (2) अथवा यि नैततकता एवं मनुष्यजातत के प्रतत प्रेम की ओर पूरा ध्यान देना चािता था। बौद्धधम शका प्रततपादन करने ेमें मिनेप्राय: बलपूवकश यिी किा िै कक बुद्ध के द्वारा आममा के अत्स्तमव से तनषेध के पवरुद्ध की गई स्पष्ट घोषणाएं एवं तनवाणश की र्ून्यता समझने ेके पवरुद्ध घोषणाएं और एक अनुपाधधक यथाथसशत्ता के सम्बन्ध में की गई घोषणाएं, त्जनको प्राप्त करने ेके मलए सोपाधधक संसार के छोड़ने ेकी कल्पना की जा सके, एक तनषेधाममक दर्नश के साथ संगत निीं ंिो सकती। यि तथ्य कक बुद्ध ने अनुभव ककया कक उन्िोंने समय को ढूंढ़ मलया िै और वे ेअन्य मनुष्यों को समय के माग शका पथप्रदर्नश भी करा सकतिैं, नात्स्तकवाद की द्पवतीय कल्पना के पवरुद्ध बिैता िै। यहद उन्िोंने समय को न जाना तो वे ेअपने को बुद्ध अथवा ज्ञानी न किते। (3) अब तीसरी कल्पना र्ेष रि जाती िै कक बुद्ध परमाथ-शपवषयक सब समस्याओं के पवषय में पूण शज्ञान रखते थे, ककन्तु ुवे जनसाधारण के अन्दर, जो उनका उपदेर् सुनने ेको एकत्र िोतेथे उन समयों की घोषणा इस डर से निीं ं

करना चिाते थे ेकक किंउनके मन पवचमलत न िो जाएं।'[977] यि समाधान िमें सबसे अधधक सन्तोषजनक प्रतीत िोता िै। एक अवसर पर बुद्ध ने कुछ सूखे पते्ते जिए और उन्िें अपनी िथेली पर रखकर आनन्द से पूछा कक मेरे िाथ में ये त्जतने ेसूखे पते्ते िैं तया इनसे अधधक पते्ते भी िैं। आनन्द ने उत्तर हदया, पतझ़ का मौसम िै

इसमलए पते्ते बराबर झ़कर सब हदर्ाओंमें धगर रिे िैं। इसमलए त्जतने पत्तों को िम धगन सकतेिैं उनसे किंीं ं अधधक संख्या में पते्ते पवद्यमान िैं।" तब युद्ध ने किा कक "इसी प्रकार मनैं ेतुम्िारे आगे केवल मुट्ठीभिर समयों की िी व्याख्या की िै ककन्तु इसके अततररतत िारों समय ऐसे िैं त्जनकी संख्या धगनती में निीं ंआ सकती।"[978] तामपय शयि तनकला कक बुद्ध के अपने िी कथन के अनुसार आनुभपवक जगत्–सम्बन्धी समयों के अततररतत, त्जनका प्रकार् उन्िोंने ेककया, दूसूरे भी समय िैं। त्जस प्रकार का ज्ञान बुद्ध ने स्वयंप्राप्त ककया उसके मलए नैततक तैयारी की आवश्यकता िै इसमलए अपनेउद्देश्य की मसद्धध के मलए स्वयंबुद्ध ने िी इस पवषय पर अन्यों के मलए भी आग्रि ककया िै। बुद्ध का इस प्रकार का भाव दार्तशनक दृत्ष्ट से सवथशा युत्ततयुतत िै। वे मनुष्य के ज्ञान की सीमाओंसे पररधचत थे ेऔर इसमलए उन्िोंनेतकश द्वारा जानने ेयोग्य पवषय एवं अज्ञेय पवषय के मध्य पररधध की रेखा खींच दी। वे यि अनुभव करते थेकक िमारी इत्न्द्रयां पररणत पदाथों का ज्ञान प्राप्त कर सकती िैं और पररणत वस्तुएं वास्तव में सत् ्निीं ंिैं। इसपर भी उपतनषदों के साथ सिमत िोतेिुए वे अनन्त के रिस्य को मानतेिैं। जब पररममत त्तत वाली बुद्धध अपनेत्जम्मे तनमयता को काल की पररधध में बांधनेका एवं पवर्ालता को देर् की अवधध में बन्द करने ेका काम ले लेगी, त्जसका कभी अन्त निीं ंिो सकता, तो पवरोधाभासों के चतकर में आकर यि अपांग िो जाएगी। जो कल्पनातीत िै उसकी िम कल्पना निीं ंकर सकते। सत् ्के पवषय में पवचार करने ेका एवंयथाथतशा को समझनेका िरेक प्रयमन उसे अनुभव का पवषय बना देते िैं। मनुष्य के मन की पिुंच से यथाथसशत्ता िमेर्ा िी बािर रिेगी तयोंकक मनुष्य स्वयंअपवद्या की उपज िै। ऐसा ज्ञान जो 'म'ैं और 'तू' में भेद करता िै, परमज्ञान निीं ंिै। मनुष्य एवं समय के बीच तक ऐसा आवरण िै त्जसके बीच में प्रवेर् करना कहिन िै। तो भी यि समय अथवा ज्ञान त्जसे िम प्रमयक्ष निीं ंकर सकतेया निीं जान सकते, अयथाथ शनिीं ंिै। "िे नागसेन, ज्ञान का तनवास किााँ?" "राजन्, ्किंीं निीं।" "भगवन्, ्तब कफर ज्ञान कोई वस्तु निीं ंिै।" "राजन्, ्वायु का तनवासस्थान किााँ?" "किंीं ंभी निीं।" "राजन्, ्तब कफर वायु नाम का कोई पदाथ शनिीं ं?" बुद्ध का किना िै कक परम यथाथतशा को तकश के द्वारा प्रमयक्ष निीं ंहदखाया जा सकता, अथवा मसद्ध निीं ंककया जा सकता, ककन्तु ुतो भी वे ेयि कभी निींकिते ेकक इसीमलए उसकी सत्ता निीं ंिै। बुद्ध

की एतद्पवषयक सम्मतत को कपव गेटे के 'फाउस्ट' की इन पंत्ततयों में रखा जा सकता िै : "उनका नाम रखने ेका कौन सािस कर सकता िै ? इसी प्रकार उसके पवषय में इस प्रकार का कथन करनेका भी कौन सािस कर सकता िै कक म ैंउसमें पवश्वास करता िूं ? ऐसा कौन िै जो इतना सािसी हृदय रखता िो कक कि सके कक म ैंउसके अत्स्तमव को निीं ंमानता ?"

ब्रह्म की यथाथतशा का आधार बुद्ध वेद के प्रमाण के अनुसार बनानेके पवचार से सिमत निीं ंिैं, तयोंकक जिांएक बार िमनेईश्वरीय ज्ञान की गवािी को स्वीकार ककया तो कफर उसका किंीं ंअन्त निीं। इस

977 देणखए भगवद्गीता, 3:26।

978 आनन्दाचायशके ब्रह्मदर्नश म् पृष्ठ िै 10, मेंउद्धृत्।

 प्रकार तेपवज्जजसुत्त में ऐसे व्यत्ततयों की तुलना जो वेद के प्रमाण के आधार पर ब्रह्म में पवश्वास करते िैं एवं
उसके साथ ममलना चािते िैं, उन लोगों से की गई िै जो ककसी ऐसे ऊंचेभवन के ऊपर पिुंचने के मलए चौरस्ते पर एक सीढ़ी बनातेिैं त्जसके पवषय में यि भी निीं जानते कक वि भवन किां िै और कैसा िै एवं ककस चीज से बना
िैऔर वि िै भी या निीं। और यि भी समय िै कक बुद्ध ऐसे प्रयमनों को प्रोमसाहित निीं करते जो अज्ञात वस्तु की गिराई को नापनेके मलए ककए गए िों।979

त्जन वस्तुडओं का ज्ञान प्राप्डत करने के मलए िमारी बुद्धधयांअपयाप्शत िैं ऐसी वस्तुओंके सम्बन्ध में पववाद करना अपनेअमूल्य समय को नष्ट करना िै। इसके अततररतत बुद्ध ने अध्याममपवद्या-सम्बन्धी पुराने पववादों के इततिास से यि भी पररणाम तनकाला कक जब िम कल्पना के सूक्ष्म वायुमण्डल में उने्‍ का प्रयमन करते िैं तो यि िोस पृथ्वी एवंनैततक पवधान िमारे पैरों के नीचेसे हिलनेलगते िैं। इसमलए वे िमें आदेर् देते िैं कक िम मातृसूवरूप भूमम की ओर वापस लौट पें एवं वृथा पखों को फफ़ ‌‌‌‌‌ाते िुए परम सत्तारूपी रूनूय आकार् में न खो जाएं। अध्याममपवद्या-सम्बन्धी समस्याओं के प्रतत प्रश्नकताओंश की गिरी रुधच को वे उनकी कल्पनाममक प्रवृपृत्त का प्रमाण मानतेथे। इस प्रकार इस कल्पनाममक प्रवृपृत्त को भी युद्ध ने पांच प्रकार के पाखण्डों में सत्म्ममलत ककया िै। नैततक पवषयों में अमयन्त ग्रस्त रिने के कारण िी वुद्ध अध्याममपवद्या-सम्बन्धी समस्याओंके पवषय में बराबर अतनत्श्चत रिते िैं। अपने समय की द्पवपवधा में और कुछ जोने् के अतनच्छुक बुद्ध िमें आदेर् देते िैं कक िमें समझ में आने योग्य पवषयों तक िी अपनेको सीममत रखना चाहिए।

अध्याममपवद्या-सम्वन्धी समस्याओं के पवषय में काण्ट एवं बुद्ध में बिुत कुछ समानता पाई जाती िै। दोनों िी एक ऐसे समय में जन्म मलया जबकक दर्नशर्ास्त्र का क्षेत्र दो पवरोधी पक्षों अथात् श ्अध्याममपवद्या-सम्बन्धी रूहढ़गत परम्पराओंएवं संर्यवाद में बंटा िुआ था। दोनों िी अनुभव करते थे कक परम्परागत तकश की प्रकक्रया के आधार के अन्दर गिराई तक जानेकी आवश्यकता िै, और दोनों िी नैततक मसद्धान्तों की मान्यता की रक्षा के मलए आतुर थे। दोनों का आदेर् िमें यि िै कक िमें अतीत्न्द्रय पवषयों की यथाथतशा को तकश के द्वारा जानने का प्रयमन करना रोक देना चाहिए। उतत दोनों िी मिापुरुषों की दृत्ष्ट में अध्याममपवद्या ऐसी समस्याओं को िल करने में असमथ शिै जो तकश के द्वारा वस्तुओंके गुप्त स्वभाव के पवषय में उमपन्न िोती िैं। जैसे िी िम उन्िें बुद्धि के द्वारा ग्रिण करने की चेष्टा करेंगे, िम नाना प्रकार के असमयाभासों एवं पवरोधों में खो जाएंगे। दोनों िी नैततक पवधान को जीवन का सवोपरर मागदर्शकश समझतेिैं। यि एक ऐसा पवधान िै जो देवताओं एवं मनुष्यों से ऊपर िै, सदा से रिा िै और सदा रिेगा। नैततक पवधान के पवषय में संर्य (पवधचककमसा) रखना एक बा़ पाप िै जो मोक्ष का घातक िै।

परमाथ-शसम्बन्धी समस्याओं को पीछे छो़ देनेकी प्रवृपृत्त के पवषय में िमें यिी किने के मलए बाध्य िोना प़ता िै कक यि एक दुभाग्शय का पवषय िै। मनुष्य परमाथ-शपवषयों के दार्तशनक ज्ञान की त्जज्ञासा के बबना

---

979 फ्ांमसस बेकन बुद्ध के िी भाव के अनुकूल किता िै कक अत्न्तम लक्ष्य, देवता को समपपतश की गई कुमारी कन्याओंकी भांतत, बांझं िैं।

निीं ारि सकता। जब बुद्ध यि किते िैं कक जो कुछ िमारे सम्मुख िै वि सब संस्कृत िै, तो स्वभावतः प्रश्न उिता िै-तया असंस्कृत भी इस पवश्व में कुछ िै ? इस प्रकार की समस्याएं-जैसे कक तया इस संसार का कोई आरम्भ िै, तया आममा अमर िै, तया मनुष्य एक स्वतंत्र कत्ता िै, तया इस संसार का कोई सवोपरर कारण िै-मनुष्य-जातत की मित्त्वाकांक्षाओं के साथ अपरररिाय शसम्बन्ध रखती िैं, और इर्न्िें यों िी एक ओर िटाया निीं ंजा सकता। िमारे मलए इन समस्याओं को सुलझाना भले िी सम्भव न िो, ककन्तुउिने से अपनेको रोके रखना भी सम्भव निीीं। यहद मनुष्य पदाथों के समय को न जान सके तो उसकी प्रततष्िा में कोई िातन निींितीी, ककन्तु ु उसी प्रततष्िा की यि भी मांगं िै कक मनुष्य को ऐसी समस्याओंके प्रतत उदासीन भी न रिना चाहिए। बुद्ध िमें किते िैं कक िमें गिराइयों में दृत्ष्टपात करने ेके प्रलोभन से चौकन्ना रिना चाहिए, तयोंकक अगाध गिर को माप सकना िमारे सामथ्य शके बािर की बात िै। ककन्तु अतीत्न्द्रय पवषयों का त्जज्ञासा-सम्बन्धी उनका कट्टरतापूण श तनषेध अन्त में जाकर सफल न िो सका।'[980] बौद्धधम शका इततिास अध्याममपवद्या की अतनवायतशा की ओर तनदेर् करता िै। समय के पवषय में इससे बढ़कर और ज्जवलन्त प्रमाण तया िो सकता िै कक िम अध्याममपवद्या का पवरोध करते िैं, ककन्तु अन्त में चलकर िमें उसी अध्याममपवद्या में तनमग्न िोना पड़ता िै।

अतनणयश अथवा संहदग्धता में सदा भलाई िो ऐसी बात निीं, तयोंकक बुद्ध की अध्याममपवद्या-पवषयक अतनत्श्चतता ने उनके मशष्यों को इस योग्य बना हदया कक वे मभन्न- मभन्न पद्धततयों का सम्बन्ध बुद्ध के प्रवचनों के साथ जोड़ने ेलगे। उसकी सावधानता-भरी प्रवृपत्तयों नेतनषेधाममक दर्नश-पद्धततयों के पवकास को जन्म हदया और उनकी अपनी मशक्षा उसी कट्टरता अथवा रूहढ़ का मशकार बन गई त्जससे बचनेके मलए वे स्वयंबराबर इतने ेआतुर रिे। जैसाकक िम देख चुके िैं, नागसेन में सवोपरर यथाथसशत्ता एक तनराधार धारणा बन गई। वि ज्ञेय एवं ंअज्ञेय के बीच के भेद का खण्डन करता िै। वस्तुओं का ज्ञान उनकी दृत्ष्ट में सापेक्ष निीं ंरि जाता। यि यथाथ शएवं ंतनरपेक्ष िै। अनुभव से परे कुछ निीं। यथाथ शएवं ंअनुभवजन्य, उसके मत में एकसमान

---

980 "यहद िम समझतेिैं कक सुदूरू त्स्थत ज्ञानरूपी लक्ष्य तक िम अवश्य पिुंच सकतेिैं तो एक भोले- भाले ककन्तु बुद्धधमान व्यत्तत के मलए यि कि देना कक उसके बबना भी िमारा काम चल सकता िै, व्यथ शिै। तयोंकक ज्ञान को आगे बढ़ाने का जो एक प्रकार का आह्लाद िै वि तुरन्त कत्तव्शय का रूप ले लेता िै और उस अवस्था में जान-बूझकर तकश के ऊपर प्रततबन्ध लगाना ऐसा प्रतीत िोता िै कक यि ज्ञान भोलापन निीं अपपतुमूखतशा िै, जो िमारे स्वरूप की उन्नतत में बाधा उपत्स्थत करती िै। तयोंकक आममा का स्वभाव, मोक्ष, तनयतत और आगामी जीवन इमयाहद प्रश्न तुरन्त बुद्धध की समस्त र्त्ततयों को कक्रयात्न्वत कर देते िैं और अपने मित्त्व के कारण ििात् ्मनुष्य को कल्पना करने का एक ऐसा ज्जवर-सा चढ़ा देतेिैं कक त्जसके आवेर् से वि उतत सूक्ष्म पवषयों को भी ग्रिण करके तनणयश करने, उनके सम्वन्ध में तनश्चयपूवकश कि सकने, वाद-पववाद उपत्स्थत करने में अन्तर्दृत्ष्ट एवं प्रमयेक नये रूप को साथ लेकर काय शकरने की क्षमता प्राप्त कर लेता िै। ककन्तु इस प्रकार की उद्दाम कल्पनाओं ंके मलए सीमा तनयत करना तभी सम्भव िोता िै जबकक इस प्रकार के पववाद एक दर्नशपद्धतत का रूप धारण कर सकें, तयोंकक यि काय शक्रमबद्ध दर्नशपद्धतत का िी िै कक वि अपनी प्रकक्रया को भी जांचं ले एवं केवल पदाथों की व्याख्या तक िी सीममत न रिकर, मानव-मत्स्तष्क की र्त्तत के साथ उनका तया सम्बन्ध िै इसका भी ज्ञान प्राप्त कर ले। साधारण ज्ञानसम्पन्न व्यत्तत त्जन पवचारों को आसान एवं सरल समझता िै उनके अन्दर खड़ी िो जाने वाली कहिनाइयों को केवल दर्नशपद्धतत िी ढूंढ़कर तनकाल सकती िै। दर्नशर्ास्त्र का ज्ञान आगे बढ़कर मिारी उस ज्ञानपवषयक भ्रांतत को भी दूरू कर सकता िै जो अभी तक र्ेष िै और िमें तनदेर् कर सकता िै कक ऐसेपदाथ श मनुष्य की बुद्धध के क्षेत्र्े से एकदम परे िैं।" (केवड श'कफलासफी आफ काण्ट', खण्ड , पृष्ि 1421) ।

भारतीय दर्नश -1 397 िैं। सापेक्ष िी परम तत्त्व िै। सच्ची अध्याममपवद्या का मसद्धान्त विी िै जो अनुभव का मसद्धान्त िो, न कक जो
पृष्ठभूमम में अपनेको पदो में तछपाए िुए िो। िमें यि तथ्य स्वीकार करना िी िोगा कक संसार की सीमाएं न तो देर् से बद्ध िैं, और न िी काल से उसके प्रारम्भ का पवधान बताया जा सकता िै। सृतूष्ट के अततररतत अन्य ककसी कारण सम्बन्धी कल्पना का प्रयोग इसकी व्याख्या के मलए आवश्यक निीं िंै। बुद्ध के अन्य अनुयातययों ने भी इस संसार के स्वरूप के सम्बन्ध में हदए गए बुद्ध के तनणययशों को, अध्याममपवद्या-सम्बन्धी अपनी-अपनी योजनाओं के आधार पर, आपनेअनुकूल बना लेनेके प्रयमन ककए।

21. बौद्धधम शऔर उपतनषदें

जो त्जज्ञासु ुअतीत की पवचारधाराओंको कफर से सुसंगहित करने ेकी इच्छा रखता िै उसके पास मसवाय अपवरत प्रगतत अथवा ताककशक पवकास के और कोई तनत्श्चत सफलता प्राप्त करानेवाली कुंजी निीं िंै। बुद्ध ने अन्धकार के प्रतत िाहदशक घृणा एवं ंप्रकार् के प्रतत पे्रम के कारण समस्त गूढ़ रिस्यों को एकदम छो़ देना िी ठिक समझा। उनकी इस कायपशद्धतत से स्पष्ट एवं तनत्श्चत पवचारधारा को तो लाभ िुआ, ककन्तु इसके अन्दर कुछ दोष भी थे।े बुद्ध की मर्क्षा में गिराई की कमी रिी एवंएक व्यवत्स्थत या संगहित स्वरूप का अभाव रिा। उनके पवचार असंस्कृत रूपरेखाओं के रूप में िी रि गए, जो परस्पर एक-दूसरे से अलग-अलग थे। उनके पवचारों के आन्तररक सम्बन्ध स्पष्ट लक्षक्षत निीं िंुए। इस प्रकार का एक वातावरण केवल जो मभन्न-मभन्न अवयवों को ममलाकर एक आध्यात्ममक पूणतशा को सम्पाहदत करने ेमें सफल िो सकता िै, परोक्षरूप में, पवद्यमान था। मानव-मत्स्तष्क को, जो स्वभाव से व्यवस्थापक िै, अपनेपवचारों एवं ंमसद्धान्तों को एक सुव्यवत्स्थत पद्धतत के अवयवरूप में िी मानना चाहिए, और इसी मन की सिज अन्तःपे्ररणा के कारण िमारे मलए इस पवषय को खोजनेकी आवश्यकता अनुभव िोती िै कक ककस प्रकार बुद्ध की मर्क्षा की पृष्ठभूमम में एक मसद्धान्त की एकता काम कर रिी थी। उपतनषदों की पृष्ठभूमम में जो अध्याममपवद्या थी केवल विी इस प्रकार की अध्याममपवद्या थी जो बुद्ध के नैततक अनुर्ासन का उधचत आधार बन सकती थी। बौद्धधम शकेवल उस पवचारधारा के आन्दोलन का एक परवती रूप था त्जसक पूववशती रूप उपतनषदें थीं। "उपतनषदों के बिुत-से मसद्धान्त तनःसन्दिे पवर्ुद्ध बौद्धधम शके िी मसद्धान्त िैं, अथवा इसे यों किना अधधक संगत िोगा कक अनेक पवषयों में बौद्धधम शने िीकि–िीक रूप में उन्िीं मसद्धान्तों को कक्रयामक रूप हदया जो उपतनषदों में प्रततपाहदत ककए गए थे।"[981] बुद्ध स्वयंको ककसी नवीन व्यवस्था का संस्थापक न समझकर केवल प्राचीन माग शका पुनरुद्धारक समझतेथे,े और वि माग शउपतनषदों का माग शथा। बौद्धधम शएवं ंउपतनषदें दोनों िी वेदों की प्रामाणणकता का खण्डन करते िैं, जिां ंतक कक उनके दर्नशर्ास्त्र-सम्बन्धी पवषय का सम्बन्ध िै। कक्रयाममक रूप में दोनों ने अपनेसे पवपरीत पवश्वासों के साथ एक प्रकार की सत्न्ध कर ली, इसके फलस्वरूप ऐसे अनेक व्यत्तत त्जन्िोंने मसद्धान्त रूप में उनकी मर्क्षा को ग्रिण कर मलया था, कक्रयाममक रूप में कफर भी दूसरे देवताओं की पूजा करते रिे। इस पवषय में बौद्धधम शउपतनषदों की अपेक्षा समझौते के मलए कम उद्यत िुआ।

---

981 मैतसमूलर : 'सैक्रेडबुतसआफदईस्ट', खंड 15, भूममका, पृष्ठ 37।

दोनों ने यन्त्रवत् ्यज्ञ-याग आहद अनुष्ठानों एवं अपवचारपूण शकमकशाण्ड के कक्रयाकलापों के पवरुद्ध आवा़ जिाई। दोनों इस पवषय का बलपूवकश प्रततपादन करते िैं न तो यज्ञ आहद से और न िी तपश्चयाश से बार-बार जन्म ग्रिण करनेसे छुटकारा ममल सकता िै। केवल समय के साक्षामकार द्वारा एवं यथाथसशत्ता के ज्ञान द्वारा, जो समस्त जीवन का आधार िै, िमें मोक्ष की प्राप्त िो सकती िै। व्यत्तत की वास्तपवकता से तनषेध करने ेकी प्रवृपृत्त दोनों में समान िै। इस प्रकार का भाव कक यि जीवन दु:खमय िै और यि कक िम परलोक-जीवन के मलए तरसते िैं, दोनों को एकसमान मान्य िै। दोनों िमें जीवन के आवेर्युतत ज्जवर से मुतत िो जानेके मलए प्रबल प्ेरेरणा करते िैं। उपतनषदों की मित्त्वपूण शमर्क्षा एवं ंसमस्त जीवन की एकता को बुद्ध ने स्वीकार ककया। दोनों की र्दत्ष्ट में जीवन एक प्रकार की मित्त्वपूण शपुण्य यात्रा िै त्जसमें िम नीचेभी धगर सकते िैं अथवा ऊपर भी चढ़ सकतेिैं। बौद्ध नीततर्ास्त्र की सावभशौममकता के प्रतत प्रवृपृत्त कोई नई वस्तु निीं ंिै। दोनों स्वीकार करते िैं कक तनरपेक्ष परमसत्ता का बोध बुद्धध के द्वारा निीं ंिो सकता। बुद्ध द्वारा हदया गया परमसत्ता का पववरण कक वि न तो र्ून्य िै, न अर्ून्य िै, न दोनों िी िै एवं ंदोनों में से अन्यतम भी निीं ंिै, िमें उपतनषदों के इसी प्रकार के अनेक वातयों का स्मरण कराता िै। यहद यथाथ शकुछ निीं िै, और यहद पवधध का पवधान ऐसा िी िै कक िम सदा के मलए अज्ञान में िी रिें तो िमारे अन्दर युतत पवषय-सम्बन्धी कभी र्ांत न िोने वाली उमसुकता, जो िमें खाए जाती िै, उमपन्न न िोती। बौद्धधम शमें आममा, संसार एवं इसी प्रकार की अन्य समस्याओं की व्याख्या में िमें उपतनषदों के पाररभापषक र्ब्दों का प्रयोग ममलता िै, यथा नामरूप, कमपशवपाक, अपवद्या, उपादान, अिशत, श्रमण, बुद्ध, तनवाणश, प्रकृतत, आममा तनवृपृत्त इमयाहद। बौद्धधम शने उपतनषदों के दार्तशनक मसद्धान्तों को, जो उस समय तक कुछ थो़े-से चुने िुए लोगों तक िी सीममत थे,े जन-साधारण के अन्दर प्रचाररत करने ेमें सिायता दी। इस प्रकक्रया की यि मांग थी कक ऐसे गिन दार्तशनक समयों को त्जन्िें साधारण जनता को स्पष्ट रूप में निीं ं समझाया जा सकता, व्याविाररक उद्देश्य को आगे रखकर एकदम र्दत्ष्ट से ओझल कर हदया जाए। बुद्ध के धमप्रशचार का उद्देश्य यि था कक उपतनषदों के आदर्वशाद को उसके उमकृष्टरूप में स्वीकार करके, उसे मनुष्य-जातत की दैतनक आवश्यकताओंके मलए उपयोगी बना हदया जाए।'[982] ऐततिामसक बौद्धधम शसे तामपय िै उपतनषदों का जनसाधारण में प्रचार। इस प्रकार से बौद्धधम शने अपनेपीछे एक ऐसी पवरासत छो़ी जो आज तक भी जीपवत िै। इस प्रकार के सावजशतनक मिान पररवतनश हिन्दूजातत के इततिास में बराबर िोतेरिे िैं। उस समय में जबकक मिान ऋपष-मुतनयों के तनधधरूप ग्रंथ कततपय व्यत्ततयों की िी तनजी सम्पपत्त बन गए थे,े तब मिान वैष्णव रामानुजाचाय शने उन रिस्यमय ग्रन्थों का प्रचार अस्पृशृय समझी जानेवाली जाततयों में भी ककया। िम किने ेको कि सकतेिैं कक ब्राह्मणधम शके अपनेमौमलक मसद्धान्तों में वापस लौट आने ेका नाम बौद्धधम श िै। बुद्ध कोई ऐसा क्रात्न्तकारी निीं ंथा कक त्जसने ेउपतनषद् के मसद्धान्तों की प्रततकक्रयारूपी लिर चलाकर ख्यातत एवंसफलता प्राप्त की, बत्ल्क उसका उद्देश्य एक सुधारक के रूप में उपतनषदों के प्रचमलत मसद्धान्तों के ढांचे में पररवतनश करके उसमें प्रततपाहदत समयों को, जो भुला हदए गए थे,े कफर से प्राधान्य में लाना था। बुद्ध की मर्क्षा में जो प्रधान दोष िै वि यि िै कक उन्िोंने ेअपनेनैततक प्रचार के उमसाि में केवल समय के आधे हिस्से को लेकर उसे मित्त्व हदया और इस रूप में प्रततपादन ककया कक मानो विी समय का पूणरूशप िो। अध्याममपवद्या

982

देणखएिेम्स : 'दक्रीडआफबुद्ध। '

 के प्रतत उनकी अरुधच ने उर्न्ें यि अनुभव करनेसे वंधचत रखा कक आंमर्क समय का एक अतनवायपूशरक भी रिता
ैंऔर उसका आधार ऐसे मसद्धान्त िोतेिैं जो उसे अपनी स्वतनममतश सीमाओंसे भी परे ले जाते िैं।

22. बौद्धधम शऔर सांख्यदर्नश

कुछ ऐसे भी पवचारक िैं त्जनकी सम्मतत में बौद्धधम शएवं जैनधम शदोनों का आधार सांख्य मसद्धान्त िै। बनूंफ के पवचार में, बौद्धधम शने केवल सांख्य के मसद्धान्त को िी कक्रयामडमक रूप बना हदया। वेबर के अनुसार, यि असम्भव निीं ंिै कक सांख्यदर्नश के ग्रन्डथकार कपपलमुतन और गौतम बुदुध एक िी व्यक्तत रिे िों, और अपनी इस कल्पना के समथनश में वि िमारा ध्यान इस घटना की ओर आकृष्ट करता िै, बुद्ध का जन्म कपपलवस्तु समक नगर में िुआ। दोनों की दर्नशपद्धततयों की एक िी सामान्य धारणा िै, अथात्श ्यि कक जीवन दु:खमय िै। ये दोनों ब्राह्मणधम शके तनम्नस्तर के अल्पजीवी देवताओं ंको मानते िैं, ककन्तु सवोपरर तनमयदेव की सत्ता के पवषय में मौन िैं। पवल्सन मलखता िै कक प्रकृतत के तनमयमव से सम्बन्ध रखनेवाले कुछेक पवषय, द्रव्यों के तत्त्व एवं अन्ततम अवसान आहद सांख्य एवं ंबौद्धधम शमें समान िैं। जैकोबी और गाथ शके अनुसार, सांख्य की द्वैत एवं तत्त्वों की गणना सम्बन्धी स्थापनाएं बौद्धधम शसे प्राचीन िैं। यि समय िै कक सृतृष्टरचना-सम्बन्धी सांख्य की कल्पना एवंबौद्धधम शकी कल्पना में कुछ समानताएं िैं।'[983] बौद्धधम शके चार आयसशमय सांख्यर्ास्त्र के चार समयों के अनुकूल िैं जैसाकक 'सांख्यप्रवचनभाष्य' में प्रततपाहदत ककया गया िै: "(1) त्जससे िमें छुटकारा पाना िै वि दु:ख िै; (2) दु:ख के पवनार् का नाम मोक्ष िै; (3) प्रकृतत एवं ंपुरुष के बीच भेद न करने ेसे िी दु:ख उमपन्न िोता िै त्जसके कारण प्रकृतत व पुरुष का परस्पर सम्बन्ध बराबर बना रिता िै; (4) मोक्ष का उपाय सदसद्पववेक-सम्बन्धी ज्ञान िी िै।" कपपलमुतन (सांख्यकार) ने भी बुद्ध के समान यज्ञयाग आहद, प्राथनशाओं एवं अनुष्ठानों को वत्जतश बताया िै।

बौद्ध लोग स्वीकार करते िैं कक कपपल मुतन ने, त्जसे सांख्यदर्नश का रचतयता बतलाया जाता िै, बुद्ध से अनेक पीढ़ी पिले जन्म मलया था और यि कक बुद्ध के समय में सांख्य के पवचार प्रचमलत थे। दीघतनकाय के पिले सुत्तन्त में, जिां ंजीवन की बासि प्रकार की कल्पनाओं ंका वणनश ककया गया िै, सांख्य के समान िी मत भी पाया जाता िै। "ककन युत्ततयों के आधार पर और ककस तकश से मुतन एवंब्राह्मण लोग, जो 'जीवन की तनमयता में पवश्वास करते िैं, यि घोषणा करते िैं कक जीवामम‍ा एवं संसार दोनों तनमय िैं," एवं ंसाथ िी यि भी कक "जीवामम‍ा अनेक िैं? बुद्ध सांख्यदर्नश को भले िी न जानतेिों ककन्तु सांख्य के आरम्भ का वृतान्त अवश्य जानते िोगे। यि संसार पापमय िै और प्रकृतत से पवच्छेद िो जाना िी मोक्ष िै, इसी मसद्धान्त से बुद्ध को भी सुझाव ममला िोगा। आत्ममक प्रकक्रया के पवषय जो सांख्य का पवचार िै विी बुद्ध के स्कन्ध-सम्वन्धी मसद्धान्त के मूल में रिा िोगा। ककन्तु इसमें कोई सन्दिे निींकक सांख्यदर्नश बिुत अवाचशीन समय की कृतत िै त्जसमें र्तात्ब्दयों का काय शसंग्रीत िै। सांख्य सूत्र (1/27 - 47) बाह्य पदाथों की क्षणणकता वाले बौद्ध मसद्धान्त का

---

[983] अपवद्या का सार्दश्य 'प्रधान' से, संस्कार का बुद्धध से, पवज्ञान का अिंकार से, नामरूप का तन्मात्राओं ंसे, षडायतन आ इत्न्द्रयों सेिै (देणखए, कन शमैन्युअल आफ बुद्धधज्जम', पृष्ठ 47, पादहटप्पणी 6)। सांख्यों के प्रमययसंघ और बौद्धों के प्रतीमयसमुमपाद का एक-दूसरे से तनकटतम सार्दश्य िै।

 खण्डन करते ि ैं जो एक तनरन्तर प्रविा में एक-दूसूरे के पीछे उमपन्न ि ुए प्रतीत ि ोतीं, वे इस मसद्धान्त का भी
खण्डन करते ि ैं कक वस्तुओंका अत्स्तमव केवल प्रमयक्षज्ञान के ि ी अन्दर ि ै, और वे अपनी प्रमेयपवषयक कोई सत्ता निींरखतीं और यि कक र्ून्य के अततररतत और कुछ निीं। सांख्यसूत्रों से यि भी पता लगता ि ै कक सूत्रकार को बौद्धधम शके नाना सम्प्रदायों का ज्ञान था और उनकी रचना उतत सम्प्रदायों के पश्चात् ि ुई ि ै।

23. बौद्धधम शकी सफलता

एक ऐसे देर् में जिां ि ार वष शसे भी अधधक काल तक ब्राह्मण या पौराणणक धम शएक प्रचमलत धम शके रूप में रिा ि ो, बौद्धधम शको उसकी ज़ें खोखली करने में सफलता ममल गई और इतना ि ी निीं अपपतु लगभग दो सौ वषों की ि ी अवधध में यि भारत का राजधम शभी ि ो गया। इस्लाम एवं ईसाई धम शजैसे प्रचारक धमों को संसार के ककसी भाग में इस प्रकार की अद्भुत सफलता निीं ममली। यि भी निीं कि ा जा सकता कक बुद्ध ने जनसाधारण के जोर् और मानमसक पक्षपातों को भ़कानेमें सिायता की। उन्िोंने आममा के पापमोचन के मलए कोई ऐसा सस्ता नुस्खा भी निीं बतलाया और न ि ी मोक्ष को नीलाम की बोली पर चढ़ाया। उनके धम शमें मानवीय स्वाथपशरता को लेकर भी ऐसा कोई आकषणश निीं था, तयोंकक बौद्धधम शका आग्रि ि ै कक ऐसे सुखों को कष्ट उठाकर भी छो़ हदया जाए त्जन्िें प्रायः मनुष्य खोजते ि ैं। बौद्धदर्नश को धम शके रूप में सफलता ममलने के कारणरूप तीन रमन (बत्ररल) ि ैं: (1) बुद्ध, (2) धम शऔर (3) संघ। मानवता के ममत्र, उच्चकृत् त व्यत्ततयों की उपेक्षा करनेवाले, हदव्य त्जतेत्न्द्रय वीर बुद्ध का अपना अद्भुत व्यत्ततमव एवं समस्त जीवन मनुष्यों के मन पर अद्भुत प्रभाव डालता था। धम शके संस्थापक के व्यत्ततमव के पवषय में बाय शमलखता ि ै: "ि में अपनेआगे उस सरिानीय आकृतत को पवर्दरूप में रखना चाहिए ....जो प्रर्ांत एवं मधुर तेजत्स्वता का, जीवमात्र के प्रतत अनन्य स्नेि का एवं समस्त दुःखी प्राणणयों के प्रतत करुणा का, पूण शनैततक स्वातन्त्र्य का एवं ि र प्रकार के पक्षपात से पवरहित स्वभाव का साक्षात् उदािरण ि ै।"[984] "उसने कभी भी कल्याणकारी वाणी एवं पववेकपूण शभाषा के बबना बोलना ि ी जाना। वि संसार का ज्जयोततस्तम्भ था।"[985] यहद ऐसे हदव्यपुरुष की हृदय की पवर्ालता एवं नैततक उमकष श

---

984 दररमलजन्स आफ इंडडया', पृष्ठ 118।

985 यिां तक कक मध्य काल में भी माकोपोलो ने बुद्ध के संबंध में सुना और उनके बारे में मलखा :
"उसका जीवन इतना पपवत्र और र्ुद्ध था कक यहद वि ईसाई ि ोता तो ि मारे प्रभु जीसस क्राइस्ट का एक मिान संत ि ोता।"
"दोनों धमों के संस्थापकों के स्वरूप और उनकी मर्क्षाओंमें तनपववादरूप से बिुत कुछ समानता ि ै। दोनों को अमयधधक आलोचनाममक प्रकृतत वाले और अमयधधक बुद्धधमान के रूप मान के रूप में प्रस्तुत ककया गया। ि ै। दोनों मानव जातत की मुत्तत को सवोपरर मित्त्व देतेथे। दोनों प्रेम के स्वणणकश मसद्धान्त स्वयंअपने प्रतत और अपने प़ोमसयों के प्रतत प्रेम के मसद्धान्त के समथकश थे, तथा बुद्ध तो ि मारी दयालुता की पात्र अन्य वस्तुओंमें ि मारे उन सम्बन्ध भी जीवों को भी सत्म्ममलत करते ि ैं, त्जन्िें ि म असंस्कृत जगत् के सदस्य किते ि ैं। 'तुम ककसी भी जीव को पी़ा निीं पिुँचाओगे।' दोनों की अपने अनुयातययों से मांग थी कक वे प्रमयेक वस्तु का मयाग करें और अपने गुरु का अनुगमन करें। दोनों नेसंसार की तनरथकशता को प्रकट ककया, आमममयाग पर बल हदया और अपने व्यविार में करुणा को जीवन का सवोच्च तनयम मसद्ध

जनसाधारण की कल्पना को अपनी ओर आकृष्ट न करते तो अवश्य ि◌ी आश्चय शका पवषय ि◌ोता। मनुष्यमात्र के भ्रातृभृाव के पवचार ने जात-पांत के अमयाचारों को भी मर्धथल कर हदया। संघ रूपी संस्था एवं इसके अनुर्ासन-सम्वन्धी भाव वै ◌ैबुित संख्या में जनसाधारण को अपनी ओर आकृष्ट ककया। बौद्धमभक्षुओं ने, अपने ◌ेसंस्थापक के समान ि◌ी, समय के प्रचार के मलए सब कुछ मयाग हदया। उच्चशे्रेणी की इस नैततकता में, (त्जसकी मर्क्षा बुद्ध ने दी) कक केवल पपवत्रहृदय ि◌ी मोक्ष प्राप्त कर सकता ि◌ै, बौद्धधम शके पवधान एवं उसके प्रचारक देवदूत के जीवन का सारतत्त्व आ जाता ि◌ै। बुद्ध ने ऐसे व्यत्ततयों के मलए भी जो ककसी र्रीरधारी ईश्वर की सत्ता में पवश्वास निीं ◌ंकरते, समकाय शकरने ◌ेको न्यायोधचत बताया। ककसी भी अन्य स्वतन्त्र नीततर्ास्त्र ने सावभशौममक उपकार के इससे अधधक पुलककत करने ◌ेवाले स्वरूप को ि◌मारे सम्मुख आज तक प्रस्तुत निीं ◌ंककया ि◌ै। एक ऐसे ◌े समय में जबकक रततरंत्जत यज्ञयागों का पूरूा प्रचार था एवंउर्न्ेंमान्य ि◌िराया गया था, सृतूष्टमात्र के मलए दया के भाव की मर्क्षा ने बुित बा़ प्रभाव उमपन्न ककया। रीततवन्धन के पवरोध ने बुद्ध के मसद्धान्त को जनता द्वारा अपनाए जानेमें अधधक योग हदया। बुद्ध के उपदेर्ों की अलौककक प्रततष्ाि उनके इन वचनों से जांची जा सकती ि◌ै: "इस संसार में घृणाृ घृणाृ से र्ान्त निीं ◌ंि◌ोती, घृणाृ पे्रेम से र्ान्त ि◌ोती ि◌ै।" "पवजय से घृणाृ का जन्म िोता ि◌ै तयोंकक पवत्जत पुरुष दु्ःखी रिता ि◌ै।" "कोई व्यत्तत युद्ध में एक ि◌जार मनुष्यों पर पवजय प्राप्त कर सकता ि◌ै, ककन्तु जो अपनेऊपर पवजय प्राप्त करता ि◌ै वि सच्चा पवजयी ि◌ै। "मनुष्य को चाहिए कक वि दया के द्वारा क्रोध पर पवजय प्राप्त करे एवं पुण्य के द्वारा पाप पर।" "जन्म के द्वारा निीं ◌ंअपपतु केवल आचरण के द्वारा ि◌ी मनुष्य नीच या ब्राह्मण ि◌ोता ि◌ै।" "अपनेर्ुभ कमों को गुप्त रखो एवं ◌ंजो तुमने ◌ेपाप ककए ि◌ैं उर्न्ें संसार के आगे स्वीकार करो।" "ऐसा कौन व्यत्तत ि◌ै जो पापी पुरुष के मलए उसके पाप स्वीकार करने पर कटु र्ब्दों का प्रयोग करेगा-कटे पर नमक तछ़कनेका काय शकरेगा ?" बुद्ध के समान ककसी अन्य ने कभी भी ि◌मारे कानों में इस प्रकार की गम्भीर वाणी द्वारा कल्याणकारी आचरण के गौरव को निीं ◌ंगुंजाया। यिी धमभशावना या न्यायतनष्ता का प्रज्जवमलत आदर् शिै त्जसनेबौद्धदर्नश को धम शके रूप में सफलता प्रदान करने ◌ेमें सियता प्रदान की। धमप्रशचार की भावना ने उतत धाममकश मसद्धान्त के पवस्तार में पूरा-पूरा सियोग प्रदान ककया। बुद्ध ने अपनेमर्ष्यों की आदेर् हदया कक "सब देर्ों में जाओ और इस धाममकश मसद्धान्त का उपदेर् करो। उर्न्ें बताओ कक तनधनश एवं ◌ंनीच जातत के व्यत्तत और धनी एवं उच्च घराने वाले सब एक ि◌ैं, और यि कक इस धम शमें सब जातत वाले ममलकर एक ि◌ो जाते ि◌ैं जैसेकक समुद्र में पक़र सब नहदयां ◌ंएक ि◌ो जाती ि◌ैं।" बौद्धधम शको इतनी अच्छी सफलता इसमलए ममली तयोंकक यि पे्रेम का धम शथा। इसनेऐसी सब मूक र्त्ततयों को भी वाणी

ककया। दोनों ने पवचार और कम शकी अमयधधक पपवत्रता की मर्क्षा दी। दोनों ने बुराई के अप्रततकार की और भलाई से बुराई को जीतने की मर्क्षा दी। दोनों के मन में मर्ुओं, तनधनशों, पीड़तों और पररमयततों के प्रतत अपार करुणा थी। दोनों के जीवन का जो ब्यौरा ि◌में प्राप्त ि◌ोता ि◌ै उसमें अमयधधक समानता ममलती ि◌ै तथा इससेभी अधधक मित्त्वपूण शऔर उल्लेखनीय बात यि ि◌ै कक दोनों के व्यत्ततमव आज भी संसार की सबसे बा़ी धाममकश र्त्ततयों के स्रोत के रूप में ि◌ैं और एक आध्यात्ममक चुम्बक की तरि युगों से लोगों के हृदय को आकपषतश करतेचले आ रिे ि◌ैं।" (डब्ल्यू. एस. मलली: 'मैनी मैन्न्स', पृष्ि 621)
"मुझेअधधकाधधक ऐसा प्रतीत ि◌ोता ि◌ै कक समय के गैर-इसाई अग्रदूतों में र्ातयमुतन अपने व्यत्ततमव और अपने प्रभाव में उसके सबसेअधधक समीप ि◌ैं जो आहदमाग शिै, जो समय ि◌ै और जो जीवन ि◌ै।" ('मेमॉएस शआफ बबर्प ममल्मैन', पृष्ि 2031)

प्रदान की जो रूहढ़गत व्यवस्था एवं ्रीततपवधान से पूण शधम शके पवरुद्ध काय शकर रिी थीं; इसनेतनधनशों, तनम्नस्तर के लोगों और ऐसे लोगों को भी त्जन्ें उत्तराधधकार में कुछ निींममला था, अपना सन्देर् सुनाया।

उद्धृ ग्रन्थ

- 'बुद्धधस्ट सुत्ता, सैक्रेड बुतस आफ द ईस्ट', खंड 11।
- 'धम्मपद ऐंड सुत्ततनपात, सैक्रेड बुतस आफ द ईस्ट', खंड 10।
- 'तवेश्चंस आफ ककंग मममलन्द, सैक्रेड बुतस आफ द ईस्ट, खंड 35 और 36।
- वारने: 'बुद्धधज़्म इन रांसलेरंसं' ।
- री डेपेवड्स : 'बुद्धधज़्म' ।
- री डेपेवड्स : 'बुद्धधस्ट इंडडया' ।
- री डेपेवड्स : 'द डायलॉग्स ऑफ बुद्ध' ।
- श्रीमती री डेपेवड्स : 'बुद्धधज़्म' ।
- श्रीमती री डेपेवड्स : 'बुद्धधस्ट साइकोलॉजी' ।
- श्रीमती री डेपेवड्स एण्ड औंगं : 'अनुरुद्धाज कम्पेत्ण्डयम आफ कफलासफी' ।
- श्रीमती री डेपेवड्स एण्ड मौग ततन : 'द एतसपोत्टर' ।
- पूसीं: 'द वे ेटु तनवाणश
- कन श'मैनुअल आफ इंडडयन बुद्धधज़्म' ।
- पिकंस : 'द ररमलजन्स आफ इंडडया', अध्याय 13।
- म्सि : 'द क्रीड आफ बुद्ध' ।
- कुमारस्वामी : 'बुद्ध एण्ड द गोंस्पल आफ बुद्धधज़्म' ।

ोिवां ंअध्याय

मिाकाव्यों का दर्नश

ब्राह्मणधम शका पुनगिशन-मिाभारत-मिाभारत का रचनाकाल और उसके रचतयता - रामायण - तमकालीन सामान्य पवचार- दुगुापूशजा-पारुुपत पद्धतत-वासुदेव कृष्ण- मिाकाव्यों का संसृतृतर्ास्त्र- नीततर्ास्त्र- श्वेताश्वर उपतनषद्- मनुस्मृतृत ।

1. ब्राह्मणधम शका पुनगिशन

जबकक एक ओर भारत देर् के पूवीय भाग में पवद्रोिममक पद्धततयों ने आन्दोलन छे़ रखा था, उस समय देर् के पत्श्चम भाग में जो कक ब्राह्मणधम शका गढ़ था, अनजाने में स्वभावतः िी मिान् ्पररवतनश िो रिे थे। जब नये-नये समुदाय, त्जनके अद्भुत प्रकार के धाममकश पवश्वास थे,े नये मसरे से आयजशातत के अन्दर प्रपवष्ट ककए जा रिे थे, तब प्राचीन वैहदक सस्कृतत को एक ऐसे पररवतनश में आना पड़ा जो नये आगुन्तक धगरिों को मान्य िुए जो वस्तुतः देर् को आप्लापवत ककए जा रिे थे, तयोंकक यहद ऐसा प्रयास न ककया जाता तो देर् में आयों का प्राधान्य निीं ंिो सकता था। आयजशातत को एक बात का चुनाव करना था कक या तो वि अपना पवस्तार बढ़ाए एवं अपने ेधम शको नए ढांचे में ढाले त्जसके अन्दर नये पवश्वास भी समा सकें, निीं ंतो उनके आगे पराजय स्वीकार कर सदा के मलए पवलुप्त िो जाए। आयमशव का अमभमान उन्िें नवागन्तुकों को यज्ञों का अधधकार देनेके मलए अनुमतत निीं ंदेता था, लेककन नवागन्तुकों को एकदम उपेक्षक्षत भी निीं ंककया जा सकता था। चूंकक नये पवश्वासों या मतों को अपनेअन्दर पचा लेना िी एकमात्र ऐसी एक र्त शथी त्जसको मान लेनेसे आयजशातत का अत्स्तमव अबाध गतत से आगे बढ़ सकता था, आयसंशस्कृतत ने नये मतों को अपनेअन्दर समापवष्ट करने ेएवं नवागन्तुकों की नैततक आवश्यकताओं के अनुकूल अपनेको बना लेनेका मिान काय शअपने त़्म्मे मलया, यद्यपप इस प्रयमन में उसे अनेक आपदाओंएवं पवरोधों का सामना करना पड़ा। आय शबनानेकी प्रकक्रया मौमलक रूप में एक धाममकश प्रकक्रया थी। ब्राह्मणों ने ममथ्या पवश्वासों एवंप्रतीकों और कािनयों एवं ंककंवदन्त्तयों को अलंकारों का रूप प्रदान ककया, तयोंकक नवागन्तुकों के धगरिे उनमें अधधक रुधच हदखाते थे। आयों ने उतत धगरिों के देवी-देवताओं की पूजा को स्वीकार कर मलया और वैहदक संस्कृतत के साथ उनका समन्वय करने ेकी चेष्टा की। कततपय अवाचशीन उपतनषदों में इस प्रकार के अनाय शप्रतीकवाद के आधार पर वैहदकधम शके तनमाणश सम्बन्धी प्रयमनों का वणनश ककया गया िै। पारुुपत, भागवत एवंतांबत्रक पवकास सब इसी सामात्जक उथल-पुथल के काल के आन्दोलन िैं, त्जनके द्वारा बुद्ध के आपवभावश के पूव शके भारत में पवस्तृतृ समुदायों को आय-श जातत के अन्दर समापवष्ट करनेका काय शचलता रिा। उन्िें इस प्रकार के सांचेमें ढाला गया एवं उनका उमकष श ककया गया कक आज यि मत प्रकट करना भी कहिन प्रतीत िोता िै कक उनका उद्गम प्राचीन उपतनषदों अथवा

 वेदों में निींथा। रामायण एवं ंमिाभारत दोनों मिाकाव्य िमारे आगे वैहदकधम शके इसी पवकास का वणनश प्रस्तुत
करते िैं जो भारत में आयजशातत के पवस्तारकाल में तनष्पन्न िुआ।

2. मिाभारत

मिाभारत में उस मिान युद्ध का वणनश िै जो प्राचीन समय में एक िी राजपररवार की दो पवमभन्न र्ाखाओं अथाशत् ्भरतवंमर्यों के मध्य िुआ। र्तपथ ब्राह्मण"[986] में किा गया िै कक भरवंमर्यों की सी मित्ता को न तो उनसे ेपूव शऔर न उनके पश्चात् ्िी मनुष्यजातत का कोई भी सम्प्रदाय प्राप्त कर सका। उतत मिाकाव्य में उस मियुद्ध के वीरतापूण शएवं ंपराक्रम के कायों का पवर्द वणनश हदया गया िै जो ईसा से पूव शलगभग तेरिवीं ं अथवा बारिवीं र्ताब्दी में (आर. सी. दत्त एवं ंप्रैट जैसे पवद्वानों की गणना के अनुसार)[987] ला गया। कोलब्रुक उसका समय चौदिवीं र्ताब्दी ईसापूव शमानतेिैं। पवल्सन, एलकफनस्टन एवं ंपवलफोड शआहद पवद्वानों का भी मिाभारत के काल की गणना के सम्बन्ध में यिी मत िै। मैकडालन मलखता िै: "इसमें बिुत कम सन्देि िै कक ऐेततिामसक पृष्ठभूमम के रूप में इस मिाकाव्य का मूल आधार वि कलि िै जो दो पड़ोसी जाततयों अथात्श ्कुरु एवं पांचालों के बीच चलता था, और जो अन्त में जाकर परस्पर ममलकर एक िो गईं। यजुवेद में उतत दोनों जाततयांपरस्पर संयुतत प्रतीत िोती िैं एवं ंकाठक में राजा धृतराष्र पवधचत्रवीय का, जो मिाभारत का एक प्रधान पात्र िै, एक प्रमसद्ध व्यक्तत के रूप में वणनश ककया गया िै। इसमलए उतत मिाकाव्य के ऐेततिामसक आधारतत्त्व को अमयन्त प्राचीनकाल में ढूंढना चाहिए जो कक कम-से-कम ईसा से पूव शदसवीं सदी से इधर का निीं ंिो सकता।"[988] प्रारक्म्भक घटना का स्वरूप अनाय शरिा प्रतीत िोता िै, तयोंकक भीम की रततपपपासा, द्रौपदी का बिुपततमव, एवं ंइसी प्रकार की अन्यान्य घटनाओंसे यि स्पष्ट िो जाता िै। ककन्तु र्ीघ्र िी इसनेआयजशातत के इततिास का रूप धारण कर मलया। यि एक राष्रीय मिाकाव्य बन गया देर् के पवमभन्न भागों की कथाओंका भी समावेर् िोकर एक सम्पूण शऐेततिामसक ग्रन्थ का तनमाणश िुआ। यि ग्रन्थ भारत के प्रमयेक भाग में-चािे वि बंगाल िो या दक्षक्षणी भारत, पंजाब िो या दतकन सभी जगि-एक समान रुधचकर समझा जाता िै। मिाभारत का यि लक्ष्य था कक उसे जनसाधारण में प्रचमलत ककया जाए, और यि तभी सम्भव िो सकता था जबकक उसमें प्रचमलत कथाओंका भी समावेर् िो। समस्त प्राचीन पवश्वासों एवं ंआयजशातत की परम्पराओं के एकत्रीकृत संग्रि को इसमें सुरक्षक्षत रूप में रखा गया िै। यि अपनेक्षेत्र में इतना अधधक सावभशौम िै कक, प्रचमलत लोकोक्तत के अनुसार, जो मिाभारत में निीं ंपाया जाता वि भरतवंमर्यों के इस देर् में अन्यत्र भी किीं निीं ंपाया जा सकता। एक िी स्थान पर पवमभन्न जाततयों के लोगों के सामाक्जक एवं ंधाममकश पवचारों का, जो इस भारत की भूमम पर एकत्र िुए िैं, एकत्र संग्रि करके इसनेमनुष्यों के मनों में इस पवश्वास को दृढ़ करने ेका प्रयमन ककया कक भारतवष शमें मौमलक एकता पवद्यमान िै। भधगनी तनवेहदता मलखती िैं: "कोई पवदेर्ी पािक एक पवद्वान के रूप

---

986 13/5, 4।

987 दत्त : 'ऐमर्यंट हिन्दू ्मसपवमलेर्न' ।

988 'संस्कृत मलटरेचर', पृष्ठ 284-285 ।

 में निीं ं ककन्तुसिानुभूतत का भाव रखकर यहद अध्ययन करेगा तो उसे े इसमें तुरन्त दो पवर्ेषेताएं लक्षक्षत िोगी

एक तो यि कक इस देर् में पवपवध जाततयों के ममश्रण के अन्दर भी एक प्रकार की ओतप्रोत रिने ेवाली एकता पवद्यमान िै। दूसूरी यि कक इसकी तनरन्तर यि चेष्टा रिी िै कक जिां ंतक संभव िो सके, इस देर् के पवषय में सुनने ेवालों के ऊपर एक केन्द्रीभूत भारत के पवचार की छाप प़ सके, त्जसकी अपनी एक पवर्ेषे वीरतापूण श परम्परा िै जऔर विी रचनाममक एवं एकमव सम्पादन करने ेवाली पे्ररेणा िै।"[989]

3. मिाभारत का रचनाकाल और उसके रचतयता

यि अब सवसशम्मत पवचार िै कक मिाभारत का वतमशान रूप जो िमें उपलब्ध िै इससे पूव शपरम्परा का, त्जसका नाम भारत था, बृित्तर संस्करण िै। मिाभारत के प्रारत्म्भक अध्याय की उत्तत के अनुसार, भरतसंहिता में (त्जसे प्रारम्भ में व्यास ऋपष ने बनाया) केवल चौवीस िजार श्लोक थे ेयद्यपप व्यास ने उसे बढ़ाकर सिा लाख श्लोकों का ककया, त्जनमें से अब केवल एक लाख बचे िैं। ककन्तुइस भरतसंहिता का आधार भी लोकगाथाओं, पद्यवद्ध बीरगाथाओं तथा मियुद्ध की घटना सम्बन्धी परम्पराओं का श्लोकबद्ध वणनश रिा िोगा। आल्िाओं एवं ंगीतों की-त्जनमें मिान योद्धाओंके र्ौयपूशण शकायों का वणनश िो एवं मिान योद्धाओं की स्तुतत िो, राजमहिपषयों के सौन्दय शका वणनश िो, राजदरबार की भव्यता की चचाशिो-रचना अवश्य ऐसे िी काल में िोनी चाहिए त्जसमें जनसाधारण के कान में युद्ध की प्रततध्वतन गूंज रिी थी। बिुत पुराने ेसमय से भारत के पत्श्चम में जो कुरु एवं ंपांचालों का देर् िै एवंपूवहशदर्ा में जो कोसल लोगों का देर् िै, स्थानीय भाट लोग अपनी-अपनी जातत के र्ूरूवीरों की र्ौयगशाथाएं गीतों के द्वारा गाते-कफरते थे। ये गीत चूंकक मौणखक रूप में एक से दूसूरे की तरफ आते थे ेइसमलए इनका कोई तनयत रूप निींथा, और अवश्य िी प्रमयेक युग में इनमें अनेक पररवतनश िुए िोंगे। ब्राह्मण-धम शको इन सब परम्पराओं, ं पवचारों एवं ंमित्त्वाकांक्षाओं का भी पवचार आगे रखना प़ा, यद्यपप ये उसके अपनेनिींथे। आयजशातत की संस्कृतत के और उन ऐततिामसक तथ्यों, पौराणणक गाथाओं, इततिास एवं पुराणों के समूि के मध्य में, त्जनके साथ उतत संस्कृतत का सामना िुआ, समन्वय करने ेका सवप्रशथम प्रयास मिाभारतग्रन्थ िै। युद्धकाल में सबसेअधधक समीप के समय में तनममतश िोने ेके कारण यि पिले केवल वीरगाथापूण शसामान्य कपवता के रूप में िी रिा िोगा, तथा िो सकता िै कक इसका कोई मर्क्षाममक प्रयोजन अथवा दार्तशनक संश्लेषण का उद्देश्य भी न रिा िो। इसकी रचना का काल 1100 वष शईसापूवू'श अथवा इसके लगभग रिा िोगा। र्ीघ्र िी नई सामग्री एकत्र िो गई और उसे समापवष्ट करने ेका काय शलगभग असम्भव-सा िो गया। तो भी उसके मलए प्रयास ककया गया और उस प्रयास का पररणाम िी मिाभारत िै। साधारण रूप से देखने पर इसमें नये आगन्तुक समुदायों के लोकगीतों व ममथ्या पवश्वासों का, और आयजशातत की धाममकश भावना का समन्वय िै। व्यास ने[990], जिां ंतक उनसे बन प़ा, पवपरीत पररत्स्थतत में भी अच्छे-से-अच्छा माग श ढूंढ़ तनकालने का प्रयमन ककया और इधर-उधर बबखरे िुए वीरचररतवणनशों के पुंजों, वीरपूजा तथा स्वाभापवक

[989] श्री वैद्य मिाभारत के प्रथम संस्करण का समय लगभग 3100 पूव शईसापूव शमानतेिैं।

[990] यि बिुत संहदग्ध िै कक ककसी एक िी व्यत्तत को इस ग्रन्थ का रचतयता माना जाए।

कलों और युद्ध के दृश्यों को एकत्र करके उनके द्वारा एक बृिमकाय मिाकाव्य991 का तनमाणश ककया, त्जसके अन्दर अतनत्श्चतमूल और सत्न्दग्ध चररत्र नये-नये देवी-देवताओं को पुराने ेवैहदक देवताओं का छोा़ िुआ जामा पिना हदया। यि स्पष्ट िै कक पिले पद्यबद्ध वीरगाथाओं का रूप था और उसके बाद वि भारत के रूप में आया। इसका तनमाणश ऐसे समय में िुआ भी माना जा सकता िै त्जस समय में धम शकमकशाण्ड और बिुदेवतावाद से पूण शथा। मिाभारत के वे ेभाग जो वैहदक देवताओं, अथात्श ्इन्द्र और अत्न, की पूजा के औधचमय का पवधान करते िैं, उस त्स्थतत के स्मृततधचह्न िैं। त्स्त्रयों को उस काल में बिुत स्वतन्त्रता प्राप्त थी, और जन्मपरक जातत को कोई किोर बन्धन निीं ंथा। सम्प्रदायवाद का किीं ंपता निीं ंथा, आममा-पवषयक दर्नश अथवा अवतारों की कल्पना भी तब तक निीं िुई थी। कृष्ण एक ऐततिामसक पुरुष के रूप में प्रकट िोता िै। भारतीय पवचारधारा का अगला युग यि िै जबकक यूनानी (यवन), पाधथयशन (पढ्व) और सीधथचन (र्क) जाततयों ने इस देर् में प्रवेर् ककया। उस समय िमारे सामने ब्रह्मा, पवष्णु और मिेर् की बत्रमूतत शका भाव आता िै जो एक िी सवोपरर ब्रह्म के तीन प्रकार के मभन्न- मभन्न कायों, अथात्श ्उमपपत्त, त्स्थतत और पवनार् को सम्पादन करने ेवाले मभन्न तीन रूप िैं। त्तत के जो काय शप्रारम्भ में इन्द्र के नाम से वणनश ककए जाते थे ेवे अब पवष्णु ुके और किीं–किींमर्व के िो गए। जो ग्रन्थ पिले एक वीरगाथा का काव्य था उसनेअब ब्राह्मणधम शके ग्रन्थ का रूप धारण कर मलया और आत्स्तकवादी या ईश्वरवादी ग्रन्थ के रूप में पररणत िो गया। भगवद्गीता सम्भवतः इसी युग की पुस्तक िै, यद्यपप साधारणतः मिाभारत के दार्तशनक भाग अत्न्तम युग में तनममतश िुए समझे ेजानेचाहिए। बारिवें और तेरिवें अध्याय में िमें दर्नश, धम,श राजनीतत एवं पवधध के ऊपर संवाद ममलतें। जब ब्राह्मणधम शकुछ थो़े–से चुने िुए व्यत्ततयों का िी धम शनिीं ंरि गया, तयोंकक उसमें अपने िी देर् के अन्य अनेक पवश्वास तथा अपने आसपास के नाना धाममकश कक्रयाकलाप आकर सत्म्ममलत िो गए, तब प्राचीन ज्ञान को नवीन दार्तशनक रूप देना

991 िम िीकि–ीक निीं जानतेकक मिाभारत कब बना। ककन्तु इतना तनश्चय तो अवश्य िै कक बौद्ध- धम शके उदय के समय मिाभारत का अत्स्तमव था। मैकैडानल का मत िै कक "मिाकाव्य का प्रारत्म्भक संस्करण ईसा से पांचवीं र्ताब्दी पूव शमें। िुआ।" गौतम बुद्ध का बुद्ध का उल्लेख उतत मिाकाव्य में न रिने से इस मत की पुत्ष्ट िोती िै। मिाभारत के पात्रों से पाणणतन पररधचत था गपवयुधधभ्यां त्स्थरः, 8, 3, 95; वासुदेवाजुनशाभ्यां ंवुण, 4, 3, 98)। आश्वलायन गृिसूत्रों में भारत के अततररतत मिाभारत ग्रन्थ का भी वणनश आता िै (गृह्यसूत्र, 3, 4, 4)। गुप्तवंर्ीय राजाओंका एक मर्लालेख ममलता िै त्जससे मिाभारत का अत्स्तमव उस काल में प्रकट िै। भास कपव ने अपने नाटकों के मलए अनेक कथानक मिाभारत से मलए िैं। अश्वघोष ने अपने बुद्धचररत एवं सौन्दरनन्द में भारत का उल्लेख ककया िै। बौद्धायन नेअपने धमसूशत्रों में एक ऐसा श्लोक उद्धृत ककया िै जो ययातत के उपाख्यान में पाया जाता िै, और दूसूरा श्लोक भगवद्गीता में पाया गया िै (2, 2, 26, 2, 22, 9), और किा जाता िै कक ययातत 400 वष शईसापूव शमें िुआ। इस सब साक्षी के आधार पर यि अनुमान ककया जा सकता िै कक बुद्ध के समय के लगभग मिाभारत पूणरूशपेण तैयार िो गया था। इसके मभन्न-मभन्न भागों की रचना इततिास के ककस-ककस समय में िुई इसका िीकि–ीक तनणयश करना कहिन िै। पांचवींर्ताब्दी ईसापूव शके पश्चात् ्भी, उन आवाचशीन लेखकों द्वारा जो धम शएवं नैततकता के क्षेत्र में अग्रगामी पवचारों का इस ग्रन्थ के द्वारा प्रचार करना चािते िैं, इसमें अर्तः कुछ बढ़ाया या बदला निीं गया ऐसा निीं कि सकते। ऐसे भी पवद्वान् ्िैं त्जनकी सम्मतत में मिाभारत के कुछ भाग इतने परवती िैं त्जतने कक पुराण पुराण िैं और यि कक इसका आकार ईसा के पश्चात् ्छिी र्ताब्दी तक बढ़ता रिा। "यि तनत्श्चत रूप से मसद्ध िो चुका िै कक उतत काव्य का ईसा के पश्चात् ्300 वष शमें मान्यता प्राप्त थी और 500 वष श ईसा के पश्चात् ्तक यि उसी आकार का था जैसाकक आज िै" (बुिलर और ककसटेश 'कत्णरब्यूर्न टु द स्टडी आफ द मिाभारत')। इस सबके िोते िुए भी यि किना अनुधचत न िोगा कक ग्रन्थ का अधधकतर भाग 500 वष शईसापूव शसे लेकर आज तक एक समान िी रिा िै।

आवश्यक िो गया। ककतने िी प्रयमन उपतनषदों के परमर्त्तवाद या तनरपेक्षवाद को जनसाधारण के ईश्वरवाद

केसाथ संयुक्त करने के मलए एक संश्लेषणामक सम्पूण शपवचार का तनमाणश
अन्दर समन्वय करने का कोई सच्चा मसद्धान्त निीं था। भगवद्डगीता के रचतयता ने सच्ची काल्पतनक
अन्तर्दत्शष्ट एवं संश्लेषणाममक र्त्त के साथ एक नवीन दार्तशनक तथा धाममकश संश्लेषण का सूत्रपात ककया,
त्जसने परवतीकाल के आत्स्तक दर्नशों की पृष्ठिभूमम का तनमाणश ककया। इस प्रकार अपनेअन्दर मभन्न-मभन्न
कालों तथा मभन्न-मभन्न ग्रन्धकारों की रचनाओं का समावेर् कर लेनेके कारण मिाभारत इततिास,
पुराणपवद्या, राजनीतत, पवधधपवधान, ईश्वरपवज्ञान और दर्नशर्ास्त्र आहद पवपवध पवषयों का एक प्रकार का
पवश्वकोष बन गया।

मिाभारत को कभी-कभी पांचवें वेद की भी संज्ञा दी जाती िै। इसे आचरण एवं समाजर्ास्त्र के पवषय
पर प्रामाणणक ग्रन्थ समझा जाता िै।992 दुबुलश अथवा अन्मयज वग शसमाज के मलए भी नैततक आचरण के
तनयमों की मर्क्षा देना उतत ग्रन्थ को अमभमत िै।993 बौद्ध धम शके र्ास्त्र सबके अध्ययन के मलए खुले िुए थे,
और ब्राह्मणों के धमग्रशन्थ केवल बौद्धधच्च वणाश, अथात्श ब्राह्मण, क्षबत्रय और वैश्य के मलए िी थे। इसमलए
एक पांचवें वेद की आवश्यकता िुई जो सबके मलए उपलब्ध िो।

4. रामायण

बाल्मीककककृत रामायण मुख्यरूप में एक मिाकाव्य िै, और मिाभारत की भांतत इसका पवपवधरूप निीं
िै। इस मिाकाव्य के नायक राम को, जो धम शका आदर् शऔर पूणतशा का उदािरण िै, पवष्णु का अवतार बना हदया
गया िै, त्जसने इस पृथ्वी पर अधम शको दबानेतथा धम शका प्रचार करने के मलए र्रीर धारण ककया। जो प्रारम्भ
में एक मिाकाव्य के रूप में था वि आगे चलकर एक वैष्णवग्रन्थ बन गया। इसका क्षेत्र मिाभारत की भांतत
सावभशौममक निीं िै। इसकी सम्पूण शरचना और पद्धतत में ऐसा कोई संकेत निीं िोता िै त्जससे यि प्रतीत िो
सके कक यि ग्रन्थ अनेक रचतयताओं की ममधश्रत रचना िै। तो भी िम इसके दो मभन्न-मभन्न पवकास-बबन्दुओं
को लक्ष्य कर सकतेिैं, त्जनमें से पिला मिाकाव्य का स्वरूप िै और दूसरा इसका धाममकश रूप िै। यहद िम दूसरे
काण्ड से छिे काण्ड तक को लें और पिले तथा सातवें काण्ड को पवल्कुल छो़ दें जो पीछे से प्रक्षक्षप्त ककए गए
प्रकरण माने जाते िैं तो िम देखेंगे कक उतत काव्य का मुख्य सार धमतशनरपेक्ष िै। राम केवल एक सच्चररत्र तथा
मिान् पुरुष िै, त्जसने दक्षक्षण में सभ्यता का प्रचार करने के मलए वीरों की आहदम जाततयों का उपयोग ककया,
और उसे पवष्णु का अवतार निीं किा गया। त्जस धम शका यि ग्रन्थ वणनश करता िै वि स्पष्टरूप में बिुदेवतावादी एंव
बाह्य या सांसाररक िै। इसमें वैहदक देवताओं का वणनश िै त्जनका मुणखया इन्द्र िै। नये देवता,

992 आश्वलायन गृह्यसूत्र, 3, 4, 4।

993 सायणाचाय शकृष्णयजुवेद के ऊपर की गई अपनी टीका में कितेिैं कक मिाभारत और पुराणों की रचना त्स्त्रयों एवं र्ूद्रों
की कत्तव्शयकम शके पवधान की मर्क्षा देने के मलए िुई िै, तयोंकक इन दोनों के मलए वेदों का पढ़ना तनपषद्ध था (देणखए,
'बबत्ब्लओधथका इत्ण्डका', खण्ड 1, पृष्ठि 2)।

 यथा काम, कुबेर, कातततकेशय, गंगा और लक्ष्मी और उमा (जो क्रमर्ः पवष्णु ु और मर्व की पत्मनयााँ); देवतारूप
मानेगये जीव, जैसे सप शर्ेषेनाग, वानर िनुमान, रीछ जाम्बत, पक्षी गरु, जटायु अथात्श ृगृद्धपक्षी और नन्दी वृषृभ इन सबका मुख्यरूप से वणनश िै। यज्ञ िी पूजा की पवधध था। यद्यपप प्रधानता पवष्णु ु तथा मर्व की िी पूजा
को दी जाती थी, तो भी सांपों, वृकृषों तथा नहदयों की पूजा भी ममलती िै। कम शऔर पुनजन्शम के पवचार भी सुनने ेमें
आते िैं; यद्यपप सम्प्रदायों का उत्तमें किीं ंपता नीिं। दूसूरे पवकास बबन्दु ुपर यूनातनयों, पाधथयशनों और कों का उल्लेख भी ममलता िै। राम को पवष्णुका अवतार बनानेका प्रयमन भी पाया जाता िै।

दर्नश तथा धम शकी दृतष्ट से समायण इतने ममित्त्व का ग्रन्थ नीं िै त्जतना कक मिाभारत िै, यद्यपप उस समय के प्रचमलत रीतत-ररवाजों और धाममकश पवश्वासों पर यि अधधक पवर्दरूप में प्रकार् डालता िै। कभी-कभी इसे बौद्धधम शके वैराग्यवाद का पवरोधी भी किा जाता िै, तयोंकक यि गृिस्थधम शको मित्त्व देता िै और यि प्रततपादन करता िै कक मोक्षप्रात्प्त के मलए गृिस्थ-जीवन के मयाग की आवश्यकता नीिं।

चूंकक रामायण में बुद्ध को नात्स्तक किा गया िै,[994]' इसी आधार पर इसका रचनाकाल मिाभारत के रचनाकाल से पीछे का बताया जाता िै यद्यपप इसकी कथा भले िी पूवकशाल की िो।
भारतीय दर्नश के पवद्याथी के मलए मिाभारत में रुधचकर अंर् िैं- सनमसुजातीय, भगवद्गीता, मोक्षधम शऔर अनुगीता। जब युद्ध के अन्त में अजुनश ने कृष्ण से किा कक युद्ध के आरम्भ में आपनेजो कुछ मुझे ेउपदेर् हदया था उसकी पुनरावृपृत्त कीत्जए, तो कृष्ण ने किा कक अब म ैंयोग की उस अवस्था में नीिं ंिूाँ त्जसमें युद्ध के आरम्भ में था, और इसमलए उतत उपदेर् के प्रततततनधधरूप में जो कुछ कृष्ण ने किा वि अनुगीता में रखा गया िै। मभन्न- मभन्न मतों में परस्पर समन्वय करने ेके भगवद्गीता के प्रयमन के अततररतत मिाभारत में मभन्न-

मभन्न दार्तशनक पवश्वासों का कोई क्रमबद्ध रूप ममलता निीं अर्थात् ।
अनुगीता के पढ़नेसे यि तनदेर् ममलता िै कक उस समय में बिुत बड़ी संख्या में मभन्न-मभन्न दार्तशनक सम्प्रदाय थे। "िम देखतेिैं कक पुण्य के पवमभन्न रूप परस्पर-पवरोधी िैं। कई किते िैं कक र्रीर के नष्ट िो जाने पर भी पुण्य रिता िै; कई कितेिैं कक ऐसी बात नीिं ंिै। कई किते िैं कक िरेक पवषय संहदग्ध िै, और दूसूरे किते िैं कक संर्य किीं िी नीिं। कई किते िैं कक तनमयतत्त्व अस्थायी िै, दूसूरे किते िैं कक नीिं, ं इसकी सत्ता िै। और ऐसे भी िैं त्जनका किना िै कक यि िै भी और नीिं ंभी िै। कई किते िैं कक यि एकाकी िै, दूसूरों का किना िै कक नीिं ंइसमें द्वैतभाव िै, और अन्य कितेिैं कक यि दोनों िैं। कुछ ऐसे ब्राह्मण जो ब्रह्मज्ञानी िैं और त्जन्िोंने समय का साक्षामकार ककया िै, पवश्वास रखते िैं कक यि एक िै; दूसूरे कितेिैं कक यि मभन्न िै; और ऐसे भी िैं त्जनके मत से यि नानारूप िै। कुछेक किते िैं कक देर् और काल दोनों की सत्ता िै, दूसूरों का किना िै कक ऐसी बात नीिं।"[995] परस्परपवरोधी पवचारों को एक पूणरूशप में एकत्र कर हदया गया िै। िमें उसमें वेदों का बिुदेवतावाद, उपतनषदों का एकेश्वरवाद, सांख्य का द्वैतवाद, योग का ईश्वरवाद, भागवतों, पार्ुपुतों तथा

---

994 अयोध्याकाण्ड।

995 अध्याय 24।

र्ाततों का एकेश्वरवाद सभी कुछ ममलता िै। मभन्न- मभन्न धाममकश मतों की ब्यौरेवार मीमांसा को अगले पवभाग के मलए छोड़कर िम यिां ंकेवल ऐसे िी दार्तशनक पवचारों के पुंज का उल्लेख करेंगे जो मिाभारत के पवचारकों की सत्मममलत तनधध िै।

5. तमकालीन सामान्य पवचार

चूंकक मिाभारत में धचन्न-मभन्न प्रकार की दार्तशनक प्रवृपृत्तयांपाई जाती िैं इसमलए िम तनत्श्चतरूप से यि निीं ंकि सकतेकक यि ककस प्रकार की धाममकश व्यवस्था को प्रमाण स्वरूप मानता िै। सामान्यरूप से वैहदक र्ास्त्रों को प्रमाण माना गया िै। प्रमयक्ष अथात्श ्इंहद्रय और पदाथ शके सत्न्नकष शसे उमपन्न ज्ञान, अनुमान और आगम अथात्श ्आप्तवचन एवं ंश्रुतत की प्रामाणणकता को मान्यता दी गई िै। किीं-किीं ंन्यायर्ास्त्र के चार सामान्य तनयमों का वणनश ककया गया िै।'[996] यि तनश्चयपूवकश ऐसे व्यत्ततयों का पवरोध करता िै जो वेदों के प्रामाण्य का तनषेध करते िैं। पञ्चमर्ख नामक पवद्वान ने, जो सांख्यदर्नश का अनुयायी था, मभन्न मतावलत्म्बयों997 के नात्स्तक-सम्प्रदाय का खण्डन ककया िै।'[998] लोकायतों का भी वणनश ककया गया िै।999' तकशर्ास्त्री पंडडतगण (िेतुमन्तः), जो आममा की यथाथसशत्ता को अस्वीकार करते िैं और दुराचार से घृणा करते िैं,

"पृथ्वी पर सवत्रश पवचरण करतेिैं।"[1000] एक स्थान पर जैतनयों का भी उल्लेख ममलता िै जिां ंपर एक पुरोहित के पवषय में किा गया िै कक "उसनेलोगों को आश्चयचशककत करके और हदगम्बर रिकर पैदल यात्रा करते िुए कार्ी का चतकर लगाया... मानो कोई पागल िो।"[1001] बौद्धधम शका पवरोध भी पाया जाता िै। एक महिला दूसूरी महिला से प्रश्न करती िै, "तुम इतनी तेजस्वी ककस प्रकार से हदखाई देती िो?" उसका उत्तर िै: "मनैं ेपीले वस्त्र निीं ंपिने, न वलकल वसन िी धारण ककए, न मसर मुंडाया, और न तपत्स्वतनयों की भांतत बालों का गुच्छा रखा।"[1002] वेदों की तनन्दा और खण्डन को समझा गया कक ये नरक में अथवा नीच योतनयों में ले जानेवाले कम श िैं। मिाभारत1003 के एक पात्र का किना िै कक "मेरा जन्म र्ृगाल की योतन में कैसे िुआ इसका कारण यि िै कक म ैंएक नकली पंडडत था; म ैंिेतुवादी अथवा युत्ततवादी, वेदों की आलोचना करने ेवाला, एवं तकशर्ास्त्र में तथा तनरथकश तकशपवज्ञान में रमा िुआ था, म ैंताककशक युत्ततयों की घोषणा करता था, सभाओंमें बिुत बोलता था, पुरोहितों की तनन्दा करता था और ब्रह्म के पवषय में जो युत्ततयां ंऔर प्रमाण वे उपत्स्थत करते थे ेउनका पवरोध करता था; म ैंनात्स्तक था, और ऐसे सब व्यत्ततयों को म ैंसन्दिे की दृत्ष्ट से देखता था जो मुझे ेपंडडत समझते थे।" पुराणों एवं ंइततिासों को भी मान्यता दी गई िै।1004 किीं-तिीं वेदों के प्रामाण्य के पवषय में सन्दिे प्रकट

996 12/56,41।

997 2/81,70

998 र्ात्न्तपूव,श218। 6. 14/6, 18।

999

1000 [illegible]

1001 14:6,18 ।

1002 13: 123, 8; और भी देणखए12: 18, 32।

1003 12: 180, 47-48।

1004 12:343, 20।

ककया गया ि◌ै। "वेद कपट से पूण शि◌ै।"[1005] सम्भवत: यि◌ं ◌ंपर उपतनषदों के इस मत का कक त्जन्ि◌ोंनेतनमय कमों का मयाग कर हदया ि◌ै उनके मलए वेदों का कोई उपयोग निीं ◌ंि◌ै, प्रततबबम्ब पा् प्रतीत ि◌ोता ि◌ै।

मिाभारत को जो धम शअमभमत ि◌ै वि वैहदक ि◌ै, यद्यपप यि अपनेभूतकाल को लेकर भपवष्यकाल में अधधक मिान ि◌ो गया ि◌ै। अपनी स्वतन्त्र सत्ता को त्स्थर रखते ि◌ुए इसनेनये देवी-देवताओं के साथ भी उधचत न्याय का व्यविार ककया ि◌ै। इन्द्र बिुत मित्त्विीन ि◌ो गया ि◌ै। सौर जगत् ◌्के देवता पवष्णु के गुण अत्न और सूय श को प्रदान कर हदए गए ि◌ैं। यम अपनेमित्त्व को संभाले ि◌ुए ि◌ैं, यद्यपप जिां ◌ंवि न्यायधीर् बना हदया गया ि◌ै, अथात्् शअमरशाज। "यम नाम मृमृयु का निीं ि◌ै, जैसाकक कुछेक लोगों का पवचार ि◌ै, वि एक ऐसा देवता ि◌ै जो धमामशमाओं को आनन्द और दुराचाररयों को कष्ट देनेकी व्यवस्था करता ि◌ै।"[1006] वायु और वरुण का अत्स्तमव ि◌ैकिकन्तु वि गौरव निीं ◌ंरिा। प्रजापतत जैसा का तैसा ि◌ी ि◌ै, यिां ◌ंतक कक कुछ समय तक, अथात्श ◌्मर्व और पवष्णु के उदय से पूव शतक, उसे सबसे श्ेरेष्् देवता समझा गया। बौद्धधम शका आहदम पाली-साहिमय इस त्स्थतत का प्रततपादन करता ि◌ै। दूसूरी त्स्थतत की पवर्ेषेता बत्रमूतत शके पवचार से लक्षक्षत ि◌ोती ि◌ै। ब्रह्मा, पवष्णु और मर्व सवोपरर सत्ता के ि◌ी मभन्न-मभन्न रूप माने गए, यद्यपप पद में सब एक समान ि◌ैं। मेगस्थनीज इस पवचार से अमभज्ञ था। पवष्णु और मर्व अन्य देवताओं से ऊपर मानेगए, यद्यपप इन्िें उस समय तक कोई स्पष्ट पवर्ेषेता प्रदान निींकी गई थी। ये बिुत सरलता के साथ एक- दूसूरे के अन्दर प्रपवष्ट ि◌ो जाते थे।1007 एक श्लोक में मर्व को पवष्णु का रूप धारण ककए ि◌ुए और इसी प्रकार पवष्णु को मर्व का रूप धारण ककए ि◌ुए सम्बोधन ककया गया ि◌ै।1008 तीसरी त्स्थतत का उदय तब ि◌ोता ि◌ै जबकक कृष्ण को, जो मिाभारत के मिाकाव्य का एक नायक ि◌ै, पवष्णु का रूप दे हदया गया। कृष्ण का वैष्णवमत अध्याममवाद-पवषयक ममथ्या पवश्वासों और वैहदक कमकशाण्ड दोनों से उमकृष्ट समझा गया। कामलय सप शके मसर पर चढ़कर कृष्ण के नाचने की घटना को नाग अथवा सपों की पूजा को कृष्ण की पूजा द्वारा दबा हदए जानेका प्रतीक माना गया। कृष्ण द्वारा इन्द्र की पराजय वैहदक रूहढ़वाद के वैष्णवमत द्वारा दबा हदए जानेका प्रतीक ि◌ै।

एकेश्वरवाद की प्रवृपृत्त अभी भी प्रचमलत थी। "म ◌ैंनारायण ि◌ं◌ूं◌ू, म ◌ैंपवश्व का स्रष्टा ि◌ं◌ूं◌ू और म ◌ैंि◌ी संिारकता श ि◌ूं, म ◌ैंपवष्णुं, में ब्रह्मा ि◌ं◌ूं◌ू, म ◌ैंइन्द्र ि◌ं◌ूं◌ू, म ◌ैंराजा कुबेर ि◌ं◌ूं◌ू, यम, मर्व, सोम, कश्यप और प्रजापतत भी म ◌ैंि◌ी ि◌ं उपतनषदों में प्रततपाहदत एकेश्वरवाद ने अपना अधधकार जमाकर मभन्न-मभन्न देवताओं को एक ि◌ी सवोपरर ब्रह्म की मभन्न-मभन्न अमभव्यत्ततयों में पररणत ि◌ुआ बताया। दैवीय अन्तयामशमता का खुले रूप में प्रचार ककया गया। उपतनषदों के ब्रह्म को एक पवमर्ष्ट व्यत्ततमव प्रदान ककया गया और उसे ईश्वर किा गया जो पवपवध नामों से प्रकट ि◌ोता ि◌ै, यथा मर्व, पवष्णु, कृष्ण।1010 भत्तत अथवा ईश्वर के प्रतत प्रगाढ़ प्ेरेम जो ककसी इच्छा-

---

1005 12:329,6।

1006 5/42, 6।

1007 3/189 ,5 1

1008 3:39, 761

1009 3/189, 5 ।

1010 मिपष शपतञ्जमल ने मर्व भागवतों का उल्लेख ककया ि◌ै। देणखए, मिाभाष्य् 2: 76।

पवर्ेषे की पे्रेरणा सेर्नीं ंउमपन्न िोता, मिाभारतधम शका मित्त्वपूण शरूप िै। अर्रीरी ब्रह्म पूजा का पवषय र्नीं ं बन सकता, इसमलए मिाभारत के आत्स्तक धम शने ब्रह्म को ईश्वर का रूप दे हदया। तन:सन्दिे इसे इस पवषय का भली प्रकार से ज्ञान िै कक अर्रीरी परम या तनरपेक्ष ब्रह्म दोनों से अधधक यथाथ शिै।1011 यि अमभव्यतत वासुदेव से श्रेेष् िै। "यथाथसशत्ता वि िै जो अपवनार्ी िै, तनमय िै, तथा अपररवतनशीय िै ।"[1012] र्रीरी वासुदेव पर बल हदया गया िै और धाममकश दृत्ष्ट से उपतनषदों में इसका समथनश पाया जाता िै।"[1013]

मिाभारत उस समय के पवपवध प्रचमलत धाममकश पवश्वासों को स्वीकार कर सका तयोंकक यि एक सत्न्दग्ध पवश्वास फैला िुआ था कक ये सब एक समय की प्राप्त्त के मभन्न- मभन्न माग शिैं। "ज्ञान की पांचों पद्धततयों में मभन्न-मभन्न प्रकारों एवं ंमभन्न-मभन्न पवचारों के अनुसार उसी एक नारायण का प्रचार ककया गया िै और पूजा का पवधान बताया गया िै; अज्ञानी पुरुष उसे इस प्रकार से र्नीं ंपिचान सकते।"[1014] रामायण व मिाभारत दोनों मिाकाव्यों में पुराने ेवैहदकधम शका नवीन हिन्दूधम शमें क्रमर्: पररवतनश देखा जाता िै। र्ातत, पार्ुपुत अथवा र्ैवै और पाञ्चरात्र पद्धततयां, जो आगम की श्रेेणी में आती िैं और इसीमलए अवैहदक िैं. हिन्दूधम शमें प्रपवष्ट की गई। मत्न्दरों में मूततपूशजा और तीथस्शथानों की यात्रा भी धीरे- धीरे प्रचमलत िो गई। चूंकक उन मभन्न-मभन्न धाममकश सम्प्रदायों का ज्ञान जो िमें मिाभारत के मलए आवश्यक िै जो र्ास्त्रीय काल की व्याख्या के मलए ककए गए, इसमलए अब िम संक्षेप में उनका प्रततपादन करते िैं।

6. दुगुापूशजा

मिाभारत के भीष्मपव शके प्रारम्भ में दुगुा शकी पूजा का उल्लेख िै। कृष्ण अजुनश को युद्ध आरम्भ करने े से पूव शसफलता-प्राप्त्त के मलए दुगुा शको अमभवादन करने ेका परामर् शदेते िैं।" प्रथम अवस्था में दुगुाशकेवल एक कुमारी देवी के रूप में थी त्जसकी पूजा पवन्ध्य पवतश की जंगली जाततया करती थीं। र्ीघ्र िी वि मर्व की अधाङ्शगनी बन गई और उमा नाम से पुकारी जानेलगी। माकशण्डेयेपुराण में और िररवंर्1015 के दो श्लोकों में उसके नाम पर एक वृित् ्सम्प्रदाय बन गया। सातवींर्ताब्दी के प्रारम्भ में बाण ने चण्डीर्तक मलखा।

1011 र्ात्न्तपव,श 339, 21-28।

1012 विी, 162, 101

1013 देणखए, कठोपतनषद्, 1/2 20; श्वेताश्वतर उपतनषद्, 3/20 6/2 , मुण्डक, 3 : 2 3.।

1014 अध्याय 23। उसे कई नाम हदए गए िैं, यथा कुमारी, काली (कृष्णवण शअथवा काल, जो संिार करती िै), कपाली (नरमुण्ड धारण करने वाली), मिाकाली, (मिान संिारक), चण्डी (भयानक) कान्तारवामसनी (जंगल में रिने वाली)। पवराटपव शमें एक श्लोक िै (अध्याय 6) जो युधधत्ष्िर नेदुगुा शकी स्तुतत में पढ़ा िै। महिषासुरु को मारनेवाली के रूप में उसका उल्लेख ककया गया िै, एक ऐसी देवी जो पवन्ध्याचल के पिाड़ों में रिती िै, मद्य पीती िै, मांस खाती िै और यज्ञों में पर्ुओंकी बमल लेती िै। उसे कृष्ण की बहिन भी बताया गया िै जो कृष्ण के िी समान रंग में घनश्याम िै। .

1015 अध्याय 59 और 166, और भी देणखए एवलॉन 'हिम्स टु द गॉडेसे' ।

इसमें सन्दिे निीं ंकक प्रारम्भ में र्त्तत की पूजा अनायजशातत में प्रचमलत थी और धीरे- धीरे आयजशातत ने उसे अपना मलया। चूंकक वि एक भयानक देवी थी, जो संसार की संिारकारक र्त्तयों का आधधपमय करती थी, इसमलए उसे रुद्र की पमनी बना हदया गया। उसे ऋग्वेद की देपवयों, रुद्राणी, भवानी आहद, के साथ सम्बत्न्धत करनेके मलए प्रयमन ककए गए। देवीसूतत,'[1016] त्जसे जीवन की आद्या र्त्तत की स्तुतत में मलखा ुआ बताया जाता िै, र्ाततधम शका आधार बनाया गया िै। उसका छिा श्लोक इस प्रकार िै: "म ैंरुद्र के धनुष को झुकाती िंू, पापकम शएवं ंब्रह्म के पवद्रोिी का उच्छेद करनेके मलए। म ैंमनुष्य की ओर से युद्ध करती िंू। म ैं आकार् एवं पृथ्वी पर व्याप्त िंू।" वि परमाममा से तनकली िुई, आकार् से नीचेकी ओर आती िुई, सकल पवश्व में व्याप्त र्त्तत िै। "म ैंवायु के समान सब पदाथों को समेटती िुई पवचरती िंू।"[1017] केन उपतनषद् में िमें एक देवी का वणनश ममलता िै जो उन देवों के िोर् हिकाने लगा देती िै त्जन्िें असुरों के ऊपर पवजय प्राप्त कर लेनेके कारण बिुत गव शिो गया था, और अन्त में वि इन्द्र के आगे एक िैमवती उमा नाम की एक सुन्दर स्त्री के रूप में उसे सवश्रेेशष् ज्ञान देनेके मलए प्रकट िोती िै। विी आगे चलकर ब्रह्म की मायार्त्तत बनती िै। इसका दार्तशनक समाधान यों हदया जाता िै कक परमब्रह्म सृत्ष्ट, उसकी त्स्थतत और संिार के तीनों काय शबबना अपनी र्त्तत की सिायता के निींकर सकता। जब ईश्वर सृजन करता िै वि वाणीरूप र्त्तत से संस्पृष्ट िोता िै, जब संसार की रक्षा (त्स्थतत) के काय शमें संलग्न िोता िै तो श्री अथवा लक्ष्मीर्त्तत प्रबल िोती िै और जब संिार करता िै तो दुगार्शत्तत प्रबल िोती िै। र्त्तत िी ईश्वरी िै, जो समस्त सत्ता एवं जीवन का उद्गम, आधार एवं ंअन्त िै। र्त्तत-सम्प्रदाय को अपनेअन्दर सत्ममलत करने ेके मलए ककए गए आथीकरण के प्रयमनों के बावजूद इसके प्रारम्भ की जो सीमाएं थींवे आज भी र्ाततों की कायप्रशणाली में देखने ेआती िैं।

7. पार्ुपत पद्धतत

मिाभारत में िमें एक ईश्वरज्ञान ममलता िै त्जसका नाम पार्ुपुत िै और जो मर्व से सम्बद्ध िै।'[1018] ऋग्वेद का रुद्र (1/114, 8) जो प्रकृतत की संिारक र्त्तयों का मूतरूशप िै, 'र्तरुद्रीय' में पर्ुओं का स्वामी- 'पर्ूनां ंपततः' बन जाता िै। ब्राह्मणग्रन्थों में रुद्र के मलए पवमर्ष्ट पररभाषा के रूप में मर्व र्ब्द का प्रयोग आता ै। पार्ुपुत पद्धतत-रुद्र मर्व की परम्परा को जारी रखती िै।

पार्ुपुत दर्नश का वृत्तान्त िमें सवदशर्नशसंग्रि1019 और अद्वैतानन्द के ब्रह्मपवद्याभरण में ममलता िै। र्ंकर'[1020] ने अपने वेदान्तसूत्रों के भाष्य में इस ईश्वरज्ञान की समीक्षा की िै। पांच मुख्य पवभाग इस प्रकार से िैं

1016 ऋग्वेद 10/125 I

1017 10/13, 81

1018 नारायणीय पवभाग (र्ात्न्तपव श349, 5, 64) में इसे धाममकश मसद्धान्तों के पांच सम्प्रदायों में से एक सम्प्रदाय बताया गया िै। वनपव शमें अजुनश पुर्पतत (पर्ुओंका स्वामी)- जो अपनी स्त्री उमा, पावतशी अथवा दुगा शके संग हिमालय पवतश में रिता िै और त्जसके असंख्य गण िैं- से गाण्डीव धनुष प्राप्त करता िै। इसका सम्बन्ध ऋग्वेद के रुद्र से िै, त्जसके गण मरुत थे, और उनके नेता के रूप में उसेगणपतत किा जाता िै।

1019 अध्याय 6।

(1) कारण; कारण प्रभु ि◌ै, पतत (स्वामी) ि◌ै, तनमयर्ासक ि◌ै, जो समस्त जगत् ◌्की रचना करता ि◌ै, उसे त्स्थर रखता ि◌ै और संिरि करता ि◌ै। (2) काय;श यि कारण के ऊपर तनभरश ि◌ै। इसके अन्दर आते ि◌ैं-ज्ञान अथवा पवद्या, इत्न्द्रयांअथवा कलाएं, और जीवाममा अथवा पर्ुर्।◌ु समस्त ज्ञान एवं ◌ंजीवन, पांच तत्त्व, और पांच गुण, पांचं इत्न्द्रयों और पांच कमेत्न्द्रयों और तीन आभ्यन्तर इत्न्द्रयां बुद्धध, अिभाव और मन-ये सब उसी प्रभु ◌ुके अधीन िैं। (3) योग अथवा साधन या अनुर्ासन; यि मानमसक प्रकक्रया ि◌ै। त्जसके द्वारा जीवाममा ईश्वर को प्राप्त करती ि◌ै। (4) पवधध अथवा तनयम; यि उन कक्रयाओंसे सम्बन्ध रखता ि◌ै जो मनुष्य को धाममकश बनाती ि◌ै। (5) दु◌ुःखान्त, अथवा दु◌ुःखों का अन्त; यि अत्न्तम मोक्ष ि◌ै अथवा दु◌ुःखों का नार् ि◌ै और आममा को उन्नत पद की प्रात्प्त ज्ञान और कक्रया की पूणर्शत्तत द्वारा, प्राप्त कराता ि◌ै। जीवाममा अपनी परामथ शअवस्था में भी अपना व्यत्ततमव त्स्थर रखती ि◌ै, और पवपवध रूप धारण कर सकती ि◌ै तथा ककसी भी काम को तुरन्त कर सकती ि◌ै। वैर्ेपेषकसूत्रों के सवप्रशथम टीकाकार प्रर्स्तवाद और न्यायभाष्य पर की गई व्याख्या के रचतयता उद्योतकर इस मत के अनुयायी थे।

8. वासुदेव कृष्ण

अब ि◌म मिाभारत के सबसे अधधक मित्त्वपूण शमसद्धान्त, वासुदेवकृष्ण-सम्प्रदाय की ओर आते ि◌ैं जो भगवद्गीता और आधुतनक वैष्णव सम्प्रदाय का आधार ि◌ै। भागवतधम शके पवकास की चार मभन्न-मभन्न त्स्थततयों का वणनश गाब शने ककया ि◌ै। पिली त्स्थतत में यि ब्राह्मणधम शसे सवथशा स्वतन्त्र सत्ता रखता था। इस त्स्थतत की मुख्य मुख्य पवर्ेषेताएं, जो गाब शकी सम्मतत में 300 वष शईसापूव शतक बनी रिीं, ये ि◌ैं-कृष्ण वासुदेव द्वारा एक प्रचमलत एकेश्वरवाद की स्थापना, सांख्ययोग के साथ इसका सत्म्मलन, उतत धम शके संस्थापक को देवता का रूप दे देना, और भत्तत के आधार पर एक अगाध धाममकश भावना उमपन्न कर देना। इस धम शका जो वैहदक-पवरोधी स्वरूप ि◌ै और त्जसकी समीक्षा वेदान्तसूत्रों के भाष्यकारों ने की ि◌ै वि इसी त्स्थतत से सम्बन्ध रखता ि◌ै। इस धम शको ब्राह्मणधम शका रूप देना, कृष्ण को पवष्णु के समान मान लेना, और पवष्णु को प्रधानता देना; अथवा केवल एक बा़ देवता ककन्तु उन सबसे बा़ मानना-ये द्पवतीय त्स्थतत (काल) से सम्बन्ध रखते ि◌ैं, जो लगभग 300 वष शईसापूव शका ि◌ै। पवष्णु के उपासकों के सम्प्रदाय के मलए 'वैष्णय' नाम मिाभारत में आता ि◌ै।'[1021] पवष्णु की वैहदक पूजा में ईर्ानुकम्पा का कोई उल्लेख निीं। तीसरी त्स्थतत वि ि◌ै जबकक भागवतधम शवैषै्णवमत के अन्दर पररवतततश ि◌ुआ और उसमें वेदान्त, सांख्य और योग के दार्तशनक तत्त्वों का समावेर् ि◌ुआ। गाब शके मत से यि प्रकक्रया कक्रत्श्चयन सन् ◌्के प्रारम्भ से लेकर 1200 वष शईसा के पश्चात् ◌्तक चली। इसके पश्चात् ◌्अत्न्तम व चौथी त्स्थतत तब आई जबकक मिान अध्याममवादी रामानुज ने इसको दार्तशनक पद्धतत का रूप हदया। ि◌में यिांपिली दो त्स्थततयों से ि◌ी मतलब ि◌ै।

1020 र्ांकरभाष्य , 2:237-39।

1021 18:6,67।

भागवतधम-शत्जसमें वासुदेव का व्यत्ततमव प्रमुख एवं ंकेन्द्रीभूत ि और त्जसकी मर्क्षा भगवान कृष्ण ने श्वेतद्वीप में नारद को दी किा जाता ि कक विी ि जो िररगीता1022 एवं भगवद्गीता'1023 का मसद्धान्त ि।

मिाभारत के नारायणीय पवभाग में नारद की बदररकाश्रमयात्रा की कथा पाई जाती ि, जिां ंथे नर और नारायण को देखने गए थे। विां ंपर नारायण को कुछ धाममकश कृमय करते िुए देखकर नारद मन से पूछा कक तया और भी कोई ऐसी सत्ता ि कक त्जस ने उद्पवग्न पूजा सवोपरर भगवान को भी करनी िोती ि। नारायण ने उत्तर हदया कक उन्िोंनेउस सनातन तनमय आममा की पूजा की ि जो आद्यतत्त्व ि। उसे देखने की उमकणठा से नारद श्वेतद्वीप में गए जिां ंमिान सत्त्व ने उनसे किा कक वि ऐसे व्यत्तत को हदखलाई निीं ंदे सकता जो पिले से उसमें भत्तत न रखता िो। वासुदेव के धम शकी व्याख्या नारद के मलए कर दी गई। वासुदेव सवोपरर आममा ि, जो सब संसार का अन्तव्यापशी रूप से र्ासक ि। जीपवत प्राणणयों का प्रतततनधधमव संकषणश द्वारा िुआ ि, जो वासुदेव की िी एक आकृतत ि। संकषणश से प्रद्युम्न अथवा मन तनकलता ि और प्रद्युम्न से अतनरुद्ध अथवा आममचेतना उमपन्न िोती ि। ये चार सवोपरर ब्रह्म के रूप िैं। मिाभारत यि भी सुझाव देता ि कक इन व्यूिों अथवा रूपों की संख्या और स्वरूप के पवषय में मभन्न-मभन्न मत स्वीकार ककए गए िैं।'1024 भगवद्गीता उनका उल्लेख निींकरती और वेदान्त सूत्र इस कल्पना की समालोचना यों करते िैं तयोंकक सृतृष्टरचना के पवषय में जो सवमशान्य मत ि उसके साथ इसकी संगतत निीं ंबैठती। अवतारों का भी उल्लेख ि यथा वराि, नरमसंि, वामन, परर्ुराम, श्रीराम और वि "जो मथुरा में कंस के वध के मलए जन्म लेगा।" बुद्ध का नाम अवतारों में निीं ंि। भीष्म ने युधधत्ष्ठर को जो उपररचरवसु की कथा सुनाई उसमें व्यूिों अथवा आकृततयों का किीं ंपता निीं।1025

1022 र्ात्न्तपव,श 346।

1023 348, 53। यि एक एकेश्वरवादी अथवा एकांततक धम शि। नारायणीय, सामवत, एकांततक, भागवत. और पाञ्चरात्र ये र्ब्द पयायशवाची के रूप में प्रयोग में आते िैं। इस सम्प्रदाय के मुख्य उद्भव- स्थान मिाभारत का नारायणीय पवभाग, र्ात्ण्डल्यसूत्र, भागवतपुराण, पाञ्चरात्र आगम, तथा आलवार एवं रामानुज के ग्रन्थ िैं। नारदपाञ्चरात्र में उल्लेख आता ि कक उतत पवषय पर मुख्य ग्रन्थ ि ब्रह्मवैवतपुशराण, भागवत, पवष्णुपुराण, भगवद्गीता और मिाभारत (2:7, 28-32;3:14, 73; 4: 3, 154)। रामानुज के ग्रन्थ िमारे वतमशान प्रयोजन में उपयोगी न िोंगे, तयोंकक वे ईसा के पश्चात् ्की बारिवीं ं र्ताब्दी के िैं और उनमें जान-बूझकर उपतनषदों के एकेश्वरवाद का भागवतधम शके साथ समन्वय करनेका प्रयमन ककया गया ि। भागवतपुराण भी कुछ अधधक मित्त्व का निीं ि, तयोंकक परम्परा के अनुसार, इसके रचतयता ने इसका तनमाणश उस समय ककया जब उसने यि अनुभव ककया कक उसने मिाभारत में भत्ततप्रधान अंर् के साथ पूरा न्याय निीं ककया ि (1:4 और 5)। यि नारद की प्रेरणा से िी सम्भव िो सका कक उसनेभागवतपुराण में भत्तत को मुख्य स्थान हदया। नारदसूत्र और र्ात्ण्डल्यसूत्र मिाभारत तथा भागवत से अवाचशीन िैं तयोंकक प्रथम में र्ुक और व्यास का उल्लेख ममलता ि (न्यायसूत्र, 83), और दूसरे में भगवाद्डगीता के अनेक उद्धरण िैं (9, 15)। इस प्रकार िमारा मुख्य आधार मिाभारत का नारायणीय पवभाग ि।

1024 र्ात्न्तपव,श 348, 57 ।

1025 उपररचरवसुनेपाञ्चरात्र-पद्धतत के धम शको अङ्गीकार ककया त्जसका प्रचार पिले-पिल धचत्रमर्खतण्डयों ने ककया। इस पद्धतत की व्याख्या ऋपषयों ने भगवान की उपत्स्थतत में की थी त्जसने किा कक "तुमने एक लाख श्लोकों का तनमाणश ककया ि, त्जनमें मनुष्यों के कायों के सम्बन्ध में सब तनयमों का पवधान ि और जो वेद के भी अनुकूल िैं... और त्जनमें कक्रयाममक धम शके सम्बन्ध में सब प्रकार के उपदेर् पवद्यमान िैं और धचन्तन या ध्यान सम्बन्धी उपेदर् भी िैं। यि र्ास्त्र मनुष्यों को एक से दूसरे को पिुंचता रिेगा और अन्त में बृिस्पतत तक पिुंचेगा। उससे राजा वसु ुइसे प्राप्त करेगा और मेरा

इससे दो बातें स्पष्ट ि◌ो जाती िैं। प्रथम यि कक भागवतधम शएकेश्वरवादी िै और वि भत्तत को िी मोक्ष का माग श बतलाता िै। परुहिंसां वत्जतश िै। बुद्ध ने भी परुहिंसां के प्रतत ऐसा िी पवरोध प्रदमर्तश ककया, यिी कारण िै कक उसे पवष्णुका अवतार मान मलया गया। धम शबार-बार भत्तत और कम शके संयुतत रूप में पालन के ऊपर बल देता ै।'[1026] यि तपस्या व मयाग की मांग निीं ◌ंकरता।1027

'भगवत्' ◌् का पिला और मुख्य नाम वासुदेव िै।1028 "तनमय ईश्वर को, जो रिस्यमय सबका उपकार करने ◌ेवाला एवं ◌ंप्रेममय िै, वासुदेव जानना चाहिए।"[1029] यि नाम भागवत-मन्त्र मेंआता िै।"[1030] कभी-कभी यि किा जाता िै कक भगवत् ◌्नाम संकेत करता िै कक यि धम शपुराने ◌ेवैहदक-सम्प्रदाय का पवकमसत रूप िै। िमें वेदों में भग नामक एक देवता का वणनश ममलता िै त्जसे वरदान देने वाला किा गया िै। धीरे-धीरे 'भग' का अथ श सौजन्य अथवा उदारता िो गया, और संस्कृत व्याकरण के तनयमों के अनुसार ऐसा देवता त्जसमें उदारता के गुण उपत्स्थत िों, भगवत् ◌्नाम से जाना जानेलगा। और ऐसे देवता की उपासना िी भागवतधम शिुआ। पवष्णुपुराण में किा िै कक ऐश्वय,श धम,श यर्, सम्पपत्त ज्ञान और वैराग्य भग किलातेिैं, और वि त्जनके अन्दर ये गुण उपत्स्थत िैं वि भगवत िै।'[1031] आगे चलकर वासुदेव को नारायण और पवष्णु का रूप िीडहदया गया।

भतत बन जाएगा।" राजा वसु ने एक अश्वमेघ यज्ञ ककया, त्जसमें बृिस्पतत पुरोहित बना और एकत, द्पवत, तथा बत्रत दर्कश अथवा सदस्य बने। उस अवसर पर कोई परु निीं ◌ंमारा गया। ईश्वर केवल राजा के सामने प्रकट िुआ और उसने प्रसाद ग्रिण ककया। बृिस्पतत क्रोधधत िुआ। दर्कशों (सदस्यों) ने उससे किा कक प्रभु ◌ुतो केवल उन्िीं के सामने प्रकट िोता िै जो उसकी अनुकम्पा के पात्र िोतेिैं। वे श्वेतद्वीप की कथा किते िैं, जिां पर "ऐसे मनुष्य िैं, जो चन्द्रमा के समान कात्न्त वाले और देवता में भत्तत रखने वाले िैं, त्जनके इत्न्द्रयांनिीं िैं, जो कुछ निीं ◌ंखाते, जो केवल परमेश्वर में िी रत रिते िैं जो सूय शके समान उज्जज्जवल िैं। विीं पर िमनेइस मिान उपदेर् को सुना कक ऐसे व्यत्तत को जो उसमें भत्तत निीं रखता, सवोपरर ईश्वर हदखाई निीं ◌ंदेता।" देणखए भण्डारकर : 'वैष्णपवज़्म'

1026 र्ात्न्तपव,श 334-351।

1027 तुलना कीत्जए : "प्रवृपृत्तलक्षणश्चैव धमो नारायणाममकः", र्ात्न्तपव,श 347, 80-81 ।

1028 देणखए, भगवद्गीता, 7/19 |

1029 भीष्मपव,श अध्याय 66।

1030 "ओंनमो भगवते ◌ेवासुदेवाय ।"

1031 6: 5,74 भागवत धम शको सामवतधम शके नाम से भी पुकारा जाता िै, तयोंकक वासुदेव को यि नाम हदया गया िै

(आहदपव,श 218, 12)। भागवत में सामवतों को भगवत् ◌्के उपासक बतलाया गया िै (9:9, 49)। ये अन्धक और वृत्ूष्णयों के समान यादवों की उपजाततयांथीं।◌ं (भागवत, 1, 14, 25, 3, 1, 29)। मेगस्थनीे नेभी उनका संकेत ककया िै। आचीकरण के फलस्वरूप वासुदेव का नारायण के साथ और उसके पश्चात् ◌्पवष्णु के साथ साम्य िो गया। िम यि तनश्चयपूवकश निीं कि सकते ◌ेकक भगवद्डगीता के समय में पवष्णु को सवोपरर यथाथतशा माना गया या निीं। इसमें वि केवल आहदमय िै। मिाभारत के नारायणीय पवभाग में बासुदेव और नारायण एकसमान बताए गए िैं। ऐसे दो पक्षक्षयों के सम्बन्ध में पुरानेवैहैदक पवचार ने, जो परस्पर ममत्र िैं और एक िी वृक्ूष पर तनवास करतेिैं, नर और नारायण की सनातन ममत्रता की कथाओं ◌ंको जन्म हदया िोगा-ये जीवाममा एवं ईश्वर के रूप िैं। केवल साक्षीमात्र िै नारायण, और फलों को खानेवाला िै नर। नारायण, जो पवश्व की सनातन आममा िै, मनुष्यों के मलए पवश्रात्न्त का स्थान िै (मिाभारत, 12: 341)। मनु किता िै कक जल को 'नार' किा गया िै, और चूंकक सवोपरर ब्रह्म का तनवास स्थान जल िै इसमलए उसे नारायण किा गया िै। (1: 10, और भी देणखए, ऋग्वेद 10: 82,5 और 6)। वि समस्त संसार का आहद उद्धवस्थान िै, सवोपरर ईश्वर िै त्जसे एक विमकाय सप शरे्षेनाग के

प्रारम्भ से ि◌ी पवष्णु को दैव अथवा भाग्य का मिान पवधाता माना गया ि◌ै। वेदों में उसे तीन पाद वाला देवता किा गया ि◌ै। वि अधचन्मय ि◌ै और उसका तनवास प्रकार् के उज्जज्जवल साम्राज्जय में ि◌ै, "जिां ◌ंकक आकार् में उ़ने ◌ेवाले पक्षी भी उ़ने ◌ेका सािस निीं ◌ंकर सकते।"[1032] उपतनषदों में 'पवष्णु के उच्चतम स्थान तक पिुंचना मनुष्य का उद्देश्य बताया गया ि◌ै।"[1033] वेदों में भी पवष्णु के मलए मनुष्य को पवपपत्त से छु़ाने ◌ेका काम बताया गया ि◌ै।1034 र्तपथ ब्राह्मण से किा ि◌ै कक "मनुष्य पवष्णुरूप ि◌ैं।"[1035] ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, असुरों के पवरुद्ध विी देवताओं का ब़ा सिायक ि◌ै। असुरों से देवताओं के मलए भूमम प्राप्त करने ◌ेके मलए वि वामन अवतार का रूप धारण कर लेता ि◌ै।"[1036] नारायण नाम सबसे पिले ि◌में र्तपथ ब्राह्मण में ि◌ी ममलता ि◌ै,'[1037] यद्यपप विां वि पवष्णु से सम्बद्ध निीं ◌ंि◌ै।"[1038]

कृष्ण का सम्बन्ध वासुदेव-नारायण के साथ कैसे ि◌ुआ? मिाभारत में किीं–किीं ◌ंउसे उनसे मभन्न ककया गया ि◌ै।'[1039] ककन्तु र्ीघ्र ि◌ी उसे सवोपरर ब्रह्म के समान मान मलया गया। मेगस्थनीज ने, जो चन्द्रगुप्त (300 वष शईसापूव)श के राजदरबार में यूनान देर् का राजदूत था, इस तथ्य का वणनश ककया ि◌ै कक उस काल में मथुरा में कृष्ण की पूजा ि◌ोती थीं। यहद ि◌म कृष्ण के पूवपुशरुषों की खोज करनेका प्रयमन करें तो ि◌में एक वैहदक ऋपष का यिी नाम ममलता ि◌ै त्जसने ◌ेएक सूतत की रचना की।1040 उसे अङ्धगरस् ◌्ऋपष का वंर्ज किा गया ि◌ै।1041 छान्दोग्य उपतनषद में देवकी के पुत्र कृष्ण को ि◌म घोर नाम ऋपष का, जो एक आङ्धगरस ि◌ै, मर्ष्य पाति◌ें।'[1042] यि स्पष्ट ि◌ै कक वैहदकसूततों के समय से लेकर उपतनषद्-काल तक वैहदक पवचारक के रूप में कृष्ण की एक परम्परा थी। ककन्तु ऋग्वेद के एक अन्य वातय में कृष्ण का एक अनाय शसेनापतत के रूप में वणनश ककया गया ि◌ै,

---

ऊपर क्षीरसागर में लेटे ि◌ुए हदखाया जाता ि◌ै। अलंकार को छो़कर, वि समस्त पवश्व का स्वाममचेतन स्वामी ि◌ै, त्जसकी प्रततद्वन्द्पवता में अनाममतत्त्व ि◌ै। कल्पना की जाती ि◌ै कक इसी से नारद ने अपना एकेश्वरवादी धम शप्राप्त ककया।

1032 ऋग्वेद, 1/155, 5।

1033 कठोपतनषद, 1, 3, 9।

1034 ऋग्वेद, 6, 49, 13।

1035 5/2 5, 2-3।

1036 र्तपथ ब्राह्मण, 1: 2, 5, 5, तैपत्तरीय ब्राह्मण, 1/6, 1, 5।

1037 12: 3, 4, 1।

1038 तैपत्तरीय आरण्यक में नारायण 'तनमय, सनातन, सवोपरर एवं स्वामी' के अथों में आता ि◌ै और विां उसका नाम ि◌रर ि◌ै (तैपत्तरीय आरण्यक, 10/11 1)। मिाभारत में नारायण एक प्राचीन ऋपष का नाम ि◌ै (और भी देणखए, ऋग्वेद, 10, 90 और मिाभारत 5: 49; 5-20; 7/200, 57) ब्राह्मणग्रन्थों के समय में नारायण सावभशौम रूप धारण कर लेता ि◌ै, और मिाभारत में उसे पवष्णु से तद्रूपू कर हदया गया ि◌ै। इस प्रकार से भीष्मपव शमें वासुदेव, नारायण और पवष्णु पयायशवाची रूप में प्रयोग में आए ि◌ैं (अध्याय 65 और 66)।

1039 12/334, 18।

1040 ऋग्वेद, 8, 74

1041 देणखए, कौषीतकक ब्राह्मण, 30/9 पाणणतन, 4/1 ,96।

1042 .3:17।

 त्जसे अंर्ुमुती के ककनारे पर दस िार सेना के साथ इन्द्र से युद्ध के मलए प्रतीक्षा में हदखाया गया ीं।1043 सर
आर० जी० भण्डारकर का पवश्वास िै कक घुमतक़ चरवािों की एक उपजातत, त्जसे आभीर या भील किते ेथे, े एक बालदेवता की पूजा करती थी।1044 यि एक आयेतर जातत का धगरिी था, त्जसके आचार-पवचार असंस्कृत थे। कृष्ण के जीवन के सम्बन्ध में जो लम्पटता या पवषयासत्तत की कथाएं किी जाती िैं वे इन्िीं ंघुमतक़ जाततयों से तनकली िोंगी।'[1045] श्री वैद्य के अनुसार, कृष्ण क्षबत्रयों की यादव-जातत का था, जो आयों के द्पवतीय आक्रमण के समय इस देर् में आई-यि एक ऐसा समुदाय िै जो अपनी प्रकृतत में अभी तक पर्ुपालक िै, एवं ंपर्ुओंको चरानेका काम करता िै और इसनेअपना स्थान जमुना के ककनारों पर बनाया।1046 वेबर और दत्त इमयाहद दूसूरे भारतीय पवद्यापवर्ारदों का किना िै कक पाण्डव आयेतर जातत के थे,े त्जनके अन्दर एक पवधचत्र ररवाज था कक सब भाइयों की एक समानरूप से पववाहित स्त्री 'िोती थी। उनके अन्दर कृष्ण-सम्प्रदाय का प्रचार िुआ, और मिाभारत का रचतयता यि हदखलाने का प्रयमन करता िै कक कृष्ण में भत्तत रखनेके कारण उनकी पवजय िुई। पाण्डवों की, जो ब्राह्मण-समुदाय के बािर के लोग थे,े लाइयों तथा अन्य घटनाओंको मिाकाव्य में एक धाममकश प्ेरेरणा के कारण स्थान ममला और उन्िें भी भरतवंमर्यों के नाम से आयजशातत के अन्दर प्रपवष्ट कर मलया गया। गाव शका पवश्वास िै कक कृष्ण बुद्ध से लगभग 200 वष शपूव िुआ और वि वासुदेव का पुत्र था। उसनेएक एकेश्वरवादी तथा नैततक धम शकी स्थापना की, और अन्त में जाकर उसी को देवता बना हदया गया, और भगवान वासुदेव के साथ उसे तद्रूप कर हदया गया, त्जसकी पूजा की नींव भी स्वयंउसी ने रखी थी। मिाभारत में कृष्ण के पवषय में समस्त परम्पराओं का िम सत्ममलन पातें जोकक उस समय तक बच रिी थीं-कृष्ण आयेतर जातत का नायक था, एक धाममकश मर्क्षक था, ककंवा एक उपजातत का देवता था।

मिाभारत में िम एक प्रकक्रया देखतें त्जसके द्वारा कृष्ण को एक सवश्ेरेशष् देवता बना हदया गया।1047 ककसी-ककसी स्थान पर उसे मिादेव की पूजा करते िुए हदखाया गया िै। ऐसे भी प्रकरण िैं जिां ंउसके देवमव को अमान्य ठिराया गया िै।1048 सभापव शमें मर्ुपाल कृष्ण को देवमव का पद देनेका पवरोध करता िै। भीष्म कृष्ण का पक्ष लेता िुआ किता िै : "जो कोई किता िै कक कृष्ण एक साधारण मनुष्यमात्र िै वि मन्दबुद्धध िै।" इससे

1043 8: 96, 13-15। पीछे की ककंवदंततयां ंत्जनमें किा गया िै कक कृष्ण ने गोपों का इन्द्रक की पूजा से तनवारण ककया और उसके कारण इन्द्र ने क्रोध ककया, त्जसके पररणामस्वरूप तनरन्तर वषाशुई और कृष्ण ने गोपों को वषाश से बचाने के मलए गोवधनश पवतश को उनके मसरों से ऊपर उिा लेने का कौर्लपूण शकाम कर हदखाया ऋग्वेद में वणणतश इस घटना के आधार पर तनभरश िो सकती िै। अथवशसंशहिता में किा गया िै कक कृष्ण नेराक्षस केर्ी का वध ककया। बौद्धग्रन्थों में भी उसके नाम का वणनश िै (देणखए लमलतपवस्तर) िमारे पास यि पवश्वास करने को पयाप्शत साक्षी िै कक त्जस समय जैनधम शका प्रादुभुावश िुआ, कृष्ण की पूजा प्रचमलत थी, तयोंकक िम देखते िैं कक कृष्ण की पूरी कथा ताधारण पररवतनशों के साथ बाईसवें तीथकशर अररष्टनेमम के जीवन में दुिराई गई िै। और वि एक प्रमसद्ध यादव था! देणखए 'सैक्ेरेड बुतस ऑफ द ईस्ट, खण्ड 22, पृष्ि 276-279।

1044 मौसलपव,श अध्याय 7।

1045 'वैष्ण पवज़्म', पृष्ि 36-38।

1046 'एपपक इत्ण्डया', अध्याय 18।

1047 देणखए द्रोणपव।श

1048 म्योरः 'ओररत्जनल संस्कृत टेतस्ट्स', 4, पृष्ि 205, और आगे।

यि स्पष्ट िोता िै कक कृष्ण को देवता का रूप देनेका प्रबल पवरोध था। उसे कभी-कभी द्वारका का र्ूरूवीर योद्धा एवं अधधपतत किा गया िै। समय-समय पर वि एकेश्वरवाद का धाममकश प्रचारक बन जाता िै, त्जसका पूजनीय देवता भगवत् ्था। कभी-कभी उसे िी स्वयंभगवत् ्किा गया िै। मिाभारत में पवचार के अनेकों स्तर िैं जोकक युग-युग में एक-दूसूरे के ऊपर उगते गए और जो कृष्ण को सब श्रेणणयों में प्रदमर्तश करते िैं अथात्श ्एक ऐेततिामसक पुरुष के रूप से लेकर पवष्णुके अवतार तक।

यि स्पष्ट िै कक मिाभारत के सम्पादकों ने यि अनुभव ककया था कक एक सवमशान्य एवं ्प्रचमलत नायक को पवधममयशों के र्त्तर्ाली प्रभाव की प्रततद्वन्द्पवता में मुख्र्य केन्द्र बनाना चाहिए। कृष्ण का व्यत्ततमव सिजप्राप्त था। तन:सन्दिे कृष्ण के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले कुछेक कम शऐसे िैं जो एक दैवीय सत्ता के योग्य निीं ्जंचते, जैसेकक रासलीला अथवा गोपपयों के साथ नृमृय, तथा जलक्रीा़ और वस्त्रापिरण अथात्श ्स्नान करती िुई गोपपयों के कप़ ेउ़ा लेना आहद। इन सबके समाधान की आवश्यकता िै। राजा परीक्षक्षत ने र्ुक से किा कक मेरा संर्य तनवारण कीत्जए "पवश्व के स्वामी ने अवतार धारण ककया धम शकी स्थापना तथा अधम शके पवनार् के मलए। तया उसने, जो धाममकश तनयमों का प्रकार्क, अधधपतत और रक्षक िै, व्यमभचार रूपी अपपवत्र काय शकरके उन तनयमों को भंग निीं ्ककया?" उत्तर था कक "देवताओं द्वारा धाममकश तनयमों का व्याघात और इसी प्रकार यर्स्वी पुरुषों के सािमसक काय शकलंक का कारण निीं ्बनते िैं, जैसे अपपवत्र पदाथ शको आग में डालनेसे आग में कलंक निीं ्आता िै। ककन्तुजो देवताओं की कोहट में निीं ्िैं उन्िें ऐसे कमों को करने ेका पवचार तक निीं ्करना चाहिए। यहद मर्व का अनुकरण करके कोई मूख शव्यत्तत पवषपान करे तो वि अवश्य िी मरेगा। देवताओं की वाणी तो सदा समय िोती िै, ककन्तु उनके काय शकभी समय िोतेिैं और कभी निींभी िोते।"[1049] ककन्तु ब्राह्मण की मेघापवता इसे यिींनिीं ्छोत़ी। यि कृष्ण के सारे जीवमें को रूपकालंकार में बांधकर उसे पपवत्र मसद्ध कर देगा और सारे वायुमण्डल को रिस्यमय बना देगा। गोपपयांऐसे व्यत्ततयों के उपलक्षण िैं त्जन्िोंने बबना अध्ययन के केवल भत्तत के द्वारा िी परमाममा को पा मलया। गोपपयों द्वारा अपने गृि तया पततयों का मयाग इस बात का उपलक्षण िै कक जीवाममा हदव्य पतत के आगे आममसमपणश कर देता िै। मनुष्य का हृदय वृन्दावनस्थानीय िै। राधा और गोपपयां संसार की माया में फंसी िैं। कृष्ण की वंर्ी ईश्वर की वाणी िै। उसका अनुसरण करने ेका तामपय शिै-नाम और यर् का मोि छो़ देना, मान-मयादशा तथा आममप्रततष्ठा को मयाग देना, और घर-पररवार और सबसेनाता तो़ लेना। जो सामात्जक सुरक्षा व र्ात्न्त की परवाि करते िैं वे अनन्त की पुकार का उत्तर निीं ्दे सकते। ईश्वर से प्रेम करना सूली पर चढ़नेके समान िै। जीवाममा को हदव्य पतत के आगे आममसमपणश कर देना सबके मलए एक समान िै और प्रमयेक के मलए पवमर्ष्ट भी िै। यि ऐसा अलंकार िै जो केवल भारत में िी निीं ्पाया जाता-इसमें एिलौककक गृि और पतत का मयाग आ जाता िै। इससे पूव शकक ईश्वर की प्राप्त िो, सब कुछ का मयाग अमयन्त आवश्यक िोता िै। वैष्णव-काव्य में िम

तनरन्तर ऐसी टेक सुनते िैं, "म ैंतुम्िारे मलए िरजाई बन गई।" बिुत-सी लोक-कथाओंकी व्याख्या इसी रिस्यम पवधध में की जाती िै, और ऐसी घटनाओंको त्जनकी नैततकता में सन्दिे िै, ईश्वर और 'जीवाममा के सम्बन्ध में

1049 भागवतखंड 10, 33, 26-29 ।

लाकर एकदम उनका रूप िी बदल हदया गया िै। तो भी इततिास को नये मसरे से मलखने की, तथ्यों को अलंकार का रूप देने की एवं नई-नई व्याख्याओं का आपवष्कार करनेकी. अमयन्त अमभलाषा रखते िुए भी पुराणों में जो कृष्ण का चररत्र हदया गया िै उसे िम स्वीकार निीं ंकर सकते। इन घटनाओं से- त्जनमें कृष्ण के बाल्यकाल की गाथाएं और बलराम की मद्य पीने की दुबुलशता ्ाममल िै- स्पष्ट संकेत ममलता िै कक कृष्ण आयेतर जातत का था। यहद आज कृष्ण सबसे अधधक मान्य भारतीय देवता िै तो इसका कारण यि िै कक भगवद्गीता के रचतयता ने उसके मुख से उच्चतम धम शएवं ंदर्नश का उपदेर् हदलाया िै। जब कृष्ण देवता बन गया तो उसके दूसूरे-दूसूरे नाम, यथा केर्व, जनादशन आहद, वासुदेव के मलए प्रयुतत िोने ेलगे, और उसके देवकी के पुत्र िोनेआहद की कथाएं, आहदम देवता के साथ जो़ दी गईं, और आज भी िमें उसके परस्पर असंगत वणनश ममलतेिैं, जैसे-एक ओर विडउमकृष्ट कोहट का धाममकश आममा िै त्जसके अन्दर तीक्ष्ण दार्तशनक अन्तर्दत्शष्ट िै और दूसूरी ओर वि एक सवमशान्य र्ूरूवीर योद्धा िै जो अपनेव्यविार में सवथशा दोष-रहित नायक निीं ंिै।

भागवत-पद्धतत को, त्जसमें उसकी वासुदेव-कृष्ण की पूजा भी तनहित िै, पाञ्चरात्र धम शभी किा जाता िै। इस नाम के आहद-उद्गम का तो िमें ज्ञान निीं ंककन्तु पद्मतन्त्र में ऐसा किा गया िै कक "पांचों अन्य र्ास्त्र इसके सामने अंधकार के समान िैं और इसीमलए इसका नाम पाञ्चरात्र प्रचमलत िो गया।1050" इस नाम का कारण यि भी िो सकता िै कक इस पद्धतत में पांच मभन्न-मभन्न प्रकार के मसद्धान्त सत्म्ममलत िैं। िम तनश्चयपूवकश निीं ंकि सकते कक िमें मिाभारत के नारायणीय पवभाग में भी इस धम शका पवरुदुध रूप में वणनश प्राप्त िो सकता िै या निीं,ं तयोंकक वैहदक अनुकूलता का काय शउस समय भी प्रारम्भ िो गया प्रतीत िोता िै। दक्षक्षण भारत के आलवार लोग, त्जनके सबसे आहदपुरुष पांचवीं र्ताब्दी ईसा के पश्चात् ्रिे किे जाते िैं, इस मसद्धान्त को अंगीकार ककए िुए िैं। 'आलावार' र्ब्द का अथ शिै वि जो परमामम्मा के प्ेरेम में तनमग्न िो। वारि आलवार सब वणो से इसमें दीक्षक्षत ककए गए िैं और इनके मलणखत ग्रन्थ, जो तममल भाषा में िैं, प्रवन्ध किलाते िैं, जो ककसी-न-ककसी रूप में पवष्णु की स्तुतत करने ेवाले गीत िैं और जो पपवत्रता एवं ंभत्तत से ओतप्रोत िैं। यिी वैष्णवों का वेट िै। वेदांतसूत्रों के भाष्यकार रामानुज परवती काल के िैं और धमगुशरुओं ंकी परम्परा में नादमुतन से छिे िैं त्जन्िें नम्माल्यार ने उतत धम शमें दीक्षक्षत ककया था। भागवत लोग िी भारत में वैष्णवधम शके सवप्रशथम अग्रणी िुए। पाञ्चरात्र के अनुयायी को प्रकटरूप में पूजा की वैहदक पवधधयों को ग्रिण करने ेकी आज्ञा निीं ंथी। वे स्वयंभी अपनेपवचारों के मलए पाञ्चरात्र आगमों'[1051] को आधार के रूप में मानतेथे।

साधारणतः आगम पववाद-पवषयों को चार र्ीषकशों के अन्दर पवभतत करते िैं: (1) ज्ञान, (2) योग अथवा ध्यान, (3) मूततयशों का तनमाणश एवं स्थापना (कक्रया) और (4) कक्रया-कलाप (चयाशअथवा संस्कार)। मुख्य

1050 1: 1, 69। इस नाम के उद्भव के सम्बन्ध में एक मभन्न मत को जानने के मलए देणखए, बेडरः 'इण्रोडतर्न टु पाञ्चरात्र'

।

1051 उनमें से बिुतों का उल्लेख वेदान्तदेमर्क की पाञ्चरात्ररक्षा में िै। यि एवं दसवीं ंर्ताब्दी में िुए यमुनाचाय शका आगमप्रामाण्य एवं वेदान्तसूत्रों (2: 2, 39-42) का पाञ्चरात्र-पवभाग इस पद्धतत के मलए िमारे पास उपलब्ध सामग्री िै। वैष्णवमतावलम्बी, जो आगमों को स्वयं ंनारायण द्वारा प्रकामर्त मानता िै, उसके मलए ककसी काल की गणना की आवश्यकता निीं समझता।

देवता वासुदेव-कृष्ण ि◌ै, त्जसके साथ चार 'व्यिू' ि◌ैं। कृष्ण की अन्तयामशमता के ऊपर बल हदया गया ि◌ै। "ब्रह्म से लेकर एक साधारण स्तम्ब (तृण) तक सब कृष्ण ि◌ी ि◌ै।"[1052] पवष्णुअपनी र्त्तत के कारण सवोपरर ि◌ै। इस र्त्तत के दो पक्ष ि◌ैं कक्रया और भूतत, जैसे र्त्तत और प्रकृतत दो रूप ि◌ैं। वि◌ी सृत्ष्ट की रचना करता ि◌ै। पवष्णु और उसकी र्त्तत का सम्बन्ध अपवच्छेद्य ि◌ै एवं ◌ंएक-दूसरे के अन्दर तनहित ि◌ै, जैसेकक पदाथ शका सम्बन्ध उसके गुणों के साथ ि◌ै। रामानुज पाञ्चरात्र के मसद्धान्त के आधार पर ब्रह्म, जीवाममा और संसार की पृथक् पृथक् सत्ता को स्वीकार करते ि◌ैं, यज्ञ के स्थान पर मत्न्दरों में मूततयशों की पूजा को मान्यता देते ि◌ैं। यों धम शअधधकतर भावना-प्रधान ि◌ो गया। भत्तत पर बल हदया गया। आधुतनक वैष्णवधम शकी एक मुख्य पवर्ेषता, जो इस पद्धतत की देन ि◌ै, प्रपपत्त अथात्श ◌्सवथशा आममसमपणश का मसद्धान्त ि◌ै। ईश्वर उनका सिायक ि◌ै जो अन्य सब प्रकार की आर्ा छोड़कर उसके चरणों में धगर जाते ि◌ैं। प्रश्न उिता ि◌ै कक न्यायकारी ईश्वर कैसे पापाममाओंको क्षमा दे सकता ि◌ै। यि पद्धतत ईश्वर की पमनी लक्ष्मी को मध्यस्थ के ऊंचेस्थान पर बिा देती ि◌ै। ईश्वर का किोर न्याय लक्ष्मी की दयार्ीलता के कारण नरम प़ जाता ि◌ै, जो दण्ड देना जानती ि◌ी निीं।1053 इस मध्यस्थ का स्वभाव ईश्वर के ि◌ी समान ि◌ै, और यि भतत की पुकार पर वैसे ि◌ी काय शकरती ि◌ै। ईश्वर की ररयायत चािने वाले को पिले लक्ष्मी की ररयायत प्राप्त करना आवश्यक ि◌ै। पपछले जन्म के कम शभी क्षमा ककए जा सकतेिैं। प्रपपत्त ऐसा माग शप्रतीत ि◌ोता ि◌ै त्जसके द्वारा जीवाममा सवोपरर सत्ता को प्राप्त ि◌ो जाता ि◌ै, और यि उतना ि◌ी र्त्तसम्पन्न ि◌ै त्जतना कक सांख्य अथवा योग का दूसरा कोई उपाय ि◌ै।'[1054] पवष्णु ◌्के उपासकों में वणभेशद निीं ि◌ै। जाबाल ब्राह्मण किता ि◌ै: 'ककरात और ि◌ुण जातत के लोग भी... केवल उन व्यत्ततयों के संसग शमें आने ◌ेमात्र से त्जनका हृदय पवष्णु में मलप्त ि◌ै, अपनेपापों से मुतत ि◌ोकर पपवत्र ि◌ो जाते ि◌ैं।" इस मत के अनुयायी वणाश्रशमधम शकी इतनी परवाि निीं ◌ंकरते त्जतनी कक स्मात एवं ◌ंवे ◌ेव्यत्तत करते ि◌ैं जो वैहदकर्ास्त्रों को मानते ◌े ि◌ैं।

यि एक पववादग्रस्त पवषय ि◌ै कक पाञ्चरात्र, भागवत अथवा सामवत धम शअपनेपवकासरूप में आयजशातत का था अथवा आयेतर था। कुछेक का किना ि◌ै कक यि आयेतर था तयोंकक इसकी पूजा का पवधान अवैहदक था। इसनेवैहदक कक्रया-कलाप अथवा संस्कारों को निींअपनाया, और जीवों एवं मन की उमपपत्त संकषणश से ि◌ुई ि◌ै, इसका यि मसद्धान्त वैहदक कल्पनाओं के पवपरीत था। वामुनाचाय शअपने'आगम-प्रामाण्य' नामक ग्रन्थ में आगमों की प्रमाणणकता के पवरुद्ध अनेक आपपत्तयां उिाता ि◌ै। और उन सबका खण्डन करता ि◌ै। पवरोध में जो तकश उपत्स्थत ककए गए ि◌ैं वे इस आधार पर ि◌ैं कक उनके प्रततपाद्य पवषय वेदों की भावना के पवपरीत ि◌ैं, और यि कक ये अत्ग्निोत्र अथवा ज्जयोततष्टोम आहद कक्रया- कलापों एवं ◌ंयज्ञानुष्िानों का पवधान निीं करते, यिांतक कक वे वेदों के मलए अपर्ब्दों तक का प्रयोग करते ि◌ैं, और यि कक द्पवजों ने उन्िें स्वीकार निीं ककया ि◌ै। दूसरी ओर सामवत, जो प्रमयक्षरूप में एक आयेतर जातत के ि◌ैं, उस पर आचरण करते ि◌ैं।'[1055] उनके

1052 "आब्रह्मस्तम्बपयन्शतंसवशकृष्णश्चराचरम्" ◌् (नारदापाञ्चरात्र)।

1053 "तनमयमज्ञाततनग्रि।"

1054 र्ात्न्तपव,श 348, 74।

1055 मनु, 10/23 5।

भारतीय दर्नश -1 421 अन्दर जादू-- टोना एवं ंममथ्या पवश्वास भी बिुत िै।1056 परम्परागत मसद्धान्तों की सूची में

इस पद्धतत की

गणना निीिं। यहद िम रं्कर के मत को स्वीकार करें, तो यिांतक कक वादरायण भी इसका समथनश निीं करता। इसकी अपनी िी एक पवधचत्र संस्कारों की पद्धतत िै यथा ततलक-छाप आहद। इन आपपत्तयों के उत्तर में यामुनाचाय शका किना िै कक इस सम्प्रदाय का सम्बन्ध वेद के साथ िै। मिाभारत एवं भागवत में बादरायण ने, और भृगुतथा भारद्वाज आहद प्रमसद्ध व्यत्ततयों ने भी, इसकी प्रामाणणकता को स्वीकार ककया िै, और यि कक भागवत सबसेश्रेष्ठ ब्राह्मण िैं, और यि कक सामवत नाम ककसी वण-शपवर्ेष को निीं ंबतलाता अपपतु उन व्यत्ततयों के मलए प्रयोग ककया जाता िै त्जनके अन्दर सत्त्वगुण बिुत अधधक मात्रा में पवद्यमान िैं। रामानुज भी यामुनाचाय शके मत का समथनश करता िै। इसके समथनश की आवश्यकता िी यि प्रकट करती िै कक उतत सम्प्रदाय को वैहदकरूप में स्वीकृतत प्राप्त करने ेमें कुछ समय लगा। आधुतनक वैष्णवधम शके कुछेक अतनवाय श तत्त्व-जैसे मूततपूशजा, र्रीर को दागना, ऊध्वपुशण्र ततलक लगाना-पाञ्चरात्रधम शके कारण इसमें आए िैं।

इसे चािो ककसी नाम से भी तयों न पुकारा जाए, इसमें सन्देि निीं ंकक यि धम शबिुत प्राचीन िै, सम्भवतः कम से कम बौद्धधम शके समान प्राचीन िै यहद उससे अधधक प्राचीन न भी माना जाए; ककन्तुचूंकक नारायणीय पवभाग में-जिां ंपर इस धम शका वणनश िै-नारद की श्वेतद्वीप की यात्रा का वणनश िै जिांके तनवासी एकान्ती अथवा एकेश्वरवादी थे,े कभी- कभी यि तकश उपत्स्थत ककया जाता िै कक इसमें जो एकेश्वरवाद िै वि ईसाईमत से मलया गया िै। डातटर सील का किना िै कक 'यि नारायणीय वृत्ताांत, मेरी सम्मतत में, इस पवषय की एक तनत्श्चत साक्षी िै कक कुछ भारतीय वैष्णवों ने वस्तुतः ममस्र अथवा एमर्या माइनर के समुद्री ककनारों की यात्रा की, और इसी वृत्ताांत में यि भी प्रयमन ककया गया िै, जैसाकक भारत का प्राचीन उदार आर्य सदा से रिा िै, कक ईसा को भी सवोपरर आमम अथात्श ्नारायण के अवतारों में सत्मममलत कर मलया जाए-जैसाकक आगे चलकर बुद्ध को अवतारों में सत्मममलत ककया गया।"[1057] वेवर की भी यिी सम्मतत िै।'[1058] लेसन भी इससे सिमत िै। उसकी दृत्ष्ट में यि सम्भव िै कक कुछेक ब्राह्मणों को अपनी मातृभूमम के उत्तर-पत्श्चम में त्स्थत देर्ोंमें प्रचमलत ईसाईधम शके पवषय में पता लगा िो और वे ंकुछ ईसाई मसद्धान्तों को भारत में लाए िों। उसका पवचार ै किक यि देर् पाधथयशा िोगा जिां ं "'यि पुरानी परम्डपरा िै कक ईसाइ धम शके प्रचारक टामस ने ईसा के धाममकश मसद्धान्तों का प्रचार ककया।" ककन्तु ुवैहदक साहिमडय के मलए एकेश्वरवाद कोई अज्ञात मसद्धान्त निीं ंथा। छान्दोग्य उपतनषद् में वणनश आता िै तथा नारद ने त्जन र्ास्त्रों का अध्ययन ककया उनमें से एक एकायनधम श भी था।1059 भागवतधम शमें ऐसा कोई अंर् निीं ंिै जो भारत की धाममकश पवचारधारा के मलए पवदेर्ी िो। गाब शके अनुसार, "एक ऐसे व्यत्तत की दृत्ष्ट में जो प्राचीन भारत के बौद्धधक जीवन से भली प्रकार से पररधचत िो, भत्तत का मसद्धान्त तनतांत इसी देर् की एक यथाथ शउपज िै।1060 "भत्तत का पवचार ईसाई मत से आया-इस

1056 "क्षुद्रपवद्याप्रचुरता। "

1057 'वैष्णपवज़्म ऐण्ड कक्रत्श्चयतनटी' पृष्ठ 30।

1058 'इत्ण्डयन ऐत्ण्टकरी', 1874, कृष्णजन्माष्टमी पव शके प्रारम्भ के पवषय में अन्वेषण।'

1059 7:1,4।

1060 गाब श: 'कफलासफी आफ ऐंमर्यटें इत्ण्डया', पृष्ठ 84।

कल्पना के समथनश में अभी तक ततलमात्र भी कोई साक्षी र्नीं ंदी जा सकी ै। भत्तत र्ब्द में जो धाममकशता का भाव ै वि केवल ईसाईधम शमें ी ो सकता ो ऐसी कोई बात भी र्नीं। यिी र्नीं ंकक ईश्वर के प्रतत भत्तत और उसमें पवश्वास ने दूसूरे एकेश्वरवादी धमों में अपनेको क्रमर्: पवकमसत ककया ै, बत्ल्क एकेश्वरवाद पवषयक पवचारों के क्षेत्र से परे भी ये दोनों पवचार पाए जाते ैं। और पवर्ेषेकर भारत देर् में मारे पास ऐसे सब आवश्यक तत्त्व उपत्स्थत ैं त्जनके बल पर में भत्तत को इसी देर् की उपज स्वीकार करना ोता ै, जैसाकक बाथ शकिता ै, तियोंकक ऋग्वेद के समय से लेकर बराबर आगे तक भारत के धाममकश इततिास में लगभग सभी समयों में एकेश्वरवाद सम्बन्धी पवचार प्रचमलत पाए जाते ैं, और दैवीय र्तत को जानने ेकी प्रबल अमभलाषा ने जोकक अमयन्त प्राचीन काल से भारतीय आममा की एक पवर्ेषेता री ै-इस प्रकार की भावनाओं को अवश्य पवकमसत ककया ोगा जैसे दैवीय पे्रम और एकेश्वरवाद का पवचार, त्जसकी कल्पना सवसशाधारण में भी थी।" उस युग के पवश्वर्ास्त्र या भूगोलपवद्या के अनुसार, श्वेतेद्वीप भारत देर् का ी एक भाग था जो मेरु पवतश के उत्तर में था। ईसाईधम शतो भारत में ईसा के पश्चात् ्केवल दूसूरी या तीसरी र्ताब्दी में ी पिुंचा, इससे पूव शइसका र्कीं ंपता भी न था। मारे पास यि मसद्ध करने ेके मलए पयाप्शत साक्षी ै कक एकेश्वरवादी धम शउससे र्कीं ंपूव शप्रचमलत था। वासुदेव का नाम पाणणतन के व्याकरण में आता ै।1061 सर आर० जी० भण्डारकर के अनुसार, यहद इससे पूव श न मानें तथापप पाणणतन ईसापूव शसातवींर्ताब्दी में तो ुए ी।'[1062] बौद्ध और जैन धम शके ग्रन्थों में भी भत्तत-सम्प्रदाय का उल्लेख ै।1063 एम० सेनाटश मलखता ै कक 'भत्ततमान्'् र्ब्द, जो थेरगाथा में आया ै, बौद्धधम शने एक प्राचीनतर भारतीय धम शसे उधार मलया ै। "यहद पिले से एक ऐसा धम शप्रचमलत न रिता त्जसमें योग के मसद्धान्त, वैष्णवधमसशम्बन्धी उपाख्यान, और पवष्णु-कृष्ण के प्रतत भत्तत-त्जसकी भगवान के नाम से पूजा की जाती थी यि सब कुछ समवेत था तो बौद्धधम शकभी उमपन्न ी न ोता।"[1064] वाथ शकिता ै:[1065] "भागवत, सामवत अथवा पाञ्चरात्र सम्प्रदाय जो नारायण एवं ंअपने मर्क्षक देवकीपुत्र कृष्ण की पूजा में लगा ुआ था, जैनधम शके प्रादुभ्ुावश के बिुत पूव शसे अथात्श ्आिवीं र्ताब्दी ईसापूव शसे भी पिले से पवद्यमान था।"[1066] पतञ्जमल पाणणतन के पवषय में अपनी हटप्पणी मलखते ुए किता ै कक वासुदेव नाम ै उपास्थ अथवा पूजिां का, जोकक ईश्वर ै। यि मसद्ध करने ेके मलए कक भागवतधम शईसाईयम शके उद्भव से पूव शपवद्यमान था, मारे पास पुरातत्त्व सम्बन्धी साक्षी भी ै। दूसूरी र्ताब्दी ईसापूव शके पाए गए बेसनगर के मर्लालेख'[1067] में भागवतधम शके अनुयायी िमलयोडोरा द्वारा वासुदेव के सम्मान में एक ऐसे ध्वजदण्ड की स्थापना का वणनश ै त्जसमें गरु की मूतत शथी। इसी प्रकार, घोसुण्डी के मर्लालेख में भी, जो पिली र्ताब्दी ईसापूव शका ै और नानाघाट में ममला ै, संकषणश और वासुदेव की पूजा ममलती ै। इस सबसे यि स्पष्ट ो जाता ै कक भारत का

1061 4:3,98।

1062 'बॉम्बे गजेहटयर', खण्ड I भाग 2, पृष्ि 141।

1063 थेरगाथा, 370।

1064 'इत्ण्डयन इण्टरपे्रेटर', 1910, पृष्ि 177-178।

1065 'इंडडयन ऐत्ण्टकरी', 1894, पृष्ि 248।

1066 'जनरल आफ रायल एमर्याहटकसोसाइटी ', 1910, पृष्ि 168।

1067 'एपपग्राकफका इंडडका', खंड 10।

एकेश्वरप्रधान धम शसब प्रकार के पवदेर्ी प्रभावों से सवथशा स्वतन्त्र ि, और यि कक उस समय के जीवन और पवचारधारा की स्वाभापवक उपज िै।

9. मिाकाव्यों का संसृतृतर्ास्त्र

संसृतृत-पवज्ञान के पवषय में मिाभारत सांख्य के मसद्धान्त को अंगीकार करता िै, यद्यपप संगततपूवकश निीं। यि पुरुष और प्रकृतत दोनों को एक िी ब्रह्म के अंर् मानता िै। संसार ब्रह्म से पवकमसत िुआ, ऐसा पवचार मिाभारत में प्रकट ककया गया िै। किा गया िै कक विी पवश्वाममा अपनेअन्दर से उन गुणों को जो प्रकृतत के तत्त्व िैं, बािर फैलाता िै जैसेकक मकड़ी अपनी िी अन्दर से जाला बुनती िै।1068 ब्रह्म की उमपादक कक्रयार्ीलता का विी पवचार दूसूरे रूपों में भी पाया जाता िै। यि पवचार भी िमें ममलता िै कक ब्रह्म से िी ईश्वर ब्रह्मा की रचना िुई जो एक स्वणरूशप अण्ड में से तनकाला और जो सब प्राणणयों के र्रीर को बनाता िै। पवश्वरूपी अण्ड या ब्रह्माण्ड का भाव बराबर िी रिा िै। कभी-कभी सांख्य-प्रततपाहदत द्वैत और अधधक स्पष्ट िो जाता िै। प्रकृतत पुरुष से मभन्न िै, यद्यपप पुरुष को सावभशौम के रूप में माना गया िै। पुरुष और प्रकृतत दोनों का उद्भव एक िी सामान्य तत्त्व से िै। प्रकृतत सृजृन करती िै पुरुष के वर् में रिकर:[1069] अथवा यों किना चाहिए कक पुरुष सृजृनाममक अवयवों को प्ेरेरणा करता िै।1070 अन्य स्थान पर यि भी किा गया िै कक समस्त कक्रया प्रकृतत में िी िोती िै, और पुरुष काय शनिीं ंकरता, केवल-साक्षीरूप रिता िै, और यहद यि अपनेको कताश समझता िै तो भ्रम में ि।1071 ऐसा पवचार भी पाया जाता िै कक यद्यपप सृजृन और पवनार् प्रकृतत के काम िैं, तो भी प्रकृतत केवल पुरुष के अन्दर से िी बािर आई िै और समय-समय पर उसी में समा जाती िै।1072 िमारे पवचार से संकेतरूप में भले िी माना जाए- माया की कल्पना मिाकाव्यों में निीं ंिै। सांख्यदर्नश-पवहित संसार के पवकास का वणनश मिाभारत में स्थान-स्थान पर पाया जाता िै।'[1073]

इसमें सन्दिे निीं ंकक सांख्य के पवचार धीरे-धीरे इस काल में पक रिे थे ेयद्यपप एक दर्नश-पद्धतत के रूप में उनकी रचना अभी तक निीं ंिुई थी। सांख्यदर्नश की मुख्य पवर्ेषताएं, जो मिाभारत tilde F पाई जाती िैं ध्यान देने योग्य िैं तयोंकक पश्चाद्वती बिुत-सी पवचारधाराओंनेसांख्य के मनोपवज्ञान एवं संसृतृतर्ास्त्र या सृतृष्टपवद्या को स्वीकार ककया, यद्यपप उसके अध्याममर्ास्त्र एवंधम शको स्वीकार निीं ंककया। सांख्य में दी गई

1068 12:285, 40।

1069 12/314, 12।

1070 12/815, 8।

1071 12: 222, 15-16; और भी देखें भगवद्गीता , 6: 37 ।

1072 12/303, 31 और आगे।

1073 देणखए अश्वमेधपव,श 35, 20-23 और 47, 12-15 ।

 द्रव्यगणना को मिभारत ने स्वीकार ककया िै।'[1074] अनुगीता में1075 िम इस र्ास्त्रीय कल्पना के और अधधक

तनकट पिुंचतेिैं, जिां ंपर पवकास की व्यवस्था दी गई िै। अव्यतत से मित्,् मित् ्से अिंकार, अिंकार से पांच तत्त्वों की उमपपत्त िोती िै; और उन पांच तत्त्वों से एक ओर र्ब्द, गन्ध आहद गुण, और दूसूरी ओर पांच मुख्य वायुओंकी उमपपत्त िोती िै, जबकक अिंकार से िी ग्यारि इंत्न्द्रयां उमपन्न िोती िैं त्जनमें पांच ज्ञानेत्न्द्रयांऔर पांच कमेत्न्द्रयााँ एवं ग्यारिवां मन िै। सांख्यदर्नश अभी दूरू था, तयोंकक पुरुष को कुछ स्थलों पर सत्रिवां धगना गया िै जो सोलि गुणों से तघरा िै; वि पच्चीसवां निीं ंिै। अनेक स्थानों पर पच्चीस तत्त्वयों का वणनश करते िुए मिाभारत उसमें ईश्वर नामक छब्बीसवें को साथ में जोड़ता िै।'[1076] इन सबसे यि प्रदमर्तश िोता िै कक यि वि काल था जबकक लोग सांख्य-सम्बन्धी पवषयों पर तनरन्तर पवचार में मग्न थे।

मिाभारत में गुणों का मसद्धान्त माना गया िै। प्रकृतत का त्जनसे तनमाणश िुआ वे तीन गुण िैं-सत्त्व, रजस् ्और तमस्।् प्रमयेक वस्तु में ये तीनों गुण बराबर रितेिैं यद्यपप मभन्न- मभन्न मात्रा में। प्राणणयों की मभन्न-मभन्न श्रेणणयां की गई िैं, यथा देवता, मनुष्य और पर्ु,ु और ये श्रेणणयां उतत गुणों की मात्रा के अनुसार िैं, किीं ंएक, किीं दूसूरा गुण मात्रा में न्यूनाधधक रिता िै।1077 ये िी तीन गुणु आममा के बन्धन िैं। "ये प्राय: परस्पर-ममधश्रत अवस्था में देखे जाते िैं। ये एक-दूसूरे से जुु िुए िैं और उसी प्रकार एक दूसूरे के पश्चात् ्भी आते िैं।... इस पवषय में कुछ भी सन्देि निीं ंिै कक जब तक सत्त्वगुण िै तब तक तमोगुण भी पवद्यमान िै। और जब तक सत्त्वगुण एवं ंतमोगुण िैं तब तक रजोगुण भी रिेगा, ऐसा किा गया िै। ये तीनों गुण एकसाथ ममलकर यात्रा करते िैं और संयुततरूप में िी इतस्ततः गतत करते िैं।"[1078] इसके ऊपर हटप्पणी करते िुए नीलकण्ठ किते िैं "सत्त्वगुण चािे त्जतना िी तयों न बढ़ जाए तो भी तमोगुणु उसके ऊपर तनयंत्रण रखता िै, और इस प्रकार से इन तीनों गुणों में तनरन्तर एक ऐसा सम्बन्ध रिता िै कक प्रमयेक एक-दूसूरे का तनयन्त्रण भी करता िै और एक-दूसूरे द्वारा तनयत्न्त्रत भी िोता िै। ये एकसाथ पवद्यमान रितेिैं, यद्यपप मात्रा एवं ंर्त्तत में इनमें परस्पर भेद रिता िै।" तमस् ्चेष्टापविीनता का गुण िै, अथवा मनुष्य के अन्दर इसे िी जड़ता का भाव या व्यामोि की अवस्था किा जाता िै। इत्न्द्रयों की तृतृप्त इसका लक्ष्य िै। इत्न्द्रयसुख इसका पररणाम िै। इसका स्वरूप अज्ञान िै। यहद इसको वर् में ककया जा सके तो मनुष्य संयमी या ममताचारी किलाता िै। रजोगुण भावुकतापूण र्त्तत िै जो इच्छाओंको उत्तेजना प्रदान करती िै। यि मनुष्य को बेचैन बना देती िै, और वि सफलता और र्त्तत के मलए प्रवल इच्छा करनेलगता िै, ककन्तु यहद इसका दमन ककया जाए तो इसका नम्र पक्ष िै अनुराग, करुणा एवं ंप्रेम। यि तमोगुण एवंसत्त्वगुण के बीच की अवस्था िै। तमोगुणु िमें अज्ञान और ममथ्यामव की ओर ले जाता िै और सत्त्वगुण से अन्तर्दत्ष्ट का पवकास िोकर यथाथतशा की प्रात्प्त िोती िै। सत्त्वगुण मनुष्य का बौद्धधक पक्ष िै। यि चररत्र की, त्स्थरता को बढ़ाता िै और सौजन्य की ज़ जमाता िै। यि अकेला िी मनुष्यों को श्रेष्

1074 देणखए,र्ात्न्तपव,श303-308;अनुगीता ,11:50, 8; 12 306, 39-40 ।

1075 14, 40-42।

1076 र्ात्न्तपव श308; और भी देणखए06,29:310, 10।

1077 अनुगीता, 14, 36-38।

1078 अनुगीता, अध्याय 24।

 माग शका प्रदर्नश करने ेमें समक्ष िै। इसका धम शि कक्रयाममक ज्ञान, और इसका लक्ष्य िै

कतव्शयपालन। कोई भी

मनुष्य इन गुणों से पवीन निीं ंिै। तीनों गुण सापेक्ष रूप में मन, जीवन और रीर में अपना दृढ़ स्थान रखते िैं।
तमोगुण अथवा जड़ता का तत्त्व िमारी भौततक प्रकृतत में सबसे अधधक प्रबल िै, रजोगुण िमारी र्त्तमान
प्रकृतत में प्रबल िै, जो भौततक प्रकृतत के पवरोध में काय शकरता िै; और सत्त्वगुण िमारी मानमसक प्रकृतत में प्रवल
िैं। वास्तपवक अर्थों में ये ममधश्रत रूप में िमारे भौततक रीर की रचना के प्रमयेक रेर् ेमें पवद्यमान िैं। चेतनामय
जीवन के ऐत्च्छक पक्ष को लेनेपर तमोगुणु का अंर् तनरन्तर रिनेबाले अभावों और तृतूप्तयों के साथ जुी िुई
मिारी तनम्न श्रे्रेणी की बुभुक्षाओंमें प्रधान रिता िै। रजोगुण का अंर् र्त्तत एवं लाभ, सफलता और ब़ े-ब़ े
उद्योगों को लेकर प्रवृतूत िुई िमारी इच्छाओं में प्रबल रिता िै। सत्त्व के अंर् का लक्ष्य िै आममा का अपनी
पररत्स्थतततयों के साथ सुखकर समन्वय तथा आन्तररक समभाव।'[1079] ये तीनों गुण अपनी परस्पर-प्रततकक्रया
द्वारा मनुष्य के चररत्र का एवं ंउसके स्वभाव का तनणयश करते िैं। इसमलए मनुष्य के तीन पवभाग ककए जा
सकतिैं- ज़, आतुर, और सौम्य स्वभाव। द्पवजों में वैश्य अथवा व्यापारी वग शसबसेनीचेकी श्रे्रेणी में आते िैं;
क्षबत्रय लोग अपनेसोचनेके प्रततस्पधामशमक ढंगों एवं ंएक-दूसूरे के ऊपर आधधपमय के प्रयमनों के कारण मध्यम
श्रे्रेणी में आते िैं; और ब्राह्मण सबसे ऊंची श्रे्रेणी में आते िैं। ईश्वर के सम्बन्ध में इन तीन गुणों का उल्लेख िोने
पर तो पवष्णु, ब्रह्मा और मर्व का भाव उमपन्न िोता िै। ये तीनों गुण िी दैवीय र्त्तत के अतनवाय शबल िैं जो न
केवल उसमें समान रूप से अवत्स्थत िैं अपपतु इन्िींके कारण दैवीय कम शभी सम्पन्न िोतिैं। ईश्वर के अन्दर
तमोगुण एक र्ात्न्त िै जो सब कायों का दमन करने ेका द्योतक िै, रजोगुण उसकी इच्छा का द्योतक िै जो
र्त्ततर्ाली तथा आनन्दरूप कम शकराता िै, और सत्त्वगुण दैवीय सत्ता का स्वयंसिप्रकार् िै। ये तीनों गुण, जो
सवत्रश ममधश्रत अवस्था में पाये जाते िैं, प्रकृतत के समस्त कायों में मूलभूतू कारण िैं। संसांर इन्िींके नानारूपों का
एक खेल िै। पवपवध प्रकार की घटनाओंकी उमपपत्त इन तीनों गुणों की साम्यावस्था, गतत एवं ंजड़ता की परस्पर
प्रततकक्रया के कारण िै। "गुणों की उमपपत्त गुणों के अन्दर से िोती िै और उन्िीं ंगुणों के अन्दर वे पवलीन िो
जाते े

ि।"[1080]

सांख्यदर्नश के मर्क्षक कपपल, आसुरर और पाञ्चमर्ख'[1081] किे जाते िैं, यद्यपप सांख्यदर्नश और
पञ्चमर्ख में परस्पर मतभेद िै।'[1082]

मि ड्यूसन के इस मत से सिमत निीं ंिै कक मिाकाव्यों के दर्नश का समय वेदान्त के आदर्वशाद तथा
सांख्य के यथाथवशाद के मध्य संक्रमण का काल िै। इसके अन्दर दोनों िी प्रकार की धारणाएं पाई जाती िैं।
यद्यपप मिाकाव्यकाल में सांख्य के कई पवमर्ष्ट स्वरूप पवकमसत निीं ंिुए थे तो भी सब आवश्यक रूप

1079 तुलनाकीत्जए प्लेटोकेतीनतत्त्वों-अमभलाषा, भाव, तकश से, और उनके मनुष्य-समाज के तीन पवभागों से।

1080 र्ात्न्तपव,श 305, 23।

1081 अनुगीता, 12/319 59; 12 : 218, 14 ।

1082 देणखए, कीथ : 'सांख्य मसस्टम', पृष्ठ 39-40।

भारतीय दर्नश -1 426 उपत्स्थत थे िों। योगदर्नश को भी मान्यता दी गई िै, यद्यपप पतञ्जमल के दर्नश के पाररभापषक ब्दं अभी
अनुपत्स्थत थे।1083

मनोपवज्ञान के क्षेत्र में मिाभारत ने पांचों इत्न्द्रयों, अथात्श ्सुनने,े स्पर् शकरने, देखने,

रस लेनेएवं गन्ध लेनेवाली इत्न्द्रयों, को स्वीकार ककया िै। और तदनुकूल पांच भौततक तमवडों, अथातश पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकार् को भी माना िै। इत्न्द्रय का पदाथ शके साथ सम्बन्ध िोना िी प्रमयक्षज्ञान के मलए पयाप्शत निीं। संवेदना का मन के द्वारा वृद्धध तक और यिां ्आममडा आममा तक पिुंचना आवश्यक िै। "देखने कक्रया, केत्रल आंख के द्वारा तनष्पन्न निीं िो सकती जब तक मन की सियता प्राप्त न िो।"[1084] ज्ञान में बुद्धध िी तिनणायशक अंर् िै, तयोंकक मन तो केवल आगे पिुंचाने ेका साधन मात्र िैं।"[1085] ज्ञाममा के स्वरूप के पवषय में कुछ लोगों का पवश्वास िै, जैसेकक सांख्य का पवचार िै, कक यि गततपविीन और तनत्ष्क्रय िै तथा प्रकृतत का साक्षी मात्र िै। प्रकृतत िी कम शका कारण 5/6 एवं ्पररवतनश, संवेदना और पवचार की उमपादक िै। आममा के आणपवक स्वरूप का भी वणनश िै, त्जसे स्वीकार ककया गया िै। जीवाममाओं के अततररतत यि एक सवोपरर आममा में भी पवश्वास रखता िै, त्जसे पुरुषोत्तम किा गया िै। उपतनषदों का मसद्धान्त भी उपत्स्थत िै। आममा को क्षेत्रज्ञ किा गया िै जब वि रीर के अन्दर बद्ध रिती िै, और विी रीर से एवं ्गुणों से उन्मुतत िोकर परमाममा िै।'[1086] मलंगं रीर अथवा सूक्ष्म रीर का सामान्य पवचार भी देखा जा सकता िै।1087

10. नीततर्ास्त्र

मिाभारत में नीततर्ास्त्र को सुख की प्रात्प्त का साधन मानकर बिुत मित्त्वपूण शस्थान हदया गया िै। "सब प्राणी सुखु की अमभलाषा करते िैं और दु:ख से परे रिना चािते िैं।"[1088] िम त्जस वस्तु की इच्छा करते िैं वि सुख िै और त्जससे िम घृणा करते िैं वि दु:ख िै।"[1089] इस संसार में दोनों ममधश्रत पाए जाते िैं।'[1090] ककन्तु सुख और दु:ख दोनों िी अतनमय और क्षणणक िैं। मनुष्य के पुरुषाथ शका लक्ष्य एक ऐसी अवस्था प्राप्त करना िै त्जसमें पिुंचकर िम सुख एवं ्दु:ख दोनों को समानरूप में र्ान्तभाव से बबना पवचमलत िुए ग्रिण कर सकें।1091

1083 देणखए12: 237, 6-7।
1084 र्ात्न्तपव,श 311, 17।
1085 र्ात्न्तपव,श 251, 11।
1086 देणखए र्ात्न्तपव,श 187,
1087 देणखए वनपव,श 296, 16।
1088 र्ात्न्तपव,श 139, 61 ।
1089 विी, 295, 27।
1090 विी, 190, 14; 25, 23; वनपवश260, 49।
1091 र्ात्न्तपव,श 25, 16।

धम शएक त्स्थरता की अवस्था ि ै, त्जससे मनुष्य को पूण शसन्तोष ममलता ि ै। यि उसे मोक्षप्रात्प्त में सियक िोता ि ै एवं इस संसार में भी र्ात्न्त तथा सुख प्राप्त कराता ि ै।

धम शमोक्ष की ओर ले जाता ि ै। दोनों में भेद ककया जाता ि ै-एक साधन ि ै तो दूसूरा अत्न्तम लक्ष्य ि ै। मनुष्य के चार उद्देश्यों या पुरुषाथों-धम,श अथ,श काम और मोक्ष में भी दोनों को पृथृक् रखा गया ि ै। मोक्षप्रात्प्त के मलए त्जन तनयमों का पवचार ककया गया ि ै उन्िें मोक्षधम शकिते िैं। संकुधचत अथों में, धम शसे तामपय श नीततर्ास्त्र-सम्बन्धी पवधान ि ै जोकक धाममकश पवधध-पवधान से मभन्न ि ै, यद्यपप इसका उद्देश्य भी आममा को दु:खों से मुतत कराना िी ि ै।

कुछ सामान्य मसद्धान्तों के अततररतत, जैसे सच बोलना, अहिंसा आहद, धम शसापेक्ष ि ै और समाज की दर्ा के ऊपर तनभरश करता ि ै । इसमलए यि सदा िी समाज से सम्बन्ध रखता ि ै। यि ऐसा बन्धन ि ै जो समाज को संगहित रखता ि ै।1092 यहद िम धम शका पालन निीं ंकरेगें तो समाज में अराजकता फैलेगी, और न तो धन-सम्पपत्त और न िी ककसी कला का पवकास िो सकेगा। धम शसे िी समाज में ऐतयभाव का पवकास सम्भव िोता ि।ै"[1093] इनका लक्ष्य समस्त पवश्व का कल्याण ि ै।"[1094] "ऐसे कायों से त्जनसे समाज का कल्याण न िोता िो और त्जन कायों के करनेमें तुम्िें लज्जजा का अनुभव िो, उन्िें कभी मत करो।"[1095] मिाभारत के अनुसार, समस्त कत्तव्शयों का सार इस कथन में रखा गया ि ै: "ऐसा व्यविार दूसूरों के साथ कभी न करो जो तुम दूसूरों के द्वारा अपने साथ ककया जाना निीं ंचािते।"[1096] ममन्न-मभन्न वषों के कत्तव्शय का भी पवधान ककया गया ि ै तयोंकक साधन के रूप में उनका मित्त्व ि ै। "र्त्त के द्वारा राज्जय को सिारा देना और मसर के बल न बनवाना क्षबत्रय का कत्तव्शय ि ै।"[1097] तन:सन्देि जो यथाथ शमें र्ील एवं आचार सम्बन्धी कत्तव्शयधम शिैं वे वण शधमों से ऊपर एव शउमकृष्ट िैं। "समय, आममसंयम, मयाग, उदारता, अहिंसा, धाममकश कायों में तनरन्तर तमपर रिना-ये सफलता के साधन िैं, न कक वण शया पररवार।"[1098] "धचरख्यातत एवं सांसाररक जीवन की अपेक्षा धाममकश जीवन का मित्त्व किीं ंअधधक ि ै। राज्जय, पुत्र, यर्, धन-सम्पपत्त, ये समय के सोलिवें भाग के समान भी मित्त्व निीं रखते।"[1099] यद्यपप त्स्त्रयों को वैहदक यज्ञ करने ेका अधधकार निींथा तो भी उन्िें तीथयशात्रा करने, मिाभारत, रामायण आहद मिाकाव्यों के अध्ययन और पवचारपूवकश ईश्वर की उपासना का अधधकार प्राप्त था।1100

1092 धारणाद् धममशममयािुधमशोंधारयतेप्रजा:।" कणपशवश्च 69, 59।

1093 लोकसंग्रि अथवा समाजधारण ।

1094 सवभूशतहितम् ्।

1095 र्ात्न्तपव,श 124, 66; 261, 9; 109, 10।

1096 पंडडत, 1871, पृष्ि 238।

1097 "दण्ड एव हि राजेन्द्र क्षात्रधर्मो न मुण्डनम्।्" र्ात्न्तपवश , 23, 46।

1098 3: 181, 42 ।

1099 8/34, 22।

1100 3: 37, 33; और भी देखें 3: 84, 83।

धम शका पवचार ककसी सुखवादी भावना में निीं ंथा। यि इच्छाओं की तृतूप्तमात्र िी निीं ंिै। सुखों का संग्रि िमें यथाथ शआनन्द निींप्राप्त करा सकता। "सुख की अमभलाषा सुखों के उपभोग से र्ान्त निीं ंिो सकती।"[1101] िमें जो कुछ प्राप्त िोता िै, िम उससे भी आगे और अधधक प्राप्त्त की कामना करते िैं। "रेर्म का कीड़ा अपने द्वारा तनममतश सम्पपत्त में िी मृमृयु को प्राप्त िोता िै।"[1102] अनन्त को प्राप्त करने ेकी जो उमकट अमभलाषा िै उसकी पूतत शसीममत पदाथों द्वारा निीं ंिो सकती। धम शके मलए कष्ट सिन करना भी िमारे मलए आवश्यक िो जाता िै। सच्चे सुख में दुुःख ममला रिता िै।'[1103] असन्तोष से उन्नतत के मलए प्ेरेरणा ममलती िै।1104 िमें अपने मनों को वर् में रखना चाहिए और अपनी वासनाओं को तनयत्न्त्रत करना चाहिए। जब िम हृदय में पपवत्र िो जाएंगे और समय को धारण कर लेंगे तब िम दूसूरे मनुष्यों को किीं ंबुरा न लगे इस पवचार से, और दुुःख से बचने के मलए भी, कभी कुमाग शपर निीं ंजा सकते। इस प्रकार की प्रवृपृत्त को पवकमसत करने ेके मलए मन और इच्छार्त्त के अनुर्ासन की आवश्यकता िै। ककसी-ककसी स्थान पर अमयन्त वैराग्य का भी समथनश ककया गया िै। तयोंकक सुख और दुुःख एक-दूसूरे के ऊपर तनभरश िैं इसमलए उनसे मुतत िोने ेका एकमात्र उपाय तृषूणा का नार् िै।1105 प्रमर्क्षण द्वारा िम ऐसी अवस्था प्राप्त कर सकतेिैं जो इच्छापूतत शकी तुलना में उससे किीं ंअधधक मित्त्वपूण शिै और इन्द्र का स्वडग शत्स्थत आसन भी उसकी तुलना में कुछ निीं।1106 मिाभारत में योग और तपस्या के प्रतत कोई एक तनत्श्चत एवं संगत प्रवृपृत्त निींपाई जाती। िमें ऐसे ऋपष ममलते िैं जो एक टांग पर ख़ड़ िोकर तपस्या करते थे। और ऐसे भी ममलते िैं त्जन्िें दुष्ुट कीड़ों ने खा डाला था। दूसूरी ओर दुवुासशा जैसे भी ऋपष ममलते िैं जो साधारण-सी बात पर कुरुद्ध िो जाते थे। तप का पवचार प्रमुखु अवश्य था ककन्तुकभी-कभी िमें इसका पवरोध भी ममलता िै। "काषाय रंग की पोर्ाक, मौनव्रत, बत्रदण्डधारण, जल का कमण्डल-ये सब मनुष्य को केवल पथभ्रष्ट करते िैं। इनसे मोक्ष प्राप्त्त निीं ंिोती।"[1107] जब तक कोई व्यत्तत अन्य आश्रमों के कत्तव्शय पूरे निीं कर लेता तब तक संन्यासाश्रम में प्रवेर् करने ेकी आज्ञा निीं ंिै। मिाभारत में एक कथा आती िै त्जसमें यि बताया गया िै कक संसार को छोने़ ेसे पूव शगृिस्थधम शमें रिना ककतना अधधक आवश्यक िै। एक संन्यासी, त्जसनेबबना पवविा ककए िी संसार का मयाग कर हदया था, अपनी पररव्राजक अवस्था में चलते-चलते एक ऐसे भयानक स्थान पर पिुंचता िै जो नरक का गढ़ा था। विां उस गढ़े के खुले मुंि के अन्दर उसने अपने पपता, बाबा एवं अन्य पूवजशों को एक-दूसूरे के आधश्रत ऊपर और नीचे लटका िुआ पाया और त्जस रस्सी के सिारे वे लटके िुए थे ेऔर जो उन्िें उस गढ़े में धगरने से रोक रिी थी उसे भी एक चूिा काट रिा था जोकक काल (समय) का प्रतीक था। उसके कान में ऐसे अनेक र्ब्द प़ ेजो उसके तब के पूवपशरुरधचत थे ेजब वि केवल एक बच्चा था- "िमें बचाओ! िमें बचाओ!" इस प्रकार समस्त पूवजशों की लम्बी पंत्तत के मलए एकमात्र आर्ा थी सन्तान उमपपत्त। उस वैरागी को मर्क्षा ममल गई, वि घर वापस िो गया और उसनेपवविा कर मलया।

1101 "नजातु कामःकामानामुपभोगेनर्ाम्यतत।आहदपवश, 75, 49। और भी देणखए मनु 2/94।

1102 12/330, 29 ।

1103 वनपव,श 233, 4।

1104 सभापव,श 55, 11। "असन्तोषः धश्रयो मूलम् ्।"

1105 र्ात्न्तपव,श 25, 22; 174, 16।

1106 विी, 174, 48; 177, 49।

1107 12/821, 47।

तब यहद िमें समाज के सदस्य के रूप में अपनेकत्तव्शयों का पालन करना िै, तो िम कैसे जान सकतिैं कक िमारे तया कत्तव्शय िैं? तनयम और कानून अपने-आपमें पपवत्र और पूण र्शिं। अपूण शव्यत्ततयों के मलए अन्य व्यत्ततयों द्वारा तनममतश तनयमों को स्वीकार करना आवश्यक िै, ऐसे तनयम त्जसे समाज स्वीकार करता िै। मुख्य तनयम आचार अथवा रीतत- ररवाज िै।1108 ये तनयम िी आदेर्ों का रूप धारण कर लेते िैं और बन्धनस्वरूप अनुभव िोने लगते िैं, तयोंकक ये िमारे स्वभाव की कृबत्रम प्रवृपृत्तयों पर अंकुर् का काम करते िैं।1109 यहद कत्तव्शय-कमों में किीं ंपवरोध उमपन्न िो तो िमें मिान पुरुषों के आचरण का अनुसरण करना चाहिए। एक ऐसे आकषकश व्यत्ततमव की आवश्यकता प्रततपाहदत की गई िै जो अपनेप्रभाव से िमें प्ेरेरणा दे सके। "तकश का किीं ंअन्त निीं ंिै, श्रुततयों एवं ंस्मृतृतयों में भी परस्पर मतभेद ममलता िै, ककसी एक पवर्ेषे ऋपष की सम्मतत प्रामाणणक निीं िो सकती, धम शका तत्त्व बिुत गुप्त किीं ंगुिा में तछपा िै; इसमलए मिापुरुष त्जस माग शपर चलते े िैं उसी माग शपर चलना श्ेरेयस्कर िै।"[1110] आममज्ञानी, अथवा वे जो आध्यात्ममक ज्ञान रखते िैं, यथाथ शमें मिान िैं।

कुछ सामान्य तनयमों का पवधान ककया गया िै, जैसे अतत को िर किीं ंछोड़ दें।'[1111] यिां ंतक कक अमयधधक सिनर्ीलता या सहिष्णुता भी वत्जतश ठिराई गई िै।'[1112] यद्यपप समय और अहिंसा के मसद्धान्तों को अतनवाय शमाना गया िै तो भी मिाभारत ने इनके अन्दर भी अपवाद को स्थान हदया िै।'[1113] समय भाषण का अपना कोई आन्तररक मित्त्व निीं ंिै तयोंकक सच्चाई, त्जसका आर्य मनुष्य जातत-मात्र से प्ेरेम िैं, यिी बबना ककसी र्त शका एकमात्र अत्न्तम लक्ष्य िै।1114 तो भी, तनयमों में अपवाद करने ेमें किां ंभय उमपन्न िो सकता िै, यि जानते िुए मिाभारत ने ऐसे व्यत्ततयों के मलए जो समयभाषण का उल्लंघन करें, प्रायत्श्चत्त पर बल हदया िै।"[1115]

पाप का अत्स्तमव िै, इसको स्वीकार करके पश्चात्ताप की मित्ता को भी उधचत स्थान हदया गया िै। सच्चेहृदय से पश्चात्ताप करने ेको किना चाहिए कक "म ैंकफर ऐसा कभी न करूंगा t ^ prime prime भत्तत अथवा ईश्वर के प्रतत श्रद्धायुतत अनुराग को नैततक पपवत्रता को प्राप्त करने ेका साधन माना गया िै। ककसी-ककसी स्थल पर ऐसा किा गया िै कक िम परब्रह्म को ज्ञान के द्वारा िी प्राप्त कर सकतिैं, कम शके द्वारा निीं,ं

1108 अनुर्ासनपव,श104, 157; मनु,1:108।

1109 देणखए मीमांसासूत्र, 1: 1, 2, मिाभारत, र्ात्न्तपवश ,29,4, 29।

1110 वनपव,श 312, 115।

1111 "अतत सवत्रश वजयेशत् ्।"

1112 वनपव,श 28, 6 और 8।

1113 र्ात्न्तपव,श 109, 15-16 ।

1114 "यद्भूतहितममयन्तमेतमसल्य मतं ंमम।" र्ात्न्तपवश ,329, 13; 287, 16।

1115 8/104 - 109 ।

भले ि◌ी कम शककतने ि◌ी अच्छे और ककतने ि◌ी योग्य तयों न ि◌ों, 'जब तक मन की एकाग्रता द्वारा अत्न्तम मोक्ष की प्रात्प्त के मलए पपवत्रता र्नीं ◌ंप्राप्त की जाती' तब तक ि◌म जन्म-मरण के चक्र में बंधे रिंगे।1116

मिाभारत कम शकी र्त्तत में पवश्वास करता ि◌ै त्जसका अथ शि◌ै कक कम शिी भाग्य का तनमाणशक्रताश ि◌ै। यि उपतनषद् के इस मसद्धान्त को स्वीकार करता ि◌ै कक सब प्राण कम शमें बंधे ि◌ुए ि◌ैं और ज्ञान के द्वारा ि◌ी उर्न्ें मुत्तत ममल सकती ि◌ै।1117 कभी-कभी पूवजशों के कमों का भी उनके वंर्जों को फल ममलता ि◌ै।'[1118] कममशसद्धान्त का कम शकरनेमें मनुष्य की स्वतन्त्रता के साथ समन्वय करने ◌ेके मलए प्रयमन ककए गए ि◌ैं। कममशसद्धान्त की सामान्य प्रवृपृत्त यि ि◌ै कक उसके अवश्यम्भावी पररणाम के सम्बन्ध में मनुष्य की स्वतन्त्रता के मलए कोई स्थान र्नीं ◌ंि◌ै, कफर भी उससे त्राण पाने के उपाय ि◌ैं। मनुष्य का पुरुषाथ शकमफशल में पररवतनश ला सकता ि◌ै। कम शकी तुलना अत्न के साथ की गई ि◌ै त्जसे अपनेपुरुषाथ शसे ि◌म पंखा करके प्रज्जवमलत करके, आग की लपेटों में भी पररवतततश कर सकतेि◌ैं अथवा बबलकुल बुझा भी सकतेि◌ैं। कम शके नाना प्रकार बताए गए ि◌ैं: यथा, प्रारब्ध, संधचत और आगामी। ऐसे कमों के संस्कार त्जर्न्ोंनेपूवजशन्म के संधचत कमों में से इस जन्म में इस र्रीर के द्वारा अपना फल देना प्रारम्भ कर हदया ि◌ै, वे प्रारब्धकम शकिलातेि◌ैं। पपछले जन्म के र्ेष बचे ि◌ुए **कमों ्को संस्कार मिस्ी बीज ्सथाम ्** ि◌ै वि◌ी संस्कार इस जन्म में जब कमों के द्वारा नये मसरे से प्राप्त ि◌ोतेि◌ैं तो उर्न्ें आगामी कम शकिते ि◌ैं। पपछली दोनों श्रेणणयों के कम शयथाथ शज्ञान के द्वारा तथा प्रायत्श्चत्त स्वरूप धाममकश पवधान के द्वारा उलटे जा सकतेि◌ैं, ककन्तुप्रारब्धकमों पर ि◌मारा कोई वर् र्नीं ◌ंि◌ै। ईश्वर की कृपा से, संधचत और आगामी कमों के बल को क्षीण ककया जा सकता ि◌ै। यि भी माना गया ि◌ै कक ककसी भी उद्योग में सफलता पाना केवल कम शया प्रारब्ध पर ि◌ी तनभरश र्नीं ◌ंि◌ै, बत्ल्क मनुष्य के अपनेपुरुषाथ श पर भी तनभरश ि◌ै। कममशसद्धान्त की कायवशिी से ईश्वर की र्त्तत में कोई कमी र्नीं ◌ंआती, तयोंकक कममशसद्धान्त स्वयंईश्वर के स्वभाव को व्यतत करता ि◌ै। पवष्णु को कममशसद्धान्त का साक्षात् ◌्मूतरूशप, उसका आधार एवं र्त्तत किा गया ि◌ै।'[1119]

तू मृतृक के प्रश्न पर मिाभारत में कोई स्पष्ट पवचार र्नीं ममलते। देयों के माग श(यान) से पपतरों के माग श(यान) का भेद बताया गया ि◌ै। और एक तीसरा स्थान नरक का भी माना गया ि◌ै। 'अमरमव एक राजा के जीवन के समान गौरवर्ाली एवं ◌ंवैभव-सम्पन्न जीवन' र्नीं ि◌ै।'[1120] यि एक स्वग शके तनमय आनन्द का, जीवन ि◌ै, त्जसमें भूख, प्यास, मृमृयु अथवा वृद्धावस्था सम्बन्धी ककसी प्रकार का दुुःख र्नीं। यि परम आनन्द की अत्न्तम अवस्था ि◌ै जो एक योगी प्राप्त करता ि◌ै। एक योद्धा के मलए 'इन्द्र' के स्वग शमें आनन्द' प्रात्प्त का वायदा ककया गया ि◌ै । नक्षत्रों को मृतृ ऋपषयों का आममांस्थानीय समझा जाता था। अजुनश की र्दत्ष्ट में वे युद्ध मारे गये वीरपुरुष थे। तनःसन्देि उच्चतम लक्ष्य ईश्वर के साथ ममलना ि◌ी था। सांख्य के इस मसद्धान्त का भी

1116 अनुगीता, 3/28।

1117 "कमणशा वध्यते ◌ेजन्तुपवधशया तु प्रमुच्यते।" र्ात्न्तपव श240, 7।

1118 वि◌ी, 129। मनु भी देणखए, 4/170 और आहदपव श80-3।

1119 मिाभारत, 13: 149 ।

1120 7/71, 17 ।

 उल्लेख ककया गया ि कक आममा इस आनुभापवक जगत् ्से उस समय मुतत िो जाती ि

जब यि भौततक प्रकृतत
से पृथृकमव का अनुभव कर लेती ि। "जब एक रीरधारी आममा अपने स्वरूप को िीकि-ीक पिचान लेती ि,
तब उसके ऊपर कोई र्ासक निीं ंरिता, तयोंकक यिी तीनों लोकों की स्वामी ि। वि अपनी इच्छा के अनुसार
नाना प्रकार के रीर धारण कर सकती ि... वि ब्रह्म को प्राप्त िो जाती ि।"[1121]

11. श्वेताश्वतर उपतनषद्

कुछ परवती उपतनपदें इसी काल की िैं और उनका आर्य प्राचीन उपतनषदों की मर्क्षाओं का नये मसरे से प्रचार करना था। इन परवती उपतनषदों को देखने से यि लक्षक्षत िोता ि कक इस मध्यवती काल में पवचार के क्षेत्र में कितंक प्रगतत िुई और देर् के मत्स्तष्क का किं तक पवकास िुआ। ककसी न ककसी धम शपवर्ेषे अथवा दार्तशनक सम्प्रदाय के प्रतत उनका झुकाव और उनसे सम्बन्ध देखा जाता ि। ऐसी उपतनषदें िैं जो पवर्ेषेरूप से यौधगक कक्रयाओं की मर्क्षा देती िैं अथवा सांख्य के मसद्धान्तों अथवा वेदान्त दर्नश का प्रततपादन करती िैं। जावाल तपस्या की पराकाष्िा का समथनश करते िुए िमें सब प्रकार की इच्छाओंको उखा़ फेंकने ेकी प्ेरेरणा देता ि। मैत्रेयी उपतनषद् का झुकाव भी तनरार्ावाद की ओर ि।'[1122] यि सांख्य और योग दोनों के पवचारों का संश्लेषण करता ि। इसके अन्दर सांख्यदर्नश के चौबीस तत्त्वों को सवोपरर परब्रह्म से उद्भूत िुआ बतानेका प्रयमन ककया गया ि। मैत्रेयी, ध्यानबबन्दु ुऔर योगतत्त्व उपतनषदें योग की पवधध की अमयधधक प्रर्ंसा करती िैं। अमृतबबन्दु ुउपतनषद् मर्क्षा देती ि कक जीव ब्रह्म के िी अंर् िैं, इस अथ शमें कक जैसे सीमाबद्ध देर् एक की सावभशौम देर् के भाग िैं। यि एक प्रकार से अद्वैतपरक व्याख्या करती ि। "यिी यथाथ शमें अखण्ड ब्रह्म ि जो समस्त पवचार से परे ि और तनष्कलंक ि। यि जान लेनेवाला व्यत्तत कक 'विी ब्रह्म में िंूं', 'तनपवकशार िो जाता ि।" वि एक िी पवमभन्न उपाधधयों अथवा मयादशाओं के कारण नानारूप प्रतीत िोता ि, "त्जस प्रकार एक िी चन्द्रमा जल के अन्दर नानारूप प्रतीत िोता ि, इसी प्रकार यि एक िोतेिुए भी नानारूप प्रतीत िोता ि।"[1123] कैवल्य उपतनषद् संन्यास अथवा संसार के मयाग को एकमात्र मोक्ष का माग शबताती ि।1124' यि ज्ञान'[1125] पर बल देती ि और तकश के आधार पर प्रततपादन करती ि कक आममा पदाथों के ऊपर तनभरश निीं ंि। 'जागररत, स्वप्न एवं सुपत्प्त इन तीनों अवस्थाओं में जो कुछ सुख का साधन ि वि, तथा सुखानुभव करने ेबाला, और सुख का अनुभव स्वयं भी, इन सबसेमभन्न म ैंिंूं जो सारूप, पवर्ुद्ध बुद्धधस्वरूप तथा तनमय उत्तम या कल्याणकारी ि।"[1126] कुछ अन्य उपतनषदें धचन्तन के ऊपर एवंएक रीरधारी ईश्वर की पूजा़ तथा प्रतीक में ध्यान लगानेपर

1121 अनुगीता,4।

1122 1:2-4।

1123 8 और 12।

1124 1, 1।

1125 9 और 10 ।

1126 18 ।

भी बल देती िैं। ऐसी भी उपतनषदें िैं जो प्रततपादन करती िैं कक पवष्णुअथवा मर्व सब पवश्व का सवोपरर प्रभु व स्वामी िै। वे भत्ततमाग शपर बल देती िैं। मिानारायण, रामतापनीय, श्वेताश्वर, कैवल्य तथा अथवमशर्रस् ् उपतनषदें उततमत के र्दष्टान्त िैं। इनमें से अधधकतर मुख्यतः सांख्ययोग एवं वेदान्तदर्नशों के पवरोधी आदेर्ों का परस्पर समन्वय करने ेमें िी व्यस्त िैं और तनश्चय िी उतत दर्नशग्रन्थों के तनमाणश काल के परवती काल में बनी िैं। यिां पर श्वेताश्वर उपतनषद् के अन्तगतश पवषयों का वणनश करना उपयोगी मसद्ध िोगा तयोंकक इसमें मि भगवद्गीता के िी समान रचना पातीं; अन्तर केवल इतना िी िै कक इस उपतनषद् में मर्व को सवोपरर प्रभु किा िै।

यि उपतनषद् बौद्धकाल के पीछे की िै, तयोंकक इसमें सांख्य और योग दोनों दर्नशों के पाररभापषक र्ब्द पाये जाते िैं। इसमें कपपल के नाम का उल्लेख िै यद्यपप र्ंकर का पवचार िै कक उतत नाम के हिरण्यगभ श का आर्य िै जो कपपल वण शअथवा सोनेके रंग का िै। तीन रंग वाली'[1127] अजा या बकरी को किीं-किीं ं सांख्यदर्नश के तीन गुणों का प्रतीक माना गया िै। ककन्तुर्ंकर की व्याख्या के अनुसार, यि उपतनषदों के तीन प्रारत्म्भक तत्त्वों, अत्ग्न, जल एवं ंपृथ्वी, का उल्लेख िै। उपतनषद का दूसूरा अध्याय योगदर्नश के बार-बार के उल्लेखों से भरपूर िै। 'मलङ्ग' र्ब्द का प्रयोग सम्भवतः न्यायर्ास्त्र के अथों में ककया गया िै।1128 ऐसा प्रतीत िोता िै कक इस उपतनषद् के रचतयता को बौद्धधम शकी काल, स्वभाव अथवा कमर्ृंशखला, संयोग अथवा तत्त्वों ककंवा पुरुष आहद की कल्पनाओंका भी ज्ञान था। उच्चतम यथाथसशत्ता के पवषय में प्रततपादन करते समय इस उपतनषद् में ऐसे-ऐसे नामों का उपयोग ककया गया िै जैसे िर, रुद्र, मर्व आहद।1129 ब्राह्मणधम शके सवमशान्य देवता को ब्रह्म के गुणों से सुभूपषत ककया गया िै।

ड्यूसन श्वेताश्वतर उपतनषद् को 'ईश्वरवाद, (अत्स्तमववाद) का कीततस्शतम्भ' किता िै, तयोंकक यि एक ऐसे र्रीरधारी ईश्वर के पवषय में उपदेर् देती िै जो सृत्ष्ट का स्रष्टा िै, न्यायाधीर् िै और पवश्व का रक्षक िै। िर, जो स्वामी या प्रभु िै, जीवाममाओं एवं ंभौततक प्रकृतत पर र्ासन करता िै। यि उपतनषद् प्रकृततवाद की कल्पना का खंडन करती िै जो 'स्वभाव' को िी पवश्व का कारण मानती िै।1130 स्वभाववाद की कल्पना का पवश्वास िै कक पवश्व की उमपपत्त एवं ंत्स्थतत पदाथों की स्वाभापवक और आवश्यक कक्रयाओं द्वारा िोती िै, और यि उनके अपने गुणों के कारण िै। इस प्रकार के मत में सवोपरर सत्ता को माननेकी कोई आवश्यकता निींरिती।
ईश्वर की यथाथतशा तकश से मसद्ध निीं ंकी जा सकती। इसे केवल श्रद्धा तथा समाधध के द्वारा िी अनुभव ककया जा सकता िै।"[1131] "जब अपनी एकाग्रता में मग्न िोकर एक योगी अपनी आममा के यथाथ श स्वरूप के द्वारा जो प्रकार् की भांतत ब्रह्म के जोकक अजन्मा, तनमय अएवंभौततक प्रकृतत के समस्त प्रभावों से मुतत िै यथाथ श

[1127] 4:5 ।

[1128] 6:9 ।

[1129] 1:10; 3:4 और 7; 4: 10 और 12।

[1130] 6:1 ।

[1131] 6/13

स्वरूप को देखता ि तो यि सब बन्धनों से छूट जाता ि।1132 उसका ऐसा रूप निीं ंि जो आंखों से देखा जा सके। ऐसे व्यत्तत जो उसका ज्ञान हृदय एवं ंबुद्धध के द्वारा प्राप्त करते ि तयोंकक वि हृदय में त्स्थत ि, वे अमर िो जाते ि ।"1133 वि भौततक प्रकृतत एवं ंआममा का स्वामी ि, बन्धन एवं मोक्ष का कारण ि. सब पदार्थों में तनमय ि, स्वियम्भू ि।'1134 दैवीय अन्तयामशमता को भी स्वीकार ककया गया ि। उसका तनवास मनुष्य के हृदय में ि और वि सब प्राणणयों में अन्ततनहशित ि। "तुम िी स्त्री िो, तुम िी पुमान िो, तुम िी युवा एवं युवती भी िो, तुम िी अपनी लािी के ऊपर कांपतिुए वृद्धपुरुष िो, यि पवश्व तुम्िारा रूप ि।1135

इस उपतनषद् को अर्रीरी ब्रह्म की यथाथतशा का भी ज्ञान ि, त्जसके तीन रूप ि ईश्वर, संसार व जीवाममा। "जिांअन्धकार निीं ंि, जिां ंन तो हदन ि, और न रात, न सत्ता ि और न असत्ता, विांभी वि सवमशान्य एकाकी ि।"1136 उसे 'तनगुणश' किा जाता ि, यद्यपप इंश्वरवादी व्याख्याकारों का किना ि कक इस र्ब्द से तामपय शयि ि कक सवोपरर परब्रह्म दुगुणशों से रहित ि।'1137 इसमें कोई सन्दिे निीं ंि कक श्वेताश्वतर उपतनषद् पररवतनशर्ील संसार के ऊपर एक सवोपरर ब्रह्म के यथाथ शअत्स्तमव को स्वीकार करती ि1138, जो देर् से सीममत निीं ंि1139, अपवचल ि, पररणमन के पररवतनश तथा कारण-काय-शभाव के बन्धन से भी स्वतन्त्र ि ।"1140 यि पवरुद्ध मौमलक चेतना ि त्जसके प्रकार् से समस्त पवश्व प्रकामर्त ि।"1141 इसका इस प्रकार वणनश ककया गया िै कक "यि अखण्ड ि, कक्रयारहित ि, दोषरहित ि, अज्ञान अथवा दुःख से भी रहित ि।"1142 इस सवोपरर सत्ता से तीन जन्मरहित तत्त्व तनकले ि, सवज्ञश ईश्वर, अल्पत्तत जीवाममा, और प्राकृत जगत् ्जो अपनेअन्दर सुख और दुःख की सामग्री को धारण करता ि।"1143 ये तीनों परमाथ शरूप में मभन्न निीं ंि। ये एक िी ब्रह्म के तीन रूप ि।"1144 उपतनषदों का तनरपेक्ष परब्रह्म सबसे ऊंचा तत्त्व बन जाता ि, और व्यत्ततयों के अन्दर वि अपना एक व्यत्ततमव रखता ि। र्रीरधारी प्रभु ुममधश्रत ब्रह्म ि जो जीव और प्रकृतत का सनातन आधार ि।1145 सब प्रकार के ईश्वरवाद में इस प्रकार की सत्न्दग्धाथतशा ि। मानवीय चेतना की धाममकश आवश्यकताओंकी मांग ि

1132 2/15

1133 4/20 ।

1134 6/16 6/7 :13 ।

1135 3/11 14, 16:43, देणखए मिानारायण भी , 2 7; कैवल्य, 9 और 10।

1136 4/18 ।

1137 6 - 11।

1138 3/14।

1139 3/20 ।

1140 5/13 6/5 ।

1141 6/14 ।

1142 6/19 ।

1143 1/9 ।

1144 1/12 , बत्रपवधं ब्रह्ममेतत् ्। और भी देखें/7।

1145 "संयुततम् ्एतत् ्।"

कक परमतत्त्व ि◌ी श्रेयस्कर ि◌ै,[1146] सबका ममत्र"[1147] एवं आश्रयस्थान ि◌ै, इत्च्छत पदाथों का दाता ि◌ै।1148 चूंकक एक अर्रीधारी ब्रह्म का धचन्तन करना कहिन ि◌ै इसमलए एक र्रीरधारी प्रभु की कल्पना की गई।"[1149] "ब्रह्म चेतनामय बुद्धध ि◌ै, जो अखण्ड ि◌ै एवं ◌ंअर्रीरी ि◌ै। साधक को अपनी साधना में सियोग देनेके मलए उसके पवषय में मभन्न-मभन्न प्रकार के प्रतीकों एवं ◌ंआकृततयों की कल्पना कर ली गई ि◌ै।'[1150]' श्वेताश्वर र्रीरी एवं ◌ंअर्रीरी दोनों का एकामम्य करता ि◌ै, यद्यपप यि र्रीरी को अर्रीरी ब्रिा की रचना मानता ि◌ै, यहद ऐसे कम शके मलए रचना ब्दं का प्रयोग उधचत समझा जा सके। संसार के ककंवा उसके मनुष्यों के सम्बन्ध में परब्रिा र्रीर धारण कर लेता ि◌ै। जब तक एक व्यत्तत अपनेव्यत्ततमव में मलप्त रिता ि◌ै, परब्रह्म एक अततररतत एवं र्रीरी ईश्वर ि◌ै। ककन्तुजब विी व्यत्तत अपनेव्यत्ततमव को आममसमपणश कर देता ि◌ै तब दोनों एक ि◌ो जाते ि◌ैं।

मिं माया के मसद्धान्त से भी वास्ता पड़ता ि◌ै और ईश्वर को माया का तनयन्त्रणकताश बताया जाता ि◌ै। सांख्य की व्याख्या को कुछ पररवतनशों के साथ स्वीकार ककया गया ि◌ै। प्रकृतत एक स्वतन्त्र र्त्तत निंीं रि जाती ककन्तु ◌ुस्वयं ईश्वर का ि◌ी स्वभाव बन जाती ि◌ै।1151 संसार की रचना ईश्वर की अपनी र्त्तत (देवाममर्त्तत) के द्वारा ि◌ुई।"[1152] "जैसे एक मकड़ी अपना जाला अपनिंी र्रीर से तागे तनकालकर बुनती ि◌ै, इसी प्रकार एकाकी ईश्वर ने संसार रूपी तत्त्व को अपनिंी अन्दर से उमपन्न ककया और उसमें रम गया।"[1153] ईश्वर एक से अनेक ि◌ो जाता ि◌ै।1154 ऐसा तो कोई सुझाव इस उपतनषद् में निंीं ◌ंपाया जाता जिां ◌ंसंसार को भ्रात्न्तरूप प्रतीतत किा गया िि। यि स्वीकार ककया गया ि◌ै कक यि संसार सवोपरर यथाथ शसत्ता को ि◌मारी र्दत्ष्ट से ओझल रखता ि◌ै।1155 संसार माया ि◌ै, तयोंकक ि◌म निंीं ◌ंजानते कक अर्रीरी ब्रह्म ककस प्रकार ईश्वर, संसार एवं ◌ंआममाओं के रूप में पररणत ि◌ो जाता ि◌ै। माया को दैवीय र्त्तत के अथों में भी स्वीकार ककया गया ि◌ै, प्रकृतत को माया किा गया ि◌ै तयोंकक स्वतः चेतन ईश्वर समस्त संसार को अनामम की र्त्तत द्वारा पवकमसत करता ि◌ै। माया को अपवद्या के अथों में अंगीकार ककया गया ि◌ै, तयोंकक यि संसार रूपी नाटक या प्रदर्नश अपनेअन्दर पवद्यमान आममा को तछपाए ि◌ुए ि◌ै। ये मभन्न-मभन्न भावाथ शऐसे ◌ेनिंीं ◌ंत्जनका समन्वय न ककया जा सके, यद्यपप सावधानी से भेद न करने ◌ेसे अव्यवस्था अवश्य आएगी।

अनेक कल्पों की कल्पना को, उपतनषदों में हदए गए सृत्ष्ट के पववरणों और संसार की अनाहद-अनन्तता के मध्य समझौते के पवचार से, स्थान हदया गया। संसार के अनाहद- अनन्तता के मसद्धान्त के अनुसार, प्रमयेक

1146 3/5।

1147 3/17 ।

1148 4/11

1149 कैवल्य, 24।

1150 रामतापनीय, 1, 7; देणखए कैवल्य , 18।

1151 4/9 -10|

1152 1/31

1153 6/10।

1154 6 / 12। 'एक रूपं ◌ंबिुधा यः करोतत।"

1155 5/1।

जन्म के कम शअगले जन्म का कारण बनते िैं, इस प्रकार प्रमयेक जीवन अपनेसे पूवजशीवन की कल्पना करता िै, और इस प्रकार से कोई भी जीवन पिला निीं ंिो सकता और इसीमलए ककसी पवर्ेष समय पर आकर सृतूष्ट का तनमाणश िुआ िो, यि निीं ंबनता। कफर भी िम सुनते िैं कक सृतूष्ट की रचना एक ऐसी घटना िै जो अनन्तकाल से समय-समय पर िोती चली आई िै। एक बार का तनमाणश ककया िुआ पवश्व एक पूरे कल्प तक रिता िै त्जसे संसार का काल किते िैं और उसके बाद संसार वापस ब्रह्म में पवलीन िो जाता िै। और कफर उसीके अन्दर से प्रादुभूतश िोता िै, आहद-आहद। दुबुारा सृतूष्ट के िोने ेका कारण यि िै कक जीवामममा के काय शकफर भी र्ेष बचे ेरिते िैं और उनकी मांग नई सृतूष्ट के मलए िोती िै अथवा यों किा जाए कक उन कमों की समात्प्त के मलए नये जीवन की आवश्यकता िोती िै। समय-समय पर सृतूष्ट के प्रलय और पुनरशचना का पवचार भगवद्गीता, श्वेताश्वतर उपतनषद् एवं मिाकाव्यों की पवचारधारा में एक समान पाया जाता िै।"[1156] "वि सब प्राणणयों में तनवास करता िै और प्रलयकाल में रुद्ररूप धारण करके विी प्रभु सब रधचत पदाथों को तछन्न-मभन्न करके टुकड़े-टुकड़े ेकर देता िै।"[1157] "वि ईश्वर िै जो ककतने िी कालों में एक के पीछे दूसूरा जाल आकार् में फैलाता िै और कफर उसको समेट लेता िै।"[1158] परवती उपतनषदों ने इस पवचार को बिुत मित्त्व हदया िै। "यिी वि िै जोकक जब संसार का प्रलय िोता िै तब उस सबके तनरीक्षण के मलए एकमात्र र्ेष रि जाता िै और यि भी विी िै जो कफर से आकार् के गिर से पपवत्र आममाओं को जीपवत करता िै।"[1159] उपतनषदों के अनुसार, केवल एक सृतूष्ट के तनमाणश के िी मलए बार-बार दिोराई जानेबाली प्रकक्रया ममलती िै, अथात्श ्प्रमयेक प्रलय के पश्चात् ्पुनः सृतूष्ट रचना िोती िै त्जसका तनधारशण जीवाममाओं के कमों के कारण िोता िै।

श्वेताश्वर-प्रततपाहदत धम शईश्वरवादी िोने ेके कारण उपासक एवं ंउपास्य में, अथात्् जीवामममा एवं ंईश्वर में, भेद करता िै।'[1160] यद्यपप यि भेद केवल उपाधध के कारण िै। ईश्वर में ध्यान लगानेसे और अपनेको उसके सुपुदश कर देनेसे मनुष्य का अज्ञान दूरू िो जाता िै।1161 भत्तत के ऊपर बार-बार बल हदया गया िै और किा गया िै कक ईश्वर की अनुकम्पा िी मनुष्य के मोक्ष का कारण िो सकती िै।1162 ककन्तु ईश्वर ऐसा मनमौजी निीं ंिै और इसमलए अपनी अनुकम्पा प्रदान करनेमें पवर्ेष मसद्धान्तों का अनुसरण करता िै। इसके मलए प्रपपत्त अथवा आममसमपणश का भाव िोना चाहिए।'[1163] ध्यान और पूजा में परस्पर पवरोध प्रतीत िोता िै। "इस परब्रि को तनमय समझना चाहिए और यि सदा िी मनुष्य की अपनी आममा में पवद्यमान िै, तयोंकक उसके अततररतत

1156 भगवद्गीता, 9/7और भीदेणखए ,8: 17-19।
1157 3/2 श्वेताश्वर उप० ।
1158 5: 3, और भी देणखए, 6:3-4।
1159 मैत्रेयी उपतनषद्, 6/17 ।
1160 4/6 - 7 1/8। 110; 4:4-6।
1161 3/20 : और भी देणखए
1162 ,1/16,2,2,3, 12 6,6 और 21।
1163 6/18 ।

अन्य ककसीका ज्ञान प्राप्त करने ेको निीं ंिै, सुखोपभोग करनेवाला व्यत्ततगत जीवाममा, सुखदायक पदाथ शऔर सुख का भोग करानेवाला- ये तीनों िी ब्रह्म िैं, इस प्रकार से जो जान लेता िै वि मोक्ष को प्राप्त िोता िै।"[1164]

मृमृयु के पश्चात् ्जीवाममा को तीन में से ककसी एक माग शका आश्रय लेना िोता िै, अथात्श ्देवताओं का माग श(यान) जो ज्ञान के द्वारा प्राप्त िोता िै, पपतरों का माग श(यान) जो अच्छे कमों से प्राप्त िोता िै, और नीचे का माग शजो दुष्ुट चररत्र व्यत्ततयों के मलए िै।'[1165] सृत्ष्ट के रचतयता का ज्ञान प्राप्त करने ेपर िम सब बन्धनों से मुतत िो जाते िैं।"[1166] उस समय तक िमें अपनी इच्छाओंके स्वरूप के अनुरूप नाना प्रकार की रीराकृततयां ं धारण करनी िोती िैं। "तब तक इस ब्रह्मचक्र में जो सब प्राणणयों का आधार और अत्न्तम लक्ष्य भी िै, जो अनन्त िै-तीथयशात्री के रूप में जीवाममा इतस्ततः भ्रमण करती िै, जब तक वि अपने तथा सवोपरर र्ासक में भेद करती िै, ककन्तु जब ब्रह्म इसको ऊंचा उिाता िै तब यि अमरमव को प्राप्त करती िै।"[1167]

12. मनुस्मृतृत

भगवद्गीता के पवषय को लेने से पूव शिम संक्षेप रूप से मनुस्मृतृत के पवषय का उल्लेख करना आवश्यक समझतेिैं, तयोंकक स्मृतृतयों के अन्दर मनुस्मृतृत को िी सबसे ऊंचा स्थान हदया गया िै। इस पवधध-ग्रन्थ के रचतयता को, वेदों में त्जस मनु'[1168] का उल्लेख आया िै उसके साथ सम्बद्ध करने ेके, अनेक प्रयास ककए गए िैं। ऋग्वेद में इसे प्रायः पपता मनु के नाम से पुकारा गया िै।1169 वि सामात्जक एवं ंनैततक व्यवस्था का संस्थापक था, त्जसनेधम शको त्स्थररूप हदया। विी मनुष्य जातत का पूवपुशरुष या कुलपुरुष िुआ। यद्यपप वि व्यत्ततगत रूप में कानून का पवधान बनाने वाला न भी रिा िो, उसके नाम से जो धमर्शास्त्र प्रचमलत िै उसे बिुत प्रततष्िा केै साथ देखा जाता िै। "मनुकी स्मृतृत के साथ त्जस स्मृतृत का पवरोध िोगा उसे स्वीकार निीं ककया जा सकता।"[1170]

सर पवमलयम जोन्स ने मनुस्मृतृत का समय बिुत प्राचीन अथात् ्1250 वष शईसापूव शका तनधारशरत ककया था। श्लेगल का मत िै कक इसका काल 1000 वष शईसापूवू शसे पीछे का निीं ंिो सकता। मोतनयर पवमलयम्स इसे 500 वष शईसापूवू शमें रखता िै।'[1171] वेबर का पवचार िै कक मनुस्मृतृत मिाभारत के कुछ भागों के भी पीछे बनी। इसका रचतयता वैहदक साहिमय से अमभज्ञ िै और वि पिले के पवधधतनमाशताओं एवं परम्पराओं का उल्लेख करता

1164 1:12।

1165 5:7।

1166 5/13।

1167 1/6।

1168 ऋग्वेद , 8: 27।

1169 ऋग्वेद , 1, 1/80, 16 ;1:124,2:2:33,13।

1170 देणखएतैपत्तरीयसंहिता, 22, 10, 3/1, 9 ,4 ।

1171 इत्ण्डयनपवज़डमपृष्ि, 215।

 ि। वेबर, मैतसमूलर और बनलश आहद पवद्वानों का ऐसा पवचार ि कक मानवधमर्शास्त्र का वतमशान पद्यबद्ध

संस्करण पिले के गद्यबद्ध ग्रन्थ का श्लोकों में रूपान्तर ि। किा जाता ि कक "यि मानव जातत की कृतत ि, जो कृष्ण यजुवेद के मैत्रायणीय सम्प्रदाय के छः उपपवभागों में से एक ि और त्जनके कुछ अनुयायी आज भी बम्बई प्रदेर् में पवद्यमान िैं।" वनलश इस मत के समथनश में त्व्टिनी का उद्धरण देता ि।1172 मनुस्मृतत की र्ैली एवं भाषा की दृत्ष्ट से उसका काल मिाकाव्यकाल बताया जाता ि। मिाभारत और पुराणों के िी समान यि पुस्तक भी एक सवमशान्य प्रकृतत की ि, त्जनका तनमाणश ऐसे व्यत्ततयों के मलए ककया गया ि जो कक आहदस्रोत (वेद) तक निींपिुंच सकते। यि कानून एवं धम शके परस्पर घतनष्ठ सम्बन्ध को दर्ातशी ि। इसका मुख्य आर्य दार्तशनक निीं। मेधाततधथ की सम्मतत में, दार्तशनक अंर् न्यूनाधधक रूप में भूममका-मात्र ि। पिले और दूसरे अध्याय में जो दार्तशनक पवचार पाए जाते िैं वे िी िैं जो पुराणों के िैं।

जैसा कक कोलब्रुक अपनेप्रबन्धों में किता ि, मनु में िमें वेदान्तदर्नश के साथ ममधश्रत, पौराणणक सांख्य ममलता ि।1173 मनुके सृत्ष्टरचना के वणनश में कोई अपनी पवर्ेषता निीं ि।'[1174] यि ऋग्वेद की सृत्ष्टरचना-सम्बन्धी ऋचा में हदये एक वणनश पर िी आधश्रत ि। परम् यथाथतशा ब्रह्म ि जो र्ीघ्र स्वयम्भू हिरण्यगभ शएवं अन्धकार के अन्दर एक द्वैत को अमभव्यतत करता ि। "उसनेनाना प्रकार के प्राणणयों को अपने तनजी र्रीर से उमपन्न करने की इच्छा करते िुए सबसे पूवू शजलों को बनाया और अपनेबीज का उनके अन्दर आधान ककया। वि बीज एक सुवण शhat b अण्ड में पररणत िो गया जो सूय शके समान उज्जजवल था। उसी ब्रह्माण्ड में वि स्वयंभी ब्रह्मा के रूप में प्रादुभूतश िुआ जो समस्त संसार का पूवपुशरुष ि...उस एकमात्र दैवीय र्तत नेजो उस ब्रह्माण्ड के अन्दर पवद्यमान थी, उसे दो भागों में पवभतत ककया त्जससे उसनेधूलोक एवं ममयलशोक का तनमाणश ककया, और, उनके मध्य में अथात्श मध्यस्थ वायुमण्डल में, क्षक्षततज के आि लक्ष्य बबंदुओं एवं जलो के तनमयस्थान को बनाया...उन्िींिसे उसनेमन की सृत्ष्ट की, आममभाव की सृत्ष्ट की, और तब उसने मिान तत्त्व आममा और अन्य सब पदाथो को, जो बत्रगुणयुतत िैं, और पांचों इत्न्द्रयों को बनाया जो संवेदनाओं के द्वारा प्रमयक्ष ज्ञान प्राप्डत करती िैं।" इस ग्रन्थ की अत्न्तम अध्याममर्ास्त्र-सम्बन्धी त्स्थतत के सम्बन्ध में अनेक पववाद िैं। "पिले यि सब अदृष्ट अन्धकारमय था, त्जसमें मभन्न-मभन्न वस्तुओं का पाथतशय निीं लक्षक्षत िोता था, तकश त्जसका पवचार निीं कर सकता था, जो अपवज्ञेय था, त्जसका सवागां प्रगाढ़ तनद्रा में सोये िुए के समान था।"[1175] अंधकार (तमस) को साधारणतः मूल प्रकृतत किा गया ि जो सांख्यदर्नश की मूल वक्ररेखा ि। 'तमोभूतम् का अथ शिै इस प्रकृतत में तनमग्न। राघवानन्द, जो एक वेदान्ती भाष्यकार िैं, तम का अथ शअपवद्या करते िैं। किा गया ि कक संसार का पवकास हिरण्यगभ शकी कारणकायक्षशमता के द्वारा िुआ, उस व्यवस्था में जो सांख्यदर्नश को अमभमत ि। संसार को हिरण्यगभ शका र्रीर भी किा जाता ि और आममाओंको उसकी सृत्ष्ट

1172 बनलश : 'दआडडनर्ेसआफमनु', इण्रोडतर्नपृष्ठ 18।

1173 'ममस्लेतनयस एसे़', खण्ड 1, पृष्ठ 249।

1174 1/5 और आगे।

1175 आसीहददं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतव्यमशपवज्ञेयेंप्रसुप्तममव सवतशः ॥ (1:5)

बताया गया िै। सृतूष्टरचना के वणनश की व्याख्या स्वयंसमालोचकों के िी मत में पवपवध प्रकार की िै। गुणों के मसद्धान्त1176, बत्रमूतत शके पवचार'[1177] और सूक्ष्म र्रीर1178 के पवचार पर भी ध्यान देना चाहिए।

मनुस्मृतत मूल रूप में एक धमर्शास्त्र िै, नैततक तनयमों का एक पवधान िै। इसनेररवाजों एवं ं परम्पराओं को, ऐसे समय में जबकक उनका मूलोच्छेदन िो रिा था, गौरव प्रदान ककया। परम्परागत मसद्धान्त को मर्धथल कर देनेसे रूहढ़ और प्रामाण्य का बल भी िल्का प़ गया। स्वच्छन्द भावाममकता का जवाब साधारण बुद्धध के द्वारा ह्दया जाता िै कक उसे प्रतततष्ठित समझा गया िै। मनु के आदेर्ों का आधार िैं वे प्राचीन प्रथाएं एवं आचार जो गंगा के ककनारे पर बस गए हिन्दू ूलोगों में प्रचमलत थे। वि वैहदक यज्ञों को मान्यता देता िै1179 और वण श(जन्मपरक जातत) को ईश्वर का आदेर् मानता िै।1180 वि तपश्चयाश के पक्ष में िै ककन्तु ुसाथ में यि भी किता िै कक िमें ऐसी इच्छाओं का जो धम शके पवरुद्ध िैं, मयाग कर देना चाहिए।"[1181] उसके अन्दर बिुत-सी दोषपूण शबातों के साथ किीं–किीं ंप्रततभा एवंअन्तर्दतृष्ट का आभास भी ममलता िै। "माता बननेके मलए त्स्त्रयों की सृतूष्ट की गई और पपता बननेके मलए पुरुषों की।"[1182] "केवल उसी मनुष्य को िम पूण श किते िैं त्जसकी स्त्री, वि स्वयंऔर उसकी सन्तान वतमशान िै।" स्त्री के िी मलए पतत िोता िै।1183 सामात्जक कत्तव्शयों का तनविाश अथवा पालन सबसे पिले और प्राथममकता देकर िोना चाहिए। "द्पवजातत का ऐसा पुरुष जो परममोक्ष प्राप्त करना चािता िै ककन्तु त्जसने वेदों का अध्ययन निीं ककया, तथा सन्तानोमपपत्त निीं ंकी और यज्ञ भी निीं ंककए वि नीचेकी ओर धगरकर पततत िो जाता िै।"[1184] एकाग्रमन िोकर अध्ययन करना िी ब्राह्मण का तप िै, क्षबत्रय के मलए तप िै तनबलशों की रक्षा करना; व्यापार, वाणणज्जय तथा कृपष वैश्य के मलए तप िैंऔर र्ूद्र के मलए अन्यों की सेवा करना िी तप िै।"[1185]

नैततक आचरण यि िै त्जसमें सत्त्वगुण की प्रधानता िो और जो आगामी जीवन का माग शन बनाए।'[1186] आदर् शवीर विी िै त्जसने सबके ऊपर पवजय पा ली िो। दूसरे मनुष्यों की अधीनता का नाम दुःख िै, और सुख अपनी तनजी अधीनता िै।1187 "ऐसा व्यत्तत जो केवल अपनी आममा के मलए यज्ञ करता िै, ककन्तु सब उमपादक प्राणणयों में भी आममा को समानरूप से जानता िै, और सब उमपादक प्राणणयों को अपनी आममा में

1176 12/24।

1177 1/10।

1178 12 / 16-17 ।

1179 3/76।

1180 1:31।

1181 4/176 ।

1182 9/96 ।

1183 9/45।

1184 6/37 ।

1185 देणखए भगवानदास-'हिन्दू ूसोर्ल आगतशन्ेर्न' और 'इण्टरनेर्नल जनलश आफ एधथतस', अतटूबर , 1922, 'हिन्दूधम'श र्ीषकश लेख।

1186 12/89 1

1187 4: 1, 160। "सव शपरवर्ं दुःखं सवमशाममवर्ं सुखुम् ्।"

जानता ि◌ै, वि आममर्ासक एवं ◌ंस्वत: प्रकार् बन जाता ि◌ै।"[1188] ि◌मारे कमों का आगामी जीवन पर तया प्रभाव पगे◌़ा, नैततकता इसकी अपेक्षा करती ि◌ै। ऐसा आचरण त्जसकी प्रवृपृत्त उत्तम जन्म हदलानेकी ओर ि◌ै, सदाचार का कम शि◌ै, इसी प्रकार त्जस आचरण से तनकृष्ट जीवन ममलेगा यि दुराचार का कम शि◌ै। ककन्तु ये दोनों ि◌ी सवोमकृष्ट कम शसे ि◌ीन ि◌ै जो ि◌में पूणतशा तक पिुंचने ◌ेअथवा पुनजन्शम से छुटकारा हदलानेमें सिायक ि◌ोता ि◌ै।

मि यि नि◌ीं ◌ंकि सकतेकक मनु ि◌ी एकमात्र उस सुर्दढ़ व्यवस्था का पक्षपोषक ि◌ै त्जसकी स्मृतृत में उन्नतत के मलए कोई गुजांइर् नि◌ीं ◌ंि◌ै। उसके अनुसार, उधचत एवंअनुधचत के तनणयश के चार साधन ि◌ैं वेद, स्मृतृत, आचार और अपनी अन्तराममा। पिले तीन साधन सामात्जक व्यवस्था को बनाते ि◌ैं ककन्तु सामात्जक उन्नतत अत्न्तम साधन के द्वारा ि◌ी तनत्श्चत ि◌ै। ि◌म ऐसा काम कर सकते ि◌ैं जो ि◌मारे अपनेअन्त:करण को पप्रय प्रतीत ि◌ो (आममनः पप्रयम्)◌्।1189 ि◌में ऐसा कम शकरने ◌ेकी आज्ञा ि◌ै त्जसका तकश द्वारा तनश्चय ि◌ो सके।1190 मनुअन्तस्तल की साक्षी को, अथात् श ◌्ि◌मारे अन्दर अवत्स्थत ईश्वर की वाणी को, त्जसे अन्तराममा कि◌ा जाता ि◌ै, स्वीकार करता ि◌ै।"[1191]

उद्धिृ ग्रन्थ

- तेलंग :'भगवद्गीता, अनुगीता आहद सैक्रेड बुतस आफ द ईस्ट', खण्ड 8।
- ि◌ॉपिककंस :'द ग्रेट एपपक आफ इत्ण्डया', अध्याय 3।
- सी० बी० वैद्य :'एपपक इत्ण्डया', अध्याय 17। आर० जी० भण्डारकर 'वैष्णपवज़्म, र्ैपैवज्जम', ि◌ेमचन्द्र राय चौधरी आहद ।
- बुिलर :'अली हिस्री आफ द वैष्णव सेतट'।
- :'द लॉ़ ऑफ मनु सैक्रेड बुतस आफ द ईस्ट', खंड 25।

1188 12/91औरभीदेखें 118।

1189 2:12।

1190 मन:पूतंसमाचरेत् ,◌् 6 / 46

1191 4/161 ।

नवांअध्याय

भगवद्गीता का आत्स्तकवाद

भगवद्गीता-गीता का काल अन्य पद्धततयों के साथ सम्बन्ध- गीता का उपदेर्-परम यथाथतशा पररवतनशमय जगत्–् जीवाममा-नीततर्ास्त्र-ज्ञानमाग-शभत्ततमाग शकममशाग-श मोक्ष ।

1. भगवद्गीता

भगवद्डगीता, जो मिाभारत के भीष्मपव शका एक भाग ि,ै संस्कृत-साहिमय का एक अमयन्त लोकपप्रय धाममकश काव्य ि।ै यि "सबसे अधधक सुन्दर और यथाथ शअथों में सम्भवतः एकमात्र दार्तशनक गीत ि ैजो ककसी ज्ञात भाषा में मलखा गया ि।ै" यिी एक ऐसा ग्रन्थ ि ैत्जसमें दर्नश, धम शऔर नीततर्ास्त्र का समन्वय िुआ ि।ै इसे श्रुतत तो निीं ंसमझा जाता और न ईश्वरीय प्ेरेरणास्वरूप धमर्शास्त्र िी माना जाता ि,ै ककन्तु स्मृतृतयों में इसकी गणना िोती ि,ै और इसे परम्परा भी कि सकते िैं। यादश ककसी ग्रन्थ का मनुष्य के मन पर ककतना अधधकार ि,ै इसे उस ग्रन्थ के मित्त्व की कसौटी समझा जाए जो किना िोगा कक गीता भारतीय पवचारधारा में सबसे अधधक प्रभावर्ाली ग्रन्थ ि।ै मोक्ष के पवषय में इसका सन्देर् सरल ि।ै जिां एक ओर केवल धनवान व्यत्तत िी अपनेयज्ञों के द्वारा देवताओं को खरीद सकतेथे और केवल सभ्य पुरुष िी ज्ञान के माग शका अनुसरण कर सकतेथे,े गीता एक ऐसी पवधध बतलाती ि ैजो सबकी पिुंच के अन्दर ि,ै और वि ि ैभत्तत अथात्श ्ईश्वर में श्रद्धा का भाव। इसका रचतयता कपव गुरु को िी साक्षात् ्ईश्वर का रूप देता ि ैजो मनुष्य जातत के अन्दर उतर आया ि।ै वि मनुष्यों के प्रततततनधधरूप अजुनश को उसके जीवन के एक ब्र ेसंकट के समय में उपदेर् देता ि।ै अजुनश युद्धक्षेत्र में आता ि,ै त्जसे अपनेकाय शकी उधचतता में पूरा पवश्वास ि,ै और जो र्त्रुु से युद्ध करने े को उद्यत ि।ै एक मनोवैज्ञातनक क्षण में वि अपनेकतव्शय-पालन में णझझक का अनुभव करता ि।ै उसका अन्तःकरण उद्पवग्न िो गया, उसका हृदय दारुण दुःख के मारे फटने लगा और उसकी मानमसक अवस्था ऐसी

 िो गई, "जैसे ककसी छोटे-से राज्जय में पवप्लव िो गया िो।"[1192] यहद हिंसा करना पाप िै तो ऐसे व्यत्ततयों की

हिंसा करना तो घोरतम पाप िै त्जनके प्रतत िमारा प्रेम और पूज्जयभाव िै। अजुनश एक ऐसे व्यत्तत का उदािरण िै

जो संघष शकरता िुआ इस जगत् के बोझ और रिस्य को अनुभव करता िै। वि अभी तक अपनेअन्दर इतना आममबल संग्रि निीं कर सका त्जसके आधार पर वि न केवल अपनी इच्छाओंएवं वासनाओं की िी तनस्सारता को अनुभव कर सके अपपतु अपनेप्रततपक्षी जगत् की असली मयादशा को भी समझ सके। अजुनश की तनरार्ा एक साधारण तनरार् व्यत्तत की क्षणणक मनोवृपत्त निीं िै बत्ल्क एक प्रकार की रूनूयता की संवेदना, एक प्रकार की तनश्चेष्टता िै जो हृदय के अन्दर अनुभव िोनेलगती िै और त्जसके कारण वस्तुओंकी तनःसारता प्रतीत िोने लगती िै। अजुनश आवश्यकता िो तो अपना जीवन भी मयाग देनेके मलए उद्यत िै। वि यि तनश्चय निींकर पा रिा कक उसके मलए तया करना उधचत िै। उसे इस समय एक भयानक प्रलोभन का सामना करना प़ रिा िै और वि एक गिरे मानमसक दुःख के अन्दर से गुजर रिा िै। उसका क्रन्दन सरल ककन्तुबिुत प्रबल िै, जो मनुष्य के ऐसे दुःखामत्त जीवन के समान िै जो वतमशान के वास्तपवक अमभनय के परे देखा जा सकता िै। गीता के पिले अध्याय में वणणतश तनरार्ा, त्जसमें अजुनश डूबा िुआ िै, ऐसी िै त्जसे योगी लोग आममा की अन्धकारपूण शराबत्र किते िैं और जो उच्च जीवन के माग शमें एक अतनवाय शपा़व िै। प्रकार् और ज्ञानग्रिण की आगे की मंत़्लें संवाद में पाई जाती िैं। दूसूरे अध्याय से लेकर आगे तक िमें दार्तशनक पवश्लेषण ममलता िै। मनुष्य के अन्दर जो तात्त्वक अंर् िै वि र्रीर अथवा इत्न्द्रयां निीं अपपतु अपररवतनशर्ील आममा िै। अजुनश के मन को अव एक नव माग शपर चला हदया गया। कुरुक्षेत्र की युद्धभूमम मनुष्य की आममा का उपलक्षण िै और कौरव ऐसे र्त्रुओं के उपलक्षण िैं जो आममा की उन्नतत में बाधक मसद्ध िोतेिैं। अजुनश प्रलोभनों का सामना करते िुए तथा वासनाओं को वर् में रखते िुए मनुष्य के राज्जय को कफर से प्राप्त करने का प्रयमन करता िै। उन्नतत का माग श दुःखों तथा आममोमसग शया सवमशयाग से िोकर गुज़रता िै। अजुनश इस कठोर परीक्षा से सूक्ष्म युत्ततयों तथा बनावटी बिानों के द्वारा बच तनकलने का प्रयमन करता िै। कृष्ण ईश्वर की वाणी का उपलक्षण िै जो अपना सन्देर् पुलककत कर देनेवाले र्ब्दों में दे रिी िै और अजुनश को सावधान कर रिी िै कक वि अपनेमन में तनरार्ा को स्थान न दे। प्रारत्म्भक अध्याय में कृष्ण के मानवीय हृदय के अन्ततनरशीक्षण की मित्ता का पता चलता िै त्जसमें उन्िोंने बताया िै कक ककस प्रकार हृदय के अन्दर प्रेरक भावों का अन्तद्वशन्द्व चलता िै, किां तक स्वाथतशा प्रबल रिती िै और पाप की भावना ककस प्रकार मनुष्य को पथभ्रष्ट िोने की प्रेरणा देती िै। ज्जयों-ज्जयों

संवाद आगे बढ़ता िै, नाटकीय रूप पवलुप्त िो जाता िै। युद्धक्षेत्र की प्रततध्वतन समाप्त िोती िै और ईश्वर तथा मनुष्य के मध्य वातालशाप मात्र रि जाता िै। युद्ध का रथ जैसे ध्यान के मलए एकान्त कोष्ठ बन जाता िै और युद्धक्षेत्र का एक कोना, जिांकक संसार की ध्वतनयां बन्द िो चुकी िोती िैं, सवोपरर सत्ता के पवषय में पवचार करने के मलए एक उपयुतत स्थान बन जाता िै।

मर्क्षक भारत का एक सवपशप्रय देवता िै, जो एक साथ िी मनुष्य भी िै और दैवीय र्त्तत भी िै। वि सौन्दय शतथा प्रेम का देवता िै त्जसको उसके भतत पक्षक्षयों के पंखों पर आरूढ़ करते िैं, फूलों की पंखुड़यों में उसे

[1192] पवमलयम वॉन िम्बोल्ट

देखर्तिं और अपनेसब पप्रय पदाथों में और प्राणणमात्र के अन्दर उसे ढूंढ़ते िैं। कपव पवर्दरूप में कल्पना करता िै कक ककस प्रकार एक अवतार के रूप में ईश्वर अपनेपवषय में कि सकेगा। कपव की योजना को समथनश प्राप्त िै त्जसके अनुसार वि कृष्ण के मुख से यि किलाता िै कक वि ब्रह्म िै। वेदान्तसूत्रों में'[1193] उस वैहदक वातय की व्याख्या की गई िै त्जसमें इन्द्र अपनेको ब्रह्म के नाम से घोपषत करता िै, इस कल्पना के आधार पर कक इन्द्र केवल इस दार्तशनक समय का िी उतत वातय में उल्लेख करता िै कक मनुष्य के अन्दर जो जीवाममा िै वि और सवोपरर ब्रह्म एक िी िै। जब इन्द्र किता िै कक "मेरी पूजा करो" तो उसका तामपय शयि िोता िै कक "उस ईश्वर की पूजा करो त्जसकी में करता िंूं।" इसी के समान मसद्धान्त के आधार पर वामदेव की उस घोषणा की कक वि मनुऔर सूय र्शै, व्याख्या की जाती िै। इसके अततररतत गीता का यि भी उपदेर् िै कक जो मनुष्य वासनाओं तथा भय से मुतत िो गया िै ककंवा ज्ञानरूपी अत्ग्न के द्वारा पपवत्र िो गया िै, वि ईश्वर की अवस्था को प्राप्त कर लेता िै। गीता का कृष्ण ससीम के अन्दर व्यापक असीम या अनन्त का उपलक्षण िै, वि ईश्वर िै जो मनुष्य में र्रीर और इत्न्द्रयों की र्त्ततयों के अन्दर तछपा िुआ िै।

गीता के सन्देर् का क्षेत्र सावभशौम िै। यि प्रचमलत हिन्दूधूम शका दार्तशनक आधार िै। इसका रचतयता गिरी संस्कृतत वाला िै, समालोचक न िोकर सवग्रशिी िै। वि ककसी धाममकश आन्दोलन का नेता निीं ंिै, उसका उपदेर् ककसी सम्प्रदाय पवर्ेष के मलए निीं िै; उसनेअपना कोई सम्प्रदाय स्थापपत निीं ंककया ककन्तु मनुष्य-मात्र के मलए उसका तनहदशष्ट माग शखुला िै। सब प्रकार की उपासना-पद्धततयों के साथ उसकी सिानुभूतत िै, और इसमलए हिन्दूधूम शकी भावना की व्याख्या के काय शके मलए सवथशा उपयुतत िै, तयोंकक हिन्दूधूम शअपनी संस्कृतत को मभन्न-मभन्न पवभागों में पवभतत करने ेकी इच्छा निींरखता और न िी अन्य पवचारों की पवधधयों के प्रतत खण्डनाममक भाव रखना चािता िै।'[1194] गीता केवल अपनेपवचार की प्रबलता तथा दूरूदमर्तशा की भव्यता के िी कारण निीं, अपपतु भत्तत के प्रतत उमसाि तथा धाममकश भावना की मधुरता के कारण भी िमारे ऊपर अपना असर रखती िै। यद्यपप गीता ने धाममकश पूजूा को पवकमसत करनेऔर अमानुपषक प्रकक्रयाओंका मूलोच्छेदन करने ेके मलए बिुत कुछ ककया, तो भी अपनी खण्डन-पवरोधी प्रवृपृत्त hat Phi कारण इसनेपूजा की ममथ्यापवधधयों को सवथशा नष्ट निीं ंककया।

गीता की उपदेर्ैली कट्टरता को मलए िुए िै, और इसके रचतयता को लेर्मात्र भी इस पवषय में सन्दिे निीं ंिै कक उससे भूल भी िो सकती िै। वि अपनेअनुभव के पवल्कुल अनुरूप समय का प्रकार् करता िै, और वि उस समय का दर्नश समय के पूणरूशप में और अनेकांगरूपंमें करता िुआ प्रतीत िोता िै, और समय की रक्षणर्त्त में भी वि पवश्वास करता िै। "गीता का सन्त (कृष्ण) अपनेज्ञान तथा मनोभावों को, पूणतशा तथा उमसाि के साथ, कथन करता िै-एक ऐसे दार्तशनक के रूप में निींजो ककसी सम्प्रदाय पवर्ेष में पले िोने ेके कारण अपनी सामग्री को पूवूस्शथापपत पवधध की अनुकूलता प्राप्त करने ेके मलए तदनुसार पवभतत करता िै और अपने

1193 1/1.30।

1194 भगवद्गीता 3: 29 ।

मसद्धान्त के अल्न्तम तनष्कष शपर एक क्रमबद्ध पवचारों की कसौटी के द्वारा पिुंचता ि ै।"[1195] गीता की त्स्थतत एक दार्तशनक पद्धतत और काव्यमय उच्च प्ेरेरणा के मध्य में ि ै। िमें इसमें उपतनषदों की सी मयादशारहित सुझाव की त्तत निीं ंममलती तयोंकक यि जीवन की समस्या का यमनपूवकश ककयाा गया एक बौद्धधक समाधान ि।ै इसकी योजना अन्तःकरण के तलेर्ों और मानमसक अव्यवस्था से उमपन्न िुई जहटल पररत्स्थतत का सामना करने ेके पवचार से की गई ि ै।

गीता तथा उपतनषद् का भाव प्रायः समान ि;ै अन्तर केवल यि ि ै कक गीता में धाममकश पक्ष पर अधधक बल हदया गया ि ै। उपतनषदों के सूक्ष्म अमूतभशाव मनुष्य की आममा की जो नानापवध आवश्यकताएं ि ैं उनकी पूतत शनिींकर सकतेथे। जीवन के रिस्यों का समाधान करने ेके मलए ककए गए अन्य प्रयमन अपनी रचना में अधधकतर ईश्वरज्ञानपरक थे। गीता के रचपवता ने यि अनुभव ककया कक जनसाधारण में तकश के प्रतत प्ेरेम उमपन्न निीं ककया जा सकता। इसमलए उसनेअपना आधार उपतनषदों को बनाया और उनके धाममकश संकेतों को लेकर तथा उनमें प्रचमलत पौराणणक गाथाओं ककंवा राष्रीय कल्पनार्त्त का समावेर् करके एक इस प्रकार का ममश्रण तैयार ककया कक एक चेतनापूण शपद्धतत बनकर तैयार िो गई। यिी गीता का स्वरूप ि ै।

2. गीता का काल

भगवद्गीता की रचना के समय का तनणयश सरलतापूवकश निीं ंिो सकता। चूंकक यि मिाभारत का एक भाग ि ै, इसमलए कभी-कभी यि सन्देि ककया जाता ि ै कक पीछे चलकर इसे मिाभारत में ममला हदया गया ि ै। टालब्चाएज व्ीलिर के अनुसार कृष्ण और अजुनश युद्ध के पिले िी हदन प्रातःकाल, जबकक दोनों पक्षों की सेनाएं युद्ध के मलए मैदान में उतर आई िों और लड़ाई तछड़ने को िी िो, ऐसी पररत्स्थतत में, एक ऐसे लम्बे और दार्तशनक संवाद में लग जाएं त्जसमें आममा की मुत्तत के तनममत्त पवधान की गई भत्तत की नाना पवधधयों का तनणयश ककया जाए, अस्वाभापवक प्रतीत िोता ि ै। तेलंग भी पवर्ेरषेकर इसी तनणयश के साथ सिमत िोतेिुए तकश करते ि ैं कक भगवद्गीता एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ि ै, त्जसे मिाभारत के ग्रन्थकार ने अपनेप्रयोजन को मसद्ध करने के मलए मिाभारत में प्रपवष्ट कर मलया ि ै।'[1196] यद्यपप दार्तशनक वाद-पववाद युद्ध के आरम्भ में 'असम्बद्ध और असंगत' प्रतीत िोता ि ै, तो भी इस पवषय में भी कोई सन्देि निींि ैकक केवल अमयन्त भीषण संकटकाल िी, जैसेकक युद्धक्षेत्र, पववेकर्ील व्यत्ततयों के मन में आधारभूत मूल्यों पर ध्यान देनेके मलए उत्ेतेजना पैदा कर सकता ि ै। केवल ऐसे िी समय में धाममकश वृपृत्त वाले मनों के अन्दर इस प्रकार का णखंचाव उमपन्न िोता ि ै जो इत्न्द्रयों की मयादशाओं को तोड़कर आंतररक यथाथसशत्ता का स्पर् शकरा सके। यि सम्भव ि ै कक अजुनश को युद्ध के क्षेत्र में अपने ममत्र कृष्ण से पवर्ेरषे उपदेर् या तनदेर् िी ममला िो और मिाभारत के कपव ने उसे सात सौ श्लोकों का जामा पिना हदया िो। मिाभारत का रचतयता धम शके मसद्धान्तों को पररष्कृत करने के मलए आतुर था-जब कभी भी उसे इसके मलए उधचत अवसर ममल जाए, और गीता में उसे ऐसा िी अवसर ममल गया।

1195 'इत्ण्डयनऐत्ण्टकरी', 1918, पृष्ठ 3, गाब्स शइंरोडतर्न टु द भगवद्गीता।

1196 'सेके्रेड बुतस आफ द ईस्ट', खण्ड 8, इण्रोडतर्न, पृष्ठ 5-6।

मिाभारत में स्थान-स्थान पर भगवद्गीता का उल्लेख िै त्जससे यि स्पष्ट संकेत ममलता िै कक मिाभारत के तनमाणशकाल से िी गीता को उसका एक वास्तपवक भाग माना जाता रिा िै।1197 गीता और मिाभारत में रै्ली की जो समानताएं िैं वे भी यिी तनदेर् करती िैं कक ये दोनों ग्रन्थ एक िी सम्पूण शइकाई िैं।'1198 अन्यान्य दर्नशपद्धततयों एवं ंधमों के पवषय में भी दोनों की सिमतत िै। दोनों िी कम शको अकम शसे उमकृष्ट मानते िैं।'1199 वैहदक यज्ञों के प्रतत पवचार1200, सृतृष्ट की व्यवस्था-सम्बन्धी स्थापनाएं1201, गुण-सम्बन्धी सांख्य की कल्पना1202, तथा पतञ्जमल के योग के सम्बन्ध में'1203, तथा पवश्वरूप'1204 के वणनश में भी उतत दोनों न्यूनाधधक रूप में लगभग समान िी िैं। िम यि भी निींकि सकतेकक समन्वयपरक मसद्धान्तों गीता की िी अपनी पवर्ेषेता िै।

भगवद्डगीता को मिाभारत का वास्तपवक भाग मान लेने ेपर भी िम भगवद्डगीता के काल का ठीकठीक तनणयश निींकर सकते, तयोंकक इसमें मभन्न-मभन्न काली की कृततयों का भी समावेर् िो गया िै। तेलंग भगवद्गीता की अपनी पवद्वत्तापूण शप्रस्तावना में इसके सामान्य रूप. इसका पुरानी रै्ली और इसकी छन्दोबद्धता के पवषय में प्रततपादन करते िैं और इसके अन्तगतश उद्धरणों पर भी प्रकार् डालतेिुए अपना पवचार प्रकट करते िैं कक उतत ग्रन्य अवश्य िी ईसापूव शतीसरी र्ताब्दी से अधधक प्राचीन िोना चाहिए। सर आर० जी० भण्डारकर का पवचार िै कक गीता कम से कम चौथी र्ताब्दी ईसापूव शकी तो िै िी। गावं प्रारत्म्भक गीता को दो सौ वष शईसापूव शऔर इसके वतमशान आकार को दो सौ वष शईसा के पश्चात् ्का बतलाता िै। र्ंकर ने (नवीं र्ताब्दी ईसा के पश्चात्)् इसके ऊपर टीका की िै, और कामलदास को भी इसका ज्ञान था। उसके 'रघुवंर्' में'1205 गीता के श्लोक के समान एक श्लोक ममलता िै, वाणभट्ट नेभी गीता का उल्लेख ककया िै और दोनों कपव क्रमर्: पांचवीं और सातवींर्ताब्दी ईसा के पश्चात् ्िुए। पुराणों में (त्जनका समय दूसूरी र्ताब्दी ईसा के पश्चात् ्िै) भगवद्गीता की िी रै्ली पर तनममतश कई गीताएं पाई जाती िैं। भास कपव के 'कणभशार' में एक वातय आता िै जो गीता के एक श्लोक की एकदम प्रततध्वतन िै।1206 भास कपव को किीं ंदूसूरी अथवा चौथी र्ताब्दी ईसा के पश्चात् ्का और किीं दूसूरी र्ताब्दी ईसा से पूव शका बताया गया िै। पिले मत को स्वीकार करने ेपर भी गीता को उससे प्राचीन िोना चाहिए। बोधायन के गृह्यसूत्रों में वासुदेव की पूजा का पररचय ममलता िै। इसमें एक वातय आता िै जो भगवान का किा गया बताया जाता िै और जो भगवद्गीता का िी उद्धरण प्रतीत िोता

1197 आहदपव,श 2,69;1,179 1 2,247।

1198 ततलक : 'गीतारिस्य', पररमर्ष; 'सक्रेेंड बुतस आफ द ईस्ट', खण्ड 8, भूममका।

1199 भगवद्गीता, अध्याय 3; वनपव,श अध्याय 32।

1200 र्ात्न्तपव,श 267; देणखए मनु० भी, अध्याय 3।

1201 भगवद्गीता, अध्याय 7 और 8; र्ात्न्तपव,श 231।

1202 भगवद्गीता, 14 और 15 अश्वमेधपव,श 36-39 र्ात्न्तपव,श 285 और 300-311 ।

1203 भगवद्डगीता, अध्याय 6, र्ात्न्तपव,श 239 और 300।

1204 उद्योगपव,श 170, अश्वमेधपव,श 55, र्ात्न्तपव,श 339, और वनपव,श 99।

1205 10, 31. तुलना कीत्जए भगवद्गीता, 3, 22।

1206 "िातोऽपप लभते ेस्वग शत्जमवा तु लभते ेयर्:।" तुलना कीत्जए भगवद्डगीता, 2: 37।

भारतीय दर्नश -1 445 िै।1207 यिी बात उसके पपतृमेधसूत्रों के पवषय में भी समय िै। यहद आपस्तम्ब गिृसूत्र को तीसरी र्ताब्दी ईसापूव'श1208 का माना जाए, तब बोधायन एक या दो र्ताब्दी पूव शिोना चाहिए। मेरा पवश्वास िै कक यहद िम गीता को पांचवी र्ताब्दी ईसा से पूव[1]श209 का मान लें तो िमारा मत कुछ अधधक अनुधचत न िोगा।

3. अन्य पद्धततयों के साथ सम्बन्ध

उस युग में त्जतने ेभी मत प्रचमलत थे,े लगभग सभी ने गीता के रचतयता के मन पर प्रभाव डाला था, तयोंकक उसनेइस पवषय में समस्त संसार में त्जतना भी धाममकश प्रकार् बबना ककसी तनत्श्चत योजना के डाला गया था उसे एकत्र और केन्द्रीभूत कर हदया। िमारे मलए यि आवश्यक िै कक वेदों, उपतनषदों, बौद्धधम,श भागवमधम शऔर सांख्य तथा योगदर्नश इन सबका गीता के साथ िीकि–ीक सम्बन्ध कैसे िै, इस पर लक्ष्य करें।

गीता वेदों की प्रामाणणकता को सवथशा मयाज्जय निीं ंबताती। इसकी र्दत्ष्ट में वैहदक आदेर् एक पवर्ेष सांस्कृततक मयादशा के मनुष्यों के मलए सवथशा उपुयतत िै। गीता के अनुसार, वेदों के आदेर्ों का पालन ककए धचना मनुष्य पूणतशा प्राप्त निीं ंकर सकता। यज्ञाममक कम शबबना ककसी पुरस्कार की आकांक्षा के मलए जाने चाहिए।'[1210] एक पवर्ेष अवस्था के बाद वैहदक कक्रया-कलापों का करना पूणतशा प्रात्प्त के माग शमें बाधा भी उपत्स्थत कर सकता िै। वैहदक देवताओं के उच्च स्वरूप को मान्यता निीं ंदी गई। यद्यपप वैहदक कमकशाण्ड िमें र्त्तत तथा धन-सम्पपत्त प्राप्त कर सकतिैं, लेककन िमें सीधा मोक्ष निीं ंप्राप्त करा सकते। आममज्ञान से िी मोक्ष प्राप्त िो सकता िै। जब मोक्ष का रिस्य िमारे अपनेअन्दर पवद्यमान िै, तब वैहदक कमकशाण्ड का प्रततपालन करने ेकी आवश्यकता निीं ंिै।1211

गीता की दार्तशनक पृष्ठभूमम उपतनषदों से ली गई िै। ककतने िी श्लोक गीता और उपतनषदों में समानरूप से पाए जाते िैं।'[1212] क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, क्षर और अक्षर पवषयक पववेचन उपतनषदों के आधार पर िैं। सवोपरर यथाथसशत्ता की व्याख्या भी इसी उमस से ली गई िै। भत्तत का मसद्धान्त उपतनषदों की उपासना का िी सीधा पवकास िै। सवोपररसत्ता के प्रतत प्रेम करने ेका तामपय शिै अन्य सब प्रकार के प्रेमों से िाथ खींच लेना। "जब िमें इस संसार में रिकर इस सत् ्स्वरूप का साक्षामकार िो गया तो िमें सन्तान का तया करना िै?"[1213] सवोपररसत्ता के प्रतत भत्तत, आममा की पवजय तथा र्ात्न्त और अनुद्वेग की अवस्था की प्रात्प्त उस काल के

1207 2. 22, 9 तुलना कीत्जए भगवद्गीता, 9: 26।

1208 'सेक्रेड बुतस आफ द ईस्ट, खण्ड 2, भूममका, पृष्ठ 43; तुलना कीत्जए, खण्ड 14, पृष्ठ 43।

1209 यहद धमसूशतूरों के अन्तगतश उद्धरणों को प्रक्षक्षप्त मान लें तो गीता को तीसरी अथवा दूसूरी र्ताब्दी ईसापूव शका माना जा सकता िै।

1210 17/12

1211 2/42 - 45; 9/20 - 21

1212 भगवद्गीता, 2/29 और कि उप०, 2/7 भगवद्गीता, 2/20; 8/11 और कि उप०, 2: 19; 2/15 : भगवद्गीता, 3/42 , और कि उप०, 3: 10; भगवद्गीता, 6: 11, और श्वेताश्वतर उप०, 2/10 भगवद्गीता, 6/13 और श्वेताश्वतर उप०, 2/8

1213 बृिदारण्यक उप०, 4/4 22।

वातावरण में व्याप्त थे। उपतनषदों में भी तनष्काम कम शका समथनश ककया गया ि ै।1214 उपतनषदों में भी यिी प्रततपादन ककया गया ि ै कक मन की उच्च अवस्था से िी 'अनासत्तत' का भाव उमपन्न िोता ि ै।1215 उपतनषदों की मर्क्षाओंकी कक्रयाममक तथा धाममकश प्रवृपृत्तयां ंइतनी अधधक पवकमसत और पररष्कृत ि ैं तो भी प्राचीन पवचारकों की मर्क्षाओं से आगे निीं बढ़ सकीं। संसार की भावर्नूय एवं ंतनदोष पूणतशा तन:सन्दिे एक बहढ़या व्याख्या थी, ककन्तु ुयि जीवन को बदल देनेवाली र्तत के अनुकूल न थी। भागवतधम शके प्रचार ने गीता के रचतयता का झुकाव उपतनषद् प्रततपाहदत परब्रह्म को एक पवर्ेषे प्रकार की दीत्प्त तथा अन्त:प्रवेर् करने ेवाली र्तत के साथ संयुतत करने ेकी ओर ककया। गीता के रचतयता ने इसे र्रीरधारी ईश्वर का रूप हदया, त्जसे मभन्न-मभन्न नाम (यथा मर्व, पवष्णु आहद) हदए गए थे। ककन्तुसाथ-साथ वि यि भी जानता था कक वि एक मृतप्राय भूतकाल में कफर से जीवन डाल रिा ि ै, ककसी नई कल्पना को जन्म निीं ंदे रिा ि ै। "इस अक्षय योग की मनैं े पववस्वत् ्को मर्क्षा दी, और उसनेइसे मनु को मसखाया, मनु नेइक्ष्वाकु को मसखाया।" और इस रिस्य का प्रकार् अब कृष्ण ने अजुनश के सामने ककया ।1216 यि वातय संकेत करता ि ै कक गीता का सन्देर् एक प्राचीन-ज्ञान था त्जसकी मर्क्षा गायत्री के ऋपष पवश्वाममत्र ने दी और ऋग्वेद के तीसरे मण्डल के ऋपष ने एवं राम, कृष्ण, गौतमबुद्ध तथा सूयवंशर् के अन्यान्य मर्क्षकों ने भी दी। गीता का पूरा नाम, जैसाकक प्रमयेक अध्याय की पुत्ष्पका से प्रकट ि ै, भगवाद्डगीता नामक उपतनषद् ि ै। गीता और उपतनषद् के पारस्पररक सम्बन्ध का परम्परागत पववरण उस वातय में ि ै जो अमयन्त प्रचमलत ि ै कक "सव उपतनषदें गौएं ि ैं, कृष्ण दूध दुिने ेवाला ि ै, अजुनश बछ़ ेकी जगि ि ै और गीता अमृत के समान दूध ि ै।"

भगवद्डगीता के सश्लेषण में भागवतधम शसे तमकाल पे्ररेणा ममली। वस्तुत: यिी किा जाता ि ै कक गीता का उपदेर् भागवतों के मसद्धान्त के साथ बबल्कुल समानता रखता ि ै। इसे कभी-कभी िररगीता भी किा जाता ि ै।[1217]

बौद्धधम शका नाम निीं ंमलया जाता, यद्यपप गीता के ककतने िी पवचार बौद्धधम शके मत के सर्दर् ि ैं। दोनों िी वेदों के स्वत: प्रमाण िोने ेका पवरोध करते ि ैं और वण शके किोर बन्धनों को न्यूनतम स्थायी आधार पर रखकर मर्धथल करने ेका प्रयमन करते ि ैं। दोनों िी उसी एक धाममकश उथल-पुथल को अमभव्यतत करते ि ैं त्जसने कमकशाण्डप्रधान धम शको हिलाकर रख हदया, यद्यपप गीता अधधक कट्टर थी और इसीमलए उसका पवरोध भी उतना सवागांरूप में निीं ंथा। बुद्ध ने स्वणणमश मध्यमाग शकी घोषणा की यद्यपप उनका अपना उपदेर् उनके सवधशा अनुकूल निीं ंथा। पववाहित जीवन की अपेक्षा ब्रह्मचय शको पसन्द करना, दावतों की अपेक्षा उपवास को अधधक मान्यता देना, स्वणणमश मध्यमाग शका कक्रयाममक रूप निीं। गीता वनवासी तपत्स्वयों के धाममकश उन्माद का प्रततवाद करती ि ै और ऐसे सन्तों की धाममकश आममिमया का भी प्रततवाद करती ि ै जो हदन के प्रकार् की अपेक्षा अन्धकार को तथा सुख की अपेक्षा कष्ट को उत्तम समझते ि ैं। मोक्ष की प्रात्प्त दैन्यड एवं ममृयुका

1214 ईर्उपतनषद्।

1215 छान्दोग्य उप० ,4/14 ; बृिदा० ,4/4 23।

1216 4/1 - 3

1217 र्ात्न्तपवश,349,10।

प्रचार करनेवाले धाममकश सम्प्रदाय का अनुसरण ककए बबना सम्भव ि 'तनवाणश' ब्दं गीता में[1218] आता ि,ै ककन्तु ुयि बौद्धधम शसे नकल ककया गया िो ऐसा निीं ंहदखाई देता ि,ै तयोंकक यि गीता के मलए कोई पवर्ेषता निीं ंरखता। आदर् शव्यत्तत के लक्षण प्रकट करने ेमें गीता और बौद्धधम शएकमत िैं।'[1219] दर्नश तथा धम शदोनों र्दत्ष्टयों से गीता बौद्धधम शकी अपेक्षा अधधक पररपूण शिै, तयोंकक बौद्धधम शतनषेधाममक पक्ष पर आवश्यकता से किीं ंअधधक बल देता ि।ै गीता जिां ंएक ओर बौद्धधम शके नैततक मसद्धान्तों को स्वीकार करती ि विांदूसूरी ओर बौद्धधम शके तनषेधाममक अध्याममर्ास्त्र को संकेतों द्वारा दूपूषत भी ििराती ि,ै तयोंकक गीता की सम्मतत में यिी सव प्रकार की नात्स्तकता एवं ंभ्रात्न्त की ज़ ि।ै गीता का सम्बन्ध प्राचीन परम्परा के अधधक अनुकूल िै और इसीमलए भारत में गीताधम शबौद्धधम शकी अपेक्षा अधधक सफल व भाग्यर्ाली रिा।

गाब शके अनुसार, "सांख्य-योगदर्नश की मर्क्षाएं िी लगभग पूणरूशप से भगवद्गीता के दार्तशनक पवचारों का आधार िैं। उनकी तुलना में वेदान्त का स्थान दूसूरा आता ि।ै सांख्य और योग के नाम का उल्लेख तो प्रायः िी पाया जाता ि ककन्तु वेदान्त का नाम केवल एक िी स्थान पर आया ि (वेदान्तकृत, 15: 15), और वि भी उपतनषद् अथवा ग्रन्थ के अयों में। इस प्रकार जब िम केवल इस पवषय पर पवचार करते िैं कक दर्नशर्ास्त्रों का भाग उस गीता में ककस अंर् तक ि जो आज िमें उपलब्ध ि,ै और जब िम ऐसे मतभेदों पर ध्यान देते िैं जो सांख्य-योग तथा वेदान्तर्ास्त्र के अन्दर िैं, और त्जनका परस्पर समन्वय िो सकना कहिन ि और जो मतभेद सम्भवतः दूरू तभी िो सकतेिैं जबकक िम सावधानी के साथ प्राचीन तथा अवांचीन में भेद कर सकें, तो िम इसी पररणाम पर पिुंचेगे कक भगवद्डगीता के वेदान्त-सम्वन्धी अंर् उतत ग्रन्थ के आहदम संस्करण के निीं ंमसद्ध िोते। जब भी िम भगवद्डगीता का अनुसंधान धाममकश और दार्तशनक ककसी भी पक्ष को लेकर करेंगे, िम पिुंचेगे इसी पररणाम पर। गीता में सांख्य-योग ब्द जिां ंभी आते िैं विां सांख्य और योग के र्ास्त्रीय सम्प्रदायों से अमभप्राय न िोकर केवल मोक्षसाधन की धचन्तन तथा ध्यान सम्बन्धी उनकी पद्धततयों से अमभप्राय िै।"[1220] इसके अततररतत गीता के समय में एक ओर सांख्य-योग और दूसूरी ओर वेदान्त इनमें कोई ऐसा स्पष्ट पारस्पररक भेद निीं ंथा। इसी पवचार को लेकर गाव शकी व्याख्या युत्ततयुतत ििर सकती ि।ै कफट्ज एडवड शिाल का कथन इस पवषय में अधधक यथाथ शजंचता ि।ै वि किता ि: "उपतनषदों, भगवद्डगीता तथा अन्य प्राचीन हिन्दूर्ास्त्रों में िमें ऐसे अनेक मसद्धान्त ममधश्रतरूप में ममल सकते िैं, जो नाना पररवतनशों में से गुर्कर-त्जन पररवतनशों के कारण वे ेपृथृक् पृथृक् अपने-आपमें ऐसे पूणूरूशप में आ गए कक उनका कफर परस्पर समन्वय न िो सका आगे चलकर ककसी अतनत्श्चत काल में परस्पर अलग-अलग सांख्य और वेदान्त के मभन्न-मभन्न नामों से पिचान में आने ेलगे।"[1221] सांख्य का मनोपवज्ञान तथा सृतूष्टक्रम गीता ने स्वीकार ककया ि यद्यपप उसके

1218 6/15।

1219 2:55-72,4:16-23,5 18-28; 12/13 - 16 तुलना कीत्जए धम्मपद, 360-423, सुतुततनपात, मुतनसुतुत, 1: 7 और 14।

1220 भगवद्डगीता, 2/39 3/3 :4-5; 13: 24 जिोरिवें अध्याय में सांख्यदर्नश का उल्लेख ि।ै गाध्वाचाय शने व्यासस्मृतृत से एक श्लोक उद्धृतृ ककया ि त्जसमें सांख्य का अथ शआममा का ज्ञान अथवा आममतत्त्वपवज्ञान वत्तायी गयी ि।ै देणखए भगवद्डगीता पर उनकी टीका, 2:40।

1221 'पप्रफेस टु सांख्यसार', पृष्ठ 7 ।

अध्याममर्ास्त्र- सम्बन्धी संकेतों को अमान्य ि◌राया ि◌ै।1222 कपपल के नाम का तो उल्लेख ि◌ै यद्यपप पतञ्जमल के नाम का निीं ◌ंि◌ै। ि◌म तनश्चयपूवकश यि निीं ◌ंकि सकते कक यि कपपल सांख्यदर्नश का कताश कपपल िी ि◌ै। यहद वि◌ी कपपल ि◌ो तो भी इससे ◌ेयि पररणाम निीं ◌ंतनकाला जा सकता कक सांख्ंयर्ास्त्र अपनी सवागश-सम्पूण शअवस्था में उस समय तक पिुंच चुका था। बुद्धध, अिंकार एवंमन आहद पाररभापषक ब्दों का प्रयोग ममलता ि◌ै। यद्यपप सब स्थानों पर उन अथों में निीं ◌ंत्जनमें सांख्य में ये पाररभापषक ब्द प्रयुतत ि◌ुए ि◌ैं। प्रकृतत के पवषय में भी यिी बात समय ि◌ै।'[1223] जिां ◌ंसांख्ंय एक ओर ईश्वर की सत्ता के प्रश्न को छूता तक निीं,◌ं विां ◌ंगीता उसकी स्थापना के मलए अमयन्त आतुर प्रतीत ि◌ोती ि◌ै।

यद्यपप पुरुष और प्रकृतत के बीच का भेद उसे मान्य ि◌ै तो भी द्वैत को अमान्य ि◌िराया गया ि◌ै। पुरुप एक स्वतन्त्र तत्त्व निीं ◌ंअपपतुप्रकृतत अथवा ईश्वर का ि◌ी एक रूप ि◌ै। आत्ममक प्रज्ञा उन्नतरूप ि◌ै। जब ि◌म सांख्यदर्नश के पवषय को लेंगे तब देखेंगे कक वि ककस प्रकार से प्रकृतत की सब अवस्थाओं को एक प्रतीतत के रूप में मानता ि◌ै जो एक तनमयस्थायी पवषयी की ओर संकेत करती ि◌ै अथवा उसके उपलक्षण मात्र ि◌ै त्जसे कक यि प्रतीतत ि◌ोती ि◌ै और त्जसके प्रयोजन के मलए ि◌ी इनका अत्स्तमव ि◌ै। यद्यपप प्रकृतत चेतनारहित ि◌ै ककन्तु इसके काय शतनष्प्रयोजन निीं ◌ंि◌ैं, और जीवाममा को मोक्ष प्राप्त कराना ि◌ी इन कायों का प्रयोजन ि◌ै । इसका ि◌ेतुवादपरक स्वभाव इसकी तथाकधथत जड़ता के साथ अनुकूलता निींरख सकता। गीता में इस कहिनाई का समाधान तनकाला गया ि◌ै। इस प्रकृततरूप नाटक की

पृष्ठिूभूमम में एक धाममकश परब्रह्म-सम्बन्धी तथ्य पवद्यमान ि◌ै। पुरुष और आममा एक स्वतन्त्र यथाथसशत्ता निीं ि◌ैं, जैसाकक सांख्यदर्नश में ि◌ै। इसका स्वरूप केवले ज्ञानस्वरूप ि◌ी निीं, ककन्तु आनन्दस्वरूप भी ि◌ै। जीवाममाओं का परमरूप में पृथृतय गीता को अमभमत निींि◌ै।'[1224] यि एक उत्तमपुरुष या पुरुषोत्तम अथवा सवोपरर आममा के अत्स्तमव में पवश्वास करती ि◌ै। तो भी जीवाममा का स्वरूप और उसका प्रकृतत के साथ सम्वन्ध, जैसा कक भगवद्‌गीता में हदया गया ि◌ै , सांख्यदर्नश के प्रभाव को दर्ातशा ि◌ै ।1225 पुरुष केवल दर्कश या साक्षी ि◌ै ककन्तुकताश

निीं ◌ंि◌ै। प्रकृतत ि◌ी सब कुछ करती ि◌ै। जो यि सोचता ि◌ै कक 'म ◌ैंकरता ि◌ंूं◌ू' वि भ्रम में ि◌ै। पुरुष और प्रकृतत अथवा

आममा तथा प्रकृतत के परस्पर पाथतशय को अनुभव कर लेना मनुष्यजन्म का लक्ष्य ि◌ै। गुणों का मसद्धान्त स्वीकार ककया गया ि◌ै। "देवताओं के अन्दर भी इस पृथ्वी पर अथवा स्वग शमें ऐसा कोई निीं ◌ंि◌ै जो प्रकृतत के तीन गुणों, अथात्श ◌्सत्,◌् रजस् ◌्और तमस्,◌् से स्वतन्त्रे ि◌ो।"[1226] वे गुण एक बत्रगुणाममक बन्धन ि◌ै। और जब तक मि इनके अधीन रिेंगे, ि◌में जन्म-जन्मांतर के चक्र में तनरन्तर भ्रमण करते रिना प़गो। मोक्ष तीनों गुणों से

1222 2/11 - 16 * 18 - 30/27 - 29;5/14, 7/4; 13/5।

1223 3/35 4/6 : 7:4;9:8; 11:51:13:20:18:59।

1224 .7:4. 13: 20-22, औरभीदेणखएवेदान्तसूत्र ्, 2, 1, 1, और उन पर र्ाकरे भाष्य।

1225 सांख्यकाररका , 62, भगवद्‌गीता, 13 34।

1226 18:40, 14-5।

 छुटकारा पाने का नाम ि ै। आभ्यन्तर अंगों एवं ंइत्न्द्रयों की भौततक रचना का वणनश इसमें सांख्य के समान िी पाया जाता ि ै।'[1227]

गीता यौधगक प्रकक्रयाओंका भी उल्लेख करती ि ै। जब अजुनश कृष्ण से पूछता ि ै कक ककस प्रकार से उस मन को जो तनश्चय िी ऊधमी और चंचल ि ै, वर् में ककया जा सकता ि ै, तो कृष्ण उत्तर में किते ि ैं कक अभ्यास और वैराग्य अथात्श ्सांसाररक पदाथों के प्रतत उपेक्षाभाव, का आश्रय लेना चाहिए।'[1228]

4. गीता का उपदेर्

गीता के रचनाकाल में परमसत्ता की यथाथतशा तथा मनुष्य की तनयतत के पवषय में नाना प्रकार के मत फैले िुए थे। एक ओर उपतनषदों की परम्परा थी त्जसका आधार आममा की अन्तर्दत्शष्ट था, दूसूरी ओर सांख्य का मसद्धान्त था त्जसके अनुसार प्रकृतत के साथ सम्बन्ध- पवच्छेद करके मोक्ष प्राप्त ककया जा सकता था; कममशीमांसा का मत था कक िम अपनेकतव्शयों का पालन करके पूणतशा को प्राप्त कर सकतिें, भत्ततवाद भी था त्जसके अनुसार हृदय की उन्नतत के द्वारा िी मोक्ष का आनन्द प्राप्त ककया जा सकता ि ै, और दूसूरी ओर, योगदर्नश के अनुसार, मनुष्य को उसी समय मोक्ष प्राप्त िोता ि ै जबकक जीवाममा का र्ान्त जीवन संसार के नानापवध प्रकार् का स्थान ले लेता ि ै। सवोपरर आममा को या तो अर्रीरी परमसत्ता और या र्रीरधारी भगवान समझा गया ि ै। गीता का प्रयास यि ि ै कक परस्पर-पवरोधी एवं ंपवपमाङ्ग तत्त्वों का संश्लेषणाममक समन्वय करके उनका एक पूणरूशप में एकत्रीकरण ककया जाए। यिी कारण ि ै कक िमें इसके अन्दर प्रकटरूप में मोक्ष के उद्देश्य तथा उसकी साधना के उपायों के पवषय में परस्पर पवरोधी मत ममलतिें। यि देखकर गीता मसद्धान्तों का संगततपूण शग्रन्थ निीं ंि ै, पवमभन्न लेखकों ने पवमभन्न प्रकार से इस असंगतत की व्याख्या की ि ै। गाब शतथा ीपिककंस की धारणा ि ै कक मभन्न-मभन्न काल में अनेक लेखकों नेइस पर काय शककया ि ै। गाब शके मतानुसार, आहदम गीता ईसापूव शदूसूरी र्ताब्दी में एक आहदकवर काय शलघुपुत्स्तका के रूप में मलखी गई और उसका आधार सांख्ययोग था, भले िी ईसा के पश्चात् ्दूसूरी र्ताब्दी में उपतनषदों के एकेश्वरवादी समथकशों ने इसमें रूपान्तर ककया। ये दो मसद्धान्त अथात्श ्आत्स्तकवाद या ईश्वरज्ञानवाद तथा सवेश्ेवरवाद एक-दूसूरे के साथ ममले िुए ि ैं। ये कभी सवथशा असम्बद्ध रूप में और कभी मर्थल सम्बन्ध में ममलतिें। और यि भी बात निीं ंि ै कक इनमें से एक को तो तनम्न श्ेरेणी का, सामान्य बोधगम्य अथवा सवसशाधारण व्यत्ततयों के मलए समझा जाए, तथा दूसूरे को उच्च श्ेरेणी का केवल दीक्षक्षत व्यत्ततयों के मलए माना जाए। ऐसी मर्क्षा किीं ंनिीं ंपायी जाती कक ईश्वरज्ञानवाद यथाथसशत्ता के ज्ञानप्रात्प्त में एक प्रकार का प्रारत्म्भक पग मात्र ि ै अथवा केवल उतत सत्ता का प्रतीक- स्वरूप ि ै, और वेदान्त का सवेश्वरवाद स्वयंपरम यथाथतशा ि ै। इस प्रकार दोनों िी मसद्धान्तों का इस तरि से बराबर तनरूपण ककया गया ि ै मानो उसमें मौणखक अथवा वास्तपवक ककसी प्रकार का भी परस्पर-भेद

1227 :40-42; 13:5।

1228 देणखए भगवद्गीता, 6 33-34 र्ंकर को न्यायदर्नश के पवषय का भी एक उल्लेख अध्याय 10, श्लोक 32 में ममला। देणखए भगवद्गीता पर र्ांकर भाष्य।

 निीं ंिै।"[1229] िोपककंस गीता को वैष्णवकाव्य का कृष्णपरक पववरण बताता िै जोकक स्वयंएक अवाचशीन उपतनषद् िै। कीथ का पवश्वास िै कक यि श्वेताश्वतर की भांतत प्रारम्भ में एक उपतनषद् िी थी ककन्तु आगे चलकर कृष्ण के नाम के धाममकश सम्प्रदाय का मान्य ग्रन्थ बन गई। िोल्ट्ज़मान की दृत्ष्ट में यि एक सवेश्वरवादपरक काव्य का वैष्णवधम शमें पररवततततश रूप िै। बानेट का पवचार िै कक गीता के रचतयता के मन में मभन्न-मभन्न परम्पराओं की धाराएं एक िी स्थान पर आकर अव्यवत्स्थत रूप में समा गई थीं। ड्यूसन के मत में यि उपतनषदों के एकेश्वरवादी पवचार की अवनतरूप उपज थी त्जसका तनमाणश उस समय में िुआ जबकक आत्स्तकवाद से यथाथ शअनीश्वरवाद की ओर संक्रमण िो रिा था।

उतत सब कल्पनाओं में से ककसी एक को िम स्वीकार कर िी लें यि आवश्यक निीं। उपतनषदों के आदर् शका उन नई पररत्स्थततयों में जो मिाभारत के समय में उमपन्न िो गई थीं, उपयोग िी गीता का यथाथरूशप िै। उपतनषदों के आदर्वशाद को आत्स्तकता की ओर प्रवृपृत्त रखनेवाले जनसाधारण के मलए अनुकूल बनानेमें यि उपतनषदों के दार्तशनक ज्ञान से एक धम शका पवधान बनानेका प्रयमन करती िै। यि प्रदमर्तश करती िै कक उपतनषदों के धचन्तनर्ील धाममकश आदर्वशाद के अन्दर र्रीरधारी ईश्वर के प्रतत उमसािपूण,श भत्ततपरक एवं ं जीपवत धम शके मलए स्थान था। उपतनषदों के परब्रह्म को मनुष्य-स्वभाव की धचन्तनाममक तथा भावना-प्रधान मांगों को पूण शकरने ेवाला बताया गया िै। इस प्रकार का पररवतनश कल्पनाममक से कक्रयाममक और दार्तशनक से धाममकश की हदर्ा में अवाचशीन उपतनषदों में भी पाया जाता िै जिां िमें भततों की पुकार पर भगवान प्रकट िोते िुए हदखाई देते िैं। गीता का प्रवल एक ऐसे धाममकश संश्लेषण की ओर िै जो मनुष्यों के जीवन और आचार को, उपतनषदों द्वारा प्रततपाहदत तथ्यों के आधार पर, सिारा दे सके, और त्जसे इसनेभारतीय जनता के नैत्मयक जीवन में प्रपवष्ट कर हदया।

गीता की पवचारधारा की पवमभन्न प्रवृपृत्तयों को एकत्र करके यथाथ शएवं ंपूण शइकाई बनानेमें सफलता प्राप्त िुई या निीं ंइसका उत्तर आगे चलकर िमारे पववेचन में ममल सकेगा। भारतीय परम्परा ने तो सदा िी ऐसा अनुभव ककया िै कक पवरोधी तत्त्व भी इसके अन्दर आकर एकरूप िुए िैं, ककन्तु ुपत्श्चमी पवद्वानों का आग्रिपूवकश किना िै कक उज्जज्जवल अंर्ों ने गीता के ग्रन्थकार के जैसे कुर्ल िाथों में पड़कर भी उसके अन्दर एकीभूत िो जानेसे इन्कार कर हदया। पववेचन के साध्यपक्ष में िी रूहढ़यतत आस्था व्यतत करने ेसे कोई लाभ निीं ंिै।'[1230]

[1229] इत्ण्डयन ऐत्ण्टकरी', हदसम्बर, 1918।

[1230] गीता के ऊपर भारतीय लेखकों की अनेक टीकाएं ममलती िैं, त्जनमें से मुख्य वे िैं, जो वृपृत्तकार, र्ंकर, रामानुज, माध्व, वल्लभ, तनम्बाकश और ज्ञानेश्वर ने मलखी िै। आनन्दधगरर किते िैं कक वृपृत्तकार बोधायन ने, त्जसने वेदान्तसूत्रों पर बृिदाकार टीका मलखी, गीता पर भी वृपृत्त (टीका) मलखी िै (देणखए भगवद्गीता के र्ांकर भाप्य पर आनन्दधगरर, 2:10)। उनके अनुसार, गीता ज्ञान और कम शके संयुतत माग शके अनुसरण का उपेदर् करती िै। उतत दोनों में से कोई भी अकेला मोक्ष की ओर निीं ले जा सकता। र्ंकर का पवश्वास िै कक ज्ञान िी पूणतशा की प्राप्त्त का उच्चतम साधन िै। साथ िी उनका किना िै कक जीवाममा का सवोपरर के साथ एकमव अन्तर्दत्शष्ट के ज्ञान द्वारा िी जाना जा सकता िै। संसार में अनेकता मनुष्य की अपूणतशा के कारण िै। समस्त कम शवन्धन का कारण िै तयोंकक यि द्वैत के ममव्याभाव के ऊपर तनभरश करता िै।

र किा जाप्रासंगि ैत्वककमेंगीता का उपदेर् हदया गया, यि तनदेर् करता िै कक इसका मुख्य प्रयोजन जीवन की समस्या को िल करना और न्यायोधचत आचरण कर प्ररेणा देना था। प्रमयक्षरूप में यि एक नैततक ग्रन्थ िै, एक योगर्ास्त्र िै। गीता का तनमाणश एक नैततक धम शके युग में िुआ था और इसमलए उस युग की भावना में इसनेभी भाग मलया। भले िी गीता में योग र्ब्द का व्यविार ककसी भी प्रकरणानुकूल अथों में तयों न िुआ िो, यि समस्त ग्रन्थ में आहद से अन्त तक अपने कमपशरक तनदेर् को त्स्थर रखता िै।'[1231] योग ईश्वर के सात्न्नध्य में पिुंचने, े एक ऐसी र्त्तत के साथ जो पवश्व का र्ासन करती िै, सम्बन्ध जोने् ेऔर परमसत्ता को स्पर् शकरने का नाम िै। यि न केवल आममा की ककसी पवर्ेष र्त्तत को अपपतु हृदय, मन्न एवं ंइच्छा की समस्त र्त्ततयों को ईश्वर के अधीन कर देना िै। यि मनुष्य का अपने को गम्भीरतम तत्त्व के साथ संयुतत कर देनेका प्रयमन िै। िमें आममा के सम्पूण शसन्तुलन को पररवतततश करके एक तनरपेक्ष तथा र्दढ़ भाव में लानेएवं र्त्तत और सुख के प्रततरोध की र्त्तत को पवकमसत करनेकी आवश्यकता िै। इस प्रकार योग से तामपय शउस अनुर्ासन (अथवा आममतनयन्त्रण) से िै त्जसके द्वारा िम संसार के आघातों को सिन करने ेके मलए अपनेको अभ्यस्त बना सकें और िमारी आममा के मुख्ुय अत्स्तमव पर भी कोई प्रततकूल प्रभाव न प़ सके। योग एक ऐसा

जय समय ज्ञान िमारे द्वैतपरक पवचारों को दूरू कर देता िै तो जीवाममा को त्राण ममल जाता िै और उसके अनन्तर कम शकी कोई आवश्यकता निीं रिती। अन्य सब माग शअथात्श ्कम,श भत्तत तथा योग (आममतनयन्त्रण) केवल ज्ञान की ओर िी ले जाते िैं। (देणखए, भगवद्गीता पर र्ांकर भाष्य, 3: 1) रामानुज जीव अथात्श ्धचत्, ् संसंार अथात्श ्अधचत् ्(ज़) और ईश्वर इन तीन मभन्न-मभन्न सत्ताओंको मानतेिैं और पिले दोनों को ईश्वर के र्रीर के तनमाणशकताशमानते िैं। अध्याममर्ास्त्र में वे इस प्रकार से पररवतततश रूप में एकेश्वरवाद और कक्रयाममक रूप में भत्ततमाग शपर आग्रि करते िैं। संकेत द्वारा वे यि सुझाव देते िैं कक वणधशमो का िमेर्ा पालन करना आवश्यक िै। र्ंकर और रामानुज दोनों िी कम शको कम मित्त्व देतेिैं वधापश उनके पे्ररणोिेतु मभन्न-मभन्न िैं। मध्वाचाय शमाया की कल्पना का खण्डन करते िैं और परब्रह्म तथा जीवाममाओंके अन्दर परस्पर पारमाधथकश भेद को स्वीकार करते िैं। उनके मत में भी इंश्वर की भत्तत िी आनन्द प्राप्त्त के मलए सवशे्रेशष्ि माग शिै। यद्यपप वत्तभाचाय शघोषणा करतेिैं कक ब्रह्म और पपवत्र आममा एक िैं तो उनके मत में जीव ब्रह्म का अंर् मात्र िै। मायारूपी जगत् ्ममथ्या निीं िै तयोंकक माया ईश्वर की िी र्त्तत िै जो उसकी इच्छा से उससे पृथक् िोती िै। ईश्वर की अनुकम्पा िी एकमात्र उपाय िै, त्जसके द्वारा जीवाममा मोक्षलाभ कर सकती िै। तनम्बाकश के अनुसार, जगत् ्और आममाएं ईश्वर के ऊपर तनभरश िैं त्जसके अन्दर वे स्वत्स्थत िैं, यद्यपप सूक्ष्म अवस्था में। उनकी कल्पना को द्वैतवादपरक अद्वैत नाम हदया गया िै। ज्ञानेश्वर के मत में, पतञ्जमल का योग िी गीता के उपदेर् का लक्ष्य िै। जिांयोग्य मत्स्तष्कों के द्वारा गीता के पवषय में इतने सारे मत प्रकट ककए गए िों तो पिाक का काय शसरल निीं रि जाता। इनके सिामसक तथा पांडडमयपूण शपवश्लेषण और समन्वय िमें सवदशा इस पवषय का िीकिीक ज्ञान निीं देते ेकक ककस प्रकार से परस्पर पवरोधी पवचारों को ताककशक र्दत्ष्ट से संयुंतत ककया जा सकता िै। इससेकोई इन्कार निीं कर सकता कक गीता आत्ममक जीवन का पोषण करती िै। जब तक िमारे अन्दर धाममकश भावना रिती िै और िम रूहढ़परक पवचारधारा पर तनभरश रिते िैं तब तक भावुकतापूण शएक अपूण शज्ञान अथवा बोध की अवस्था ऐसी िै जो कल्पना का पवषय बनती िै और िमारी प्रकृतत को ऊपर उिाती िै। ककन्तु समालोचनाममक बुद्धध को इसके ऊपर सावधानी के साथ काय शकरना िोता िै इससे पूव शकक यि उसमें से कोई संगततपूण शपद्धतत का पवकास कर सके।

1231 योग कक्रयाममक अभ्यास िै और सांख्य अथवा ज्ञान से मभन्न िै। देणखए, श्वेताश्वतर उपतनषद्,

'सांख्ययोगाहदगम्ययु:, ज्ञान तथा अध्यास के द्वारा जानने योग्य। योग का अथ शकम शभी िै। देणखए गीता, 3.7,5 1,2929.13 24) भगवान के योग को उसकी अद्‌भुत र्त्तत किा गया िै। देणखए, 9:5, 10, 7, 11 8। जो पदाथ शिमारे पास निीं िै उनके प्राप्त करने के अथ शमें भी योग र्ब्द का प्रयोग िोता िै। देणखए 9 22)

साघन अथवा उपाय ि ै त्जसके द्वारा लक्ष्य को प्राप्त ककया जा सकता ि ै। पतञ्जमल का योग आत्ममक तनयन्त्रण की एक ऐसी पद्धतत ि ै त्जसके द्वारा िम बुद्धध को तनमलश बना सकति ैं, मन को उसकी भ्रांततयों से मुतत कर सकते ि ैं और यथाथसशत्ता का साक्षामकार कर सकति ैं। िम अपनी भावनाओं को तनयत्न्त्रत कर सकते ि ैं और ईश्वर के प्रतत आममसमपणश करके सवोपररसत्ता का ज्ञान प्राप्त कर सकति ैं। िम अपनी इच्छा को इस प्रकार साध सकति ैं कक िम अपनेसमस्त जीवन को तनरन्तर दैवीय सेवा के योग्य बना सकें। िम अपनी आममा के स्वरूप के अन्दर दैवीय त्तत को भी प्रमयक्ष कर सकति ैं; तथा उमसािपूण शप्रेम और मित्त्वाकांक्षा के साथ इस पर तब तक बराबर र्दत्ष्ट रख सकते ि ैं जब तक कक यि दैवीय स्फुमलंग बढ़ते-बढ़ते एक अनन्त प्रकार् में

पररणत निीं िो जाता। ये सब मभन्न-मभन्न प्रकार के योग अथवा उपाय ि ैं जो िमें एक सवोच्च योग अथात् ईश्वर के साथ संयोग की ओर ले जाते ि ैं। ककन्तुकोई भी नैततक सन्देर् त्स्थर निीं ंरि सकता, यहद उसे े आध्यात्ममक वचन का समथनश प्राप्त न िो। इस प्रकार गीता के योगर्ास्त्र का मूल ब्रह्मपवद्या अथात्श ् आममसम्बन्धी ज्ञान ि ै। गीना एक कल्पनापद्धतत भी ि ै और जीवन का पवधान भी hat B बुद्धध के द्वारा समय का अनुसन्धान भी ि ै और समय को मनुष्य की आममा के अन्दर कक्रयाममक त्तत देनेका प्रयमन भी ि ै। प्रमयेक अध्याय के उपसंिारपरक वातय से यि स्पष्ट िो जाता ि ै कक िमें एक अतनत्श्चत काल से प्राप्त िोता आ रिा ि ै, वि यि कक यि एक योगर्ास्त्र ि ै अथवा ब्रह्म-सम्बन्धी दर्नशर्ास्त्र का धाममकश अनुर्ासन ि ै, "ब्रह्मपवद्यानां योगर्ास्त्रे।े"

5. परम यथाथतशा

गीता में उपतनषदों के िी समान परमतत्त्व की मीमांसां दो पवधधयों से की गई ि ै-एक तो पवषयगत पवश्लेषण से, और दूसूरे पवषयीगत पवश्लेषण से। गीता के रचतयता के आध्यात्ममक झुकाव पर दूसूरे अध्याय में स्पष्टरूप से प्रकार् डाला गया ि ै। जिंउसनेयि मसद्धान्त प्रस्तुत ककया ि ै त्जसपर उसकी योजना का आधार ि ै"असत् ्से सत् ्उमपन्न निीं िो सकता और सतु का अभाव कभी निीं ंिोता।"[1232] पवषयगत पवश्लेषण सारतत्त्व एवं आभास के मध्य, अमर और नश्वर के मध्य, तथा अक्षर और क्षर के मध्य भेद को आधार बनाकर आगे बढ़ता ि ै। "संसार के अन्दर ये दो सत्त्व ि ैं, क्षर और अक्षर। अपररवतनशर्ील अक्षर ि ै।"[1233] िम यि निीं ंकि सकते कक वि 'अपररवतनशर्ील', त्जसका यिां ंतनदेर् ककया गया ि ै, सवोपरर यथाथसशत्ता ि ै तयोंकक अगले िी श्लोक में गीता घोषणा करती ि ै कक "सवोपरर सत्ता दूसूरी िी ि ै त्जसे सवोच्च आममा अथात्श ्परमाममा किते ि ैं, जो अक्षय भगवान, तीनों लोकों में व्याप्त ि ै और उन्िें धारण ककए िुए ि ै ।"[1234] गीता का रचतयता पिले संसार की स्थायी पृषृ्भूमम को उसके क्षणणक व्यततंरूपों से मभन्न करके बतलाता ि ै अथात्श ्यि प्रकृतत ि ै जो पररवतनशों से पृथक् ि ै। इस आनुभापवक लोक में िमें नश्वर एवंस्थायी दोनों िी पक्ष ममलते ि ैं। यद्यपप संसार के पररवतनशों की तुलना में प्रकृतत तनमय ि ै तो भी यि तनरपेक्ष रूप से यथाथ शनिीं ंि ै, तयोंकक इसका आधार भी सवोपरर जगत् ्का

[1232] 2:16।

[1233] 15:16।

[1234] 15:17।

स्वामी ि ै ।'[1235] यि सवोपरर आममा ि ी यथाथ शमें अमर ि ै जो तनमय का आश्रयस्थान ि ै।'[1236] रामानुज अपने े पवरे्षे मसद्धान्त की अनुकूलता को ध्यान में रखकर 'क्षर' का अथ शप्रकृततततत्त्व और 'अक्षर' का अथ शजीवाममा करते िैं, कफर भी पुरुषोत्तम अथवा सवोपरर आममा को इन दोनों से उमकृष्ट एवं ऊपर बतातेिैं। िमारे मलए यि सम्भव ि ै कक पुरुषोत्तम के भाव की व्याख्या करने ेमें िम उसका एक िोस मूतरूशप व्यत्ततमव स्वीकार कर लें जोकक सीममत तथा असीम के ममथ्या अमूतभशावों से उमकृष्ट ि ै। कहिनाई केवल यिी ि ै कक ब्रह्म को, त्जसे सीममत जगत् ्का भी आधार बताया गया ि ै, केवल अमूतरूशप में िीसमझा जा सकता ि ै। गीता सीममत अथवा अस्थायी एवं असीम अथवा स्थायी सत्ता में भेद करती ि ै। जो कुछ सीमा वाला और क्षणणक प्रकृतत वाला ि ै वि यथाथ शनिीिं। समग्र पररणमन एक अमान्य प्रततषेध ि ै। जो पररणत िोता ि ै वि सत् ्निीं ंि ै। यहद यि सत् ्िोता तो इसका पररणमन न िोता। चूंकक संसार की सब वस्तुएं कुछ अन्य रूप में आने ेके मलए संघष शकर रिी िैं इसीमलए वे ययाथ शया वास्तपवक निीं ंिैं। इस पृथ्वी पर की सब वस्तुओंमें क्षणणकता लक्षक्षत िोती ि ै। िमारी चेतना की पृष्िभूमम में इस प्रकार का एक पवश्वास अवश्य ि ै कक ऐसी कोई वस्तु अवश्य ि ै जो नष्ट निीं ंिोती। तयोंकक अभाव से ककसी वस्तु की उमपपत्त निीं ंिो सकती। वि यथाथसशत्ता रूपी परम सत् ्सदा बदलती रिने ेवाली प्रकृतत निीिं सकती। यि सवोपरर परब्रह्म ि ी ि ै। यि अनाहद, अनन्त और कूटस्थ या चट्टान की तरि र्दढ़ ि ै जबकक जगत् ्केवल समयरहित और अन्तरहित सत्ता, अनाहदप्रविासत्ता ि ै। "यथाथ शमें द्रष्टा विी ि ै जोकक सवोपरर प्रभुको सब वस्तुओंमें एक समान पवद्यमान रिने ेवाला करके देखता ि ै जो वस्तुओंके नष्ट िोने ेपर भी नष्ट निीिोता।"[1237] इस अनाहद-अनन्त आममा का सब प्राणणयों के अन्दर तनवास ि ै, और इसमलए गुणों की र्दत्ष्ट से सीममत पदाथों से मभन्न निीं ंहदखता ि ै। गीता एक ऐसी असीम सत्ता में पवश्वास करती ि ै जो सब सीममत वस्तुओं की आधारभूत ि ै, और उनमें जीवन का संचार करती ि ै।

जीवाममा सदा ि ी अपने-आपसे असन्तुष्ट रिती ि ै और बराबर कुछ अन्य बननेके मलए संघष शकरती रिती ि ै। अपनी सीममतता के ज्ञान में भी अनन्त का भाव पवद्यमान ि ै। सीममत जीवाममा, त्जसकी र्ततयां पररममत ि ै और जो सदा ि ी अपनी दु:खमय अवस्था से ऊपर उिनेका प्रयमन करती ि ै, परमाथरूशप ये यथाथ शनिीं ंिै। यथाथ शआममा का स्वस्य अपवनश्वरता का स्वरूप ि ै। गीता आममा के अन्दर स्थातयमव के अंर् को खोजनेका प्रयमनड करती ि ै, वि जोकक सदा ि ी ज्ञाता या प्रमाता अथवा पवषयी ि ै, ज्ञेव या प्रमेय अथवा पवषय निीं ंि ै। क्षेत्र स्थान अथवा पदाथ शि ै और क्षेत्रज्ञ पदाथ शका ज्ञाता अथवा पवषयी ि ै।'[1238] जो कुछ जाना जाता ि ै वि ज्ञाता की सम्पपत्त निीिं। मनुष्य की आममा के अन्दर ज्ञाता का अंर् ि ै जो समस्त पररवतनशों के अन्दर भी अपवचल और बराबर एकरस रिता ि ै। यि अनाहद अनन्त ि ै, अखण्ड ि ै, कालाबाधधत और स्वम्भू ि ै। मनुष्य के व्यत्ततमव को उसके बनाने वाले र्रीर, मन एवं ंजीवाममा के अवयवों में से अलग करके गीता इनमें से उस तत्त्व को खोज

1235 यि किा जाता ि ै कक "एक और सत्ता ि ै जो अव्यतत और तनमय ि ै और इस अव्यतत तत्त्व से मभन्न ि ै त्जसका अन्य सब वस्तुओं का नार् िोने पर नार् निीं िोता" (8/20) ।

1236 8 :21।

1237 3. 27; और भी देणखए, 8 20।

1238 13/1 और 5-6

तनकालने का प्रयमन करती िै जो सदा रिता िै। र्ीर स्थायी निीं िै तयोंकक इसका अन्त िै। यि एक क्षणणक ढांचा िै।'[1239] इत्न्द्रयों का जीवन भी अल्पकामलक, चंचल तथा पवकारयुतत िै।'[1240] मन भी सदा पररवतनर्शील िै। यि सब एक ज्ञाता (पवषयी) के मलए ज्ञेये पदाथ र्िै, ये वे साधन िैं त्जनके द्वारा आममा काय र्करती िै। इनकी स्वतन्त्र सत्ता का कोई अथ र्निीं ◌िै। आभ्यन्तर तत्त्व जो समस्त ज्ञान का आहदस्रोत िै, गीता के ब्दों में, "इत्न्द्रयों से, मन से और बुद्धध से भी मित्तर िै।"[1241] यि वि तत्त्व िै जो सबको एकत्र रखता िै और बराबर यिां तक कक सुषुत्प्त या प्रगाढ़ तनद्रा में भी उपत्स्थत रिता िै। परस्पर सबको जो़ ◌रखने का यि काय र्इत्न्द्रयों का निीं ◌िो सकता, न बुद्धध का िी िो सकता िै, और अपने-आप िी यि सम्भव िो सकता िै।1242 ज्ञाता या पवषयी रूपी तत्त्व एक अतनवाय र्तथा आवश्यक आधार िै त्जसके ऊपर ज्ञेय या प्रमेय जगत्,◌् त्जसमें आनुभापवक आममा भी सत्म्ममलत िै, त्स्थर िै। यहद िम ज्ञाता को छो़ दें तो ज्ञेय का भी लोप िो जाता िै। ककन्तुस्वयंज्ञाता का लोप निींिोता, भले िी ज्ञेय का लोप िो जाए। इस अमर रिने ◌वाले तत्त्व का पववरण बिुत पररष्कृत रूप में गीता में हदया गया िै। यि र्ीर का स्वामी िै। "वि कभी निीं ◌जन्मा और न वि ममृयुको प्राप्त िोता िै और चूंकक उसका आहद निीं ◌िै इसमलए अन्त भी निीं ◌िै। वि अजन्मा, तनमय, र्ाश्वत और पुराणपुरुष आममा र्ीर के मारे जानेपर भी निींमरता।'[1243] "र्स्त्र इसको काट निीं ◌सकते, अत्ग्न इसे जला निीं ◌सकती, न पानी िी इसे गीला कर सकता िै। वायुइसे सुखा निीं ◌सकती। इसके अन्दर कोई छेद निीं ◌कर सकता। इसे आग निीं ◌लग सकती। यि तनमयस्थायी, सवव्र्यापक, त्स्थर रिने ◌वाला, अचल और सनातन िै।"[1244]

गीता का सवोपरर आममा का वणनर् कुछ भ्रांततजनक अवश्य िै। "यि अक्षय सवोपरर आममा, अनाहद िोने ◌के कारण और तनमाणर् िोनेके कारण, काय र्निीं ◌करता, न इसमें कोई दोष लगता िै, यद्यपप यि र्ीर में अवत्स्थत िै।"[1245] यि केवल द्रष्टा या साक्षी मात्र िै। आममा अकतृयर्ा या अकतार्िै। पवकास का समस्त नाटक पदाथ-र्जगत् ◌से िी सम्बन्ध रखता िै। बुद्धध, मन और इत्न्द्रयां ज़ प्रकृतत के िी पवकार िैं ककन्तु यि सब पवकृतत भी आममा की उपत्स्थतत से िी सम्भव िोती िै। प्रमाता या ज्ञाता आममा, जो िमारे अन्दर िै, र्ान्त, एक समान, बाह्य जगत् ◌में अनासतत िै, यद्यपप यि उसका आधार िै और अन्तव्यार्पक साक्षी िै।

सांसाररक व्यत्ततयों में िमें पवषयी और पवषय का परस्पर संयोग ममलता िै।'[1246] अनुभव करने ◌वाले व्यत्तत पवषयी के दैवीय तत्त्व िैं जो ज्ञेय पदाथों से मयाहदत र्िैं। इस संसार के अन्दर पवषयी और पवषय सदा साथ-साथ ममलतेिैं।'[1247] केवल पवषय या पदाथ र्का िी परम इत्न्द्रयातीत अत्स्तमव निीं िै पवषयी जो पवषय से

1239 1240

2/13,1118

2/14।

[1241] 3/42।

[1242] 13:6 ।

[1243] 2/20 ।

[1244] 2:22, 25 ।

[1245] 13/31 ।

[1246] 13 :27।

[1247] 13/20 -21 ।

 उमकृष्ट ि◌ै, पवषय का आधार ि◌ै। "जब मनुष्य को इस बात का अनुभव ि◌ो जाता ि◌ै कक नानापवध सत्ताओंका एक
ीी मूल ि◌ै और सब उसी से तनकली ि◌ैं तब वि सवोपरर सत्ता के साथ ऐतयभाव का अनुभव करता ि◌ै।"[1248] जब पदाथ श(पवषयवस्तु) के साथ ममश्रण-सम्बन्धी भ्रांतत का अन्त ि◌ो जाता ि◌ै तो पवषयी सबमें एकसमान हदखाई देने

`

लगता ि◌ै। कृष्ण ने जो अजुनश को बलपूवकश यि किा कक मरे ि◌ुओंके मलए र्ोक मत करो तो उसका आर्य यि था कक मृमृयु एकदम पवलोप का नाम निीं ◌ंि◌ै। व्यत्ततगत रूप बदल सकता ि◌ै, ककन्तुसारभूत तत्त्व का नार् निीं ◌ं िोता। जब तक पूणतशा प्राप्त निीं ◌ंि◌ो जाती, व्यत्ततगत का भाव पवद्यमान रिता ि◌ै। यि मरणधमाश र्रीर का ढांचा भले ि◌ी बार-बार नष्ट ि◌ो जाए, आभ्यन्तर व्यत्ततगत अपनेअत्स्तमव को सुरक्षक्षत रखता ि◌ै और एक नया रूप धारण कर लेता ि◌ै। इस पवश्वास से जीवन की प्ेरेरणा प्राप्त करके मनुष्य को आममज्ञान के मलए काय शकरना चाहिए। ि◌मारी अपवनश्वरता तनत्श्चत ि◌ै-या तो अनन्तता द्वारा अथवा पूणतशा की प्रात्प्त द्वारा। ि◌मारी उपलक्षक्षत असीमता का यि केवल प्रकटरूप में आ जाना ि◌ी ि◌ै। आममा के अत्स्तमव vec a इस प्रततपादन के आधार पर और उपतनषदों की अन्तर्दत्शष्ट के इस समथनश के द्वारा कक आममा अथवा तनमलश ज्ञाता ि◌मारे र्रीर के ममट्टी में ममल जानेपर भी अछूता अथवा अप्रभापवत बचा रिता ि◌ै, इस प्रकार श्रीकृष्ण ने अजुनश के मन की बेचैनी को दूरू ककया था :

> "आममा का जन्म कभी निीं ◌ंि◌ुआ; न यि आममा कभी नष्ट ि◌ोगी;
> ऐसा कोई समय निीं ◌ंथा जबकक यि न रिी ि◌ो; अन्त और आहद
> केवल स्वप्नरूप ि◌ैं;
> उमपपत्तरहित, और मृमृयुरहित यि आममा पररवतनशरहित सदा एक-
> समान रिती ि◌ै;
> मृमृयु इसका बाल भी बांका निीं ◌ंकर सकती यद्यपप इसका आवास-
> स्थान मृत् हदखाई देता ि◌ै।"[1249]

उपतनषदों की ि◌ी भावना के अनुकूल गीता भी आममा और ब्रह्म की एकता का प्रततपादन करती ि◌ै। क्षणणक सत्ता वाली इत्न्द्रयों और र्रीर के पीछे आममा ि◌ै। संसार के क्षणणक पदाथों की पृष्ृभूमम में ब्रह्म ि◌ै। दोनों एक ि◌ी ि◌ैं तयोंकक दोनों का स्वभाव एकसमान ि◌ै । इसकी यथाथतशा प्रमयेक मनुष्य के अपने-अपनेअनुभव का पवषय ि◌ै और उसे वि स्वयंिी अनुभव कर सकता ि◌ै। अपररवतनशर्ील की व्याख्या पररवतनशर्ील की पररभाषा के द्वारा करनेके सब प्रयमन तनष्फल मसद्ध ि◌ोंगे। यि ि◌ीक ि◌ै कक गीता में अन्तर्दत्शष्ट से जानी गई परमाथसशत्ता संसार की तकशसंगत आधारभूमम ि◌ै ऐसा मसद्ध करने ◌ेका कोई प्रयमन निीं ◌ंककया गाया, ककन्तु इसका संकेत अवश्य ि◌ै। यहद यि संसार अनुभव का पवषय ि◌ै और एक अव्यवत्स्थत भ्रांतत निीं ◌ंि◌ै तो ि◌में एक तनरुपाधधक परमरूप यथाथतशा की भी आवो एक ि◌ैं। ककन्तु ि◌में इस पवषय में बिुत सावधान रिना चाहिए कक ि◌म अनन्त और आवश्यकता के क्षेत्रों की पारस्पररक पवमभन्नता का पवरोध न करें। इससे ि◌में सान्त के पवषय में भ्रमपूण श

1248 13 / 31 ।

1249 गीता के एक श्लोक का सर एड्पवन आनल्शड कृत अनुवाद ।

पवचार ममलेगा। जो बात सबसे प्रथम िमारे लक्ष्य में आती िै वि यि िै कक क्षणणकस्यभाव सान्त और यथाथस्शवरूप अनन्त में भेद िै। ककन्तु यहद यिी सब कुछ िोता तो अनन्त-असीम भी सीममत िो जाएगा तथा ऐसे रूप में पररणत िो जाएगा जो सान्त िै, तयोंकक पवरुद्धगुण और बहिष्कृत सीमाबद्ध सत्ता िी असीम अथवा अनन्त की सीमा बन जाएगी। यि समझना अनुधचत िोगा कक अनन्त कोई ऐसी वस्तु िै जो सान्त अथवा सीममत के अन्दर से िाित् ्बिार आ गई िो। यि स्वयंिी सच्चेअथों में सान्त िै। सीममत िी अनन्त का रूप िै और वि अनन्त िी सान्त के अन्दर यथाथसशत्ता िै और ऐसी कोई वस्तुनिीं ंिै जो उसके साथ- साथ या बराबर में िो। सान्त पदाथसशमूि में जो अनन्त का अंर् िै यहद िम उसे दृत्ष्ट से ओझल कर दें तो िमें एक अन्तपवहिन उन्नतत का सामना करना िोगा जो सान्त जगत् ्की पवर्ेषता िै। यि अन्तपविीनता िी सान्त के क्षेत्र के अन्दर अनन्त की पवद्यमानता का लक्षण िै। सान्त अपनेको इससे अधधक रूप में व्यतत में निीं ंकर सकता जैसेकक अनन्त को िी सान्त बना हदया गया िो। अनन्त और सान्त के बीच भेद करना केवल मर्धथल पवचार का लक्षण िै। यथाथ शमें अनन्त िी समय िै और सान्त केवल अनन्त का सीममत रूप िै। इससे पररणाम यि तनकला कक इत्न्द्रयातीतता और अन्तयामशमता आहद पररभाषाएं अनुपयुतत िैं, तयोंकक परमतत्त्व से मभन्न भी कुछ िै और इसकी वे कल्पना कर लेती िै। परमसत्ता की व्याख्या के मलए त्जस ककसी भी उपाधध या लक्षण का प्रयोग ककया जाए, सब अपयाप्शत िैं। इसका वणनश करते िुए किा जाता िै कक यि न तो समस्वरूप िै, न असत् ्िी िै, न आकृततमान िै और न आकृततपविीन िी िै।'[1250] गीता उपतनषद् के िी मसद्धान्त को दोिराती िै कक यथाथसशत्ता तनपवकशार िै, स्वतन्त्र सत्ता वाली िै, और देर्, काल एवं कारण-काय शके तनयम से जकड़े िुए समस्त ब्रह्माण्ड की पृष्ठभूमम में िै।

गीता दर्नश के क्षेत्र में अद्वैत अथात्श ्जीव और ब्रह्म की एकता के मसद्धान्त को समय बताती िै। सवोपरर ब्रह्म एक तनपवकशार स्वतन्त्र सत्ता िै, "त्जसके पवषय में वेदान्ती वणनश करते िैं त्जसे तपस्वी लोग प्राप्त करते िैं।" यि सबसे ऊंचा स्तर िै और आममा के कालक्रम से गतत करने ेका सवोपरर लक्ष्य िै, यद्यपप अपने-आपमें यि गतत निीं ंिै, अपपतु एक स्तर िै जो मौमलक िै, सनातन िै और सवोपरर िै। ब्रह्म की अपररवतनशीय तनमयता िी सब चराचर एवं ंपवकमसत जगत् ्का आधार िै। ब्रह्म के िी कारण उनका अत्स्तमव िै। बबना इसके उनकी सत्ता कोई सत्ता निीं,ं यद्यपप यि ककत्ती को बनाता निीं,ं करता कुछ निीं ंऔर ककसी का तनणयश निीं करता। दोनों अथात्श ्ब्रह्म और जगत् ्स्वरूप में परस्पर पवरोधी प्रतीत िोते िैं। यहद िम संसार की यथाथतशा का खण्डन भी करें और इसे केवल एक आभासमात्र मानें तो भी कुछ तो तत्त्व मानना पड़ेगा त्जसका कक यि आभास िै। तिनरन्तर अपनेसे ऊपर उिने के मलए संघष शकरते रिनेके कारण संसार अपनी अयथाथतशा को स्वयंदर्ातशा िै किकन्तुपरब्रह्म अपने-आपमें स्वयंलक्ष्य िै और यि अपनेसे परे अन्य ककसी लक्ष्य या उद्देश्य का ध्यान निीं ं करता। चूंकक संसार परब्रह्म के ऊपर आधश्रत िै इसीमलए परब्रह्म को कभी-कभी पररवतनशरहित तथा पररवतनशर्ील दोनों िी किा जाता िै। संसार के जन्तरहित पववरणों और पररवतनशरहित त्स्तमव केवल इसीमलए िै किक यि मनुष्य के मन को ऐसी दर्ा में मोड़ दे त्जसे पवरोधा रोधों पर पवजय प्राप्त की जाती िै और एक

1250

13:12 ।

 तारतम्य-पवीन चेतना में तारतम्यों से पे्रेम सम्बन्ध स्थापपत ककया जाता िै। जिां ंएक ओर समस्त सम्भव

सम्बद्ध तथा पवरोधी इसी के ऊपर आधश्रत िैं, यि उनका पवरोधी निीं ंिै तयोंकक उनका एकमात्र अधधष्ठानि जो यिी िै। यि तो िम िीकि्ीक निीं ंजानते कक यि संसार िीक ककस प्रकार से परब्रह्म का आधश्रत िै ककन्तु इतना

मिें तनश्चय िै कक परब्रि के बबना संसार भी निीं ंिो सकता था। एक और समुद्र चुपचाप सोनेवाला िै, तो दूसरी ओर अमयन्त क्षुब्ध भी िै। िम निीं ंजानते कक दोनों िीकि्ीक ककस प्रकार से परस्पर सम्बद्ध िैं। िम अपने इस अज्ञान को माया किकर डडपा लेते िैं। दोनों एक िी िैं तो भी वे मभन्न-मभन्न प्रतीत िोतिैं और यि प्रतीतत माया के कारण िै। इंहद्रयातीत यथाथतशा यद्यपप पररवतनश से परे िै तो भी पररवतनशों का तनधारशण करती िै। दार्तशनक र्दत्ष्ट से िमें यिीं ंिििर जानेको बाध्य िोना पड़ता िै। "ककसने ेप्रमयक्ष रूप से देखा और कौन तनश्चयपूवकश घोषणा कर सकता िै कक यि धचत्र-पवधचत्र सृत्ष्ट ककससे उमपन्न िुई और तयों उमपन्न िुई?"[1251]

जीवाममा के सम्बन्ध में विी समस्या िै तयोंकक यिां ंएक स्वतन्त्र पवषयी और पवषय के बीच में परस्पर के सम्बन्ध का प्रश्न िै। िम निीं ंजानते कक एक अमर साक्षीरूप जीवाममा और चेतना के प्रविारूप तनरन्तर िोते िुए पररवतनशों के मध्य में परस्पर का बन्धन कसा िै। इस कहिनाई को िल करने ेके मलए र्ंकर ने 'अध्यास' की कल्पना की। पवषवी और पवषय दोनों का परस्पर संयोग निीं ंिो सकता तयोंकक पवषयी (प्रमाता जीवाममा) के

किसी अकेले ही निीं भिन्न। समस्या परस्पर-सम्बन्ध सकतायसम्बन्ध अथात्

त्जसमें एक दूसूरे से पृथृक् न िो सके, तयोंकक ये कारणकायभशाव से तो परस्परसम्वद्ध निीं ंिै। इसमलए र्ंकर इस पररणाम पर पिुंचे ेकक "इन दोनों का परस्पर-सम्वन्ध अध्याय के रूप का िै अथाशत् ्एक-दूसूरे को और उन दोनों के गुणों को भ्रम के कारण जो वि निीं वैसा मान लेना और यि पवषयी तथा पवषय के स्वरूप में भेद न करने ेके कारण िोता िै जैसे सीप को भ्रम से चांदी समझ लेना, रस्सी को भ्रम से सांप समझ लेना। दोनों का परस्पर-सम्पकश प्रतीततमात्र अथवा ममथ्या ज्ञान िै और समयज्ञान प्राप्त कर लेनेपर यि अध्याय पवलुप्त िो जाता िै।"[1252] यि कल्पना गीता में निीं ंपाई जाती, इसका संकेत भले िी समझ मलया जाए।

उपतनषदों का आध्यात्ममक आदर्वशाद गीता में ईश्वरवादी धम शके रूप में पररणत िो गया िै, त्जसमें पे्रेम, प्राथनशा और भत्तत सबका समावेर् िै। जब तक िमें परब्रह्म का साक्षामकार निींिोता और िम आनुभपवक जगत् ्के पक्ष से िी काय शकर रिे िैं, िम उतत पवषय की व्याख्या सवोपरर ईश्वर की, त्जसे गीता में पुरुषोत्तम किा गया िै, कल्पना के आधार पर कर सकतिैं। परमाथसशत्ता का अर्रीरधारी िोना िी मनुष्य की र्दत्ष्ट में उसका पूण शमित्त्व निीं ंरखता। गीता उपतनषदों के आदर्वशाद को मनुष्य जातत के दैतनक जीवन के अनुकूल बनानेके मलए उमसुक िै और इसके मलए वि उतत यथाथ शपरमसत्ता की दैवीय कक्रया तथा प्रकृतत के कायों में भाग लेनेके पवचार का समथनश करती िै। यि िमारे सामने एक ऐसे ईश्वर की कल्पना प्रस्तुत करती िै जो मनुष्य के कुल जीवन के मलए सन्तोषप्रद िै। गीता का ईश्वर ऐसी यथाथसशत्ता िै जो केवल अनन्त और केवल सान्त दोनों से ऊपर िै। परमाममा संसार का जनक (उमपादक) तथा कारण िै जो अत्ल्पाज्जय र्तत के रूप में समस्त प्राणीमात्र

1251 तैपत्तरीयब्राह्मण,2:8-9।

1252 भगवद्डगीता पर र्ांकर भाष्य , 12:3।

में व्याप्त ◌ै। नैततक गुण आध्यात्ममक गुणों के साथ जु ◌िुए ◌ै।'[1253] गीता लक्षणभेद को पृथृतमव-कारण मानने ◌े के ◌िमवाभास को स्वीकार करनेके मलए तैयार निीं ◌ं◌ै। यि सब प्रकार के अमूतभशावाममक पवरोधों का परस्पर समन्वय करती ◌ै। पिले 'परस्पर-मेद करके तब उनमें परस्पर समन्वय स्थापपत ककए1254 बबना पववेक अपना काय शनिींकर सकता। ज्जयोंिि ◌िम परमतत्त्व का धचन्तन करनेलगेंगे, ◌िमें अन्तर्दत्शष्ट के पात्र तथ्य को पवचार की पररभाषा में पररणत करत्ता ◌िोगा। पवरुदुध सत् ◌्रूनूयरूप में पररणत ◌ िो गया, और अब ◌िमारे सम्मुख सत् ◌्तथा रूनूय का संयुतत रूप ◌ै। यि संयुतत रूप ऐसा ◌ी यथाथ शिी जैसा कक पवचार। यि ◌िीक ◌ै कक गीता ◌िमें उस प्रकक्रया के पवषय में कुछ निींबतलाती कक त्जससे तनरपेक्ष परमतत्त्व, जो अरींरी ◌ै, और तनत्ष्क्रय आममा ◌ै, कक्रयारी्ल और रींरधारी भगवान प्रभु बन जाता ◌ै जो पवश्व की रचना व उसका धारण करता ◌ै। बुद्धध के द्वारा तो यि समस्या ◌िल निीं ◌ं◌िो सकती। इस रिस्य का उद्घाटन तभी ◌िोता ◌ै जबकक ◌िम अन्तर्दत्शष्ट के स्तर तक उिते ◌ैं। तनरपेक्ष परमतत्त्व (ब्रह्म) का ईश्वर के रूप में पररणत ◌िोना माया, अथवा रिस्य ◌ै। यि इन अथों में माया भी ◌ै कक पररणत संसार इतना यथाथ शनिीं ◌ं◌ै त्जतना कक परब्रह्म स्वयींि

यहद तकश के द्वारा ◌िम परब्रह्म के संसार के प्रतत सम्बन्ध को समझने ◌ेका प्रयमन करें तो ◌िम इसे र्त्त का नाम देंगे। तनत्ष्क्रय और तनगुणश परब्रह्म, जो ककसी भी पदाथ शसे असम्बद्ध ◌ै, तकश के द्वारा सकक्रय एवं रींरधारी ईश्वर के रूप में पररणत ◌ो गया त्जसके अन्दर वि र्त्त ◌ै त्जसका सम्बन्ध प्रकृतत से ◌ै। ◌िमें गीता में नारायण का ज्ञान ममलता ◌ै 'जो जल में आसीन पवचारमग्न ◌ै।' वि तनमयरूप 'अिंकार' 'अनामम' के सम्पकश में आता ◌ै। इसी 'अनामम' को प्रकृतत भी किा गया ◌ै, तयोंकक यि संसार का जनक ◌ै। यि भ्रांतत का आहदस्रोत ◌ै, तयोंकक यिी यथाथसशत्ता के समयस्वरूप को मरणघमाश मनुष्यों की र्दत्ष्ट से तछपाकर रखता ◌ै। संसार अङ्गाङ्गीभाव से पुरुषोत्तम के साथ जुा ◌िुआ ◌ै। ऊपर पुरुषोत्तम से लेकर नीचेतक सब वस्तुओंमें सत् ◌् और असत् ◌्का अंर् पवद्यमान ◌ै। तनषेध के भाव का परमाथतशत्त्व के सम्बन्ध में प्रवेर् ककया गया ◌ै, और पररणमन की प्रकक्रया में एकमव को ििात् ◌्अपनेआन्तररक रूप को प्रकट करना पता ◌ै। 'कम शके प्रतत स्वाभापवक आहदम प्ेरेरणा' जो अन्दर से उिती ◌ै, पुरुषोत्तम के हृदय में अपना स्थान रखती ◌ै। मौमलक एकमव के गभ शमें पवश्व की समस्त प्रगतत जवत्स्थत ◌ै, त्जसके अन्दर भूत, वतमशान, और भपवष्यत् ◌्अब सवोपरर सत्ता में ◌ै। कृष्ण अजुनश को सम्पूण शपवश्यरूप का एक पवस्तृत आकार में दर्नश करातिं।' तनमयत्ता के प्रकार् में अजुनश नामरहित वस्तुओंका दर्नश करता ◌ै, कृष्ण की पवराट आकृतत को इस जीवन की सीमाओंका उल्लंघन करते ुए देखता ◌ै, त्जसनेसम्पूण शअन्तररक्ष और पवश्व को व्याप्त कर मलया। उसनेपवमभन्न लोकों को उस पवराट रूप के अन्दर से ब्र्‌‌ेब्र ◌ेजलप्रपालों की भांतत अपना-अपना माग शबनाकर तनकलते देखा। प्रमयाख्यान अथवा अन्तपवरशोव उन्नतत का मुख्य स्रोत ◌ै। विांतक कक ईश्वर के साथ भी तनषेधाममक तत्त्व लगा ◌ै त्जसे पाया किा गया ◌ै, यद्यपप ईश्वर सेवर् में रखता ◌ै। सवोपरर ईश्वर अपनेकक्रयारी्ल स्वामाष अथवा 'स्थां प्रकृततम का उपयोग करके जीवों की सृतृष्ट करता ◌ै, जो अपनी-अपनी प्रकृतत के द्वारा तनणीत माग शमें स्वयंअपने-अपने भाग्य का तनमाणश करते ◌ैं। जिां ◌ंएक ओर यि सब सवोपरर ब्रह्म के द्वारा अपनी आहदम र्त्त का प्रयोग

1253 भगवद्गीता , 8:9और 13।

1254 भगवद्गीता अध्यडाय 11, 6:29, 7:8-9, 8:22, 10 ।

 नश्वर संसार में करके सम्पन्न िोता िै, दूसूरी ओर एक अन्य पक्ष भी / त्जसका सम्बन्ध इस सबके साथ निीं ंिै।

वि अर्रीरी तनरपेक्ष परपतत्त्व िै और अन्त:त्स्थत इच्छार्त्त भी िै। वि ऐसा कारण िै त्जसका अन्य कोई कारण निीिं, स्वियंअचल िै ककन्तु समस्त पवश्व का वि संचालक िै।

"वि प्राणणमात्र के अन्दर िै और बािर भी िै-
गततरहित िोते िुए भी गततमान िै; सूक्ष्मरूप िोनेके कारण
साक्षात् ्दर्नश के क्षेत्र में निीं ंआता;
प्रमयेक व्यत्तत के पास भी िै और कफर भी अपररमेय दूरूी पर िै;
बिगुण न िोतेिुए भी समस्त जीपवत प्राणणयों में पवद्यमान रिता िै।
अन्धकार के अन्तस्तल में भी वि प्रकार्ों का प्रकार् िै, अनन्त काल
से आलोककत िै।"[1255]

सवोपरर सत्ता के दो स्वरूप वणनश ककए गए िैं-एक उच्च श्रेणी का त्जसे 'परा' की संज्ञा दी गई िै और दूसूरा तनम्न श्रेणी का त्जसे 'अपरा' संज्ञा दी गई िै।। ये दोनों पवश्व के चेतन और ज़ दो पवमभन्न पक्षों की अनुकूलता में िैं। तनम्न श्रेणी की प्रकृतत भौततक एवं कारण से उमपन्न प्रकृतत में काय शएवं ंपररवतनश उमपन्न करती िै। उच्च श्रेणी की प्रकृतत पुरुषों अथवा बुद्धधसम्पन्न आममाओं को उद्देश्यपूण शतथा मूल्यों वाले जगत् ्में जन्म देती िै। ककन्तु दोनों एकमात्र आध्यात्ममक परमाममा से सम्बन्ध रखती िैं। मध्य इस आर्य का एक पद उद्धतृ करते िैं: "ईश्वर के मलए दो प्रकृततयां ंिैं-ज़ अथात्श ्अचेतन, और उसके पवपरीत अज़ अथात्श ्चेतन। प्रथम श्रेणी की अव्यतत प्रकृतत िै, दूसूरी श्रेणी की श्री अथवा लक्ष्मी िै जो पिली श्रेणी की प्रकृतत को सिारा देती िै। दूसूरी नारायण की पमनी िै। इन दोनों से िरर संसार की रचना करता िै ।"[1256] गीता सांख्य के मसद्धान्त को स्वीकार करती िै त्जसके अनुसार सजातीय (एकधमाश, अथवा समांग) प्रकृतत से नानापवध या बिगुण संसार का पवस्तार िोता िै और पुरुष उसका साक्षीरूप द्रष्टा िै। केवल पुरुष की उपत्स्थतत, जो प्रकृतत में उते्तेजना उमपन्न करके उसके अन्दर गतत उमपन्न करने के मलए आवश्यक िै, एक यथाथ शउपत्स्थतत िोनी चाहिए। इसमलए यि किना अधधक ठीक िोगा कक समस्त कक्रयार्ीलता पुरुष और प्रकृतत के सत्ममलत प्रयमन के कारण िै, यद्यपप बुद्धध का अंर् प्रमाता (ज्ञाता) के क्षेत्र में प्रकृतत का अंर् प्रेमेय (ज्ञेय पदाथ)श के क्षेत्र में अधधक प्रधान रिता िै। वे दोनों एकमात्र सवोपरर ब्रह्म के स्वरूप का तनमाणश करते िैं। विी दोनों संसार का तनमाणश िैं।1257 यिी कारण िै कक प्रभु को संसार का आधार किा जाता िै और चेतना को पूण शप्रकामर्त करने वाला प्रकार्

1255 13: 15-18। सर एडपवन आनल्शड का अनुवाद ।

1256 7: 5 पर टीका।

1257 रामानुज किते िैं: "बुद्धधरहित प्रकृतत और उसके अन्दर बुद्धधसम्पन्न तनक्षक्षप्त ककये गये गभ शसे (14, 3) प्राणणमात्र उमपन्न िोते िैं, जो देवताओं ंसे लेकर और त्स्थर पदाथों तक एक चेतनापविीन वस्तु के साथ परस्पर-ममधश्रत िैं।" (गीता का रामानुजभाष्य 13, 21) साथ िी रामानुज यि भी मानते िैं कक ये सब प्राणी अपनी परमसत्ता भी रखते िैं, जो ईश्वर की सत्ता से मभन्न िै। यद्यपप गीता का पवचार इस पवषय में तनत्श्चत िै। अपवभाज्जय ब्रह्म यथाथ शमें पवभतत निीं िोता ककन्तु केवल ऐसा प्रतीत िोता िै। ("पवभततममव", 13, 16) ।

 किा जाता िै। गीता का रचतयता इसके प्रकार का वणनश निीं ंकरता कक त्जसके अनुसार

ईश्वर का एक स्वरूप

एक अवस्था के प्रकार का वणनश चेतनापविीन या ज़ प्रकृतत के रूप में अमभव्यतत करता िै, और दूसरी अवस्था में चेतन बुद्धध के रूप में, और साथ िी ककस प्रकार से ये एक िी आहदम स्रोत की उपज िोतेिुए संसार की प्रगतत में एक दूसूरे के पवपरीत रिकर काय शकरते िैं।'[1258]

मनुष्य एवं ंप्रकृतत में तनवास करते िुए भी सवोपरर ब्रह्म दोनों में मिन िै। अनन्त पवश्व अनन्त देर् और काल से बद्ध उसी ब्रह्म में अवत्स्थत िै न कक वि ब्रह्म इसमें। ईश्वर की अमभव्यत्तत में पररवतनश िो सकता िै, ककन्तु उसके अन्दर एक अंर् िै जो आममस्थाय िै और प्रतीततरूप पररवतनशों की त्स्थर पृष्ठिभूमम िै। नानापवध जीवन उसके स्वायर का पररवतनश निीं ंला सकते।1259 त्जस प्रकार र्त्ततर्ाली वायु सब जगि गतत करती िुई आकार् में त्स्थर िै, इसी प्रकार सब वस्तुएं मेरे अन्दर त्स्थर िैं।"[1260] तो भी बबना वायु के गतत करने े पर भी आकार् आकार् िी िै। रचना के गुणों के कारण उस प्रभु ुमें कोई उपाधध निीं ंआती। यि संसार उसके स्वरूप की अमभव्यत्तत िोतेिुए भी ईश्वर की आममपूणतशा में ककसी प्रकार की न्यूनता निीं ंलाता। तो भी िम संसार की रचना से मभन्न ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान निीं ंकर सकते। यहद, संज्ञाममक तत्त्व को समस्त सारवस्तु ु से ररतत कर मलया जाए और उस सबसेभी ररतत कर मलया जाए त्जससे ज्ञान तथा जीवन का तनमाणश िोता िै, तो ईश्वर अपने- आपमें अज्ञेय बन सकता िै। यि भी समय िै कक िम यहद इस संसार में िी भटकते रिेंगे तो यथाथतशा के दर्नश िमें कभी निीं ंिो सकते। यि जानना िमारे मलए आवश्यक िै कक पदाथों के साथ सम्बन्ध में स्वतन्त्ररूप में ईश्वर तया िै, और उन सब पररवतनशों में भी त्जन्िें वि इस संसार में लाता िै, अपने ेको उनसे े पृथक् बनाए रखता िै। चूंकक वि पदाथों के साथ के सम्बन्ध को पृथक् निीं ंकर सकता, केवल इसीमलए िमें यि निीं ंसोच लेना चाहिए कक पवषयी आममा अपनेअन्दर आममामभज्ञा निीं ंरखता। यहद अमभव्यत्तत को आममा के साथ ममधश्रत कर हदया जाए तो गीता का मसद्धान्त भी एक प्रकार का सवेश्वरवाद बन जाएगा। ककन्तुगीता का रचतयता स्पष्टरूप से इस प्रकार के सुझावों का खण्डन करता िै। समस्त संसार को ईश्वर एक अंर् में धारण करता िै, "एकांर्ेन।"[1261] दसवें अध्याय में कृष्ण घोपषत करते िैं कक वे अपनेवैभव के केवल एक अंर् को िी अमभव्यतत कर रिे िैं। परब्रह्म की तनपवकशाररता और ईश्वर की कक्रयार्ीलता दोनों पुरुषोत्तम के भाव के अन्दर आ जाते िैं।

धाममकश दृत्ष्ट से र्रीरधारी पुरुषोत्तम उस तनपवकशार, स्वयम्भू परब्रह्म से उच्चकोहट का िै जो तनलेप िै, अथात् श ्पवश्व के पवषयी तथा पवषय सम्बन्धी प्रतीततरूप पदाथों से तनमलप्शत िै। उसे एक ऐसा तनष्पक्ष र्ासक समझा जाता िै जो कष्ट और पवपपत्त से ग्रस्त व्यत्ततयों की सिायता करनेके मलए सदा उद्यत रिता िै। केवल

1258 इसमलए िम इस त्स्थतत में निीं िैं कक गीता के पुरुषोत्तम अथवा सम्पूण शसम्बन्धी पवचार तथा बगसशां की तनमय (Duree) सम्बन्धी कल्पना में, अथवा गीता के पुरुष और प्रकृतत सम्बन्धी मसद्धान्त तथा वगसशांके जीवन और भौततक प्रकृतत् के मध्य कोई तुलना कर सकें।

1259 मिाभारत, र्ात्न्तपवं,श 339-344।

1260 9:6; 9:10 ।

1261 10/42 |

इसी कारण से कक वि कभी-कभी दण्ड देता िै, उसे िम अन्यायी और नृरूंस निीं ंकि सकते। श्रीधर एक श्लोक उद्धृत करता िै त्जसमें किा गया िै: "त्जस प्रकार एक माँअपनेबच्चे को ला़-प्यार करने ेके साथ-साथ मारती भी िै तो िम उसे नृरूंस निीं ंकिते, े इसी प्रकार ईश्वर भी जो पुण्य और पाप का तनणयश करने ेवाला िै, नृरूंस निीं किला सकता िै।'[1262] अर्रीरी परब्रह्म की धाममकश कायों के प्रयोजन से पुरुषोत्तम के रूप में पररकल्पना की गई ि। पुरुषोत्तम का पवचार जानबूझकर कोई ऐसी आममप्रवंचना निीं त्जसे मनुष्यहृदय ने अपनी तनबलशता के कारण स्वीकार ककया िो। यद्यपप रुष्क तकश तो िमें तनगुणश यथाथसशत्ता का िी पता देता िै, यि आध्यात्ममक अन्तर्दत्शष्ट िै जो िमारे सामने एक ऐसे ईश्वर को प्रकार् में लाती िै त्जसके र्रीर और अर्रीरी दोनों िी रूप िैं। उपतनषदों में िमें 'समन्वय' का मसद्धान्त ममलता िै। ईर्ोपतनषद म ेंयथाथसशत्ता को चल और अचल दोनों िी रूपों में किा गया िै। इन दोनों में से ककसी एक िी रूप के प्रततपादन का पररणाम ज्ञान का अभाव अथवा अज्ञान िोगा। गीता का प्रयमन अपवनश्वर आममा और पररवतनश-सम्बन्धी अनुभव के परस्पर-संश्लेषण की ओर िै। पुरुषोत्तम सवोपरर आध्यात्ममक सत्ता का नाम िै। जो र्तत से संयुतत िै, उसी को तनमय पवश्राम की अवस्था में ब्रह्म किते िैं। रंकरानन्द एक श्लोक उद्धृत करता िै, त्जसमें किा गया िै : "बासुदेव के दो रूप िैं-एक व्यतत और दूसूरा अव्यतत, परब्रह्म अव्यततरूप िै. और यि समस्त चराचर जगत् ्उसका व्यततरूप िै।'[1263] सवोपरर ब्रह्म के व्यतत और अव्यतत दो पक्ष िैं। पिले पक्ष पर बल रिता िै जब प्रकृतत अपना काय शकरती िै एवं जीव उसका िी एक भाग किलाता िै।'[1264] कृष्ण के कथन में भी उसी पक्ष पर बल हदया गया िै: "इस संसार में जो कुछ पवभूततमान, उत्तम, सुन्दर और र्ततमान िै, िे अजुनश ! उस सबको मेरे िी तेज के अंर् से उमपन्न िुआ समझो।"[1265] जब कृष्ण िमें अपना भतत बनानेकी प्ेरेरणा करता िै, जब वि पवश्वरूप का दर्नश कराता िै, और इस सम्बन्ध में जिां–जिां ंप्रथम पुरुष 'म'ैं का प्रयोग करता िै, विां सवोपरर परब्रह्म के व्यतत पक्ष से तामपय श ि1266 दैवीय स्वरूप का यि पक्ष सृतृष्ट-रचना के काय शमें प्रपवष्ट िै, जिां ंयि अपनेको कालक्रम में और पररणमन की लिरों में खो बैिता िै। इस सबसे ऊपर दूसूरी श्ेरेणी िै जो मौन और तनपवकशार िै, त्जससे ऊंचा और कुछ निीं ि। दोनों पक्ष एकसाथ ममलकर पुरुषोत्तम किलाते िैं। यहद िम यि मसद्ध करने ेका प्रयमन करें कक र्रीरधारी प्रभु िी उच्चतम आध्यात्ममक सत्ता िै तो िम पवषम पररत्स्थतत में प़ जाएंगे। "म ैंइस ज्ञान के प्रयोजन में घोषणा करूंगा इस ज्ञान के कक कौन उस अमरमव को प्राप्त करता िै जो सबसे ऊंचा ब्रह्म िै त्जसका आहद व अन्त निीं, और त्जसे न सत् ्और न असत् ्की किा जा सकता िै ।'[1267] गीता का रचतयता िमें बार-बार स्मरण कराता िै कक व्यततरूप उसकी अपनी िी रिस्यमयी र्तत के कारण िै, त्जसे योगमाया भी किते िैं।"[1268] "अज्ञानी लोग मेरे इत्न्द्रयातीत और अक्षय सारतत्त्व को न जानने ेके कारण, त्जससे ऊंचा और कुछ निीं, मुझे

1262 गीता पर टीका ,4 : 8 ।

1263 विीं, 4: 11।

1264 15/7

1265 10/41

1266 9/34 14/27 18/65 ।

1267 भगवद्गीता पर रामानुजभाव्य ,13 : 12।

1268 7/25

 यि समझनेलगते िै कक म ैंअर्दश्य से अब दर्नश का पवषय बन गया िंूं।"[1269] अत्न्तम पवश्लेषण में परब्रह्म का
पुरुषोत्तमरूप धारण करना यथाथ शसे न्यून िो जाता िै। इसमलए इस प्रकार का तकश करना अनुधचत िै कक गीता के
अनुसार अर्रीरी आममा यथाथतशा में र्रीरधारी ईश्वर की अपेक्षा तनम्न श्र्रेणी की िै, यद्यपप यि समय िै कक
गीता एक र्रीरधारी ईश्वर की कल्पना को धाममकश कायों के मलए अधधक उपयोगी समझती िै।

इससे पूव शकक िम गीता में प्रततपाहदत पवश्वर्ास्त्र के पवषय को िाथ में लें, िमें पुरुषोत्तम और कृष्ण की धारणाओं के पारस्पररक सम्बन्ध पर ध्यान देना िै तयोंकक यिीं ंआकर अवतारों का प्रश्न िमारे सामने आता िै।

कृष्ण और पुरुषोत्तम तया एक िी िैं अथवा कृष्ण उसकी केवल आंमर्क अमभव्यत्तत िै. यि एक ऐसा प्रश्न िै त्जसके पवषय में बिुत मतभेद िै। गीता में अवतारों की कल्पना का वणनश िै। यद्यपप म ैंअजन्मा िू और अपने सार रूप में अक्षय िूँडतो भी सब प्राणणयों का प्रभु िंूं और अपनी प्रकृतत पर पूरा अधधकार रखते िुए म ैं अपनी माया से जन्मड लेता िूँ ।1270 साधारणतया सब अवतार परब्रह्म के अंर् या कला रूप में िी व्यततरूप िैं ककन्तु ुभागवत कृष्ण को अपवादरूप बतातेिुए उसे पूणव्शयतत या पोडर्कलापूण शकरूया िै ककन्तेिु, "कृष्णस्तु ु भगवान् ्स्वयम् ्।" कृष्ण का जो रूप वणनश ककया जाता िै। वि उसकी पूणतशा का उपलक्षण या संकेत करने ेवाला िै। उसके मसर पर जो मोरपंख का मुकुट िै यि धचत्रा पवधचत्र रंगों के िोने ेसे मनुष्य की र्दत्ष्ट को आप्लापवत कर देता िै। उसका वग शआका की भातत श्याम िै, वन्य फूलों से गुथी िुई माला सौरजगत् ्तथा नक्षत्रमण्डल के वैचव की प्रतीक िै। बांसुरी जो वि बजाता िै वि िै त्जसके द्वारा वि अपना सन्देर् देता िै। पीतवस्त्र जो उसके र्रीर का पररधान िै उस प्रकार् के प्रभामण्डल का प्रतीक िै जो सारे अन्तररक्ष में व्याप्त िै। उसके वक्षःस्थल पर जो धचह्न िै वि भतत की भत्तत का प्रतीक िै, त्जसे वि मनुष्य जातत के प्रतत प्र्रेम के कारण ब्र ेगौरव के साथ धारण ककये िुए िै। वि भततों के हृदय में तनवास करता िै और मनुष्य-जातत के प्रतत उसका आकषणश इतना अधधक िै कक उसके दोनों पैर जो इस आकषणश के प्रतीक िैं, एक-दूसूरे के ऊपर रखे िुए िुए िैं त्जससे कक उसे पूरी र्दढ़ता प्राप्त िो सके। र्ंकर और आनन्दधगरर कृष्ण को सवोपरर ईश्वर की केवल आमर्क अमभव्यत्तत के रूप में िी मानते िैं।"[1271] गीता के रचतयता की सम्मतत में कृष्ण पुरुषोत्तम िै। "मेरे सवोपरर रूप से अनमभज्ञ िोने ेके कारण सब प्राणणयों के मिान अधधपतत मुझको, मनुष्य-र्रीर धारण ककये िुए देखकर, मूख शलोग गलत समझने लगते िैं।"[1272]

अवतारों की कल्पना मनुष्य जातत के मलए एक नया आध्यात्ममक सन्देर् प्रस्तुत करती िै। अवतार संघषर्शील देवता िैं जो पाप, ममृयु और पवनार् के पवरुद्ध संघष शकरते िैं। "जब- जब धम शके प्रतत ग्लातन और अधम शकी वृद्धूध िोती िै, म ैंअपनेको सृजृन करता िंूं। म ैंयुग-युग में सज्जजनों की रक्षा के मलए और दुजुनशों के

1269 7:24

1270 4: 6 ।

1271 "अंर्ेन सम्बभूवू", अथात्श ्अंर् से उमपन्न । र्ंकर। इस पर टीका करतेिुए आनन्दधगरर किते िैं कक यि एक धाततमय रूप िै जो अपनी इच्छा से मसरजा िै- "स्वेच्छातनममतेन मायामयेन स्वरूपेण ।"

1272 9:11 ।

नार् के मलए तथा धम शकी स्थापना के मलए जन्म धारण करता िंूं।"[1273] यि आध्यात्ममक जगत् की व्यवस्था को अमभव्यतत करनेवाली वात्मता की रैली िै। यहद ईश्वर िमारी दृत्ष्ट में मनुष्य का रक्षक िै तो जब कभी पापरूप र्ततयां मनुष्य-जीवन के मूल्य को नष्ट करने में प्रवृत्त िों उस ईश्वर को अवश्य प्रकट िोना चाहिए। हिन्दूधम शके पुराणरास्त्रों के अनुसार, जब कभी रावण या कंस जैसे पापपष्लोग प्रभुता प्राप्त कर लेते िैं तब इन्द्र, ब्रह्मा आहद नैततक व्यवस्था के प्रततननधध, भूमम के प्रततननधध समेत, (तयोंकक पृथ्वी की िी सबसे अधधक िातन िोती िै) स्वग शके दरबार में जाकर क्रन्दन करते िैं और संसार के ककसी मुत्ततदाता की मांग उपत्स्थत करते िैं। यों

तो त्राण का काय शतनरन्तर िी िोता रिता िै ककन्तु पवरेष अवसरों पर इस काय शके ऊपर अधधक बल देना िोता िै। ईश्वर की साधारणरूप आममामभव्यत्तत अधधक बलराली िी जाती िै जबकक संसार की व्यवस्था अधधक पापपष् िो जाती िै। अवतार से तामपय शईश्वर का मनुष्य रीर धारण करनेसे िै, मनुष्य का ईश्वररूप िो जाना निीं ंिै। यद्यपप प्रमयेक चेतन प्राणी में ईश्वर उतर आता िै ककन्तु यि अमभव्यत्तत अप्रकट रिती िै। देवीयर्ततसम्पन्न आममचेतन प्राणी और अज्ञानावृत्त प्राणी में भेद िै। मनुष्य भी अवतार के समान िै यहद विं संसार की माया का उल्लंघन करके अपनी अपूणतशा से ऊपर उि सके। संसार का कताश पुरुषोत्तम अपनेप्राणणयों से मभन्न निीं ंिै। दोनों का पृथक् अत्स्तमव निीं ंिै। यि अपनेको सम्पूण शसे बराबर प्रपवष्ट रखता िै। मनुष्य अपनेपौरुष को यथाथरूशप देकर पूणचेशतना को प्राप्त कर सकता िै। ऐसी अवस्था में यि एक िी बात िै, चािे तो िम यों किें कक ईश्वर मनुष्य के रूप में अपनेको सीममत कर लेता िै, अथवा यि कक मनुष्य ऊपर उिकर अपनी प्रकृतत के द्वारा कम शकरता िुआ ईश्वर तक पिुंच जाता िै। तो भी अवतार का अथ शसाधारणतया यि समझा जाता िै कक ईश्वर एक पवरेष प्रयोजन को लेकर इस पृथ्वी पर अपने को सीमा के अन्दर बांधकर अवतररत िोता िै और उस सीममत रूप में भी ज्ञान की पूणतशा रखता िै।

दार्तशनक बुद्धध अवतारों अथवा पूणतशा के आदरों का नाता संसार की मिान उन्नतत के साथ जोड़ती िै। उच्चश्रेणी की आममाएं, त्जन्िोंनेप्रततननधधरूप युगों का अपनेअन्दर केन्द्रीकरण ककया, एक पवरेष अथ शमें ईश्वर के मूतरूशप या अवतार बन गई। इन अवतारी व्यत्ततयों के उदािरण-त्जन्िोंनेअपनी प्रकृतत के ऊपर उिकर श्रेष्िता प्राप्त की और अपनेब्रह्म तत्त्व से अन्तयाशमी ईश्वर की अमभव्यत्तत जनसाधारण के मलए की-मोक्षप्रात्प्त के मलए संघष शकरते िुए मनुष्यों के मलए अधधक उपयोगी मसद्ध िुए। उनसे मनुष्य उममसा प्राप्त कर सकता िै और उनके स्तर तव बढ़नेका प्रयमन कर सकता िै। ये एक प्रकार के आदर शढांचे िैं त्जनके अन्दर एक त्जज्ञासु आममा अपनेको ढालनेका प्रयमन करती िै, त्जससे कक यि ईश्वर की ओर बढ़ सके। जो कुछ एक पवरेष व्यत्तत नेयथा, ईसा अथवा बुद्ध ने, मसद्धध प्राप्त की उसकी पुनरावृत्त्त अन्य मनुष्यों के जीवन में भी िो सकती िै। इस भूलोक को पपवत्र करने अथवा ईश्वर के आदर शको प्रकार् में लानेकी चेष्टा को, इस भौततक जगत् के पवकास की प्रकक्रया में, कई श्रेणणयों के अन्दर से गुजरना पड़ा िै। पवष्णु के दस अवतार मुख्य-मुख्य मागों का तनदेर् करते िैं। मनुष्ययोतन से नीचेअथात्श जन्तु योतन के स्तर पर ममस्य, कच्छप और वराि के

1273 चौथाअध्याय।तेपवज्जजसुतुतभीदेणखए, मितनवणणतन्त्र ,4।

अवतार पर जोर हदया गया िै। इससे ऊपर उिकर िमें जन्तुजगत् ्एवंमनुष्यजगत् ्में संक्रमण ममलता िै, अथात्श ्नृमृसंिावितार, जो मनुष्य और मसंि का संयुततरूप िै। यि पवकास अभी पूणतशा को निीं ंपिुंचता जबकक मि वामनावतार की ओर आतिें। मनुष्यों में अवतार की पिली श्ेरणी अमयन्त उग्र, असंस्कृत और हिंसंक प्रवृपृत्त वाले परर्रुाम की िै त्जसने ेमनुष्य जातत का संिार ककया। इसके आगे चलकर िमें ममलतिैं दैवीय तथा अध्याममवृपृत्त वाले मयादशा पुरुषोत्तम राम का अवतार, जो गृिस्थ-जीवन की पपवत्रता का तथा प्ेरममय जीवन का आदर् शप्रस्तुत करता िै, और कृष्णावतार, जो िमें संसार के युद्धक्षेत्र में सािस के साथ प्रवेर् करने ेका उपदेर् देता िै; उसके बाद बुद्ध का अवतार िमें ममलता िै, जो जीवमात्र के मलए करुणा के भाव से ओत-प्रोत िोकर मनुष्य-जातत के मोक्ष के मलए कम शकरता िै। इसके बाद भी एक अवतार, जो अत्न्तम अवतार िोगा, अभी आने े वाला िै। यि रणवीर ईश्वर का रूप कत्ल्क िोगा, जो िाथ में र्स्त्र लेकर पाप और अन्याय के पवरुद्ध युद्ध करेगा। मनुष्य जातत के मिान संकटकालों में ये अवतार िुए िैं।

6. पररवतनशमय जगत् ्

गीता में माया की कल्पना का उधचत स्थान तया िै यि जानने के मलए यि भी जानना आवश्यक िै कक ककन-ककन मभन्न अथों में माया र्ब्द का प्रयोग ककया गया िै, और उन सबके पवषय में गीता का अपना तया अमभप्राय िै। (1) यहद सवोपरर यथाथसशत्ता के ऊपर संसार की घटनाओंका कोई प्रभाव निीं ंपड़ता, तब उतत घटनाओं के कारण की व्याख्या एक रिस्यमय समस्या बन जाती िै। गीता का रचतयता इस अथ शमें माया र्ब्द का प्रयोग निीं ंकरता, भले िी उसके पवचारों द्वारा यि उपलक्षक्षत तयों न िोता िो। एक से चली आई ककन्तु अयथाथ शअपवद्या उतत ग्रन्धकार के मन में प्रवेर् निीं पा सकती। (2) किा गया िै कक र्रीरधारी ईश्वडर सत् ् और और असत् ्को ब्रह्म की तनपवकशाररता को, एवं ंपररणमन के पवकार, पवकक्रया या पररवतनश को भी को भी अपनेअन्दर धारण करता िै।'[1274] माया एक ऐसी र्त्तत िै त्जसके द्वारा वि पवकारवान, प्रकृतत को उमपन्न करता िै। यि र्त्तत िै, अथवा ईश्वर की कक्रयार्ीलता िै अथवा आममपवभूतत िै, जो आममपररणमन की र्त्तत िै। इन अथों में ईश्वर और माया परस्पर एक-दूसूरे पर तनभरश िैं और दोनों िी अनाहद िैं।1275 गीता में सवोपरर ब्रह्म की इस र्त्तत को 'माया' किा गया िै।'[1276] (3) चूंकक ईश्वर पवश्व की उमपपत्त में अपनेदो तत्त्वों, प्रकृतत और पुरुष, (प्रकृतत और चेतना) के द्वारा समथ िोता िै। इसमलए उन्िें ईश्वर की माया (तनम्न तया उच्च श्ेरणी की) किा गया िै।'[1277] (4) धीरे-धीरे आगे चलकर माया का अथ शतनम्न श्ेरणी की प्रकृतत िो गया, तयोंकक पुरुष को ऐसा बीज बतलाया गया िै त्जसे प्रभु परमेश्वर प्रकृतत के गभ शमें प्रवेर् कराता िै और त्जससे पवश्व की उमपपत्त िोती िै (5) चूंकक यि अमभव्यत्ततरूप जगत् ्मरणधमाश मनुष्यों की दृत्ष्ट से यथाथ शको तछपाता िै, इसमलए इसे भ्ांततरूप

1274 9:19 ।

1275 देणखए र्ात्ण्डल्यसूत्र , 2: 13 और 15 ।

1276 8/61; 4/6 ।

1277 4:16 ।

किा गया िै।[1278] यि जगत् ्अपनेआपमें भ्रांततरूप निीं ंिै, यद्यपप इसे केवल प्रकृतत का यांबत्रक पररणामस्वरूप समझकर, जो ईश्वर के साथ असम्बद्ध िै, िम इसके दैवीय तत्त्व को साक्षात् ्करने ेमें असफल रितेिैं। यिी भ्रांतत का मूल बन जाता िै। दैवीय माया अपवद्यामाया बन जाती िै। यि केवल िम मरणधमाश मनुष्यों के मलए िी ऐसी िै, तयोंकक िम समय से दूरू िैं। ईश्वर के मलए, जो इसका पूण शज्ञान रखता िै और इस पर तनयन्त्रण रखता िै, यि पवद्यामाया िै। मनुष्य के मलए माया पवपपत्त और दुुःख का कारण िै, तयोंकक यि एक भ्रांत, आंमर्क चेतना का पोषण करती िै और उस अवस्था में पूण शयथाथतशा पर से चेतना को ग्रिण करने ेकी र्तत का प्रभाव मर्धथल िो जाता िै। ईश्वर माया के गिन आवरण में ढका िुआ प्रतीत िोता िै।[1279] (6) चूंकक यि जगत् ्ईश्वर का केवल कायरूशप िी िै, और इसका कारण िै ईश्वर, और चूंकक िर जगि कारण काय शकी अपेक्षा अधधक यथाथ शिोता िै, इसमलए इस जगत् ्को भी ईश्वररूपी कारण से न्यूनतर यथाथ शकिा गया िै। जगत् ्की उतत सापेक्ष अयथाथतशा की पररणमन की प्रकक्रया के आममपवरोधी स्वरूप में भी पुत्ष्ट िोती िै। इस आनुभपवक जगत् ्में पवरोधी र्त्ततयों का एक संघष शिै, और यथाथ शसत्ता सब पवरोधी र्त्ततयों के ऊपर िै।'[1280]

इस जगत् ्के पररवतनश केवल कल्पनारूप िैं-इस पवषय का कोई संकेत गीता में निीं ंपाया जाता िै।"[1281] यिां ंतक कक र्ंकर का अद्वैतवाद भी जगत् ्के यथाथ शपररवतनशों को स्वीकार करता िै, केवल प्रारत्म्भक पररवतनश को अथात्श ्ब्रह्म के जगत् ्के रूप में पररवतनश को, वि केवल प्रतीततमात्र अथवा पववत शसमझता िै। इस जगत् ्का सवोपरर पुरुषोत्तम से उद्भव अथवा तनःसरण यथाथ शिै; केवल अत्न्तम परमरूप के र्दत्ष्टकोण से यि जगत् ्यथाथ शनिीं ंिै, तयोंकक यि सदा िी परस्पर द्वन्द्वरत रिता िै। गीता इस मत का खण्डन करती िै कक "यि जगत् ्ममथ्या िै, इसका कोई तनत्श्चत आधार निीं ंिै, इसका कोई र्ासक निीं ंिै केवल इच्छा के कारण तत्त्वों के परस्पर ममलने से यि बन गया िै और कुछ निींइमयाहद।"[1282] इसका तामपय शयि िुआ कक, गीता के अनुसार, इस जगत् ्में जो पवकास िमें र्दत्ष्टगोचर िोता िै वि यथाथ शिै और ईश्वर उसका अधधष्ठाता िै। यि किना अनुधचत िोगा कक गीता इस जगत् ्को उसी समय तक यथाथ शमानती िै जब तक कक िम इसमें रितेिैं। ऐसा कोई संकेत निीं ंिै कक यि जगत् ्अनन्त व असीम के हृदय का एक कष्टमय स्वप्नमात्र िै। गीता के अनुसार, इस पररणमनरूप जगत् ्में रितेिुए कालातीत् ्आममसत्ता रूपी अमरमव को प्राप्त ककया जा सकता िै। िमारे सामने सवश्रेेशष्ठ पुरुषोत्तम का र्दष्टान्त िै जो इस जगत् ्का उपयोग बबना जगत् ्के द्वारा भ्रान्त िुए करता िै। जब िम माया से ऊपर उठते िैं तो काल, देर् व कारण िमसे दूरू निीं ंिो जाते। जगत् ्सवथशा पवलुपुत निीं ंिो जाता ककन्तुमात्र अपनेआर्य में पररवतनश कर लेता िै।

1278 7:14;7:251 ।

1279 वि माया जो अपवद्या को उमपन्न निीं करती, सात्मवकी माया किलाती िै। जब इसमें मल आ जाता िै, तब वि अज्ञान अथवा अपवद्या को जन्म देती िै। प्रथम प्रकार की माया में प्रततबबत्म्बत ब्रह्म ईश्वर िै और दूसूरे प्रकार की माया में प्रततबबत्म्बत ब्रह्म जीव अथवा जीवाममा िै। यि अवाचशीन वेदान्त िै। देणखए, पंचदर्ी, 1: 15-17। गीता इस मत से अनमभज्ञ िै।

1280 2: 45, 7 :28 ।

1281 3 :28, 4: 6,7: 14, 14: 23।

1282 16:8 ।

पुरुषोत्तम कोई दूरूस्थ चममकार का पवषय निीं ंिै जो एक सवोपरर अवस्था में िम सबसे दूरू िो, बल्ल्क यि प्रमयेक मनुष्य और पदाथ शके र्रीर और हृदय में अवल्स्थत िै। वि परस्पर सम्बद्ध सब जीवनों का तनयन्ता िै। आममा और भूत द्रव्य का यि जगत् ्उसके सत्त्व का पररणाम िै। ईश्वर र्ून्य से जगत् ्का तनमाणश निीं ं करता, वरन् ्अपनेसमस्वरूप से करता िै। प्रलयकाल में समस्त जगत् ्ल्जसमें जीव भी सल्म्ममलत िैं, एक सूक्ष्म अवस्था में उसी दैवीय सत्ता के अन्दर पवद्यमान रिते िैं। अमभव्यत्तत अवस्था में वे ेएक-दूसूरे से पृथक् रिते िैं तथा अपने आहद स्रोत को भूले रिते िैं। यि सब उसका परम योग िै। इस जगत् ्की तुलना एक ऐसे वृक्ष से की गई िै ल्जसकी 'ज़ें ऊपर की ओर और र्ाखाएं नीचेकी ओर' िैं।'[1283] प्रकृतत जगत् ्के सामान्य रूप का नाम िै। बराबर रिनेवाली प्रततद्वन्द्पवताएं, नाना प्रकार के जीवों का एक-दूसूरे को खा जाना, पवकमसत िोना परस्पर भेदभाव करना, संगिन करना और भौततक पदाथों में जान डालना-ये सब काय शप्रकृतत के िैं। "पृथूवी, जल, अल्न, वायु, आकार्, मन, बुद्धध और अिंकार-ये आि पवभाग मेरी प्रकृतत के िैं।" यि ईश्वर का तनम्न श्रेणी रूप िै। और जो रूप इन सबको र्त्तत देता िै और जगत् ्को धारण करता िै, वि उसका उच्चतर रूप िै।1284 रामानुज मलखते िैं "प्रकृतत, अथवा पवश्व का भौततक स्वरूप, सुख प्राल्प्त का पवषय िै; और वि जो इससे मभन्न िै, जोकक ज़ और सुखप्राल्प्त का पवषय िै- जीवन का तत्त्य जीव िै, और यि एक अन्य व्यवस्था का िै। यि तनम्नश्रेणी का सुख भोगने वाला और वृद्धध सम्पन्न आममाओं के रूप में िै।" गीता रामानुज के वचायतशा पवषयक मत का समथनश करती िै-यहद िम इसकी परमतमय रूप पृष्िभूमम को दृल्ष्ट से ओझल कर दें और पुरुषोत्तम के पवचार पर बल दें, ल्जसका स्वरूप ततपरक िै अथातश चेतना और प्रकृतत। माला के मनके और रस्सी की उपमा, रामानुज के अनुसार, दर्ाशती िै कक ककस प्रकार "बुद्धध-सम्पन्न एवं ज़ पदायों का समूि दोनों िी अपनी कारण और काय श अवस्था में, जो मेरे र्रीर के रूप िैं, एक प्रकार की मणणयां ंिैं, जो एक रस्सी में पपरोई िुई िैं और जो मेरे आश्रय से लटक रिी िैं तथा ल्जनर्ें मेरा िी समस्वरूप आममा प्राप्त िै।"[1285]

श ्"ममैवांर्ो1286 जीवलोके... इस प्रकार का कथन, अथात्

में कक 'अंर्' अथवा भाग, केवल काल्पतनक अथवा भासमान अंर् का िी संकेत करता िै, भगवद्डगीता के रचतयता के वास्तपवक अमभप्राय के साथ न्याय निीं ंकरते, तयोंकक यि (जीवाममा) पुरुपोत्तम का यथाथरूशप िै। र्ंकर की ल्स्थतत उसी अवस्था में िीक मानी जा सकती िै जबकक उल्लेख अखण्ड ब्रह्म का िो, जो अंर् रहित िै। परन्तु उस अवस्था में पुरुषोत्तम भी काल्पतनक िै, तयोंकक उसमें भी अनामम का एक अंर् पवद्यमान िै। वास्तपवक जीवाममा एक कताश िै; इस प्रकार यि पवर्ुद्ध अमर आममा निीं अपपतु र्रीरधारी आममा िै जो ईश्वर की सीममत अमभव्यत्तत िै। उस स्वरूप के कारण जो यि अपने-आप स्वीकार करती िै, अथात्श ्इल्न्द्रयों और मन के कारण इसको पृथक् रखा गया िै। ल्जस प्रकार प्रकृतत का एक तनल्श्चत पररमाण, अवधध एवं स्फुरण िै, इसी प्रकार पुरुष भी एक तनल्श्चत सीमा और चेतना को प्राप्त करता िै। सवव्शयापी आममा एक मानमसक, र्त्ततक,

1283 15/11

1284 7 4-5, और भी देणखए भगवद्डगीता पर रामानुज भाष्य, 7: 4-5।

1285 भगवद्गीता पर रामानुजभाष्य, 7:7

1286 15:7 ।

 467 भौततक आवरण में सीमाबद्ध प्रसंग में अन्ततनपशवष्ट ि◌ो जाता ि◌ै। "पुरुष प्रकृतत के साथ संयुतत ि◌ोकर प्रकृतत के
गुणों का सुखोपभोग करता ि◌ै, और इसके जन्म एवं पाप या पुण्य का कारण ि◌ै, उन्ीिंगुणों के साथ इसका सम्बन्ध ि◌ै।"[1287]

7. जीवाममा

मनुष्य माया के अधीन ि◌ैं और बाह्य प्रतीततयों में खोये रिति◌ैं।1288 इस जगत् ◌्में मनुष्य अपनी अपूणतशा के कारण जन्म लेता ि◌ै। जब तक ि◌म समय का साक्षात् ◌्नि◌ींकरेंगे, जीवन-मरण के चक्र में घूमते रिने अतनवाय शि◌ै। जब ि◌म माया से ऊपर उिेगे और अपनेयथाथ शपद को पिचानेंगे तभी ि◌म अपनेइस पृथृतमव से छुटकारा पा सकेंगे। जीवाममा कोई भी आकृतत तयों न धारण करे, उसे ◌ेउससे ऊपर ि◌ी उिना ि◌ोगा। जीवाममा सदा ीि रूप बदलता ि◌ै। ककसी भी सान्त या सीममत रूप में उसके अनन्त स्वरूप की पूणतशा अमभव्यत्तत नि◌ीं ◌ंि◌ो सकती। यि बराबर अपनेसान्त रूप से ऊपर ि◌ी ऊपर उिता ि◌ै जब कक उसका यि पररणमन अपनेलक्ष्य तक नि◌ीं ◌ंपिुंच पाता, अथात्श ◌्सत्–्रूप में नि◌ीं ◌ंआ जाता, और सान्त अनन्त में जाकर पवलीन नि◌ीं ◌ंि◌ो जाता। सान्त संसार की प्रगतत का अन्त नि◌ीं ◌ंि◌ै। यि प्रगतत अनन्त की पूणतशा का साक्षामकार ि◌ै जो तदा बढ़ते ि◌ुए इत्च्छत पवषय के क्रमर्: समीप और समीपतर पिुंचता ि◌ै। पररणाम यि तनकला कक पररणमन तथा प्रकृतत के सम्बन्धों के ऊपर आधश्रत भेद केवल क्षणणक और अस्थायी ि◌ै। जब तक गीता का पवचार पुरुषोत्तम के स्तर पर रिता ि◌ै वि पुरुषों की तनमयता एवं अनेकता को स्वीकार करती ि◌ै। ऐसी अवस्था में सभी जीव र्रीरधारी पुरुषोत्तम के केवल अंर्मात्र ि◌ैं। परम समय की दृत्ष्ट से उनका व्यत्ततमव पवषय या प्रमेयरूपी तत्त्व के ऊपर तनभरश करता ि◌ै। इस भौततक जगत् ◌्में भी ऐसे ◌ेकम शजो पृथक् व्यत्ततमव का संकेत करते ि◌ैं, अमर एवं तनत्ष्क्रय आममा के कारण नि◌ीं ◌ं ि◌ैं, ककन्तु प्रकृतत की र्त्ततयों से ि◌ी उनकी उमपपत्त ि◌ोती ि◌ै। "प्रकृतत के गुण प्रमयेक मनुष्य को कुछ-न-कुछ कम श करने ◌ेके मलए बाधधत करते ि◌ैं।'[1289] यहद पुरुष सनातन, र्ाश्वत या तनमय ि◌ै तो यि सोचना कोई भ्रात्न्त न ि◌ोगी कक वे कताश भी ि◌ैं और एक-दूसूरे से मभन्न ि◌ैं। गीता में कि◌ा ि◌ै : "कम शसब प्रकृतत के गुणों के कारण तनष्पन्न ि◌ोते ि◌ैं। (ककन्तु) मनुष्य की आममा अिंकार से पवमूढ़ ि◌ोकर (मिो अथवा भ्रांतत को प्राप्त ि◌ोकर) यि समझने लगती ि◌ै कक करनेवाला में ि◌ूँ।" "गुणु तो गुणों के अन्दर वतमशान ि◌ै।"[1290] व्यत्ततमव की ममथ्याभावनां पदाथरूशपी ज्ञेये वस्तु की पररचातत के कारण ि◌ी उमपन्न ि◌ोती ि◌ै। तब यि स्पष्ट ि◌ै कक भेद का आधार अनामम अथात्श ◌्ज़ प्रकृतत ि◌ैजबकक आममा सबमें, अथात्श ◌्'कुत्ते में और कुत्ते को खा जानेवाले चाण्डाल दोनों में' एकसमान ि◌ै।1291 इन सब वातयों को बलपूवकश अपनेअद्वैत को मसद्ध करने ◌ेके मलए प्रयोग में लाना र्ंकर के मलए बिुत आसान ि◌ो जाता

[1287] 13 : 21।

[1288] 7:13 26,271

[1289] 3/5

[1290] 3:27-28।

[1291] 5:18:13:2.22 ।

 ि ै। वेकिर्तिं: "और आममा के अन्दर ऐसे कोई भेद निीं ंि ैं त्जनर्िं अन्मय-पवर्ेषे वा परमरूप में

तात्त्वक भेद किा

जा सके, तयोंकक र्रीरों के नानामव के रिने ेपर भी आममाओं के अन्दर इस प्रकार के भेदों को मसद्ध करने ेवाली कोई साक्षी उपलब्ध निीं ंिोती। इसमलए ब्रह्म समांग अथवा सरूप, एवं एकमात्र ि ै।"[1292] व्यत्ततभेद के प्रकटे लक्षणों के कारण िमें यि धारणा न बना लेनी चाहिए कक इस जंगत् ्में पृथृतमव अथवा मभन्नता ि ै, तयोंकक मनुष्यों में मभन्नता केवल मभन्न-मभन्न भौततक र्रीरों के कारण िी ि ै। इसी प्रकार का कथन मिाभारत में भी आता ि ै, "गुणों से बद्ध मनुष्य जीवाममा ि ै; और जब उन गुणों से वि स्वतन्त्र िो जाता ि ै तो विी परमाममा अथवा सवोपरर आममा ि ै।1293 ऐसे वातयों की व्याख्या जो आममा एवं सवोपरर आममा के तादामम्य की घोषणा करते ि ैं, रामानुज ने एक अन्य प्रकार से की ि ै। उदिारण के मलए "ब्रह्म के सवत्रश िाथ और पैर ि ैं और उसी ने सबको अपने अन्दर लपेट रखा ि ै।" इसका आर्य रामानुज के मत में यि ि ै कक "आममा का जो पवर्ुद्ध स्वरूप ि ै वि र्रीर और ऐसे िी अन्यान्य पदाथों के साथ सम्बन्ध-पवरहित िोने ेपर सब वस्तुओंमें व्याप्त रिता ि ै।"[1294] ककन्तु आगे चलकर जिां गीता में आता ि ै कक प्रमयेक के अन्दर जो पुरुष ि ै वि साक्षी, आदेर् देने वाला, धारण करनेवाला एवं ंसुख का उपभोतता ि ै, यि मिान प्रभु और सवोपरर आममा ि ै, "तब रामानुज असमंजस में प़ जाते ि ैं। "इस प्रकार का पुरुष उन गुणों के कारण जो प्रकृतत की उपज ि ै, अपनेर्रीर के सम्बन्ध में िी र्ासक बनता ि ै और उच्चतम आममा भी इसी र्रीर के कारण बनता ि ै।"[1295]

ककसी एक प्रासंधगक, एकवचन अथवा बिुवचन के प्रयोगमात्र से िम आममा के परमस्वरूप के पवषय में कोई अनुमान निीं ंकर सकते। जब उसके सांसाररक या आनुभपवक पक्ष पर बल िोता ि ै तो बिुवचन का प्रयोग ममतता ि ै। "ऐसा कोई काल निीं ंथा जबकक म ैं निीं ंथा, अथवा तुम निीं ंथे,े अथवा प्रजाओं के ये र्ासक निीं ंथे; अथवा िम सबमें से कोई भी इसके पश्चात् ्न रिेगा, सो भी निीं ंि ै।"[1296] उतत कथन के आधार पर आममाओंका सनातन नानामव के पररणाम पर पिुंचना बिुत सरल ि ै। रामानुज किते ि ैं कक "भगवान स्वयंप्रकट करता ि ै कक आममा का भगवान से भेद एवं ंअन्य आममाओंसे भी भेद उच्चतम यथाथतशा ि ै।" दूसूरी ओर र्ंकर बलपूवकश किते ि ैं कक "आममा के िी रूप में िम बत्रकाल अथात्श ्भूत, वतमशान और भपवष्यत् ्में सनातन या र्ाश्वत ि ैं।" उनका मत ि ै कक बिुवचन का प्रयोग र्रीरों के िी सम्बन्ध में ककया गया ि ै, जो मभन्न-मभन्न ि ैं, जैसाकक अगले श्लोक में स्पष्ट ि ै जो पुनजन्शम के पवषय में ि ै। आममा के सम्बन्ध में यि बिुवचन का प्रयोग निीं ंककया गया ि ै। आध्यात्ममक र्दत्ष्ट से आममा केवल एक िी ि ै।1297

1292 भगवद्गीता पर र्ांकरभाष्य,5/19।

1293 र्ात्न्तपव,श 187, 24।

1294 भगवद्गीता पर रामानुजनाप्य, 12: 13 ।

1295 भगवदडगीता पर रामानुजभाष्य, 13 28, और भी देणखए 13/33 ।

1296 भगवद्गीता पर रामानुज का पाष्य और भगवद्गडीता पर र्ांकर भाष्य ,2/12

1297 8:4, 13:31 ।

परमपद की प्राप्त से पूव शपुनजन्शम िोता रिता िै, यि गीता का मत िै। अपूणतशा के कारण उमपन्न जन्म का मृमृयु में और मृमृयु का जन्म में पररणत िोना आवश्यक िै। जन्म और मृमृयु का चक्र वैसा िी िै जैसा कक र्ैर्वकाल, युवावस्था और उसके पश्चात् ्वृद्धावस्था मनुष्य के र्ीर में आते िैं।

"जैसे मनुष्य पुराने ेकपों को बदलकर नये कप़ ेधारण करता िै,
वैसे िी जीण शर्रीरों को छोक़र वि नये र्ीरों को धारण कर लेता िै।"[1298]

मृमृयु तो केवल एक घटना िै, जो घटनात्स्थतत को बदल देनेमात्र का काय शकरती िै, अन्य कुछ निीं। यि वाद्यमन्त्र, त्जसके द्वारा गायक अपनी संगीतकला को अमभव्यतत कर सकता िै, िीक रिना िी चाहिए। वृद्धावस्था में र्त्ततयों के क्रममक ि्रास, या रोगजतनत सामतयक अर्ततता की प्रततकक्रया से मन के अमत्त:स्तल में, र्ारीररक रूप में, प्रततकक्रया िोती िै। जब यि र्ीर मर जाता िै तो आममा को उसके स्थान पर एक नया साधन हदया जाता िै। िमारा जीवन िमारे साथ मृमृयुको निीं ंप्राप्त िोता जब यि र्ीर जीण-र्ऱ्ीण शिो जाता िै, तब वि दूसूरा र्ीर धारण कर लेती िै। जन्म ककस प्रकार का िो यि इसके ऊपर तनभरश करता िै कक िमने ककस प्रकार का चररत्र तनमाणश ककया िै। िम ज्जयोततमयश लोकों में जन्म लेते िैं, अथवा मनुष्य की योतन में इस मृमृयलशोक में जन्म लेते िैं, अथवा पुर्योतन में जन्म लेते िैं, अपने चररत्र के आधार पर िमनेउसे जैसा भी ढाला िोगा अथात्श ्िममें सत्त्व, रजस् ्एवं ंतमस् ्आहद त्जस गुण की प्रधानता िोगी उसी के अनुसार िम जन्म ग्रिण करेंगे। प्रमयेक पग जो िम बढ़ातेिैं उसका प्रभाव त्स्थर एवं िमारे मलए सुरक्षक्षत रूप में रिता िै। जब अजुनश कृष्ण से ऐसे व्यत्ततयों के भाग्य के पवषय में प्रश्न करता िै जो इस जन्म में पूणतशा पाने ेमें असमथ शरितेिैं कक तया उनका सवथशों नार् िो जाता िै, तब कृष्ण उत्तर देते िैं कक कोई भी मनुष्य जो जनता का कल्याण करता िै, कभी पवनार् को प्राप्त निीं ंिोता, बत्ल्क वि दूसूरा जन्म ग्रिण करता िै "और उसमें वि अपने पूवजशन्म की मानमसक पवर्ेषताओं को पुनः प्राप्त कर लेता िै और उन पवर्ेषताओं को लेकर वि पूणतशा की प्राप्त के मलए कफर से प्रयमन करता िै।"[1299] प्रमयेक मित्त्वपूण शकाम सुरक्षक्षत रिता िै। यहद मनुष्य सवोपरर ब्रह्म को अपने हृदय में ध्यान करता रिे तो पथभ्रष्ट निीं िो सकता। एक जन्म के बाद दूसूरा और कफर तीसरा इस प्रकार यि क्रम बना रिता िै जब तक कक लक्ष्य की प्राप्त निीं ंिो आती।'[1300] सूक्ष्म र्ीर, त्जसमें इत्न्द्रयों की र्त्ततयां ं और मन रितेिैं, मृमृयु के पश्चात् ्भी बचा रिता िै, और उसीमें मनुष्य के चररत्र-सम्बन्धी संस्कार सुरक्षक्षत रिते िैं।1301 पुनजन्शम एक प्रकार का साधनास्थल िै त्जसके द्वारा िम अपने को पूण शबना सकतेिैं। गीता में देवताओं

[1298] 2/22 सरएडपडवनअनाल्शडकाअनुवाद। और भी देणखए 2 13: 2:27

[1299] 6:44-45 ।

[1300] 7-19 ।

[1301] 15: 8।

के माग शका भी उल्लेख िै, त्जसमें िोकर संसारी पुरुष गुज़रते िैं।[302] तीसरा माग शपापपयों का िै, उसका भी वणनश िै।[303]

8. नीततर्ास्त्र

मनुष्यों की परस्पर-पवमभन्नता, उनकी सान्तता और उनका व्यत्ततमव, यि सब केवल आनुषंधगक िै और यि वस्तुरूप में समय निीं। कोई भी मनुष्य र्ान्त के रिस्य को, जो एकमात्र स्थायी और तनरापद िै, प्राप्त निींकर सकता जब तक कक वि भासमान आममतनभरशता अथवा पृथृतमव के बन्धन को निीं ्तो् देता। यथाथ शमोक्ष से तामपय शिै आममा का ऊपर उिना अथवा उच्च श्रेणी की सत्ता के साथ संयुतत िोना, चािे वि तकश द्वारा या कक प्रेम अथवा जीवन द्वारा मसद्ध िो। त्जस लक्ष्य पर पिुंचने ेके मलए िम पुरुषाथ शकरते िैं वि ब्रह्ममव की प्रात्प्त िै। अथवा ब्रह्म के साथ सम्पकश िै, "ब्रह्मसंस्पर्म् श।्" यिी एकमात्र परम उमकष शिै।[1304]

यि सब मनुष्यों के सामथ्य शमें िै कक वि पाप का नार् कर सकें, र्ारीररक भ्रष्टाचार को दूरू कर सकें, तनम्न श्रेणी की प्रकृतत का मयाग कर सकें तथा वासना की दासता से इत्न्द्रयों की रक्षा कर सकें। संघष शमें प्रवृतृत प्रमयेक मनुष्य को चाहिए कक वि अपनी स्वतन्त्र दृत्ष्ट से समय का साक्षामकार करने,े अपनी स्वतन्त्र बुद्धध से समय का तनणयश करने ेऔर अपनेसच्चेहृदय से समय को प्रेम करने ेके मलए तनरन्तर प्रयमन करता रिे। स्वयंप्राप्त समय का अधाश भी अन्यों के द्वारा प्राप्त पूण शसमय से किीं ंअधधक मूल्यवान िोता िै।

मनुष्य बुद्धध, इच्छा और भावना इन सबका सत्म्मश्रण िै, और इस प्रकार अपनी आममा के समय प्रकार् का साक्षामकार इन्िीं िंसबके द्वारा प्राप्त करने ेकी चेष्टा करता िै। वि सवोपरर यथाथसशत्ता के ज्ञान द्वारा, अथवा ककसी पिुंचे िुए मिाममा पुरुष के प्रतत प्रेम व भत्तत के द्वारा अथवा अपनी इच्छा को ककसी दैवीय प्रयोजन के अधीन करके लक्ष्य को प्राप्त कर सकता िै। उसके अपने अन्दर एक प्रकार की प्रेरणा िै जो उसे बाध्य करती िै कक वि उतत मभन्न-मभन्न हदर्ाओंमें इस अल्पज्ञ आममा से ऊपर उि सके। िम चािे त्जस दृत्ष्टकोण को भी अंगीकार करें, लक्ष्य सबका एक िी िै। यि िमारे नाना पक्षों की एकसमान क्षमता िी िै त्जससे समय की प्रात्प्त िोती िै, सौन्दय शका तनमाशण िोता िै और िमारा आचरण तनदोष िोता िै। गीता इस पवषय पर पवर्ेष बल देती िै कक चेतनामय जीवन के ककसी भी पक्ष को िम भुला निींसकते, अथाशत् ्सवतशोमुखी उन्नतत की आवश्यकता िै। नाना प्रकार के दृत्ष्टकोण या पक्ष एक अपवकल एवंअखण्ड दैवीय जीवन में जाकर पूणतशा को प्राप्त िोते िैं। ईश्वर स्वयंसतु, धचत्त और आनन्द िै; यचाय शसमय एवं ंआनन्द स्वरूप िै। वि परब्रह्म ज्ञान की प्रात्प्त के मलए पुरुषाथ शकरने ेवालों के मलए अपनी अमभव्यत्तत एक र्ाश्वत प्रकार् के रूप में करता िै जो तनमलश,

---

[1302] 8: 23,26 ।

[1303] 9 :12:16:19-21 ।

[1304] 6 :20, 25, 27 और 28।

स्वच्छ ि और मध्याह्न के सूय शकी भांतत पूण शज्जडयोततमयश ि. त्जसमें अन्धकार का लेर्मात्र निीं ंि, उन व्यत्ततयों के मलए जो पुण्यड अजनश करने ेके मलए पुरुषाथ शकर रि िैं, वि र्ाश्वत, न्याय परायण, दृढ एवं ंतनष्पक्ष रूप में प्रकट िोता ि और इसी प्रकार ऐसे व्यत्ततयों के मलए जो भावनाप्रधान ि, वि र्ाश्वत प्रेम और पपवडत्रता के सौन्दयरूशप में प्रकट िोता ि। ठीक त्जस प्रकार ईश्वर अपनेअन्दर ज्ञान, ज्ञान, साधुता और पपवत्रता सबको समापवष्ट रखता ि, उसी प्रकार मनुष्यों का उद्देश्य भी आममा की पूणतशा प्राप्त करने ेका िोना चाहिए। जब िम अपनेगन्तव्य लक्ष्य तक पिुंच जाते िैं तो माग शकी रुकावटें कफर अपना काय शकरना छोड़ देती िैं। यि समय ि कक मनुष्य के इस र्ान्त जीवन में धचन्तडन और कम शमें एक प्रकार का पवरोध प्रतीत िोता ि, ककन्तु यि केवल िमारी अपूणतशा का लक्षण ि। जब कृष्ण से पूछा गया कक िम कौन-से पवर्ेष माग शका अवलम्बन करें तो वे स्पष्ट रूप में किते िैं कक इसके मलए िमें परेर्ान िोने ेकी जरूरत निीं ंतयोंकक मभन्न-मभन्न माग शअन्त में जाकर मभन्न निीं ंरिते अपपतुएक िी सामान्य लक्ष्य की ओर िमें ले जाते िैं और अन्त में एक िी प्रतीत िोतेिैं, भले िी वे बीच में एक-दूसूरे को काटते िुए प्रतीत िोतेिैं। मनुष्य खण्डरूप में काय शनिीं ंकरता। उन्नतत परस्पर सम्वद्ध और असम्वद्ध पवकास की अवस्था ि। ज्ञान, मनोभाव और इच्छा आममा की एकमात्र और समान गतत के मभन्न-मभन्न रूप िैं।

गीता ने अपनेसमय के प्रचमलत पवमभन्न आदर्ों में सामंजस्य स्थापपत करके उनके अन्दर जिां ंकिीं सीमा का उल्लंघन िुआ उसे सुधारने े का प्रयमन ककया। बौद्धधक त्जज्ञासा, श्रमसाध्य आमममयाग, उमकडट भावनामयी भत्तत, कमकशाण्ड का अनुष्ठान तथा यौधगक प्रकक्रयाओं के बारे में यि समझा जाता था कक ये दैवीय र्तत के पास पिुंचाते िैं।'[1305] गीता इन सबका समन्वय करती ि और इनमें से प्रमयेक का कौन-सा उधचत स्थान ि तथा तया मित्त्व ि इसे दर्ातशी ि। इसके मत में संयुतत मोचे का प्रभाव सदा िी िोता ि, ऐसे े समन्वयकारक आदर् शसे, जो उतत सव पवधानों का लक्ष्य ि, पवश्व के साथ मनुष्य की घतनष्ठता बढ़ती जाती ि, त्जसका अधधष्ठाता पुरुषोत्तम ि।

मधुसूदन सरस्वती के पवचार में गीता उपतनषदों में वणणतश तीनों पवधानों, अथात्श ्कम,श उपासना और ज्ञान को स्वीकार करती ि, और क्रमर्: प्रमयेक के ऊपर छः अध्यायों में प्रततपादन ककया गया ि। इसमें समय का अंर् भले िी जो कुछ िो, ककन्तु ुयि चेतनामय जीवन के तीन ब्र ेपवभागों पर बल देती ि। गीता इस पवचार को प्रश्रय देती ि कक मभन्न-मभन्न श्रेणी के मनुष्यों के मलए मभन्न-मभन्न माग शआध्यात्ममक ज्ञान प्राप्त करने ेके मलए पवहित िो सकतेिैं; जैसे, कुछेक नैततक जीवन की उलझनों के माग शसे, दूसूरे बुद्धध में उमपन्न संर्यों के

1305 तुलना कीत्जए प्लाहटनस: "इस गन्तव्य उद्देश्य (आध्यात्ममक ज्ञान) तक पिुंचने के मभन्न-मभन्न माग शिैं: सौन्दय श का प्रेम जो कपव को प्रेरणा देता ि; वि एकमात्र सत्ता के प्रतत भत्तत और वि पवज्ञान की ऊंचाई त्जससे दार्तशनक के अन्दर मित्त्वाकांक्षा उमपन्न िोती ि; यि प्रेम और वे प्राथनशाएंत्जनके द्वारा एक भतत और व्याकुल आममा, अपनी नैततक पपवत्रता के कारण पूणतशा को प्राप्त करने के मलए प्रवृतृत िोता ि। ये सब मिान प्रमुख माग शिैं जो वैयत्ततक जीवन से ऊपर उस ऊचाई तक ले जाने वाले िैं जिांपिुंचकर िम उस अनन्त के एकदम तनकट में त्स्थत िो जातेिैं, जो मानो आममा की गिराई के अन्दर से भासमान िो रिा ि।" (फ्लाकस को मलखा गया पत्र।)

द्वारा, और तीसरे पूणतशा की प्रात्प्त के मलए जो भावनामयी मांग मनुष्य के अन्दर उमपन्न िोती िै उसके कारण, आध्यात्ममक ज्ञान की ओर प्रवृत्तृ िोतीं।

9. ज्ञानमाग श

एक ताककशक मत्स्तष्क आंमर्क से सन्तुष्ट न रिकर वस्तुओं की सम्पूणतशा को ग्रिण करने ेका प्रयमन करता िै और जब तक वि समय को निीं ंप्राप्त कर लेता तब तक चुप निीं ंबैिता। इसको उस अममट श्रद्धा से प्रोमसािन ममलता िै त्जसका अत्न्तम लक्ष्य परमसमय को प्राप्त करना िै।'[1306] गीता दो प्रकार के ज्ञान का प्रततपादन करती िै-एक वि जो बुद्धध के द्वारा बाह्य जगत् ्के अत्स्तमव को समझने ेका प्रयमन करता िै, और दूसूरा यि जो अन्तर्दत्शष्ट के बल से इन भासमान घटनाओंकी श्रृंखला की पृष्िभूमम में जो परमतत्त्व िै उसे ग्रिण करता िै। मनुष्य की आममा जब ताककशक बुद्धध के अधीन रिती िै तो अपनेको प्रकृतत के अन्दर खो बैिने ेके प्रतत प्रवृत्तृ िोती िै और उसीकी गततपवधध के साथ अपना तादामम्य समझने ेलगती िै। इस जीवन के तथ्य को अथात् इसके उद्भव एवं ंवथाथतशा के ज्ञान को ग्रिण करने ेके मलए इसे ममथ्या ज्ञान के पार् से अपनेको मुतत करना आवश्यक िै। जीवन के पववरणों को बुद्धध के द्वारा जानने ेका नाम पवज्ञान िै, और यि साधारण ज्ञान से मभन्न िै, अथवा समस्त जीवन के सामान्य आधार का सम्पूण शज्ञान िै। ये दोनों एक िी पुरुषाथ शके दो मभन्न पक्ष िैं। समस्त ज्ञान ईश्वर का ज्ञान िै। पवज्ञान और दर्नश दोनों िी अनाहद-अनन्त आममा के अन्दर वस्तुओंके एकमव रूपी समय को पिचाननेका प्रयमन करते िैं। किा जाता िै कक पवज्ञान-पवषयक ज्ञान रजोगुणप्रधान िै एवं आध्यात्ममक ज्ञान सत्त्वगुणप्रधान िै। यहद िम भौततक पवज्ञान के आंमर्क तथ्यों को भूल से आममा सम्बन्धी पूण शतथ्य समझ लें तो िमें तनम्न श्रेणी का ज्ञान प्राप्त िोता िै त्जसमें तनम्नतम श्रेणी के तमोगुण का प्राधान्य रिता िै।1307 जब तक िम भौततक ज्ञान के स्तर पर रिते, आममपवषयक तथ्य केवल कल्पनामात्र रिता िै। अन्तरहित पररणमन समस्वरूप को आवृत् कर लेता िै। पवज्ञान उस अन्धकार को दूरू कर देता िै जो मन के ऊपर एक प्रकार का बोझ िै और अपनेभौततक जगत् ्की अपूणतशा को प्रदमर्तश करता िै, और अपनेसे सुदूरू जो सत्ता िै उसे प्राप्त करने ेके मलए तैयार करता िै। यि िमारे अन्दर नम्रता को भी अनुप्राणणत करता िै, तयोंकक इसके द्वारा िम सब कुछ निीं ंजान सकते। िम अतीत की पवस्मृतत और भपवष्य की अतनत्श्चतता के मध्य फंसे िुए िैं। पवज्ञान इस बात को स्वीकार करता िै कक पदाथों के आहद कारणों से पररधचत िोने ेकी काल्पतनक इच्छा करना, और मनुष्य जातत का अन्त तया िै इस पवषय पर कल्पना करना एक तनरथकश प्रयास िै। यहद िमें परम समय तक पिुंचना िै तो (भौततक) पवज्ञान के स्थान में दूसूरी िी साधना का आश्रय लेना िोगा। गीता की सम्मतत में 'पररप्रश्न' अथवा अनुसन्धान के साथ- साथ सेवा का भी मेल िोना आवश्यक िै। अन्तर्दत्शष्ट की र्तत के पवकास के मलए िमें मन को दूसूरी हदर्ा में घुमाने ेकी आवश्यकता िै अथात्श ्आममा के र्दत्ष्टकोण में पररवतनश िोना आवश्यक िै। अजुनश ने अपनेको साधारण र्दत्ष्ट के द्वारा समय के दर्नश में असमथ शपाया और इसमलए

1306 "ईश्वर के प्रतत त्जसे प्रेम िै वि सौभाग्यर्ाली िै, और यि अवस्था ज्ञान से प्राप्त िोती िै।" • (त्स्पनोडा) "कुछेक वत्ततयों की सम्मतत में पवश्व को समझने के मलए बौद्धधक प्रयमन देवमव को अनुभव करनेका मुख्य भाग िै।" (ब्रेडले)।

1307 8: 20-22 ।

कृष्ण से आध्यात्ममक ज्ञान के मलए हदव्य र्दत्ष्ट की याचना की।'[1308] पवश्वरूप अन्तर्दत्शष्ट-सम्बन्धी अनुभव का कपव द्वारा अततर्योत्ततपूण शवणनश ि ै त्जसमें कक ईश्वर के अन्दर रमण करने ेवाला व्यत्तत सब पदाथों का उसके अन्दर दर्नश करता ि ै। गीता का मत ि ै कक इस प्रकार की आध्यात्ममक र्दत्ष्ट को प्राप्त करने ेके मलए मनुष्य को अपनेमें अन्ततनहशित िोने ेका ज्ञान प्राप्त करना चाहिए और अपनेमन को उच्चतम यथाथसशत्ता के अन्दर त्स्थर करना चाहिए। केवल बुद्धध के दोष से िी निीं ंककन्तु स्वाथ शकी लालसा से भी समय िमारी र्दत्ष्ट से ओझल रिता ि ै। अज्ञान वौद्धधक भ्रम निीं ंि ै अपपतु ुआध्यात्ममक अन्धापन ि ै। इसे दूरू करने ेके मलए िमें र्ीर एवं इत्न्द्रयों के मल को िटाकर आममा को तनमलश करना चाहिए एवं आध्यात्ममक र्दत्ष्ट को प्रज्जवमलत करना चाहिए जो समस्त पदाथों को एक नये र्दत्ष्टकोण से देखती ि ै। वासना की अत्ग्न और इच्छा की अर्ात्न्त का दमन करना आवश्यक ि ै।1309 चंचल और अस्थायी मन को एक प्रर्ान्त जलार्य की भांतत त्स्थर रखना आवश्यक ि ै त्जससे कक उसके अन्दर ज्ञान ऊपर से िीकि–ीक प्रततपवत्म्बत िो सके। बुद्धध अथवा सत् ्और असत् ्में पववेक करने ेवाली र्त्तत को प्रमर्क्षक्षत करना आवश्यक ि ै।'[1310] यि र्त्तत ककस हदर्ा में काय शकरती ि ै यि िमारे पूव शके संस्कारों के ऊपर तनभरश करता ि ै। िमें इसे इस प्रकार से प्रमर्क्षक्षत करना ि ै कक इसकी पवश्व के धाममकश र्दत्ष्टकोण के साथ सिमतत िो जाए।

गीता ने जो योग-प्रणाली को अंगीकार ककया ि ै वि मानमसक प्रमर्क्षण के साधन के रूप में िी स्वीकार ककया ि ै। योग साधना िमें ऐसे तनदेर् देती ि ै त्जनके द्वारा िम अपनेको अपनेपररवतनर्ील व्यत्ततमव से ऊपर उिाकर असाधारण प्रवृत्त्त में ला सकतेिैं जिां ंिमारे पास ऐसी कुंजी रिती ि ै जो सम्बन्धों रूपी समस्त नाटक का सूत्र ि ै। योगसाधना के अतनवाय शउपाय ये िैं: (1) मन, र्ीर एवं ंइत्न्द्रयों को पपवत्र करना त्जससे कक देवीय र्त्तत का उसके अन्दर संचार िो सके; (2) एकाग्रता, अथात्श ्इत्न्द्रयों की ओर दौड़नेवाले पवश्रृंखल पवचारों की चेतना से मन को िटाकर उसे सवोपरर ब्रह्म में त्स्थर करना; (3) और यथाथसशत्ता तक पिुंचने ेके पश्चात् ् उसके साथ तादामम्य स्थापपत करना। गीता इतनी अधधक क्रमबद्ध निीं ंि ै जैसे कक पतंजमल के योगसूत्र िैं, यद्यपप मभन्न-मभन्न साधनाओं का उसमें उल्लेख अवश्य ि ै।'[1311]

गीता िमारे सामने ेकुछ ऐसे सामान्य मसद्धान्त प्रस्तुत करती ि ै त्जन्िें सब श्रेणी के पवचारक स्वीकार कर सकते िैं। िमें श्रद्धा रखनेएवं ंपवद्रोिाममक मनोवृत्त्तयों का दमन करने ेका आदेर् हदया गया ि ै'[1312] और ईश्वर के पवचार को र्दढ़ता के साथ धारण करने ेका आदेर् ि ै। आध्यात्ममक दर्नश के मलए मौन एवं ंर्ात्न्त का वातावरण आवश्यक ि ै। मौन अवस्था में, जो मन को वर् में करनेसे िी सम्भव ि ै, िम आममा के र्ब्द को सुन

1308 1:1। तुलना कीत्जए, पैगम्बर के र्ब्दों से, "ि े भगवान! उसकी आंखें खोलो त्जससे ेकक वि देखने में समथ िो।" और भी देणखए ड्राककल का स्वप्न और एतसोडस, बाइपवल, 39: 18; इलिाम अध्याय 4. और सद्धमपुण्डरीक, अध्याय ।

1309 4-39 ।

1310 2:44 ।

1311 अध्याय 6।

1312 4-39 ।

 सकतीं। यथाथ शयोग ि जो ि में आध्यात्ममक तनष्पक्षता अथात्श ्सममव प्राप्त कर सके।"[1313] "योग ऐसी दु:ख से

मुतत अवस्था का नाम ि त्जसमें एक ऊपर से छाए िुए स्थान में रखे दीपक की भातत मन प्रकत्म्पत निीं ंिोता, त्जस अवस्था में आममा के द्वारा आममा का प्रमयक्ष कर लेनेपर मनुष्य के अन्दर सन्तोष अनुभव करता ि, जिां ंमनुष्य को ऐले परम आनन्द का अनुभव िोता ि जो केवल बुद्धध द्वारा ग्रिण करने िी का पवषय ि। ककन्तु इत्न्द्रयों की पिुंच से सदा बिार ि और जिां पर आसीन िोकर मनुष्य कफर समयमाग शसे भ्रष्ट निीं ंिोता; जिां ं अन्य ककसी प्रकार का लाभ उससे अधधक मित्त्व का निीं ंि और त्जस अवस्था में अवत्स्थत िो जानेपर मनुष्य ब्र ेकष्ट से भी पवचमलत निीं ंिोता।"[1314] आध्यात्ममक अन्तर्दशत्ष्ट प्राप्त करनेके मलए सबको योग के अभ्यास की आवश्यकता निीं ंि। मधुसूदन सरस्वती ने एक श्लोक बमर्ष से उद्धृत ककया ि: "मन के विकार आहद का दमन करनेके मलए योग और ज्ञान दो िी साधन िैं। योग धचत्त की वृपृत्तयों के तनरोध का और ज्ञान सम्यक् अवेक्षण का नाम ि। कुछ श्ेरेणी के व्यत्ततयों के मलए योग-साधन सम्भव निीं ंि इसी प्रकार कुछ श्ेरेणी के व्यत्ततयों के मलए ज्ञान सम्भव निीं ंि।"[1315] आध्यात्ममक अन्तर्दत्शष्ट में कम शऔर उपासना भी सियक िो सकतीं।1316

कुछ अवस्थाओंमें आध्यात्ममक प्रमर्क्षण के मलए योग की उपयोधगता को स्वीकार करते समय गीता इसके भयावि पररणामों से भी अनमभज्ञ निीं ंि।'[1317] उपवास और इसी प्रकार के अन्य उपायों से िम केवल अपनी इत्न्द्रयों की र्त्तत को िी क्षीण करते िैं जब कक इत्न्द्रयों की पवषयोपभोग की लालसा वैसी िी बनी रिती ि। इसमलए त्जसकी आवश्यकता ि वि ि इत्न्द्रयों को वर् में रखना और भौततक पदार्थों के आकषणश के प्रतत उपेक्षा का भाव रखना। और यि केवल ज्ञान के उदय से िी सम्भव ि।

आध्यात्ममक अन्तर्दत्शष्ट, जो स्वरूप में साक्षामकार कराने में अधधक समथ शि,'[1318] ऐसा तनश्चयाममक ज्ञान निींदेती त्जसकी समालोचना न िो सके। इसे वैज्ञातनक तनणयश का समथनश प्राप्त ि। यि ज्ञान का किोर तपस्या और रजोवृपृत्त के साथ संयोग ि, और यि एक ऐसा पूण शअनुभव ि जो िमें प्राप्त िोना सम्भव िो सका ि त्जसमें मन को ककसी प्रकार की दुपुवधा न रिकर आममा की सच्ची र्ात्न्त तथा पवर्ात्न्त का सुखोपभोग प्राप्त िो सकता ि।1319

जिां ंएक बार ज्ञान-सम्बन्धी अनुभव प्राप्त िो गया तो चेतना के इतर पक्ष भी, यथा भावना और इच्छा, अपने-आपको प्रकट करने ेलगते िैं। ईश्वर का दर्नश आध्यात्ममक प्रकार् में तथा सुख के वातावरण में प्राप्त िोता ि। सम्पूण शजीवन की मित्त्वाकांक्षा एक प्रकार से अनन्त की तनरन्तर आराधना बन जाती ि। जाता भी एक

1313 2:48

1314 6 : 19 -26 ।

1315 गीता पर टीका, 6/ 29।

1316 4/42 ।

1317 2/59 - 61

1318 9/2 "प्रमयक्षावगमम् ्।"

1319 4:35, 5:18, 21 ।

भतत िै और उन सबमें सवशे्रेशष्ठ िै।"[1320] "जो मुझे ेजानता िै, मेरी पूजा करता िै ।"[1321] समय का ज्ञान अपने हृदय को सवोपरर ब्रह्म के प्रतत ऊंचा उिाना, उसे स्पर् शकरना और उसकी अचनशा करना िै।1322 एक कक्रयाममक प्रभाव भी िै। त्जतनी अधधक प्रगाढ़रूप में िमें अपने स्वरूप का ज्ञान िोगा, उतनी िी अधधक गिराई के साथ िम औरों की यथाथ शआवश्यकताओंको जान सकेंगे। कल्याणकारी कम शकेवल ज्ञान का मूल मसद्धान्त िी निीं, ं अपपतु नेटलमर्प की प्रमसद्ध पररभाषा में चररत्र का ध्रुव नक्षत्र बन जाता िै। िमारे सामने युद्ध का उदािरण िै जो सबसे बड़ा ज्ञानी व धमामशमा था। मनुष्यमात्र के प्रतत उसके प्रेम ने उसे तनरन्तर चालीस वषों तक मनुष्यमात्र का र्ासक बनाकर रखा।

कभी-कभी ऐसा तकश उपत्स्थत ककया जाता िै कक ज्ञान अथवा बुद्धध का नैततकता के प्रतत उपेक्षा का भाव रिता िै। यि किा जाता िै कक बुद्धध चररत्र का अतनवाय शअंर् निीं ंिै। बुद्धध के द्वारा िम केवल तनणयश सम्बन्धी भूलें िी करते िैं जो नैततक दृत्ष्टगत किलाएंगी। बुद्धध स्वयं में न अच्छी िै न युरी, तयोंकक इसका प्रयोग सदाचारमय अवधचत उन्नतत तथा पवनार् दोनों िी कायों में ककया जा सकता िै। िमारे पवश्लेषणाममक ज्ञान कीतप्राकमज्ञानसम्बिमें एकंपक्षीय भी िो सकता िै। ज्ञान अथात् संकुधचत दृत्ष्टकोणों से िटाकर सवग्रिािी समय की ओर ले जाता िै जिााँ िमें यि अनुभव िोता िै कक मनुष्यों के अन्दर परस्पर के मतभेद परम रूप में कोई अत्स्तमव निीं रखते और ऐसा कोई भी आचरण, त्जसका आधार ममथ्या भेदों के ऊपर िै, धाममकश किा जा सकता िै। िम देखते िैं कक मनुष्यों के जीवन का मूल एक िी िै और एक स्वयंमसद्ध अनािद अनन्त आममा सब मनुष्यों के जीवन में जीपवतरूप में समान र्तत के साथ काय शकर रिी िै। इस समय का साक्षामकार िो जानेपर इत्न्द्रयांएवंजीवामम दोनों िी अपनी र्तत से वंधचत िो जाते िैं।[1323]

10. भत्ततमाग श

भत्तत का माग शमनुष्य की उधचत कक्रयार्ीलता के भावनाप्रधान पक्ष के पवधान की ओर संकेत करता िै। भत्तत ज्ञान एवंकम शदोनों से मभन्न भावनामयी आसत्तत का नाम िै।'[1324] इसके द्वारा िम अपनी भावनाममक सम्भावनाओं को दैवीय सम्भावना को अपपतश करते िैं। भावना मनुष्यों के अन्दर एक जीते-जागते सम्बन्ध को व्यतत करती िै। और विी धाममकश भाव की र्तत से क्षमता प्राप्त करके सिज प्रवृपत्त के रूप में प्रकट िोती िै जो मनुष्य को ईश्वर के साथ एक बन्धन से जोड़ती िै। यहद िम प्रेम न करें, न पूजा िी करें, तब िम एक प्रकार से अपनी अिंकार रूपी कारागार में अपनेको बन्द कर लेते िैं। यिी माग शसम्यक् रूप में तनयममत िो जानेपर िमें सवोपरर ब्रह्म के दर्नश की ओर ले जाता िै। भत्तत का माग शसब ककसी के मलए-अथाशत् ्दुबुलशाममा तथा तनम्न

1320 7:17 ।

1321 15:19 ।

1322 10:8-9

1323 2/59

1324 र्ात्ण्डल्यसूत्र , 1:4-5 और 7 ।

 जातत के व्यत्ततयों के मलए, अमर्क्षक्षतों और अज्ञातनयों1325 के मलए भी एक समान खुला िै

और सबसेअधधक

सुगम िै। प्ेरम का मयाग इतना कहिन निीं जैसाकक इच्छार्त्तत को दैवीय प्रयोजन के मलए साघने ेका काय शिै अथवा तपस्या की साधना तथा कष्टसाध्य धचन्तन का प्रयमन िै। यि पवलकुल उत्तना िी फलदायक िै त्जतना कक अन्य कोई भी दूसूरा उपाय िो सकता िै। अपपतु कभी-कभी किा जाता िै कक अन्य सब उपायों से यि अधधक मित्त्वपूण शिै, तयोंकक यि अपना फल स्वयं देता िै जबकक अन्य उपाय ककसी अन्य उद्देश्य की मसद्धध के मलए केवल साधनमात्र िै।

भत्ततमाग शकी उमपपत्त का पता अमयन्त प्राचीनकाल के इततिास के गभ शमें तछपा िै। उपतनषदों की उपासना पवधध और भागवतों के भत्ततपरक माग शने गीता के रचतयता को भी प्रभापवत ककया। उसे उपतनषदों के धाममकश स्तर से सम्बद्ध पवचारों की व्यवस्था को पवकमसत करनेके मलए पयाप्शत पररश्रम करना पड़ा, तयोंकक उपतनषदें उतत पवचारों को पूणू शस्वतन्त्रता के साथ और असत्न्दग्ध भाषा में व्यतत करने ेमें अत्तमथ शरिीं। गीता में परमत्तत्त्व 'उन व्यत्ततयों के मलए जो सूकू्ष्म दृत्ष्ट रखते िैं, ज्ञानस्वरूप िै और गौरव ग्मलयों का गौरव िै।1326 देवताओं एवं मनुष्यों के सवप्रशथम ऋपषयों में प्रधान, तथा उस मृमृयु से भी मिान िै जो सबका संिार करती िै।1327 यि स्वीकार करते िुए कक अव्यतत परम तत्त्व का ध्यान िमें लक्ष्य की प्रात्प्त की ओर ले जाता िै, कृष्ण किते िैं कक यि एक कििोर प्रकक्रया िै।'[1328] पररममत र्त्तत वाले मनुष्य को यि कोई ऐसा आधार निीं ंदेता जिां ं से कक इस तक पिुंचा जा सके। उस प्ेरम में जो िम ककसी पदाथ शके प्रतत अनुभव करते िैं, एक पृथृतमव का भाव रिता िै। प्ेरम चािे ककतना िी तनकटतम संयुतत करे, प्ेरम करने ेवाला और त्जसके प्रतत प्ेरम ककया जाय वि एक-दूसूरे से मभन्न रिते िैं। चािे पवचार में िी िो, िमें द्वैत के भाव में िी सन्तोष करना िोता िै; ककन्तु एकेश्वरवाद को, जो द्वैतवाद से ऊपर िै, तनम्न स्तर पर उत्तरांिुआ बताना उधचत न िोगा। सवोपरर ब्रह्म के प्रतत भत्तत एक र्रीरधारी ईश्वर को मानने ेसे िी सम्भव िै, जो एक मूततमशान व्यत्तत िै और आनन्द एवं सौन्दय शसे पूण शिै। िम अपनेमनों की छाया या आभास से प्ेरम निींकर सकते। मूतरूशप िी सिचाररभाव, अथवा मैत्री या परस्पर के भाव, को उपलक्षक्षत करता िै। व्यत्ततगत सिायक िी व्यत्ततगत आवश्यकता की पूतत शमें सिायक िो सकता िै। इस प्रकार ऐसा ईश्वर त्जसके अन्दर प्ेरमपूण शहृदय का प्रवेर् िुआ िै वि ईश्वर निीं ंिै जो रतत िोली में आनन्द लेता िो, और न ऐसा िी ईश्वर िै जो अमूतरूशप से गम्भीर तनद्रा में सोता रिता िो जबकक दु:ुख के भार के आक्रान्त हृदय सिायता के मलए पुकार करते िोतिें। वि प्ेरमस्वरूप िै।1329 ऐसे व्यत्तत के मलए, जो अपना सब कुछ ईश्वर को समपपतश कर देता िै और उसके चरणों में अपनेको झुका देता िै, प्रभु ुका द्वार

1325 .9 32. और भी देणखए11 53-54

1326 17 :10।

1327 10/20 - 25, 3 ,4 ।

1328 12 : 5।

1329 "र्रणागतवमसल: ।"